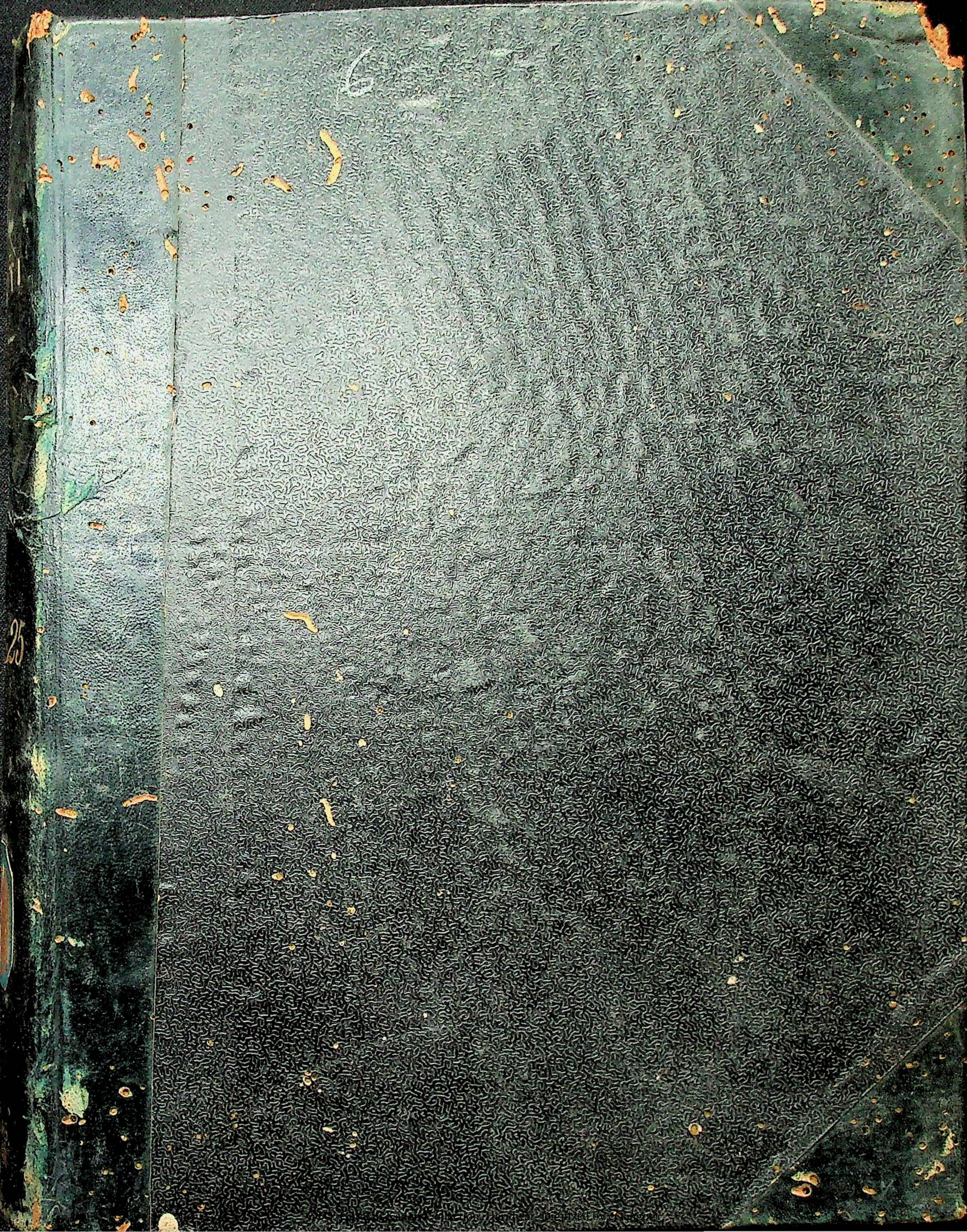
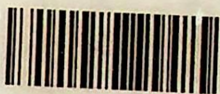


(३)

मूल्य (६)

[वर्ष ५] वैशाख १९८१—मई १९२४ Regd N L 1240.
[खण्ड १. संख्या १

ज्योति



वार्षिक मूल्य ४।)
प्रति संख्या ॥)
सम्पादिका विद्यावती सेठ बी० ए०
स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची

—:*:—

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंगरेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी।

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—
१ वर्ष के लिये ४॥) है।
६ मास के लिये २॥) है।
विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।
स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं. जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में गाहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

(५) पत्र व्यवहार में गाहकों को अपना पता स्पष्ट और सुपाठ्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर ग्राहक नं० न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को-कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-गाहक-गण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रवन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली।

गत मास
ज्योति का एक
के नाम से निक
मास के अंक के
पांक निकालने
विशेषांक का इ
कारण कि वहां
जो कि पाठकों
दिल्ली में कार्या
झंझटों में देरी
साधारण अंक
है, वह भी समय
के झंझटों को स
हमारी इस देरी के
के साथ आगामी ज
विशेषांक के रूप में निकला। बहुत से
भेजेंगे।

सम्बन्ध में
ही नहीं
में एक
ल बालकों
पिता के
ओं का भी
रन्तु साधन
न्हे सुनाई
सकने का
प्रतिनिधि
र लेने को
क्या कहें!
और ज्यों २
२ कर उन
गत दीपावली के
दिन खुलने पर तो आशातीत स्वागत हुआ।

अन्य विशेषांकों से कन्या गुरुकुलांक में विशेषता

बहुत से लोगों का खयाल है कि प्रत्येक पत्र पत्रिकायें एक न एक मास में विशेषांक निकालते ही रहते हैं अतः ज्योति का भी एक विशेषांक निकल गया तो क्या? परन्तु यह बात ज्योति के कन्या गुरुकुलांक के संबंध में ठीक नहीं है। ज्योति आर्यसमाज की बहुमान्य पत्रिका तो थी ही अतः उसका विशेषांक कम से कम आर्य्यजगत् के लिये केवल लेखों और लेखकों की दृष्टि से ही बड़ा आदरणीय और प्रेमपात्र होता, परन्तु इस समय 'सोना और सुगन्ध' दोनों ही उपस्थित हैं। ज्योति

कन्या गुरुकुल खुल तो गया है परन्तु इसका ज्ञान बहुत से लोगों को अभी तक भी नहीं है कारण कि इसके लिये आन्दोलन अभी नहीं हो सका है। जो लोग नामसे जानते भी हैं उन्हें भी इसकी बाबत अधिक जानने का कौतूहल है अतः हमने ज्योति के विशेषांक को कन्या गुरुकुलांक के नाम से ही पाठकों की भेंट करना निश्चय किया है। आशा है दयालु पाठक हमारी इस तुच्छ भेंट को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

—:*:—

कन्या गुरुकुलांक में क्या होगा?

पहिले हमने सूचना निकाली थी कि इसमें बड़े २ विद्वानों और धुरन्धर लेखकों तथा कवियों की ही रचना रहेंगी परंतु अब हमें

गत मास हमने सूचना दी थी कि हम ज्योति का एक विशेषांक कन्या गुरुकुल अंक के नाम से निकालेंगे। हमारा विचार इसी मई मास के अंक को नये वर्ष के उपलक्ष्य में विशेषांक निकालने का था। किन्तु लाहौर से ही विशेषांक का इस मास निकालना कठिन था कारण कि वहां महामारी का बड़ा प्रकोप था, जो कि पाठकों से छिपा नहीं है। और यहां दिल्ली में कार्य्यालय लाने पर डिक्लेरेशन इत्यादि झंझटों में देरी लगी। अतः मई का यह अंक साधारण अंक ही सेवा में भेंट किया जासका है, वह भी समय पर नहीं। आशा है कि कार्य के झंझटों को समझने वाले ज्योति के पाठक हमारी इस देरी को क्षमा करेंगे और पूरे उत्साह के साथ आगामी जून के अङ्क के लिये जो विशेषाङ्क के रूप में निकलेगा बहुत से आर्डर भेजेंगे।

अन्य विशेषांकों से कन्यागुरुकुलांक में विशेषता

बहुत से लोगों का खयाल है कि प्रत्येक पत्र पत्रिकायें एक न एक मास में विशेषांक निकालते ही रहते हैं अतः ज्योति का भी एक विशेषांक निकल गया तो क्या? परन्तु यह बात ज्योति के कन्या गुरुकुलांक के संबंध में ठीक नहीं है। ज्योति आर्यसमाज की बहुमान्य पत्रिका तो थी ही अतः उसका विशेषांक कम से कम आर्य्यजगत् के लिये केवल लेखों और लेखकों की दृष्टि से ही बड़ा आदरणीय और प्रेमपात्र होता, परन्तु इस समय 'सोना और सुगन्ध' दोनों ही उपस्थित हैं। ज्योति का विशेषाँक कन्यागुरुकुल के सम्बन्ध में निकलेगा।

कन्यागुरुकुल आर्य्यजगत् में ही नहीं वरन् समस्त जातीय स्त्री-शिक्षणालयों में एक विशेष स्थान रखता है। जबसे केवल बालकों का ही गुरुकुल था तभी से माता पिता के हृदयों में यह भावना थी कि कन्याओं का भी गुरुकुल खुलता तो अच्छा था। परन्तु साधन पर्याप्त न होने से मूक थे। जब उन्हे सुनाई देने लगा कि कन्या गुरुकुल भी खुल सकने का समय उपस्थित होगया है और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब इसके प्रबन्ध का भार लेने को प्रस्तुत है तब से उनके आल्हाद की क्या कहें! एक टक खुलने की राह देखते रहे और ज्यों २ खुलने में बाधायें उपस्थित होतीं त्यों २ कर उन का धैर्य छूटता था। अन्त को गत दीपावली के दिन खुलने पर तो आशातीत स्वागत हुआ।

कन्या गुरुकुल खुल तो गया है परन्तु इसका ज्ञान बहुत से लोगों को अभी तक भी नहीं है कारण कि इसके लिये आन्दोलन अभी नहीं हो सका है। जो लोग नामसे जानते भी हैं उन्हें भी इसकी बाबत अधिक जानने का कौतूहल है अतः हमने ज्योति के विशेषांक को कन्यागुरुकुलांक के नाम से ही पाठकों की भेंट करना निश्चय किया है। आशा है दयालु पाठक हमारी इस तुच्छ भेंट को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

—:*:—

कन्या गुरुकुलांक में क्या होगा?

पहिले हमने सूचना निकाली थी कि इसमें बड़े २ विद्वानों और धुरन्धर लेखकों तथा कवियों की ही रचना रहेंगी परंतु अब हमें

एक बात और भी सूझी है। वह यह कि इसमें गुरुकुल शिक्षाप्रणाली तथा अन्य शिक्षाप्रणालियों पर भी प्रकाश डाला जायगा और कन्याओं की पाठविधि में क्या २ विषय होने चाहियें इस पर भी सम्मतियां प्रकाशित की जाँयगी। तथा यहां की कन्याओं और शिक्षिकाओं के लेख रहेंगे। प्रयत्न किया जारहा है कि केवल लेख ही शिक्षाप्रद न हों वरन् मनोरंजन की सामग्री भी पर्याप्त हो। अतः इस विशेषांक में उत्तमोत्तम लेख कविताओं के अतिरिक्त कन्या गुरुकुल सम्बंधी चार चित्र होंगेः—

१. कन्यागुरुकुल के वर्तमान भवन का बाहरी दृश्य।
२. ब्रह्मचारिणियों के अग्निहोत्र करते हुये समय का दृश्य।
३. आज से दो मास पूर्व जितनी कार्य्यकर्तृ देवियां थीं उनका चित्र।
४. पाकशाला में कार्य करती हुई कन्याओं का चित्र।

इन चित्रों के अतिरिक्त एक नाटक तथा गल्प भी सचित्र देने का प्रयत्न हो रहा है। तथा अन्य प्रांतीय कन्या शिक्षणालयों का सचित्र वर्णन भी प्राप्त करने का प्रयास है।

यह विशेषांक अपने ढंग का निराला ही होगा। अतः सब आर्यसमाजों और आर्यपुरुषों और देवियों से प्रार्थना है कि जल्द मंगाने के लिये आर्डर भेजें। वरना समाप्त होने पर उन्हें निराश होना पड़ेगा।

जो संरक्षक लोग अब तक ज्योति नहीं मगा रहे हैं उन्हें भी शीघ्रता से ४॥) भेज कर ग्राहक बन जाना चाहिये ताकि वह भी विशेषांक सस्ते मूल्य में प्राप्त कर सकें।

इकट्ठा लेनेवालों के साथ बहुत रियायत की जायगी।

दर

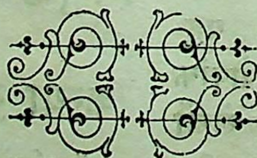
१ प्रति	वही ॥)
१० प्रति	४॥)
१५ प्रति	६)
२० प्रति	७॥)

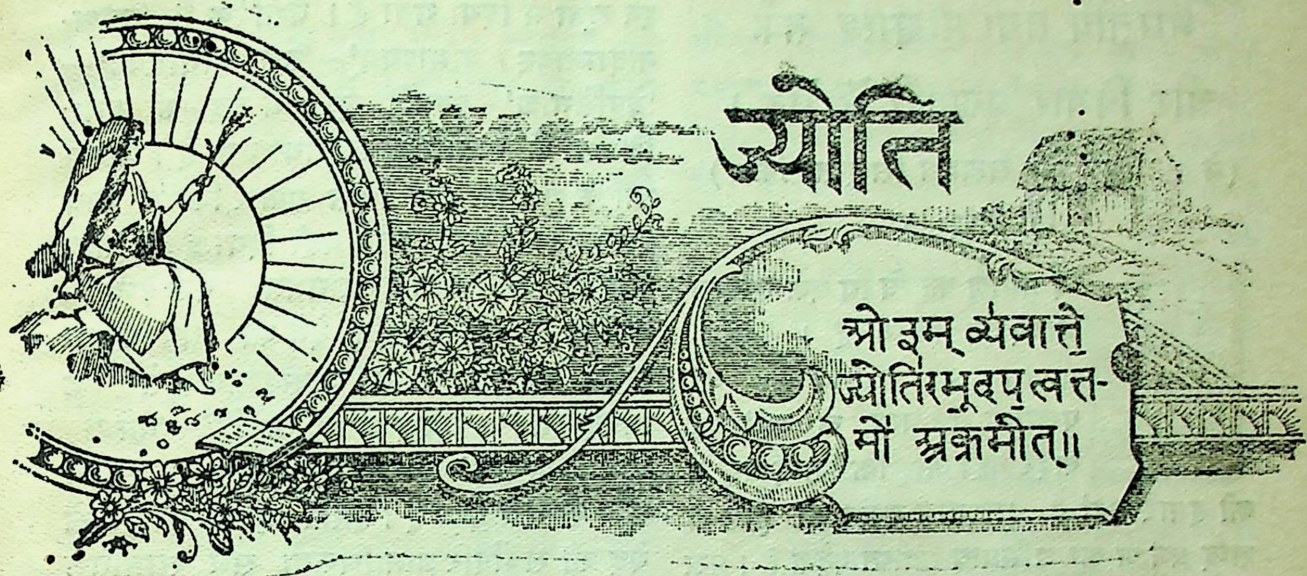
इससे अधिक लेने पर और भी रियायत होगी। शीघ्रता कीजिये।

विज्ञापन दाताओं को भी इसमें अच्छे २ विज्ञापन देने चाहियें क्योंकि यह अंक बहुत संख्या में छप कर बंटेगा और भारत से बाहर भी बहुत जायगा। विज्ञापन की दर पत्र द्वारा निर्णय करें।

पत्र व्यवहार इस पते से करेंः—

प्रबन्धकर्ता
ज्योति कार्य्यालय
कोठी नं० ४ दरियागंज
दिल्ली।





वर्ष ५ | वैशाख १९८१—मई १९२४ ई० | संख्या १

दयानन्दोदय ।

लेखक—कविवर "निर्मल"

दोहा— दिव्य दयानन्दर्षि का, ध्येय ध्यान में धार ।
कर लो भारत वासियो, भारत का उद्धार ॥

(कवित्त--घनाक्षरी)

वैदिक विवेक की बड़ाई भर पूर कर,
काट गया कठिन अमंगल के फंद को ।
ठौर ठौर चाहक-चकोरों को जिला के गया,
निर्मल दिखा के ज्ञान-गौरव के चंद को ॥
रौंद गया हिंसक हठीले हीन हेकड़ों को,
एक ही बता के निराकार चिदानन्द को ।
मंगल के मूल शूल कुटिल कुरीतियों के,
धर्म वीरो ! भूल के न भूलो दयानन्द को ॥

भारतीय तथा पाश्चात्य तर्क और विचार प्रणाली में भेद ।

(ले०—श्रीयुत् प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार)

IV-शब्दः—



शब्द प्रमाण का विषय एक अत्यन्त आवश्यक विषय है । Testimony या Authority की पाश्चात्य विद्वानों के यहां वह कदर नहीं जो कि शब्द प्रमाण की हमारे यहां है भारतीय दर्शन की दृष्टि से शब्द प्रमाण का अभिप्राय आप्तोपदेश है । प्रश्न हो सकता है कि "आप्त कौन है" ? वात्स्यायन का कथन है कि—'आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयोक्ता उपदेष्टा' । आप्त वही है जिस ने किसी अर्थ का साक्षात्कार किया हो उसे देखा हो—उस में उसे कुछ भी सन्देह न हो । शब्द प्रमाण में आप्तता आवश्यक है । आप्तोपदेश दो प्रकार का है:—

१ परमेश्वर का उपदेश—वेद अथवा श्रौतधर्म ।

२ मनुष्य का साक्षात्कार पूर्वक उपदेश—शास्त्र अथवा स्मार्त्त धर्म पहले पहल वेद की प्रामाणिकता को लीजिये ।

न्यायदर्शन में वेद की प्रामाणिकता को बड़े जोरदार शब्दों में माना गया है । द्वितीय अध्याय के प्रथमान्हिक में शंका उठाई गई है—'तदप्रामाण्यं अनृत व्याघात पुनरुक्तदोषेभ्यः' । इसका उत्तर 'न कर्मकर्तृ साधन वैगुण्यात्'—'अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात्'—'अनुवादोपपत्तेश्च'—'वाक्यविभागस्य चार्थ ग्रहणात्'—'विध्यर्थ वादानुवादवचन विनियोगात्'—'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यं आप्त प्रामाण्यात्' इन सूत्रों में दिया गया है । वैशेषिक में 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'—'तस्मादीगमिकः'—'वेदलिंगाच्च'—इत्यादि सूत्रों में वेद की प्रामाणिकता को स्वतःसिद्ध ठहराया गया है । परमात्मा के गुण का ज्ञान किस प्रकार किया जाय इसका उत्तर योगदर्शनने यही दिया है कि 'तस्य संज्ञादि विशेष प्रतिपत्तिरागमतः पर्यन्वेष्या' । वेदान्त के अधिक दृष्टांत देने की आवश्यकता नहीं । वह तो 'न वा तत्सहभावीश्रुते'—'न वियदश्रुतेः'—'नास्तु तच्छ्रुतेरिति'—'नात्मा श्रुतेर्नित्यत्वाच्च'—'श्रुतेश्च'—'शब्दाच्च'—इत्यादि सूत्रों से भरा पड़ा है । हमारे दर्शनों की दृष्टिसे वेद की सर्वोपरि प्रामाणिकता सर्व सम्मतिसे मानी गई है ।

परन्तु यह बात पाश्चात्य दर्शन में नहीं । जिस युग में ईसाइयत के सिद्ध करने पर ही सारे दर्शनशास्त्र का बल लगा हुआ था—उस समय निस्सन्देह बाइबल को आधार मानकर तत्प्रतिद्वन्द्वी अन्य सब प्रमाणों को निर्बल माना गया है—परन्तु अब ऐसी अवस्था नहीं । युक्ति रूपी घोड़ा बिना लगाम लगाये खुला छोड़ दिया है-वह जिधर जाय उधर जाने के लिये पाश्चात्य विचारक उद्यत हैं । युक्ति की भी कोई सीमा है—कोई ऐसा भी स्थल है जहां युक्ति नहीं चल सकती, इस सचाई को अत्यन्त थोड़े रूपमें अनुभव किया गया है । न्याय के हेतु परिष्कारक पांच प्रकारों में 'अबाधितत्व' भी गिना गया है । 'अबाधितत्व' का अभिप्राय यह है कि वही युक्ति ठीक है जिसके समान बलवती दूसरी युक्ति हमें न मिले । यदि एक युक्तिसे परमात्मा की सिद्धि हो जाय-दूसरी उतनी ही प्रबल युक्ति से उसका खण्डन हो जाय तो ऐसी अवस्थाको बाधित कहेंगे । 'बाधित अवस्था' को क्यों माना गया है ? इसीलिये कि युक्तिको सीमित समझ लिया गया है । यदि अनुमान असीमित है तो कोई न कोई अनुमान अवश्य

प्रबल रहेगा। परन्तु ऐसा नहीं। अनुमान की ऐसी अवस्था भी आती है जहां यह चुप खड़ा हो जाता है, जहां एक पक्ष को साधन करने वाली जितनी प्रबल युक्तियें मिलती हैं उतनी ही प्रबल युक्तियें उस पक्ष का खण्डन करने वाली भी मिल जाती हैं। ऐसी अवस्था का अनुभव सब दार्शनिकों ने किया है। हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय-मीमांसा में ऐसे अनुमान भरे पड़े हैं। इसका प्रतीकार क्या किया जाय? भारतीय विचारक कहता है कि मनुष्यों की ऐसी अवस्था निरन्तर नहीं रह सकती, यह अवस्था सृष्टि के सारे उपक्रम के विरुद्ध है। मानना पड़ता है कि इस सृष्टि के रचयिता ने स्वयं ज्ञान दिया होगा जो मनुष्य को इस अवस्था से निकालना होगा। ऋषियों का असन्दिग्ध शब्दों में कथन है कि ऐसा ज्ञान मिला है उन्होंने उसका अनुमान नहीं, साक्षात्कार किया है—वह ज्ञान वेद है। बस, इतने से सन्देह की अवस्था निश्चय में परिणत हो जाती है जिन बातों पर युक्ति ठहर जाती है उन पर श्रुति का प्रमाण ढूंढा जाता है। इसीलिये ज्यों २ भारतीय दर्शन ऊपर चढ़ता जाता है त्यों २ अनुमानादि प्रमाण को छोड़कर श्रुति प्रामाण्य बढ़ता जाता है उत्तर मीमांसा में तो श्रुति ही श्रुति रह जाती है और कुछ रहता ही नहीं।

पाश्चात्य विचारकों की यह अवस्था नहीं। उन्हें युक्ति पर बहुत विश्वास है। परन्तु क्योंकि एक समय ऐसा आता है जब युक्ति चुप हो खड़ी हो जाती है, तब क्या किया जाय? पाश्चात्य विचारक का उत्तर है—'कुछ नहीं'। युक्ति चुप हो गई इसीलिये हमें भी चुप हो जाना चाहिये। यही अवस्था सन्देहवाद की अवस्था है। इसी लिये पाश्चात्य विचारकों का किसी बात पर भी विश्वास नहीं। उनके लिये प्रत्येक बात अनिश्चित है। परन्तु मनुष्य की प्रवृत्ति, मनुष्य की आकांक्षा सन्देहवाद के परिमित वायुमण्डल में रहने की नहीं। इसमें मनुष्य का दम घुटता है और वह इससे बाहर निकलना चाहता है। क्या किया जाय? 'सन्देह' से निकलने का एक ही उपाय हो सकता है और वह उपाय 'निश्चय' की भूमि पर आने के अतिरिक्त और कोई नहीं। 'निश्चय' पर पहुंचने के लिये तीन ही उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है:—

१ या तो अपना कोई एक विश्वास निश्चित कर लिया जाय।
२ या अपने से अधिक किसी विद्वान् के कथन को ठीक मान लिया जाय।
३ ईश्वरीय ज्ञानका आधार लिया जाय,

क्योंकि मनुष्य सन्देह की अवस्था में नहीं रह सकता अतः भारतीय विचारकों ने पिछले दो को स्वीकार कर लिया है और पाश्चात्य विचारकों ने पहले दो को स्वीकार कर लिया है। मुक्ति के क्षेत्र से दोनों निकल कर श्रद्धा के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। कहने के लिये दोनों को अविश्वासी कहा जा सकता है परन्तु यदि ईश्वरीय ज्ञान ठीक हो तो ऐसी अवस्थामें पाश्चात्य विचारकों को ही अन्धविश्वासी कहा जायगा। भारतीय विचारकों का कथन है कि पहली दो बातों में विश्वास करना परतःप्रमाण बात पर विश्वास करना है तथा पिछली दो बातों पर विश्वास करना स्वतः प्रमाण बात पर विश्वास करना है।

प्रश्न हो सकता है कि ईश्वरीय ज्ञान कौन है—इसका निर्णय कैसे किया जाय। जब ईश्वरीय ज्ञान में वर्णित बातों का यथार्थ रूप से अनुभव अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, तब ईश्वरीय ज्ञान की प्रामाणिकता कैसे मानें?

इसका उत्तर बहुत विचित्र है जो कि आप ने कई बार भिन्न २ रूपों में सुन रक्खा होगा।

भारतीय विचारक कहते हैं कि वेदकी वेदत्वेन प्रामाणिकता उसी के लिये कही जाती है जो कि स्वयं उसका प्रत्यक्ष नहीं कर सकता . उन का कथन है कि चाक्षुष प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष नहीं-- इन्द्रियों की सहायता से प्रत्येक पदार्थ तक पहुंचने की इच्छा करना मूर्खता है। इन्द्रियें ज्ञान को प्रकट करने की अपेक्षा छिपाती अधिक हैं। वास्तविक ज्ञान अनैन्द्रियक ज्ञान ही है। इस प्रत्यक्ष का नाम 'आर्ष प्रत्यक्ष' है। इसी प्रत्यक्ष से वेदों के रहस्यों का प्रत्यक्ष किया जा सकता है। यह बात देखनेकी है बहस करनेकी नहीं।

आप्तोपदेश के दो भेदों को करते हुए मैंने कहा था कि एक तो ईश्वरदत्त ज्ञान है और दूसरा मनुष्यदत्त। ईश्वरदत्त ज्ञान के प्रामाण्यके विषय में हम विचार कर चुके। मनुष्यदत्त ज्ञान के भारतीय दार्शनिकों ने दो भेद किये हैं।

१ जिस उपदेशका इन्द्रिय प्रत्यक्ष पर आश्रय हो।

२ जिस उपदेश का आर्ष—प्रत्यक्ष पर आश्रय हो।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं इसे पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं-- और शायद आवश्यकता से अधिक मानते हैं। पाश्चात्य दार्शनिकों की अपेक्षा भारतीय दार्शनिक आर्ष प्रत्यक्ष को अधिक प्रबल मानते हैं। आर्ष-प्रत्यक्षका वर्णन प्रत्यक्ष प्रकरणमें इस लिये नहीं किया गया, क्योंकि इसका ज्ञान हमें बहुत कुछ शब्द प्रमाण द्वारा ही होता है। आर्ष प्रत्यक्ष के विषय में लिखते हुए वैशेषिक की टीका में लिखा है:—

'यत्प्रातिभं ज्ञानं यथारम निवेदन मुत्पद्यते तदार्षमित्याचक्षते। तत्तु प्रस्तान्नेन देवर्षिणां कदाचिदेत्र लौकिकानाम्। यथा कन्यका ब्रवीतिश्वो मे भ्राताऽऽगन्तेति। हृदयं मे कथयतीति'। बहिन कहती है कि कल मेरा भाई आयगा, मेरा हृदय कहता है कि वह कल आजायगा। अगला दिन होते ही उसका भाई दरवाज़े पर आ खड़ा होता है। यह ज्ञान किसी बाह्य इन्द्रिय द्वारा नहीं हुआ—परन्तु यह भी ज्ञान है—इसी को आर्ष-प्रत्यक्ष कहते हैं।

योगदर्शन में 'श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यां अन्य विषयां विशेषार्थत्वात्' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए भाष्यकार लिखते हैं 'न चास्य विशेषस्य अप्रामाणिकस्य अभावोऽस्तीति समाधि प्रज्ञा निग्राह्य एव स विशेषोभवति'। इस उद्धरण में समाधि-प्रज्ञा-प्रत्यक्ष अर्थात् योग प्रत्यक्ष एक विलक्षण प्रत्यक्ष माना गया है।

जो भारतीय विचारों से परिचित हैं वे इस बातसे भी परिचित होंगे कि हमारे यहां इन्द्रियों को पदार्थ ज्ञान में बहुत अधिक साधन नहीं माना गया। कम से कम आत्मप्रत्यक्ष एक स्वतन्त्र प्रत्यक्ष माना गया है जिसका इन्द्रियों पर आधार बिल्कुल नहीं। इन्द्रियों के बिना कार्य होता है। वे कहते हैं:—

"अन्धो मणिमविध्यत् तमनङ्गुलिरावयत्।
अग्रीवस्तं प्रत्यमुञ्चत् तमजिह्वोभ्यपूजयत्॥

इस आशय के मन्त्र वेद में, उपनिषद् में यत्र तत्र सर्वत्र आते हैं। 'अपाणिपादोजवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' इत्यादि मन्त्र इसी भाव के अभिव्यञ्जक हैं।

यौगिक प्रत्यक्ष कोई नयी बात नहीं। इन्द्रियों के बिना ज्ञान प्राप्त करना भारतवासियों की ही कल्पना नहीं। चीन के प्राचीन धर्म Taoism की पुस्तकों में एक कथा आती है जिसमें लीन शू को कीन बू कहता है 'मैंने एक आदमी को बड़ी ऊटपटांग बातें करते हुए सुना है। वह एक विचित्र व्यक्ति का वर्णन सुनारहा था। वह कहता था कि एक आदमी मौजूद है

जो अन्न नहीं खाता, बादलों पर चढ़ जाता है, समुद्रों के पार उड़ जाता है—क्या ये बातें अनाप शनाप नहीं हैं ? यह सुनकर लीन शू कहता है कि ये सब बातें सत्य हैं,—तू जानता नहीं—लेकिन यह सब कुछ हो सकता है।

आर्ष तथा योग प्रत्यक्ष को पाश्चात्य दर्शन दबदबे तार से मानता है खुले तौर से नहीं। Locke का कथन है कि पांच वाह्य इन्द्रियों के अतिरिक्त एक आन्तरिक इन्द्रिय भी है। 'Intution' केवल आर्ष प्रत्यक्ष का ही नामान्तर है। 'Telapathy' की घटनाएं भी इन्द्रिय अतिरिक्त प्रत्यक्ष को ही सिद्ध करती है।

Phychology के वर्त्तमान अन्वेषण इसी तरफ इशारा कर रहे हैं। परन्तु अभी तक वर्त्तमान विचार भारतीय विचार से बहुत दूर है। भारतीय विचारकों ने आर्षप्रत्यक्ष को बड़ी प्रबलता से माना ही नहीं परन्तु उसी को वास्तविक निर्भ्रान्त प्रत्यक्ष माना है। उनका यह भी कथन है कि मनुष्य योगशक्तियों को अपने भीतर उत्पन्न कर सकता है। इसके मार्ग आदि सब विशद रूप से उन्होंने एक विशेष दर्शन की पुस्तक में लिख दिये हैं जिस का नाम 'योग-दर्शन' है। पाश्चात्य तथा भारतीय दर्शन में यह बड़ा भारी भेद है। इस भेद को मैं सब भेदों से मुख्य भेद समझता हूं हमारे दार्शनिकों ने सब तत्त्वों का दर्शन किया था केवल बुद्धि से ही उन तक नहीं पहुंचे थे परन्तु 'दर्शन' से उन सचाइयों पर पहुंचे थे। यही कारण है कि भारतीय फ़िलासफ़ी का नाम 'दर्शन' है। इस शब्द में बड़ी भारी गहराई और सचाई है। 'दर्शन' का अर्थ है—'देखना'। न्याय भी दर्शन है—वैशेषिक भी दर्शन है—वेदान्त भी दर्शन है सब कुछ उनका देखा हुआ है—अटकलपच्चू बात कोई नहीं। क्या इतना बड़ा दावा पाश्चात्य फ़िलासफ़ी कर सकती है। जहां तक मुझे मालूम है, अभी तक इस दावे को पाश्चात्य फ़िलासफ़ी ने नहीं किया।

भारतीय विचारकों का कथन है कि सब कुछ उनका दर्शन किया हुआ है, देखा हुआ है—अनुमान मात्र किया हुआ नहीं। देखना Perception है-अनुमान करना Experiment है। इसी लिये भारतीय विचार प्रणाली Subjective या Introspective तथा पाश्चात्य विचार प्रणाली Objective तथा Experimentative है।

इसी लिये भारतीय विचारकों की लेख शैली ऐसी है जैसे किसी ऋषि की हो। दर्शन कर लिया है उसका वर्णन हो रहा है। एक २ शब्द सारगर्भित है उपनिषद् इस के प्रत्यक्ष प्रमाण है। उपनिषदों के वर्णन ऐसे व्यक्तियों के किये हुए नहीं जो सचाई की ढूंढ़ कर रहे हों—वे ऐसे व्यक्तियों के किये हुए हैं जो सचाई को देख चुके हों। पाश्चात्य विद्वानों के वर्णन सचाई को खोजने वालों के वर्णन हैं। यदि पाश्चात्यों की विचार प्रक्रिया ऐसी हो रही तो मैं भविष्यद्वाणी कर सकता हूं कि ये लोग सदा सचाई को ढूंढ़ते ही रहेंगे, उसे पा नहीं सकेंगे सचाई को पाने के लिये भारतीय ऋषियों के तरीके का इस्तैमाल करना पड़ेगा।

इससे एक और बात भी समझ आजाती है। भारतीय विचारक अपने कथनों को कट्टरपन से कहते हैं। पाश्चात्य विचारक जो कुछ कहते हैं उसे कहते हुए हिचकिचाते है—वे अपने विचारों में उतने कट्टर नहीं जितने भारतीय विचारक। इसका कारण यही है कि भारतीय विचारक जिन सचाईयों को मानते हैं उन्हें वे स्वयं 'देखकर' आये हैं-पाश्चात्य विचारक रोज़ नये नये Possible hypotheses ही गढ़ते चले जाते हैं। जो किसी

चीज़ को आंखों से देख चुका हो उसका कट्टर होना स्वाभाविक है जिसने किसी वस्तु का अनुमान मात्र किया हो उसका नई २ कल्पनाओं का गढ़ते रहना स्वभाविक है। कट्टरपन अपने आप में बुरी बात नहीं। जब मैंने एक चीज़ स्वयं देखी है तब चाहे कोई कितना ही खण्डन करे मैं क्योंकर मानने लगूं-मेरा उस वस्तु का साक्षात्कार या दर्शन करलेना ही विपक्षी के मत के खण्डन में सबसे प्रबल युक्ति है। इसीलिए भारतीय विचारक अपनी प्रत्येक बात में कट्टर हैं। जब कट्टरपन का आधार साक्षात्कार पर नहीं होता तब वही कट्टरपन पक्षपात हो जाता है जो निस्सन्देह हेय वस्तु है।

जिसने दर्शन कर लिया है उसके सारे विचारोपक्रम का बदल जाना स्वाभाविक है। भारतीय विचारकों ने सृष्टि की सचाइयों का दर्शन किया हुआ था। उनके दर्शन के अनुसार आत्मा, परमात्मा आदि ऐसी ही सचाइयां हैं जैसी अधिकांश पाश्चात्य विचारकों के अनुसार प्रकृति। भारत में विचारकों ने परमात्मा के दर्शन किये हैं — यूरूप में विचारकों ने प्रकृति के दर्शन किये हैं। इससे Spritualism तथा Materalism के विरोध का प्रारम्भ हो जाना स्वाभाविक हैं। उसे दूर नहीं किया जा सकता। जिसने आत्मा का साक्षात्कार किया है क्या वह प्रकृति तक बैठा आराम कर सकता है? कभी नहीं। वह व्याकुल हो उठता है और चिल्लाने लगता है!

'हिरण्मयेनपात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये'

पूर्वीय तथा पाश्चात्य विचारों में सबसे बड़ा भेद Spritualism Materilism पर आश्रित हैं ये दोनों भेद कपोल कल्पित नहीं। ऋषियों ने आत्मा का साक्षात्कार किया इस लिए वे एकदम Spritualists हो गये।

(प्रकृतिवादी तथा अध्यात्मवादी दोनों जब सृष्टि के प्रश्नों पर गहरा विचार करते हैं तब दोनों की दृष्टियों में एक तात्विक भेद उत्पन्न हो जाता है। यदि इस सृष्टि के अतिरिक्त और कुछ नहीं, तो जीवन का लक्ष्य खाने पीने तथा मौज करने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? यही Economic interpretation of life है प्रत्येक प्रश्न को रुपयों, आनों और पाइयों के हिसाब से देखना चाहिए उसके सिवाय औरकुछ है ही नहीं? वर्तमान Politics तथा Sociolgy की आधारभूत यही नींव है। हवाई बातों से काम नहीं चल सकता, रुपया आना चाहिये। इसीसे सुख होता है। यही मनुष्य का उच्च ध्येय होना चाहिये। संसार की सब समस्याओं का हल रुपये के प्रश्न के हल होजाने से स्वयं हो जाता है।

Ethics में भी यही नियम घटाया जाता है। समाज शास्त्र में समाज ही सर्वोच्च अभिष्ट ध्येय हो सकता है अतः नीतिशास्त्र में समाज का हित करना ही सर्वोत्तम धर्म है। 'The greatest good of the greatest number, इसी सूत्र में नीति शास्त्र के सब उपदेशों का सार आजाता है। प्राकृतिक जगत् को हम जानते हैं—उसके अतिरिक्त कोई जगत् नहीं प्राकृतिक जगत् में कार्य कारण का नियम काम कर रहा है। बस, इस से ऊपर कोई जगत् नहीं कोई कार्य-कारण का नियम भी नहीं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि सब सापेक्षिक धर्म हैं। समाज को इनसे जहां तक लाभ पहुंचे वहीं तक इनका पालन करना चाहिये। जहां समाज को इनके पालन करने से हानी होती दीख पड़ती हो वहां झूठ आदि कुछ ही क्यों न बोलदे यही धर्म है।

Psycology के क्षेत्रमें आत्मा वात्मा कुछ नहीं—सब ज्ञान दिमाग के भिन्न २ केन्द्रों से

स्वयं उत्पन्न हो जाता है। 'No Psychosis without neurosis:—'आत्मक आधार से कोई बात समझ में नहीं आती, भौतिक आधार से सब कुछ समझ में आजाता है,।

Metaphysics में time, Space, Direction आदि पर खूब विचार किया जाता है। परमात्मा वहाँ से गायब है।

Religion में परमात्मा आदि को मानना पड़ता है अतः भारत जैसा धर्म तो पाश्चात्य दिमागों में ढूंढे भी नहीं मिलता।

—भारतवर्ष में उपर्युक्त सब बातें पाश्चात्य देशों से सर्वथा विपरीत हैं। Economic Interpretation of life की जगह उससे सर्वथा विपरीत spiritual interpretation of life ही उनके विचार का आधार है। रुपया पैसा होना चाहिये—परन्तु यहीं ठहरना नहीं, इससे आगे बढ़ना चाहिये। यजुर्वेद में लिखा हैः—

(तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा)

त्यागपूर्वक भोग करना ही भारतीय तर्क पर आश्रित है सभ्यताका ध्येय है। Sociology की सारी समस्याओं का उत्तर आदर्श वर्णव्यवस्था में स्वयं आजाता है-जिसके विषय में आप रोज़ बहुत कुछ सुनते रहते हैं।

Ethics के क्षेत्र में भी विस्तृत दृष्टि है। भौतिक जगत् के अतिरिक्त आत्मिक जगत् हैं। जो कार्यकारण भाव इहलोक में है वही परलोक में है। Greatest good of the greatest number का ध्यान रखते हुए आत्मा को नहीं भूल जाना चाहिये। योग दर्शन का ज़ोरदार शब्दों में कथन हैः—'अहिंसा सत्य मस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा 'यमाः—जाति देश कालसमयानवच्छिन्नाः सार्व भौमा महाव्रतम्' अहिंसादि का आधार सामाजिक नहीं है—ये देश काल समय की उपेक्षा नहीं करते—ये महाव्रत हैं. जिनकापालन करना सर्व अवस्थाओं में आवश्यक है।

जिस तरह Politics Economics तथा Sociology में रुपये की आवश्यकता को मान कर एक कदम आगे रक्खा गया है; जिस तरह Ethics में समाजहित को आवश्यक मानकर भी एक कदम आगे रक्खा गया है उसी तरह— sychology के क्षेत्र में शरीर को, इन्द्रियों को, ज्ञान में सहायक मान कर एक कदम आगे बढ़ कर कहा गया है कि 'इन्द्रियें ज्ञान के लिए अन्तिम प्रमाण नहीं'। Mataphysics में Time. Space, आदि को मान कर उनसे भी आगे निर्देश किया गया है। परमात्मा की सत्ता पर अधिक बल दिया गया है। Religion में परमात्मा को ही लेकर सारे जीवन पर विचार किया गया है। (भारतीय विचार प्रणाली की यही विशेषता है।)

इस सारे विचार में ध्यान रखने योग्य बात एक है। पूर्वीय विचार पाश्चात्य विचार का खण्डन नहीं करता अपितु मण्डन ही करता है। भारतीय विचारकों का केवल इतना कहना है कि पाश्चात्य विचार तक ठहर जाना ही भूल है-उस विचार तक पहुंचना भूल नहीं। उस विचार तक पहुंच कर ठहरना नहीं चाहिये-आगे चलना चाहिये शायद इसी लिये दिवंगत पं० गुरुदत्त जी कहा करते थे कि जहां पश्चमीय तर्क तथा विज्ञान समाप्त होता है वहां भारतीय दर्शन प्रारम्भ होता है।

इस समय भारत में इस बात को समझा नहीं जा रहा। इस समय यही समझा जाता है कि भौतिक संसार सर्वथा मिथ्या है। वर्त्तमान काल में भारतीय विचार बहुत भटक चुका है। अब पैदा होते ही मुक्ति पर छलांग मारने का

प्रयत्न किया जाता है—यह असम्भव है। भारत में तथा पाश्चात्य देशों में मनुष्य जिस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं-उस से इन दोनों की विचार प्रणाली बहुत अच्छी तरह समझ में आजाती है।

भारत में पण्डित लोग खूब शुद्ध पवित्र रहने का प्रयत्न करते हैं। दिन में तीन २ बार स्नान करते हैं-परन्तु स्नान करते हो १० महीने की मैल से सनी धोती मज़े से शरीर पर ओढ़ लेते हैं। पश्चिम में स्नान नहीं करते लेकिन कपड़े खूब साफ़ पहर लेते हैं तेल लगा, कंघा फेर चटक मटक कर बाहर निकल आते हैं-स्नान किये महीनों बीत जाते हैं।

भारत में भोजन करके खूब ज़ोर से कुल्ला करते हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसा नहीं। वे भोजन के बाद इस लिए कुल्ला नहीं करते कि यह असभ्यता है। नाक भी खुले मैदान में साफ़ नहीं करते। रेशमी रूमाल को नासिका से लगा कर रूमाल को पवित्र कर देते हैं।

इसी तरह के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे दोनों देशों के विचारकों का क्रियात्मिक जीवन पर प्रभाव बड़ी स्पष्टता से देखा जा सकता है।

परन्तु जैसा अभी कहा जा चुका है भारतीय विचार को प्रचलित विचार की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। भारतीय विचारको ठीक २ समझने के लिये हमें पीठ पीछे देखना पड़ता है कई सौ साल उड़कर एक नये युग में जाना पड़ता है। उस दृष्टि से स्नान करते ही गन्दे कपड़े पहर लेना कोई धर्म नहीं अधर्म ही है-- स्नान न करके स्वच्छ वस्त्र मात्र पहर लेना भी धर्म नहीं अधर्म है। उस दृष्टि से गृहस्थ न करके सन्यास ले लेना भी धर्म नहीं-अधर्म ही है। गृहस्थ करके सन्यास न लेना भी धर्म नहीं, अधर्म ही है। वह दृष्टि बड़ी व्यापक दृष्टि है। उस दृष्टि में सब दृष्टियों का मेल तथा सब बिरोधों का परिहार है। वही दृष्टि वास्तविक दृष्टि है। उसी दृष्टि से भारतीय विचार का तत्व समझ में आसकता है अन्यथा नहीं॥

——:*:——

उपसंहार

जिस तरह की क्रमबद्ध (Systematic) दर्शन प्रणाली हमें भारतवर्ष में दिखाई देती है वैसी भूतल में अन्य कहीं नहीं दीखती। जैसा छः दर्शनों का 'विचार परम्परा' सम्बन्ध है वैसा सम्बन्ध हमें पाश्चात्य दर्शन में नहीं दीख पड़ता। वहां केवल ऐतिहासिक सम्बन्ध है-अतः जिन पुस्तकों में पाश्चात्य दर्शन को क्रम-बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है उनका नाम 'History of Philosophy ही है-Connection of Philosophy' नहीं। भारत की 'विचार प्रणाली सब सम्बद्ध हैं। न्याय के अनन्तर सांख्य फिर योग, फिर वेदान्त इस तरह का क्रम बना हुआ है। इन में परस्पर बिरोध भाव नहीं-परन्तु परस्परापेक्ष भाव है। इसीलिए कृष्ण भगवान् कहते हैं:—

'सांख्य योगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः

ये भारतीय तथा पाश्चात्य तर्क और विचार प्रणाली में मोटे २ पारस्परिक भेद हैं जिन्हें इस छोटे २ निबन्ध में बन्द करने का प्रयत्न किया गया है उपनिषद् ने इन सब भावों को एक अत्यन्त सुन्दर वाक्य में भर दिया है:-

न साम्परायः प्रतिभाति बालं,
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी,
पुनः पुनर्वशं मा पद्यते मे॥

॥ इत्योम्॥

——:*:——

तेरे ही घर पर

लेखक श्रीयुत बंशीधर विद्यालंकार ।

१. छाई है घोर घटा घन की,
कैसी है नीरवता वन की ।
बस चारों ओर अंधेरा है,
किस विपदा ने आघेरा है ॥
चुप्पी में कौन पुकार रहा,
यह कान नहीं, है हृदय सुनता ।
किस ओर को पैर उठाऊं मैं,
किस तौर से तुझ तक आऊं मैं ।
तू छिपा कहां पर रहता है,
दिल घबराकर यों कहता है ।
मैं किसी तरह से जा निकलूं,
तेरे ही घर पर आ निकलूं ॥

---

२. पूछूं मैं राह यहां किससे,
हैं सारे ही जब भटक रहे ।
कोई भी नहीं सहारा है,
जाना है कहां किनारा है ।
दीपक सा कौन दिखाता है,
आंखें नहिं हृदय बताता है ।
किस ओर को पैर उठाऊं मैं,
किस तौर से तुझतक आऊं मैं ।
तू छिपा कहां पर रहता है,
दिल घबराकर यों कहता है ।
मैं किसी तरह से जा निकलूं
तेरे ही घर पर आ निकलूं ।

---

३. पग पग पर ठोकर खाता हूँ,
नहिं फिर भी होश में आता हूँ ।
झाड़ों में उलझा जाता हूँ,
क्यों आया हूं, क्यों जाता हूँ ।
धीरज यह कौन बंधाता है,
यों मुझे चलाता जाता है ।
किस ओर को पैर उठाऊं मैं ।
किस तौर से तुझ तक आऊं मैं ।
तू छिपा कहां पर रहता है,
दिल घबराकर यों कहता है ।
मैं किसी तरह से आ निकलूं,
तेरे ही घर पर आ निकलूं ।

---

४. जीवन की बातें भूल गईं,
आंखों में आंसू छोड़ गईं ।
क्या दुःख निशा यह आई है,
जाती ही नहीं बिताई है ।
यह कौन अकेला आता है,
झांकी दिखला छुप जाता है ।
किस ओर को पैर उठाऊं मैं,
किस तौर से तुझ तक आऊं मैं
तू छिपा कहां पर रहता है,
दिल घबराकर यों कहता है ।
मैं किसी तरह से जा निकलूं,
तेरे ही घर पर आ निकलूं ।

---

५. मैं तेरा हूं तू मेरा है ।
कैसा यह प्रेम घनेरा है ।
पर्दों में तू छिप कर आता,
मुझ से कैसे जाना जाता ।
तड़पा अब और न तू आजा,
अपना रस्ता बतलाता जा ।
किस ओर को पैर उठाऊं मैं ।
किस तौर से तुझ तक जाऊं मैं ।
तू छिपा कहां पर रहता है,
दिल घबराकर यों कहता है ।
मैं किसी तरह से जा निकलूं,
तेरे ही घर पर आ निकलूं ।

स्त्रियों के अपमान से समाज की हानि

लेखिका--श्रीमती राजरानी देवी विशारदा

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

"जहां स्त्रियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है वहां देवताओं का वास होता है और जहां उनकी पूजा नहीं होती वहां सब क्रियायें निष्फल होती हैं।"

ऐसा मनु भगवान का कहना है। अब आइये ज़रा अपने ग्रन्थों का निरीक्षण करें कि यह बात कहांतक ठीक है। पहिले रामायण में देखियेः—

१. राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों ने शूर्पनखाके नाक कान काट कर उसे अपमानित किया, जिस का दंड रामचन्द्र जी को पत्नी वियोग और बन २ भटकने द्वारा मिला और उन्हें इतना बड़ा युद्ध करना पड़ा। यह नहीं कहा जा सक्ता कि इस युद्ध से रावण की ही हानि हुई, रामचन्द्र जी की नहीं, दोनों पक्षवालों की ही हानि युद्ध में हुआ करती है।

२. लक्ष्मण जी शक्तिवाण द्वारा युद्ध में अपने प्राण गंवा ही चुके थे। वीर हनुमान और सुषेण-वैद्य के परिश्रम से किसी प्रकार बच गये।

३. रावण ने सीता जी का हरण करके उन्हें बहुत प्रकार से दुःखी किया था उस को भी कुलक्षय, पराजय तथा स्वमृत्यु द्वारा दंडित होना पड़ा।

४. बालिने सुग्रीव की स्त्री को छीन कर उस पर अत्याचार किया, उस की भी यही दशा हुई।

महाभारत मेंः—

५. कौरवों ने द्रौपदी का अपमान किया उनका भी नाश होगया।

भागवत मेंः—

६. कंस ने अपनी चचेरी बहिन देवकी पर अत्याचार किया, वह भी नाश को प्राप्त हो गया।

एक स्थान पर भगवान् मनु कहते हैंः—
"शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्"

जिस कुल में स्त्रियां दुःखी होकर शोक करती हैं वह कुल नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार भारतवासियों ने चाहे समय की स्थिति से मजबूर होकर ही स्त्री जाति को उसके अधिकारों से वंचित किया, लेकिन इसके दंड से वे भी न बच सके। जिस दिन से ऐसा होना आरम्भ हुआ उसी दिन से भारतवासियों की अवनति का श्रीगणेश हुआ।

यावनी अत्याचार के कारण पर्दे की प्रथा और बालविवाह की उत्पत्ति हुई, इन दोनों कारणों से शिक्षा की समाप्ति हो गई। कुछ स्वाभिमानी जातियों ने यवनों के कन्यायें छीनने के डरसे उन्हें पैदा होते ही मार डालना शुरू कर दिया। विधवायें समाज के वास्ते भार हुईं, इसी कारण सती की प्रथाने बल पकड़ा।

शिक्षा न होने के कारण स्त्रियों की योग्यता नष्ट हो गई। पुरुष जातिने उन्हें नफ़रत की निगाह से देखा और उनके पतन की कोई पर्वाह नहीं की। पिछले समय के बने हुए ग्रन्थों में स्त्रियों की निन्दा आप जगह २ देख सकते

हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी रामायण में एक स्थान पर लिखते हैं:—

ढोल गंवार पशू अरु नारी।
यह सब ताड़न के अधिकारी॥

चाणक्य नीति में लिखा है:—

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखीनां श्रृंगिणाम् तथा,
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषुच।

नदियों, शस्त्रधारियों, नखवालों, सींगवालों, स्त्रियों और राजकुलवालों का विश्वास नहीं करना चाहिये। लेकिन पता नहीं यह बातें कार्य में परिणत हुई या नहीं। यदि पुरुष स्त्री का विश्वास न करे तो उसका जीवन तो बड़ा कष्टमय हो जायगा, फिर वह स्त्री पत्नी नहीं बल्कि वास्तवमें दासीही रहेगी और ऐसी माताओं की सन्तान भी दास स्वभाव वाली ही होगी। और ऐसा ही हुआ भी। उत्साहहीन, तेजहीन और गुणहीन सन्तान पैदा होने लगी।

मनुस्मृति में लिखा है:—

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषारतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथास्वर्गः पितृणामात्मनश्चह॥

सन्तान, धर्मकार्य, सुश्रूषा, उत्तम रति तथा और अपने पितरों का सुख ये सब स्त्री के आधीन हैं। हम ज्यादःतर संसारमें देखते भी हैं कि जैसी माता होती है वैसी ही सन्तान उत्पन्न होती है। महावीर नैपोलियन की माता अपने पति के साथ युद्धमें जाया करती थी। नैपोलियन का जन्म भी युद्धक्षेत्र में ही हुआ था। उसके जन्म समय माता ने जो वस्त्र ओढ़ा हुआ था उस पर भी युद्धोंके चित्र अंकित थे। इन सब बातों का ही नतीजा था कि नैपोलियन ने समस्त यूरोप को हिला दिया था। युद्ध करना उस के वास्ते मामूली बात थी—युद्धक्षेत्र में बैठा हुआ देश के वास्ते कानून बनाया करता था—उसके सेना संचालन का ढंग अद्वितीय था।

मेवाड़ का इतिहास देखिये कि जिस समय सारा राजपूताना यवनों की हां में हां मिला रहा था और अपनी कन्यायें दे २ कर सन्तुष्ट कर रहा था उस समय एक छोटा सा प्रदेश मेवाड़ स्वाधीनता का उपभोग कर रहा था। उस का कौल था "है मान जब तक प्राण तब तक यह नहीं तो वह नहीं" चाहे कितनी ही मुसीबतों का सामना क्यों न करना पड़े परन्तु जीते जी पराधीनता स्वीकार नहीं करेंगे"। १२ वर्षके बालक बादलसिंह ने, जिस समय अलाउद्दीन ने पद्मिनी के वास्ते चित्तौरगढ़ पर चढ़ाई की थी। वह वीरता दिखलाई थी कि शत्रु भी वाह २ करते थे। इसी प्रकार वीर जयमल और पत्ता के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

महाराणा प्रतापसिंह २५ वर्षों तक जंगलों में भटकते रहे। उनको खाने के वास्ते अन्न की रोटियां भी प्राप्त नहीं होती थीं घास की रोटियां खाया करते थे, वे भी निश्चय के साथ नहीं। कई दफा ऐसे मौके होते थे कि दिन में चार २ मर्तबा तैयार रोटी यवन सेना के आजाने के कारण छोड़ देनी पड़ती थी। लेकिन इतनी विपत्तियां सहन करने पर भी मेवाड़ के किसी मनुष्य ने यवनों के सामने शिर झुकाना स्वीकार नहीं किया। इस का कारण क्या? मैं तो यही कहूंगी कि सबसे बड़ा कारण यही था कि "यहां की माताओं को स्वाधीनता से अगाध प्रेम था।"

जिस देश की स्त्रियां जिन्दा आग में जल कर—जौहर व्रत का अवलम्बन करके—और पुत्रों का यह कहकर युद्धक्षेत्र में भेजें कि "देखो बेटा! मेरी कोख को कलंकित मत करना या तो

विजयी होकर आना या वहीं मर जाना, भाग कर मत आना" वहां ही ऐसे स्वाधीनताप्रेमी पुरुष रत्न पैदा हो सकते हैं। आज कल की मातायें जो बच्चों को भूत प्रेतों से डराती हैं तभी तो कायर और "जीहजूर" कहने वाले बच्चे पैदा होते हैं। और उनसे देश को कोई लाभ नहीं होता।

लेकिन माताओं का क्या अपराध जब कि उन्हें शिक्षा ही नहीं मिलती। स्त्री और पुरुष गृहस्थीरूपी गाड़ी के दोपहिये हैं यदि दोनों समान योग्यता वाले नहीं तो उसका चलना मुशिकल हो जाता है। शिक्षा देने के वास्ते बड़ा आवश्यक है कि दहेज का प्रश्न हल कर दिया जाय ताकि वहधन जो कि विवाहमें खर्च किया जाताहै शिक्षामें व्यय किया जाय। मध्यम अवस्था के लोगों में इतनी शक्ति नहीं जो दोनों कामों में मनमाना खर्च कर सकें। हां धनी लोग ऐसा कर सकते हैं। लेकिन प्रथम तो उनकी संख्याही कितनी ? दूसरे इस ओर ध्यानभी कम है। शिक्षा के विषय में भी कालेजों की शिक्षा में इतनी शक्ति नहीं कि वह हमारी बहिनों को देश के उपयुक्त आदर्श सिखला सके। क्योंकि ज्यादःतर कालेजों से जो कन्यायें पढ़ कर निकलती हैं उनमें शौकीनी हद्द दर्जे की बढ़जाती है।

हां अगर गुरुकुलीय शिक्षा से काम लिया जाय और देश में उस का अधिक से अधिक प्रचार किया जाय, जगह २ कन्या गुरुकुल स्थापित किये जायं, तो अवश्य लाभ हो सकता है। लेकिन यह अधिकांश में जनता के ऊपर निर्भर है, यदि जनता पूर्ण रूप से सहायता करे तो वह कार्य कुछ कठिन नहीं। इस लिये यदि भारतवासियों की इच्छा उन्नति की है तो स्त्रियों का उस में योग देना बड़ा ज़रूरी है। इसके विना कोई भी आन्दोलन अधूरा है। इस लिये आवश्यक है कि स्त्रियों को शिक्षा देकर आत्माभिमानी बनाया जाय, उनका सत्कार किया जाय, तभी वैसी ही प्रजा उत्पन्न होगी।

अभागिनी।

लें०—"गुलाब"

किस पथ पर तू जायेगी ?
इस विशाल पृथ्वी के ऊपर पथ अनेक दिखलाते हैं।
कोई टेढ़े, कोई सीधे, सुगम-अगम हम पाते हैं॥
शान्ति कहाँ तू पायेगी ?
किस पथ पर तू जायेगी ??

क्या सुन्दरी बनेगी तू ?
यदि—हां, तो फिर अभी दिखादे प्रकृति देवी को तू ममता।
कलियों से या कुसुमित कुसुमों से चुनके तू सुन्दरता॥
किसमें रूप जनेगी तू ?
क्या सुन्दरी बनेगी तू ?

क्या शृङ्गार सजायेगी ?
दयामयी बन कर अरियों के तू चरणों को चूमेगी ?
या, रणचण्डी सी खप्पर ले रक्त पान को घूमेगी ?
भूलेगी कि भुलायेगी ?
क्या शृङ्गार सजायेगी ?

कौन चाहती तू रस है ?
विश्व गगन में काव्य चंद्रिका दिव्य छटा छहराती है।
अपनी मीठी किरणों से वह नित नव रस बरसाती है ॥
त्रिभुवन ही उसके बस है।
कौन चाहती तू रस है ?

तुझे कौन अभिलाषा है ?
ज्ञान चक्षुओं को तू खोले, पल्ला पकड़े वसुधा का।
वैभव भरे अनेकों इस में खींच वैभवों का ख़ाका ॥
किस वैभव की आशा है ?
तुझे कौन अभिलाषा है ?

कौन गीत तू गायेगी ?
कण्ठ रुद्ध है, तू उदास है, फिर भी तू मदमाती है।
बजती हैं छत्तीस रागिनी, कौन रागिनी भाती है ॥
सरि—गम किसे सुनायेगी ?
कौन गीत तू गायेगी ?

किस में समा जायगी तू ?
उथल पुथल कर मानस सर को तू पतनों में भावों में।
प्राणि मात्र में, या कि प्रेमियों के ही केवल प्राणों में ॥
किस में मुक्ति पायगी तू ?
किस में समा जायगी तू ?

विलायत यात्रा

लेखक—श्रीयुत् श्रीकृष्ण पांडे कलकत्ता

(१)


संध्या के करीब ५॥ या ६ बजे होंगे। मैं अपने मकान की छत पर खड़ा हुआ सूर्यास्तका प्राकृतिक दृश्य देख रहा था। भगवान् भास्कर धीरे धीरे अस्ताचल की ओर प्रस्थान कररहे थे। मैं देख रहा था कि जो आकाश मण्डल अभी थोड़ी देर पहले आग के अंगारे की तरह तेजोमय था, वही अब पीतवर्ण हो, स्वर्ण की तरह चमक रहा है। थोड़ी देर बाद देखा जहां सोने का सन्देह था वहीं अब तांबा नजर आरहा है। ओह! कितना बड़ा परिवर्तन है। अब अन्धकार ने भी प्रवेश करना शुरू कर दिया। मैं यह प्राकृतिक दृश्य देखने में इतना तन्मय था कि, मुझे अपने तन बदन की कुछ भी खबर नहीं थी। मैं अपनी धुन में मस्त था। इतने में ही किसी की पांवों की आहट ने मुझे

चौंका दिया-देखा एक व्यक्ति खड़ा है। मैं इसे नहीं जानता था—उसने मेरे हाथ में एक पत्र दिया, खोलकर पढ़ा, उस में लिखा था—

प्रियवर!

मैं अभी २ बाहरसे आया हूँ। आतेही मुझे दो दस्त और कै हुई। चित्त घबरा रहा है। स्नेह अकेली है। किसी डाक्टर को लेकर शीघ्र आओ। तुम्हारा

प्रताप

पत्रपढ़ते ही मैं चौंक पड़ा। अपने कमरे में आया। कपड़े पहन कर डाक्टर के यहां चला गया।

(२)

रात्रि के लगभग १० बजे होंगे। प्रताप रोग शैया पर पड़ा तड़फड़ा रहा है, सामने ही डाक्टर साहब बैठे हैं उनके पास ही १०-१२ सज्जन उदास बैठे हैं। सबों के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही हैं। कोई परमात्मा से प्रार्थना करता है। कोई दवाई पानी लाने में दौड़ धूप कर रहा है। लगातार ४ घंटे की चेष्टा के पश्चात् प्रताप को पिशाब हुआ। यह शुभ लक्षण देख कर डाक्टर साहब का चेहरा हर्ष से खिल गया। उनका प्रसन्न मुख देख कर हम लोगों के जी में जी आया। १५ मिनट में प्रताप ने ४ बार पेशाब किया। डाक्टर बाबू ने दवाई बदल दी। और रात भर के लिये औषधादि का प्रबन्ध कर चले गये।

(३)

दो दिन से प्रताप की तबीयत ठीक है। वह अपने कमरे में टहल सकता है। नाताकती दूर करने के लिये दवाई चल रही है। जब से प्रताप को हैजा हुआ, तब से मैं प्रताप के यहां ही सोता हूं, तथा यहीं खाता पीता भी हूं। यहां मैं अपना तथा प्रताप का कुछ परिचय दे देना उचित समझता हूं।

प्रताप और मैं दोनों एक साथ कालेज में पढ़ते थे। मैं B. A पास करके विलायत चला गया और प्रताप यहां ही पढ़ता रहा है। मेरे साथ ही साथ प्रताप की इच्छा भी विलायत जाने की थी, लेकिन छोटी बहन के रहने और कुछ अन्य कारणवश प्रताप की इच्छा पूरी नहीं हुई। मैं अपने घर में अकेला हूँ। मेरे माता पिता को मरे बहुत दिन हुए, वैसे ही प्रताप के भी कोई सिर धरू नहीं है। वह और केवल उसकी छोटी बहन स्नेहलता है। स्नेह का विवाह अभी तक नहीं हुआ। कारण-प्रताप जैसा शिक्षित युवक अपनी शिक्षिता बहन को केवल खाने पहनने में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझने वाले व्यक्ति को व्याहना नहीं चाहता। उसकी उत्कट इच्छा है कि स्नेहलता का विवाह किसी देश भक्त, शिक्षित युवक के साथ हो। लेकिन अभीतक उसके मनके अनुकूल कोई वर नहीं मिला। मैं जब विलायत गया था तब स्नेहलता १२ वर्ष की बालिका थी। मैंने मनमें समझा था कि स्नेहलता का विवाह होगया होगा। क्योंकि, बर्तमान समय में १२-१३ वर्ष की लड़कियों को अपने घर में रखना पाप समझा जाता है। सनातनधर्म के रक्षक पण्डितों ने बाल्यविवाह को ही धर्मसंगत बताया है। किंतु प्रतापने उस विचार शून्य अहितकर व्यवस्था देने वाले भंड पण्डितों की जरा भी परवाह न की। इस समय स्नेहलता लगभग १६ वर्ष की होगी।

स्नेह रूपवती तो है ही पर साथ ही साथ शिक्षिता भी है। उसके विचारपूर्ण लेख अक्सर मासिक पत्रों में निकला करते हैं, देश भक्ति के पवित्र भावों से उसका हृदय भरा हुआ है। उसकी इच्छा भी यही है कि वह किसी देशभक्त शिक्षित युवक को अपना हृदय दे। सम्भव है यही जानकर प्रताप ने उसका विवाह न किया होगा। जो हो-किसी

कारण से ही क्यों न हो, स्नेह अबतक कुंआरी है और जब तक उसके मन अनुकूल पति न मिलेगा वह कुंआरी ही रहेगी।

४

आज रात को प्रताप की तबीयत खूब स्वस्थ थी। मेरा बिछौना, प्रताप के बगल में ही बिछता है। मैं सोकर उठा—तब प्रताप सो रहा था, और स्नेह घर के काम काज में व्यग्र थी। मैं स्नेह से कहकर नहाने गया। करीब १॥ घंटे बाद जब मैं लौट कर आया तब प्रताप उठ गया था-और बिछौने पर ही एक तकिये के सहारे आधा लेट कर अखबार पढ़ रहा था।

प्रताप—आज तुम बहुत जल्दी उठ गये?

मैं—"हां आंख जल्दी खुलगई। तुम्हारी तबीयत कैसी है—?"

"अच्छी है" कहकर प्रताप ने स्नेह को जलपान लानेके लिये पुकारा। थोड़ी देर बाद ही दो रकाबियों में कुछ मिठाई और नमकीन चीजें लेकर स्नेह आई। और हमारे सामने रखकर खड़ी हो गई।

मैंने पूछाः—तुमने नाशता कर लिया?

स्नेह ने उत्तर दिया—"नहीं, अभी नहीं किया है। पहले आप लोग करलें पीछे मैं कर लूंगी।

मैं०—तुम भी यहीं ले आओ। तीनों जने एक साथ बैठ कर खायें।

स्नेह ने प्रताप की ओर देखा-प्रतापने भी मेरी बात का समर्थन किया। हम तीनों ने एक साथ बैठ कर जलपान किया। जलपान करने के बाद स्नेहलता चली गई। उसके जाने के बाद प्रताप ने कहा—

प्र०" मित्र! मैं तुमको किस मुंह से धन्यवाद दूं। तुमने मुझे जन्म भर के लिये अपना गुलाम बना लिया"

मैंः—बस २ रहने भी दो इसकी कोई जरूरत नहीं। ईश्वर की कृपा से तुम्हारी तबीयत अच्छी है यही मेरे लिये बड़ी खुशी की बात है।

प्र० "दोस्त मैं मुंह देखी बड़ाई नहीं करता बल्कि सच कहता हूँ कि मित्रता का ऐसा आदर्श आजकल बहुत कम दिखाई देता है। आजकल के मित्रों में स्वार्थपरता के भाव ही अधिक हैं। जान सभी देते हैं, पर जनाज़ा किसी का नहीं निकलता। पर तुमने अपने प्राणों की परवाह न कर मुझे जीवन दान दिया है। इसके लिये मैं आजन्म तुम्हारा ऋणी रहूँगा।

इतना कहते २ प्रताप की आंखों से आंसू बहने लगे। मैंने इतना अधीर होते इसे कभी नहीं देखा था। मैंने आश्चर्य से कहा "प्रताप आज तुम क्या कर रहे हो, मेरी कुछ समझ में नहीं आता"। प्रतापने मेरी बात सुनी अनसुनी करके फिर कहा-"भाई! इस सेवा का कोई पुरस्कार नहीं, लेकिन तौ भी मैं एक चीज भेट स्वरूप तुम्हें देना चाहता हूँ। बोलो स्वीकार करोगे?

मैं०—मेरे लिये यही पुरुष्कार काफ़ी है कि मैंने तुम्हें दुबारा पाया है। इससे बढ़कर मेरे लिये और क्या पुरस्कार हो सकता है?

प्रताप—'इन सब फालतू बातों से कुछ सरोकार नहीं। मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दो-मेरी भेट स्वीकार करोगे?

मैं०—भाई प्रताप। आजतक मैंने तुम्हारी कोई बात टाली है?

प्रताप०-नहीं इसका मुझे पूरा विश्वास है कि मैं जो कुछ कहूँगा तुम मानलोगे। पर पूछ लेनी अच्छा है-

अच्छी बात है—स्नेह—

"आई भैया!" स्नेह धीरे धीरे आकर हम दोनों के सामने खड़ी हो गई। प्रतापने उसका हाथ मेरे हाथ में देते हुए कहा "प्यारे! इस मित्रता को चिरस्थाई करने के लिये तुम्हारी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप इस वस्तु को भेट करता हूं...और आशा करता हूँ कि इस प्रतिमा को तुम अपने हृदय—सिंहासन पर विराजमान करोगे।"

यदि इस समय बिना बादल के बज्रपात भी होता तो भी शायद मैं नहीं चौंकता जितना प्रताप की इस काररवाही से मैं चौंका हूँ। मैं सोचने लगा यह क्या है! क्या यह स्वप्न है? नहीं यह तो प्रत्यक्ष घटना है। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि मेरी चिरवांछित आकांक्षा इतनी शीघ्र पूरी होगी। मैं सन्नाटे में आगया। चुप चाप बैठ कर सोचने लगा। मुझे चुप देख कर प्रतापने कहा—

"मैं समझता हूँ-जैसे आज तक तुम मेरी बात मानते आये हो, उसी प्रकार इस बात को भी मानोगे। मैंने कहा प्रताप! मैं तुम्हारी दी हुई इस अमूल्य भेट को अपने हृदय के उच्च सिंहासन पर प्रेम और भक्ति से बैठाऊंगा। लेकिन ...."

प्र०—"लेकिन ... क्या? कहो-चुप क्यों हो गये।"

मैं—"लेकिन जरा विचार कर देखो। यह बड़ी विकट समस्या है। मैं विलायत फिरता हूं जाति ने मुझे दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फैंक दिया है। एक जाति च्युत युवक के साथ अपनी बहिन का विवाह करने के पहिले इसके परिणाम को खूब सोचलो।"

प्रताप ने मुस्कराते हुए कहा कि—

"मैंने अच्छी तरह सोच समझ लिया है अब अधिक विचार ने की कुछ जरूरत नहीं इस कार्य के परिणाम के लिये मैं पहले से ही प्रस्तुत हूं। मैं जानता हूं कि मेरे इस कार्यको देख कर समाज पागल हो जायगी, वह मुझे जाति च्युत कर देगी। लेकिन क्या करूं अपने विचारों को तिलाञ्जिलि नहीं दे सकता। जान बूझ कर अपनी बहिन को अन्ध कूप में नहीं गिरा सकता। इस विवेकी समाज के अत्याचार के सामने अपना सिर नहीं झुका सकता। समाज ने विचार शक्ति से काम लेना छोड़ दिया है। वर्तमान समाज वास्तविक समाज नहीं वह धनवानों की गोष्ठी है। मैं इस गोष्ठी की परवाह नहीं करता। मैंने विचार लिया है कि अब चुप बैठने से काम नहीं चलेगा; समाज इस धनी गोष्ठीऔर पाखण्डी पण्डितों के कारण दिनों दिन कमजोर होती जा रही है। हम नवयुवक समाजके स्तम्भ हैं, इस डगमगाती हुई नांव के मांझी हैं। यदि हम अकर्मण्य होकर बैठ जायंगे, पाखण्डियों की मजलिस के अत्याचार के सामने अपना सिर झुकादेंगे तो, एक दिन संसार से "हिन्दू" शब्द ही उठ जायगा। मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं समाजके सामने सिर उठाऊंगा, मेरी इस धृष्टता के कारण समाज मुझे जाति च्युत कर देगी, मैं उसके निर्णय को न मानूंगा। वह मुझे किसी कार्य में शरीक न करेगी, मैं बे शर्म की तरह बिना बुलाये ही वहां पहुंच जाऊंगा। वह मुझे धक्का देकर निकालेगी परवाह नहीं, मैं सहन करूंगा वह मुझे जितना दूर करेगी, मैं उतना ही उसके समीप जाऊंगा, सत्याग्रह करूंगा, गला फाड़ २ कर सहृदयता की दुहाई दूंगा।

बस आज से मेरे कार्य का श्री गणेश हुआ देखूं सफलता प्राप्त होती है या नहीं"

इतना कहते २ प्रताप धड़ाम से बिस्तरे के ऊपर गिर गया। मैंने स्नेह की सहायता से उसे ठीक से सुलाया, और एक नौकर को डाक्टर के यहां भेजा।

थोड़ी देर में डाक्टर बाबू आगये, उन्होंने नाड़ी देखी, आँखें देखीं, कलेजे पर हाथ धरके देखा और ठंडी सांस लेकर सिर हिलाते हुए कहा कि:— 'कमजोरी की अवस्था में एक साथ खुशी और रंज होने के कारण हार्ट फेल होगया है।" इतना कहकर वह चले गये।

× × ×

मेरे ऊपर बिना बादल का वज्र गिर पड़ा। सिर पकड़ कर प्रताप के बगल में बैठ कर रोने लगा; उधर स्नेह "हाय! भैया!" कह कर बेहोश होकर गिर पड़ी मैं और भी विचलित हो गया। किसी तरह उसे होश में लाया...... ।

क्षण भर में ही बिजली की तरह प्रताप की मृत्यु की खबर समस्त मित्र मंडली में पहुंच गई। समाज के लोगों को भी इस मृत्यु का समाचार मिला, लोग ताज्जुब करने लगे, लोगों ने मुझे और स्नेह को समझाया, लाश को श्मशान घाट पर ले गये, वहां अग्नि संस्कार करके घर लौट आये। उसी दिन मैंने और स्नेह ने प्रताप की चिता के पास खड़े होकर प्रताप के कार्य को पूरा करने की प्रतिज्ञा की।

× × ×

हमने प्रताप की स्कीम के अनुसार काम शुरू कर दिया, ईश्वर की दया से हमारी शक्ति दिनों दिन बढ़ती ही गई। समाज का नवयुक दल पूर्ण रूप से हमारे साथ और हमारे कामों में हाथ बटा रहा है। कुछ अग्रगण्य व्यक्तियों ने भी हमारे साथ सहानुभूति प्रकट की, और हमें मदद देने का आश्वासन दिया।

इस प्रकार प्रताप का उठाया हुआ काम उसकी जिन्दगी में नहीं, उस की मृत्यु के बाद पूरा होगया। आज प्रताप की पवित्र आत्मा स्वर्ग से प्रसन्न चित्त हो हमारे कार्य का निरीक्षण कर रही है और आशीर्वाद देती है कि परमात्मा हमारा व्रत सफल करे।

—:—

बाबा बन्दा के जीवन की कुछ घटनायें।

लेखक-श्रीयुत स्वामी स्वतंत्रानंद जी महाराज

बाबा बन्दा सिख इतिहास में विशेष स्थान रखते हैं। यदि सिख इतिहास में से इन के काम को निकाल दिया जाय तो सन्देह ही नहीं निश्चित बात है कि सिखों की अवस्था अच्छी न होती। जहां सिख जाति का जन्मदाता गुरू गोविन्दसिंह हैं वहां इस जाति के पालन पोषण का काम बाबे बन्दे ने किया था। जैसे किसी बालक की माता किसी विशेष कार्य-वश अपने बालक से पृथक हो जाय और उस बालक को किसी धायी को सौंपा जाय, सिख जाति की वैसी ही दशा थी। जिस समय केशगढ़ में गुरु गोविंदसिंह जी ने अमृत छकाया, और पीछे कई युद्ध किये उन युद्धों के पश्चात् गुरू जी दक्षिण को चले गये उस समय सिखों का कोई नेता न था। उसी समय सौभाग्यवश गुरू जी को बाबा बन्दा मिल गया और गुरू जी ने खालसा पंथ बन्दे को सौंपा। ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने भी एक स्थान पर लिखा है कि "बन्दा रखवारा गुरू बनाया" अर्थात् गुरू जी ने बन्दे को रक्षक बनाया था। इसी वीर की जीवनी भाई परमानन्द जी ने लिखी है। इन से पूर्व भी इन के जीवन विषयक लेख मिलते हैं जिनके लेखक सब सिक्ख हैं। मुझे १०-बैशाख स० १९६१ वि० को बाबे बन्दे का देहरा (जो जम्मू से १८ कोस की दूरी पर चन्द्रभागा नदी के तट पर रियासी के मार्ग पर है) देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस समय इस के अधिष्ठाता बाबा अतरसिंह जी हैं। पूछने पर उन्होंने कुछ बातें बताई हैं, इस समय मैं केवल उन्हें ही लिख देना चाहता हूं।

उनसे पता लगा कि कई विषयों में उनका और सिखों का मतभेद है। सांप्रदाय की दृष्टि से मतभेद होना स्वाभाविक बात है। जैसे सिखों के नमस्कार के शब्द 'बोल वाह गुरूजी का खालसा श्री वाह गुरू जी की फते' हैं परन्तु बन्दई सिख "सच्चे साहब की फते" कहते हैं। मुझे इन मतभेदों से कोई प्रयोजन नहीं है, न मैं इन विषयों पर कुछ लिखूंगा। मैं जो कुछ लिखना चाहता हूं वह केवल बावे बन्दे की जीवन सम्बन्धी जो घटनाएं हैं। उनमें जहां २ उभय संप्रदायों का मतभेद है वही लिखना है और उस पर भी मैं इस समय कोई टिप्पणी न करूंगा। मुझे जैसा बताया गया है वैसा ही लिख दूंगा और जैसा सिख इतिहास में मिलता है साथ २ उसे भी लिखूंगा ताकि पाठकों को सोचने के लिये कठिनाई न हो।

(१) सिख इतिहास-जिस समय गुरु गोविन्दसिंह जी बावे बन्दे से नादेड़ में मिले और निश्चय होगया कि बाबा जी सिखों को साथ लेकर पंजाब में जावें और पंजाब के सिखों को गुरू जी ने आज्ञा पत्र भी लिखे, इस में बन्दे के साथ मिलकर मुसलमानों से बदला लो उस समय लिखा है जब गुरु गोविन्दसिंह जी ने बावे बन्दे को एक खण्डा दिया। सिखों ने वह खण्डा बावे बन्दे से छीन लिया और कहा इस खण्डे के लिये हमने परिश्रम किया और अनेक दुःख उठाए आज वह खण्डा तुझको क्यों दिया जाता है? जब सिखों ने खण्डा छीन लिया तब गुरुजी ने कहा अच्छा आपने अपनी वस्तु लेली। बन्दे को गुरू जी ने पांच तीर दिये (सिखों का विश्वास था कि खंडा गुरू जी को देवी ने दिया था जैसे शिवाजी के पास खड्ग थी वैसेही गुरू जी के पास यह खण्डा था 'हवनके पीछे गुरू जी ने सिखों को कहा भी यही था कि' देवी ने खण्डा दिया है और अंत तक कहीं नहीं लिखा कि गुरुजी ने इसके विपरीत कहा हो। इसी लिये सिख उस खण्डे को विशेष चाहते थे तभी वह बावे बन्दे से छीना गया।)

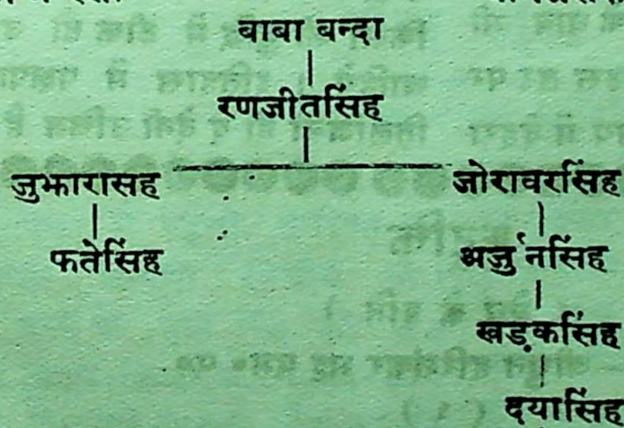
बंदई- बन्दई कहते हैं कि वह खण्डा जो गुरु गोविन्दसिंह जी ने बाबाजी को दिया था अन्तिम समय तक बावा जी के पास रहा और इस समय वह देहरे में है। और मुझे बाबा अतरसिंह जी ने दिखाया भी। वह खण्डा लगभग दो अंगुल चौड़ा और डेढ़ हाथ लम्बा है। उनका कथन है कि यही खंडा है जो गुरु गोविन्दसिंह जी ने दिया था और किसी सिख ने बाबा जी से छीना नहीं है।

(२) तत्व खालसा ने कई युद्धों के पश्चात् बाबा जी को अमृतसर में पृथक् कर दिया अर्थात् बंदा का साथ छोड़ दिया गया और उस समय के बादशाह के साथ जो संधि पत्र लिखा गया उसमें भी एक धारा में लिखा गया कि भविष्य में तत्व खालसा बन्दे का साथ न देगा। यदि बाबे बन्दे के साथ युद्ध हो तो तत्व खालसा बादशाह के साथ होगा और ऐसा ही हुआ।

सिख इतिहास- बन्दे से पृथक् होने में जो कारण सिख इतिहास में लिखे हैं वह मुख्यतया दो हैं (१) बन्दे का विवाह करना (२) बन्दे का गुरू बनना, इस विषय में सिखों का कथन है कि नादेड़ से चलते समय गुरु गोविन्दसिंह जी ने बन्दे को आज्ञा दी थी कि तुम कभी विवाह नहीं करोगे और तुम किसी को अपना शिष्य नहीं बनाओगे। बन्दे ने दोनों को तोड़ दिया इसलिये सिखों ने उसका साथ छोड़ दिया।

बंदई-बाबा अतरसिंह जी ने कहा--सिख इतिहास में भी लिखा है कि सरहिंद को पार

कर बाबा जी पर्वत में चले गए और सरहिंद का प्रांत सिखों को दे गए, उसी समय पर्वत में राजा चंबा की कन्या से बावे ने विवाह किया जिसे एक कन्या उत्पन्न हुई। यदि सिखों ने विवाह के कारण छोड़ना था तब उसी समय छोड़ना चाहिये था। उस विवाह के पश्चात् सिख सम्मिलित रहे। सम्मिलित ही नहीं किंतु बावे जी को ढूंढ़ कर लाये और उन सिखों को जिन्हें उस प्रांत से मुसलमानों ने निकाल दिया था बावे बन्दे ने युद्ध करके फिर मालवे का इलाका तथा दुआबा विस्त जालंधर जीत कर दिया और उधर गंगातक देश जीत कर दिया। इस लिये साथ छोड़ने के लिये विवाह कारण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त बंदइयों का पक्ष है कि गुरु गोविन्दसिंह जी से जब वह पृथक् हुए थे उस समय गुरू जी ने कहा था कि "मेरे चारों पुत्र आपके वंश में जन्म लगे आप विवाह करके अपना वंश चलावें" इसीलिये उन्होंने विवाह किया था और चंबा वाली देवी का देहान्त होजाने के पश्चात् बाबा जी ने वज़ीराबाद में फिर विवाह किया और उसी आज्ञा के अनुसार अपने पुत्र का नाम गुरू जी के पुत्रों में से रखा। इसीलिये हमारे पूर्वजों ने नाम इस क्रम में रखेः—



तेजासिंह, अतरसिंह, सुजानसिंह, सोहनसिंह

सिक्खों के साथ छोड़ने की दूसरी यह बात है कि बाबा बन्दा ने अपने सिख बनाये जिसके लिये गुरू जी ने उन्हें रोका था। इसमें बन्दई कहते हैं कि यह सर्वथा झूठ है जो यह कहा जाता है कि बाबा जी को सिख बनाने की आज्ञा न थी। प्रत्युत जिस समय नादेड़ से बाबा जी चले हैं उस समय सिखों को आज्ञा थी कि "बन्दे को मेरा रूप (गुरू गोविन्दसिंह जी अपना रूप कहते हैं) समझना"। जब बाबा को वह अपना रूप बताते हैं और गुरू जी सिख बनाते थे तो बाबा जी शिष्य क्यों न बनाते? जब श्रद्धालु उनकी शरण में आते थे और दीक्षा लेनी चाहते थे तो आवश्यक था कि उन श्रद्धालुओं को दीक्षा दी जाय। अतः बाबा जी ने दीक्षा दी और इस समय तक भी बन्दई अपनी परम्परा से दीक्षा देते हैं और इनके शिष्य सिन्धु, भावलपुर और मुलतान के समीप पर्याप्त सख्या में हैं और प्रत्येक प्रांत में मसन्द भी नियत हैं।

मैंने बाबा अतरसिंह जी से पूछाः—"इस बात में क्या प्रमाण है जो आप कहते हैं? क्योंकि इस समय तक किसी इतिहास में यह बातें नहीं लिखी हैं।" उन्होंने उत्तर दिया—"जो पांच सिख गुरू गोविन्दसिंह जी ने बाबा जी के साथ भेजे थे उनमें से एक मेहरसिंहनामी था जिसकी सन्तान अब तक है। वह ग्राम इभ-कलां ज़िला झंग का रहने वाला था हमारे पितामहादि ने यह बातें उस से सुनी

और हमने अपने पूर्वजों से सुनी हैं, इस लिये यही प्रमाण है।" और उन्होंने यह भी कहा जिस समय ज्ञानसिंह जी ने पन्थ प्रकाश में वह बातें लिखी थीं उस समय उन के पिता दयासिंह ने ज्ञानी जी को इस विषय का पत्र भी लिखा था। तब ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने उन से क्षमा मांगी थी और कहा था आगामी आवृत्ति में मैं इन बातों को ठीक कर दूंगा। किन्तु शोक है ज्ञान सिंह जी ने अपने वचन को पूरा नहीं किया। और अतरसिंह जी कहते हैं वह क्षमा मांगने वाला पत्र उन के पास इस समय तक विद्यमान है।

(३) इस लोक से सिधारने के विषय में इतिहास में दो पक्ष हैं। (क) देहली में कष्ट देकर अन्त में हस्ति के पग से बांध कर मार्ग में खैंच कर उन का प्राण पखेरू बलात्कार शरीर से उड़ा दिया गया। (ख) उपरोक्त अवस्था में उनका शरीर यमुना तट पर फैंका गया और बाबा जी उस समय समाधिस्थ थे शरीर घायल था तौ भी प्राण मस्तिष्क में विराजमान थे। सिखों ने शरीर को उठाया और माझा में भुच्चो ग्राम में ले आये। वहां आ कर बाबा जी समाधि से उठे और कुछ समय के पीछे शरीर के घाव भी भर गये तब बाबाजी चन्द्रभागा के उस तट पर आगये जिस स्थान पर वर्तमान समय में देहरा है। पश्चात् आजीवन यहां ही रहे और इसी स्थान पर बाबा बन्दा ने शरीर छोड़ा।

बंदई सिक्ख इस दूसरे पक्ष को मानते हैं और शरीर पात की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला १४ संवत् १७९८ विक्रमी बताते हैं।

देहरे में एक ग्रन्थसाहिब की पुस्तक है जिस के अन्त में १० गुरुओं और बाबा बन्दा तथा उनके पुत्र पौत्रों के शरीर छोड़ने की तिथि अंकित हैं उसमें भी बाबाजी की तिथि उपरोक्तही है। कुछ छोटी २ और बातें भी हैं जिनमें बंदई सिक्खों का मतभेद है परन्तु उनके उल्लेखकी इस स्थान पर कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। जिनका इतिहास से विशेष सम्बन्ध था और जिन घटनाओं का अन्य सिक्खों से संबंध भी है इस स्थान पर उन्ही का वर्णन किया है। भविष्य में यदि कोई महानुभाव बाबा बन्दे की जीवनी लिखने का प्रयत्न करें तो उन्हें इन बातों पर अवश्य विचार कर लेना चाहिये और यदि कोई सज्जन सिख इतिहास भी लिखें तो जिन घटनाओं से बाबे बन्दे का सम्बन्ध है, उन में से भी जो सिखों के मत भेद के स्थान हैं उन पर इतिहास की दृष्टि से अवश्य विचार कर लेना चाहिये ताकि किसी के साथ अन्याय न हो। उभय पक्ष सामने रखकर जो बात किसी की बुद्धि में ठीक हो उसी को लिखना चाहिये। इतिहास में पक्षपात को सर्वथा तिलांजली ही दे देनी उचित है।

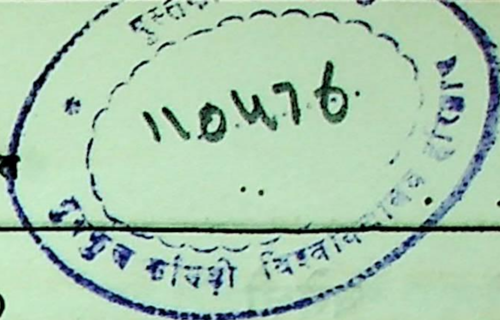
कटूक्ति

(मेघ के प्रति)

लेखक—श्रीयुत हरिशंकर भट्ट एम• ए•

(१)

विमल व्योम में अन्ध, दर्प से यों फिरता है।
जैसे कुछ सम्बन्ध, नहीं भू से धरता है।
पर क्या है कुछ ध्यान, कहां यह रंग बढ़ा है।
जिसका है अभिमान, और तू गगन चढ़ा है।



(२)

है जिसने उपकार, किया तेरा जल देकर ।
उसका ही अपकार, और तुझ से ही जलधर !
ऐसा कुत्सित कर्म्म, नीर मैला करता है ।
उसके प्रति यह धर्म्म, उदर जिससे भरता है ?

(३)

बना जलाशय शुष्क, और जल गिरि पर गिरता ।
पी पी रटता उदक, हेतु चातक है मरता ।
जिसको तुझ से आश, उसी को तू छलता है ।
कर दीनों का नाश, मौज नभ में करता है ।

(४)

ऊपर से यह शान, कि जल--बटवारा करते ।
औ इस पर अभिमान, कि जग-निपटारा करते ।
लेकर केवल अर्थ-शास्त्र का मूढ़ ! सहारा ।
करता साधन स्वार्थ, कहां का जल बटवारा ।

(५)

है दीनों की आह, कहीं बिजली से बढ़कर ।
करती विश्व तबाह, स्वयं ऊपर को चढ़कर ।
अब भी चेतो रंग, नहीं मिट घन ! जावेगा ।
जब आहों के संग, आसमां तन जावेगा ।

पँच मेल

[ले०—"एक तुक्कड़"]

कुछ लड़कियां खेलते खेलते एक वाटिका में पहुंची, वाटिका की शोभा अत्यन्त रमणीय थी। उस में तरह तरह के वृक्ष लग रहे थे। किसी का फूल लाल–किसी का सफेद और किसी का पीला दिल को आनन्द और मन को प्रफुल्लित कर रहा था। धर्मदेवी ने ज्ञानदेवी से कहा–"बहन तुम तो बाग़ देखो मैं ज़रा कुछ चिन्तन कर लूं। किसी गूढ़ से गूढ़ विषय को सुलझाने के लिए एकान्त और मनोरम स्थान से बढ़कर कोई दूसरी जगह नहीं। धर्म और ज्ञान दोनों देवियां पृथक् पृथक् हो गईं, ज्ञानदेवी घूम घूम कर बाग़ देखने लगी। जिस जगह जाती, जिस वृक्ष को देखती, उसी से कुछ न कुछ बातें करती रहती थी। उसने बातें तो कीं बहुत से पेड़ों से–पौधों से–फूल और पत्तों से पर यहां सिर्फ पांच वृक्षों का वृत्तान्त उसी की ज़बान से सुनाता हूं।

चमेली

कहो चमेली क्या है हाल।
अजब अनोखी तेरी चाल।
जब बसंत वन माली आता।
तुममें एक फूल नहिं पाता।
अपने मन से फूल दिखाती।
फूलों से सब अंग सजाती।
भीनी भीनी भली सुगंध।
कर देती भौंरों को अंध।
वे दिन रात गूंजते रहते।
रस पी पी कर तुम से कहते।
"लम्बी लता चमेली छोटी।
भौंरों को करती है मोटी"।
जब तुम हंसती मन हर लेती।
तुरत हमें वश में कर लेती।
छुट्टी दो देखूंगी बाग।
धन्य धन्य हैं मेरे भाग।
पूरन करो जगत का काम।
लीजे मेरा प्रेम 'प्रणाम'॥

—:*:—

बेला

भाई बेला मुंह तो खोलो।
हुआ सबेरा कुछ तो बोलो।
भौंरों से क्यों डरते भाई।
कालों से नित करो मिताई।
वे चाहक हैं रस के नित्य।
पै तन को भी गनै अनित्य।
हाँ चुप रहने की जो बात।
समझ लिया सुन लीजे तात।
माली ने कलियों को तोड़ा।
और तुम्हारे दिल को तोड़ा।
दे आया 'नन्दू' को काल।
इसीलिये यह तेरा हाल।
तो क्यों करते हो अब चिंता।
सुनलो मेरी मेरे मित्रा।
स्वारथ में भूला संसार।
ईश्वर को भज बारम्बार।
उस की महिमा अपरम्पार।
लेहु 'नमस्ते' करो विचार।

—:*:—

गुलाब

कैसा सुन्दर बढ़िया फूल।
मन करता अपने अनुकूल।
अजब लालिमा सुख बरसाती।
बाल काल--रवि--याद दिलाती।
तन में कांटों की भरमार।
पर पर--सेवा यही विचार।
आंखें देख अनन्द मनाती।
इक टक देखें नहीं अघाती।
कली भली सुन्दर सुखदाई।
मन को मोहचित्त ललचाई।
बागों में है सुख उपजाती।
छोटे बड़े सभी को भाती।
तुम गुलाब फूलों के राजा।
तुझे चूम लूं आजा, आजा
मक्खी--भौंरे--कीड़े सारे।
तुम को लगते सब से प्यारे।
तजी लालिमा भये सफेद।
खोल दिया सब दिल का भेद।
मत छोड़ो तुम अपना रंग।
करो भारतीयों का संग।
पच्छिम से फूल जो आते।
गंधहीन मन में नहिं भाते।
याते पूरब ही को रहना।
मानो सखा हमारा कहना।
जाती हूं होती है देर।
देखो हमें बुलाता बेर।

—:*:—

बेर

मीठा खट्टा फल हूं खाती।
बेर बेर हूं बेर मंगाती।
बाहर सुन्दर मोहन रूप।
चिकना सुथरा अजब अनूप
पै भीतर गुठली भरपूर।
कपट कलेवर कैसा क्रूर।
बाहर का देखे जो ढंग।
उस पर चढ़ जाता है रंग।
जो दिल के चाहक हैं भाई।
उन को 'गुठली' कभी न भाई।
तन कांटो से भरा हुआ हो।
पै मन में सुख धरा हुआ हो।
तब हो जाता है कल्यान।
नहीं होत नित हित की हान।
दिल से खोटी बात निकालो।
कपट-छद्म-छल सभी हटालो।
तब तेरा होवेगा मान।
सच्ची बात हमारी जान।

—:*:—

केला

चिकना सुन्दर अच्छा देह।
तुम से बरबस होता नेह।
बड़े बड़े पत्ते अनमोल।
नर्म मर्म रखते नित खोल।
फूल फूलते पर के काज।
देते फल सुन्दर सब साज।
फल भी बड़े हृदय के साफ़।
मोटी--रखते सदा लिहाफ़।
शीतल-मधुर रसीला आप।
पै कदली को है इक शाप।
एक साल के बाद विलाय।
झूमि झूमि अतिशय दुख पाय।
रंग रूप का तजो घमंड।
नहीं मिलेगा सब को दंड।
वैभव मिले रखो नित शील।
बनो न प्यारे कभी हठील।
सब से प्रेम करो सब काल।
इससे सुख मिलता हरहाल।
एक बड़ी चिन्ता है मोंहि।
कदली आज सुनावें तोंहि।

निर्बल को दुख देत हैं, बली बिना अपराध।
समुझत हियमंह होत है, चिंता नित्य अगाध।
गज कदली की ताक में, रहता है दिन रात।
तन मरोड़ दुख देत है, सुनत न कोई बात।
प्रभु सों यह कर जोड़के, विनती बार हजार।
नाथ दया करि देखिए, हरिये दुःख अपार।

इधर तो ज्ञानदेवी बाग़ के फूल और वृक्षों से बातें कर रही थी उधर धर्मदेवी अपने आसन से उठकर ज्ञानदेवी को पुकारती बाग़ में उसे ढूंढ़ने लगी। थोड़ी ही दूर जाने पर ज्ञानदेवी मिल गयी—तब दोनों मिलकर साथ साथ घर चली आई। रास्ते में अपनी 'पंचमेल' वार्ता का वृत्तान्त ज्ञानदेवी ने धर्म्मदेवी को सुनाया।



वैज्ञानिक संसार

१. कपूर के तेल का टीका।

जिस समय मनुष्य की शारीरिक अवस्था गिर रही हो और मृत्यु का भय हो कपूर के तेल का टीका बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। डाक्टर शिलिंग ने ४५ रोगियों पर इस को आज़माया और चार के अतिरिक्त सब को लाभ पहुंचा। सब से आश्चर्य जनक लाभ एक लड़की को हुआ जो कि कई घन्टे तक कोयले की गैस से भरे हुये वायुमण्डल में पड़ी रही और इस टीके के ३ मिनट बाद उसने आंखें खोल दीं, उठ कर बैठ गयी और बातें करने लगी। जिन चार रोगियों पर उन्हें असफलता हुई उनमें से दो ने अफीम खा ली थी और दो गैस से बेहोश हो गये थे।

२. पीतल के बर्तनों के लाभ

हमारे देश में सबज़ी भाजी दाल इत्यादि पकाने, दूध उबालने तथा अन्य कई प्रकार की क्रियाओं में अधिकांश पीतल के बर्तन काम में लाये जाते हैं, परन्तु योरोपियन सभ्यता के साथ २ इन का रिवाज कम पड़ता जाता है, और अब हमारे घरों में चीनी से मढ़े लोहे की चादर के बर्तन (enamelled) तथा आल्युमिनियम और निकल के बर्तनों का बहुत प्रयोग होने लग पड़ा है। भोजन पकाने के बर्तन में यही गुण होना चाहिये कि यदि उस में कोई चीज़ पकाई जाय तो वह स्वयं घुल कर उसमें न मिल जाय। हैलसिंग फरज़ के म्युनिसिपल रसक्रिया भवन में डाक्टर जरविमन ने कई धातु की भिन्न २ पतीलियों में, सेर भर किशमिश को ३ घन्टे तक पानी में उबाल कर देखा। जहां लोहे के बर्तन से १५०० मिलिग्राम (१॥ माशे के लगभग) धातु घुल गई तांबे से ६५ मिलिग्राम, कलई से २७ निकल से ७६, अल्युमिनियम से १२० मिलिग्राम, वहां पीतलसे केवल २॥ मिलिग्राम (एक चावल के वज़न सेभी कहीं। कम) इन सबके मुकाबलेमें चीनी के बर्तन से ६००० मिलिग्राम (४॥ माशे के लगभग)। इस परीक्षा से सबको अचम्भा हुआ क्योंकि, चीनी के बर्तन पकाने के लिये सब से उत्तम समझे जाते थे।

३. स्त्री से पुरुष।

क्या स्त्री का पुरुष बन सकता है? यह प्रश्न हमारी बहिनों को कितना आनन्द देगा, चाहे इसका उत्तर संतोष-जनक नहीं हो। पुरुषों के अत्याचारों द्वारा पीड़ित, पादाक्रान्त और पददलित नारीहृदय यदि पुरुष बनने का सुख स्वप्न देखे तो इस में आश्चर्य ही क्या है? परन्तु शोक कि अभी तक विज्ञान भी उन की अभिलाषा को पूर्ण नहीं कर सका। स्त्री और पुरुष में सन्तान उत्पन्न करने के अंग में भिन्नता के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के गुणों में भिन्नता है। यह बात केवल मनुष्य जाति में ही नहीं वरन् अन्य पशु, पक्षी इत्यादि सभी में है। मुर्गाबी के सम्बन्ध में अभी इन्हीं दिनों तजुरुबे हुए हैं कि इस के शरीर से यदि एक अंग विशेष ओकाईट्स (oocytes) को निकाल उसकी वृद्धि को रोक दिया जाय तो उसकी शारीरिक क्रियाओं में ऐसा अन्तर पड़ जाता है कि मुर्गाबीमें स्त्रीलिंग विशेष गुणों के स्थान में कितने ही ऐसे गुण आजाते हैं जिससे कि वह पुल्लिंगवत् क्रिया करनी

आरम्भ कर देती है। अत्याचार पीड़ित भारत रमणी! क्या इस घोषणा से तुझे कुछ आश्वासन मिलता है?

४. लड़का या लड़की?

संसार में प्रत्येक प्राणी वर्ग—चाहे वह मनुष्य हों अथवा पशु, पक्षी हों, अथवा कीड़े मकोड़े—में देखा जाता है कि स्त्री और पुरुष, गाय और बैल, चिड़ा और चिड़िया, साँप और साँपिन दोनों नर और मादा का जोड़ा विद्यमान है। यह क्यों? क्या सन्तान उत्पत्ति का कार्य केवल नर द्वारा अथवा केवल मादा ही द्वारा नहीं हो सकता था, यदि इनके शरीर में कुछ परिवर्तन कर दिया होता? इन दो शरीरों और दो आत्माओं की सन्तान उत्पन्न करने के लिये क्यों आवश्यकता है? यह एक पहेली है जिस का अभी तक विज्ञान को कोई उत्तर नहीं मिला। इसके साथ २ एक प्रश्न और भी है जिसका कुछ २ उत्तर हमें विज्ञान द्वारा मिलता है। यह तो स्वयं सिद्ध है कि सन्तान उत्पत्ति के लिये स्त्री पुरुष जोड़े के मिलाप की आवश्यकता है ही परन्तु इस मिलाप में ऐसी कौनसी बात होती है जो कि यह निर्णय करती है कि सन्तान नर होगी अथवा मादा, लड़का होगा अथवा लड़की? कई विद्वानों का कथन है कि पुष्टिकारक भोजन इसको निर्णय करता है। माता अथवा पिता जो उत्तम भोजन कर अपने शरीर को बलवान् बनावेगा उसी के लिंग की सन्तान होगी। परन्तु यह ऐसा नहीं है। इसका कारण और ही है। हम उदाहरण के लिये मनुष्य शरीर को ही लेते हैं। मनुष्य जाति में पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज के मिलाप से ही सन्तान होती है। वीर्य में और रज में दो भिन्न २ प्रकार के Cell अथवा कोष होते हैं। वास्तव में इनके मिलाप से ही सन्तान होती है। पुरुष के इस Cell को स्परमैटोज़न Spermatozoon कहते हैं और स्त्री के Cell को Ovum ओवुम कहते हैं। सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र द्वारा यह देखा गया है कि पुरुष के यह 'जीवधारी' Cells बड़ी तेजी और फुरती से इधर उधर घूमते हैं और स्त्री के Ova इन के मुकाबिले में बड़े सुस्त होते हैं? एक और बात देखी गयी है कि जहाँ पुरुष के Spermatoza दो प्रकार के दिखलाई देते हैं वहां स्त्री के Ova एक ही प्रकार के होते हैं यही लड़के व लड़की के पैदा होने का कारण है। यदि एक प्रकार का Spermetozoon (स्परमैटोज़ून) Ovum ओवम से मिलता है तो लड़का पैदा होगा और यदि दूसरी प्रकार का मिलेगा तो लड़की।

एक समय में एक प्रकार का स्परमैटोज़ून मिलता है और दूसरे में दूसरा, यह क्यों? एक ही प्रकार का स्परमैटोज़ून सदा ही ओवम से क्यों नहीं मिलता या इच्छा पर कभी एक मिले और कभी दूसरा, इसका अभी विज्ञान के पास कोई उत्तर नहीं। जिस समय इस प्रश्न का उत्तर पता चल गया तो लड़का व लड़की - जो भी चाहें, उत्पन्न करना माता पिता के अपने आधीन हो जायगा। (डाक्टर गोल्ड स्मिथ की 'लिंग निर्णय" नामक पुस्तक से)

५. सूर्य का प्रकाश।

सम्भवतया टैक्स या कर अच्छे ही होते हैं; परन्तु बुरे कर भी अवश्य ही होते हैं और इन सबसे बढ़कर बुरों की गिनती में वह हानिकारक खिड़की का टैक्स था जो कि इंगलैण्ड में १६९७ से १८५१ तक लगा रहा। इसके कारण लोगों ने अपने गृहों में बाहर गली की ओर खिड़कियाँ रखना छोड़ दिया, वरन् पहली रखी हुई खिड़कियाँ भी बन्द कर दीं। अतः हमें समस्त देश में ईंटों से चुनी हुई खिड़कियों के

चिन्ह अब तक दिखलाई पड़ते हैं। इस कर का यदि कोई लाभ हुआ तो इतना ही कि इसने इंग्लैण्ड के महामन्त्री पिट्ट को एक सिद्धान्त गढ़ने का मौका दिया-"प्रकाश से भी थोड़ा सा लाभ"। यह हमें आजकल ही पता लगने लगा है कि सूर्य्य का प्रकाश मनुष्य के कल्याण के लिये कितना आवश्यक है। अभी भी हम ने इस विषय सम्बन्धी आधुनिक खोज का महत्व ठीक २ नहीं समझा। देश में हज़ारों गृह ऐसे हैं जहां संध्या समय के प्रकाश को ही दिन समझा जाता है। इसी लिये वह सर्वथा निवास के अयोग्य हैं। बड़े २ नगरों में भी निचली मञ्जिलों का बुरा हाल है। तो भी हम फ्रान्स से उत्तम अवस्था में हैं जहां कि अब भी खिड़कियों पर कर लगाया जाता है।

यह सब ही जानते हैं कि समस्त प्राणिवर्ग अपने जीवन के लिये बनस्पति पर निर्भर हैं और बनस्पति में शक्ति का आधार सूर्य है। परन्तु इतना नहीं पता कि प्राणियों को सूर्य के प्रकाश की इस से कहीं बढ़कर आवश्यकता है। बच्चों को एक प्रकार का रोग हो जाता है जिसको Rickets कहते हैं। इससे वह दुबले पड़ जाते हैं और उनके शरीर की हड्डियां भी टेढ़ी पड़ जाती हैं। यह पता लगा है कि भोजन का सुप्रबन्ध इस रोग को दूर भगाने में बड़ा साधक है। ताज़ा, चिकनाहट वाला भोजन इसको अच्छा करने और रोकने दोनोंमें समर्थ है, लेकिन यह देखा गया है कि कुत्ते के पिल्लों को उत्तम भोजन मिलते हुए भी अन्धेरे और गन्दे घरों में रहने के कारण यह रोग हो जाता है। इससे यह अनुमान करना युक्तिसंगत है कि सूर्य का प्रकाश और खुली हवा इस रोग को अच्छा कर सकते हैं। वास्तव में यह ऐसा ही है। परन्तु आधुनिक अनुसन्धान हमें इस से भी आगे ले जाता है। सूर्य का प्रकाश सात रंगों से मिल कर बना है। एक सिरे पर लाल और दूसरेपर जामुनी रहता है। जामुनीसे परे भी प्रकाश की रश्मी होती है जो हमारी आँखों को दिखलाई नहीं देती। एक प्रकार का बिजलीका लैम्प होता है जिसमें प्रकाश पारे के बाष्प में से पैदा किया जाता है। इस जामुनी रंग से ऊपर वाले प्रकाश की रश्मियों द्वारा चिकित्सा में लन्दन के हस्पतालों में बड़ी सफलता हुई है। बच्चे को नंगा करके इस प्रकाश में लिटा देते हैं और एक अन्य बिजली के लैम्प से उस के शरीर को गरम रखा जाता है। बच्चा थोड़े ही समय में श्याम वरण पड़ जाता है और बिल्कुल भला चंगा हो जाता है।

इस इलाज की विधि के अन्य कई विधान हैं। यह निश्चित है कि राजयक्ष्मा अन्धकार, बुभुक्षा और तंग गृहों में रहने का परिणाम है। प्रकाश और विशेष कर जामुनी से परे का प्रकाश इस रोग के जीवाणुओं का बड़ा भारी घातक है। स्विट्ज़रलैण्ड और इंग्लैण्ड में सूर्य के प्रकाश द्वारा इस रोग के इलाज की विधि की हस्पतालों में जामुनीपरे प्रकाश द्वारा नकल की जा सकती है। यह एक विचारणीय घटना है कि वह बच्चे जिनका रंग सूर्य के प्रकाश में श्याम नहीं पड़ता इस इलाज से कोई लाभ नहीं उठा सकते। इस इलाज से कई प्रकार के त्वचा और जोड़ों के रोगों को भी लाभ होता है। अभी इस पद्धति का आरम्भ ही है, तो भी मनुष्य समाज के लिये शिक्षा स्पष्ट है। जिस रोग को वास्तविक और कृत्रिम सूर्य प्रकाश अच्छा कर सकता है और उस के होने को भी रोक सकता है उसे भी मनुष्य रोक देता है। कानून द्वारा तंग, छोटे २ और अन्धेरे मकानों का बनाया जाना रोका जाना चाहिये। मनुष्य को खुली हवा और प्रकाश का अधिक से अधिक भाग मिल सके ऐसी सुविधा होनी चाहिये। यह प्रत्येक सभ्य सरकार का कर्तव्य है।

कुसुमोद्यान

पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

आगामी ३१ मई तथा १ जून १६२४ को मुलतान नगर में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन के निबन्धों तथा समस्याओं की सूची इस प्रकार है:—

प्रस्तावित निबन्धों की सूची।

(१) पंजाबी साहित्य का दिग्दर्शन। (२) पंजाब में प्रचलित लिपियां, (३) पंजाब और सिन्ध में प्रचलित लंडे अक्षर, (४) पंजाब की साहित्यिक भाषा और लिपि विषयक समस्या (५) पंजाब की अप्रकाशित हिन्दी कविता, (६) पंजाबी युवकोंका साहित्यिक जीवन, (७) पंजाबी स्त्रियों का साहित्यिक जीवन, (८) पंजाबी जन साधारण में प्रचलित साहित्य, (६) पंजाब के शिक्षणालयों में हिन्दी, (१०) पंजाब की साहित्यिक निर्जीवता, (११) पंजाबी बोलियों का दिग्दर्शन (१२) काश्मीरी बोलियों का दिग्दर्शन (१३) बिलोची बोलियां, (१४) पश्तो भाषा (१५) सिन्धी भाषा, (१६) टाकनीलिपि की विद्यमान स्थिति, (१७) राष्ट्रीय उन्नति में साहित्य का स्थान (१८) स्वराज्य और राष्ट्रभाषा, (१६) हरियाना प्रदेश में हिन्दी की स्थिति, (२०) आर्यसमाज और हिन्दी, (२१) राष्ट्रलिपि देवनागरी, (२२) हिन्दू धर्म के विकास में सिक्ख सम्प्रदाय का स्थान, (२३) श्री गुरु गोविन्दसिंह जी की कविता (२४) मुलतान का इतिहास (२५) जोहियों योधेयों का इतिहास।

—कवि सम्मेलन के लिए समस्यायें

(१) धार तलवार की (२) शीतलछाया (३) विशेष वृन्द—काट लिया

आशा है कि पंजाबी भाई और बहिनें इस में बहुसंख्यामें योग देकर भाषाकी उन्नति करने की चेष्टा करेंगे।

भारत के सुपुत्रों से अपील

हे भारत माता के सच्चे उद्धारक पुरुषो! सनातनधर्म मण्डल, भारतधर्म महामडल श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि सभाओं, आर्य प्रतिनिधि सर्वदेशिक सभा, श्रीमती आर्य-परोपकारिणी सभा, हिन्दू संगठन महासभा, भारत के प्रायः भद्र उपकारी, त्यागी, साधू, सन्यासी, ब्रह्मचारी, वैरागी महापुरुषो, तथा जाति सेवक सब संस्थाओं के संचालको! हम आपसे कर जोड़ कर भिक्षा मांगते हैं कि एक बार दया की दृष्टि आप लोग इधर करें। मोरिशस में भारत माता के २॥ लाख पुत्र अनैक्यता, लोकसेवा, तथा सार्वजनिक कार्य से रहित होकर निद्रा, भोजन, द्रव्योपार्जन तथा ऐश आराम में पड़कर बिना कुछ कार्य किये बड़ा होने का दावा करने तथा मिथ्याभिमानादि में पड़े हुए हैं। चीन जाति के लोगों ने यहां पर थोड़े होते हुए भी व्यापार, कार्य व्यवहार, कुशलता तथा स्वजाति संस्थाओं की जो उन्नति की है उसको देखकर हम २॥ लाख को शर्माना पड़ता है और जितनी चीन, जापान, फ्रैंच मुसलमानादि जातियां हैं सब से बुरी हालत भारतीयों की है। हिन्दू जाति की एक भी संस्था ऐसी नहीं कि जिस के द्वारा हिन्दूजाति अपने धर्म, गौरव तथा मातृभाषा की रक्षा करसके। मोरिशस में हिन्दू जाति में विद्वान् प्रतिष्ठित, धनाढ्य पुरुषों की कमी नहीं है, और न सरकार की तरफ से कोई ज़ोर जुल्महो है। न्याय हक, स्वतन्त्रता के लिये

तो मोरिशस मानो रामराज्य ही है। कमी है तो केवल हिन्दूजाति के सामाजिक सुधार संगठन की है। इसलिये भारतमाता के पुत्रों से प्रार्थना है कि एक धीर, बीर, विद्वान, परोपकारी जातिसेवक जो सभा संस्थापक कार्य में चतुर हो उसको कुछ काल के लिये मोरिशस में भेजें तो यहां के धर्माभिमानी पुरुषों को सुयोग्य बनाकर कोई एक उपयोगी संस्था स्थापित कर जाय। भारत माता की गोद से ही आकर माननीय बारिष्टर मणीलाल जी, हिन्दू यंगमेन सोसायटी तथा आर्यसमाज स्थापित कर गये, जिसके द्वारा बहुत कुछ उन्नति होरही है और डाक्टर भारद्वाज द्वारा आर्य परोपकारिणी सभा स्थापित हुई थी और पूज्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापन कर गये हैं, जो कि बहुत कुछ भलाई कर रही है।

जीवित जागृत जो कहो आर्य-समाज ही एक संस्था है जो यहां के लिये लाभकारी हो सकती थी, पर वह भी अब सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त हो रही है। इसलिये एक आर्य सन्यासी की बड़ी जरूरत है जो कि आकर मुर्झाई हुई वैदिक फुलवाड़ी को हरीभरी करदे।

हम प्रवासी भाइयों के परमहितैषी पं० बनारसीदास चतुर्वेदीजी का ध्यान भी इधर खींचना चाहते हैं और आग्रह करते हैं कि वह भी कृपा कर किसी योग्य विद्वान, साहसी, कर्तव्य-परायण पुरुष को भेजें जो आकर हिन्दू-संगठन महासभा स्थापित कर जाय। ऐसा होने पर हम लोग आपके चिरकाल तक ऋणी रहेंगे। यहां जो कुछ जातिहित के लिये कार्य हो रहा हैं वह सब साधारण गरीब भाइयों द्वारा ही हो रहा है। धनी, विद्वान, प्रतिष्ठित तो गरीब को इतनी तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, जिससे कहना पड़ता है कि इनसे तो युरोपियन सौ दर्जे अच्छे हैं। युरोपियनों के सहारे ही से हमारी जाति आज उन्नत अवस्था पर पहुंची है। युरोपियन लोग जिस भाई को "गुडमोर्निंग मिस्टर" कह कर विभूषित करते हैं, उस के साथ ही धनी, मानी, दानी भद्र पुरुष लोग शिष्ट वर्ताव करते हैं। परस्पर प्रेम और सहानुभूति नहीं है।

प्यारे सज्जनों! यह सब काम हमारी जातिका है न कि युरोपियनों का। इण्डियन टाईम्स पत्र जो बहुत से पुरुषों के चन्दे से जीवित हुवा है उसमें भी किसी की कुछ पूछ नहीं। लेखों के प्रकाशन में भी वही पक्षपात है कि "जिस की लाठी उसी की भैंस"!

यह अवस्था देख मोरिशस की हिन्दू प्रजा की भविष्य उन्नति यहां के स्वयं-सिद्ध नेताओं द्वारा कठिन ही नहीं वरन असम्भव सी मालूम पड़ती है। और स्पष्ट कहदेना पड़ता है कि यहां पर हिन्दू जाति की भलाई करने के रूप से कोई नेता नहीं है।

भारत माता का पुत्र यदि एक योग्य पुरुष विदा करें तो वह यहां के लक्षाधिपति तथा करोड़ाधिपतियों यथाः—पं० रामावतार तिवारी, म० पंचकौड़ी राउत (कां तुरेल) म० देवीदीन महतों (सेंजुलीरा) म० तिलकसिंह, म० धनपत लाला (क्यूर्याईप), म० कौलेशरसिंह, म० हः घुरणसिंह (रोजील) म० शिवशरण नोटेरी (कातवोर्न म० भजनसिंह, म० तिलक महतों (बोनाकेई) म० प्राणपत महतों, रामचरित्र पांडे, म० मंगर भगत (मोंताई-लोग) म० दुः गंगा (रोस्बेल) म० शीः लालणी, म० बरन चौबे (प्लेन-माया) पं० रा० सकल-दीप उपाध्याय (मोताई क्राश) म० नन्दूचन्द (तेरूज) मः चीखरी महतो (त्रीपोले) आदि तथा बहुत से अन्य धनी जो यहां हैं, इन से मिल कर अपने भाव पूर्ण उपदेशों द्वारा स

का एक संगठन कराकर परोपकार, जाति भलाई, स्वमर्यादा रक्षा, मातृभाषा पुनर्जीवन, तथा दानादि सार्वजनिक, शुभ कार्य करने में संलग्न करा जावे।

आज नेटाल, फीजी, अमेरीका आदि विदेशों में हिन्दूजाति के लोग उन्नति कर रहे हैं, यह भारतीय विद्वानों की कृपा का ही फल है। अगर नेटाल में श्री महात्मा गांधी, पं० भवानीदयाल जी, भाई परमानन्द जी आदि विद्वान् न गये होते तो नेटाल की हालत सुधरनी कठिन थी।

इस लिये विलम्ब नहीं करना चाहिये। "परोपकाराय सतां विभूतयः" का मंत्र जपने हारे महानुभाव पुरूषो! इधर शीघ्र पधार कर-अपने पवित्र चरणों से २॥ लाख हिन्दी प्रजा को पवित्र करो।

निवेदक—
स्वजाति हितैषी

वैदिक धर्म्म रक्षणी उपदेशक मण्डल

पं० अनिरुद्ध शर्म्मा	—	प्रधान
,, बाबूलाल ,,	—	मन्त्री
,, शिवशंकर ,,	—	कोषाध्यक्ष
,, काशीनाथजी ,,	—	परतालक
,, वासुदेव ,,	—	प्रतिष्ठित
बाबू गयासिंह	—	,,
,, शिवनरायणसिंह ,,	—	प्रधान आर्य-प्रतिनिधि सभा
म० रा: दीलचन्द	—	मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा
म० रघुनाथराय	—	प्रधान-आर्य-परोपकारिणी सभा
म० गु० दलजीत लाल	—	मन्त्री-आर्य परोपकारिणी सभा मोरिशस

हम ज्योति के पाठकों के सन्मुख विदेश से आये हुवे भावपूर्ण पत्र को रखते हैं, जिस से उन्हें अच्छी तरह ज्ञात हो जायगा कि भारत से बाहर भी हमारी जाति के सुधार की कितनी आवश्यकता है। इस समय देश का त्यागी, धर्मात्मा, परोपकारी, विद्वान् तथा कार्य्य कुशल नर नारियों की बड़ी भारी आवश्यकता है जो कि जहां २ रहते हों वहां २ ही हमारे भारतीय समाज की अन्दरूनी कमजोरियों को हटाते हुए उसके संगठन को ऐसा सुदृढ़ बनावें कि वह चाहे देश में हों चाहे विदेश में जायं—अपना आत्म-रक्षण और जाति की उन्नति करते हुए भारत माता का मुख उज्ज्वल और मस्तक ऊंचा रक्खें।

———

ज्योति के पाठक और पाठिकायें इधर ध्यान दें-

हिन्दू स्त्रियों पर जुल्म

इससे पहिले हिन्दू लड़कियों के जन्म और पालन पोषण का बयान किया गया है, फिर उनके विवाह हो जाने पर प्रायः जो दशा होती है, वह और भी शोचनीय है। कई देशों में यह रीति है, कि जब लड़के और लड़की का विवाह हो जावे, तो वह दोनों (समान प्रकार का महान् त्याग करते हुए) अपना नया घर आबाद करते हैं। परन्तु हिंदुस्तान में अकेले लड़की को ही अपना घर छोड़ना पड़ता है।

लड़के की शादी होने से पहिले प्रायः माता पिता बड़ी इच्छा प्रकट किया करते हैं कि किसी न किसीप्रकार हमारे लड़के का विवाह होजावे इस लिए वह अपने धन धान्य को साधारण जन में बढ़ चढ़ कर दिखलाने की कोशिश करते

रहते हैं। जब कोई सम्बंध नियत हो जाता है तो फिर विवाह की तैयारी में बहुत सी वस्तु इधर उधर से माँग कर एकत्र करते हैं और अपनी झूठी शोभा बढ़ा कर लड़की वाले के घर पहुंचते हैं, इन झूठे आडम्बरों के अतिरिक्त लड़की के लिए जो जेवर लाया जाता है वह भी बहुधा इधर उधर से मांगा हुआ होता है, जिसको बड़ी बेशर्मी के साथ थालों में चुनकर पंचायत के सामने लड़की को देते हैं। परन्तु जब विवाह होजाने पर लड़की ससुराल में आती है, तो वह झूठा ठाट सब बदल जाता है, तब प्रायः धीरे २ लड़की का जेवर कई बहाने से उतार लिया जाता है। यहां तक कि लड़की के अपने माता पिता के दिए हुए जेवर को भी प्रायः नहीं छोड़ते॥

इस प्रकार दिन दहाड़े स्त्री धन छीना जाता है। वह लड़की बेचारी बहुत दुःखी हो कर दिल ही दिल में तड़फती रहती है और उन सब बरातियों को, पंचों को, तथा पंडितों को भी जिन्होंने ऐसे झूठे दिखलावों में किसी प्रकार सहमत होकर हिस्सा लिया था, अपने दुःखी दिल से प्रायः शाप देने पर मज़बूर हो जाती है। यदि कोई मनुष्य इस बुरी रीति के विरुद्ध कोई आवाज़ उठाता भी है तो कई स्वार्थी निर्दई लोग कहने लग जाते हैं कि "जी गृहस्थ में यह सब काम करने ही पड़ते हैं" बड़ा शोक है, ऐसे अन्याई स्वार्थी लोगों पर जो विवाह जैसे श्रेष्ठ और बड़े ज़रूरी धर्म कार्यों में भी छल कपट को प्रचलित रखने में तनिक भी भय नहीं करते। और कई हेराफेरी की बातें करके ऐसे धर्म कार्यों में भी धोके और कपट की बातों को (गृहस्थ के कोमल शब्द द्वारा) छिपा रखने की कोशिश करते हैं।

अभी लड़के का विवाह हुए एक साल व्यतीत नहीं होने पाता, कि बहुधा लड़कों के माता पिता अपने दिल में यह संदेह उठा लेते हैं कि लड़का कहीं हमारे बस से निकल न जाये। तब वह अपनी उस चिंता को मिटाने के लिए कोई न कोई दोष या बुराई उस बेचारी निर्दोष लड़की पर योंही लगाते रहते हैं, ताकि पति का दिल उस बिचारी के विरुद्ध होजावे। सब सम्बन्धियों का मिलकर इकट्ठे रहना तो बुरा नहीं, परन्तु किसी घर के सब नर नारी का एक नवीन विवाह में आई हुई अबला स्त्री की रक्षा करनी तो दूर, उलटा उसके साथ इस प्रकार विरोध करने लग जाना ही बुरा है।

हर रोज़ की लान तान से, झिड़कियों से, मारपीट से और कई बार भूख और प्यास से सताई हुई, नई विवाह में आई हुई लड़कियां रोगी तथा मरियलसी बन जाती हैं। और कभी कभी उनको बहुत बेपरवाही से चार दीवारी के अन्दर ही बंद रक्खा जाता है, और उनको प्रायः समय पीछे ऐसा वैसा भोजन दिया जाता है। नई जगह पर इस प्रकार लगातार दिन रात के दुःख और डर से भयभीत होकर प्रायः स्त्रियों की शारीरिक तथा मानसिक अवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। जिससे उनके, हिस्टीरिया (Hysteria) जैसे भयानक रोग लग जाते हैं, स्त्रियों के रोग बढ़जाने का यह भी एक बड़ा भारी कारण है।

अन्त को नित्य प्रति दिन की काना फूसियों और सास ननंद वा जिठानी की कपटमयी बातों में आनकर कई धर्महीन पति अपनी अर्द्धांगिनी स्त्री के सर्वथा विरोधी हो जाते हैं, और अपनी धार्मिक प्रतिज्ञाओं का फिर किंचित मात्र भी ख्याल नहीं करते॥

कई कठोर हृदय पति आप तो बाजार ही में अपना खाना खा लेते हैं और स्त्री बेचारी पति के भरोसे घर के अन्दर भूकी तड़फती रहती है। कई पति ऐसे भी शरीर निकलते

हैं जो अपनी अबला स्त्री को अनेक प्रकार के कष्ट देते हैं। और घर से बाहर किसी को खबर तक नहीं होने देते। मुहल्ले की बहू बेटियों को भी उसके पास नहीं आने देते, कोई नाम मात्र पति ऐसे निर्दई होते हैं कि वह कई बहानों से स्त्री बेचारी के अन्य नज़दीकी रिश्तेदार तो क्या उसके सगे माता पिता तक को भी मिलने नहीं देते ताकि बाहर किसी को स्त्री बेचारी के दुःखों का कोई पता न लग सके। प्रायः स्त्रियों को गृहस्थ आश्रम के आरम्भ से लेकर प्रथम के पांच व छः वर्ष तो बहुधा करके इसी प्रकार के कड़े संकटों के अन्दर काटने पड़ते हैं, बड़ा शोक है इस हिंदू जाति पर जो "अहिंसा परमोधर्मः" के परम सिद्धान्त को अपना बतलाते हुये भी ऐसी २ दुःखित अबला स्त्रियों के दुःख निवारण का कोई प्रबंध नहीं करती। और बिवाह के अवसर पर सम्मलित होने वाले बड़े २ पञ्च और पंडित भी अपनी जुम्मेंवारियों को भुला देते हैं। ऐसा मालूम होता है कि केवल स्वार्थी मनुष्यों ने ही ऐसी बातों को प्रचलित किया है, जिनका पूरा संशोधन करना, न्यायकारी और बुद्धिमान धर्मात्माओं का श्रेष्ठ काम है।

जिस क़ौम में स्त्री जाति को प्रायः गुलामी की सी हालत में दुखित रखा जाता है। उस क़ौम का बढ़ना या उठना असम्भव है। क्योंकि हर एक क़ौम पर वहां की स्त्री जाति की दशा का प्रभाव पड़ता है। अतः हमारा प्रथम कर्तव्य यही होना चाहिए कि हम स्त्री जाति का यथायोग्य सत्कार करें, और उनके उचित अधिकारों को उनसे कभी न छीनें।

हम स्वीकार करते हैं कि जिस प्रकार कई लड़के शरीर निकलते हैं, कोई लड़कियां भी कुछ ग़लती कर जाती हैं। परन्तु जहां लड़के सौ में पचास शरीर निकलते हैं वहां लड़की (मुशकिल से) सौ में एक ही ऐसी ग़लती करने वाली पाई जायेगी। परन्तु न्याय और धर्म यह ही चाहता है कि जो भयानक दुख और कष्ट नेक से नेक स्त्रियों को यों ही थोड़ी २ सी भूल चूक पर दिये जाते हैं, वह धोका देने वाले पतियों को कड़ी से कड़ी शरारतें करने पर भी हिंदू सोसाइटी की तरफ़ से क्यों नहीं दिए जाते? आज तक किसी ने ऐसा नहीं सुना होगा कि कभी किसी शरीर पति को किसी ने प्रतिदिन के खाने पीने की ज़रूरी चीजों से ऐसा दुखी रक्खा हो वा उसको किसी अलग कोठरी के अन्दर स्त्रियों की तरह ऐसा बंद रक्खा गया हो॥

यदि कोई कहे कि चिरकाल से यह रीति चली आती है कि पुरुष चाहे कैसी शरारतें करें, उनको कोई दंड न दिया जावे। तो यह सरासर ऐसी ख़राब बातों की उत्तेजना करना जुल्म और पाप है जिसको कोई दयावान और न्यायकारी मनुष्य कभी पसन्द नहीं करेगा। परन्तु सब से बढ़कर शोक! उन लोगों पर है जो किसी सांसारिक लाभ या मित्रता के कारण ऐसे धोखा देने वाले निर्दयी पतियों को खोटी बातों में कोई सहायता करके इस ज़ुल्म को और बढ़ाते हैं। निर्दय कपटी पति की हां में हां मिलाते जाना, यद्यपि आसान मालूम देता है परन्तु निर्बल, और सताई हुई दुःखित स्त्री जाति की सहायता कर देना ही भद्र पुरुषों का सर्वोत्तम काम है।

हिंदुस्तान में सैकड़ों नहीं, हज़ारों नहीं बल्कि लाखों अबला स्त्रियां ऐसी हैं जो अपने ही हिंदू लोगों के प्रमाद और अन्याय का शिकार बन रही हैं।

हिंदुस्तान में बड़े २ विद्वान् साधु, मुनी, पंडित, पुरोहित, सेठ, साहूकार, मुखिया, नेता, बैरिस्टर और वकील इन ख़राबियों को दिन रात अपनी आंखों से देख रहे हैं। परन्तु बिचारी अबला स्त्री जाति के यथार्थ अधिकार की रक्षा के लिये प्रायः कोई आवाज़ तक नहीं उठाई जाती॥

इस छोटी सी अपील के द्वारा हम हिंदूजाति के विद्वान् नेताओं से प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी २ धर्म सभाओं में तथा पंचायतों में ऐसे २ यथोचित् प्रस्ताव निर्णय करें, कि जिससे ऐसी दुःखित स्त्रियों की तथा उनके स्त्री धन की शीघ्र सुरक्षा हो सके॥

उपरोक्त ख़राबियों को देख कर जो मनुष्य समर्थवान् होते हुये यदि सर्वथा मौन धारण कर लेवें तो वह न्यायकारी दयालु ईश्वर के आगे कभी अपना छुटकारा नहीं पा सकेंगे। प्रत्युत इस प्रकार के दुष्कर्म और अनीति को मिटाने के लिए यथाशक्ति उचित प्रयत्न करदेना ही इस संसार में अपने मनुष्य जीवन के आवश्यक कर्तव्य कर्म से उऋण होना है॥

Please remember that no nation can rise above the level of its women For it is an accepted truth that women is the mould of race.

[प्राप्त]

—*—

हमारी मंजूषा

हिन्दी मनोरंजन—मासिक पत्रिका, सम्पादक श्री विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक व्यवस्थापक श्री शिवनारायण वैश्य, चन्द्रा फैन्सी प्रेस कानपुर पृष्ठ संख्या ५२ वार्षिक मूल्य ३)

हिन्दी मनोरंजन पहिले १९२० में निकला था, परन्तु पुराने संचालक के जेल जाने के कारण १९२१ में ही बन्द हो गया। अब यह पुनः प्रकाशित होने लगा है। श्री कौशिकजी पुराने साहित्य सेवी हैं, हमें पूरी आशा है कि इन के हाथों मनोरंजन हिन्दी भाषा की अच्छी सेवा करेगा। नये प्रबन्ध में यह पहिला अंक है जो कि हमारे सामने है। सब मिलाकर इस में १६ लेख और कविता हैं। लेख सब मनोरंजक और शिक्षा-प्रद हैं, कविता भावपूर्ण और रसमयी हैं। मनोरंजन का उद्देश्य मनोरंजन द्वारा हिंदी भाषा की सेवा करना है। अतः इस के लेख सब मधुर और सरस होने ही चाहियें। साधारण योग्यता रखने वाले हिंदी प्रेमी इस से अवश्य लाभ उठा सकते हैं।

शैलबाला—लेखक नवीन वन्दोपाध्याय, अनुवादिका श्रीमती सावित्री देवी, प्रकाशक पुस्तक भवन, बनारस सिटी।

पृष्ठ संख्या १७६ मूल्य १)

यह एक उपन्यास है। मूल पुस्तक बंगला भाषा में है। हिन्दी अनुवाद की भूमिका लेखक के शब्दों में "देश की उस समय की परिस्थिति का एक चित्र है जब मुगल साम्राज्य का एक प्रकार से अन्त हो चुका था, मरहट्टों के हृदय से भी साम्राज्य स्थापित करने का उत्साह दूर हो चुका था और ईस्टइन्डिया कम्पनी का

दिन दिन बढ़ता हुआ प्रभाव अंग्रेज़ों के भावी महत्व का आभास दे रहा था।" मूल लेखक भी प्रथम परिच्छेद में इसी स्थिति का उल्लेख करते हैं, परन्तु उपन्यास के पढ़ जाने से इस उल्लेख के अतिरिक्त और कहीं पर भी इस के ऐतिहासिक होने की गन्ध नहीं आती। हमारी सम्मति में इस पुस्तक को ऐतिहासिक उपन्यास कहना ठीक नहीं। उपन्यास रोचक है। इस में मानव प्रवृत्तियों और विकारों का अच्छा चित्र खींचा गया है। बुराई का अन्त सदा बुरा होता है यही इस का मूल आधार है। इस अंश में यह शिक्षा-प्रद है।

बालमनोरंजन—प्रणेता श्रीयुत ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' प्रकाशक उपरोक्त पुस्तक वनारस सिटी संख्या १०६ मूल्य ।≈)

इस पुस्तक में बालकों के विनोदार्थ कहानियों का संग्रह है। कहानियां हास्यरसमयी कविता में हैं जो कि इतनी सरल है कि बालक इसे सुगमता से समझ सकते हैं। कहानियां सब की सब मनोरंजक, मात्र पूर्णतया शिक्षाप्रद हैं। इस के द्वारा बालकों को हंसी मज़ाक में अच्छी शिक्षा मिल सकती है।

श्री रामचन्द्र जी—लेखक श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी; प्रकाशक—लाला बनारसीदास मैनेजर, आर्य पुस्तकालय बाज़ार बज़ाज़ा मेरठ शहर। पृष्ठ संख्या ८० मूल्य ॥)

इस पुस्तक में लेखक ने संक्षेप में सरल भाषा में रामचन्द्र जी का जीवन चरित्र दिया है। वाल्मीकि तथा तुलसी रामायण में कितनी ही ऐसी घटनाओं का वर्णन है जो कि सृष्टि नियम के विरुद्ध हैं तथा तत्कालीन प्रचलित धार्मिक सिद्धांतों की हत्या करती हैं। इन के पाठ से बालकों के मन में—जिन के लिये यह पुस्तक विशेष कर के लिखी गयी है—सन्देह और संशय उत्पन्न कर देती हैं। लेखक ने ऐसी सब घटनाओं को इस पुस्तिका में से निकाल कर उन को प्राकृतिक रूप देने का यत्न किया है। अतः बालक राम के इस चरित्र को बिना किसी संदेह के—श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक का मूल्य ज्यादा है।

वनिता-विनोद

स्त्री-जगत्

गोरे में काला

यात्रा करते समय देशबन्धुदास की पुत्री ने नागपुर स्टेशन के वेटिंग रूम में एक बीमार गोरी स्त्री को जो दूध की तालाश में थी, अपने पास से दूध देना चाहा परन्तु उस गोरी स्त्री ने घृणा के साथ कहा-"हम काले भारतीयों का दूध नहीं मांगता।" गोरे चमड़े के पुजारियो! देखा गोरे चमड़े में काले हृदय का उदाहरण।

मिसेज विसेन्ट

श्रीमती ऐनीबीसैंट भारतके पक्षमें विलायत में राजनैतिक सहानुभूति प्राप्त करने और पारलिमैंट के सदस्यों को यहांकी वास्तविक स्थिति जतलाने के लिये एक डैप्यूटेशन लेकर विलायत गयी हैं। इस वृद्ध अवस्था में—इन की आयु लगभग ८० वर्ष की होगी। यह उत्साह प्रशंसनीय है। भारत ललनाओ! क्या आप भी यह बल प्राप्त करने का यत्न करेंगी?

एक देशभक्त देवी की मृत्यु

२६ अप्रैल को पूना में श्रीमती रमाबाई रानाडे धर्मपत्नी स्वर्गवासी महादेव गोविंद रानाडे का देहांत हो गया। जस्टिस रानाडे प्रसिद्ध समाज सुधारक हुवे हैं यह बात सभी शिक्षित भारतीय जानते हैं। श्रीमती रमाबाई ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उन के कार्य को बड़े प्रेम, उत्साह और श्रद्धा से आगे चलाया। पूना के सेवा-सदन की मानों वह प्राण थीं। स्त्री जाति की शिक्षा और उन्नति के लिये कार्य करने वाली बम्बई और पूना की अनेक संस्थाओं में वह बड़े प्रेम से काम करती थीं। उन का जीवन निःस्वार्थ सेवा और भक्ति पूर्ण त्याग का उच्चतम उदाहरण है जो कि हमारी बहिनों के लिये अनुकरणीय है।

देवी सरोजिनी

श्रीमती सरोजिनी नायडू दक्षिण अफ्रीका का दौरा समाप्त कर पूर्व अफ्रीका लौट आयीं हैं। यहां पर १५ दिन के लगभग ठहर कर आप भारत के लिये चल पड़ेंगी। आशा है ३१ मई तक आप यहां पहुंच जायेंगी। आप को अपने दौरे में आशातीत सफलता हुई है। जहां अंग्रेज़ उन के पहुंचने पर इन से कोसों दूर भागते थे वहां कुछ ही समय पीछे हज़ारों की संख्या में इन के व्याख्यान सुनने के लिये दूर दूर से आकर एकत्र होते थे। देवी सरोजिनी ने अपनी मोहनी भाषा में भारतीयों के अधिकारों की रक्षा करते हुए सारे अन्याय की जड़—गोरों की कालों से काल्पनिक श्रेष्ठता—पर खूब कुठार चलाया। वहां की राजसभा में मज़दूर दल का नेता करनेल क्रैसरेल खूब प्रभावित हुआ।

स्वर्गीय मेरी करेली

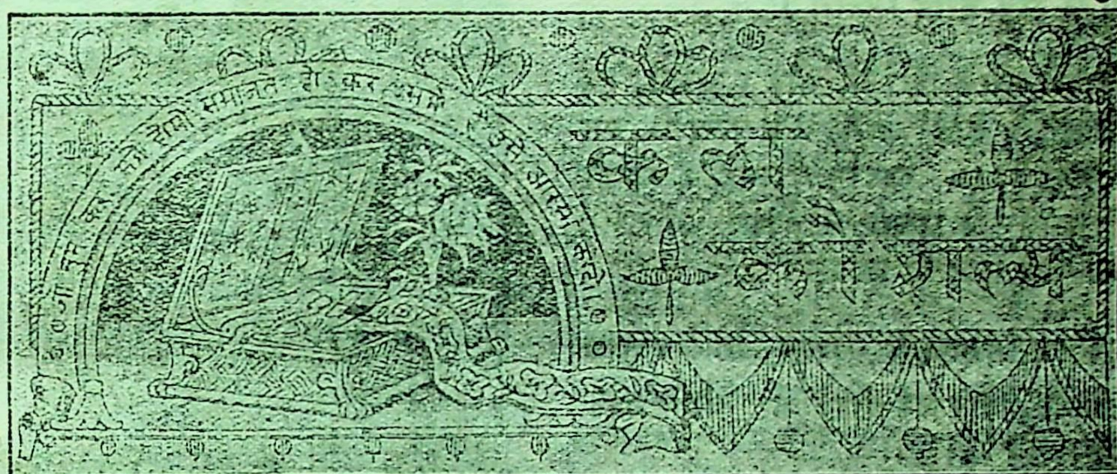
अंग्रेजी भाषा की प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका मि० मेरी कारेली का २४ अप्रैल को देहांत हो गया। इस का जन्म १८६४ में हुआ था। फ्रांस में संगीत की शिक्षा ग्रहण करते समय उसे अपनी लेखन शक्ति का ज्ञान हुआ। २२ वर्ष की अवस्था में उसने पहिला उपन्यास लिखा जो कि खूब पसन्द किया गया। उस के पश्चात् उसने अनेक उपन्यास लिखे और अपने जीवन के अन्त तक लिखती रही। इसके उपन्यासों का विषय आजकल की सभ्यता की कुरीतियां—अमीरों का गरीबों पर अत्याचार, पुरुषों का स्त्रियों पर पाशविक बलात्कार, धार्मिक ढोंग, विद्या और कर्म भोग लोलुपता का तीव्र प्रतिरोध—ही होता था। यह धार्मिक भावों, उच्च विचारों और सात्विक प्रवृत्तियों से भरे रहते थे। कई समालोचकों का मत है कि उस की लेखनशैली में अत्युक्ति की मात्रा बहुत अधिक रहती थी। यह सत्य है परन्तु इस से उन की उपयोगिता और लोक प्रियता में किंचित भी फ़रक नहीं पड़ा। इस देवी की मृत्यु से आंगल भाषा साहित्य ने निसन्देह अपना एक उज्ज्वल रत्न खो दिया।

वीर क्षत्राणी

रानी परीहरी जिला भागलपुर की एक क्षत्रिय बाला अपने भाई के साथ डोली में जा रही थी। मार्ग में कुछ आदमियों ने आकर उन से कहा कि हमारी गाय दलदल में फंस गयी है कृपया उसे निकलवा दो। गाय का नाम सुनकर वह उन के साथ चले गये। पीछे से एक पुरुष ने आकर तलवार का भय दिखलाकर लड़की के सब आभूषण उतरवा लिये। परन्तु इस पर भी उस की तृप्ति न हुई और कन्या को अपनी रेशमी साड़ी उतारने के वास्ते कहा

लड़की ने कहा कि यदि वह अपनी धोती उसे पहिरने के वास्ते देदे तो वह साड़ी उतार देगी। उस की मृत्यु खड़ी नाच रही थी। उसने तलवार रख दी और धोती उतारने लगा। लड़की ने तलवार उठाली और झट उस का सिर अलग कर दिया। अपने सब आभूषण लेकर वह पास के गांव में भाग गयी। उसका भाई और कहार भी उस की तालाश में वहां पहुंच गये। डाकू के तीनों साथी भी पकड़े गये। और उन्हें काले पानी का दण्ड मिला। लड़की को २००) उपहार में मिले। जिस भद्र पुरुष ने उस गांव में शरण दी थी उसे भी १००) इनाम मिला क्षत्राणी तुम धन्य हो!

———



बच्चों का बिब

लेखिका—श्रीमती ओ३म्वती



प्रायः बच्चों का राल टपकने के दिनों में गले में गोल त्रिकोण वा अन्य कई प्रकार की शक्लों की गद्दी बांध देते हैं यह क्रोशियेसे किसी सुन्दर तरह की भी बीनी जा सक्ती है।

मोटा सूत और लोहे का क्रोशिया लो और गले के लिये १६६ चेन से आराम करो।

संकेत:—१ क्रोशिये की आरम्भिक जंजीर का नाम चेन "चे"।

२. बिना धागा चढ़ाये फन्दा निकाल कर फिर और चढ़ाकर दोनों को इकट्ठा निकालना दोहरा क्रोशिया "दोहरा क्रो"

३. एक बार धागा लपेट कर फिर फंदा धीन कर दो बार दो दो निकालना, "तेहरा"।

आरम्भ वाली चेन के दोनों तरफ १६५ दोहरे क्रोशिये बीनो, फिर धागा तोड़दो।

सामने के लिये—कार्य्य को उलटी बनावट की तरफ़ से अपने हाथ में पकड़ो और फ़न्दों के

पिछले धागे में ही बीनो जिससे कि उभरी हुई धारियां पड़ जांय। पहिले ५८ फन्दे छोड़ दो फिर ५६ वें फ़न्दे से लेकर ४ दोहरे क्रोशिये बराबर २ बीनो, अगले घर में ६ तेहरे एक ही में बीनो फिर पिछले तेहरे के फन्दे को पहिले तेहरे के फ़ंदे में से निकाल लो जिससे एक "घुण्डी" बनजाय (इस प्रकार दोनों तरफ़ उभरी हुई तेहरों के समूह की "घुण्डियां होंगी इन्हें इसी नाम से सब जगह लिखेंगे)

३ दोहरे अगले घरों में, और १ घुन्डी, १५ बराबर दोहरे, ३ दोहरे अगले एक फ़न्दे में, यह बीच का फ़ंदा है, १५ दोहरे बराबर, १ घुन्डी ३ दोहरे बराबर, १ घुन्डी, ४ दोहरे, और ५८ फ़न्दे बिना बीने छोड़ कर लौटो।

२ पंक्तिः-पिछली पंक्ति का पहिला दोहरा छोड़दो, और ४६ दोहरे क्रो. बीनो बराबर पिछले धागे में।

३ पंक्तिः-पहिला दोहरा छोड़ दो, २४ दोहरे क्रो. बराबर बीनो, ३ दोहरे बीच के घर में, २४ और दोहरे बराबर

४ पंक्तिः-२ सरी की तरह। इन चार पंक्तियों को ४ दफ़ा बीनो अर्थात् २० पंक्तियां करो, सब में ४६ फ़ंदे हों।

२१ पंक्तिः—पहिला फ़न्दा न छोड़ो, ४ दोहरे, १ घुन्डी, ३ दोहरे, १ घुन्डी १६ दोहरे, ३ दोहरे बीच के फन्दे में, १६ दोहरे बराबर, १ घुन्डी, ३ दोहरे क्रो., १ घुन्डी, ४ दोहरे क्रो.

२२ पंक्तिः—पहिला फ़ंदा छोड़ कर ५१ दोहरे बीनो।

२३ पंक्तिः—पहिला फ़ंदा न छोड़ो, २५ दोहरे, ३ दोहरे बीच के फ़ंदे में, २५ दोहरे।

२४ पंक्तिः—पहिला फ़ंदा छोड़ कर ५३ दोहरे बीनो। अब इसी प्रकार ४ पंक्तियों की तरह बराबर ४० पंक्ति तक बीनो। परंतु शुरू या आखिर में कोई फ़ंदा न छोड़ो जिससे हर पंक्ति में दो फ़ंदे बढ़ जांय और ४० वीं पंक्ति में ८५ दोहरे बीने जांयगे।



४१ पंक्तिः—४ दोहरे, १ घुंडी, * ३ दोहरे १ घुंडी, इस*चिह्न से ८ बार और, १ दोहरा, ३ दोहरे बीच के फ़ंदे में, १ दोहरा १ घुंडी, * ३ दोहरे १ घुंडी इस * चिह्न से ८ दफ़ा और ४ दोहरे।

४२ पंक्तिः—सारे ८७ दोहरे क्रोशिये

४३ पंक्तिः—४३ दोहरे, ३ दोहरे बीच के फ़ंदे में ४३ दोहरे

४४ पंक्तिः—सारे दोहरे (८६)

४५ पंक्तिः—४ दोहरे, १ घुंडी,* ३ दोहरे, १ घुंडी इस * चिह्न से ८ दफ़ा और, ३ दोहरे

३ दोहरे बीच के फंदे में, ३ दोहरे, १ घुंडी * ३ दोहरे १ घुंडी * इस निशान से ८ दफ़ा और ४ दोहरे।

४६ पंक्ति:-सारे दोहरे (६१)

४७ पंक्ति:-४५ दोहरे, ३ दोहरे बीच में, ४५ दोहरे।

४८ पंक्ति:-सारे दोहरे (६३)

अब किनारे के लिये:—

१ पंक्ति:-१ तेहरा पिछली पंक्ति के १ दोहरे पर * १ चेन, १ फ़ंदा छोड़कर, १ तेहरा अगले में, इस प्रकार सारे बिब के किनारे और आरम्भ वाली गले की पंकित के किनारे पर भी धागे को समाप्त कर तोड़ दो।

२ पंक्ति:—दहिने हाथ की तरफ़ के गले की पटड़ी के बिलकुल सिरे पर एक दोहरा बीनो १३ चेन पिछली पंक्ति के दो खाने छोड़ दो, तीसरे ख़ाने में एक दोहरा। इस प्रकार सारे बिब में और दूसरी तरफ़ की पट्टी में भी-पर गले के अंदर की तरफ़ नहीं।

३ पंक्ति: १ दोहरा पिछली पंकित के दोहरे पर, १३ चैन इस प्रकार सब कहीं।

४ पंक्ति:—उसी तरह

५ पंक्ति:—१ दोहरा तीनों पंक्तियों की लम्बी चेनों के बीच को बांधता हुआ बीनो ७ चेन, १ दोहरा फिर चेनों के बीच को बांधता हुआ, इसी तरह सारी पंकित।

६ पंक्ति: १ दोहरा पिछली पंक्ति के दोहरे पर, ७ चेन, इसी तरह सब।

७ पंक्ति:—उसी तरह।

८ पंक्ति:-१ दोहरा पिछली दो पंक्तियों के अंदर इस प्रकार कि पांचवी पंक्ति के दोहरे के ऊपर बने। १३ चेन, और इसी तरह सब कहीं।

९ पंक्ति:—१ दोहरा दोहरे पर, १३ चेन सब कहीं

१० पंक्ति:—उसी तरह।

११ पंक्ति:-१ दोहरा सब चेनों के बीच में को, ७ चेन, १ दोहरा चेनों के बीच में। इसी प्रकार सारी पंक्ति

१२ पंक्ति:—१ तेहरा गले की पट्टी के दाहिने हाथ की तरफ़, १ चेन, १ तेहरा ६ दफ़ा पिछली ६ पंक्तियों के आरम्भ की तरफ़ १ चेन, १ छोड़ो, एक २ तेहरा सारी पट्टी की तरफ़ बिब के किनारे गले के दूसरी तरफ़, १ चेन, १ तेहरा ६ बार ६ चैन वाली पंक्तियों के अंत में अब बांये हाथ की तरफ़ की पट्टी पर समाप्त करदो

१३ पंक्ति:-१ दोहरा पिछली पंक्ति के पहिले ख़ाने पर, * १ दोहरा, ४ तेहरे, १ दोहरा *सारे पिछली पंक्ति के दूसरे ख़ानेमें, इस*चिह्न से सारे बिब के चारों ओर बीनो और समाप्त करदो।

—:*०*:—

स्वर्णकान्ता की जय

लेखक-श्रीयुत दिवाकर बी. ए.

(१)

सिठानी का विवाह हुए १५ वर्ष होगये पर अब तक उसकी गोद खाली रही-कई प्रकार के कष्ट झेले, ताने सहे और मानसिक व्यथायें देखीं-अड़ोसी पड़ोसी इस विचारी को बन्ध्यादि दुःखद कटाक्षोंसे अहर्निश शरमिन्दा

करते थे, इनके देवर आदि इस की असाध्य अवस्था से खिन्न होगये अतः उन्होंने भी कुछ समय से ठान ली थी कि भाई का दूसरा विवाह कर देंगे क्योंकि भाई ठहरे गोरखपुर के नामी सेठ। परन्तु प्रभु की महिमा अद्भुत है। उसके अनन्त भण्डार में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं। हम अल्प ज्ञान से जिसको असम्भव मान बैठते हैं परमात्मा उसे सम्भव कर दिखाते हैं। सिठानी को प्रभु ने पुत्रवती किया, पुत्र रत्न की उपलब्धि से जो हर्ष उसे हुआ वह अकथनीय है। मानों हाथों चांद पाया। बहुत लाड़ चाव से उसकी पालना की गई, उसकी उचित अनुचित सब इच्छायें पूर्ण होने लगीं। सेठजी के भाई पढ़ लिख कर कालवश हो चुके थे इस वास्ते इसका नाम बुद्धूमल रखा गया। यदि कभी सेठ जी निन्दित व्यवहार से बुद्धूमल को रोकते तो माता चिड़ चिड़ाकर बेतरह पति से झुंझलाती थी। और यदि माता कभी उसे झिड़क देती तो पिता तुरन्त उसे गले लगाकर चूमते, पुचकारते, शतशः अपनी प्राणप्रिय को गर्हित वचनों द्वारा फटकारते, गाली देते और बुद्धूमल को आश्वासन देते कि देखो इस हत्यारी को तुम्हारी खातिर कितना दण्ड दे रहा हूँ। इसी उतार चढ़ाव में बुद्धूमल आठ वर्ष की आयु को प्राप्त हो गये। निरंकुश होने के कारण आवारागर्दी में दिन व्यतीत होने लगा। सेठ जी की कभी २ यह इच्छा होती कि यह विश्व-विद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्त करे। किसी मान्य पदवी पर पहुंचे और हमारे खानदान दरबार में उज्ज्वल हो।

(२)

बद्धूमल १० वर्ष के हुए। माता पिता के लाड़ चाव के युग से पार हुए। मुहल्ले के अशिक्षित, उज्जड्ड ग्रामीण साथियों की संगत में निरन्तर रहने से जी खोल सभी कुव्यसनों को आद्योपान्त ग्रहण किया, अब क्या था-चञ्चलचित चलायमान रहने लगा रात्रि को भी घर से अनुपस्थित रहने लगे। ५०) लेकर ५००) और ५००) लेकर १००००) के स्टाम्प लिखे जाने लगे। पिता को पता लगा, पर वह बिचारा विवश था। पुत्रने कुएं में कूद पड़ने और विष खालेने के डर का जादू माताके हृदय में ऐसा फूंका कि सेठजी का भी नाकमें दम करदिया। लड़केको इसप्रकार बिगड़ता देख भाई, बन्धु बिरादरी के लोगों ने सलाह दी कि उसका विवाह कर देना चाहिए, यही इसके रोग का निदान है। स्त्री के आजाने से प्रेमपाश में ऐसा जकड़ा जावेगा कि सब व्यसन भूल जावेंगे। यह बात माता को प्रिय लगी, वह चाहती ही थी कि घर में बहू आवे। लड़कियों की क्या कमी थी इशारा ही काफी था। कुलीन घरानों से पूंछ तांछ शुरू हुई। बुदधूमल १६ वर्ष के होगये थेही एक आध मास के अन्दर ही विवाह का निश्चय होगया।

(३)

विवाह महोत्सव की तय्यारियां होने लगीं। धन धान्य की कमी न थी, सेवकों का समूह सेठ जी की आज्ञापालन में सर्वदा बद्धाञ्जली रहता था। झाड़, फानूस, गायक भांड, भंड़वे, बाजे तमाशे, सिनिमा, थियेटर सब हर्षोत्पादक सामग्री एकत्रित की गई। मंगलाचरण के स्थान में वेश्या मंगवाई गई, क्योंकि दर्शकों की ऐसी ही इच्छा थी। आगन्तुक रायसाहब, खान साहबादि अनेक थे परन्तु सबके सब सनातन वैदिक सभ्यता के परम शत्रु थे। ऋषियों का वेदोक्त मंत्रोच्चारण

उनके कानों में चुभता था। एक सप्ताह खूब वाममार्ग की प्रचुर प्रचार रहा। भक्ष्याभक्ष्य का तो कोई झगड़ा ही न था। मद्यमांस का बाजार गर्म था, राग रंग और नाच के लिए भारी धन खर्च किया गया। राक्षस वृत्ति और काम वर्द्धक कीर्तन से श्रोतागणों को मुग्ध किया गया। विवाह संस्कार का क्या था वह तो केवल मात्र पंडित जी का काम था ही उन्होंने अपने आप ही पढ़ पढ़ा कर समाप्त किया, उसमें सम्बन्धियों का या निमन्त्रित सदस्यों का कोई दखल न था।

(४)

विवाह की कार्य्यवाही समाप्त हो गई। बुदधूमल की प्राणप्रिया स्वर्णकान्ता अत्यन्त सुन्दरी थी। रूप लावण्य में अद्वितीया थी। मृणाल सी कोमल भुजाएं, उन्नतवक्षस्थल चन्द्रानन उसके नाम को सार्थक कर रहा था। गृहकार्य्य में दक्षता विद्या और चातुर्य्य में अपनी आयु से कहीं बढ़कर योग्यता भी उस में थी। मिलन मन्दिर में जब नव दम्पति की परस्पर भेंट हुई तो कान्ता अपने पति की अविद्या भांप गई, परन्तु उसने बड़ी बुद्धिमता से उसे प्रगट न होने दिया और उस से उसने इस प्रकार वार्तालाप की कि बुद्धूमल आश्चर्यान्वित हो गये। स्वर्णकान्ता की दिव्य मूर्ति, वाणी का माधुर्य्य, बुद्धिचातुर्य्य और विलक्षण प्रतिभा ने उसके मतवाले जीवन को भारी धक्का पहुंचाया, वह अपने मन्द भाग्यों, निन्दित कृत्यों और घृणित कार्य्यों का चित्र अपने मस्तिष्क में खींचने लगा। जब उसको यह प्रतीत हुआ कि वह एक साक्षात देवी के सामने मूढ़ सा बैठा है तो फूट फूट कर रोने लगा। स्वर्णकांता का भी रंग बदल गया उसका उन्नत मस्तिष्क इस विचित्र घटना के रहस्य से द्रवित होगया वह कुछ काल के लिए मन ही मन में किंकर्तव्य विमूढ़ा होगई। प्रथम दिन था। कुछ संकोच था, कुछ लज्जा थी। हृदयेश्वर से व्यथा का कारण भी पूछने में असमर्थ थी। युवावस्था, विवाह महोत्सव, कांता जैसी सर्वाङ्ग सुन्दरी सर्वगुण सम्पन्न पत्नी तिस पर भी प्रथम भेंट में ही प्राणनाथ का आश्रुपात! उस पर इस समस्या का बोझ वज्र की न्यांई पड़ा। अन्ततः शांतस्वभाव, मीठी वाणी से पति को सांत्वना दी। प्रेम प्रसाद भेंट किया। धीरे धीरे व्यथावार्ता सुविस्तर सुनी। बुद्धूमलने देवी को स्वजन जान आप बीती राम कहानी कह सुनाई कि किस तरह उसने जीवन के उत्तम भाग को कुकर्मों में खोया। इतना कहते ही पुनः अश्रुपात करने लगा। कांता ने कहा—"प्राणप्रिय! कोई दुःख की बात नहीं। यदि आजभी आपको जगत्ज्योति पिता ने प्रकाश प्रदान किया है, अज्ञान का पर्दा उठा लिया है, तो यह समय अश्रुपात करने का नहीं प्रत्युत हर्ष का है। यह रात्रि हमारे जीवन में एक चाँदनी रात के सदृश होगी। क्योंकि आज से आपका जीवन सुपथ पर आगया है और आपने पश्चाताप द्वारा अपने आचार को पुनीत कर लिया है। उन्नति के मार्ग पर चलने के लिए, नई विद्या सीखने के लिए, मनुष्य को सर्वदा तय्यार रहना चाहिए! मेरी याचना है कि आप विद्योपार्जन का अभी से दृढ़ निश्चय करके दृढ़ प्रतिज्ञ हूजिए, ईश्वर हमारी सहायता करेंगे। हमें गृहस्थ के कार्य्य भार को तबतक न उठाना चाहिए जब तक पूर्ण विद्या न पढ़लें" बुद्धूमल के ज्ञानचक्षु खुल गये, मस्तिष्क में प्रकाश हो गया और निराशा देवी लज्जित होकर मिलन मन्दिर से बाहर होगई, हृदय में उत्साह भर गया।

(५)

१७ वर्ष की आयु में बुद्धूमल ने पढ़ने को ठानी-सुनने वाले मसखरी उड़ाने लगे। वायु-मण्डल अपने नवीन प्रोग्रामकी पूर्ति के प्रतिकूल जानकर, धर्मपत्नी की अनुमति से वह पढ़ने के लिये प्रयाग चलदिये।

अकस्मात एक सज्जन केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के ग्रैजुएट वहां उन्हें मिलगये। कुमारों के जीवन को सुधारना इनके जीवन का लक्ष्य था। जब बुद्धूमल ने अपनी जीवन घटना हृदयविदारक शब्दों में कही तो मि० के० विद्यार्थी को रोमञ्च होगया। उन्होंने उत्साहपूर्वक कहा कि आपकी इच्छा यदि विद्याग्रहण की है तो अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है आप मेरे पास रह सकते हैं। मैं आपके पाठ का यथोचित प्रबन्ध किये देता हूं। मिस्टर विद्यार्थी के आशावादी बचनों ने बुद्धूमल में नये जीवन का संचार कर दिया। उनको अपना गत जीवन और उसकी बुराइयां सब भूल गईं। भावी आशाजनक जीवन दृष्टिगोचर होने लगा। सारा संसार उनकी आंख के ओट होगया केवल विद्या मंदिर उनका घर और पुस्तकें ही उनकी संगी साथी रहगये। उनके मित्रने इनका नाम भी संसारचन्द्र रखदिया था।

चिरकाल के पश्चात बुद्धूमल घर लौटे (किस को मालूम था कि अब वह संसारचन्द्र हो गये हैं ?) मानो राम वन से वापिस आये। माता पिता की आंखों का तारा, उनके प्राणों का सहारा जब घर में आया तो माता पिता के पग भूमि पर नहीं लगते थे। वह फूले नहीं समाते थे। तरस तरस कर लिया हुआ बालक उनसे कुछ वर्षों के लिए ऐसा पृथक हुआ था जैसे गधे के सिरसे सींग। स्वर्णकान्ता का भी पिंड छूटा क्योंकि उसके चले जाने से न जाने उसको कितने दारुण दुःख सहन करने पड़े। सास ससुर के तानों ने उसका कलेजा छलनी कर दिया था। सखी सहेली भी उससे मुख मोड़ बैठी थीं। वह बसते घरमें अनाथासी होगई थी। वह ऐसी अंधेरी कोठरी में दिन व्यतीत करने लगी जहां किसी पक्षी का शब्द भी उसके कानों में न पड़ता और सूख कर कांटा हो गई थी। माता पिता के घर में भी न जाती कि कहीं वह उसकी व्यथा से दुखित न हों। उसने पति देव को भेजकर दुखों का स्वयं आह्वान किया था अब यह किसको दोष देती ? हां उसका हृदय स्वच्छ था, उसके मनमें मलीनता न थी। वह जानती कि उसके दुःखों का अन्त होने वाला है। वह आशा की दासी थी उसने पतिव्रत धर्म को लांच्छन नहीं लगने दिया।

कई वर्षों पीछे संयोगवश वही दिन, वही महीना, वही काल था कि स्वर्णकांता और संसारचन्द्र उसी कोठरी में बैठे अपने बीते दिनों की याद कर रहे थे। उनके प्रेमोद्गार में क्या कमी थी ? संसारचन्द्र जी अब अधिक गुणवान हो गये। अब बातचीत में रस की कुछ कमी न थी। स्वर्णकांता भी अब सच्चे आनन्द को अनुभव करने लगी। अभी वह अपने भावी जीवन पर विचार करने लगे ही थे कि इतने में संसारचन्द के हाथ में किसी ने तार दिया। तार में लिखा था कि तुम एम. ए. पास होगये। स्वर्णकान्ता को उस समय बधाई देने और संसारचन्द्र को बधाई लेने में जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। कांता ने प्रभु को धन्यवाद दिया जिसकी कृपा से उसके पति को सरस्वती प्राप्त हुई। उसने कहा "देवी सरस्वती तेरी जय हो"। मगर संसारचन्द्र को सरस्वती देवी कोई नज़र नहीं आती थी उसके जीवन को पलटने वाली वही देवी थी जो उसके सन्मुख बैठी थी। इस वास्ते वह उस से लिपट गये और कहने लगे "देवी स्वर्णकांता तेरी जय हो"।

गृह प्रबन्ध

१. चांदी के वर्तनों को उठा कर रखते समय यदि उनके साथ थोड़ा सा कपूर रखदिया जाय तो वह काले नहीं पड़ते।

२. कई स्थानों में कभी २ भाजी, रायते इत्यादि में राई डालने की प्रथा है। यदि राई को चमच में घोलते समय पानी के स्थान में दूध काम में लाया जाय तो चमचा काला नहीं पड़ता।

३. यदि तुम चाहती हो कि पतीली में चढ़ी हुई वस्तु शीघ्र उबलने लग पड़े तो उस में चमचा या कड़छी कदापि न छोड़ो।

४. कई घरों में प्याज़ खाया जाता है, परन्तु कई बार रसे में उसकी बड़ा सख्त बदबू आती है। यदि उसमें एक शलजम डालकर उसको और उबाला जाय तो यह बदबू दूर हो जाती है।

५. कई बार सबज़ी बनाते समय रसे में इतना घी पड़ जाता है कि स्वाद अच्छा नहीं रहता। इस अधिक घी को निकालने की सुगम रीति यह है कि पतीली को आग पर से उतार लो और उसमें थोड़ा सा ठंडा पानी डाल दो अब घी इकट्ठा हो जायगा और जितना चाहो सुगमता से उतार सकोगी।

६. आज कल कई घरों में परदे लटकाने का रिवाज पड़ता जाता है और यह बहुधा पीतल के छल्लों द्वारा लकड़ी पर चढ़ाये जाते हैं। बहुधा इकट्ठा करते या खोलते समय छल्ले लकड़ी पर सुगमता से नहीं घूमते। यदि हर पन्द्रहवें दिन इस लकड़ी पर एक कपड़े को भिगोकर मट्टी के तेल की मालिश करदी जाय तो यह कठिनता दूर हो जाती है।

७. एक बड़ा चमचा निम्बू के रस में छोटा चमचा नमक घोलकर कपड़ों पर लगाने से लोहे के दाग अच्छी तरह दूर हो जाते हैं। इस से कपड़े को कोई हानि भी नहीं पहुंचती।

८. कई घरों में मिट्टी के फूलदान काम में लाये जाते हैं परन्तु इनमें से पानी रिसता रहता है और जहां रक्खो कपड़े इत्यादि को खराब कर देता है। इससे बचने की सुगम रीति यह है कि फूलदान में तीन चार चमच पिघले हुए तेल के मोम को डालकर चारों ओर फेरदो। इससे पानी का चूना बन्द हो जायगा।

क्या गृहस्थ जंजाल है ?

लेखक—श्रीयुत कृष्णचन्द्र बी० ए०

वेदों में जहां कहीं गृहस्थ का उद्देश्य बताया है वहां यही बताया है कि गृहस्थ संतान पैदा करने के लिये है, इसी लिये स्त्री का नाम जाया है। वास्तव में वेदों ने जो आदर्श रक्खा है वही देखने में भी आता है। गृहस्थ का उद्देश संतान पैदा करनाही है कि जिससे दुनियां नष्ट न हो। सृष्टि के नियमों के अनुसार प्रकृतिस्वयंही जननेकी अवस्था आनेपर और क्षेत्र में बीज के पड़ने पर मेशीन की तरह कार्य शुरू कर देती है। बच्चे पैदा होने शुरू होते हैं। तब स्त्री पुरुष सोचते हैं कि क्या हमारा उद्देश इतना ही है या कुछ और भी। जिस जाल में हम बंधे हैं वह हमारे सुख के लिये है वा दुःख के लिये ? मैं तो दुनियां को देखता हुवा जिस परिणाम पर पहुंचा हूँ, वह यह है कि वेद का कहना कि गृहस्थ का आदर्श सन्तान पैदा करना है यह बिल्कुल ठीक है। और जो दुनिया इसके आगे सोचती है कि गृहस्थ में सुख भी है वह आज कल के ज़माने में भ्रम मात्र है।

जब तक पुरुष की विवाह की अवस्था हो जाने पर भी शादी नहीं होती तब तक अपनी इन्द्रियों की उत्तेजना के कारण गृहस्थ को नहीं अपितु स्त्री को सुख का कारण मानता है। और इसी तरह स्त्री भी शादी की अवस्था होजाने पर परन्तु शादी के न होने पर, इन्द्रियों की उत्तेजना के कारण पुरुष को सुख का कारण समझती है। वास्तव में दोनों ही गृहस्थ के अनुभव से शून्य हैं, इस लिये यह कहना कि गृहस्थी को सुख का कारण समझ कर दोनों गृहस्थ में प्रवेश करते हैं, अशुद्ध बात है।

संतान के सुख के लिये शादी करते हैं यह भी बहुत कम लोग जानते हैं। बहुत से लोग तो अज्ञान में ही गृहस्थी होते हैं, बहुत से इंद्रिय तृप्ति के लिये शादी करते हैं और बहुत थोड़े आदर्श रख कर गृहस्थी होते हैं।

शुरू २ में प्रेमाधिक्य के कारण सभी खुश रहते हैं, और समझते हैं कि वास्तव में ही गृहस्थ में अनुपम सुख है। परंतु साल दो साल बीतने पर जब बोझ पड़ता है और बात २ में उलझन मालूम होती है तो गृहस्थ जंजाल मालूम होने लगता है।

मैं सतयुग के समय की बात नहीं कर रहा हूं, सम्भव है उस समय स्त्रीशिक्षा पर ध्यान दिया जाता हो। मैं तो कलियुग की बात कर रहा हूं जब कि स्त्रियों की शिक्षा ठीक नहीं है।

मेरा कहना यह नहीं है कि गृहस्थ में सुख किसी भी तरह नहीं मिल सकता। गृहस्थ में सुख मिल सकता है यदि उनकी शिक्षा पर ध्यान दिया जावे।

सबसे मुख्य बात जो सुखका साधन है वह स्त्री पुरुष का उत्तम स्वभाव है। यदि स्त्री का स्वभाव अच्छा नहीं है तो लाखों ऐश्वर्य के सामान भी सुख नहीं दे सकते। इसी तरह यदि पुरुष का स्वभाव क्रोधी है और स्त्री उत्तम स्वभाव वाली भी है तो भी सुख नहीं मिल सकता, और यदि भाग्य से दोनों ही जिद्दी, क्रोधी मिल जावें, तब तो फिर देवासुर संग्रामही है। रुपया पैसा वाजीकरण औषधि के समान क्षणिक सुख दे सकता है परन्तु स्थिर सुख नहीं। स्थिर सुख तो उत्तम स्वभाव ही दे सकता है। रुपया बाजीकरण औषधि के समान है, और उत्तम स्वभाव ब्रह्मचर्य संचित वीर्य के समान है, जोकि स्थिर सुख देने वाला है है।

रुपये वाले, स्त्री का उत्तम स्वभाव न होने पर भी, थोड़ी देर के लिये सुख भोग सकते हैं, परन्तु जब स्त्री से व्यवहार पड़ता है तो सब रुपया धरा ही रह जाता है। यदि स्त्री का उत्तम स्वभाव हो तो वह जंगल में भी मंगल करा सकती है। उत्तम स्वभाव से मेरा तात्पर्य इतना ही है कि जो स्त्री अपने को पति के अनुकूल बना सकती है वही उत्तम स्वभाव वाली है। यदि कोई और दुर्गुण होंगे भी तो वे सब इस में छिप जांयगे। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि यदि स्वामी मांस खाता है तो स्त्री भी मांस खावे। पुरुष मूर्तिपूजा करता है तो स्त्री भी मूर्ति पूजे, यह तो सिद्धान्त के प्रश्न हैं, इन में स्त्री पुरुष को चाहिये कि परस्पर प्रेम से वाद-विवाद करें, सत्य के खोज और निश्चय होजाने पर उसे दोनों स्वीकार करें।

परन्तु मामूली बातों में, जिन में न देश का सवाल हो, न धर्म का सवाल हो और न जाति का सवाल हो, उनमें स्त्री को सदैव पति की आज्ञा से ही चलना चाहिए। देश जाति, धर्म का जहां सवाल हो, वहां मेरी समझ में पति पत्नी भाव पीछे रहना चाहिये। पहिले अपने कर्तव्य को स्थान मिलना चाहिये। कर्तव्य के सामने अपने सुख ऐश्वर्य छोड़ देने चाहिए।

परन्तु इतनी कर्तव्यनिष्ठा कोई लावे कहां से ? ।

आर्यसमाजी चिल्लाते हैं कि गुण कर्म स्वभाव को देख कर शादी करना चाहिये, परन्तु ऐसा कौनसा मीटर गुण कर्म स्वभाव नापने का निकाला है, जिस से एक दम थर्मामीटर की तरह गुण कर्म स्वभाव जान लें। कहते हैं कि स्वयंवर विवाह बड़े अच्छे होते थे, और वह सिस्टम बड़ा अच्छा था। मेरी समझ में जितना यह तरीका दूषित है, उतना और कोई नहीं। परन्तु स्वामी जी एक तरीका लिख गए हैं जो किसी क़दर अच्छा कहा जा सकता है कि आचार्य और आचार्या सम्बन्ध निर्णय करने में मदद करें। पहिले ज़माने में इस तरह निर्णय होता भी होगा, परन्तु आज कल के समय में तो यह भी नहीं हो सकता।

आज कल तो आचार्य और आचार्या अपने शिष्यों को पहचानते भी न होंगे, कि ये हमारे गुरुकुल में या स्कूल में पढ़ता है, फिर दिल का जानना तो बहुत ही दूर की बात है।

ऐसी अवस्थाओं में कन्याओं तथा बालकों की शिक्षा का भार उनके माता पिता पर है। यदि दांत अपना चबाने काम का बिल्कुल छोड़दें और यह सोच लें कि आमाशय सब कर लेगा तो आप सोच सकते हैं कि क्या हालत होगी, इसी तरह जो काम माता पिता का है वह आचार्य पर नहीं छोड़ा जा सकता। जिन बातों को स्वामी जी लिख गये हैं कि माता पिता प्रारम्भ से ही ध्यान दें, जैसे उनकी बोल चाल उठना बैठना, आचार व्यवहार, रीति नीति, इन बातों को तो शुरू से ही शिक्षा देनी चाहिये, विशेषतः लड़कियों को। परन्तु इन बातों को तो आज कल लड़कियां बड़ी होने तक भी नहीं जान पाती। बच्चे पैदा होने लग पड़े, परन्तु उनको अभी तक बात चीत, उठने बैठने का तरीका ही नहीं मालूम। ऐसी कन्याओं की शिक्षा भला कब सुख दे सकती है।

क्या यह पति का काम है कि वह बच्चों की तरह अपनी स्त्री को भी उठना बैठना, बोलना वगैरः सिखावें ? और फिर जिस बात को वह १६ वर्ष तक करती रही है, वह तो उस के स्वभाव में दाखिल होगई। अब तो वह किसी से छुड़ाए नहीं छूट सकती। ऐसी अवस्था में जबकि स्त्री बड़ी हो चुकी है, बच्चे पैदा कर रही है, और पति उसको बात २ में टोकता है तो स्त्री स्वभावतः क्रोधित होगी। तो फिर सुख की जगह दुःख तो लिखा ही है। यह तो माता पिता का कर्तव्य था कि उसे सब बातें सिखाते, जिस से सुसराल में उसे कष्ट न हो।

पर्दे की रीति भी शायद इसी लिये चली हो कि स्त्रियों में अविद्या ज्यादः है, उनके दोष किसी तरह छिपाए जावें। जिस प्रकार मैले कपड़ों पर एक साफ़ चादर ढक दो तो कपड़े के सब दोष छिप जाते हैं। इसी प्रकार स्त्रियों के सब दोषों को ढाँकने के लिये पर्दा बनाना पड़ा होगा, जिस में कोई ऐब, बोल चाल, आचार व्यवहार का प्रगट न हो। अस्तु— विषयसे बहुत दूर न जाना चाहिये। आज कल स्त्री शिक्षा उत्तम न होने के कारण गृहस्थ सचमुच जंजाल है। शिक्षा-इतिहास भूगोल, गणित, व्याकरण के पढ़ने को ही नहीं कहते, अपितु शिक्षा तो वह है जो कि उस के आत्मा को, उस के दिमाग को, उसके शरीर को बनावे, जिस से संसार में जाकर उसे किसी तरह का भी कष्ट न हो। जो शिक्षा दुनियां में कष्टों से नहीं बचा सकती वह अपूर्ण है। आजकल की प्रचलित की

शिक्षा दिमाग को इस योग्य तो बना सकती है कि कठिन गणित के सवाल को हल कर ले, परन्तु इस योग्य नहीं बना रही कि वे गृहस्थ को सुखधाम भी बना सकें।

ज़रूरत इस बात की है कि जहां उनको दिमाग की शिक्षा दी जाती है वहां उन्हें व्यवहारिक शिक्षा भी दी जावे। नहीं तो गृहस्थ तो जंजाल है ही।

॥ इति शम ॥



कन्या गुरुकुल समाचार



यद्यपि ग्रीष्म ऋतु का मध्याह्न काल है तथापि अभी तक यहां पर उस प्रकार की गर्मी नहीं पड़ी थी जैसी कि पड़नी चाहिये थी। रात्रि प्रायः ठंडी ही रहती थी। मच्छड़ों का प्रकोप सारी दिल्ली भर में ही बहुत है परन्तु इस स्थान पर इनकी विशेष कृपा होने से रात्रि को प्रायः कई २ बार सभी उठ २ कर बैठते हैं अतः ठंडी ऋतु होने पर भी शांति पूर्वक पूरी नींद सोने का सौभाग्य कभी २ ही मिलता था। अब गर्मी भी खूब पड़ने लगी है।

ब्रह्मचारिणियों का साधारण स्वास्थ्य अच्छा है। गत मास दो ब्रह्मचारिणियां साधारण टाइफाइड रोग से पीड़ित होगई थी परन्तु परमात्मा की कृपा से और डाक्टरों की उत्तम चिकित्सा तथा देख रेख में वह शीघ्र ही आरोग्यता लाभ करके स्वस्थ हो रही हैं।

नव प्रविष्ट कन्याओं का यज्ञोपवीत संस्कार

गत ३० अप्रेल को यहां पर क्रीड़ाक्षेत्र में एक बड़ा उत्तम पिंडाल बनाया गया और देवियों का एक बड़ा भारी यज्ञ रचाया जाकर दीपावली के बाद प्रविष्ट हुई सभी कन्याओं का यज्ञोपवीत और वेद संस्कार किया गया। संस्कार के बाद उपस्थिति देवियों को—जिनकी संख्या लगभग ५०० होगी—कन्याओं के यज्ञोपवीत गृहण कराये जाने पर श्रीमती चन्द्रवतीदेवी अध्यापिका कन्या गुरुकुल का बड़ा प्रभावशाली और ललित स्वर में भाषण हुआ। श्रीमती धर्मपत्नी डाक्टर केशवदेव शास्त्री ने आर्य्यभाषा के पर्य्याप्त ज्ञान न होने के कारण आंगलभाषा में कन्या गुरुकुल के विषय में अपने विचार प्रगट किये जिसे आर्य्य भाषा में जनता को सुना दिया गया।

आपने जो कहा उसका सार यह है कि आज का दृश्य हमें उस वैदिक सभ्यता का ध्यान दिलाकर उस का चित्र सामने खींचता है जब कि कन्याओं के यह संस्कार सभी लोग ऐसे यज्ञ रचाकर करते थे। स्त्री शिक्षा का प्रश्न यदि हल होसकता है तो इसी गुरुकुल शिक्षाप्रणाली से ही हो सकता है। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में शिक्षिता देवियां तो हैं परन्तु यह आदर्श उनके सन्मुख नहीं है। अतः कन्या-गुरुकुल के सामने जो बड़ाभारी प्रश्न है वह यह कि क्या वह स्त्री-शिक्षा के अभी तक असिद्ध प्रश्न का हल सन्तोष जनक कर सकेगा? उन्होंने कार्य्यकर्तृ देवियों की प्रशंसा करते हुए गुरुकुल के प्रति जनता का प्रेम भी बतलाया कि ५० के स्थान में ९० कन्यायें ली जाने पर भी लोगों की ओर से और अधिक कन्यायें प्रविष्ट कराने की प्रबल इच्छा है। उनके ख्याल में लड़के लड़कियों का बराबर ही उच्च शिक्षा देनी चाहिये किन्तु यदि

दोनों में से किसको शिक्षा दी जाय यह प्रश्न उपस्थित हो तो लड़कियों की शिक्षा पर ही बल देना देश और जाति के लिये अधिक हितकर होगा। इसके बाद धनके लिये अपील हुई जिस पर उस समय तथा बाहर से आया हुआ सब द्रव्य लगभग ५००) के हुआ।

षट् मासिक परीक्षायें।

१० मई से छमाही की परीक्षायें प्रारम्भ हुई थीं परिणाम भी सन्तोष जनक रहा, इस से और अधिक उत्तम परिणाम होना चाहिये था। गुजरात प्रान्त की वह कन्यायें जो आज से छै महीने पूर्व हम से आर्य्य भाषा में बातचीत भी न कर सकती थीं उन्हों ने बड़ी उन्नति कर ली है और उन्हें ऊपर की श्रेणी में चढ़ा भी दिया गया। और भी दो चार कन्याओं ने बहुत शीघ्र भाषा-ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु अधिक आयु वाली वह कन्यायें जिन्हें अन्यत्र आर्य-भाषा की शिक्षा मिलती रही है विशेष कर पंजाब के घरों की देवियां आर्यभाषा में वह उन्नति नहीं कर सकीं जो उन से अपेक्षित थी। कारण यह कि पंजाब में आर्य भाषा का प्रचार बहुत कम है। संयुक्ताक्षर तथा मात्राओं की अशुद्धि बड़े २ सुशिक्षित पंडितों के लेख में भी दीख पड़ती हैं। अतः कन्याओं की आर्यभाषा की नीव कच्ची रही है। आशा है यहां रह कर शीघ्र ही यह कन्यायें भी इस कमी को पूरी कर लेंगी और वार्षिक परीक्षा के समय तक यह त्रुटि दूर हो जावेगी।

अध्यापिकावर्ग

इस मास में हमारे शिक्षण विभाग में दो नई देवियां आई हैं एक ज्यूनियर की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हैं दूसरी सीनियर ट्रेनिंग पास हैं। इन दोनों ने अन्यत्र कार्य कर के अनुभव प्राप्त कर लिया है अतः आशा है कि इन के आने से सब श्रेणियों में शिक्षण अच्छी तरह से हो सकेगा और अब बालोद्यान (किंडर गार्डन) क्लास भी खुल जावेगा।

ग्रीष्मावकाश

चूंकि यह प्रान्त मलेरिया प्रधान है अतः यहां पर ग्रीष्मावकाश न होकर वर्सात के दिनों में सब स्कूल कालिज बन्द होते हैं इसीलिये कन्या गुरुकुल में भी उसी समय अवकाश रहेगा। किन्तु ब्रह्मचारिणियाँ अपने २ घरों में नहीं जायंगी। यदि समुचित प्रबन्ध हो सका तो उन्हें कहीं भ्रमणार्थ ले जाया जायगा।

विचार प्रवाह

मज़दूर दल से आशा

जिस समय इंगलैण्ड का शासन मज़दूर दल के हाथ में गया था नरम दल वाले राजनीतिज्ञों के अतिरिक्त और भी कितने ही हिन्दुस्तानी थे जो कि शुद्ध हृदय से यह समझते थे कि मज़दूर सरकार अवश्य भारत से न्याय करेगी और राज सत्ता संभालने से पहिले भारत के विषय में उन उदार विचारों को—जिनका इस दल के मुख्य २ नेता प्रकाश किया करते थे—अवश्य कार्यरूपमें परिणत करेगी। परन्तु हमारे भाइयों का यह विचार सर्वथा निर्मूल सिद्ध हुआ। गत ५ अप्रैल को जो विवाद ब्रिटिश पार्लियामेंट में हुआ उसने रही सही आशा को

भी मिटा दिया। लार्ड कर्ज़न ने प्रस्ताव पेश किया कि सरकार १९१९ वाले भारतीय शासन सुधार सम्बन्धी कानून के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष आशय के विरुद्ध कोई कार्य न करेगी। इस प्रस्ताव पर मज़दूर सरकार ने जो अनुराग दिखलाया उसका परिचय इसी बात से मिलता है कि न तो उस समय महामन्त्री ही उपस्थित था और न ही कर्नल वेजबुड को छोड़कर कोई अन्य वज़ीर। कोई पौने तीन घंटे तक विवाद हुआ जिसमें से २ घंटे के लगभग लार्ड कर्ज़न और उसके पोषक महाशय ने ही लिये। मिस्टर रिचर्डस भारतीय उपमन्त्री ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह उससे अधिक--जो कि भारत सरकार स्वयं कर रही है—और कुछ करने को तय्यार नहीं। इससे इंगलैण्ड के अनुदार दलमें जो हर्ष की लहर चली वह हमारे पाठक स्वयं विचार करलें। जो हमारे नरम दल के नेताओं की न्यून से न्यून मांग है इस समय मज़दूर सरकार उसको भी, उसके किसी अंश को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं। तिस पर भी महामंत्री मिस्टर मैकडानल्ड चाहते हैं कि भारत वासी मज़दूर सरकार पर भरोसा रखें। वास्तविक बात यह है कि इस समय मज़दूर सरकार को स्वयं अपनी जान के लाले पड़े हुये हैं। भारत के प्रश्न पर वह अपनी राजसत्ता को खोने को तय्यार नहीं। भारत एक दास देश है, इस के निवासी बल तथा शक्ति से हीन हैं, अतः उनसे किये हुये प्रण बड़ी सुगमता से तोड़े जा सकते हैं। मज़दूर सरकार की अपनी नाजुक परिस्थिति को जानते हुए भी हमारे नरम दलके भोले भाले भाई इस बात की आशा में कि वह वहां जाकर मजदूर सरकार के महामान्य मंत्रियों को समझा सकेंगे डैप्यूटेशन लेकर इंगलैण्ड जारहे हैं। वह भूल जाते हैं कि आजकल के सभ्य संसार में अपने स्वार्थ से बढ़कर कोई चीज नहीं। मज़दूर सरकार अपने जीवन, अपने भाईबन्धु मजदूरों के हित और श्रेय की ओर ध्यान दे अथवा भिखारी अपाहिज भारतीयों के आगे अपनी रोटी का टुकड़ा फेंक दे? महात्मा गांधी के शब्दों में हमें कोई भी बाहर की शक्ति स्वराज्य नहीं दिला सकती। यदि स्वराज्य लेना है तो अपने ही हाथों मिलेगा। स्वयं दृढ़ बनो दूसरे आप से आप झुक जायेंगे।

क्या इसलाम के अन्तिम दिन आ पहुंचे?

क्या इसलाम के अन्तिम दिन आ पहुंचे हैं? हमें शोक से लिखना पड़ता है कि इस प्रकार के उदाहरण दिन प्रति दिन बढ़ते जाते हैं जोकि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर हाँ में देने के लिये हमें विवश करते हैं। जो धर्म न्याय और सत्य को अपना अवलम्ब नहीं समझता, जिस की रक्षा के लिये उसके सिद्धांत जवाब दे दें और उसे लोक सत्ता और राजसत्ता का सहारा लेना पड़े, जिसमें प्रेम के स्थान में तलवार की ही झन्कार अधिक सुनाई दे और जिसका अपने अनुयाइयों के हृदय पर से प्रभाव हट जाय वह आज भी गया और कल भी गया! भूल करना मानव समाज का गुण है। किसी धर्म अथवा जाति विशेष से इसका सम्बन्ध नहीं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी भूल कर सकते हैं। इस लिये नहीं कि वह हिन्दू अथवा मुसलमान अथवा ईसाई हैं वरन् इस लिये कि वह सब ही मनुष्य समाज का अंग हैं। धर्म और शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य यही है कि वह मनुष्य को गलतियों और भूलों से बचावे और सत्मार्ग को दिखलाकर उसका जीवन सुखी और शांतिमय बना सके। किसी धर्म की विशुद्धता और सफलता को जांचने की एक मात्र कसौटी यही है कि वह अपने अनुयाइयों को--यदि वह उल्टे

रास्ते पर चल रहे हों—तुरन्त रोक देता है। जब से हिन्दू धर्म ने इस नियम का त्याग किया उसका रसातल को जाना आरम्भ होगया। इसके आचार्यों ने जब से स्वार्थ वश होकर जनता को अन्धकार, कुप्रथाओं कुविचारों और कुकर्मों में फंसे हुये देख कर भी उनको इस कुमार्ग से रोकने का कोई यत्न नहीं किया वरन् आप भी इन दुष्कृत्यों में उनका साथ देने लगे तब से हीं हिन्दू धर्म की हानि आरम्भ हुई। अछूतों के साथ अन्याय, स्त्री जाति की पीड़ा, विधवाओं पर अत्याचार देख कर भी यदि जाति के अगुआ और नेता; धर्म के आचार्य और उपदेशक चुप बैठे रह सक्ते हैं तो वह धर्म निर्जीव ही समझना चाहिये।

आज ऐसी ही अवस्था इस्लाम की हो रही है। हम देखते हैं कि कई स्थानों पर हिन्दू मुसलमानों में दंगा होता है। हिन्दू लूटे जाते हैं, मारे जाते हैं, उनकी स्त्रियों पर हाथ उठाया जाता है, परन्तु इस्लाम इन सब को उदासीन भाव से देखता है। अपने अनुयाइयों में इस अनुदारता अशिष्टता और पापाचार को देखकर भी उसके मौलवी और मुल्ला चुप्पी साध लेते हैं। परस्त्री पर हाथ उठाना किस धर्म में अच्छा समझा गया है ? परन्तु इन दंगों में हमें कई स्थानों से ऐसे समाचार मिलते हैं। यदि इस्लाम में जीवन होता तो इस गिरावट पर इस में एक प्रकार का तहलका मच जाना चाहिए था। आग लग जानी चाहिये थी। परन्तु क्या ऐसा हुआ ? दो व्यक्तियों में किसी भी बात पर झगड़ा होता है तो झट मुसलमानी तलवार बाहर ! मसजिद के आगे बाजा बजा और तलवार बाहर ! हिन्दुओं ने होली मनाना आरम्भ किया और तलवार की झनकार गूंज उठी ! हम पूछते हैं कि क्या सत्य सिद्धान्तों का, मधुरता और प्रेम का आज इस्लाम से दिवाला निकल गया है ? हम यह मान लेते हैं कि हिन्दू ग़लती करते हैं, परन्तु क्या इस्लाम के पास इस ग़लती को दूर करने के लिये तलवार के अतिरिक्त और कुछ नहीं ? हम एक मिनट के लिये भी नहीं मानते कि इस्लाम तलवार को ही सब कुछ समझता है, फिर इस तलवार के म्यान में रखने के लिये उस के आचार्यों के आदेश और फतवे क्यों नहीं निकलते ? यदि यह कहा जाय कि आचार्य तो इस ओर पूरा बल देते हैं परन्तु साधारण मुसलमान नहीं मानते तो भी हमारा ही कथन सत्य सिद्ध होता है कि इस्लाम का अपने अनुयाइयों के हृदय पर प्रभाव नहीं रहा।

आज भूपाल की बेगम साहिबा अपना आदेश निकालती हैं कि जो कोई भी मुसलमान अन्य धर्म को ग्रहण करेगा उसे ३ साल की कैद होगी। क्या इस्लाम का यही न्याय और उस की सत्ता रह गई है कि आज उसे राजसत्ता का आश्रय लेना पड़ा ? क्या इस का यही अभिप्राय नहीं कि इस्लाम इतना निर्बल और कमज़ोर है, उस के सिद्धांतों में कोई सचाई नहीं रही कि एक मुसलमान रियासत में भी लोग इस्लाम से विमुख हो रहे हैं और उसके आचार्य उनको निज धर्म की खूबियां दिखलाकर अपने धर्म में रखने में असमर्थ हैं इस लिये बेगम साहिबा राजसत्ता द्वारा उन की सहायता करने लगी हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बेगम साहिबाका यह आदेश कितना अन्यायपूर्ण है। हमें शोक है तो इस बात का कि इस्लाम के बड़े बड़े भी नेता और आचार्य्य इस प्रकार की बातें देखते हैं और चुप हैं। क्या आज इस्लाम में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो कि बेगम साहिबा के इस अन्यायपूर्ण आदेश पर—जो कि इसलामी पर बदनुमा धब्बा है—आवाज़ उठावे ? क्या किसी मुसलमानी पत्र, मौलवी और मौलाना ने उसको अन्याय और असत्य समझ कर इसका प्रति

रोध किया ? हम अपने मुसलमान मित्रों से प्रार्थना करते हैं कि वह शांति से इस पर विचार करें और सोचें कि बेगम साहिबा ने उनके धर्म की कितनी तौहीन की है।

वाइकोम का सत्याग्रह

यह अछूतउद्धार सम्बन्धी सत्याग्रह अभीतक उसी प्रकार चल रहा है। गत मास में सत्याग्रही वीर दो दो, तीन २ के जत्थों में निषिद्ध सड़कों पर चलते रहे और ट्रावनकोर सरकार उन्हें पकड़ कर जेल भेजती रही। हमारे अछूत भाइयों की इस वीरता ने यदि और कुछ नहीं किया तो भी इतना तो आवश्य किया है कि समस्त भारत की आंखें हिंदूधर्म के नाम पर किये गये इस अत्याचार की ओर बड़े ज़ोर से खींचदी हैं। प्रत्येक हिंदू अपने मनको टटोलने लग पड़े हैं कि क्या हम अपने भाइयों से इसी प्रकार अन्याय और अनीति का व्यवहार करते रहेंगे ? कुछ पुराने विचारों वाले धर्म के ठेकेदार चाहे ऐसे हों जो कि अब भी—अछूत भाइयों के पक्ष की सत्यता अपने मन में मानते हुये भी—चिरप्रतिष्ठित मिथ्या अभिमान के इन्द्रजाल में फंसे हुये अछूतों पर किये गये अत्याचारों को ठीक कहते हों। नहीं तो समस्त हिंदूसमाज अपने ऊपर के धब्बे की महती कालिमा को असत्य समझने लग पड़ा है। इस सत्याग्रह का एक और लाभ यह हुआ है कि भारत के अन्य प्रान्तों में रहने वाले अछूतों—जैसा कि बंगाल के नाम शूद्रों-में भी जागृति पैदा हो गई है। परमात्मा के यह अमृत पुत्र जहां अबतक उच्च जातीय हिन्दुओं से दया की याचना करते हुए भिखारी ही बने हुए थे वहां आज निज अधिकार को बलात छीनने वाले क्षत्रिय के रूप में दिखलाई दे रहे हैं। उन का यह युद्ध सत्य, अहिंसा और धर्म पर निर्भर है अतः सफलता अवश्य होगी।

इस सम्बन्ध में एक आनन्ददायक समाचार यह भी आया है कि इन भाइयों के १२ मुखिया नेताओं ने आर्यसमाज में प्रवेश कर लिया है और इन में से एक भाई को—जिसको पहिले ऐसा करने से रोका गया था—इन निषिद्ध सड़कों पर चलने की आज्ञा मिल गई है। यह समाचार बड़े गौरव और महत्व का है। आर्यसमाज रूपी पारस को छूकर शताब्दियों के पददलित और ठुकराये हुए भाई भी तत्क्षण अपने अधिकार प्राप्त कर सके हैं इस से बढ़ कर हमारे लिये सुसमाचार और क्या हो सकता है ? हे आर्यसमाजी वीरो उठो बढ़ो और देश भर में सिंहनाद बजादो। देश की दरिद्रता और दासत्व के अन्धकार को वैदिक धर्म के शांतिमय प्रकाश से दूर भगादो ?

आचार बनाम विचार

मौलाना मुहम्मदअली के इस्लाम विषयक भाषण की समालोचना करते हुए महात्मा गाँधी ने उपरोक्त शीर्षक से नवजीवन में एक लेख लिखा है। इस में वह तीन बातों को पेश करते हैं—

१. मनुष्य के आचार और विचार में भेद होता है।
२. श्रेष्ठ विचार वालों का आचार बुरा हो सक्ता है।
३. श्रेष्ठ आचार वाले के विचार दूसरे विचारों के मुकाबिले में हीन हो सक्ते हैं।

इन उपरोक्त सचाइयों से किसी को इन्कार नहीं होसकता। आगे चलकर महात्माजी लिखते हैं:—

इस वर्तमान चर्चा में एक बात साफ़ तौर पर चमक उठती है और यह मानो इस अंधेरे में आशा की किरण है। सब लोग यह प्रतिपादन करते हुये मालूम होते हैं कि आचार हीन विचार बेकार है और अकेले शुद्ध विचार से स्वर्ग नहीं मिलता।

परन्तु आचार की पूजा करते हुए हमें विचार की शुद्धता की आवश्यक्ता को न भुला देना चाहिये। जहां विचार में दोष होगा वहां आचार अन्तिम सीढ़ी पर न चढ़ सकेगा।......धर्म का अर्थ यही हो सक्ता है कि उच्च से उच्च विचार अर्थात् विश्वास और उसका उच्च से उच्च आचार।

मौलाना के भाषण का सार महात्मा जी अपने शब्दों में इस प्रकार देते हैं:—"मैं गांधीजी का पुजारी तो हूं, पर गांधी जी मेरे धर्म गुरू नहीं। गांधी जी का धर्म मेरे धर्म से जुदा है। धार्मिक विश्वास तो एक व्यभिचारी मुसलमान के जो हैं वह मेरे भी हैं और इन्हें मैं गांधी जी के धार्मिक विचारों से अच्छा समझता हूं।"

यदि मौलाना भी इस मधुरता से अपने विचारों को स्पष्ट कर सक्ते तो यह हुल्लड़ न मचता। मौलाना का यह कहना कि धर्म के लिहाज़ से एक दुराचारी मुसलमान महात्मा गांधी से बढ़कर है उपरोक्त वाक्यों के मुकाबले में मानो कोमल सुवासित पुष्प के मुकाबले में कठोर पत्थर है। जहां गांधी जी के शब्दों में विचार का मुकाबला ही प्रधान रूप से स्पष्ट होता है वहां मौलाना के शब्दों से विचारों की अपेक्षा व्यक्ति दल की ही प्रधानता अधिक टपकती है। इसी से मौलाना के विचारों ने भ्रम डाल दिया। जहां मौलाना ने अपने धर्म भाइयों का भ्रम दूर करने का यत्न किया वहां उन्होंने यह विचार न किया कि मेरे शब्द हिन्दुओं में भ्रम पैदा कर सकते हैं। अपने कांग्रेस वाले भाषण में यदि मौलाना ने अछूतों के बंटवारे और आधों को मुसलमान बना लेने वाली बात न कही होती तो कदाचित हिन्दुओं के मन में इस समय भी सन्देह न होता। कांग्रेस की वेदी से मौलाना का यह प्रस्ताव करना हिन्दुओं के मन में यह सन्देह उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त था कि मौलाना कांग्रेस की वेदी को भी इस्लाम प्रचार का साधन बनाना चाहते हैं। अस्तु, हम प्रसन्न हैं कि महात्मा जी की सहायता से इस झगड़े का अन्त हो गया। अन्यथा न जाने इसका कितना भयंकर परिणाम निकलता।

—*—

स्वराज्य पार्टी का कार्यक्रम

स्वराज्य पार्टी वाले यह मानते हैं कि हम कौंसिलों में जाकर भी कुछ नहीं कर सक्ते यदि जनता हमारे साथ नहीं। यदि बाहर के कार्य और घोर आंदोलन द्वारा सरकार को यह विश्वास नहीं दिलाया जाता कि जो कुछ हम कर रहे हैं उसमें समस्त देश हमारे साथ है। उन्होंने गत कौंसिल अधिवेशन में जो कुछ किया वह बहुत कुछ किया परन्तु सरकार ने उसकी तनिक भी परवाह नहीं की। वह उसी तरह अब भी दनदना रही है मानो कुछ हुआ ही नहीं। इस अवस्था में क्या स्वराज्य पार्टी वाले पेसेम्बली और कौंसिलों के भीतर के ही कार्य से संतुष्ट रहेंगे? उनकी कार्यकर्त्री सभा की बम्बई वाली गत बैठक में जो निश्चय हुआ है उससे तो ऐसा ही प्रतीत होता है। उन्होंने देश में जागृति उत्पन्न करने के लिये कोई कार्यक्रम स्थिर नहीं किया। क्या यह काम उन्होंने जानकर महात्मा गांधी के लिये छोड़ दिया है? महात्मा जी यदि न छूटते तो क्या स्वराज्यपार्टी देशव्यापी कार्य की इसी प्रकार अवहेलना करती? यदि नहीं तो फिर वह देश में, जनता में अपना कार्य आरम्भ क्यों नहीं करती? हमारे नरम दल वाले भाइयों की समुदायिक मृत्यु का कारण यही है कि उन्होंने जनताको अपने साथ लेना आवश्यक नहीं समझा। क्या यह घटना स्वराज्यपार्टी को कोई शिक्षा नहीं देती? तो फिर देरी किस बात की है?

नारी प्रतिरोध

जापान क्रानिकल लिखता है:—

मिस सी० विनचिनयिन ने—जो कि हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त एक १८ वर्षीय चीनी युवती हैं—चीनी पत्रों में यह विज्ञप्ति निकाली है कि वह उस सगाई को जो कि उसके माता पिता ने उसके बाल्यकाल में हसिगंपाऊची नामक युवा से उसके बाप द्वारा की थी मानने से इन्कार करती है और वह अपने सम्बंधियों और मित्रों से प्रार्थना करती है कि वह उसकी मंगनी को बिल्कुल टूटी हुई समझें।

क्या भारतीय माता पिता कुछ इससे शिक्षा ग्रहण करेंगे ?

मालवीय बिरादरी

आजकल इलाहाबाद की मालवीय बिरादरी में खूब हलचल मच रही है। इस बिरादरी में—अन्य बिरादरियों के सदृश—उदार और अनुदार, शिक्षित और अशिक्षित कर्म द्वारा करने वाले और केवल मुंह से कहने वाले सभी प्रकार के व्यक्ति शामिल हैं। हमारे पूज्यपाद नेता पं० मदनमोहन मालवीय भी इस बिरादरी के एक देदीप्यमान रत्न हैं। अस्तु।

हिन्दीसंसार के सुविख्यात स्वर्गीय पं० बालकृष्ण के सुपुत्र पं० लक्ष्मीकान्त भट्ट मालवीय एक उदार, स्वतंत्र विचार वाले तथा कर्म शील व्यक्ति हैं। मालवीय समाज में प्रथा रही है कि उनका लेन देन विवाह शादी केवल अपनी बिरादरी में ही हो सकता है। सारे भारत में इस बिरादरी के केवल ३०० घर हैं। इस अवस्था में पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि इस बिरादरी में कितने अनमेल विवाह होते होंगे ? कितनी कन्यायें विवाह होते ही अपना सिर पीट लेती होंगी और कितने युवक अपने को अयोग्य, अशिक्षिता बालाओं के साथ जीवन भर के लिये बंधा हुआ देख कर अपने जीवन के विनाश पर आंसू बहाते होंगे, अथवा कुप्रवृत्तियों के वशीभूत होकर अपनी इच्छाओं और लालसाओं की पूर्ति के लिये कुत्सित और जघन्य मार्ग का अवलम्बन करते होंगे ? अपने समाज की इस दुरावस्था को देख पं० लक्ष्मीकान्त भट्ट ने बिरादरी के प्रचलित नियमों के विरुद्ध अपनी कन्या का भावी जीवन सुखमय बनाने की लालसा से उसका विवाह एक सुपात्र और सुयोग्य वर से—जो कि मालवीय बिरादरी से बाहर है—कर दिया। बस विवाह करना था कि बिरादरी में मानों आग लग गई। इस वेग से तूफ़ान और आंधी उठी कि मानों यह बिरादरी को समूल ही उखाड़ फेंकेगी। बिरादरी के कई शिक्षित, समझदार कर्णधार जो कि हिन्दूसंगठन के बड़े कट्टर पक्षपाती रहे हैं इस विवाह से चौंक पड़े और इस विवाह के विरुद्ध घोर उत्पात खड़ा कर रहे हैं। हम इस उथल पुथल से प्रसन्न हैं। इस का परिणाम अच्छा ही होगा। पं० लक्ष्मीकान्त जी ने जिस साहस और वीरता का कार्य किया है उसके लिये वह धन्यवाद के पात्र हैं। हमें आशा है कि वह इस तूफ़ान को शान्ति और वीरता से सहन करेंगे। उनका बिरादरी से निकाल दिया जाना एक जानी हुई और साधारण बात थी। समाज के नियमों की—चाहे वह उचित हो अथवा अनुचित—अवहेलना करके कोई व्यक्ति समाज के दण्ड से बच नहीं सकता। इस अवस्था में उस वीर को—जो कि जान बूझ कर समाज के निर्धारित नियमों को व्यक्तियों तथा समाज के लिये हानिकारक समझता हुआ अपने आचरण द्वारा उनका प्रतिरोध करता है-एक सच्चे सत्याग्रही की भाँति उस सब दण्ड को जो कि समाज उसे दे अपने शिर पर शान्ति से, हंसते हुये धारण करना चाहिये। उस पर कई प्रकार के आक्षेप किये जायेंगे। सम्भव है उन पर अनुचित दोष लगाये जायें और जघन्य

वासनायें ही इस कार्य की प्रेरक ठहराई जायें। यह सब कुछ होते हुये भी बिरादरी की सीमा को उल्लंघन करने वाले वीर को साहस; शांति और आनन्दपूर्वक उस तूफान को देखना चाहिये जोकि उसने खड़ा किया है। इस उथल पुथल में भविष्य के लाभ का वीज विद्यमान है। बिरादरी में सदा ही अनुदारता और कट्टरपन का जमघट हुआ करता है। कोई व्यक्ति चाहे वह अन्य बातों में कितना ही बड़ा, पूज्य तथा श्रद्धा का पात्र हो—यदि यह इच्छा करे कि मैं बिरादरी को साथ लेकर समाजसुधार का काम करूं तो यह असम्भव है। यह मानव-मनो विज्ञान के सर्वथा विरुद्ध है। समाज सुधारकों को बिरादरी को पीछे ही छोड़ना पड़ता है। उन्हें भाग कर बिरादी से कहीं आगे जाकर अपना कार्य करना होता है। इस पर बिरादरी में चीत्कार मचता है। इस पर ईंट और पत्थर फेंके जाते हैं: गन्दे वाग्वाण चलाये जाते हैं, परन्तु समय आता है कि उस नियम को तोड़ने वाले साहसी वीर के दिखलाये मार्ग पर स्वयं बिरादरी चलती है। परन्तु एक शर्त है कि वह स्वयं विचलित न हो जायं और बिरादरी के डर से, दण्ड के भय से, कष्ट की शंका से अपने कृत्य को अच्छा समझते हुये भी बिरादरी से क्षमा की याचना न कर बैठे। अथवा इन आक्षेपों से तंग आकर स्वयं भी आक्षेप करने न लग जाये। और इस प्रकार अपने किये को मिट्टी में मिला दे।

हम श्री लक्ष्मीकान्त जी को उनके इस साहस और वीरता पर पुनः बधाई देते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि अनुदारता, अशिक्षा, अनौचित्य के इन मठों में इस प्रकार की सर्वत्र खूब हल चल हो, खूब समुद्र मन्थन हो कि जिस से अमृत निकल सके। और समाज का कल्याण हो।

—*—

ज्योति का नया वर्ष

इस मई माससे ज्योतिके पंचम वर्षका प्रारम्भ हुआ है। गत् ४ वर्षों तक ज्योति ने आर्य्य भाषा की मासिक पत्रिकाओं में जो स्थान प्राप्त किया है वह सन्तोषजनक है। ज्योति के प्रशंसक और प्रेमियों की संख्या में दिनों दिन वृद्धि देख कर हमें बहुत से विघ्न बाधाओं तथा बड़े आर्थिक संकटों के रहते हुये भी ज्योति को स्थायी रखने का प्रयत्न करना पड़ा है। यद्यपि कई महानुभावों की द्रृष्टि में इसके सम्पादान में जो समय लगता है वह व्यर्थ ही जंचता है और उनका आग्रह है कि इसी समय को पुस्तकलेखन आदि स्थायी रचना में व्यय किया जाय वह अधिक उपयोगी होगा तथापि पंजाब में ज्योति उत्पन्न होकर हिंदीप्रचार के लिये ज्योति ने पुनः जागृति करदी है और यद्यपि आर्यभाषा का साधारण ज्ञान बहुधा जनता में कम ही है तथापि हिन्दी के पत्रों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होचुकी है। हर्ष का विषय है कि अब पंजाब प्रान्तीय हिंदी—साहित्य—सम्मेलन की कृपा से आर्यभाषा प्रेम और भी दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। अतः पंजाब म हिंदी की पत्रिकायें जितनी भी हों थोड़ी हैं। इस दशा में ज्योति को चलाते रहने का ही निश्चय हुआ है परन्तु थोड़ा सा परिवर्तन करना पड़ा है।

ज्योति के पाठकों को ज्ञात हो चुका है कि ज्योति सम्पादिका के ऊपर कन्यागुरुकुल

इन्द्रप्रस्थ के कार्य्य का भार कई मास से पड़ गया है जिसके कारण ज्योति को सारा समय वह नहीं देसकतीं। अभी तक तो ज्योति लाहौर से ही प्रकाशित होती रही परन्तु इस नये वर्ष से ज्योति का प्रबन्ध विभाग दिल्ली में आ गया है और अब ज्योति दिल्ली से प्रकाशित हुआ करेगी ताकि समय पर और अच्छी रीति से सम्पादान हो सके तथा प्रबन्ध की देख भाल भी हो सके क्योंकि बहुत से सज्जन तथा देवियों को ज्योति न मिलने की शिकायत ही रहती थी। वह अब बहुत कुछ दूर हो जायेगी।

सम्पादन विभाग की एक शाखा लायलपुर में थी वह वहीं रहेगी अतः सब समाचारपत्रों के प्रबन्धकर्ताओं तथा समालोचना के लिये पुस्तक इत्यादि भेजने वालों से प्रार्थना है कि परिवर्तन के पत्र तथा समालोचनाके लिये पुस्तकें लायलपुर ही भेजें।

लेख कविता इत्यादि चाहें लायलपुर या दिल्ली कहीं भी भेजें परन्तु विज्ञापन मूल्य तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार अब प्रबन्धकर्त्ता ज्योति कोठी नं० ४ दर्यागंज दिल्ली से ही करना चाहिये।

—*—

महात्मा गांधी के उद्गार

१ विदेशी वस्त्रों का वहिष्कार।

महात्मा गांधी अपने २२-५-२४ के पत्र यंग-इन्डिया में लिखते हैं कि "गत सप्ताह मैंने साम्राज्य की वस्तुओं का वहिष्कार करना व्यर्थ है-यह दर्शाया था- अब मैं यह भी मानता हूँ कि वह हानिकारक भी है चूंकि इस से देश का ध्यान केवल एक मात्र अत्यावश्यक और फलदायक वहिष्कार की ओर से हट जाता है। मैं कई बार मान चुका हूं कि अगर हम अपने विचारसे अहिंसा को निकाल दें तो वह लोग—जो अहिंसा को स्वराज्य प्राप्ति का एक मात्र उपाय नहीं मानते और जिनका विश्वास है कि अहिंसात्मक कार्य्यक्रम असफल हुआ है—उन तरीकों को अख्तियार करेंगे ही जिन्हें वह बहुत उपयोगी समझते हैं और उन्हें करना भी चाहिये। परन्तु मेरा यह ख्याल है कि साम्राज्यवस्तुओं का वहिष्कार वर्तमान शासन प्रणाली के रहते हुए असम्भव है। जहां तक मैं देख सकता हूँ मुझे यह ज्ञात होता है कि अहिंसा तथा उसके अन्तर्गत जो भाव है उसे यदि न प्रयुक्त कर उसके स्थान में अन्य किसी का प्रयोग हो सकता है तो वह सशस्त्र राजविद्रोह है। हम अगर इसकी तैयारी करना चाहते हैं तो साम्राज्य वस्तु-वहिष्कार न केवल न्याय युक्त वरन् नैतिक कार्यक्रम का अत्यावश्यक अंग बन जाता है। इसके स्थायी रखने और इस पक्ष में आन्दोलन करने से जैसे २ हमें अपना गौरव पता लगता है हमारे खून में जोश होता जाता है अतः स्वाभाविकतया ऐसे आन्दोलनों का परिणाम अनियन्त्रित हिंसा ही होती है। अगर ऐसा आन्दोलन कुचल दिया जाय तो कुछ परवाह नहीं होनी चाहिये वह भी एक प्रकार की शिक्षा ही समझी जायगी परन्तु प्रत्येक बार जब २ कुचलने के मौके होंगे तो बहुतों का अधःपतन होता रहेगा और बहुत थोड़ों में उत्साह की वृद्धि होगी। और उन थोड़े उत्साही समूह में से ऐसे वीर सैनिक निकलेंगे—जैसे कि विलियम—मौनव्रति ने अपने लिये तैयार किये थे। यदि नैतिक कार्य्य-कर्ता लोग इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि भारत का इतिहास नया नहीं लिखा जा सकता वरन् उसे भी पाश्चात्य युरोपीय देशों की कार्य्यशैली का ही अनुकरण करना चाहिये तब तो उनका साम्राज्य-वस्तु-वहिष्कार कुछ माने रखता है

और मैं उसे उचित समझता हूं । यद्यपि यह कभी सफल नहीं हो सकता परन्तु तौ भी आदर्श के रूप में इसे क़ायम रखना चाहिये क्योंकि यह आवश्यक वाष्प तैयार करने की एक फैक्टरी ही समझी जायगी । भारत को बहुत बार बरते हुये पुराने तरीके को अख्तियार करने का अधिकार है अगर उसकी ऐसी ही इच्छा हो; और पृथिवी की कोई भी शक्ति उसे इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकती ।

परन्तु मैं पूर्ण विश्वास से कहने का साहस करता हूँ कि तलवार का मार्ग भारत के लिये खुला नहीं है । मैं बलपूर्वक कहता हूं कि अगर भारत को यही मार्ग स्वीकार है तो उसे इन दोनों में से एक बात के लिये अवश्य तैयार रहना होगा :—

(१) या तो बहुत सी पीढ़ियों तक विदेशी शासन के अधीन रहना हो ।

(२) अथवा केवलमात्र हिन्दू या केवलमात्र मुसलमान शासन में हमेशः रहना होगा ।

मैं जानता हूँ कि कुछ हिन्दू भी हैं जोकि यह चाहते हैं कि भारत में यदि हिन्दू राज्य न हो सके तो अंग्रेजी राज्य में ही रहना उत्तम है । दूसरी तरफ कुछ मुसलमान भी ऐसे हैं जोकि मानते हैं यदि बिल्कुल मुसल्मानी राज्य स्थापन न होसके तो अंग्रेजों के शासन में ही रहते रहेंगे । ऐसे थोड़े से व्यक्तियों के लिये मेरे पास कोई युक्ति नहीं है । उन्हें रेत में नाव चलाते रहना चाहिये । परन्तु मैं जानता हूँ कि बहुत से लोग ऐसे हैं जो विदेशी शासन से तंग आचुके हैं और भारत को उस से छुड़ाने का उपयुक्त साधन प्राप्त करने को तैय्यार हैं । मैं उनको निश्चय दिलाता हूँ कि ऐसा स्वराज्य जिस में हिन्दू मुसल्मान तथा अन्य मतावलम्बी भी समता से भाग ले सकें बहुत थोड़े अरसे में मिल सकता है यदि दिमाग़ी काम वाले विचार-शील व्यक्ति नितान्त अहिंसात्मक उपायों का अवलम्बन करें । इसके विपरीत मेरा विश्वास है कि ऐसा स्वराज्य अन्य किसी उपाय से नहीं प्राप्त हो सकता ।

परन्तु थोड़ी देर के लिये मैं यह मान लेता हूँ कि कांग्रेस का जो मत है उसके रहनेसे कांग्रेस के कार्य्यकर्ता हिंसात्मक वायुमण्डल पैदा नहीं कर सकते, साम्राज्य-वस्तु बहिष्कार विफल होकर ऐसा वायुमंडल उत्पन्न कर सकता है इस लिये मैं इतना भी कहने का साहस करता हूँ कि बहिष्कार का प्रस्ताव कांग्रेस मत से बाहर का प्रश्न था । परंतु यह प्रश्न केवल कांग्रेस ही निर्णय कर सकती है ।

२. चर्खा और खद्दी ।

इसलिये आओ हम पाठकों का ध्यान जो इसका दूसरा स्थानापन्न हो सक्ता है अर्थात् विदेशी-वस्तु-बहिष्कार उसकी ओर ले जावें मैं सब लिबरल, नैशनलिस्ट तथा कांग्रेस कार्यकर्ताओं को सम्मति देता हूं कि अगर वह विदेशी तथा भारतीय मिलों के कपड़े परित्याग करके अपने निजी व्यवहार में केवल हाथ का कता और बुना कपड़ा लावें और प्रतिदिन नियमपूर्वक एक घंटा चर्खा चलावें और अपने कुटम्ब में प्रत्येक को ऐसा ही करने को कहें और यदि वह अपनी शक्ति के अनुसार अपने पड़ोसियों को भी ऐसा करने को कहें तो एक वर्ष के समय में ही भारत विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर सकता है । जैसे कि वह किसी भी बहाने से विदेशी वस्त्र नहीं वर्त सक्ते उसी प्रकार उन्हें भारत की मिलों का कपड़ा भी नहीं वर्तना चाहिये । मैं इन दोनों रुकावटों का भेद बतला देना चाहता हूं : विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार की हमेशः के लिये अनिवार्य आवश्यक्ता है परन्तु मिल के कपड़ों का बहिष्कार-सामूहिक रूप से हमेशः करने का

प्रश्न नहीं है। लेकिन केवल भारतीय मिलें ही हमारी वर्तमान कपड़े की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं परन्तु चर्खा और हैंडलूम कर सकते हैं। लेकिन चर्खे से बने खद्दर को लोकप्रिय तथा सार्वजनिक बनाने की अभी बड़ी आवश्यकता है। यह तभी हो सकता है जबकि विचारशील लोग ही इसे वर्तना शुरू करें अतः उन्हें केवल खद्दर ही वर्तना चाहिये। हमें अपनी देशी मिलों को अपनाने की जरूरत नहीं है। उनका कपड़ा आगे ही बहुत लोकप्रिय है। और भी यह बात है कि जाति का उसपर नियंत्रण अधिकार भी नहीं, वह परोपकारार्थ के चलाई नहीं जातीं। उनमें स्वार्थ की मात्रा बहुत है। उनका लक्ष्य अपना मत फैलाना है। यदि वह समय का रूख पहिचानें तो वह अपने माल को सस्ता करके तथा उन स्थानों में जहां खद्दर का प्रयोग नहीं है विदेशी कपड़े के वहिष्कार में सहायता दे सकती हैं। अगर वह चाहें तो खद्दर के साथ स्पर्धा न करके उस की मदद करें। विदेशी वस्त्रों का वहिष्कार एकदम तबतक नहीं होसकता जबतक प्रत्येक जातीय कार्यकर्ता मिल के कपड़े वर्तना छोड़ने का नियम ही न लेले। यह समस्या युक्ति की अपेक्षा नहीं करती। खद्दर की बिक्री बाजार में होती रहे इस लिये पढ़े लिखे मनुष्यों को अन्य कपड़ा छोड़कर उसे ही वर्तना चाहिये।

दीनों की सहायता

मैंने अभी तक खद्दर के प्रयोग को वस्त्र—बहिष्कार के सफल बनाने के फलदायक और अति शीघ्र असर करनेवाले साधनके रूपमें पेश किया है, जोकि साम्राज्य-वस्तुसे बिलकुल भिन्न और उसका एक स्थानापन्न है। परन्तु खद्दर की इसअन्तर्हित शक्तिके साथ यदि यह भी मिला दिया जाय कि इसमें करोड़ों भूखे मरते लोगोंको अन्न देनेकी भी शक्ति है तब तो इसका पक्ष बहुत ही प्रबल हो जाता है।

अब कदाचित यह समझना सरल है कि क्या चर्खेके लिये अनुकूल वायुमण्डल उत्पन्न करना चाहिये और प्रत्येक नर, नारी व बच्चों को-जो चर्खेको जातीय भलाईका साधन समझते हों, नियमपूर्वक व्रती बनकर प्रतिदिन चर्खा चलाना चाहिये, भारतके किसान सारे संसारमें परिश्रमी मशहूर हैं, परन्तु वह आलसी भी बहुत हैं। परन्तु उनमें यह दोनों गुण—परिश्रमी होना और साहसी होना—जबरदस्ती भरेगये हैं। उन्हें अपने खेतों से फसल उपजानेके हेतु कार्य करना ही पड़ता है। परन्तु जब खेतोंमें पर्याप्त काम न रहे तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा चर्खा कातनेके व्यवसाय को दबा देनेके कारण इन्हें आलसी रहना ही पड़ता है। यह किसान लोग अब चर्खेको तभी पुनः स्वीकार करेंगे जब हम उनके सामने अपना उदाहरण रक्खेंगे। केवल उपदेश उनपर कुछ प्रभाव न डालेगा। और जब हज़ारों लोग प्रेमसे कातेंगे तो अगर खद्दरका एक ही भाव रखना हो तो कातनेवालों को हम कताई अधिक दे सकेंगे। मैंने स्वयं सत्याग्रह आश्रम में बना हुआ खद्दर सस्ता बेचा है क्योंकि मेरे पास मनो सूत पंजाबी बहिनों द्वारा कता हुआ पड़ा था जो मुझे १६१६ के पंजाब के दौरे में प्रेम से उन्होंने कात कर दिया था। अगर मैं चाहता तो कताई पर कातनेवालों को ज्यादः मजदूरी देकर खद्दर के दाम में कमी न करता परन्तु मैंने ऐसा नहीं किया क्योंकि खद्दर प्रचारके आन्दोलन के उन प्रथम दिनों में मैं इतनी अधिक मजदूरी देता था कि भद्दे और मोटे महीन कते हुए भी १ पौंड सूत की कताई ४ आना देता था।

यदि लिबरल दल और कांग्रेस कार्यकर्ता केनिया के निर्णय से उत्तेजित होकर साम्राज्य-वस्तु—वहिष्कार के अलाभकारी पत्थर का

केनियाके गोरे औपनिवेशिकोंके सिर पर फेंकते हैं तो वह क्यों नहीं शांत चित्तसे अपना सारा उद्योग खद्दर-आन्दोलनको नितान्त सफल बनाने और इस प्रकार सम्पूर्ण विदेशी—वस्त्र-वहिष्कारको सफल बनानेमें लगा देते हैं? क्या मुझे यह सिद्ध करनेकी ज़रूरत है कि विदेशी वस्त्र—वहिष्कारसे न केवल केनिया निवासी भारतीयोंको ही सहायता मिलेगी वरन उससे स्वराज्यप्राप्ति भी होगी।"

महात्माजीके यह वचन स्पष्ट हैं इन पर टिप्पणी करना सूर्य्यको दीपक दिखाना है। आशा है कि भारतके सब नर नारी जिन्होंने खद्दर—आन्दोलनके प्रारम्भमें चर्खा चलानेका बड़ा उत्साह दिखाया था परन्तु पिछले दिनोंसे हतोत्साह होगये हैं पुनः चर्खे चलाने और खद्दर पहिननेका व्रत लेकर पुनः इस आन्दोलनको सुदृढ़ बनावेंगे और दुर्भिक्ष पीड़ित भारतीयोंको सहायता देने तथा स्वराज्यप्राप्ति करानेमें भाग लेकर अपने जीवनको भी भाग्यशाली बनावेंगे।

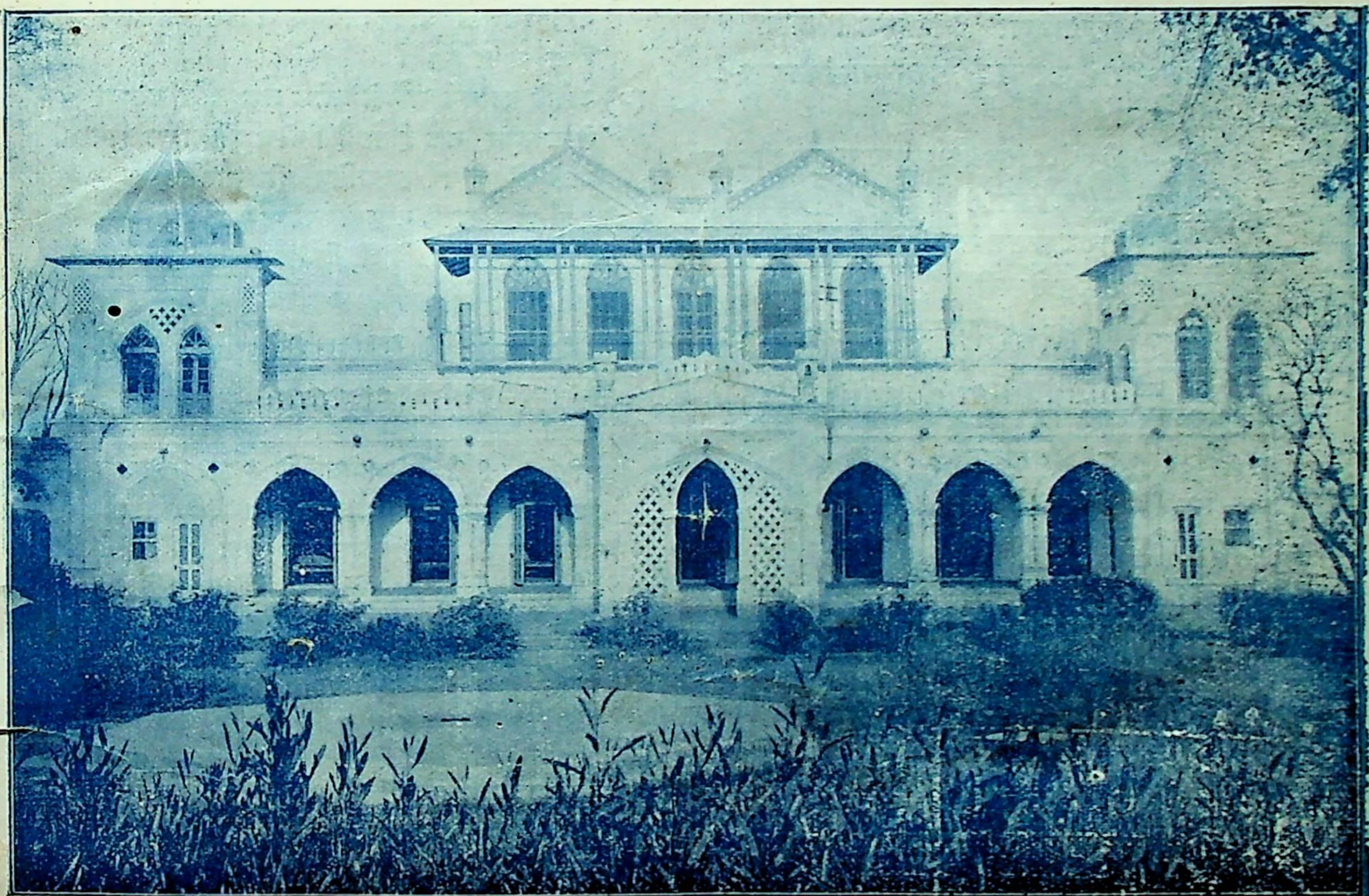
—*—

सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ और और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया ।

Regd. N. L. 1240.

वर्ष ५]　　ज्येष्ठ १९८१—जून १९२४　　[खण्ड ५, संख्या २

कन्यागुरुकुलांक



वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका **विद्यावती सेठ बी० ए०**

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
१. भारतीय ललना (कविता) लेखक—"श्रीहरि"	५५
२. कन्यागुरुकुल और उसकी शिक्षाप्रणाली ले०—प्रो० रामजीनारायण डी. एस सी	५६
३. स्त्री-संस्कार-स्वत्वापहरण ले०-कुमारी अम्बादेवी विदुषी विशारदा	६३
४. गुरुकुल शिक्षाप्रणाली पर एक विचार ले०—प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	६८
५. स्त्रीशिक्षा ले०—श्री०पं०जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	७४
६. निराशा (कविता) ले०—श्री० बलराम उपाध्याय बी०ए०	७५
७. कन्या गुरुकुल देहली ले०—श्री० पं० ईश्वरदत्त विद्यालंकार	७५
८. महर्षि का उपकार (कविता) ले०—'श्रीनिधि'	७८
९ हृदय तरंग (कविता) ले०—"श्रीचन्द्र"	७९
१०. मातृप्रेम (कहानी) ले०—श्रीमती राजदेवी जी	८०
११. अन्योक्ति मधुप (कविता) ले०—"श्री शान्त"	८७
१२. आधुनिक स्त्री शिक्षा पर एक दृष्टि ले०—एक एम० ए०	८८
१३. कला—ले० श्रीमती सुवीरा देवी	९१
१४. स्त्री संसार तथा अछूतोद्धार ले०—कुमारी चन्द्रवती शुक्ल	९२
१५. स्त्री शिक्षा का आदर्श और उसकी पूर्ति ले०—प्रो० रामसरनदास सक्सेना एम. एस. सी	९६
१६. स्त्री शिक्षा पर वैज्ञानिकों की सम्मतियां	९९
१७. विचार प्रवाह	१०५

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंगरेजी [illegible]
[illegible]

(२) भा [illegible]
वा० [illegible]
१ वर्ष के [illegible]
६ मास के [illegible]

आर्यमित्र ।।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है ।
स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है ।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता । नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है ।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्तूबर तक होता है । बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं ।

(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये । जिन पत्रों पर ग्राहक नं० न होगा वह निरुत्तर रहेंगे । पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये ।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें । वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है । पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है । आशा है भावी-ग्राहक-गण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे ।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये ।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये । यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये । परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी ।

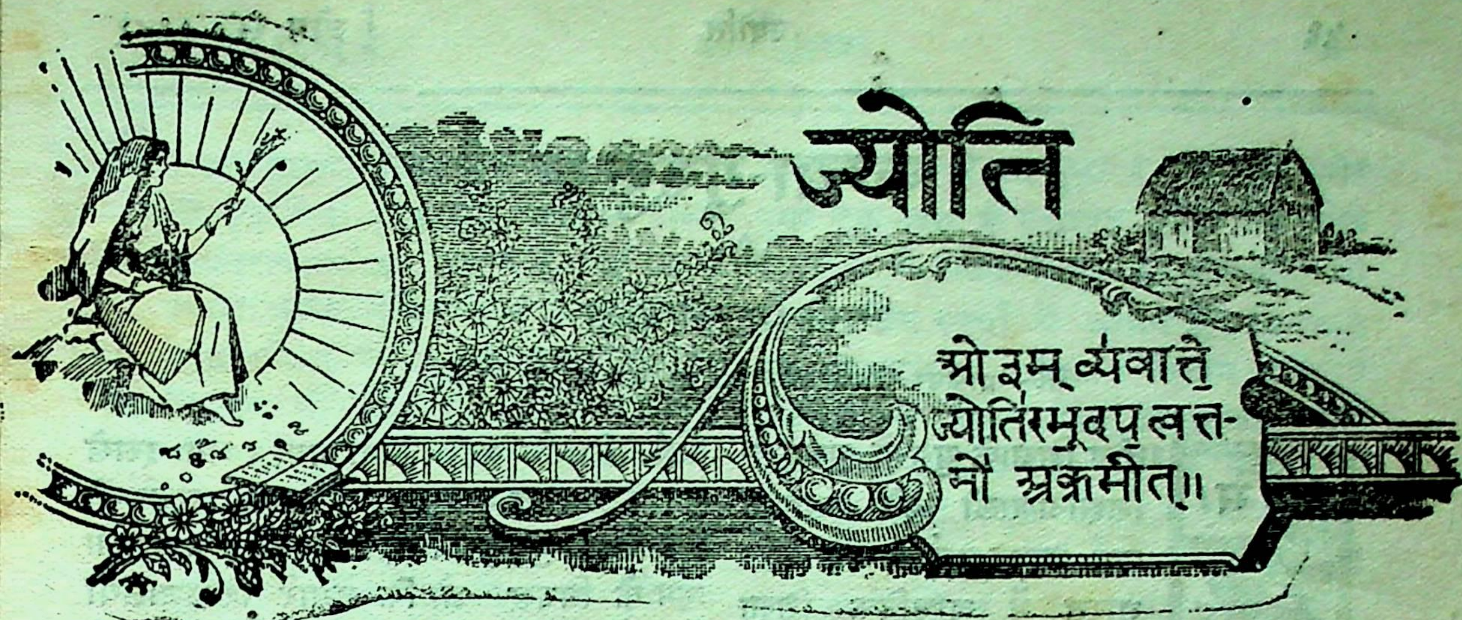
मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये ।

कन्या गुरुकुल की कार्यकर्तृ देवियां



१—कुमारी सरस्वती देवी २—कुमारी सुभद्रा देवी ३—कुमारी सीता देवी ४—कुमारी सीला देवी ५—कुमारी चन्द्रवती देवी
६—श्रीमती राजदेवी ७—श्रीमती राधारानी देवी अधिष्ठातृ ८—श्रीमती हरिकुमारी बाई संस्कृत अध्यापिका

सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय देहली में मुद्रित ।



वर्ष ५ } ज्येष्ठ १९८१—जून १९२४ ई० { संख्या २

भारतीय-ललना

लेखक—'श्रीहरि'

भगवन् ! भव्य देश भारत की, कुल-नारी[1] कुल न्यारी[2] हों।
बनें पुण्य-प्रतिमा, पतियों की, प्राणों से भी प्यारी हों॥
अनुनय, विनय, विवेक, धीरता, मृदुता की रखवारी हों।
क्षमता समता मातृ-भाव पर, तन-मन से बलिहारी हों॥

* * * *

सुखदा, वरदा बनें शारदा, विद्या-धन-धन—वारी हों।
अमला नवला कला सीख कर, कमला सी सुखकारी हों॥
सीता सावित्री सी बन कर, देश धर्म पर वारी हों।
जग-मग जीवन-ज्योति जग उठे, दूर हृदय अंधियारी हों॥

नोट—१ कुलीन नारी। २ वंश में अनोखी।

कन्या-गुरुकुल

और

उसकी शिक्षा-प्रणाली

ले०—प्रोफेसर रामजी नारायण डी. एस सी. (D. Sc.)



भारतीय शिक्षाके युग में गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली की स्थापना एक महत्व-पूर्ण घटना है। भारत में आधुनिक शिक्षा एक विदेशीय उपज है। मनुष्य को उसकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की स्वाभाविक और सुनियमित पूर्ति के योग्य बनाना ही शिक्षा का एकमात्र ध्येय माना गया है। देश और काल का मनुष्य की शारीरिक और मानसिक वृत्तियों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इनके भिन्न होने से मनुष्य-स्वभाव में अन्तर पड़ जाता है और स्वभाव के भिन्न होने से उसकी आवश्यकताओं का भिन्न होना अनिवार्य परिणाम है। हम भारतवासी जहां मनुष्य के नाते समस्त मनुष्य जाति के साथ एकता की तार में परोये, हुये हैं वहां भारत में रहने के कारण देश और काल के नियम की व्यवस्था हमें अन्य देशीय मनुष्यों से माला के मणियों की भांति पृथक् कर देती है। अंतः हमारी आवश्यकताओं का-जिन का बहुत सा अवलम्बन हमारी प्राचीन सभ्यता पर आश्रित हमारे स्वभाव पर है—अन्य देशों से भिन्न होना एक सामान्य बात है। आजकल की शिक्षा प्रणाली-जो कि आधुनिक यूरोप की अंग्रेज़ों द्वारा की गई शिक्षा प्रणाली की नकल है-हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ रही है। इसमें देश, काल और पात्र की विभिन्नता के आधार पर कोई परिवर्तन नहीं किया गया। अतः इससे वह फल प्राप्त नहीं हुआ जिसकी आशा की गई थी। गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली उस शिक्षा क्रम के विरुद्ध—जो कि हमारे शिक्षणालयों में जारी था-और है—एक दृढ़ प्रतिरोध की घोषणा थी। गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली के गुण दोषों की विवेचना करने के लिये अभी पर्याप्त समय नहीं बीता। भिन्न भिन्न प्रान्तों के शिक्षा सुधारक इस प्रणाली को अनुसरण कर रहे हैं। अतः इतना तो स्पष्ट है कि वह भी आधुनिक शिक्षा से असन्तुष्ट हैं और गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में ही आशा की रेखा देखते हैं। जबसे गंगा के तीर बालकों के लिये गुरुकुल खोला गया था जनता की ओर से लड़कियों के लिये इसी प्रकार के शिक्षणालय की लगातार प्रबल कामना होती रही जो कि अन्त में गतवर्ष जमुना तट पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा स्थापित इन्द्रप्रस्थ-कन्या-गुरुकुल के रूप में फलवती हुई है।

जनता आजकल की कन्या पाठशालाओं और विद्यालयों से असन्तुष्ट है। यहां से शिक्षा प्राप्त कन्यायें न तो सुयोग्य गृहिणी बनने में समर्थ हुई हैं और न किसी अन्य प्रकार से हमारे सामाजिक जीवन के उन्नत करने में ही सफल हुई हैं। हमारे इस कथन के कई अपवाद हैं परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं। इन शिक्षणालयों में शिक्षा प्राप्त हमारी बहिनें जहां एक ओर अपना स्वास्थ्य खो बैठती हैं वहां दूसरी ओर अपने मन के उन्नत और विशाल करने में भी असमर्थ रहती हैं।

इन में जहां हमारी माता और मातामही की सादगी, दृढ़ निष्ठा, विश्वास, तपस्या, श्रद्धा और धर्मपरायणता का अभाव है वहां साथ ही हमारी पूर्वज ऐतिहासिक माताओं की मानसिक प्रतिभा, कार्यदक्षता, कला निपुणता इत्यादि गुण भी लोप हो जाते हैं। इसके साथ ही इनमें पाश्चात्य देशीय शिक्षित रमणियों के गुण भी दिखलाई नहीं पड़ते। इन में इन तीनों के सद्गुणों की अपेक्षा उनके "अवगुण" ही अधिकतर दिखलाई देते हैं। इस शिक्षा का जो दुखदायक परिणाम हम अपने युवाओं में देखते हैं वही हमें अपनी कन्याओं और युवतियों में भी दीख पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी परिस्थिति भी इसके लिये एक सीमा तक उत्तरदात्री है, परन्तु यह निर्विवाद है कि पाश्चात्य शिक्षा की अन्धाधुन्ध नकल ही इसका मुख्य कारण है कि हमारी बहिनें भी आधा तीतर आधा बटेर की लोकोक्ति को चरितार्थ कर रही हैं। हमारी प्राचीन शिक्षा के आदर्श सादा जीवन और उच्च विचार ही थे और यही हमें—बालक और बालिकाओं, युवा और युवतियों को—आधुनिक शिक्षा द्वारा प्राप्त नहीं होते।

कन्याओं के लिये आज कल की शिक्षा-प्रणाली के असफल होने का एक और भी बड़ा भारी कारण है। अभी तक यूरोपीय शिक्षक वर्ग ने इस बात को भली प्रकार स्वीकार नहीं किया है कि स्त्रियों की आवश्यकतायें पुरुषों से भिन्न हैं और एक ही प्रकार की शिक्षा दोनों के लिये सुसंगत नहीं। यही कारण है कि यूरोप और अमरीका में बालक और बालिकाओं, युवा और युवतियों के लिये मिश्रित शिक्षा (Co-education) की प्रथा के अनुसार एक ही स्कूल और कालिज हैं जिन में दोनों एक साथ बैठकर और रहकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस का भयंकर परिणाम यह हुआ है कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे के सहायक और मित्र होने के स्थान में प्रतिद्वन्दी बन कर एक दूसरे की अस्वाभाविक स्पर्धा में आगये हैं। चिरकाल तक पददलित, अधिकार विहीन यूरोपीय ललनायें इस मिश्रित, सम, शिक्षा को पाकर मानव उद्योग के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी करना अपना अधिकार समझने लग पड़ी हैं। वह भूल जाती हैं कि परमात्मा की इस रम्य सृष्टि में उनका स्थान और कार्यक्षेत्र पुरुषों से भिन्न होते हुये भी उन से किसी प्रकार कम नहीं। उनका कार्यक्षेत्र पुरुषों से कहीं महान, उच्च, स्वार्थ-रहित और श्रेयस्कर है। कौन कह सकता है कि पुष्प-संसार में गुलाब से चमेली हीन है? अथवा दीपक से उसकी ज्योति कम है? दोनों भिन्न २ रूप रखते हुये भी संसार विन्यास में बराबर आवश्यक और आदरणीय हैं।

हमारे बालक तथा बालिकाओं की पाठशालाओं में एक ही प्रकार की शिक्षा पद्धति का प्रचार होने के कारण उपरोक्त प्रतिद्वन्दता और स्पर्धा स्पष्ट दिखलाई देती है। यद्यपि इसका बाह्य रूप उतना प्रचण्ड और उग्र नहीं जितना कि योरोप में है तो भी हमारे शिक्षित युवा और युवतियों द्वारा संचालित भग्न गृहस्थ मुक्त कंठ से हमारी हीन दशा की घोषणा कर रहे हैं।

जहाँ तक हमने विचार किया है आधुनिक कन्या पाठशालाओं द्वारा शिक्षा प्राप्त देवियों में विचार शील मनुष्यों को जो कमी दिखलाई देती है वह इस प्रकार है—

(१) उनके स्वास्थ्य का ख़राब होना।

(२) सादगी का अभाव।

(३) गृह--कार्यों से उपरामता और कहीं २ घृणा।

(४) देश, जाति तथा धर्म सम्बन्धी परोपकारी कार्यों से उदासीनता,

और

(५) मानसिक विकास तथा प्रतिभा का अभाव

क्या कन्या गुरुकुल इन न्यूनताओं को पूरा करेगा ? यदि यह ऐसा कर सका तवतो इसकी आवश्यकता और उपयोगिता सिद्ध होगी नहीं तो यह भी बिना किसी विशेषता के अन्य कन्या—विद्यालयों की भांति एक अपूर्ण और अधूरी संस्था ही होगी और इस में खर्च किया हुआ धन और श्रम वैसे ही व्यर्थ हो जायगा।

हम ऊपर लिख आये हैं कि गुरुकुल का ध्येय सादा जीवन और उच्च विचार हैं। यह शोक से कहना पड़ता है कि हमारी शिक्षित बहिनें प्रायः सादे जीवन से परे हट जाती हैं। (हम शिक्षिता बहिनों की श्रेणी में उन अक्षर ज्ञानहीन बहिनों को भी शामिल करते हैं जिन्होंने किसी पाठशाला में शिक्षा तो नहीं पाई, न ही किसी अन्य प्रकार से अक्षरज्ञान प्राप्त किया है, परन्तु अपने शिक्षित पतियों तथा शहरों में रहने वाली सहेलियों द्वारा बनाये हुये वायु मण्डल में रहने के कारण यह अशिक्षिता होती हुई भी शिक्षिता कहलाने की अधिकारणी हैं)। सुन्दर आभूषणों और चटकीले वस्त्रों की स्वामिनी होने में ही वह अपने को कृत्य कार्य समझती हैं। उन को धारण कर मानो उनका मुख विजय गर्व से चमक उठता है। अब कौन है जिस को वह इस सौन्दर्य-पाश से अपने वश में नहीं कर सक्तीं, यह भाव उनके रक्त के साथ मिल कर रग रग में चक्कर लगाने लगता है। अपने शरीर का बनाव, श्रृंगार ही उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन जाता है। मनुष्य जीवनके उपयोगी गृहकार्य में दक्षता प्राप्त करना तो एक ओर रहा वरन् इस से तो कहीं २ उनके मन में घृणा उत्पन्न हो जाती है। पंजाबी शिक्षित घरों में यह साधारण बात है कि हमारी देवियों को भोजन बनाना नहीं आता और इसको वह एक तुच्छ कार्य समझ कर इसकी अवहेलना करती हैं। गन्दा कार्य कह कर इस से घृणा करती हैं और कड़ा और क्रूर कार्य मान कर अपनी कोमल देह की रक्षार्थ इस से परे हटती हैं। इसका फल यह होता है कि यह काम नौकरों के हाथ में जा पड़ता है। शिक्षित पति और अर्ध शिक्षिता पत्नी द्वारा संचालित गृहों में भोजन प्रायः नौकरों द्वारा ही बनाया जाता है। नौकर कैसा अच्छा और शुद्ध भोजन बनाते हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं। परन्तु कई गृहों में अपनी बहिनों की पाकशाला सम्बन्धी अयोग्यता को ध्यान में रखते हुये शोक से हमें यह मानना पड़ता है कि नौकर पुरुष होते हुये भी बहुत सी देवियों से उत्तम भोजन बना लेते हैं। हमारे एक मित्र ने बात चीत करते हुये कहा कि "महाशय + + + बड़े भाग्यवान् हैं कि उनकी धर्मपत्नी रोटी स्वयं नहीं बनाती।" कारण पूछने पर उन्होंने बतलाया कि यदि गृहणी जी यह काम करने लग पड़ें तो महाशय जी को चारपाई सेवन और डाक्टरों की फीस से ही छुट्टी न मिले। हमारे एक अन्य मित्र ने हमें भोजन के लिये निमन्त्रण दिया। भोजन इनकी सहधर्मिणी स्वयं बनाये और स्वयं परोसकर खिलाये इस शर्त पर हमने उनका निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार किया। हमारे मित्र ने कहा कि—"मेरी

स्त्री परदा नहीं करती उसको स्वयं परोसने में कोई आपत्ति नहीं होगी। परन्तु भोजन उस के हाथ का ही बना हुआ हो आप इस पर क्यों आग्रह करते हैं? नौकर तो स्त्रियों से कहीं अच्छा भोजन बनाते हैं।" यह अवस्था हमारी स्त्री जाति और हमारे गृहस्थ जीवन के लिये कितनी लज्जा और शोक जनक है! परन्तु यह एक सत्य है जिस से हम आंखें नहीं मूंद सक्ते! हमारे पंजाबी घरों में नौकर भोजन बना लाता है और गृहणी चारपाई पर बैठ आराम से भोजन कर लेती है। भोजन कच्चा हो या पक्का, पाकशाला कितनी ही गन्दी हो, नौकर कितना ही मैला हो इस से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं! यह है एक बड़ा भारी कारण हमारी देवियों और उनके परिवार के स्वास्थ्य ठीक न रहने का। स्वास्थ रक्षा के लिये वह कदाचित पतिदेव अथवा अपनी सहेलियों के साथ बाहर भ्रमण को तो लाभदायक समझती हैं, परन्तु घर को अपने हाथों साफ सुथरा रखने, तरीके से भोजन बनाने और सलीक़े से खाने खिलाने में जो व्यायाम अनायास ही होजाता है इसका मूल्य उन्होंने सर्वथा भुला दिया है। वह भ्रम में हैं यदि यह समझती हों कि चारपाई पर बैठ कर सौन्दर्य की रक्षा हो सकती है। नौकरों द्वारा बनाये अध-पक्के भोजन में नारी हृदय का वह प्रेम नहीं रहता जो भोजन को रसमय बनाता है और इस प्रेम-रस-हीन भोजन से यदि परिवार का स्वास्थ्य बिगड़े न तो और क्या हो?

हमारी उपरोक्त श्रेणी की बहिन भोजनशाला से इस प्रकार अपने समय को बचाकर क्या घर के अन्य कार्यों—जैसे कि सीना पिरोना, बच्चों को साफ़ सुथरा रखना अथवा पढ़ने लिखने—में लगाती हैं? इस का भी उत्तर संतोषजनक नहीं। वह सुन्दर रेशमों, लेसों और फीतों से अलंकृत वस्त्र स्वयं पहनती हैं और अपनी सन्तान को पहिनाती हैं। परन्तु यह सब लेस और फीते इंग्लैन्ड, फ्रान्स और जापान से ही आते हैं और नगर के प्रसिद्ध दर्जियों द्वारा ही सिये जाते हैं। यदि कहीं वह सीने का काम अपने हाथ से कर भी लें तो एक अच्छा खासा सरकस के बहुरूपिये के योग्य वस्त्र बना मारती हैं। पढ़ने का यह हाल है कि यदि अपने फैशन से, इधर उधर की गप्पें मारने से छुट्टी मिली तो कोई किस्सा अथवा कहानी तो चाहे अवश्य पढ़लें परन्तु इस के अतिरिक्त और कुछ पढ़ना पाप समझती हैं। जिस गृहणी को भोजन न बनाना आये, कपड़े न सीने आयें और अपने अथवा अपने परिवार के स्वास्थ्य की देख रेख की जांच न हो उस का गृह कितना सुखदायक होगा यह पाठक पाठिकायें स्वयं समझ लें।

यह तो रहा सादे जीवन का हाल! इस प्रकार के जीवन में क्या उच्च-विचार उत्पन्न हो सकते हैं? इस का उत्तर स्पष्ट है और इस पर कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। जिनके हृदयमें अपने और अपने परिवार को किस प्रकार स्वस्थ रखा जाय यह ज्ञान नहीं, अपने हाथों निज कार्य करने का चाव नहीं, इस साधारण गृहणी-कर्तव्य के शुभ अशुभ के विचारने का विवेक नहीं, क्या उनके उच्च विचार हो सकते हैं? क्या वह देश और जातीय हित के कार्य में योग दे सकती हैं? ऐसी अवस्था में क्या उन का मन विकसित हो सक्ता है? और मस्तिष्क प्रतिभाशाली बन सका है?

हमारी शिक्षिता बहिनों की इस अवस्था के लिये उनके शिक्षित पिता और पति भी बहुत करके उत्तरदाता हैं यह निर्विवाद है।

परन्तु उनकी बचपन में प्राप्त की हुई शिक्षा ही मूल कारण है क्योंकि बहुधा देखा गया है कि एक शिक्षित पति की सर्वथा अशिक्षिता ग्रामीण पत्नी में यह दोष प्रायः नहीं होते। आधुनिक शिक्षा-प्रभाव की यह त्रुटियां हैं जिनके सुधार की जनता कन्या गुरुकुल से आशा रखती है। संचालकों के मनों में उच्च—आदर्श और निर्णीत—विचार, तथा कार्यकर्त्री देवियों का सुनियमित, पवित्र और अनुकरणीय जीवन और आदर्श में क्रियात्मक विश्वास ही इस संस्था को मनोवाञ्छित सफलता प्रदान कर सक्ते हैं। यहां पर हम एक चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझते हैं। बहुत सी शुभ और महान् संस्थायें बड़े २ उच्च आदर्श रखती हुई भी साधन सम्बन्धी संभ्रान्त और अस्पष्ट विचारों तथा अपर्याप्त साधनों के कारण अपने उद्देश्य में असफल रही हैं। इतिहास से इसके कितने ही उदाहरण मिल सक्ते हैं। हमारे तुच्छ विचार में संचालकों को इस ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि आजकल की कन्या पाठशालाओं से निराश होकर जो बातें वह कन्यागुरुकुल में देखना चाहते हैं उन के लिये दूसरी कोटि की ग़लती न कर बैठें। यह सृष्टि का साधारण नियम है कि प्रत्येक वस्तु का अनुचित आधिक्य हानिकारक होता है। उदाहरण के लिये हम सादा जीवन ही को लेते हैं। अपनी अन्य शिक्षिता और अर्ध-शिक्षिता बहिनों के फैशन से तंग आकर भय है कि कहीं सादगी को हम भद्दे पन और बेहूदगी की सीमा तक न ले जायं।

यह निर्विवाद है कि स्त्री का कार्यक्षेत्र 'घर' है; परन्तु इस क्षेत्र में सफलता बहुत कुछ इस बातपर निभरहै कि हम 'घर' से क्या अभिप्राय समझते हैं। यदि स्त्री की शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये घर में स्थान और सुविधा नहीं तो यह निश्चित समझिये कि वह नाम मात्र की ही गृहस्थी रहेगी। इस विषय पर हम प्रोफेसर गेंडासा और थामसन के विचार पाठकों के सन्मुख रख कर आशा करते हैं कि वह इन पर अवश्य ध्यान देंगे। "बहुतसे सुधारक, जिनको स्त्री जाति के निस्तार और सुधार से गहरा अनुराग है, जिनका पूर्ण विश्वास है कि स्त्री का हृदय पत्नी और माता का हृदय है और जो कि आज कल के व्यावसायिक शिक्षा के भ्रमजाल से सर्वथा बाहर है—यह बल देते हैं कि कन्याओं की शिक्षा में गृहस्थ और मातृत्व की शिक्षा को ही प्रधानता देनी चाहिये। (अस्पष्ट शब्दों में कन्या गुरुकुलके सम्बन्धमें भी हमें इस प्रकारके भाव सुनाई पड़ते हैं) परन्तु यह नियम जो कि मर्यादा के भीतर रहने पर नितान्त सत्य है अतिशयोक्ति करने पर हानिकारक हो जाता है। एक सुविस्तृत-शिक्षा प्राप्त, उन्नत-मानसिक विचारवाली माता गृहके मानसिक वायु-मण्डल को कितना ऊंचा बना सक्ती है, अतः वह अपनी सन्तानके लिये कितनी लाभदायक है, यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। परन्तु अत्याधिक बल दी हुई गार्हस्थ-शिक्षाउन मानसिक और शारीरिक नैसर्गिक वृत्तियों का अपूर्ण और अपरिपक्व अवस्था में विकाश करदेगी जिनकी पूर्ति वास्तविक जीवन में असम्भव हो जायगी।" हम समझते हैं कि मनुष्य की तत्कालिक शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पीछे जो कुछ भी गृह को सुन्दर और पूर्ण बनाता है वह बिलास नहीं वरन आवश्यकता है-गार्हस्थ मितव्ययता, साधारण भोजन बनाना और घर को झाड़ू बुहारी द्वारा स्वच्छ रखना ही

नारी जीवन का एक मात्र उद्देश्य न होना चाहिये। इन प्रतिदिन के कार्यों और विषयों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण और आवश्यक विषयों के मर्म को समझने और उन पर मधुर भाषण की योग्यता भी उस में अवश्य होनी चाहिये। पुरुष को अपनी आजीविका सम्बन्धी जो चिन्तायें और कलेश होते हैं वह उन्हें अपने हृदय में हो रखता है। घर लौटने पर वह आशा रखता है कि उसकी भार्या मधुर भाषण, प्रेममय वचन और बुद्धियुक्त आलाप द्वारा उस की थकावट को दूर कर उसे चिन्ताओं के कांटेदार जंगल से खैंच सुरंजित सुवासित उद्यान में ले जायगी। यदि उस समय स्त्री गृहस्थी की साधारण घटनायें बच्चों की लड़ाई, नौकरों की ढिठाई इत्यादि को लेकर बैठ जाय तो पुरुष को क्या खाक सुख मिल सकता है! पुरुष के लिये-और स्त्री के लिये भी उसका शरीर ही सब कुछ नहीं। उसका मन भी अपना आहार चाहता है। यदि यह उसे गृह में नहीं मिलता तो इसकी खोज में वह अवश्य बाहर जायगा। विचारणीय यह है कि घर के भीतर का सुनियमित, स्वार्थ रहित मानसिक आहार अच्छा है अथवा बाहर का स्वच्छन्द अनर्गल वार्तालाप! आवश्यक कार्यों को छोड़कर-हम उनके विस्तार को किसी प्रकार भी परिमित करना नहीं चाहते—जितना भी पत्नी अपने पति को, गृहस्वामी को, अपनी सन्तान के पिता को घर के भीतर सुख से रख सके उतना ही उस गृहणी को हम सफल गृहणी कह सकते हैं। अतः हमारी बुद्धि में यह विचार भ्रममूलक हैं कि कन्या गुरुकुल की लड़कियों की पाक शिक्षा केवल रोटी और दाल भाजी बनाने तक ही परिमित करदी जाय; और उत्तमोत्तम रुचिकर भोजन बनाना और खिलाने का ढंग न सिखाया जाय। ललित कलाओंमें उनको संगीत चित्रकारी इत्यादि की कोई शिक्षा न दी जाय, सीने पिरोने की शिक्षा में कुर्ते और पाजामे के अतिरिक्त और उन को कुछ न सिखाया जाय। ऐसा करने से घर के साधारण काम तो किंचित चल जायें परन्तु उनका मन विकसित न होगा। बहुत से मनुष्यों की सम्मति में पाक-विद्या में कुशलता का प्रदर्शन बिना अधिक धन व्यय किये नहीं हो सक्ता। यह बड़ा भ्रम है। स्वादु और पुष्टि कारक भोजन साधारण आमदनी के गृहस्थ में होना कठिन नहीं। नाना प्रकार के व्यञ्जन घर की साधारण वस्तुओं से बनाये जा सकते हैं। एक चतुर गृहणीके हाथमें दूध, चना, गेहूं इत्यादि प्रत्येक गृह में रहनेवाली वस्तु किन २ अनेक व्यञ्जनों के रूप में प्रगट होती है यह जानना आश्चर्यजनक है।

इसी प्रकार संगीत के विषय में भी कहा जा सकता है। सारा संसार संगीतमय है। सुख और दुख, जन्म और मृत्यु कोई इस के साम्राज्य के बाहर नहीं। सृजनहार की अनन्य एकान्तमयी भक्ति में भी यह अपना अधिकार जा जमाता है। प्रार्थना और उपासना के समय हरि—कीर्तन मानवहृदय को अपने कर्त्ता के कितनी अधिक निकट ले जा सक्ता है यह भक्त कबीर और मीराबाई से पूंछो। जिस संगीत राग में इतनी शक्ति है क्या वह मनुष्य जीवन के साधारण लक्ष्य को आनन्दमय और उत्कृष्ट नहीं बना सकता? जो लोग संगीत को हमारे गृहों से बहिष्कार करना चाहते हैं वह नारी हृदय में खिली हुई एक सुवासित कलीको अपने क्रूर हाथोंसे मसोस कर अनजानमें गृहोंको शोकसभा का रूप देना चाहते हैं। वह भूल जाते हैं कि हृदय-तन्त्री को संगीतकी झंकार किस प्रकार कम्पायमान

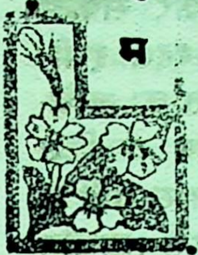
कर देती है और उस से किस प्रकार मानव-हृदय अपने दुर्विकारों और दुर्दम्य दुर्वासनाओं से ऊपर उठ सकता है। यदि कन्या-गुरुकुलके संचालक आधुनिक संगीत को बुरा समझते हैं तो इस में हमें उन से कोई विवाद नहीं। आप इस में यथेष्ट परिवर्तन कीजिये। हमारी प्रार्थना यही है कि हमारे गृहों से इस आनन्द के स्रोत और उत्थान की सोपान को दूर न कीजिये।

इसी प्रकार हमारा वक्तव्य चित्र-चित्रण-सूचिकर्म इत्यादि अन्य ललितकलाओंके विषय में है। यदि उन की आधुनिक शिक्षा प्रणाली में आपको कुछ दोष दिखलायी देते हों तो इन्हें अवश्य दूर कीजिये। परन्तु इन विद्याओं का बहिष्कार न कीजिये। कई महानुभाव कहते हैं कि यदि कन्याओं को कई प्रकार के वस्त्र नाना विधि से बुनना और बनाना सिखला दिया जायगा तो वह फैशनमें ही डूबी रहेंगी। यह धारणा जितनी निर्मूल है उतनी किंचित ही कोई हो। यदि स्त्री के मन की रुचि फैशन की ओर है तो उसे फूहड़ रखकर आप फैशन से पृथक् नहीं कर सक्ते। फैशनमें मस्त कितने पुरुष हैं जो अपनी फैशन की चीज़ें अपने हाथ से बनाते हैं? इन त्रुटियों का इलाज इन कलाओं की शिक्षा का बहिष्कार नहीं परन्तु इनके वास्तविक, ठीक सुचारुरूप से उपयोग का ज्ञान है। आज भी आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षणालयों में शिक्षा प्राप्त कितनीही देवियां हमें ऐसी मिलेंगी जो कि हमारे गृहस्थ, हमारे समाज और हमारी जाति के लिये गौरव हैं। उनका त्यागमय सादा जीवन प्राचीन भारतीय नारी जीवन की एक झलक हमारे नेत्रों के आगे ला उपस्थित करता है। इसका कारण उनके मनों पर डाले गये वह उत्तम संस्कार हैं जिनको बाह्यआडम्बर, शिक्षा की त्रुटियां और प्रतिकूलता और संसार का पतनकारी वायुमण्डल हटाने में असमर्थ रहा है। जल प्रवाह को रोकने की अपेक्षा उसको उपयोगी और उपकारी जल मार्गों द्वारा ले जाना ही बुद्धिमत्ता है, अन्यथा यह अवश्य नाशकारी सिद्ध होगा। पढ़ लिखकर आज कल की देवियां अधिक करके उपन्यास और किस्से कहानी ही पढ़ती हैं तो क्या हम स्त्री शिक्षा को नितान्त बन्द करदें? एक वैज्ञानिक के मत में स्त्री की निश्चेष्ट सहिष्णुता का दर्शन उसकी अधिक क्षमता, अधिक सरलता और निष्कपटता, अधिक गुण ग्राहकता की सूक्ष्म विस्तारता और इन्हीं कारणों से अति शीघ्र उत्पन्न होने वाले अंतर्दर्शन के रूप में प्रगट होता है। क्या आप इस स्त्री स्वभाव को बलात्कार बदल सकेंगे? कदापि नहीं! स्त्री जाति सौन्दर्य की प्रतिमा, कोमलता की प्रतिनिधि, माधुर्य की खान और पवित्रता की पुंज है। परमात्मा की अतुलनीय सृष्टि में यह अतुलनीय पदार्थ है, सृजनहार की सब से उत्तम कृति और संसार की अमूल्य सम्पत्ति है। इस में संसार को सुखधाम बनाने की विशेष शक्ति है परन्तु उसका विकास विशेष मार्ग और विशेष रीति से ही होगा। हमारा कर्तव्य यही है कि हम इस विकासके सहायक और पोषक बनें, प्रतिरोधी नहीं।

स्त्रियों के लिये सब से अधिक उपयोगी शिक्षा सम्भवतया वह नहीं हो सक्ती जिसको पुरुष अपने बुद्धि के अभिमान में निश्चित करे, वरन् वही होगी जिसको वह स्वच्छन्दता पूर्वक स्वयं निश्चित कर सकेंगी।

स्त्री-संस्कार-स्वत्वापहरण

ले०—कुमारी अम्बादेवी विदुषी विशारदा



म "महर्षि श्री० स्वामी दयानन्द जी महाराज ने यजुर्वेद के ३४ वें अध्याय के २३ वें मंत्र का भावार्थ करते हुए लिखा है–"राजा आदि विद्वानों को चाहिये कि कपटादि दोषों को छोड़ सब के लिये सुख की चाहना कर के पराक्रम बढ़ावें और जिस कर्म से दुःख की निवृत्ति और सुख की वृद्धि हो उसके करने में निरन्तर प्रयत्न करें।"

उपर्युक्त वैदिक आदर्श को सामने रखकर ही प्राचीन आर्यों ने अपनी उन्नति की नींव डाली थी। संसार के इतिहास में आर्य जाति से पुरानी किसी भी जाति का आज तक पता नहीं लगा है। जिस समय आज कल की सभ्यता-सम्पन्न जातियां मूकावस्था लिये आरण्य-विचरण करती थीं, तब यह अपने उच्च रमणीय आर्य गृहों में पवित्र वेद मंत्रों का मधुर गान कर, सच्चिदानन्द के आनन्द में निमग्न थी और मुक्त हस्त होकर जगत को ज्ञानरत्न लुटा रही थी। अपरा, परा के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करती हुई दुनियां को-"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" वा "सह-नाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य..." अर्थात् प्राणीमात्रको मित्र दृष्टिसे देखो। परस्पर पूर्ण समता का व्यवहार करो। 'मनस्येकं…वचस्येकं' के सच्चे अनुयायी बनो, कहो नहीं करके दिखा दो—ऐसे उपदेश देती थी। यह वह समय था, जब इसका शरीर, मन और आत्मा पूर्ण उन्नतावस्था को प्राप्त हो चुका था, जब इसने अपने प्रकृतिजन्य सभी विकारों को षोडश-संस्कारों के द्वारा पराभूत कर शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति की पराकाष्ठा कर दी थी। मनुजत्व के सामान्य-अन सुजन्म कलेवर को उतार कर और द्विजत्व के स्थायी कवच को धारण करके वशिष्ठ, अंगिरा, याज्ञवल्क्य, विदेह, गार्गी, मैत्रेयी, सीता, सावित्री आदि को द्विजन्मा बनाकर भारत वसुन्धरा का मुखोज्वल करते हुए भगवान् मनु के इस वचन को सार्थक किया था:—

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।
तृतीय यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुति चोदनात्॥
तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धन चिन्हितम्।
तत्रास्य मातासावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥
मनुस्मृति।

अर्थात् वेद की आज्ञानुसार द्विज का जन्म प्रथम माता से, दूसरा यज्ञोपवीत में और तीसरा यज्ञ की दीक्षा में होता है। इन तीनों जन्मों में यज्ञोपवीत के चिन्ह वाला जो ब्रह्म-जन्म है, उसमें इसकी गायत्री माता और आचार्य पिता कहाता है।

आज इसीके अभाव में वा नाम मात्र भाव में आर्य जाति की सूरत ही बदल गई है। इस बदलाव का अधिकांश नारी जाति के ही भाग में आया है। यहाँ तक दुर्दशा हो गई है कि रूप तथा लाभालाभ की कौन कहे, ये विचारी तो नाम तक भी भूल गई हैं। आज मुझे यही भूली बात इस लिये याद दिलानी है कि जिससे भारत की आर्य देवियां अपनीप्राचीन गुण गरिमा का स्मरणकर, सुसंस्कृता होकर:—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनुस्मृति के वाक्य को सार्थक करने में प्रयत्नशील हों।

संस्कार का अर्थ है—शरीर आत्मा और मन का भले प्रकार सुधार। संस्कारों का प्रभाव जन्मजन्मान्तरों तक रहता है। ऐसा अनुभव दिव्य-पुरुषों का मत है, जिसे अर्थात

करते समय ही बच्चे के ऊपर माता पिता के स्वभाव, गुण दोष अपना प्रभाव अवश्य डालते हैं पूर्व जन्म के संस्कार-प्रभावों के कारण ही किसी की बुद्धि प्रखर और किसी की मन्द होती है। शरीर, आत्मा और मन का घनिष्ठ सम्बंध है। तीनों का अन्योन्याश्रय है 'आत्मा नहीं धार्य बिना शरीर' अर्थात् जीव को भी आत्मोन्नति के लिए शरीर का सहारा लेना पड़ता है। संस्कारों से शरीर में स्वस्थता, आत्मा में पवित्रता और मन में संयम शीलता तथा शुद्ध विचारों का जन्म होता है। ऐसे ही मनुष्य पापों से हटकर महात्मा गांधी और महात्मा तिलक के समान परोपकार और पुण्यकार्यों में लगते हैं। संस्कृतों का मौलिक मल नष्ट होजाता है जैसा कि मनु महाराज ने कहा है:—

गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौड-मौञ्जीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥
मनुस्मृति

अर्थात् गर्भ शुद्ध करने वाले हवनों से और जातकर्म, मुंडन और यज्ञोपवीत आदि सोलह संस्कारों से द्विजातियों के गर्भ और बीज का दोष मिट जाता है।

आर्यों में संस्कार-क्रिया मंत्रों द्वारा की जाती है। इन्हीं मंत्रों में संस्कार के प्रभाव तथा लाभ का वर्णन रहता है। इनके उच्चारण का अधिकार द्विजों को दिया गया है क्योंकि उनको इनके अर्थों का ज्ञाता माना गया है यद्यपि आज हिंदू-समाज में यह मंत्र विनियोग मात्र ही रह गये हैं। पीछे कहा गया है, कि द्विजन्मा वही होता है, जिसका जन्म दो बार हो चुका है, वही द्विज भी है; वेद, शास्त्र, पुराण, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की द्विज संज्ञा बताते हैं। क्योंकि इन ही का जन्म दो बार होता है। प्रथम माता पिता से, और दूसरा सावित्री और आचार्य से विद्याभ्यास द्वारा। द्विजत्व का चिन्ह यज्ञोपवीत का धारण करना है। शूद्र जड़ बुद्धि होने से विद्याभ्यास नहीं कर सकता यदि कर सकता तो शूद्र ही क्यों रहता, इसीलिए वह द्विजत्व चिन्ह यज्ञोपवीत का अधिकारी भी नहीं। यहां मेरा मतलब प्रचलित प्रथा की जन्म जात वर्ण व्यवस्था से नहीं है, अपितु वैदिक कालीन व्यवस्था से है। प्राचीन काल में कोई द्विज बनकर ही विद्याध्ययन का अधिकार पाता था और यह अधिकार प्राप्त व्यक्ति ही संस्कारों में मंत्रों का उच्चारण कर सकते थे। इसीकी पुष्टि ऋषि याज्ञवल्क्य ने भी की है:—

ब्रह्म क्षत्रिय विट् शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः
निषेकादिश्मशानान्तास्तेषां वै मंत्रतः क्रियाः॥
याज्ञवल्क्य स्मृति

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इनमें पहिले तीन को द्विज कहते हैं। उनके गर्भाधान से लेकर अंत क्रिया तक सब संस्कार मंत्र से होते हैं। वे ही चारों आश्रमों में निवास करके चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की सिद्धि के भी भागी बनते हैं। पहिले ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या और धर्म सीखते थे, गृहस्थ में धन प्राप्त करके अपनी इच्छाओं को पूरा करते, वानप्रस्थ में अपने को मोक्ष का अधिकारी बनाने का यत्न करते और अंतमें संन्यास का आश्रय लेकर मुक्ति पदके भागी होते थे। वर्णाश्रम धर्म के कर्मों में भी भेद विद्यमान् है। इस प्रकार द्विजों के लोक और परलोक दोनों सिद्ध हो जाते थे। जैसा कि मनु भगवान ने भी कहा है:—

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादि द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥
मनुस्मृति

अर्थात् द्विजातियों के इस लोक और परलोक में पवित्र करने वाले गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म नामकरण, निष्क्रमण अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास और अन्त्येष्ठि शरीर संस्कार वेदोक्त पवित्र मंत्रों की विधि से करने चाहिये। यदि उचित समय पर इनका संस्कार न हो, तो उस काल के अनन्तर ये तीनों मनु के बचनानुसार सावित्री से पतित, शिष्ट जनों से निन्दित और व्रात्यसंज्ञक हो जाते हैं। यह संस्कार हीनता का फल तो नहीं अपितु समय पर संस्कार न करने का दंड है। अब विवेचनीय विषय यही रहता है कि स्त्रियां भी संस्कृता होकर द्विजत्व की अधिकारिणी हैं, वा नहीं? मनु तो कहते हैं कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादिक, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या को छोड़कर अपने से नीच वर्ण में विवाह-सम्बंध करें तो वह और उसकी सन्तान पतित हो जाती है:—

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्॥
तथा:— मनुस्मृति
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति।
मनुस्मृति

अर्थात् शूद्रा पत्नी की प्रधानता में होने वाले धर्म कर्म के हव्य-कव्य को देव पितर नहीं खाते हैं और वह स्वर्ग को नहीं जाता।

इससे सिद्ध होता है कि स्त्रियां द्विजत्व प्राप्ति की वैसी ही अधिकारिणी हैं, जैसे कि पुरुष। आज कल प्रथम तो पुरुष स्त्रियों के संस्कार ही १६ में से ४, ५, होते हैं जो कि अनिवार्य हैं। १६ में से ४ ५ और उन में भी पुत्र पुत्री का भेद भाव! नामकरण जो ५ वां संस्कार है, किन्तु आजकल उसकी गणाना १ ले में ही है। इसमें भी यदि पुत्र का नामकरण है तो ईश्वर की बड़ी कृपा है। धन न होने पर भी धनवान् के ठाट-बाट हैं। वस्त्र भी बढ़िया ज्योनार भी उत्तम, चाहे गृह बेचना ही क्यों न पड़े। मंगलाचार बधाई आदि सब कुछ होता है। एक के स्थान पर दो ख़रचे जाते हैं यदि अभाग्यवश कन्या ने जन्म लिया है, तो तमाम परिवार में उदासी छा जाती है। न मगलाचार न बधाई, पुत्र, जन्म से आधा भी अपव्यय नहीं। लोक-व्यवहार के लिये नाम रखना ही पड़ता है वह भी वृक्ष, नदी आदि से लिया जाता है। इस विषय में यद्यपि धार्मिक पुरुषों का समुदाय कुछ समझ चला है, किन्तु श्रीमतियों की कुसंस्कार-सम्पन्न कुमति अमेरिकन दासों की तरह इतनी हीन होगई है कि इनको कन्या की सूरत से भी घृणा है। वह कहती हैं कि "लड़की तो पैदा होनी भी आसान है और जीवित रहनेमें भी असानी है, इसकी मृत्यु होनाही कठिन है, यह तो बढ़ती भी शीघ्र है किंतु लड़के का तो दर्शन भी दुर्लभ। यदि भगवान् की मेहर होगई तो जीवन की चिंता बनी रहती है फिर भला उसका सुख तो किसने देखा है?"

विचारिये, जिन माताओं के मन में इस अभागिनियों के प्रति ऐसी घृणास्पद हीनता घुसी हुई है, वहां फिर कन्या-मंगल कहां! विद्या और ज्ञान कैसा? ये विचार स्वार्थियों ने वेद, शास्त्रों के नाम से उनके मन में ऐसे बैठाये हैं जिनका निकलना टेढ़ी खीर हो रहा है। खाने. पीने पहिरने, खेलने आदि बातों में माताएं पुत्र के मन में ऐसे २ विचार बैठा देती हैं जिससे वह समझता है कि मैं और हूं और मेरा अधिकार तथा मान सब कुछ बहिन से बड़ा है, बहिन दासीके समान है।

दूसरा संस्कार उपनयन-संस्कार है। द्विज कन्याओं के लिये जिसका होना आवश्यक

आश्चर्य माना जाता है किन्तु प्राचीन ग्रन्थों में इस के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। यथाः—

ओं उत्तानायामवभरा चिकित्वान्त्सद्यः
प्रवीता वृषणां जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाजइडायास्पुत्रो
वयुनेऽजनिष्ट॥
यजु० अ० ३४। मं० १४॥

जिसका भावार्थ श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज के शब्दों में यह है:—

यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य्यादि के सेवन से कन्या, पुत्रों को द्विज करें तो वे सब शीघ्र विद्वान् हो जायें। और भीः—

स्त्रिय उपनीताः अनुपनीताः च॥
पा० गृ० सू०प्र० २४॥

यमाचार्य भी कहते हैं:—

पुराकल्ये तु नारीणां व्रतबन्धन मिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्री वाचनं तथा॥

अर्थात् प्राचीन काल में स्त्री यज्ञोपवीत धारण, वेदों का पढ़ना—पढ़ाना और मन्त्रों का जप भी करती थीं।

आन्ध्र देश में अब भी इसकी प्रथा इस रूप में प्रचलित है कि विवाह संस्कार की क्रिया के पहले यज्ञोपवीत कन्या के गले में पहना कर और उसी समय निकाल कर फिर उसी को वर के गले में धारण करा देते हैं जिस से उसका यज्ञोपवीत ६ तार का हो जाता है।

जब इन से वेदों का पठन-पाठन छीना तो रजस्वला होने, प्रसवकाल तथा सन्तान पोषण के समय की अशुचिता इत्यादि ईश्वरीय नियमों की अपवित्रता का बहाना करके स्वार्थियों ने इन का यह द्विजत्व यज्ञाधिकार चिन्ह भी अपहरण कर लिया और उनकी विवाह की विधि को यज्ञोपवीत पति सेवा को गुरुकुल-वास और घर के काम ही का यज्ञ-अग्नि की सेवा मनु के नाम से बतला कर उन्हें मूढ़, अनुभव हीन, बन्दी बना दिया। ब्रह्मचर्य का महत्त्व और गृहस्थ का कर्तव्य अब कौन जाने क्योंकि ज्ञान का द्वार ही बन्द है! अब घर से यज्ञधूम के स्थान में सिगार और हुक्के का धुआं क्यों न उठे? कलहाग्नि सदा क्यों न सुलगती रहे? नन्दन क्रन्दन का काम क्यों न दे? क्योंकि:—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञो पवीतं बलमस्तु तेजः॥ यज्ञोपवीत मसि यज्ञस्य त्वा यज्ञो पवीते नोपनह्यामि॥

पार० गृ० सू० का० २ क० सू० ११॥

अब पवित्रता, बल और तेज का दाता यज्ञोपवीत जननी से छीन लिया गया है। वेदारम्भ संस्कार का भी नाम मिटा दिया गया है। आज प्रायः सभी द्विज-गृह शूद्राओं से परिपूर्ण हैं ब्राह्मणी क्षत्राणी, और वैश्याओं से नहीं। फिर उन घरों में मूर्ख, स्याने, दिवाने विधर्मी अपना अड्डा क्यों न जमायें? वहां सन्ध्या, हवन, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता का पवित्र पाठ कौन करे और कौन सुने? वहां तो जखैया, शाहमदार, ज़ाहरपीर, मीरा, क़ब्र और ताज़ियों ही की पूजा होगी। और ख्वाजा हसन निज़ामी साहब की स्कीम का ही प्रचार होगा।

रज तम से हो गया, मलिन मन जिसका सारा।
सत्य पंथ का मार्ग, लगे क्यों उसको प्यारा॥
जब मन में दुर्भाव, कहां सतभाव समावै।
बिगड़े मुंह का स्वाद, मिठाई कड़वा लावै॥

यही दशा आज-आर्य-जाति की हो रही है। आज वेद स्मृतिओं की वह आज्ञायें जिन में स्त्री जाति के प्रति आदर, मान और पूज्य भाव था, परे फेंक दीगई हैं। आज-'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' तथा 'परदारेषु मातृवत्'-का भाव ताक पर रख दिया है। सुगृहिणी और धार्मिक बनाने का ढोल पीटा जा रहा है। पता नहीं, हिन्दू देवियां बिना वेद शास्त्र के जाने धार्मिक क्यों कर हो सकेंगी? क्या बिहारी की सतसई और देव का दिव्य-ग्रन्थ-भांडार ही इस कार्य की पूर्ति कर देगा? घर घर में सन्ध्या, हवन क्यों कर प्रचलित हो सकेगा, क्योंकि बिना द्विजत्व प्राप्त किये सन्ध्या, हवन का अधिकार नहीं हो सकता, और द्विजत्व का चिन्ह यज्ञोपवीत है। इस लिये सब से प्रथम प्राप्त वयस्क होने पर प्रत्येक द्विज का कर्तव्य है कि वह पुत्रों की तरह अपनी पुत्रियों का यज्ञोपवीतादि संस्कार कराकर उन्हें पवित्र वेद मंत्रोंकी शिक्षाकी अधिकारिणी बनायें, अन्यथा आर्यों की उन्नति बे नीव के भवनवत् जाननी चाहिये। बड़े २ आर्य द्विजों की दशा विचित्र है। आप द्विज हैं, यज्ञोपवीत धारी हैं किन्तु अर्द्धांगिनी देवी बिना उपनयन हीनावस्था प्राप्त हुई २ शूद्रवत् जीवन व्यतीत कर रही हैं। इसी अवस्था में उल्टे, सीधे सन्ध्या, हवन के मंत्र या 'मन्तर' भी जानती हैं। कभी २ कर भी लेती हैं।

आर्य विद्वानो! विशेषतः द्विजवर्यो! आपके लिये यह अवस्था शोभनीय नहीं है। आपका कर्तव्य है कि योग्य कुल देवियों को पहले यज्ञोपवीत देकर, तब नित्य कर्म प्रारम्भ कराने की ओर प्रवृत्त करें। इससे उनके मन में धर्माधिकार का भाव उत्पन्न होगा और वह दृढ़ चित्तता से आपके घरों को आर्य-भवनों में परिणत कर देंगी। अभिमन्यु और कुश, लव की जन्म दात्री होकर आर्य जाति की कष्ट-निवारक बनेंगी। क्योंकि किसी देश जाति और धर्म की उन्नति का मूल वहां की स्त्रियां ही होती हैं। जैसा कि किसी विद्वान् ने कहा है:—"यदि तुम किसी देश की उन्नति का कारण जानना चाहो तो वहां की स्त्रियों की दशा की जांच करो। जिस देश में स्त्रियां मूर्ख हैं, जिस देश में स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा नहीं है, जिस देश में स्त्रियों की प्रतिष्ठा नहीं है, वहां के लोग चाहें लाख टक्करें जाति के सुधार के लिये मारें, कभी उनको सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।" आर्य-गृहों से बराबर ऐसा ही आर्तनाद ही निकलता रहेगा जैसा कि नीचे की घटना से ज्ञात होगाः—

८ अप्रैल सन् १९२४ को मेरे पड़ौस में एक दुख जनक, हृदय वेधक दुर्घटना हुई। एक २२ वर्षीया देवी जो ५, ६ वर्ष से वैधव्य यातना का दुःख भोग रही थी, अचानक अपने शरीर पर मिट्टी का तेल डाल कर जल मरी। इसका कारण मेरी समझ में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था कि उसके पास धर्म कृत्यों का अभाव था संस्कार हीनता ने आत्मा को निर्बल बना दिया था। इसी प्रकार की दुर्घटनायें रात दिन होती रहती हैं जिन का कारण अविद्या और सुसंस्कार हीनता ही है इसी प्रकार अन्य संस्कारों का महत्व और मर्म स्त्री जातिके हृदयंगम न कराके नाम मात्र काम चलाऊ कृत्य कर लिया जाता है। ऐसी दशा में आर्य जाति का अर्द्धांग दीन, हीन, मलीन अवस्था में पड़ा हुआ है। मर्दों के देवता दूसरे हैं और नारियों के दूसरे—

'एक घरमें दो मते तो क्यों न हो खाना खराब'

ईसाई, मुसल्मान सम्प्रदायों में स्त्री, पुरुषों की उपासना, प्रार्थना पद्धति एक ही है

किन्तु हिन्दू-धर्म जैसा कि ऊपर कहा गया है, इन से बहुत दूर जा पड़ा है। जिससे स्त्री जाति का धार्मिक ज्ञान हीनता को प्राप्त होके झूठे भ्रमात्मक अन्धविश्वासों का विश्वासी बन गया है। इसके दूर करने का केवल एक यही उपाय है कि माताओं के हृदयों में शुद्ध आर्य संस्कारों का विशुद्ध रूप स्थापित किया जाय। पुत्रों के समान कन्याओं को भी समस्त संस्कारों की अधिकारिणी अंगीकृत किया जाय जिससे कि उनके मन में उनका गौरव बैठ जाय और वे भावी सन्तान को मंदालसा और सुभद्रा की तरह भद्र और योग्य बना सकें, तभी आर्य जाति का पूर्ण कल्याण सम्भव है। अन्यथा स्वराज्य और स्वदेशी, संगठन और शुद्धि तथा दलितोद्धार की समस्त स्कीमें व्यर्थ प्रायः ही रहेंगी।

आशा है कि अब आर्य जाति ऐसी भूलें न करेगी जिससे कि मातायें आत्मिक बल विहीन होकर, आर्यों के पतन का कारण हों, और संसार आर्यों को दीन, स्वत्वापहारी की पदवी से विभूषित करने लगे अपितु अपने पूर्वजों के इन गौरव शालीः—

जो न दुखीके दुखको बांटे,
ऐसे हृदयों को धिक्कार।

आश्रित की रक्षा न करे जो,
ऐसे नीचों को धिक्कार।

अत्याचारों का दृढ़ होकर,
हटा न सकते जो अधिकार।

क्यों न इन्द्र से होव उनको,
गिन कर लाख बार धिक्कार।

—भावों को स्मरण कर नारियों के प्रति न्याय का परिचय देगी।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर एक विचार।

लेखक—श्री प्रोफ़ेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार



अंग्रेजों की भारत में प्रचलित की हुई शिक्षा प्रणाली के दोष सर्व-विदित हैं उनको निरूपण करने की अब आवश्यकता नहीं रही। इस शिक्षा प्रणाली से उत्पन्न हुए असन्तोष को सिद्ध करने का प्रयत्न करना अपनी मूर्खता को प्रमाणित करना है। असन्तोष का असन्तोष के रूप में बना रहना कष्टदायक है, परन्तु यदि असन्तोष आने वाले सन्तोष का सूचक हो तो उसका हृदय से स्वागत करना चाहिये। अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली ने जिस असन्तोष को उत्पन्न किया था वह निरर्थक नहीं गया। विक्षुब्ध शिक्षा-विज्ञों ने प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया और शिक्षाप्रणाली को सर्वथा परिवर्तित कर देने का दृढ़ संकल्प कर लिया। आज से २२ वर्ष पहिले कांगड़ी में गुरुकुल स्थापित करने का निश्चय हुआ; आंगल शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह ने प्राचीन आश्रमव्यवस्था के पुनरुज्जीवन का रूप धारण किया। प्रचलित शिक्षा प्रणाली से जनता असन्तुष्ट थी—गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आश्रय लेकर आशा भरे उत्सुक नेत्रों से संतोष की प्रतीक्षा होने लगी!

एक गुरुकुल खुला, दो खुले, तीन खुले,-बस गुरुकुलों का तांता बन्ध गया आर्य-समाजियों को गुरुकुल खोलते देख सनातनी भाइयों की भी आंखें खुल गईं। उन्होंने भी ऋषिकुल खोलने प्रारम्भ किये। सिलसिला बढ़ने लगा। पिछले साल कन्याओं का भी गुरुकुल खुल गया। अब जहां तहां गुरुकुलों

की भरमार है। नित्य नए गुरुकुलों और नई शाखाओं के समाचार आरहे हैं। आर्यजनता के हृदय समुद्र में सन्तोष लहरियां कल्लोल मचा रही हैं। चारों तरफ़ आनन्द ही आनन्द का राज्य दीख पड़ता है।

आंगल शिक्षा प्रणालीके प्रचलित होजाने पर कुछ देर तक सब उसी पर लट्टू होगये थे उसके गुण दोष विवेचन की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं गया। बहुत देर तक उसी ढंग को सर्वोत्तम समझा जाता रहा। परन्तु समय ने पलटा खाया। लोगों ने विचार करना प्रारंभ किया। जाश के उपनेत्र उतार दिये गये। अवस्थाओं से एकदम असन्तोष की आग भभक उठी। ठीक वही अवस्था अब भी हमारे सामने उपस्थित है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रचार के आवेश में हम अपनी सारी शक्तियों को उसी तरफ़ लगा रहे हैं उसी का सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली समझने लगे हैं। उसके गुण दोष विवेचन की ओर अभी हमारा ध्यान आकर्षित नहीं हुवा।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की महत्ता पर बोलते तथा लिखते अनेक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं भी इस विषय पर अपनी समझ में पर्याप्त लिख पढ़ चुका हूँ। गुरुकुलों के महत्व को दर्शाते हुए ही हमारा अब तक समय गुज़रा है। गुरुकुल के लाभों से हम भलि भांति परिचित हो चुके हैं—उनसे आज कोई भी इन्कार नहीं करता। परन्तु चूंकि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को प्रचलित हुये पर्याप्त समय हो गया है, अतः अब आत्म-निरीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है? प्रश्न है—वर्तमान गुरुकुल शिक्षा प्रणाली कहां तक संतोष जनक है? इसमें क्या २ दोष हैं? उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आंगल शिक्षा प्रणाली की अपेक्षा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली कहीं ज्यादह आशाजनक सिद्ध हुई है परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि गुरुकुलों ने हमारा पूरा २ सन्तोष नहीं किया। इस असन्तोष के निम्न लिखित कारण हैं:—

(क) प्रचलित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बच्चों को अपने माता पिता से अलग रक्खा जाता है। गुरु का अगाध प्रेम बालक के कोमल हृदय को खींच सकता है—बहुत संभवतः वह माता के प्रेम का भी स्थान ले सकता है; परन्तु अनुभव से प्रतीत होता है कि अभी माता पिता का स्थान लेने वाले गुरु उत्पन्न नहीं हुए, उनके अभाव का पूरा होना बहुतदेर तक कठिनहै। जिन अनुभवी, अल्पवयस्क नवयुवकों के कंधों पर यह भार सौंपा जाता है वे 'गुरु, के उच्च नाम को कलङ्कित करते हैं-लाभ पहुंचाना तो दूर रहा अपनी अयोग्यता से संस्था को बड़ी भारी हानि पहुंचाते हैं। अपनी कोख से जने पुत्र को देख कर माता का प्रेम स्वयं उमड़ आता है; गोद में लिया पुत्र आख़िर गोद लिया ही है। किसी दूसरे से पिता की अपेक्षा सन्तान के लिये अधिक प्रेम रखने की आशा करना एक कृत्रिम भाव की आशा रखने के अतिरिक्त और क्या है? स्वाभाविक प्रेम से बच्चों को इतनी छोटी उमर में वंचित कर देना नयी खिलती कलियों पर पाला पड़ जाने के समान है। जीवन को इस नीरस दृष्टि से देखने वाले मनोविज्ञान के एक बड़े तत्त्व को सर्वथा भुला देते हैं। माता पिता से छीन कर बच्चों को शिक्षा देना, बिना तेल दिये बत्ती को जलाना और बिना जल दिये पौधे को बढ़ाना यह तीनों एक ही प्रकार के कार्य हैं—तीनों कठोरताएं एक ही श्रेणी की हैं। मात्र [illegible] शिक्षा प्रणाली के

लिये गुरुकुल शब्द का व्यवहार होता है उस में बच्चे को माता पिता के वायु मण्डल से उठाकर एक दम बिल्कुल नवीन वायुमण्डल में डाल दिया जाता है। यह अस्वभाविक तथा हानिकर है।

(ख) आजकल जो गुरुकुल खुले हुए हैं उनका मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म के प्रचारक तय्यार करना कहा जाता है। प्रत्येक वर्ष ५०, ६०, ब्रह्मचारी लिये जाते हैं और उन सब से प्रचारक बनाने की आशा की जाती है यदि वे शिक्षा प्राप्त कर प्रचारक न बनें तो असन्तोष प्रकट किया जाता है। शिक्षा-विज्ञ की ही दृष्टि से देखा जाय तो इस से ज़्यादह दोषयुक्त शिक्षा प्रणाली मिलनी ही कठिन है। जिन बालकों के संस्कारों से आप अपरिचित हैं, जिनकी प्रवृत्तियों का आपको कुछ भी ज्ञान नहीं उन सब को एक ही साँचे में ढालना कहां की बुद्धिमता है? इसी लिये जब से गुरुकुल खुलने प्रारम्भ हुए तबसे उनके उद्देश्य भी नित्य प्रति बदलते चले गये। कभी कभी ऋषि मुनि पैदा करना उद्देश्य कहा जाता था, कभी वर्णाश्रम धर्म का पुनरुज्जीवन कहा जाने लगा, कभी उत्तम नागरिक पैदा करना उद्देश्य हो गया और कभी वैदिधर्म के प्रचारक तैयार करना उद्देश्य हुआ। संक्षेपतः आवश्यकता के अनुसार पैंतरे बदले गये, अपने मन को समझाने का उद्योग होतारहा, जिसनेभी गुरुकुलों की बागडोर अपने हाथोंमें ली वह चलते हुए कामको समाप्त करने या बदलनेसे घबराकर पुराने गीतों को नई तानों से अलापता रहा। यदि कोई हमसे कहे कि २२ साल तक तुम्हें पर्याप्त सफलतानहीं मिली इसका यहीकारण है कि तुम्हारा अभी तक कोई उद्देश्य ही निश्चित नहीं हुआ, तो हम भुंभला उठते हैं। "हैं! हमारा उद्देश्य निश्चित नहीं हुआ?" परन्तु घबराने की बात नहीं। यदि हमारा उद्देश्य निश्चित होता तो हमें उसे पूर्ण करने में पर्याप्त सफलता हो चुकी होती। इस बात को मानना पड़ेगा कि हम गुरुकुलोंको इसलिए नहीं चला रहे क्योंकि उनसे हम बहुत सन्तुष्ट हैं; परन्तु इस लिये चला रहे हैं क्योंकि एक बार चला कर अब अपनी लाज का सवाल सामने है। काम इतना बढ़ चुका है—इस चलते कामको कैसे बन्द कर दिया जाय?"

हमारे गुरुकुलों में जिसतरह बालक भर्ती करके एकके बाद दूसरी श्रेणीसे लेकर चौदहवीं श्रेणी तक लेजा कर स्नातक बनाए जाते हैं उससे सिद्ध होताहै कि हमारा लक्ष्य हमारे सामने नहीं है—यदि है तो हम काम करना नहीं जानते। ५०, ६० बच्चों से कैसे सम्भावना की जासकती है कि वे भिन्न २ प्रवृत्तियें को रखते हुए एक मशीन में ढल कर अपने स्वभावों और संस्कारों को सर्वथा तबदील कर सकेंगे। देगची में चावल ही चावल पड़े हों तो वे एक समय में पक सकते हैं—चने और मटर पकाने के लिये तो भिन्न२ आँचोंकी जरूरत है! गुरुकुलों के यदि कोई अपने उद्देश्य हैं तो उन उद्देश्यों के अनुकूल प्रवृत्ति रखने वाले बालकों को ही उनमें भर्ती करने से कार्य में सफलता हो सकती है—जन्म जन्मांतर के भिन्न २ संस्कारों की तनिक भी परवाह न करके प्रत्येक बालक को चौदह साल गुरुकुल के शिक्षाक्रम में से गुज़ार देने से गुरुकुल की ही हानि नहीं, प्रत्युत् बालकों की भी बड़ी भारी हानि होती है। अनेक बालक जीवन क्षेत्र में विस्तृत मैदानों को देख कर अपनी २ राह चुन कर अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को सफल बना सकते हैं हम उन सब प्रवृत्तियों को कुचल कर नए संस्कारों को उत्पन्न करना चाहते हैं जिससे उन बालकों का जीवन तो असफल होता ही

है और साथ ही एक उत्कृष्ट संस्था भी बदनाम हो ही जाती है।

(ग) जिस शिक्षाप्रणाली का हम अवलम्बन कर रहे हैं उसमें अयोग्यों को अथवा जो बालक हमारे योग्य न हों उनको गुरुकुल संस्था से पृथक् किये जाने का कोई नियम नहीं है और न ही ऐसा नियम बन सकता है। यदि एक बालक गुरुकुल के नियमों का पालन करता रहे, पठन पाठन में उत्तम हो तो वह चाहे आर्यसमाज के कार्य आवे या न आवे स्नातक अवश्य बन जायगा। जहां अपने कार्य के अयोग्य बालकों को हम पृथक् नहीं कर सकते वहां योग्य बालकों को ८, ९ वर्ष की आयु के उपरांत भीतर नहीं ले सकते। मेरा निजका अनुभव है कि कई ऐसे उत्साही तथा योग्य विद्यार्थी १६—१७ वर्ष की आयु में गुरुकुल से लाभ उठाना चाहते हैं जिनको ले लेने से गुरुकुलों का गौरव बढ़ सकता है और आर्यसमाज का यश उज्ज्वल हो सकता है। उन में जोश है, लगन है, योग्यता है। कमी है तो इतनी कि वे ७ वर्ष की आयु में गुरुकुल में भर्ती नहीं किये गये। नियम ऐसे हैं जिन के अनुसार ऐसे विद्यार्थी गुरुकुल से कोई लाभ नहीं उठा सकते। क्या शिक्षाप्रणाली पर इस से भी कठोर कोई आक्षेप किया जा सकता है कि जो उस से लाभ उठा सकते हैं उनको लाभ न पहुंच रहा हो, तथा जो उससे लाभ न उठाना चाहते हों उन्हें ज़बर्दस्ती लाभ पहुंचाने की कोशिश की जाती हो? जिस संस्था में ऐसा होगा—वह संस्था असन्तोष का केन्द्र बन जायगी; उस में पढ़े हुए विद्यार्थी ही उस संस्था के कट्टर शत्रु होंगे।

हमारी शिक्षा-प्रणाली इस ढंग की होनी चाहिये कि जिस समय विद्यार्थी की प्रवृत्ति प्रकट होकर सिद्ध करदे कि वह हमारे कार्य के अयोग्य है उसी समय उसके लिये दूसरे स्थान पर प्रबन्ध होसके। आर्यसमाज के कार्य के लिये जो संस्था खोली गई है उस में से उस बालक को उठा कर ऐसी संस्था में रख दिया जाय जहां उसकी अनुद्भूत शक्तियां अनुकूल वायुमण्डल पाकर विकसित होकर उसके जीवन को असफलता के गर्त्त से बचा सकें। इसके साथ २ हमारी शिक्षा-प्रणाली इतनी लचकीली होनी चाहिये कि चाहे कोई विद्यार्थी—चाहे वह कहीं का भी रहने वाला क्यों न हो—जिस समय हमारे शिक्षणालय से लाभ उठाना चाहे उसी समय वह हमारी संस्था से लाभ उठा सके। योग्यों के ग्रहण तथा अयोग्यों के त्याग से ही संस्था अपने कार्य में सफल होसकती हैं—तालाब में अच्छे पानी के आते रहने और बुरे पानी के निकलते रहने से ही वह स्वच्छ रह सकता है—यही जीवन का नियम है।

(घ) ऊपर जो बातें कही जा चुकी हैं उनके अतिरिक्त एक और दोष भी है जिस की तरफ़ ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। गुरुकुलों के ख़र्च और शिक्षा दोनों की चिंता गुरुकुल के अध्यापकों को करनी पड़ती है। शिक्षा में निश्चिन्तता एक अत्यन्त आवश्यक अंग है जिसका कि आधुनिक गुरुकुलों में अत्यन्त भाव है। दिन रात रुपये की चिंता के नीचे अध्यापक लोग दबे रहते हैं। मुझे तो यही आश्चर्य्य है कि मानव प्रकृति में विद्यमान अविश्वास के होते हुए भी अब तक ऐसी संस्थाएं कैसे चलती चली जाती हैं?

व्यय के प्रश्न को हल करने के लिये अन्य उपायों के अतिरिक्त सर्वोत्तम उपाय व्यय बढ़ने के कारणों पर विचार करना है। आजकल की शिक्षा इसलिये भी मंहगी होती चली जाती है क्योंकि विद्यार्थियों को घर से बहुत दूर जाना पड़ता है। स्कूलों में ८—५

वर्ष माता पिता पर अधिक बोझ नहीं पड़ता क्योंकि प्रारंभिक स्कूल प्रायः प्रत्येक गांवमें ही खुले हुए हैं। हां गुरुकुलों में प्रारंभ से ही माता पिता पर बोझ पड़ जाता है । गुरुकुल की शिक्षा महाविद्यालय विभाग में अधिक नहीं तो थोड़ी बहुत तो सस्ती ज़रूर है, परन्तु उसकी सारी कसर प्रारंभ के ८—१० वर्षों में निकल जाती है । कालिजों की शिक्षा प्रणाली ख़र्चीली है—इसमें कोई सन्देह नहीं । शोक तो यह है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को भी तो हम सस्ता नहीं बना सके । हमारी शिक्षा प्रणाली धनियों के लिये सस्ती है, ग़रीब के लिये मंहगी है—क्या यह हास्य तथा दुःख जनक अवस्था नहीं ?

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रेमियों के सन्मुख बड़ी बिकट समस्या उपस्थित है:—इन प्रश्नों को कैसे हल किया जाय ? इन अवस्थाओं को कैसे बदला और दूर किया जाय ?

मेरी सम्मति में ऊपर जिन बातों की ओर निर्देश किया गया है उनकी तरफ़ आर्य-जनता का विशेष ध्यान आकर्षित होने की ज़रूरत है । सोचा जाय तो यह कहना अत्युक्ति न होगी कि हम इस समय गुरुकुलों को आदत से मज़बूर होकर चला रहे हैं । हिंदुओं को तीर्थ यात्रा करने का शौक है---आर्य समाजियों को गुरुकुल के गीत गाने का शौक पैदा होगया है । कभी २ कोई असन्तोष के राग अलापने लगता है तो उसका गला बंद कर दिया जाता है, उसे मजलिस के अयोग्य समझकर वेदी से उठा दिया जाता है । हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि हमारी चलाई शिक्षा प्रणाली में दोष हो सकते हैं । अपने दोषों को छिपाने की कोशिश करना भले मानसों का काम नहीं । मैं गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का कायल हूं और इसी लिये मुझे उसमें जो दोष दिखाई देते हैं, उन्हें दूर करने की कोशिश में जितना भी हिस्सा ले सकता हूँ, लेना चाहता हूं । मेरी सम्मति में प्रचलित प्रणाली में निम्न लिखित परिवर्तन कर देने से बहुत उलझनें सुलझ सकती हैं और प्रश्न की विकटता सरल हो सकती है ।

(१) प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में प्रत्येक गांव में ४ या ५ श्रेणियों तक के गुरुकुल खोले जायें । प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियों के ब्रह्मचारी पहिले २ घर में ही रहें और पढ़ने के लिये गुरुकुल में जाया करें । तृतीय, चतुर्थ, तथा पञ्चम श्रेणियों के ब्रह्मचारी गुरुकुल में ही वास किया करें, परन्तु मिलने जुलने के लिये घर आते जाते रहें । पहिली तथा दूसरी श्रेणियों के ब्रह्मचारी पहिले पहिले अपने घरों में भोजन करें फिर उनके माता पिता एक दूसरे के ब्रह्मचारियों को अपने घर में भोजन कराना प्रारंभ करें । ब्रह्मचारी गण क्रियात्मक रूप से संसार मात्र के नर नारी को अपना माता पिता समझना सीखें । पांच वर्ष तक माता पिता के समीप जो गुरुकुल खुला हो वहीं शिक्षा ग्रहण करें ।

आज कल भी प्रायः प्रत्येक गांव एक न एक पाठशाला का भरण पोषण करता ही है अतः उन पाठशालाओं के स्थान में इस प्रकार के गुरुकुलों का चलाना किसी गांव के लिये दूभर न होगा । बिना चन्दे मांगने की फजीती के इस प्रकार के छोटे २ गुरुकुल बड़ी आसानी से चल सकेंगे-उनके साथ २ माता पिता के समीप रहने से जितने भी फायदे हो सकते हैं उन से ब्रह्मचारी वञ्चित न रहेंगे । सीमा से अधिक बंधनों द्वारा विद्यार्थियों की शक्तियां क्षीण होजाती हैं—विद्यार्थी की शक्तियों का विकास गुरू की आंखों के नीचे होना चाहिये परन्तु माता पिता के स्नेह भरे हाथ

को वहां से दूर करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

(२) इसके अनन्तर प्रत्येक ज़िले में एक २ गुरुकुल खुलना चाहिये। गांवों के गुरुकुलों से आये हुए ब्रह्मचारियों में से जो आर्य समाज के गुरुकुल में प्रविष्ट होना चाहें उनकी परीक्षा कर जिन्हें गुरुकुल के उद्देश्य के अनुकूल समझा जाय उन्हें ज़िला गुरुकुल में शिक्षा दी जाए। अन्य विद्यार्थी सरकारी स्कूलों की छठी श्रेणी में भर्ती होजावें। जहां हमारे गुरुकुलों में भर्ती होने वाले बालकों का समय नष्ट न हो वहां अन्य स्कूलों में प्रविष्ट होने की इच्छा वाले विद्यार्थी एक क्षण के लिये भी न भटकें। पांच साल की प्रारंभिक शिक्षा के बाद हमारे काम के बालक गुरुकुलों में और दूसरी प्रवृत्तियों के बालक अन्य स्कूलों में भर्ती होजायें। प्रत्येक ज़िले के गुरुकुल में आगामी पाँच वर्षों की शिक्षा हो। यह शिक्षा भी इसी दृष्टि से दी जावे कि पांच वर्ष के अनन्तर यहां फिर चुनाव होगा। उस समय भी जिन विद्यार्थियों को हम अपने गुरुकुलोंमें लेनेके लिये तैयार न हों उनकेलिये मैट्रिक पास कर लेने का पूरा २ प्रबन्ध हो।

आज कल भी प्रत्येक ज़िला एक न एक हाई स्कूल चला ही रहा है। उसकी जगह गुरुकुल चलाने के लिये लोगों को तैयार कर लेना कठिन नहीं है जब सब को विदित है कि १० साल के बाद उनके बालक गुरुकुल महाविद्यालय या सरकारी कालिज जिधर जाना चाहें जा सकते हैं तब ज़िला गुरुकुलों को सहायता मिलनी स्वाभाविक है। इस समय यदि एक प्राइवेट स्कूल है तो उसी के स्थान में उस समय दो खोले जासकते हैं क्योंकि ऐसी अवस्था में जनता इस कार्य को अधिक उपयोगी समझकर उसमें सहयोग दे सकेगी।

(३) ज़िला गुरुकुलों के बाद प्रान्तीय गुरुकुल होने चाहियें जिनमें केवल आर्यसमाज का कार्य करने के लिये जो बालक उद्यत हों जिनमें वैदिक धर्म की लगन तथा उस कार्य के लिये योग्यता हो- उन्हें प्रविष्ट किया जाय। दावे से कहा जा सकता है कि इस प्रकार छनते २ जो अखिर तक पहुंचेंगे वे हमारी आशाओं को बहुत शीघ्र पूर्ण तथा सफल कर सकेंगे। उन पर धर्म सेवा का कार्य डाला नहीं गया होगा, उन्होंने इस कार्य को स्वयं चुना होगा, स्वयं अपनाया होगा। वे अपनी शिक्षा के विधाता दूसरों को न जान कर अपने को समझेंगे। वे अपनी शिक्षा से सन्तुष्ट होंगे। वे अपने को ख़ाली न पाकर भरा हुआ पावेंगे। वे जो कुछ होंगे, खुद बनें होंगे।

(४) यदि कुछ उदार-चित्त महानुभाव चाहें तो अन्य उद्देश्यों से भी भिन्न २ महाविद्यालय स्थापित कर सकते हैं। परन्तु यदि यह कार्य सार्वदेशिक सभा के आधीन भिन्न २ प्रान्तों के सहयोग से हो तो अन्य प्रवृत्तियों के बालक भी गुरुकुल के जीवन से लाभ उठा सकते हैं।

गुरुकुल शिक्षाप्रणाली इस समय बहुत संकुचित तथा साम्प्रदायिक रूप में दीख पड़ती है, इसे सस्ता बनाने की आवश्यकता के साथ २ उदार बनाने की बड़ी भारी आवश्यकता है। हम से सब लोग लाभ उठा सकें। हमारा काम भी पूरा हो सके। हमारी शिक्षा प्रणाली सारे देश के लिये उपयोगी सिद्ध हो—सारा देश इसे अपनासके—ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को सर्वप्रिय बनाना हमारा कर्तव्य है। इस समय हमारे गुरुकुल अजायब घर बने हुए हैं। दूसरे लोग इन्हें देखने आते हैं। देखकर बहुत

सराहते हैं। वाह २ करते हैं-परन्तु लौटते २ साथ ही यह भी कह ही जाते हैं कि सारा देश इस शिक्षा प्रणाली को स्वीकार नहीं कर सकता। उन का कथन सर्वथा सत्य है। जब तक हम सब लोगों की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकते तब तक ,हम अपनी संस्था को राष्ट्रीय संस्था भी नहीं कह सकते। राष्ट्रीय संस्था कहलाने का हमें शौक न हो तो भी अपने कार्य की पूर्ति के लिये हमें गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में उपर्युक्त परिवर्तन करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। उसे सर्व साधारण तक पहुंचा कर ही हमारा काम पूरा हो सकता है।

जिन विचारों को थोड़े में यहां लिखा गया है आशा है कि आर्य विद्वान उन पर गम्भीरता से आलोचना कर किन्हीं परिणामों पर पहुंचने का प्रयत्न करेंगे।

स्त्री शिक्षा।

ले० श्री पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी कलकत्ता



स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में अब उतना मतभेद नहीं है जितना पहले था। अगर कुछ है तो शिक्षा की प्रणाली में। अब तक जैसी शिक्षा स्त्रियों को दीगई उससे कुछ विशेषलाभ न हुआ। इस स्कूली शिक्षा से जब पुरुष ही अकर्मण्य हो जाते हैं तब स्त्रियों का भला क्या पूछना है। इस पाश्चात्य शिक्षा के प्रताप से स्त्रियाँ गृह लक्ष्मी न बनकर और ही कुछ बन जाती हैं। घर की शोभा बढ़ाने के बदले वह टाउन हाल या शिमले, नैनीताल की शोभा बढ़ाती हैं। घर के काम काज में उनका मन नहीं लगता है और न शिशुओं के लालन पालन में ही। साधारण तौरपर विलासिता, उच्छृंखलता,स्वेच्छाचारिता और असहिष्णुता की मात्रा अधिक हो जाती है। सारांश यह कि वह गृहस्थी के काम की नहीं रहतीं। आराम तलब शौकीन बीबी बन जाती हैं।

मैं स्त्रीशिक्षा का विरोधी नहीं और न विरोध के लिये यह पंक्तियां लिख रहा हूँ। कहने का तात्पर्य केवल यही है कि उन्हें ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे वह अच्छी सहधर्मिणी, अच्छी जननी और अच्छी भगनी बनें, मेम साहबा न बनें।

स्त्रियों को स्कूलों और कालेजों की शिक्षा से दूरही रखना उत्तमहै। उन्हें रसोई बनाना, सीना पिरोना, शिशु पालन, स्वास्थ्य रक्षा के साधारण नियम, साधारण हिसाब किताब, चित्रकारी, दस्तकारी, संगीतादि ललित कलाही सिखानी चाहिये। मातृभाषा का इतना ज्ञान हो जाना चाहिये जिस से रामायणादि धर्मग्रन्थ मज़े में पढ़ और समझ सकें। रोगियों की सेवा शुश्रूषा तथा वैद्यक की शिक्षा भी आवश्यक है। ब्रह्मचर्य और पातिव्रत्य के सिवा नारिधर्म का महत्व भी उनके हृदय पटल पर अच्छी तरह अंकित कर देना चाहिये। मतलब यह कि उन्हें आदर्श नारी बना देना चाहिये। इस के बिना हमारा उत्थान कभी न होगा। जो विश्व आदर्श की दुहाई दे युरप की नकल करने कहते हैं वह भूल करते हैं। भला सीता सावित्री सा आदर्श युरप में कहां मिलेगा? जिन्हें आदर्श का अभाव है वह भले ही युरप को उस्ताद मानें हम क्यों मानने लगे? इस विषय में तो युरप को भारत से आदर्श ग्रहण करना चाहिये। खैर।

यज्ञशाला



कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की छात्राएं आदि हवन कर रही हैं।

सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय देहली में मुद्रित।

हर्ष की बात है, आज कल स्थान २ पर कन्या पाठशालाएं और कन्यागुरुकुल स्थापित हो रहे हैं पर उन्हें भूल कर भी विश्व विद्यालयों की शिक्षाप्रणाली का अनुकरण न करना चाहिये क्योंकि इस से हमारी निरीह बालिकाएं विलासितादि दुर्गुण सीख कर दाम्पत्य सुख का सत्यानाश कर डालेंगी। उन्हें तो बस ऐसी शिक्षा चाहिये जिस से वह गृहस्थी का सुप्रबन्ध स्वतन्त्रता पूर्वक कर सकें और ज़रा २ से कामों के लिये उन्हें पराये का मुंह न ताकना पड़े। यह उन के दिलों पर नक्श कर देना चाहिये कि

"एकै धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पति पद प्रेमा"।

॥ इति शुभम् ॥

निराशा

ले०—श्री० बलराम उपाध्याय बी० ए०

हां भूल गये तुम भूल!
करता हूं करुणा विलाप।
तुम मस्त छेड़ते तान!
सहता हूं मैं विषम ताप।
तुम दिखा रहे हो मान!
यही है नाथ!
तुम्हारा साथ!?
अब किसको समझाऊं मैं
इस व्यथित हृदय का शूल?
हां भूल गये तुम भूल।

कन्या गुरुकुल देहली

ले०—श्रीयुत ईश्वरदत्त विद्यालंकार आचार्य सूपा गुरुकुल



हमारे पास अनेक पत्र देश देशान्तरों से कन्या-गुरुकुल देहली के सम्बन्ध में विस्तृत समाचार भेजने के लिये आये। देश और विदेश से पत्रों का आना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि लोग कन्या-गुरुकुल की स्थापना का किस आतुरता के साथ अभिनन्दन कर रहे हैं। कभी २ हमसे यह भी प्रश्न होता था कि आप कन्या-गुरुकुल के विषय में वैयक्तिकरूप से (Personally) क्या जानते हैं? इन प्रश्नों

का एक ही समाधान था और वह यह कि हम स्वयं जाकर संस्था का निरीक्षण करते। गुरुकुल कांगड़ी के गत वार्षिकोत्सव पर हमें श्रीमती विद्यावती जी सेठ बी.ए. आचार्य्या कन्या-गुरुकुल देहली से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुवा। हमने अपनी इच्छा उनसे प्रकट की। यद्यपि संस्था के नियम साधारण अवस्थाओं में पुरुषों को कन्या-गुरुकुल में जाने की आज्ञा नहीं देते तथापि इस दर्शक को आचार्य्य गुरुकुल सूपा गुजरात की हैसियत से संस्था के निरीक्षण का अवसर दिया गया।

२७ मार्च को मध्यान्होत्तर लगभग ४ बजे हम नया बाज़ार देहली से एक टांगे में सवार हुवे। लगभग २० मिनिट में हमें उसने दर्यागंज में कोठी नं० ४ के सामने जा खड़ा किया। यात्री गाड़ी से उतरता है और एक आलीशान मकान उसकी आंखों के सामने आता है। मकान के आगे एक सुरम्य पुष्प-वाटिका भी अपनी छवि दिखला रही है। यात्री को यह दृश्य देख कुछ क्षणों के लिये साक्षात् अमेरिकाके Villa-life (वाटिकावास) की स्मृति होने लगी। परन्तु कुछ ही देर में दर्शक की दृष्टि एक साइनबोर्ड पर पड़ती है जिसपर बड़े अक्षरों में "कन्या-गुरुकुल" लिखा हुवा है जिसे पढ़कर भ्रान्ति दूर होती है और वहएक विशाल Gate (द्वार) से अन्दर प्रवेश करता है। कुछ समय के पश्चात् आचार्य्या जी से भेंट होती है और वह दर्शक को अपने साथ संस्था दिखलाने के लिये लेजाती हैं। चलते चलते दर्शक कुछ सोचकर .... "आचार्य्या जी! आपके यहां पाठ-विधि कितने वर्षों में विभक्त की गई है?"

आचार्या जी—ग्यारह वर्षों में।

दर्शक—यदि एक कन्या आपकी संस्था में नौ वर्ष की अवस्था में प्रविष्ट होवे और प्रतिवर्ष वह परीक्षा में भी उत्तीर्ण होती चली जावे तो वह कम से कम २० वर्ष की अवस्था में स्नातिका बन सकेगी?

आचार्या जी—जी हां।

दर्शक—यदि कोई कन्या केवल वसुब्रह्मचर्य का ही पालन कर गृहस्थ में जाना चाहे तो क्या आप उसे सोलह वर्ष की अवस्था में स्नातिका बनने का अवसर देंगी?

आचार्या जी—अभी इस विषय पर विचार होरहा है और आशा है कि पाठविधि का विभाग इसही प्रकार किया जावेगा जिससे कि एक ब्रह्मचारिणी सोलह वर्ष की अवस्था में उपाधि प्राप्त करसके और जिसे आगे अभ्यास करना हो वह आगे जासके।

दर्शक—आपने प्रवेश के लिये आयु की अवधि क्या रक्खी है?

आचार्या जी—इस वर्ष तो संस्था का प्रारम्भ होने से कुछ बड़ी अवस्था की कन्याओं को भी लेलिया गया है परन्तु साधारणतया ८, ९ वर्ष तक की ही कन्यायें ली जा सकेंगी।

दर्शक—आपने मासिक शुल्क कितना रक्खा है?

आचार्या जी—अभी तो ११) मासिक रक्खा गया है, परन्तु ठीक निश्चय-पूर्वक तो एक वर्ष के पश्चात् कहा जासकेगा कि इतने शुल्क के साथ संस्था का कार्य भले प्रकार चल सकेगा या नहीं। सम्भावना ऐसी है कि इसे बढ़ाने की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ेगी।

संस्था का निरीक्षण करते हुवे निरीक्षक के हृदय पर सबसे पूर्व जिस बात का प्रभाव पड़ा वह थी वहां की सफ़ाई। ब्रह्मचारिणियों के रहने का स्थान, पढ़ने का स्थान, सड़कें, सभाभवन, स्नानागार, उनके शरीर और वस्त्र-प्रत्येक वस्तु इस बात की साक्षी देरही थी कि आचार्या जी ने अपनी शिष्याओं को प्रथम पाठ स्वच्छता (सफ़ाई, सैनिटेशन या जिसे पतञ्जलि मुनि के शब्दों में रक्खा जावे तो "शौच") का पढ़ाया था। निरीक्षक को जो कि पश्चिम की स्वच्छता से भी खूब परिचित है यदि थोड़ी देर के लिये परीक्षक का स्थान देदिया जावे तो वह ब्रह्मचारिणियों को स्वच्छता में १०० में से कम से कम ८० अङ्क तो निःसङ्कोच दे ही देगा और यदि परीक्षक केवल भारतवर्ष के ही Standard या पैमाने से काम लेवे तो १०० में से १०० अङ्क भी बिना किसी प्रकार की ननु नच के किये देदेगा।

सफ़ाई के बाद यदि किसी दूसरी वस्तु ने निरीक्षक को प्रभावित किया तो वह थी ब्रह्मचारिणियों की सादगी। आजकल लोग 'अंग्रेज़ीफ़ैशन' रूपी दूध के जले अपनी पुत्रियों को शिक्षा देने से भी घबराने लगे हैं और कहते हैं कि पढ़ाने से हमारी पुत्रियां शौकीन होजावेंगी और घर के काम काज के योग्य नहीं रहेंगी। किन्तु उन ब्रह्मचारिणियों को देखने से दर्शक को ऐसा प्रतीत होता था कि मानो गुरुकुल की ब्रह्मचारिणी आजकल की कन्याओं के सामने यह आदर्श रखना चाहती हैं कि स्वच्छता के साथ २ सादगी के नियम का पालन कन्याओं को इस प्रकार करना चाहिये। एक खद्दर की धोती और एक कुर्ती में ही वह सन्तुष्ट प्रतीत होती थीं। भोजनशाला में भी सादे परन्तु स्वास्थ्यप्रद भोजन को ही स्थान दिया गया था। अतः निरीक्षक यह कह सकता है कि "शौच के पश्चात दूसरी शिक्षा उन्हें "सन्तोष" की दीगई थी। फिर ब्रह्मचारिणियों के जीवन पर तपश्चर्या का भी पूर्ण स्वत्व था। संस्था में आजकल चार श्रेणियां हैं और कुछ एक कन्याओं को ५ म श्रेणी की तय्यारी कराई जारही है। कन्या गुरुकुल को शुरू हुये अभी जितना समय व्यतीत हुवा है उसे ध्यान में रखते हुवे किसी भी श्रेणी की कन्याओं की योग्यता असन्तोष जनक न थी। कन्याओं की दिनचर्या का प्रारम्भ ईश्वर स्तुति के साथ होता है और ईश्वरस्तवन से ही उसकी समाप्ति की जाती है।

मानसिक उन्नति के साथ २ कन्याओं की शारीरकि उन्नति के लिये भी प्रबन्ध हो रहा है। ब्रह्मचारिणियों के खेल कूद के लिये एक क्रीड़ा क्षेत्र की तय्यारी हो रही थी। हमारी सम्मति में कन्याओं के लिये Rope skipping (रस्सी कूद) कबड्डी गद्दबल्ला, आसन, Ladies clubs (स्त्रियों की घुमाने की जोड़ियां जयपुरी या जोधपुरी) तीरन्दाज़ी, Grouping (व्यूह-रचना), प्रोफे० माणिकराव का संघव्यायाम इत्यादि अनेक प्रकार के व्यायाम लाभदायक होसकते हैं।

कन्यागुरुकुल में सीने पिरोने का काम भी ब्रह्मचारिणियों को सिखलाया जाता है। इससमय संस्थाके पास सीनेकी दो मशीन (एक हाथ की और एक पैरों की हैं) जिन पर ब्रह्मचारिणी काम सीखती हैं। बड़ी कन्यायें बेलबूटे निकालने के काम में दक्ष प्रतीत होती थीं। भोजन बनाने का कार्य कन्यायें स्वयं अपने हाथ से भी करती हैं।

इस प्रकार वह जहां एक ओर पाक विद्या की शिक्षा प्राप्त करती हैं वहां दूसरी ओर सब ब्रह्मचारिणियों को उत्तम तथा अनुकूल भोजन भी प्राप्त हो जाता है। वेतन लेकर कार्य करने वाली नौकरानी उस हित से भोजन नहीं बना सकती जैसा कि ब्रह्मचारिणी स्वयं बनाती हैं।

हमने १॥ घंटे में जो कुछ भी उस दिन अपनी आंखों से देखा उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इस संस्था से—यदि यह इस ही प्रकार उन्नतिपथ पर कायम रही—तो कन्यायें "लेड़ियां" नहीं बल्कि सच्चे अर्थों में "देवियां" बनकर निकलेंगी।

ईश्वर करे यह संस्था खूब फले और फूले तथा आज जो गृहस्थ आश्रम भारत में नरक कुण्ड बना हुआ है वह फिर से एक वार स्वर्गधाम बन जावे।

———

महर्षि का उपकार

लेखक—"श्रीनिधि"

हे ऋषि! दयानंद आज हम तव दिव्य गुनगन गारहे।
मुनिवर! अंधेरे में तुम्हारा ज्ञान दीपक पा रहे॥ ध्रुव॥

अज्ञानतम में जिस समय हम सब भटकते थे प्रभो?
पा दिव्य तव आलोक स्वामिन्? शान्ति को सरसा रहे॥ १॥

वेद-विद्या के उदय का मान फिर क्यों कर न हो।
जब कि ऋषिवर ही स्वयं शुभ मार्ग को दरसा रहे॥ २॥

उपकार इस संसार का तुमने कहां तक है किया।
देखले सत्यार्थ को जो सत्यरस बरसा रहे॥ ३॥

जो प्रेम के आकर, गुणाकर, थे दिवाकर ज्ञान में।
"श्रीनिधि" उन्हीं ऋषिराज के चरणों में अञ्जलि लारहे॥ ४॥

पृष्ठ ७१ से ७८ के स्थान में पृष्ठ ७६ से ८६ समझें।

हृदयतरङ्ग

लेखक—"श्रीचन्द्र"

नटवर ! तनिक तो अपनी बंशी मधुर बजादे ।
निज जन को मीठे स्वर से एक राग तो सुनादे ॥ ध्रुव ॥

* * * * *

दुःखित हुआ है चातक तब प्रेम रस का प्यासा ।
कलपा रहा इसे क्यों दो बूंद तो गिरादे ॥ १ ॥

* * * * *

तब पाद-पद्म-रज से निर्मिल सुमन मुकुर में ।
अपना छटा अनोखी छन भर इसे दिखादे ॥ २ ॥

* * * * *

मन मोर नित्य जपता तब पुण्य नाम माला
घन श्याम ! मञ्जु गर्जन से तू इसे नचादे ॥ ३ ॥

* * * * *

मुख चंद्र देखने को व्याकुल चकोर यह है ।
आभा दिखाके अपनी पल भर इसे रिझादे ॥ ४ ॥

* * * * *

यह है पथिक अकेला मग से भटक गया है ।
किस को, कहां पुकारे तूही सुपथ सुझादे ॥ ५ ॥

* * * * *

मातृप्रेम

लेखिका—श्रीमती राजदेवीजी अध्यापिका कन्यागुरुकुल



जेन्द्र बाबू की पहिली पत्नी एक पुत्री के जन्मोपरान्त प्रसूत रोग से पीड़ित होकर इस असार संसार को परित्याग कर चुकी थीं। जिस समय आपकी पत्नी का देहान्त हुआ था आपकी कन्या कमला केवल ६ मास की थी। आपका विवाह बाल्यावस्था में हुआ था कदाचित इसी कारण आपमें अपनी पत्नी से वैसा पारस्परिक, तथा आन्तरिक प्रेम नहीं था जैसा कि एक दम्पतिके प्रति होना चाहिये था। आपको अपनी अर्धांगिनी की मृत्यु से वास्तविक कोई दुःख नहीं हुआ परन्तु यह एक आपके लिये अवश्य दुःख का विषय होगया था कि आपके परिवार में आपके अतिरिक्त और कोई दूसरा व्यक्ति न था। परिवार में केवल गणना के लिये आपकी पूज्य माता ही थीं वे भी २ वर्ष पूर्व स्वर्ग का रास्ता ले चुकीं थी। इसलिये इस कन्या के लालन पालन का भार आप ही के ऊपर है। आप अपनी धमपत्नी की याद भले ही न करते परन्तु वह प्रतिमा जोकि वह अपने प्यारे पति के हृदय मंदिर में छोड़ गई थी उसका विस्मरण बृजेन्द्र बाबू को कब हो सकता था! वैसे चाहे आपके विवाह में कुछ देरी भी होती परन्तु अब तो आपको प्रत्यक्ष बहाना था कि विवाह न करूं तो इस लड़की का पालन पोषण कौन करेगा? अतएव आपकी पत्नी के देहान्त को अभी ६ मास भी व्यतीत नहीं हुए होंगे कि आपकी नववधू के आगमन से आप का भवन सुशोभित होने लगा।

आप की नववधू का नाम हेमकुमारी था। यह बड़ी सरल सुन्दरी और गृहकार्य्य में भी प्रवीण थीं। इन्हें हिंदी भाषा का अच्छा ज्ञान था। यद्यपि बृजेन्द्र बाबू अपनी नववधू को पाकर बड़े ही हर्षित हुये थे परन्तु एक बात की त्रुटि रह गई थी। वह यह थी कि पत्नी जी इंगलिश भाषा से बिलकुल अनभिज्ञ थीं, परन्तु सीखने की प्रबल इच्छा रखती थीं। जिस प्रकार उन्हें इंगलिश सीखने की इच्छा थी उसी प्रकार बृजेन्द्र बाबू को सिखाने की भी थी। हेमकुमारी ने थोड़े ही दिनों में ६ वीं कक्षा की इंगलिश और गणित इत्यादि सीख ली। उनकी पढ़ने की शक्ति और बुद्धि को देखकर बृजेन्द्र बाबू ने उन्हें किसी स्कूल में प्रवेश कराने का विचार स्थिर कर लिया। बाबू जी अपने दूसरे विवाह के पूर्व ही बी० ए० पास कर चुके थे। इन दिनों ये देहरादून के निकट एक स्थान पर तहसीलदारी के पद पर नियुक्त थे। इनको इस समय दो सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। ऐसी दशा में फिर हेमकुमारी के लिये २५) रु० व ३०) रु० मासिक खर्च करना उनके लिये कोई बड़ी बात न थी। अतएव हेमकुमारी को देहरादून के गर्ल्स हाईस्कूल में दाखिल करा ही तो दिया और साथ ही साथ यह भी प्रतिज्ञा की कि जब तक तुम मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण न हो जाओगी उस अवधि तक हम लोग एक दूसरे से नहीं मिलेंगे।

एक साल व्यतीत होगया और प्रतिज्ञा का पालन भी पूर्ण रीति से किया गया, परन्तु गर्मी की छुट्टियां कहां व्यतीत होंगी यह समस्या हल नहीं होती थी। बृजेन्द्र बाबू ने अपने हृदय को कड़ा करके एक पत्र हेमकुमारी को लिख भेजा कि तुम उधर ही से सीधी अपने

पिता के गृह चली जाओ। परन्तु हेमकुमारी के हृदय ने इस परामर्श को......के कारण स्वीकार नहीं किया, और बिना किसी सूचना के ही वह पति गृह के लिये रवाना होगई।

प्रातःकाल सात बजे का समय था। बृजेन्द्र बाबू एक बैन्च पर बैठे हुये अपनी प्यारी पुत्री कमला को गोद में लिये हुए दूध पिलाने का यत्न कर रहे थे, कमला भूख से व्याकुल होकर रो रही थीं, परन्तु दूध इतना गर्म था कि ठंडा होने का नाम ही नहीं लेता था। बिस्कुट, अंगूर, खिलौने इत्यादि जो कुछ भी उसके बहलाने के लिये दिया जाता वह सब फेंक २ कर बार बार रो रो पड़ती थी और दूध के लिये नीचे झुकती थी। ज्यों त्यों कर दूध ठंडा हुआ, दूध का गिलास ज्यों ही कमला के मुंह में लगा वह निमग्न हो पीने लगी। इधर कमला को दूध में निमग्न देखकर बृजेन्द्र के हृदय को भी कुछ शाँति हुई और अपना मस्तक उठाया तो क्या देखते हैं कि सामने प्रेममूर्ति हेम० खड़ी है।

बृजेन्द्र बाबू (चौंककर)—"हेम तुम यहां कहां?"

हेम० (कुछ हंसती हुई)—'अपने घर में और कहां?"

बृजेन्द्र-'तुम यहां क्यों आई मैंने तो तुम्हें पत्र द्वारा यहां आने को मना कर दिया था?"

हेम०-"मैं आपके पास नहीं आई। प्यारी कमला के देखने के लिये मेरा हृदय उत्कंठित होरहा था इसी से चली आई।"

बृजेन्द्र बाबू ने हेम० की बातों का कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्हें अब पुत्री को दूध पिलाना भार प्रतीत होने लगा। तुरन्तही एक नौकर को पुकारा और कमला को उसकी गोदी में दूध पिलाने के लिये दे दिया। ज्यों ही नौकर ने कमला को गोदी में लिया वह "बाबू जी २" कह बिलख २ कर रोने लगी। हेम० ने तुरन्त ही कमला को नौकर से ले लिया और स्वयं प्रेम से दूध पिलाने लगी।

बृजेन्द्र बाबू-"तुम क्यों लेकर बैठ गई हो मैंने तो नौकर को बुलाकर दिया था?"

हेम०—"नौकर रुला रहा था मैं कमला को इसी दशा में क्या रुलाने देती?"

बृजेन्द्र बाबू—"अच्छा मत रुलाना; अब तो तुम आगई हो मेरी भी चिंता दूर हुई"। बृजेन्द्र बाबू आज किसी आवश्यकीय काम से इसी समय कचहरी जारहे थे, जाते समय वह कह गये थे कि दोपहर तक लौटकर आ जाऊंगा, परन्तु दोपहर कहां यहां तो शाम भी होगई, पर वे अब तक नहीं आये। हेम० ने अभी तक भोजन नहीं किया, अपने प्राण प्यारे की प्रतीक्षा कर रही थी। सांयकाल के ७ बजे के लगभग बाबू जी घर लौट कर आये और आते ही उन्होंने हेमकुमारी से कहा कि "आज दोपहर के आने का मैंने बहुत प्रयत्न किया सोचता था कि कहीं तुम भूखी न बैठी हो पर आने से लाचार रहा। तुमने भोजन कर लिया है या नहीं?"

हेम०—"मैं यदि यह जानती कि आप नहीं आवेंगे तो अवश्य भोजन कर लेती।"

बृजेन्द्र—हेम! तुममें यही अवगुण बड़ा भारी है। अच्छा चलो अब भोजन करें।" बृजेन्द्र (मुखमें ग्रास डालते हुए) हेम० "तुम्हें कितने दिनों की छुट्टी?"

हेम०—"दो मास की है।"

बृजेन्द्र—"अच्छा किया तुम आगईं-घर सुहावना मालूम होता है। जब से तुम पढ़ने चली गईं थीं यदि कमला न होती तो मैं मकान के अन्दर क़दम भी न रखता।"

हेम०—"यहां आने से तभी तो रोक रहे थे ?"

बृजेन्द्र-(कुछ मुसकराकर) "वह बात दूसरी थी।" धीरे धीरे दो मास के दिवस भी आमोद प्रमोद के साथ व्यतीत होने पर आगये और स्कूल खुलने के केवल दो तीन दिन रह गये हैं। हेम० अपने स्कूल जाने की तैयारी में लगी है। बृजेन्द्र बाबू घर संभालने की चिंता में निमग्न हैं। इधर हफ्ते दो हफ्ते से हेमकुमारी का स्वास्थ ठीक नहीं था कभी कभी बुखार हो जाता था, सिर में भी दर्द बना रहता था। बृजेन्द्र बाबू ने उन्हें स्कूल जाने से बहुत रोका और स्वास्थ ठीक होजाने पर जाने की सम्मति दी पर वह कहती रही कि "स्कूल जानेपर मैं पूर्णतया स्वस्थ हो जाऊंगी यहाँ जब तक रहूंगी बीमार ही बनी रहूँगी।" हेम० ने बड़ी हठ की और स्कूल चली गई। वहां पहुंचकर वह अधिक अस्वस्थ हो गईं यहां तक कि दिन पर दिन स्वास्थ बिगड़ता ही गया और शोचनीय अवस्था हो गई।

२

दोपहर का समय था बृजेन्द्र बाबू भोजनोपरान्त शय्याका सहारा लेने जारहे थे वैसे ही एकाएक उनको तार मिला। तार पाते हीं उनका दिल धड़कने लगा, होंठ सूख गये, हाथ कांपने लगा। खोलकर पढ़ा तो हेम० की बिमारी ही की सूचना थी जिसकी उन्हें अधिक चिंता थी। हेम० बहुत अधिक बीमार थी इसलिये ये सूचना देहरादून के गर्ल्स स्कूल के प्रिंसिपल द्वारा दी गई थी और बृजेन्द्र बाबू को शीघ्र बुलाया गया था। तार पढ़तेही वह अपने को संभाल नहीं सके, उन्हें देहरादून पहुंचने की चिंता हुई। शीघ्रही वह कचहरी गये और अवकाश प्राप्त करने के लिये प्रार्थना पत्र दिया। अवकाश स्वीकार होगया। हेम० को लेकर बृजेन्द्र अपने घर आये हैं एक हफ्ता व्यतीत होजाने पर आया परन्तु दशा वैसी ही है स्वास्थ में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। किसी भी औषधि से लाभ प्रतीत नहीं होता था। कईएक डाक्टरों की यह सम्मति थी कि इसे क्रानिक मलेरिया है। अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी, बहुत ही ध्यान से सेवा सुश्रूषा करने की अवश्यक्ता थी। उसी समय वहां इन्फ्लुएन्ज़ा का बड़ा ही प्रकोप था। उसके भंयकर प्रकोप से चहुं ओर हा हा कार मच रहा था। ग्रामके ग्राम खाली हो रहे थे। डाक्टरों ने सम्मति दी कि यहां से हेम० का स्थान शीघ्र बदल देना चाहिये। यदि इन्हें यहीं रक्खा गया तो सम्भव है कि इन्हें भी इन्फ्लुन्जा होज़ाय फिर बचना सर्वथा असम्भव होजायगा। बृजेन्द्र बाबू बड़े असमंजसमें पड़े सोचते थे कि हेम०के लिये कौनसा स्थान उपयोगी होगा? यदि मैं किसी दूसरे स्थान में भेजता हूँ तो इसकी उचित रीतिसे सेवा सुश्रूषा कदाचित नहीं हो सकेगी जैसी कि मेरे सामने हो रही है, मेरे भी वहां जाने और रहने में कठिनता है क्योंकि मुझे छुट्टी कहां! यदि यहां रखता हूँ तो कहीं इसे इन्फ्लुन्जा न हो जाय तो कुछ भी न करते बनेगा।

बृजेन्द्र बाबू इसी उधेड़ बुन में पड़े थे कि इधर हेम० को दुष्ट इन्फ्लुन्जा ने आ घेरा, सम्भव के स्थान पर असम्भव होगया। आशा की जगह पर निराशा होगई, डाक्टर

वैद्य सभी नैराश्य पूर्ण उत्तर देने लगे। बृजेन्द्र बाबू की अवस्था पागलों की सी होगई। इन्हें खाने पीने सोने तक का ध्यान नहीं रहा। यह नहीं जानते थे कि रात और दिन कैसा होता है। हेम० की दशा तीन दिन तक बहुत ही ख़राब रही, वह अजेत अवस्था में थी। यन्त्रों द्वारा दवा उसके मुंह में डाली जाती थी। चौथे दिन उसको होश आया। दसबजे दिन के अपने लाल २ नेत्र खोल कर पीनेको पानी मांगा। पानी पीने के उपरांत वह कुछ चैतन्य अवस्था को प्राप्त होगई। हेम० की हालत कुछ अच्छी देख कर बृजेन्द्र बाबू को बहुत कुछ ढाढ़स होगया। उस दिन उन्होंने कुछ भोजन किया तत्पश्चात् वह तकिये के सहारे बैठ गये। उन्हें कुछ नींद आती प्रतीत हुई। ज्यों ही वह जाकर शय्या पर लेटे वैसे ही गहरी निद्रा में निमग्न होगये। बारह बजे रात को उनकी एका एक आंख खुली और उन्हें तुरन्त हेम की याद आई। जैसे ही चारपाई पर से उठना चाहा उनको अपना शरीर भारी मालूम हुआ, सिर में असह्य वेदना हो रही थी इस कारण वह पलंग से उठने के अयोग्य थे। दूसरे ही दिन उनकी अवस्था अधिक बिगड़ गई, सुध बुध जाती रही, उनके मित्रवर्गों ने विचार करके उन के सम्बन्धीगण को सूचित करना चाहा।

सब से अधिक निकट वर्त्ती सम्बन्धी हेम० के पिता अथवा पीहर वाले होते थे, उन्हें तार द्वारा सूचित किया गया। तार पाते ही हेम० के पिता और छोटे भाई ने प्रस्थान कर दिया। जिस दिन वे यहां आकर पहुंचे उसके कुछ मिन्टों पहिले ही बृजेन्द्र बाबू का प्राणान्त हो चुका था। हेम० के पिता ने बृजेन्द्र की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त की और हेम से यह दुर्घटना छिपाने की पूर्ण कोशिश की गई क्योंकि वह अत्यन्त शोचनीय अवस्था में थी। जब कभी वह पूंछती थी कि बृजेन्द्र बाबू कहां है तब उत्तर दिया जाता था कि वह किसी सरकारी काम से बाहर गये हुए हैं। परन्तु यह घटना कब तक छिपाई जाती बहुत दिनों छिप नहीं सकी। जब उस की अवस्था कुछ सुधरने लगी तब उसके बारम्बार आग्रह करने पर उसके पिता ने सारी शोकमय कहानी कह सुनाई। जब हेम० ने यह हृदय विदारक कहानी सुनी उसकी वही अवस्था फिर हो गई। अब कौन कह सकता था कि वह कब अच्छी होगी? और कौनसी दवा से?

३

बृजेन्द्र बाबू के मकान पर जो कुछ सामान था कुछ तो हेम० के पिता ने नीलाम कर दिया और कुछ सामान अपने साथ लेकर हेम० और कमला को भी साथ लेकर घर को चले गये। वहां हेम० की माता स्नेहमयी थी, जिसको पुत्री का दुःख पहाड़ सा मालूम हो रहा था, जो सदा हेम० को प्रसन्न चित रखने के प्रयत्न में लगी रहा करती थी। हेम० को दुःखी देख कर वह दूनी दुःखी हो जाया करती थी प्रसन्न चित्त होने से वह प्रसन्न दिखाई देती थी। हेम कुमारी पर माता का प्रेम और प्यार तथा सहानुभूति ने बड़ा भारी असर डाला। उसको दिन रात यही ध्यान बना रहता था कि मेरी माता किसी प्रकार से दुखी न रहे। मै अपने आप को सर्वदा प्रसन्न चित्त रखूं क्योंकि उसको माताके कष्टों को सहन करना असह्य मालूम होता था। वह जानती थी कि यह मुझे दुःखी देख कर अधिक दुःखी होती है, इस लिये वह चाहती थी कि किसी प्रकार से वह मौक़ा ही न दिया जाय। पति वियोग तथा अनेक दुःखों के कारण कितनी ही बार उसने चुपचाप आत्महत्या करलेनेकी

चेष्टा की परन्तु इस मार्ग से रोकने वाली कौन थी? वह एकमात्र प्यारी कमलाही थी। वह सोचती थी कि मेरे न रहने से इसका जीवन बहुत ही दुःखमय हो जायगा। यह बिलकुल ही असहाय हो जायेगी। किसका आश्रय लेगी! यह घोर विपत्ति के जाल में पड़ कर जो कष्ट उठायेगी उस के पाप का भागी कौन होगा? मैं अपने कष्टों से घबरा-कर एक बालिका को दुःखों के बन्धन में न डालूंगी। हेम० अपने इस धारणा को धारण किये हुए अब तक संसार के भवचक्र में चक्र लगाती हुई चली आ रही है। धीरे २ इसे यहां रहते लगभग ६ साल के व्यतीत होगये इसी बीच में बड़े भाई का गौना और छोटे भाई का बिवाह भी होगया।

दोनों भौजाइयां घर आईं, एक दूसरी में प्रेम का लवलेश न था। सास से भी कम बनती थी, तो हेमकुमारी को वे क्या समझतीं? हेम का हजार डेढ़ हजार रुपया बैंक में जमा था उसको हेमके छोटे भाई ने लेकर कपड़ेकी दुकान खोलकर बर्बाद कर दिया था, ज़ेवर भावजों के अर्पण हो चुका था अब उस के पास कुछ भी नहीं था। हेम का जब ज़ेवर रुपया लिया गया था तब यह आश दिलाई गई थी कि तुम्हें फिरसे नवीन ज़ेवर बनवाया जायेगा पर अब उसका कोई ज़िक्र तक नहीं करता! माता पिता घर के कुछ बखेड़ों से घबरा कर तीर्थ यात्रा की लालसा से अथवा परलोक सिधारने की इच्छा से बद्रीनाथ को चले गये। माता का तो वहीं प्राणान्त हो गया, पिता घर लौटकर ६ मास पीछे परलोक निवासी हुए। माता पिता के बिछोह का दुख हेम० पर अब दिन पर दिन प्रभावित होने लगा। उसके लिये संसार वास्तव में दुख स्वरूप विदित होने लगा। वह अपने मन की वेदना किस से कहती? उसकी बातों को सुनने वाला कौन था? उसके दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होने वाला कोई नहीं दिखाई पड़ता था।

हेम प्रतिदिन और प्रतिक्षण यही सोचती रहती थी कि कमला बड़ी होजाये और मैं इस का बिवाह किसी सुशील और होनहार युवक के साथ करलूं तो मुक्त हो जाऊं। परन्तु कमला अभी ११ वर्ष की भी नहीं हो पाई थी कि हेम० का जीवन भारस्वरूप होगया अब उसको एक २ दिन भारी होगया। दिन रात उसका इसी चिन्ता में व्यतीत होता था कि इस जीवन से कैसे मुक्त होऊं। वह अब सबसे अधिक चिन्तित दिखाई देती थी परन्तु वह घमंड में चूर बहुयें उसके हृदय को क्योंकर परख सकतीं थीं? वह अपना काम अधिकाधिक चतुरता से करती थी, ज्यों ज्यों हेम० का शरीर क्षीण होता था त्यों त्यों उन में अधिक फुरती आती थी। ऐसी कस कस कर ठिकाने की मारतीं थी कि कहीं निशाना चूक न जाय। यह सब सुनकर भी हेम०के भ्राताओं को इस बातका अभिमान था कि हमारा घर शांतिमय है, क्योंकि हेम कभी किसी बात की शिकायत नहीं किया करती थी। यदि उनको यह भी ज्ञात हो जाता था कि हमारी स्त्रियों का व्यवहार हेम० के साथ बहुत ही बुरा होता है तब भी उन को साहस नहीं होता था कि अपनी स्त्रियों को कुछ कह सकें। ऐसा करने से कदाचित प्रेममें विघ्न पड़जाता? यह दम्पति प्रेम स्थिर नहीं रह सकेगा जोकि होना चाहिये। हां वह कभी २ हेम० से भले ही कहा करते थे कि—"तुम समझदार हो तुम्हीं सहन किया करो किसी प्रकार घर बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये।" हेम उन लोगों की बातों को सुनकर सोचा करती थी कि—" इन के प्रेम

में कहीं बाधा न पड़ जाय इस भय से तो वह नहीं बोलते हैं पर मैं ऐसी मिट्टी की पुतली हूं कि हर समय उन की क्रोधभरी आंखों को देखती रहूं, और संतोष करती रहूँ, यह मुझे उपदेश दिया जाताहै कि मैं उन के अपमान जनक व्यवहार को सहन करती रहूँ। यह कहां की बात है ? यदि वह देख रहे हैं कि अन्याय हो रहा है तो चाहिये कि न्याय का पक्ष लें और अन्याय को रोकने का यथा-शक्ति उपाय करें। यहां तो मेरे साथ कुछ भी होता रहे वे लोग उसी प्रकार से प्रेम पूर्वक बर्ताव करते हैं, उनके साथ किञ्चित भी उदासीनता का भाव नहीं दिखाते तो वह मुझे क्या समझेंगी ? उन लोगों ने मुझे घर की बिल्ली, कुत्तों के समान समझ रक्खा है।" इन्हीं कल्पनाओं से अति दुखी होकर उसने एक बार एक शीशी जोकि विषैली औषधि से भरी रक्खी थी उठाकर अपने जीवन को समाप्त करना चाहा था, परन्तु वैसेही इसके बड़े भ्राता ने आकर हाथ पकड़ लिया और बोले-"बहिन यह क्या कर रही हो ?" हेम लज्जित होकर कुछ भी उत्तर न दे सकी, पर उसके इस दुस्साहस की चर्चा सम्पूर्ण घर में फैल गई। भाईयों में वैमनस्य हो गया, भौजाइयों के वाक्य बाण और भी तीक्ष्ण हो गये।

बड़ी बहू—" मरती आप, बदनाम करतीं हम लोगों को।"

छोटी बहू—" यही यश को दादा जी दो दो प्राणियों को पाल कर ले रहे हैं। "

हेम कुमारी अब सब के आंखों की कांटा होगई है। उसने दो मास जिस तिस प्रकार व्यतीत किये पर अब उस में अधिक दिन जीवित रहने की शक्ति नहीं थी अथवा वह अपने को संसार में अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकती थी। इन्हीं बिचारों में डूबी रहती थी कि कौनसे उपाय से मैं संसार से शीघ्र ही मुक्त हो सकती हूँ।

४

कार्तिक की पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण लग रहा था। हेम० चन्द्रग्रहण स्नान करने के लिये कुछ ग्राम की स्त्रियों के साथ जाने को तैयार होगयी। हेम० (कमला को गले लगा कर) " बेटी सोती रहना मैं कुछ रात गये आजाऊंगी। "

कमला—" अम्मा मैं भी चलूंगी कहीं तुम अंधेरे में डूब न जाओ। " हेम० की आंखों से अश्रु धारायें निकल पड़ीं और फिर प्यार से गले लगाकर—" नहीं बेटी डूबूंगी कैसे ? इतनी संख्या में लोग स्नान करने जाते हैं क्या सब डूब ही जाते हैं ? यदि ईश्वर की यही इच्छा होगी तो क्या करोगी ? क्या तुम मेरे बिना नहीं रह सकोगी ?" कमला ने हेम को ज़ोर से पकड़कर कहा—" नहीं अम्मा मैं तुमको नहीं जाने दूंगी, कहीं तुम डूब न जाओ, मैं तुम्हारे बिना पागल होकर मर जाऊंगी। "

हेम० के नेत्रों के आंसू किसी प्रकार से रोके नहीं रुकते थे उनकी बड़ी २ धारायें बन कर बहने लगीं और प्रेम से पुचकारते हुये कहा-" नहीं बेटी ऐसा नहीं होगा, तुम सो जाओ मैं अच्छी प्रकारसे लौटकर आऊंगी।"

कमला-"अच्छा अम्मा मुझे भी लेचलो।"

हेम०—" तुम्हें ठंढ लगेगी। "

कमला—"क्या तुम्हें ठंढ नहीं लगेगी ?"

हेम०—"मैं बड़ी हूँ सहलूंगी तुम बीमार हो जाओगी, फिर मुझे कष्ट होगा।"

कमला—"अच्छा अम्मा जाओ मैं जागती रहूँगी।"

हेम—"तुम सो जाना मैं आने पर तुम्हें जगा लूंगी।" चन्द्र ग्रहण ११ बजे रात को लगने वाला था। लोग ६ बजे से ही रवाना होने लगे थे। गंगा स्नान करने के लिये, कुछ लोग अपने पूजा पाठ, जप तप में लगे हुये थे, कुछ लोग मेला प्रसन्न चित्त हो देख रहे थे और ग्रहण लगने की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर हेम अपने वही दुख समुद्र में गोते लगा रही थी। रात का समय था भीड़ इतनी अधिक थी कि कहीं किसी का पता नहीं चलता था। ठीक ११ बजे ग्रहण लगा लोग स्नान करने के लिये उत्कंठा से गंगा जी में आनन्द से ग़ोते लगाने लगे। हेम० ने अपने साथियों से कहा कि "तुम जाओ पहले स्नान कर आओ मैं सामान के पास रहूँगी, मैं पीछे से स्नान कर लूंगी।" जब वह स्त्रियां स्नान पूजा करके लौटीं तब हेम० की बारी आई। हेम गंगा स्नान करने के लिये जाने लगी। वह अकेली थी और रात का समय होने के कारण उसके पैर आगे नहीं बढ़ते थे पर किसी न किसी प्रकार वह गंगा के तट तक पहुंची। गंगा जी में गोता लगा कर सोचने लगी कि "यही समय सब से अच्छा अवसर गंगा जी के सलिल गोद में आश्रय लेने का है। पर हाय कमला! तू मुझे मिट्टी में मिला रही है तेरा प्रेम कैसे तोड़ूं? तुझे किस के सहारे छोड़ूं?" जबकि यह अपने इसी ध्यान में मग्न हो गंगा जी में खड़ी थी कि भीड़ आदमियों की ऐसी आई कि जिस का धक्का खाकर वह गंगा जी के धारा प्रवाह में प्रेम से खेलने लगी और उसने सदा के लिये गंगा जी की गोद में आश्रय ले लिया। गिरते समय उसने एक बार कमला को पुकारा, फिर ईश्वरके ध्यान में निमग्न होगई।

५

रात के दो तीन बजे से ही कोलाहल मच गया। हेम का कहीं भी पता नहीं चला। कपड़ा, लोटा, रुपया पैसा जो कुछ ले गई थी सब लौट कर वापिस आगया। प्रातः काल हुआ कमला की निद्रा टूटी, उसने देखा विस्तर पर माता नहीं हैं, उसने तुरंत जाकर घर के कोने २ देखे, मामियों से पूछा पर किसी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अब कमला को विश्वास होगया कि अवश्य मेरी माता ने डूब कर प्राणान्त कर लिया है। वह "अम्मा २" पुकार कर रोने लगी। बहुत कुछ लोगों ने समझाया पर वह किसी के कहने पर कुछ भी ध्यान नहीं देती थी उसे "अम्मा" की धुन समाई हुई थी।

सन्ध्या का समय था, सूर्य देवता अस्त होचुके थे—हेम के डूबने का समाचार सुनकर पुलिस एकाएक जांचके लिये आगई। पुलिस इन्सपेक्टर ने कमला को बुला कर पूछा कि बेटी तुम्हारी माता गंगा स्नान के जाते समय तुम से कुछ कह गई थीं? कमला ने—जो कुछ जानती थी, आराम से वर्णन कर दिया कि "मेरी माता को क्या हार्दिक कष्ट था। वह आप उदास रहा करती थीं, सर्वदा आत्म हत्या करने का विचार किया करती थी, जो कुछ उनके साथ वर्ताव किया जाताथा वह उसको सहन नहीं कर सकती थी। घर उनके लिये कंटकमय इन्हीं कारणों से होगया था। कल गंगा स्नान करने को जब जारहीं थीं मुझे गले से लगा कर रो रहीं थीं।" कमला के बयान से हेम० के दोनों भाइयों पर

घड़ों पानी पड़ गया, लज्जा से सिर ऊंचा नहीं होता था। सैंकड़ों आदमियों की जो भीड़ इकट्ठी थी दांतों में उंगली दवाये हुए यह कहते हुए धीरे २ हटने लगे "बड़े घर का ऊंचा मुहार आधा ढंका आधा उघार।"

हेम० इस संसार से कूंच करगई है परन्तु अपनी एक प्रतिमा अभी छोड़ गई है। दोनों बहुएं अपनी निन्दा सैंकड़ों की भीड़ में होते हुए सुनकर और भी जल गईं। सोचती थीं कि अब जायगी कहां रहेगी तो हमारे साथ ही। अब इस से खूब अच्छी तरह से अपना बदला लगे। परन्तु शोक! कमलाकी आनन्द की सामग्री अम्मा के साथ ही चली गई। वह खाना पीना सोना सब भूलगई। घर उसके लिये श्मसान सा होगया। सड़कों पर घूमती, जंगलों में चली जाती। जो जीव जन्तु पेड़ जड़ पदार्थ मिलते सभी से अम्मा का समाचार पूंछती। यदि कोई खाने को देता था तो कहती थी कि "पहले अम्मा को दिखादो तब खाना खाऊंगी"। "अम्मा को खिला कर खाना खाऊंगी, अम्मा के साथ सोऊंगी।" धीरे २ यह सिद्ध होने लगा कि इसके दिमाग़ में कुछ खराबी होगई है। बहुत कुछ दवा की गई, पागल खाने भेजी गई, लाभ कुछ भी नहीं हुआ, उसकी दशा दिन पर दिन बिगड़ती ही गई। वह बाहर घूमना पसन्द करती थी घर को देख कर डरा करती थी। वह कुछ मासों तक जंगलों में घूमती और अम्मा को पुकारती दिखाई देती थी इसके पश्चात् वह कहाँ गई कुछ भी पता नहीं है। हां सुनते हैं कि कई वर्षों तक उसके रोने का शब्द जंगलों में गूंजता था।

अन्योक्ति मधुप !

लेखक—'श्री शान्त"

काली और कलूटी कर काया तेरी विधना ने,
काढ़ के कलेजा मानो तेरा दिखलाया है॥

फिर भी खुशामद के गीत गा गा कर तूने,
भोले भाले फूल को तो खूब बहकाया है॥

औसर को पाके सीधा सिर पै सवार हुआ,
मीठी मीठी चुटकी ले झोंके में झुलाया है।

लूट के मधुर मधु को चूस फूल फेंका दूर,
निरदई क्रूर! कोरा मधुप कहाया है॥

आधुनिक स्त्री शिक्षा पर एक दृष्टि

ले०–एक एम. ए.



हम से आग्रह किया गया है कि हम ज्योति के विशेषाङ्क के लिये कुछ लिखें। स्त्रीजगत से हमारा लगाव इतना कम रहा है कि हम नहीं जानते कि केवल देवियों के लिये उपयोगी बातें हम क्या लिखें। बचपन से मातृविहीन होने से हमें मातृस्नेह का कोई पर्य्याप्त अनुभव नहीं। और हमें यादहै कि जब पाठशाला में शिवाजी की माता का उसके प्रति प्रेम और स्नेह का चित्र Meadows Taylor साहिबकी किताब में खींचा हुआ पढ़ा था तो किस प्रकार अपने सहपाठियों और उस्ताद के सामने ही अश्रुओं की धारा उमड़ आई थी। परन्तु अब वह बातें पुरानी होगई हैं और यदि हम आदर्श माता कैसी हो इस विषय पर लिखना चाहें तो बहुत कुछ किताबी कीड़ों के लिये लेख जैसा लिखा जासका है परन्तु उसमें से व्यक्तिगत रस ढूंढ़ने परभी न मिलेगा। एक प्रसिद्ध वैदिक संस्कार में बच्चों को आशीर्वाद देते हुए कहा जाता है "मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषो वेद।" माता हम से छुटपन में छुटगई, पिता से हम कई कोस दूरी पर रहते रहे ताकि अपनी पढ़ाई में वृद्धि कर सकें और आचार्य्य तो आज कल मिलता ही न ठहरा, क्योंकि सब जगह पर टका स्वामी का ज़ोर है। फ़ीस दे दो और पढ़लो। न विद्यार्थी के मनमें गुरू के लिये सम्मान, न गुरू के मन में विद्यार्थी के प्रति प्रेम व प्रीति!

हमारी आधुनिक शिक्षाप्रणाली में बहुत ही ज़ियादह त्रुटियां हैं परन्तु फिर भी हमें शिक्षा प्राप्त करली ही होगी। है क्योंकि बिलकुल निरक्षर भट्टाचार्य रहने से घटिया दर्जे की शिक्षा पा लेना ही अच्छा है लड़के तो ज्यों त्यों कर के अपनी मानसिक वृत्तियों को कुछ विस्तार दे लेते हैं परन्तु आज कल की शिक्षा का असर लड़कियों पर चिरस्थाई और उनके जीवन को पलट देने वाला होता है। लड़कों को अपने जीवन में कई अनुभव ऐसे होते हैं जिससे कि बहुतों की काया पलट जाती है। और जो अलवेलापन और छैल छबीली आदतें उन्हें कालिज में पढ़ने के दिनों में मिल जाती हैं वह जल्दी ही जीवन संग्राम में उतरने पर नशे की तरह ही हरण होजाती हैं। जब बाबू साहब बी० ए० में पढ़ते हैं तो घर वालों को तड़ातड़ पत्र लिख कर ५०) मासिक मंगवा लेते हैं और भविष्य के लिये कई सुखप्रद तथा आकर्षक चित्र खैंचते हुए "हम जैसा न कोई" ऐसा सोचते हुये सुख से रहते हैं, परन्तु जब विशेष सम्मानसे डिग्री पाने पर भी बाबू साहिब को ७०) मासिकसे अधिक वेतन वाला स्थान नहीं मिलता और उधर सुसराल से खटाखट विवाह सम्बन्धी पत्र आने लगते हैं तब बाबू साहिब की आँखें खुलती हैं।

आज कल की शिक्षा प्रणाली में लड़की लड़कों के जीवन यात्रा में किये जाने वाले पृथक् पृथक् कार्य्यों और उन के विशेष वायुमण्डल का ध्यान नहीं रखा जाता–दोनों को एक सी शिक्षा मिलती है। लड़कियां स्वभाव से ही सौन्दर्य्य को चाहने वाली और उसके भेदों को शीघ्र समझने वाली होती हैं। उनका सौन्दर्य्य सम्बन्धी

अनुभव (Aesthetic taste) भी जल्दी विकसित हो जाता है, फिर उस पर पाश्चात्य सभ्यता का रंग और भी सोने पर सुहागे का काम करता है । नतीजा क्या? आज कल की लडकियां आदर्श गृहस्थ में अपना हिस्सा लेने के लिये बिलकुल असमर्थ होती हैं ।

व्याख्यान जितना लम्बा चाहो दिलवा लो, शेक्सपीयर और टालस्टाय के लेखों में से चुने २ शब्द सुन लो । परन्तु गृहसम्बन्धी कार्य्यों का पता ही नहीं । बच्चों की देख रेख तो दूर रही उन से मेल जोल तक नहीं हो सकता । वह बेचारे नौकरों और नौकरानियों के गले पड़े रहें और ज्यों त्यों करके बड़े होकर अपने लिये जहान में स्थान बनावें वा न बनावें उन की माता की बला से । उन्हें तो मेम साहिब कहलाने का शौक चर्राया है और वह तो प्रायः अपने साहब बहादुर के साथ और उन की अनुपस्थिति में कभी २ उनके मित्रों के साथ सीनेमा की सैर करना जानती हैं ।

ऐसी अवस्था तो उनकी होती है जोकि बहुत अच्छी किस्मतवाली हों और जिनके लिये कोई समविचार वाला साहब मिल सके । परन्तु पाश्चात्य विचारों का बूढ़े भारत में पूरा होना भी तो कठिन है । यहां बिवाह का प्रश्न बड़ा जटिल है । छोटी २ बिरादरियां हैं उन्हीं के अन्दर विवाह करना होता है । अच्छे वर वधुओं का मेल होता नहीं । बिरादरी के बाहर जाना अच्छा बताया जाता है, और कई खुले विचार वाले लोग बिरादरियों से बाहर नाते करते भी हैं परन्तु हमने आज तक एक भी ऐसा नाता फलते फूलते देखा नहीं । यदि वर की ज़ात छोटी हो अथवा उसमें कोई व्यक्तिगत छोटा सा दोष हो और वधू के सम्बन्धियों का ज़ोर बढ़ जावे तो उस विचारे की जान कलकल की वजहसे जाती रहती है । दूसरी ओर यदि वधू विचारी सास ननद के बस पड़ जावे तो उसका कोई हाल पूछने वाला नहीं रहता । और वह बेचारी आयुपर्यन्त कुढ़ती रहती है और हिस्टीरिया आदि रोगों से पीड़ित होकर मर जाती है—ऐसी कई एक घटनायें हमारे सामने हैं ।

बिरादरियों के अन्दर हमने देखा है कि कई एक सुशीला और सुशिक्षिता लड़कियां ऐसे लोगों के पल्ले पड़ जाती हैं कि जो गुण कर्म और स्वभाव में उन से बिलकुल अलहदा होते हैं और जिनकी आर्थिक दशा बहुत हीन होती है । उस से उनका गृहस्थ दुःख की भट्टी बन जाता है ।

भारत ग़रीब देश है । यहां के लोग खर्च उतना नहीं कर सकते जितना दूसरे देशों के लोग कर सकते हैं । परन्तु हमारी सेक्रेट हार्ट लेडी मैकलैगन स्कूल, इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स स्कूल तथा कन्या महाविद्यालय इत्यादि से शिक्षा पाई हुई कन्यायें पैसे की कीमत को नहीं समझतीं । उन्हें थोड़े में बरकत पैदा करनी नहीं आती, उनका व्यक्तिगत खर्च भी बहुत बढ़ा होता है क्योंकि वह सौन्दर्य्य को बाह्य आडम्बरों में ढूंढ़ती हैं और बाहर की सुन्दरता के लिये पैसे को पानी की तरह बहा देती हैं । कवि ने क्या ही अच्छा कहा है ।

"नहीं मोहताज ज़ेवर का जिसे खूबी
　खुदा ने दी ।
क्या सूरत यह रखता है यह सुन्दर
　चांद बिन गहने ॥

परन्तु इन पाश्चात्य रंग में रंगी भारतीय देवियों को समझाये कौन ? वह इधर उधर किसी magazine में पढ़ लेती हैं कि विलायत में पत्नियों को "Pin money (पिनमनी) अथवा Dress allowance" कपड़े के लिये जेब खर्च दिया जाता था। बस फिर क्या है ? रोज़ बाबू साहिब से ज़ोरदार शब्दों में मांग की जाती है कि हमारी साड़ी ब्लाऊज़ तथा माला मुन्दरी का फिकर कीजिये। बाबू साहिब की अजब शामत है। ८ घण्टे तो सरकार की नौकरी बजाएं, तीन चार घण्टे बच्चों को सम्भालें कभी २ नौकर को रोटी बनाने में भी मदद दें, बाजार हाट करें और फिर ऐसे समय जब कि दुनियां आनन्द से सो रही होती है अपनी सुशिक्षिता धर्मपत्नीसे कटी जली सुनें। सुबह उठते ही सैर कर आये तो कर आये, नहीं तो सारा दिन साहब बहादुरका दबका ! शाम को बच्चों की चींचीं, रसोई में नौकर की शिकायतें और रात को देवीजी का रामरौला, उन का नाक में दम कर देते हैं और बाबू साहिब इस संकट में से निकलने की तदबीरें सोचते हैं। करें तो क्या करें ? झमेले में तो आन ही फंसे।

यह तो हैं गृहस्थ की बातें, अब गृहस्थ में दाखिल होने से पहिले की बातें सुनिये। स्वयम्वर तो आजकल की परिस्थिति में हो नहीं सकते। मुंह मांगी मुराद तो किसी को मिलती नहीं। कुछ वर्ष पहिले माता पिता छुटपनमें विवाह कर तो दिया करते थे, परन्तु इस दम्पति की आवश्यकताओं को पूर्ण जिम्मेवारी से पूरा करते थे। युवावस्था पहुँचने पर पति पत्नि एक दूसरे को भली भांति जान जाते थे और गृहस्थ की गाड़ी के रास्ते में रोड़ा कम अटकता था। माता पिता द्वारा बच्चों की मति लिये बिना विवाह का यह एक सुखदाई फल था। परन्तु अब माता पिता का control बहुत ढीला हो गया है। उनकी सम्मति की क़दर नहीं। उन के विचार की अवहेलना की जाती है। नवयुवक और देवियों में विवाह सम्बन्धी दिये हुए बचनों की कोई क़दर और कीमत नहीं रही, लोकलाज भी नहीं रही। आज सगाइयां होती हैं और कल तोड़ दीजाती हैं। कारण वही— 'हमारी कन्या इस नातेसे सन्तुष्ट नहीं है,बहुत समझाया गया परन्तु नतीजा 'ढाक के तीन पात' मानती ही नहीं। अथवा लड़का कहता है साहब मेरी वरण की हुई कन्या तो गुणों की पुतली है परन्तु उसकी माँ का स्वभाव ख़राब है, इत्यादि २।" भाई इन बातों को पहिलेही सोच लिया करो तो अच्छा न हो ? लड़का लड़की सम्बन्ध करने से पहिले खूब खोज पड़ताल कर लिया करें और माता पिता उनकी मति ले लिया करें ताकि गिरे दूध पर रोने की नौबत ही न आए। न आपको कष्ट हो और न ही आप किसी और को लटकाये रखें। ऐसे नातों में तो मनमिले की मौज़ है नही तो कष्ट ही बढ़ता है।

हमें खेद है तो एक बात का कि विवाह सम्बन्धी यह सब कष्ट केवल आज कल के शिक्षित समाज में ही हैं अतः उन का निवारण शिक्षा और उसके आदर्श को समझने से ही हो सकेगा। हमें अपनी शिक्षा प्रणाली को बदलना होगा और बदले बिना हमारी गति नहीं।

जैसा कि हमने ऊपर लिखा है पुरुषों का कालेज जीवन का नशा शीघ्र ही उतर जाता है जब उन को संसार संग्राम में थपेड़े लगते हैं, परन्तु स्त्रियां स्वभाव से ही आदर्श प्रिय होती हैं। उनके मन पर जिन विचारों का प्रभाव पड़ जावे उसको रद्द करना दुष्कर



कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की छात्राएं पाकशाला में कार्य कर रही हैं।

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय देहली में मुद्रित।

होता है, और जैसा कि हम देखते हैं आज कल की शिक्षा का प्रभाव उनके लिये तथा उन सज्जनों के लिये जिनके घर की मालिका इन्होंने बनना है--लाभदाई नहीं है।

कन्या गुरुकुल एक नई संस्था है। हमें उस की curriculum (शिक्षा पद्धति) को पढ़ने का भी अवसर नहीं मिला परन्तु हमें बताया गया है कि इस संस्था में लड़कियों का शिक्षण और निरीक्षण भली भांति होने की सम्भावना है। इसमें उन्हें आधुनिक भारतकी परिस्थितिके अनुकूल उन सब उपयोगी विषयों की क्रियात्मक—रूप से शिक्षा देने का यत्न हो रहा है जिसे पाकर यदि सर्वथा नहीं तो भी अधिकांशरूप में देवियां सुगृहणी, सुमाता और सुपत्नी बन कर देश और धर्मकी सेविका बन सकेंगी। परमात्मा करे कि त्यागमूर्ति आचार्य्या और अन्य अधिकारियों को अपने कार्य्य में सफलता हो और वह "स्त्रीशिक्षा कैसी होनी चाहिये—" इस जटिल प्रश्न का पर्य्याप्त उत्तर अपने कार्य्य से दे सकें।

कला

लेखिका—श्रीमती सुवीरादेवी [धर्मपत्नी डा० केशवदेव शास्त्री]



हमारे आधुनिक जीवन में शब्द 'कला'के उच्चारणमात्रसे एक बड़े विस्तृत क्षेत्रवाली वस्तुका ज्ञान होता है। उसकी निम्नलिखित तीन शाखायें हैं:—

१—शिल्पकला या शिल्प व्यवसाय।

२—स्वतन्त्र कला अथवा शास्त्रकला।

३—ललित कला।

पहिले शिल्पकला या शिल्प व्यवसाय के सम्बन्ध में हम यह देखते हैं कि जो २ भी वस्तुयें हाथ से या यन्त्रों द्वारा बनाई जाती हैं सभी के लिये यह शब्द प्रयुक्त होता है। इन्हीं को भिन्न २ व्यवसाय भी कहते हैं—और इन में से प्रत्येक के अध्ययन करने के लिये जीवन पर्य्यन्त प्रयास करने की आवश्यकता होती है। और यदि इन में कुशलता और क्षमता प्राप्त करनी अभीष्ट हो तो समग्र जीवन ही इन के अभ्यास में लगा देना पड़ता है।

दूसरी स्वच्छन्द—कला या शास्त्रकला के अन्तर्गत वह सब विद्यायें आजाती हैं जिन के द्वारा हमारे मस्तिष्क की शक्तियां बढ़ती हैं, अनुभव-शक्ति का विकास होता है और कल्पना-शक्ति उन्नत होती है अर्थात् विज्ञान, दर्शन, इतिहास और भाषाओं का ज्ञान। यह विद्यायें इतनी आवश्यकीय मानी गई हैं कि हमारे महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा में इन की विद्यमानता ही उस का मुख्य अंग माना गया है। इन के द्वारा हम करोड़ों वर्षों से परम्परागत ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

तीसरी ललित कला वह कला है जो हमारी सारी शक्तियों को विकसित करती है, अतः समग्र शिक्षा पद्धति में उसको मुख्य स्थान दिया जाना चाहिये। इस के अन्तर्गत

संगीत अथवा गान, वादित्र, आलेख्य चित्रकारी, मूर्ति रचना, फूल बूटे खोदना और भवन निर्माण करना तथा काव्य रचना और साहित्य हैं। इन कलाओं में से प्रत्येक का आधार कुछ नियम हैं जिन के अभ्यास से मनुष्य की सर्वोत्तम शक्तियों का विकास होता है। और वर्तमान शिक्षा का झुकाव भी इसी ओर है कि मनुष्यके सभी उच्च मनोवेगों को पुष्ट किया जाय।

इन्हीं ललित कलाओं का ज्ञान ही एक कसौटी है जिस पर किसी जाति की सभ्यता कसी जाती है। कलाओं के उन्नत करने वाले और निर्मल स्वच्छताप्रद प्रभाव के बिना कोई शिक्षा पद्धति सम्पूर्ण नहीं हो सकती। अतः वह समय अब दूर नहीं है जब हम अपने शिक्षणालयों की पड़ताल इसके अनुसार ही करेंगे कि वह अपने शिष्यों को इन कलाओं का कितना विस्तृत ज्ञान दे रहे हैं।

कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का यह दावा है कि वह अपनी ब्रह्मचारिणियों की सभी प्रकार की शक्तियों को विकसित करने का यत्न करेगा, जिस से उन की शारीरिक, मानसिक, धार्मिक और आत्मिक सभी शक्तियों की एक साथ एक रस वृद्धि हो। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि इस संस्था की शिक्षापद्धति के निर्माता लोग इस में ललित कलाओं को भी उचित स्थान देने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस प्रकार बालिकाओं की सब अन्तर्हित शक्तियां और गुण नियम्त्रित और उन्नत होकर भावी सन्तान के जीवन में उन का स्वच्छन्द और सम्पूर्ण विकास भी हो सकेगा। क्योंकि किसी भी जाति या मनुष्य की उत्तरोत्तर वृद्धि के लिये कलाओं का ज्ञान होना आवश्यकीय अंग है।

स्त्री संसार तथा अछूतोद्धार

लेखिका--कुमारी चन्द्रवती शुक्ल।



आ ज कल अछूतोद्धार पर आन्दोलन बहुत विस्तृत रूप धारण करता जाता है--कांग्रेस ने पास कर दिया कि दलितोद्धार उसके कार्यक्रम का मुख्य अंग है। महात्मा गांधी ने इसके लिये कई लाख रुपये स्वीकार करा दिये हैं। स्थान स्थान पर सभा तथा कमेटी भी स्थापित करदी गई हैं। लोग अछूतोद्धार पर बड़े प्रभावशाली व्याख्यान भी दे आते हैं। आज कल कोई समाचार पत्र व पत्रिका ऐसी नहीं जिसके तीन चार कालम अछूतोद्धार सम्बन्धी विषयों से न भरे हों--किन्तु क्या इन सब बातों से दलितोद्धार होगया? पतितों के दुःख व कष्टों का निवारण होगया! यदि व्याख्यानों व लेक्चरों से अछूतोद्धार होजाता तो आर्य समाजी तो ५० वर्षों से इन विषयों पर लेक्चर देते चले आये हैं। अब तक कभी की इन दीनों की दशा सुधर गई होती! और उनके दुःखों का अन्त आगया होता--किन्तु नहीं। धन तथा कोरी लेक्चर बाज़ी से किसी जाति व उसके अंग का सुधार नहीं हुआ करता--।

जो लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं उनसे किसी प्रकार के सुधार की आशा करना व्यर्थ है। वास्तव में सुधार वही लोग कर सकते हैं जिनके अन्दर दलित जाति की अवस्था सुधारने इसके कष्टोंको निवारण करने की इतनी लगन हो। उसके लिये वे जीवन तक भी अर्पण करने को उद्यत रहें। ऐसा किस प्रकार हो सकता है? ऐसा तभी हो सकता है जब उनकी मानसिक प्रवृत्ति में पूर्णरूप से परिवर्तन लाया जाय तथा उनकी मानसिक दुर्बलताओं को समूल नष्ट कर दिया जाय—समस्या बड़ी जटिल है! स्त्रियों की इस ओर उदासीनता देखकर इसकी जटिलता और भी बढ़ जाती है। न तो यह हल होसकती है, सेठों के धन से। न प्रभावशाली वक्तृताओं से और न सभा कमेटियों की स्थापनाओं से-यदि किसी में भी सामर्थ है इसमहत्वपूर्ण कार्य को पूरा करनेकी तो वह केवल मातृशिक्षा तथा उसके उपदेश में है।

किन्तु खेद का विषय है कि हमारी मातायें अपने इस उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य को अभी तक न समझीं—मातृगण! याद रखिये कि आपकी वाणी में अब भी वह मोहनी शक्ति विद्यमान है,अब भी जादू मौजूद है जो एक जाति में जीवन का संचार करने के लिये सहस्रों नेताओं की वक्तृताओं से कहीं अधिक बढ़कर है,प्रभावशाली है। अंग्रेज़ी में एक कहावत है जिसका अर्थ इस प्रकार है- 'जो हाथ बच्चे का पालना हिलता है वही संसार का शासन करता है' कहने का प्रयोजन यह है कि माता बच्चे की जन्मदाता तो होती ही है साथ ही साथ उसके चरित्र की गढ़न भी अधिकतर उसी के द्वारा होती है।अतः माता अपने बच्चे को जैसा चाहे बना सकती है।

यदि आज आप चाहें कि आपके पुत्र अछूतों के साथ सहानुभूति रखने वाले बनें उनके शुभचिन्तक हों, तो सत्य जानिये कि आप उनको बिलकुल वैसा ही बना सकती हैं। किन्तु दुःख सहित कहना पड़ता है कि आज हमारी मातायें जो कुछ भी कर रही हैं, अपने कर्तव्य के बिलकुल विपरीत कर रही हैं, अपनी मान मर्यादा को बिलकुल नष्ट करने के लिये कर रही हैं—मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा है कि जब कभी आपके पुत्र व पति दीनों के कष्टों को दूर करनेका उपाय सोचने तथा इनके घावों पर मरहम लगाने की चेष्टा करते हैं—प्रथम तो वह करते ही नहीं क्योंकि आप उनके शैशव काल से ही उनके कानों में जादू के मन्त्र भरा करती हैं, कि चमार को छूना पाप है और भंगी से कहीं कपड़े का कोनभी न छूआजाय—तब तो बस पूरी आफ़त का सामना होजाता है! जो कुछ न करना पड़ जाय सो थोड़ा ही है-सो उनके हृदय ही इतने कठोर व संकीर्ण बना दिये जाते हैं कि चाहें कितने ही व्याख्यान आर्यसमाज में आकर सुनलें। चाहें कितने ही स्वराज्य सभाओं में; किन्तु तब भी यह छूआ छूत का भूत उनके सिर पर से नहीं उतरता। साहस का अभाव इनमें इतना आजाता है कि यदि यह अछूतोद्धार के लाभोंको तथा इसके महत्व को जान भी लें तब भी स्त्रियों के भय से अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत नहीं कर सकते यदि किसी विस्तृत मानसिक क्षितिज वाले ने ऐसा करने का साहस किया भी तो फिर देवी जी बिना किसी संकोच के (Social Boycott)समाजिक बहिष्कार तो करही देती हैं। यह बहुधा देखा जाता है कि जो महानुभाव शुद्धि की जलेबी तक भी खा लेते हैं तो उनका चौके में प्रवेश अपवित्र माना जाता है और खाना भी उनको काली

लकीरके अन्दर खाना पड़ता है।यह सब कहने का तात्पर्य्य यह है कि पुरुषों के हृदय इतने संकुचित तथा दयाशून्य बनानेका सारा उत्तरदायित्व—यदि सारा नहीं तो अधिकांश—आप ही पर है।

आखिर यह अछूत हैं कौन? क्या यह किसी नरक की धधकती हुई ज्वाला से फेंक दिये गये हैं? जैसा कि वर्त्तमान अवस्था से पता चलता है कि यह लोग स्वर्ग से यहां नहीं उतरे। यदि निष्पक्ष होकर धैर्य्य के साथ विचार करें तो पता लग जायगा कि इन अछूत भंगी व चमारों का ऊंची जाति के गोत्रों के साथ सम्बन्ध है। यह स्पष्ट है कि इनका उद्गम भी उसी स्थान से हुआ है जहां से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य जातियों का—यह लोग नैतिक पतन के कारण सामाजिक दृष्टि से पतित हो गये थे। अतः यदि वे अपने आचार विचार पवित्र करलें तो उनकी पहिली स्थिति में आने में कोई बाधा न होनी चाहिये–यह निर्विवाद है कि यह हमारे ही सहोदर हैं; उसी भारत माता की सन्तान हैं; उन्हीं पूर्वजों के नाम पर दम भरने वाले हैं। किन्तु हिन्दूसमाज जोइन लोगोंकेसाथ व्यवहार करती है उस पर ज़रा दृष्टिपात करिये। हिन्दू लोग इनको कुयें पर चढ़ने से रोकते हैं। जिस कुयें पर एक मुसलमान तथा ईसाई बिना किसी रोक टोक के पानी भर सकता है उस पर भंगी व चमार आदि को चढ़ने का अधिकार नहीं। एक ऐसा मनुष्य जो हिन्दुओंके धर्म को भूंठ बताता है, इनकी गौ जिसको ये माता के समान पूज्य मानते हैं मारता है, सफ़ाई से सौ कौस दूर रहता है मिट्टी के वर्त्तन से शौचार्थ पानी लेकर हिन्दू पण्डित् के बराबर खड़ा होकर उस वर्त्तन को कुयें में डाल सकता है, लेकिन एक चमार जो कि हिन्दू धर्म को मानता, गौ की रक्षा करता तथा श्री रामचन्द्र जी के पवित्र नाम को उच्चारण करता है, मंजे हुये लोटे को भी कुयें में डाल दे तो जाति पर अभिमान करने वाले उसे धुत्कार देते हैं। परिणाम यह होता है कि यह बेचारे एक २ मील दूर से पानी लाते या कुयें पर खड़े पानी मांगा करते हैं। जहां पर इनकी संख्या अधिक होती है वहां पर तो यह अपने कुयें बनवा लेते हैं, परन्तु जहां इनके दो चार ही घर हुये वहां यह पानी को तड़पते रहते हैं। इन्हें तालावों का गन्दा पानी पीना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि हज़ारों की संख्या में इनकी मृत्यु होती है! कैसी हृदय शून्यता! कैसा पाशविक व्यवहार! क्या यह हृदयवान मनुष्य के लिये असहनीय नहीं? विशेषकर हमारी माताओंका-जो दया तथा प्रेमकी अवतार मानीजाती हैं, क्या इसअनीतिमें सहयोग कुछ कम आश्चर्य्यजनक है? जाति के अधःपतन का क्या कुछ कम बलशाली प्रमाण है? अय जननिगण! भारत माता की एक मात्र आशा! जब २ समय आया है जाति की मर्य्यादा की आपने रक्षा की है। इसकी लाज को आपने बचाया है। अब समय आगया है कि आप फिर अपने कर्त्तव्य को पालन कर जाति का कल्याण करें।

अछूत जाति का प्रश्न दिनों दिन ऐसे रूप धारण करता जाता है कि इसकी ओर से अब उदासीन रहना आत्महत्या के तुल्य समझा जायगा—अछूत जातियों में जागृति उत्पन्न हो चुकी है, उनको पता हो गया है अपने जन्मसिद्ध अधिकारों का और आपके दुर्व्यवहार व अत्याचारों का जो आप उन पर रात दिन किया करती हैं। उनके अन्दर अपनी सामाजिक धार्मिक तथा शिक्षा सम्बन्धी दशा को सुधारने की गाढ़ाकांक्षा उत्पन्न हो गई है। उच्च जातियों की घृणा व

उपेक्षा उनके लिये असहनीय हो चुकी है—एक दृष्टि से तो उनकी अपनी स्थिति में परिवर्त्तन लाने की यह चेष्टा एक शुभ शकुन है। किन्तु जो लोग इसको शुभ भी न समझें उनके लिये भी वर्त्तमान स्थिति शोचनीय है।

जहां कहीं असन्तोष उत्पन्न हो जाता है तो वह निर्माणपरता (Constructive) अर्थात् अपनी वर्त्तमान स्थिति, अपने नवीन विचारों के अनुसार परिवर्त्तन करना या विनाशपरता (Destructive) अर्थात् अपनी वर्त्तमान स्थिति को एक दम नष्ट कर देना इन दोनों में से एक रूप अवश्य धारण कर लेता है। अछूत जातियों में असन्तोष उत्पन्न हो चुका है या तो उनके वर्त्तमान जीवन में उन्नतिसूचक परिवर्त्तन शीघ्र ही किये जायें, नहीं तो यह अपनी वर्त्तमान स्थिति को नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। अपने जीवन को एक नया रूप देने के लिये हिन्दू धर्म को निस्सन्देह तिलांजलि देदेंगे और आलिंगन कर लेंगे इस्लाम व ईसाई धर्म को, स्वीकार कर लेंगे नान-हिन्दू धर्म के प्रचारकों के निमन्त्रणों को जो बड़ी उदारता तथा उत्साह के साथ इनको अपनाने के लिये, इनका स्वागत करनेके लिये, रात दिन प्रस्तुत रहते हैं। यदि ये अछूत जातियां हिन्दू समाज से निकल कर नान-हिन्दू समाजों में सम्मिलित होगईं तो याद रखिये कि यह हिन्दू समाज के बल को इतना घटा देंगी कि हिन्दू समाज को अपने अस्तित्व को बनाये रखना दुष्कर ही नहीं किन्तु असम्भव हो जायेगा। यदि यह अछूत जाति इस अवनति की दशा में हिन्दू समाज के अन्दर रहें भी तो उस भारी शिलाके समान होंगी जो किसी मनुष्य व अल्पभार को तैरनेसे रोकती है।

हिन्दू समाज इस समय अथाह जल में डूब रही है। जल से ऊपर शिर उठाने तथा उभरने का जो प्रयत्न हिन्दू समाज करती है या करेगी उनप्रयत्नों की सफलता के मार्ग में ये जातियां सदा रुकावट ही रहेंगी। सारांश यह है कि जिस समय तक इन जातियोंकी यह दशा रहेगी हिन्दू धर्म उभरने के असमर्थ रहेगा। और अधिक सम्भव तो यह है कि यह हिंदू धर्म को तिलांजलि देदें और उसके विनाश का हेतु बन जांय। क्या वह इमारत जिसकी नींव हिलती हो, चिरस्थायी रह सकती है ? अथवा वह मनुष्य जिसके शरीर का कोई अंग काट लिया जाय जीवन में कोई सन्तोषजनक उन्नति प्राप्त कर सकता है ? यह अछूत हिन्दू धर्म की इमारत की नींव है, आपके जातीय जीवन के अंग हैं, आपके हृदयके टुकड़े हैं। आप कितने ही धनी तथा शिक्षित क्यों न हो जांय किन्तु जाति का कल्याण आप उस समय तक नहीं कर सक्ते जब तक आपके यह सात करोड़ भाई व बहिन अन्धकारमय जीवन व्यतीत करते रहेंगे।

यह बेचारे अछूत न तो आप से बल मांगते हैं न धन के ही इच्छुक हैं। ये तो हिंदू समाज से केवल समान व्यवहार चाहते हैं और ऐसा करना मनुष्य होने की हैसियत से इनके लिये उचित ही है। उस परम पिता परमेश्वर ने इन अछूत भाइयों का भी वैसा शरीर बनाया है जैसा कि हम सब का, इन में भी वही शक्तियां विद्यमान हैं जो हममें हैं। इस जगत के रचयिता की हममें और इन में किसी भी प्रकार की असमानता न रखना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हम और वह हमारे भाई जिन्हें आप अछूत के नाम से पुकारते हैं समान अधिकारों को भोगने के अधिकारी हैं।

हम स्वयं तो स्वराज्य पाने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। चाहते हैं, कि हमें राज-

नैतिक संसार में अंग्रेजों के समान अधिकार प्राप्त हो जांय। किन्तु हमने अपने स्वजातीय बान्धवों को शरीरिक दासता से बढ़ कर मानसिक दासता में रख छोड़ा है, कैसी स्वार्थ परता है! जो वस्तु हम स्वयं चाहते हैं उसे अपने भाइयों को देने से मुंह छिपाते हैं। इनको इनके जन्म-सिद्ध अधिकारों से वंचित रखना मनुष्यत्व के विपरीत है, यह अछूतपन वास्तवमें जाति पर कलङ्क का टीका है इसको जितनी शीघ्र दूर किया जाय उतना ही जाति के लिये श्रेयस्कर होगा—यदि आप इस का कल्याण तथा जाति की उन्नति करना चाहती हैं तो इनके जन्मसिद्ध अधिकार दे दीजये। प्रत्येक क्षेत्र में इनके लिये उन्नति के मार्ग खोल दीजिये और इनके साथ समानता का व्यवहार कीजिये। फिर देखिये यह अछूत जातियां जो इस समय हिन्दू धर्म की नौका के लिये भारी शिला हो रही हैं पतवार का कार्य्य करेंगी।

———

स्त्री शिक्षा का आदर्श और उसकी पूर्ति

लें०--श्री० प्रो० रामशरण दास सक्सेना एम. एस. सी.



किसी देश अथवा जाति की उन्नति या अवनति सर्वथा स्त्री जाति कि शिक्षा पर निर्भर है। बड़े २ विद्वानों ने जहां तक इस प्रश्न पर विचार किया है वह इसी परिणाम को पहुंचे हैं कि जहां की देवियां सुशिक्षित नहीं उस देश में न धार्मिक उन्नति होसकती है और न राजनैतिक। ऐसा देश शीघ्र ही सभ्यता के ऊंचे शिखर से नीचे गिर जाता है और उसे अन्य शिक्षित जातियां अपने आधीन कर लेती हैं। नैपोलियन ने फ्रांस देश की उन्नति का एक मुख्य साधन स्त्रियों की उच्च शिक्षा बतलाया था। जिस समय उसने यह कहा कि फ्रांस में बड़ी भारी आवश्यकता अच्छी माताओं की है, तो उसका आशय यही था कि जबतक प्रत्येक घर में धर्मात्मा, सुशील और विदुषी देवियां न हों तब तक देश की उन्नति नहीं हो सकती। इमरसन (Emerson) महाशय का कथन है कि किसी देश की सभ्यता का पैमाना वहां की देवियों की सुशिक्षा और उनका घरों में अच्छा प्रभाव है। यह बात तो प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि देश या जाति की उन्नति वर्त्तमान काल के नवयुकों पर निर्भर है। और नवयुक जो ९ मास तक माता के गर्भाशय में रहकर उसी की गोद में कई वर्ष तक शिक्षा पाते हैं, वह वैसे ही बनेंगे जैसी कि माता से उन्होंने शिक्षा पाई है। बच्चा जो कुछ माता से अपने बचपन के काल में सीख लेता है उतना वह सारे जीवन भर में नहीं सीखता। संदे महोदय (Southey) का कथन है कि मनुष्य चाहे जितने ही दिन जिये परन्तु उसके जीवन के पहिले बीस वर्ष सम्पूर्ण आयु के आधे भाग से अधिक होते हैं, इसका कारण तो स्पष्ट है। जो विचार बाल्य अवस्था में ही बच्चों के दिमाग़ में भर दिये जाते हैं, उनका प्रभाव जीवन के अंत तक रहता है। ज्योसफ़ महोदय (Joseph de Maistre) ने निम्न शब्दों में आदर्श स्त्रियों का गुण गान किया है—" It

is true that women have produced no chiefs daquvre; they have written no 'Illiad', nor Jerusalem Delivered nor 'Hamlet', nor 'Phœdre', nor 'Paradise Lost', no 'Tartuffe'; they have designed no Church of St. Peters'; composed no 'Massiah', carved no 'Appolo Belvidere', painted no 'Last judgement'; they have invented neither Algebra, nor Telescope, nor steam engines; but they have done something far greater and better than all this, for it is at their knees that upright and virtuous men and women have been trained the most excellent productions in the world." जिसका संक्षेप से आशय यह है कि यद्यपि स्त्रियों ने न तो बड़ी पुस्तकें लिखीं, न रणक्षेत्र में बड़ी बीरता दिखाई, न विज्ञान के ही बड़े आविष्कार किये तथापि जो सबसे बड़ा और उत्तम कार्य उन्होंने किया है वह यह है कि संसार के सर्व महान् व्यक्ति तथा आदर्श पुरुष इन्हीं माताओं की गोद में पले हैं। महाभारत में भी बहुत से स्थानों पर स्त्री शिक्षा का महत्व बताया है। इस विषय में क्या पाश्चात्य और क्या पूर्वी विद्वान दोनों ही सहमत हैं, कि स्त्री शिक्षा मनुष्य मात्र की उन्नति के लिये अत्यन्त ही आवश्यक है।

जब से भारतवर्ष में आर्य्य सभ्यता का पतन आरम्भ हुआ तब से स्त्री शिक्षा का तो कहना ही क्या पुरुष शिक्षा के भी लाले पड़ रहे हैं, जो अवस्था भारतवर्ष में महाभारत के समय या उस से पूर्व थी वह अब नहीं रही। शिक्षा का इतना अभाव हो गया है कि सं० १९१५ ई० में इस देश के ३३.९ प्रति शतक नवयुवक और केवल ६.३ प्रतिशतक कन्यायें शिक्षा पाती थीं। इससे पूर्व तो और भी शोचनीय अवस्था थी। जिस समय 'स्त्रीशूद्रो नाधीयताम्', का प्रचार था उस समय लोग घर की देवियों को वाधित करते थे कि वह न पढ़ें। धन्य है श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती को जिन्हों ने इस अज्ञानता के अंधेरे को दूर करके शिक्षा का दीपक प्रज्वलित करने का प्रयत्न किया, हिन्दू जाति में आर्यसमाज ने स्त्री सुधार की ओर पहिले क़दम उठाया। आर्य समाज ने नगर २ में कन्या पाठशालायें स्थापित कीं। समाज के इस शुभ कार्य का और लोगों ने भी शनैः २ अनुकरण किया जिसका परिणाम यह हुआ कि आजकल लगभग प्रत्येक बड़े नगर में कन्याओं की शिक्षा का उचित प्रवन्ध है और यह लहर अपने पूरे बेग के साथ छोटे २ नगरों में भी फैल गई है। कई एक विद्यालय और महाविद्यालय ऐसे भी स्थापित हो गये हैं जहां पर स्त्रियों की उच्च शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध है। जिस बेग से स्त्री शिक्षा की तरंग भारतवर्ष में चल रही है उस से पूर्ण आशा है कि शिक्षित स्त्रियों की प्रतिशत संख्या में यह देश भी कुछ दिनों में अन्य शिक्षित देशों से पीछे न रहेगा।

यह तो सिद्ध हो ही चुका है कि स्त्रियों की शिक्षा बड़ी आवश्यक है और बिना स्त्री शिक्षा के कोई देश या जाति उन्नति नहीं कर सकती। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उन्हें क्या पढ़ाया जावे? भिन्न२ विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में स्त्री शिक्षा की पाठविधियां विद्वान लोगों ने बड़े सोच समझ कर बनाई हैं। बहुत से प्रश्नों में तो पाठ विधियां मिलती जुलती हैं। कहीं पर संस्कृत प्रधान है, कहीं पर धर्म शिक्षा, कहीं २ पर गणित,

इतिहास तथा भूगोल का कोर्स बहुत भारी है। इन विषयों का हलका वा भारी करना अपने हाथ की बात है इन से स्त्रियों के केवल ज्ञान पर ही प्रभाव पड़ता है, परन्तु इन सब से अधिक विशेषता की जो बात है वह उनका रहन सहन है। कन्या पाठशालाओं तथा महाविद्यालयों में इस ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना कि चाहिये। वैसे तो ऐसे विद्यालयों तथा महा विद्यालयों की संख्या ही अति न्यून है जहां पर स्त्रियों के रहने के लिये आश्रम भी हों। और जहां कहीं आश्रम भी हैं वहां पर अधिकारियों ने स्त्रियों के रहन सहन पर इतना अधिक बल नहीं दिया जितना देना चाहिये।

सच पूछा जावे तो स्त्रियों के लिये जो सब से बड़ी आवश्यक बात है वह उनका रहन सहन ही है। यह बात प्रायः बहुतों के अनुभवमें आई होगी कि जिन स्त्रियोंने अपनी शिक्षा के समय पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हो पश्चिमी रहन सहन ग्रहण किया उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन के सुखों को सर्वथा विनाश कर दिया। बात यह है कि भारतीय गृहस्थियों को पश्चिमी सभ्यता बहुत से अंशों में प्रतिकूल पड़ती है । आर्य्य सभ्यता में विवाह संस्कार एक बड़ा पवित्र और उच्च संस्कार है, और स्त्री पुरुष का परस्पर सम्बन्ध धार्मिक रूप से होता है यह बात पश्चिमी सभ्यता में नाम मात्र नहीं मिलती। इसके सिवाय हमारे देश की अवस्थायें अन्य देशों से सर्वथा भिन्न हैं। यही कारण है कि आज कल गृहस्थ सुख का भंडार होने के स्थान में में दुखदाई बना हुआ है। वर्तमान काल में प्रायः पुरुष अपनी स्त्री के व्यवहार से असन्तुष्ट रहता है और स्त्री अपने पति के व्यवहारसे सदा दुःखी रहती है। बात यहीहै कि पति और पत्नी दोनों पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगे होते हैं और रहना पड़ता है ऐसे घरों में जहाँ भारतीय अवस्था विद्यमान है—और आर्य सभ्यता का सिक्का दिमागों पर से नहीं हटा है। इन बातों को देखकर बहुतों का तो यह मत हो चलाहै कि स्त्रीशिक्षाही बड़ी दूषित है। वास्तवमें बात यह नहींहै स्त्रीशिक्षा दूषित नहीं। यदि दूषितहै तो वह वायुमंडल जिसमें उन्हें रक्खा जाता है या जिस वायु मंडल में उन्हें रखकर शिक्षा दी जाती है।

स्त्री शिक्षा के प्रबन्ध में यह न्यूनता बड़ी देर से चली आरही थी। इस न्यूनताको भिन्न भिन्न प्रांतोंके बड़े २ कन्या महाविद्यालयों ने भी पूर्ण नहीं किया। आर्य जाति की बड़ी देर से यह प्रबल इच्छा थी कि जैसे भी हो सके इस न्यूनता को दूर करना चाहिये। परन्तु यह कार्य अत्यन्त ही कठिन था जिसके रास्ते में नाना प्रकार की रूकावटें थीं-गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी जो सन् १९०२ ई० में स्थापित हुआ था उसने इस बात को सिद्ध कर दिया कि कन्याओं के लिये भी एक इसी प्रकार के गुरुकुल की आवश्यकता है-जिसका मुख्य उद्देश यह हो कि कन्या ब्रह्मचर्यकी रक्षा करना सीखें। धर्मकी रक्षिका हों, गृहस्थ आश्रम को सुखदाई बनायें, अपना कर्त्तव्य अपने परिवार, देश और जाति की ओर सीखें और उनका जीवन सरल हो और विचार शुद्ध पवित्र और उच्च हों तथा वह प्राचीन आर्यसभ्यता के पुनरुज्जीवित करने में पूरी २ सहायक हों। जिससे इस देश की दरिद्रता दूर हो और नई संतान शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक बलसे परिपूर्ण हो। इसमें सन्देह नहीं जबतक भारतवर्ष में उक्त प्रकार की देवियों का अभाव है उस समय तक देश की उन्नति होनी बड़ी कठिन है।

जो गुरुकुल ब्रह्मचारियोंके लिये स्थापित हुये हैं उन्होंने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर वैदिक धर्म का प्रचार किया है और प्राचीन आर्य्य-सभ्यता के पुनः स्थापित करने का विशेष यत्न किया है। इन गुरुकुलों के होते हुये भी देश उन्नतिका कार्य्य बिल्कुल अधूराही था। विद्वानों ने गृहस्थ को दो पहियों वाली गाड़ी के समान माना है—जिसमें एक पहिया पुरुष और दूसरा पहिया स्त्री मानी गई है। और जिस गाड़ीके दोनों पहिये समान न हों तब तक वह गाड़ी भलीभाँति नहीं चल सकती। इसलिये आर्य्य जाति में ब्रह्मचारिणियों की आवश्यकता थी। यदि विचार दृष्टि से देखा जावे तो गृहस्थ की उन्नति में मुख्य भाग स्त्री जाति का है—इस लिये उनके भी सुधार की भी बड़ी भारी आवश्यकता है।

ईश्वर का कोटि२ धन्यवाद है कि आर्य्य-जाति की यह न्यूनता भी पूर्ण होगई, और गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के संचालक तथा प्रबन्धकर्त्ता महोदयों के बड़े परिश्रम से कन्या गुरुकुल स्थापित होगया। यह कुल अपना एक वर्ष सफलता पूर्वक समाप्त करके अब द्वितीय वर्ष में पग रखता है। हर्ष का स्थान है कि आर्य्यजाति ने इसकी आवश्यकता तथा महत्व को भली भांति समझ कर उदार दिल से इसकी सहायता की है। यद्यपि यह कन्या शिक्षणालय अभी तक परीक्षणात्मक स्थल पर ही है परन्तु उस में लेशमात्र सन्देह नहीं कि वह देश और आर्य्य-जाति की बड़ी भारी आवश्यकता को पूर्ण करेगा और निश्चय है कि जनता उसे सफल बनाने में पूरा २ यत्न करेगी। परमात्मा वह दिन शीघ्र लाये जब कि इस प्रकार के कन्या-गुरुकुलों की संख्या देश की आवश्यकतानुसार पर्याप्त हो और दोनों प्रकार के गुरुकुल—ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों के—इस देश और आर्य्यजाति की उन्नति में पूरा २ भाग लेते हुये वैदिक सभ्यता को उस के ऊंचे शिखर पर पहुंचायें।

स्त्रीशिक्षा पर वैज्ञानिकों की सम्मतियां

आधुनिक शिक्षा से हानि

शिक्षा के विषय में प्रोफैसर स्टेनले हाल इस प्रकार अपनी सम्मति देते हैं:—

"हम दिन प्रतिदिन यह भूलते जाते हैं कि भावी जीवन की तय्यारी के लिये युवा और युवतियों को शिष्यकाल में यदि उन्हों ने मनुष्य साम्राज्य में पूरी २ तय्यारी से प्रवेश करना है--आराम, शाँति, कला, आख्यायिका, शूरकथा, आदर्श प्रियता अर्थात् एक शब्दमें मनुष्यत्वकी शिक्षाकी आवश्यक्ता है। हमारी आजकल की शिक्षापद्धति में बालोद्यान प्रणाली अपने ही मत पर विश्वास और प्रचण्ड हेत्वाभास के द्वारा बालकों की स्वाभाविक सरलता और सौजन्यताका नाशकर रही है। प्रत्येक स्थान में नियमों की अति और कलाकी भाँति कार्यप्रणाली शांति और वास्तविकता को, अक्षर भाव को, बुद्धि सदाचार को, पाठबोध असली शिक्षा को, साँकेतिक शिक्षा वास्तविक शिक्षाको, ज्ञान विद्या को, नम्बरोंकी प्राप्ति प्रसन्नता को और प्रणाली सार को दबा रहे हैं।"

गृहस्थ जीवन पर शिक्षा का प्रभाव

प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफ़ेसर कैसल लिखते हैं:—

"मनुष्य जीवन जितना अधिक पेचीदा और सादगी से दूर होता जा रहा है--वंश परम्परा द्वारा इसको स्थिर रखने की ओर उतना ही कम ध्यान दिया

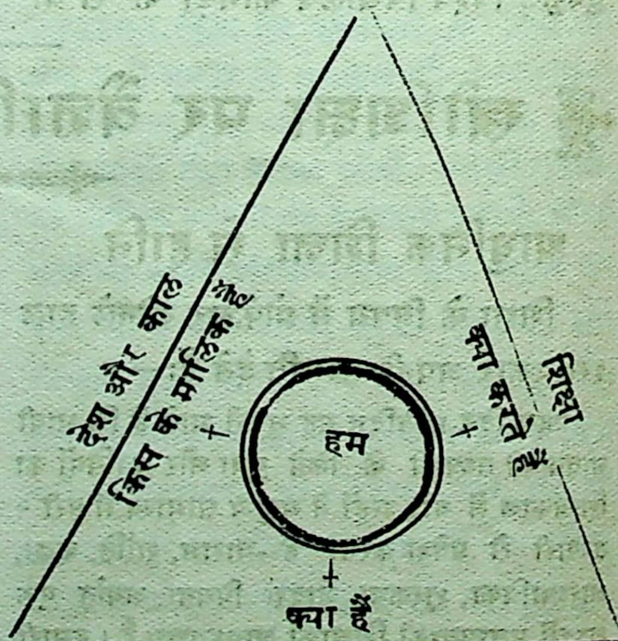
जाता है। छोटे से समाज में गृहस्थ जीवन प्रधान रहता है और सन्तान का पालन पोषण और शिक्षण इस जीवन के बड़े महत्व के कार्य हैं। परन्तु ज्यों ज्यों समाज का जीवन सादगी से परे हटता जाता है, गृहस्थ जीवन को गौण स्थान मिलने लगता है। मनुष्य जितना शिक्षित, बुद्धिमान और विद्वान होता है उसी परिमाण में उसे घर से बाहर आकर्षण की अधिक सामग्री मिलती है। परिमाण यह होता है कि गृहस्थ जीवन को हानि पहुंचती है। वह व्यक्ति जो कि माता पिता बनने के सब से अधिक योग्य हैं इस जीवन को तुच्छ समझने और इससे घृणा करने लगते हैं। अतः बालकों का पालन पोषण उनके सिपुर्द हो जाता है जो कि अन्य कार्यों के अयोग्य समझे जाते हैं। इसीलिये एक शिक्षित और उन्नतिशील नगर में अधिक संख्या में बालक अति अल्पशिक्षित और उन्नतशील माता पिता द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। यह अवस्था आजकल प्रत्येक शिक्षित देश और जाति के विचारकों और नेताओं के सन्मुख है।"

इस प्रकार भावी जातीय जीवन ढीला और दुर्बल होता जायगा, सामूहिक रूप से जाति दिन प्रतिदिन निर्बल और अयोग्य बनती जायगी। अतः प्रत्येक शिक्षा सुधारक का कर्तव्य है कि जाति की इस आपत्ति से रक्षा करे। कन्या गुरुकुल के संचालकों को भी इस प्रश्न की ओर से उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। हमारी सम्मति में पति और पत्नी में जितना अधिक शिक्षा का अन्तर होगा उतना ही गृहस्थ जीवन कमज़ोर होगा। अतः स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों की शिक्षा के कितनी बराबर होनी चाहिये यह प्रश्न विचारणीय है। . . .

शिक्षा ही सब कुछ नहीं

प्रोफेसर वाल्टर अपनी पुस्तक "जनन विद्या" में लिखते हैं:—

"किसी व्यक्ति का 'स्वभाव' तीन अवयवों पर निर्भर है (१) देश और काल (२) शिक्षा और (३) पैत्रिक संस्कार। अथवा यह कहा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति इन तीन अवयवों की आपस में एक दूसरे पर क्रिया का फल है, क्योंकि इन में से एक में भी अन्तर पड़ने से व्यक्ति में अन्तर पड़ जाता है। यद्यपि हम किसी भी अवयव को छोड़ नहीं सकते परन्तु जनन विद्या (genetics) का विद्यार्थी पैत्रिक संस्कारों को ही अधिक बलवान अवयव समझता है। यह प्रत्येक व्यक्ति की निज की सम्पत्ति है। यह वही है जो कुछ वह जन्म से भी पहिले था। यह उसका व्यक्तित्व है। यह इसी पर निर्भर है कि वह मनुष्य बनेगा अथवा पशु।



जीवन का त्रिकोण

इसी कारण ऊपर दिये हुये चित्र में जीवन त्रिकोण को बड़ी दृढ़तापूर्वक पैत्रिक संस्कार की नींव पर ही स्थित दिखलाया गया है।

देश और काल तथा शिक्षा यद्यपि अपरिहार्य हैं, परन्तु यह दोनों ऐसे अवयव हैं जो कि पीछे से कार्य करते हैं और जिनका गौण दर्जा है। देश और काल वह है जिस का व्यक्ति मालिक है जैसा कि घर बार, भोजन सामग्री, मित्र और शत्रु, गरमी सरदी, और इसी प्रकारकी आसपासकी बातें जो कि उस को सहायतायें अथवा वह रुकावटें डालें जिन्हें उसे दूर करना चाहिये। यह संसार का वह विशेष भाग है जिसमें कि वह जन्म लेता है, या यों कहिये कि यह उस अवसर का परिमाण है जो कि उसकी पैत्रिक शक्तियों को कार्य करने के लिये प्राप्त है।

शिक्षा, दूसरी ओर यह जतलाती है कि मनुष्य अपनी पैत्रिक सम्पत्ति और देशकाल द्वारा क्या कार्य करता है। एक अति उत्तम पैत्रिक संस्कार अनुकूल देशकाल के अभाव में उसी अवस्थाको प्राप्त होजाते हैं, जोकि उत्तम पथरीली भूमि में बोये हुये उत्तम बीज के भाग्यमें है। परन्तु यह नितान्त सत्यहै कि देश और काल कितने भी अनुकूल हों, इस पैत्रिक कमी को कदापि पूरा नहीं कर सकते, जौ से गेहूं उत्पन्न नहीं हो सकता।

उत्तम शिक्षा का अभाव उत्तम पैत्रिक संस्कारों और अनुकूल देशकाल के होने पर भी व्यक्ति के संभावित गुणों के विकास का बाधकहै। दूसरी तरफ़ यह ठीकहै कि कितनी भी शिक्षा क्यों न दीजाय वह पशु को मनुष्य नहीं बनासकती। यही कारणहै कि जनविद्याविशारदों के मत में कोई व्यक्ति क्या गुण रखता है और क्या करता है? यह बड़े आवश्यक अवयव हैं। विशेषकर स्वयं उस व्यक्ति के लिये, परन्तु वह क्या है यह इससे कहीं बढ़कर आवश्यक है। उन्नत देशकाल और शिक्षा उन जीवों को उन्नत कर सकते हैं जो कि पैदा हो चुके हैं। उन्नत रक्त आने वाली सन्तानों की उन्नति का साधन है।"

यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने मनुष्य के लिये १६ संस्कार आवश्यक ठहराये हैं। इनके द्वारा जहां माता पिता का जन्म के पश्चात् सन्तान को योग्य बनाना धर्म हो जाता है, वहां जन्म से पहिले भी अपनी सन्तान के लिये उनका क्या कर्तव्य है? यह पहिले भी बतलाया जाता है।

मानसिक शिक्षा

डाक्टर हैनरी चैपिन अपनी पुस्तक "वंशपरम्परा और बालकों की शिक्षा" में लिखते हैं:—

"यद्यपि शिक्षा प्राप्ति मनुष्य के समस्त जीवन के साथ २ रहती है, परन्तु बालकों और युवाओं के शिक्षण की ओर ही इस प्रश्न का बड़ा भारी बल है। इस समयमें स्वास्थ्य और शरीर की वृद्धि दोनों ही पर ध्यान देना चाहिये। परन्तु चूंकि शिक्षाका समय थोड़ा होता है अतः बालकों पर अधिक बोझ डालने और शीघ्रता में बहुत सी चीज़ें सिखाने की प्रवृत्ति होजाती है। यह बड़ा अहितकर है। परन्तु यदि मातापिता और अध्यापक अध्यापिकाओं के मन में शिक्षाके उद्देश्य सम्बन्धी शुद्ध और निर्मल विचार हों तो इस प्रकारकी शिक्षाकी हानिसे हम बहुत कुछ बच सके हैं।

प्रवृत्ति यह है कि साधारण अध्यापन को विद्या समझ लिया जाता है। जहां साधारण अध्यापन द्वारा हमें कुछ जानने योग्य बातों का ज्ञान होता है वहां विद्या हमारे जीवन में शुभ संस्कारों को लाने का साधन बनती है। विद्या के मुख्य उद्देश्य साधारण वस्तुओं की जानकारी दे देना नहीं है। वरन मनुष्य के मन को इस प्रकार संस्कृत करना है कि यह भला बुरा पहचानने के योग्य बन सके, और इस प्रकार जाति के विस्तृत और उच्च जीवन के साथ २ अपने जीवन का मिलान कर सके।

दूसरी ओर साधारण शिक्षा का उद्देश्य मस्तिष्क में कुछ लाभकारी और मनोरञ्जक बातों का ज्ञान भर देना है। बालकों की अवस्थामें थोड़ी विद्या और बहुत शिक्षाकी अधिक सम्भावना है। बहुत सी चीज़ें सीखने पर जो बल दिया जाता है इससे अधिक शक्ति, सफलता या सुख के स्थान में मानसिक और शारीरक कमज़ोरी ही अधिक होती हैं। प्रायः बच्चों को बहुतसे विषयों पर शिक्षादी जाती है। इन बहुत विषयों का होना हमारे लिये एक बड़ा विचारणीय प्रश्न है। न केवल इस प्रकार हमें बहुत सी वस्तुओं का अधूरा ज्ञान प्राप्त होता है वरन व्यायाम और मनोरञ्जन के लिये भी बहुत कम समय रह जाता है। जबरदस्ती दी जाने वाली उच्च शिक्षा के सिद्धान्त की लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियोंकी अवस्था में अधिक वृद्धि हुईहै। लड़कियों की शिक्षा का प्रश्न इस बात से अधिक पेचीदा होता है कि शरीर की बढ़ती के समय उनकी शरीरिक और स्त्रीत्व सम्बन्धी विशेष गुणोंकी वृद्धि उनके निजके लिये और जाति के लिये कितने महत्व की है। प्रौढ़ावस्था के समय मस्तिष्क की अपेक्षा शरीर अधिक महत्व की वस्तु है, परन्तु इसी समय लड़कियों पर पढ़ाई का सब से अधिक बोझ लाद दिया जाता है। स्त्रियों के कालिज पुरुषों की स्पर्धा में दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। कोई भी समझदार आदमी इस बात से इन्कार नहीं करता कि लड़कियों को उत्तम शिक्षा दी जाय। परन्तु यह विचारणीय विषय है कि आज कल जिस प्रकार की शिक्षा उनके कालेजों में मिलती है क्या उनके लिये यही सर्वोत्तम है? इस समय उद्देश्य यह जान पड़ताहै कि लड़कियों को—उनकी शारीरिक और मानसिक भिन्नता की ओर कोई ध्यान न देते हुये—लड़कोंवाली शिक्षा के ठप्पे में ही ढाला जाय। स्त्री का मन पुरुष के मन से उतना ही भिन्न है जितना कि उसका शरीर। और मन और शरीर दोनों के लिये एक विशेष सीमा तक भिन्न प्रकार की शिक्षा की आवश्यक्ता है। यह भिन्नता शरीर की गठन से बड़ा सम्बन्ध रखती है, और हमें इसे—शिक्षा पर विचार करते समय—भुला न देना चाहिये। स्त्री और पुरुष की शारीरिक और मानसिक भिन्नता को आरम्भ से ही स्वीकारकर लेना चाहिये। हमारी सम्मति में युवतियों की उच्च शिक्षा में आधुनिक भाषाओं का ज्ञान, साहित्य, संगीत, स्वास्थ्यरक्षा-अपनी और गृहस्थ दोनों की—भोजन का चुनाव और उस की रसायन, बच्चों का पालन पोषण, सेवावृत्ति और शारीरिक उन्नति पर ही अधिक बल देना चाहिये। दूसरे शब्दों में उनकी शिक्षा के उद्देश्य उन्हें गृहपत्नी बनाना हो अध्यापिका नहीं।

कामशास्त्र की शिक्षा

इस विषय पर हम प्रोफेसर गैडास और थामसन के विचार नीचे देते हैं:—

"हम अपनी सन्तान को स्वास्थ्य और रोग, भोजन और विष, आराम और व्यायाम, इसी प्रकार अन्य विषयों की शिक्षा देते हैं। हम इनकी शिक्षा देते समय यह स्वीकार कर लेते हैं कि पहले से किसी संभाव्य खराबी के विषय में चौकन्ना कर देना उसके विरुद्ध सशस्त्र कर देना है। इस का फल सर्वथा सन्तोषजनक है। इसी पद्धति को हम लिङ्गिक सदाचार की शिक्षा के विषय में क्यों प्रयाग न करें। हम युवा और युवतियों को पाचन-क्रिया, आमाशय और त्वचा का ज्ञान देते हैं, नाड़ी और पट्ठों, दिल और फेफड़ों का ज्ञान देते हैं तो फिर जननेन्द्रियों के विषयमें शिक्षा देना ही क्यों बुरा समझा जाता है? क्या रतिशास्त्र का ठीक समय में दिया हुआ ज्ञान बालक और बालिकाओं को दुराचार और व्यभिचार में पड़ने से न रोकेगा?

(१) यह ठीक है—जैसा कि कई महानुभाव मानते हैं—कि इस प्रकार की शिक्षा से सम्भव है उन के मनमें काम सम्बन्धी विचार जो कि अभी तक सोये हुये हों जाग उठें। अतः क्या यह उत्तम नहीं कि इन कुत्तों को सोये रहने दिया जाय? इसका उत्तर यही है कि इस विषय की बड़ी सावधानीसे शिक्षा दी जाय जिससे शिष्य और शिष्याओं के मन में समय से पहिले इस विषय के ज्ञान की इच्छा उत्पन्न न हो। शिक्षा का एक क्रम भी होना चाहिये। अधिकांश अवस्थाओं में यह कुत्ते सोते नहीं, यदि सोते भी हों तो पता नहीं किस समय जाग उठें। अतः इन के काटने से बचने के लिये आवश्यक है कि इन के जागने से पहिले हृदय को सजग कर दिया जाय।

(२) मनुष्य की जननेन्द्रियों और कामवासनाओं के विषय में हमें रहस्य अवश्य रखना चाहिये। यह इस रहस्य की पवित्रता ही है जो कि मनुष्य को केवल भोग के अधम स्थान से उठाकर प्रेम के उच्च और पवित्र भावों की ओर ले जाती है। इस शंका के विषय में हमारा उत्तर यह है कि यह शिक्षा देते हुये भी हम इस रहस्य को स्थिर रख सकते हैं। इसकी पवित्रता और सौन्दर्य को बालकों के मन पर इस प्रकार अंकित किया जा सकता है कि वह भली भांति समझ सकें—कि यह रहस्य विषय की गम्भीरता और पवित्रता के कारण है न कि अपवित्रता के कारण जैसा कि वह बहुधा लोग आज कल समझते हैं।

(३) इस शिक्षा से लाभ क्या है? क्या युवा और युवतियों को काम शास्त्र की शिक्षा देने का कुछ लाभ भी होगा? इस प्रश्न का उत्तर सहल नहीं। प्रश्न इसलिये उठता है कि स्त्री पुरुष सम्बन्धी विषय में इतना अन्धकार है—इसी से विचारों और वाक्यों की अपवित्रता, मानसिक दुर्बलता, अश्लीलता, जवानी की खराबियां, कामान्धता, दुराचार और व्यभिचार आदि फैले हैं। यह बुराइयां कामशास्त्र की शिक्षा का आवश्यक समर्थन नहीं करतीं, क्योंकि भय है कि अवस्था बुरी से अधिक बुरी होजाय। परन्तु जब हम युवा और युवतियों के टूटे हुये, बिखरे हुये जीवन के सामने आते हैं तो मन में यह भाव आये बिना नहीं रहता कि यदि इन्हें पहिले ज्ञान होता तो कदाचित आज यह अवस्था न होती!

अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य को काम सम्बन्धी क्रियाओं के वास्तविक प्राकृतिक धर्म का बहुत कम ज्ञान है। एक लड़का

या लड़की यह जाने बिना कि क्या होरहा है, बुरी आदतें (रति सम्बन्धी) सीख सकते हैं। यदि उन्हें कभी भी ठीक २ बात न बतलाई जाय तो उनके इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया जा सकता है, "परन्तु आपने मुझे इस विषय में कभी भी कुछ नहीं बतलाया।"

तो फिर यह शिक्षा कौन दे? यह निस्सन्देह है कि कोमल बालकों को मातासे बढ़कर इस शिक्षा देने का कोई अधिकारी नहीं। परन्तु अवस्था क्या है? हम देखते हैं कि माता पिता इस विषय में बिल्कुल चुप रहते हैं। कितने ही माता पिता में इसकी योग्यता नहीं। कितने ही माता पिता को अपना निजी जीवन ध्यान में लाते ही अपनी सन्तान को इस प्रकार की शिक्षा देने में भी बड़ा संकोच होता है। इसका फल यह होता है कि प्रायः वही बालक और बालिकायें इस शिक्षा से वञ्चित रह जाती हैं—जिनको इसकी अधिक आवश्यकता है।

आजकल की जैसी अवस्था है इसको देखकर यही कहा जा सकता है कि यह शिक्षा स्कूलों और पाठशालाओं में ठीक २ दी जा सकती है और यह जीवन-विद्या (Biology) शरीर-विज्ञान (Human Physiology) और गृहस्थशास्त्र इत्यादि किसी भी विषय के अन्तर्गत दी जा सकती है। यह शिक्षा मुख्याध्यापक अथवा मुख्याध्यापिका दें, अथवा प्रत्येक श्रेणी के अध्यापक अध्यापिका दें, जीवन-विद्या का अध्यापक दे, वैद्य या डाक्टर दे अथवा पुस्तकों द्वारा दी जाय? इसका निर्णय देशकाल और पात्र की अवस्था पर निर्भर है।

शिक्षा किस प्रकार की हो? यह लड़के और लड़कियों के लिये भिन्न होगी, अवस्था के अनुसार भिन्न होगी। कुछ कुछ इस प्रकार का क्रम हो सकता हैः—

१—जवानी के दिनों में बाहर की बातों की ओर अधिक ध्यान खेंचा जाय इस के लिये विविध प्रकार के बहुत से काम और खेल कूद, कला और शुद्ध साहस के बढ़ाने वाले कर्म, संगीत और तपोमय जीवन बनाने का यत्न होना चाहिये।

२—सब प्रकार की धार्मिक और सदाचार सम्बन्धी शिक्षा दी जाय जो मन को शुद्ध उदाहरणों से भर दे, जो मनुष्य प्रेम को शूरवीरता, देशसेवा, त्याग और परोपकार के संग जोड़कर विशुद्ध बनादे और जो आत्मसंयम सद्व्यवहार, सौजन्यता, स्त्री पुरुष के हृदय में एक दूसरे के लिये मान, और विचारों की पवित्रता को सदा ही आदरणीय समझे।

३—यह बात स्वीकार करते हुये भी कि रतिशास्त्र सम्बन्धी संकोच अवश्य होना चाहिये अध्यापक अध्यापिकाओं को यदि पाठ में कोई ऐसी बात आजाय तो उसको अपवित्र अथवा रहस्यमय समझकर स्पष्ट किये बिना छोड़ न देना चाहिये। इस से बालकों में अपवित्र और अशुद्ध ज्ञान प्राप्त करने की संभावना उत्पन्न हो जाती है। उन्हें यह स्पष्ट कह देना चाहिये कि यदि उन्हें इस विषय में अधिक नहीं बतलाया जाता तो इसका कारण कोई लज्जाजनक बात नहीं वरन विषय की पवित्रता है—जो कि अधिकारी को ही बतलाया जाता है। प्रसंगवश इतिहास और जीवनचरित्रों से उदाहरण लेकर बतलाया जा सकता है कि संयम, ब्रह्मचर्य पतिव्रत और पत्निव्रत द्वारा गृहस्थ सुखमय और जाति बलवान और उन्नत होती है।

ज्योति — स्वागत

कुल देवि ! इन कुल कन्यकाओं का परम उपकार हो, स्वागत तुम्हारा पुण्य-मानस में सदा शतवार हो ।
इस भव्य भारतवर्ष में फिर देवियों का मान हो, नित आन वैदिक धर्म की हो, सत्य उसका ज्ञान हो॥ १॥



बाहरी दृश्य—भवन कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ ।

कुल देवियाँ हों देवियों सम, दिव्य गुन गन धाम हों, मृदुता मधुरता और शुचिता से सदा अभिराम हों ।
ज्योतिर्मयी नव ज्योति से हों, ज्योति जीवनकी जगे, छिटके छटा छिति ज्ञान रविकी, यह अविद्या तम भगे ।

सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय देहली में मुद्रित ।

४—प्राणि विद्या के सम्बन्ध में मनुष्य शरीर को छोड़ कर अन्य प्राणियों के उदाहरण द्वारा, उनकी शरीर क्रियाओं और प्रेरित विचारों के स्पष्ट वर्णन के साथ २ बड़ा शुद्ध और उत्तम ज्ञान दिया जा सक्ता है। जिस के लिये रतिशास्त्र अपवित्र विद्या है, उसके लिये संसार पुष्परहित और सुमन-शून्य है।

५---इसके आगे बहुत कम अध्यापक और विचारक जाने को तय्यार होंगे। यदि वह अपने को योग्य समझें तो उन्हें बालक बालिकाओं को समय आनेपर स्पष्ट, चुने हुये विषयों पर स्पष्ट शिक्षा देनी चाहिये।

रतिशास्त्र की शिक्षा के विषय में बड़ी सावधानी की आवश्यक्ता है। समाज सब का सब एक साथ उन्नति के मार्ग को ग्रहण नहीं करता, कुछ व्यक्ति इस विषय में स्पष्टवादिता को पसन्द करते हैं दूसरे रहस्य को, इस भेद को ध्यान में रखते हुये समाज में खलबली डाले बिना ही यह शिक्षा देनी चाहिये। दूसरी बात यह ध्यान में रखनी चाहिये कि यद्यपि माता पिता इस विषय में जो चाहें करें, अध्यापक अध्यापिकाओं को बड़ी सावधानी से चलना चाहिये। उनको माता पिता की सम्मति अपने साथ २ रखनी चाहिये। तीसरे लड़कियों के विषय में लड़कों की अपेक्षा कहीं अधिक मृदुलता की आवश्यक्ता है। उन में स्वभाव से अधिक संकोच होता है। इस शील संकोच का पूरा २ आदर करते हुये और इसे बिना किसी प्रकार की ठेस लगाये हुए ही इस विषय की शिक्षा देनी चाहिये।

विचार-प्रवाह

कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

भारतवर्ष के वायुमण्डल में 'गुरुकुल' शब्द के उच्चारण मात्र से हृदय में विशेष प्रकार के भाव उदित हो जाते हैं। इस भूमि पर सनातन काल से ऋषियों, मुनियों का वास रहा है; गुरु शिष्य परम्परा निरन्तर चलती रही है; जीवन के उच्च ध्येय पर लगातार लक्ष्य रक्खा गया है—ऐसी परिस्थिति में 'गुरुकुल' शब्द स्वाभाविक तौर से प्रत्येक भारतवासी के हृदय को प्रेम-तरंगों से सहज ही में आप्लावित कर दे तो इस में आश्चर्य ही क्या? आज से २०--२२ साल पूर्व महर्षि दयानन्द के पग-चिन्हों पर चलते हुए आर्यसमाज के कुछ सेवकों ने गुरुकुलरूपी यज्ञ रचने की धुन में अपने जीवन को आहुति बना प्राचीन ऋषियों की प्रथा स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्हें जो कृतकार्यता हुई उस का प्रत्यक्ष फल कांगड़ी का गुरुकुल है।

गुरुकुल के परीक्षण से और कुछ सिद्ध हो या न हो—यह बात तो निर्विवाद सिद्ध हो गई है कि संसार के प्रलोभनों से बचाने

का, व्यक्ति के चरित्र को दृढ़ करने तथा संयम के पाठ पढ़ाने का यही एक मुख्य साधन है । सांसारिक धन्धों में अनवरत लगा हुआ पिता शिक्षित होता हुआ भी दिन के काम काज से थक जाने के कारण अपनी सन्तान का उचित निरीक्षण नहीं कर सकता; अभागे देश की अशिक्षित माताएं अभी शिक्षा के महत्व को ठीक तरह से न समझने के कारण सन्तान को सन्मार्ग पर चलाने में अशक्त हैं; द्रव्यार्थी शिक्षक गुरु के उच्च कर्तव्य को न समझते हुए बच्चों को सुधारने की ज़िम्मेवारी से भागते हैं। यह सब कुछ स्वाभाविक है—आज से नहीं, यह बहुत देर से चला आता है। प्राचीन काल में जीवन संग्राम इतना विकट न था, माताएं मूर्खा न थीं, गुरु अपने कर्तव्य को भूले हुए न थे—उस समय भी गुरुकुलों की आवश्यकता पड़ती थी, अब तो परिस्थितियों के बिल्कुल उलट जाने के कारण वह आवश्यकता न जाने कितने गुना और बढ़ गई है ।

हिन्दू समाज में आर्यसमाज को वेदों, शास्त्रों से जो प्रेम है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। आर्यसमाज प्राचीन सभ्यता पर लट्टू हुआ है, उस के पीछे पागल है। पंजाब की आर्य समाजों की प्रतिनिधि सभा ने पहले पहल बालकों के गुरुकुल को स्थापित किया। उस कार्य में सभा को बहुत कुछ सफलता हुई जिसके लिये सभा का जितना धन्यवाद किया जाय थोड़ा है ।

आर्यसमाज ने अनेक कार्यों को अपने कन्धों पर लिया हुआ है परन्तु अबतक एक अत्यन्त आवश्यक कार्य छुटा हुआ था और वह था कन्या गुरुकुलों का उद्घाटन।

प्राचीन काल की स्त्रियों की विद्वत्ता ब्रह्मवादिनी गार्गी के महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ संवाद में विदित हो जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण में कुमारी गन्धर्व गृहीता का वर्णन आता है। लोपामुद्रा ने ऋग्वेद का अध्ययन कर उसके कुछ सूक्तों का प्रचार किया। अपालात्रेयी ऋग्वेद की व्याख्याता हुई। गोधा, घोशा, विश्ववारा, ब्रह्मजाया, जुहू, सूर्या, सावित्री आदि अनेक ब्रह्मवादिनी कुमारियों तथा देवियों का वर्णन स्थल २ पर पाया जाता है। इन सब ने अवश्य किसी समय किसी आचार्या के चरणों में बैठ कर कन्या-गुरुकुलाश्रम में विद्याध्ययन किया होगा। बालकों के गुरुकुल तो बन चुके—बालिकाओं के गुरुकुलों की आवश्यकता इस समय आर्य-सामाजिक क्षेत्रों में सर्वत्र दिखाई दे रही थी।

मनुष्य समाज के प्रश्नों की गहराई को जिन्होंने समझा है वे मातृशक्ति के महत्व को आंखों से ओझल नहीं कर सकते। मानव जाति के सुधार की नींव स्त्री-जाति के सुधार में है। माताएं ही भले या बुरे संसार की उत्पत्ति-हेतु हैं । मानवजाति की नींव को पक्का करने के लिये, प्राचीन काल की देव निर्मित प्रथा को पुनरुज्जीवित करने के लिये कन्या गुरुकुल का संस्थापित होना बालकों के गुरुकुल से भी अधिक आवश्यक प्रतीत होता है—इस कार्य को किये बिना आर्य समाज का काम बड़े महत्व का होता हुआ भी अधूरा था, जोश तथा आवेश पूर्ण होता हुआ भी फीका था।

बड़े हर्ष का विषय है कि इस कमी को पूरा करने के लिये आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने गत दीपमालिका के दिन दिल्ली शहर में कन्यागुरुकुल की स्थापना की है। इस कार्य का श्रेय दिल्ली के प्रसिद्ध दानवीर श्री सेठ रग्घूमल जी को है जिन्होंने इस शुभ

कार्य के लिये १ लाख रुपया देकर कार्य्य को प्रारम्भ करने में सहायता दी है। यह शुभ अवसर है। सब को अपनी २ योग्यतानुसार सेवा करने का मौका है। धनवाले तो धन से सहायता देंगे ही, परन्तु उन देवियों को भी जो अपने जीवन को इस तरह के शुभ कार्य में व्यतीत करना चाहें--इससे उत्तम अवसर नहीं मिल सकता। आर्यवीरों के भी सन्मुख यह अवसर रक्खा गया है। आर्यपरिवारों से आशा की जाती है कि ऐसी देवियों को तय्यार करें, जो स्वार्थत्याग करती हुई इस शुभ कार्य में अपने जीवन को सदा के लिये लगा सकें।

कन्या गुरुकुल की वर्तमान दशा।

कन्या गुरुकुल खुले हुये आज आठ महीने हो गये हैं। यह दिल्ली शहर के एक एकान्त प्रदेश दर्यागंज मुहल्ले में एक विशाल कोठी किराये की लेकर खोला गया है जिसका चित्र पाठकों के लाभार्थ टाइटिल पेज पर दिया गया है। इसमें ऊपर नीचे सब मिला कर बहुत से कमरे हैं, किन्तु फिर भी विद्यालय की श्रेणियों के लिये नये टीन के कमरे बनवाये गये हैं ताकि कन्यायें सुखपूर्वक निवास कर सकें। इस वर्ष यहां पर नव्वे कन्यायें प्रविष्ट हो चुकी हैं और यह प्रारम्भिक दोनों श्रेणियों को मिला कर छः श्रेणियों में विभक्त हैं। चतुर्थ श्रेणी से संस्कृत की शिक्षा भी प्रारम्भ हो जाती है।

सम्प्रति यहां पर आर्य्यभाषा, संस्कृत, भूगोल, इतिहास, गणित, धर्म शिक्षा वस्तु पाठ इत्यादि सभी बिषयों की सुयोग्य अध्यापिकायें हैं। शिलपकला में चर्खे और खड्डी भी आ गये हैं दस्तकारी इत्यादि शिक्षा का भी प्रबन्ध है। वाद्य और संगीत तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शिक्षण का प्रबन्ध अभी नहीं हुआ है। सब से अधिक आवश्यक्ता इस बात की है कि कन्या गुरुकुल का अपना भवन शीघ्र बनाया जावे और दानशील आर्य्य सज्जन और देवियां अपनी उदारता से इसकी प्रचुर सहायता करें ताकि प्रति वर्ष शिक्षा विभाग में योग्य वृद्धि की जा सके और जिन विदुषी देवियों की सेवा धन के बगैर हम नहीं प्राप्त कर सकते उनकी भी सेवा उचित वेतन से प्राप्त कर सकें।

कन्यागुरुकुल से क्या २ आशायें हैं ?

हमारे पाठक और पाठिकाओं को इस विशेषांक के पढ़ने से यह भली प्रकार ज्ञात हो जायगा कि कन्यागुरुकुल से जनता तथा समाज के नेता क्या २ आशायें कर रहे हैं। प्रायः सभी लेखों का सार यह निकलता है कि यहां से शिक्षा पाकर जो देवियां निकलें वह सुयोग्य गृहपत्नी वीर मातायें और सुशिक्षिता नागरिक बन कर अपने धार्मिक पवित्र जीवन द्वारा भारत की मृतप्राय आर्य्य जाति की रगों से अमृत का संचार करके उसे पुनः बलिष्ठ बनावें। वर्त्तमान पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की नकल से जो दुर्गण उन में भर गये हैं उन से यह देवियां पृथक रह कर आर्य्य सभ्यता के समय स्त्री जाति के जो गुण थे उन से पुनः सुभूषित होकर जाति के गौरव को बढ़ावें और कुल की मर्य्यादा की रक्षिका बनें। इसके लिये बड़ी भारी आवश्यक्ता इस बात की है कि कन्यागुरुकुल की शिक्षा प्रणाली में सभी विद्याओं और कलाओं का उचित प्रवेश हो। ऋषि दयानन्द जी अपने सत्यार्थ प्रकाश में कन्याओं की शिक्षा का वर्णन करते हुये संक्षेप से सारे आवश्यक विषयों का वर्णन कर गये हैं जिन्हें पाठविधि बनाते समय या बजट बनाते समय भूल नहीं जाना चाहिये।

वह कहते हैं कि—"ब्राह्मणी और क्षत्रिया को सब विद्या, वैश्या को व्यवहार विद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये। जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य सीखनी चाहिये क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल वर्ताव यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के कार्यों को जैसा चाहिये वैसा करना कराना, वैद्यक विद्या से औषधवत् अन्नपान बनाना या बनवाना नहीं कर सक्तीं जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग आनन्दित रहें। शिल्पविद्या के जाने बिना घर का बनवाना, वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना, गणित विद्या के बिना हिसाब किताब समझना समझाना, वेदादि शास्त्र विद्या के बिना ईश्वर और धर्म को न जानकर अधर्म से कभी नहीं बच सके।"

यह निर्विवाद है कि सभी में त्यागवृत्ति व वैराग्य समान भाव से नहीं रहता और न ही सभी की रुचि समान हो सक्ती है अतः लड़कों की भांति लड़कियों की भी भिन्न २ रुचियां होंगी और भिन्न २ प्रवृत्तियां।

उपरोक्त सभी विषयों का साधारण ज्ञान तो सभी को प्राप्त करना चाहिये और करवाना चाहिये परन्तु भिन्न २ रुचि के अनुकूल भिन्न २ विषयों का विशेष ज्ञान देने का प्रबन्ध भी शिक्षाक्रम में होना अत्यावश्यक है। यह विषय शिल्पकला, साहित्य, संगीत, वैद्यक और धर्मशास्त्र इत्यादि हैं। कन्याओं की पाठविधि में इन विषियों को गौण न समझ कर इन्हें मुख्य स्थान देने से ही कन्याओं की शिक्षा पूरी हो सकेगी अतः जनता की आशायें तभी सफलीभूत होंगी जबकि हमारी पाठ प्रणाली और बजट में इन विषयों की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा। आशा है कि कन्या गुरुकुल के संचालक इस ओर विशेष ध्यान रक्खेंगे।

वर्तमान कन्या शिक्षणालयों की त्रुटियां

ज्योति के इसी अंक में गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली पर आलोचनात्मक लेख है जिसमें बुद्धिमान लेखक ने यह भी आलोचना की है कि गुरुकुलों में बालकों को माता पिता तथा परिवार से पृथक रखने के कारण उन्हें मातृ-प्रेम से वंचित रहना पड़ता है और अध्यापक व अध्यापिका वर्ग उस स्थान की पूर्ति नहीं कर सक्ते। ठीक! परन्तु यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो यह त्रुटियां प्रणाली की नहीं वरन् हमारी वर्तमान गिरीहुई स्थिति की हैं। आजकल यदि गुरुकुलों में या अन्य शिक्षणालयों में आदर्श शिक्षक नहीं हैं तो घरों में आदर्श माता पिता भी तो नहीं हैं। कई जगह माता पिता इतने नीच व पतित वायुमण्डल बना कर रहते हैं कि सन्तान का उन से अलग करलेना ही सन्तान, माता पिता तथा देश व जाति के लिये हितकर होताहै। दूसरी तरफ़ कई घरों में इतना अच्छा प्रबन्ध और वायुमंडल हो सक्ता है जिसकी अपेक्षा गुरुकुलों में भी त्रुटियां ही नज़र आवें। परन्तु देखना तो यह है कि हमारा लक्ष्य क्या है! और हमारी शिक्षा प्रणाली उधर ले जाती है यह नहीं? हमारा लक्ष्य बालक बालिकाओं को योग्य नागरिक तथा धार्मिक और बलिष्ट विद्वान् और सदाचारी स्त्री पुरुष बनाना है।

वर्तमान समय के आचार्य्य महर्षि दयानन्द जी ने जिस गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है वह प्राचीन आदर्श आर्य्यसभ्यता के समय की दृष्टि से नहीं बल्कि वर्त्तमान भारत की आज कल की परिस्थिति को ध्यान में रख कर जो लाभकारी हो सक्ती थी वह दर्शाई है। सम्भव है कि इसका मुख्य आधार प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर ही हो परन्तु इस में सन्देह नहीं

कि यह हमारी वर्त्तमान परिस्थिति के लिये मुख्यतया बनाई गई है। इसमें जहां अन्य पाठशालाओं की पाठविधि तथा पाठ्य विषयों में बहुत भेद है वहां पर रहन सहन, खान पान व्यवहार इत्यादि पर भी बल है। वर्तमान समय में पाठशालायें प्राय, शहर के बीच में होती हैं। ऋषि जी कहते हैं कि शिक्षणालय एकान्त स्थान में हो जहां पर जल वायु शुद्ध हो और बच्चों का ध्यान खींचने वाले विषय उपस्थित न हों। इन शिक्षणालयों में कन्याओं की पाठशाला में सभी कर्मचारी स्त्रियां हों। बालकों में पुरुष हमारी वर्त्तमान कन्या पाठशालाओं में इस पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता है या वर्त्तमान अवस्थाओं के रहते नहीं दिया जा सक्ता है। फिर शिक्षकों का निजी जीवन भी पूर्ण धार्मिक हो। आजकल तो पुस्तकों को पढ़ा देना मात्र ही शिक्षा समझी जाती है, चाहे कोई पढ़ा देवे; शिक्षक का प्रभाव बच्चों पर कैसा पड़ता है इधर कोई भी ध्यान नहीं देता। वर्त्तमान पाठ्य विषयों में उन विषयों की शिक्षा प्रायः क्रियात्मक रूप से नहीं होती जिनका साधारण ज्ञान सभी को होना चाहिये। यह ऋषि की आज्ञा है इन्हीं त्रुटियों के कारण अधिकांश वर्त्तमान शिक्षा प्राप्त देवियां ऋषि की शिक्षा प्रणाली की कसौटी पर कसने से प्रायः कुशिक्षिता ही सिद्ध होती हैं।

वर्तमान गुरुकुलों का रहस्य

वर्तमान समय में माता पिता यदि धनवान हैं तो वह चाहते हैं कि उनकी सन्तान ऐशो आराम में पलकर ब्राह्मण या क्षत्रिय बनें। वह गुरुकुलों में भी कह देते हैं कि मेरे बच्चे या कन्या को विशेष वस्तु देदेना खर्च की परवाह न करना इत्यादि। वह उस समय भूल जाते हैं कि ऋषि की आज्ञा है कि "सब को तुल्य वस्तु खान, पान, आसन दिये जांय चाहें वह राजकुमार हों व राजकुमारी चाहे दरिद्र के सन्तान हों सब को तपस्वी होना चाहिये।" वह भूल जाते हैं कि राम लक्ष्मण जब विश्वामित्र के साथ गये थे तो साधारण मुनिकुमारों के वेश में ही रहे थे राजसी वेष व सामान साथ नहीं लेगये थे।

ऋषि की आज्ञाहै कि शिक्षाकालमें न सन्तान माता पिता से मिले न उनसे पत्रव्यवहार ही करें—वरन् संसारी चिन्ता से दूर रह कर विद्या प्राप्ति करके जब अपने जीवन को कार्य्यक्षेत्र में उतरने योग्य बनालें तब संसार के रणक्षेत्र में आवें ताकि विजयी हो कर रहें। यह बात आजकल के कई दार्शनिकों को भी खटकती है और मनोविज्ञान के वेत्ताओं को तो विशेषरूप से समझ में ही नहीं आती कि ऐसे कठोर नियम से भी बच्चों की अन्तर्हित शक्तियों का प्रस्फुटन होसक्ता है? सरकार तो जवान आदमियों को ही कारागार में डालती है और फिर भी आजन्म कारागार २० वर्षों का तो बहुत ही थोड़ों को देती है परन्तु आर्य्य सभ्यताभिमानी ऋषि दयानन्द जी आठ वर्ष के बालकों को ही कम से कम १४ वर्षों की कारागार देने की प्रणाली चला गये हैं। जो मनुष्य अपने विष देने वाले के भी बन्धन को छुड़ाने वाला मशहूर है वह दूध मुहें बालक बालिकाओं को अपने परिवार से इतने वर्षों के लिये नितान्त पृथक् रखने की शिक्षा प्रणाली चलावे इसमें कोई रहस्य अवश्य होगा? वह रहस्य क्या है? वह रहस्य संक्षेप से यही है कि आर्य्य सन्तान माता पिता के ही बच्चे नहीं होते वरन वह आर्य्य राष्ट्र व जाति की बच्चे होते हैं। उनको आठ वर्ष तक पालन पोषण करना माता पिता का कर्त्तव्य है उसके बाद राष्ट्रीय शिक्षणालयों में आर्य्य जाति पर उन

की शिक्षा, पालन पोषण तथा निरीक्षण का भार जा पड़ता है। अगर एक बालक या बालिका का जीवन विशुद्ध और देश, जाति व धर्म के लिये उपयोगी नहीं बनता तो उस के लिये न केवल उसके माता पिता वरन सारी आर्य्य जाति उत्तरदात्री है।

आर्य्य सभ्यता में न अनाथालय मिलते हैं न भिक्षुक; न चोर; न उचक्के; न दुराचारी न व्यभिचारी क्योंकि उनकी शिक्षा, वैदिक शिक्षाका धेयही दूसरा है। वह धेय इस एक मंत्र में बड़ी सुन्दरतासे वर्णित है कि "सहना ववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै तेजस्विना वधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

अर्थात्, सुशिक्षा हमारी रक्षा करे, हमें अन्न दे, हम पराक्रम करने वाले हों, हमारा ज्ञान तेजस्वी हो और हम आपस में विरोध करने वाले न हों"। एक शब्द में शिक्षा का अर्थ पाप प्रवृत्तियों को हटा कर मन को उदारता के भावों से विकसित करना है ताकि जाति और राष्ट्र रहित हों।

आज आर्य्य सभ्यता का ह्रास है अतः बच्चों को विशेष वायुमण्डल बना कर रखने की आवश्यकता है।

भारतीय माता पिता और शिक्षक वर्ग! इस रहस्य का समझने का यत्न करो तो वर्तमान त्रुटियां भी दूर हो जावेंगी और गुरुकुल का निवास तथा माता पिता से पृथक् वास दुःखदायी प्रतीत न होगा।

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया।

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५] वैशाख १९८१—जुलाई १९२४ [खण्ड ५, संख्या ३



वार्षिक मूल्य ४॥) सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए० स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
प्रति संख्या ॥) विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची

विषय	पृष्ठ

ग्राहकों के लियेः—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी।

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—
१ वर्ष के लिये ४॥) है।
६ मास के लिये २॥) है।
विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।
स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता हैं।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

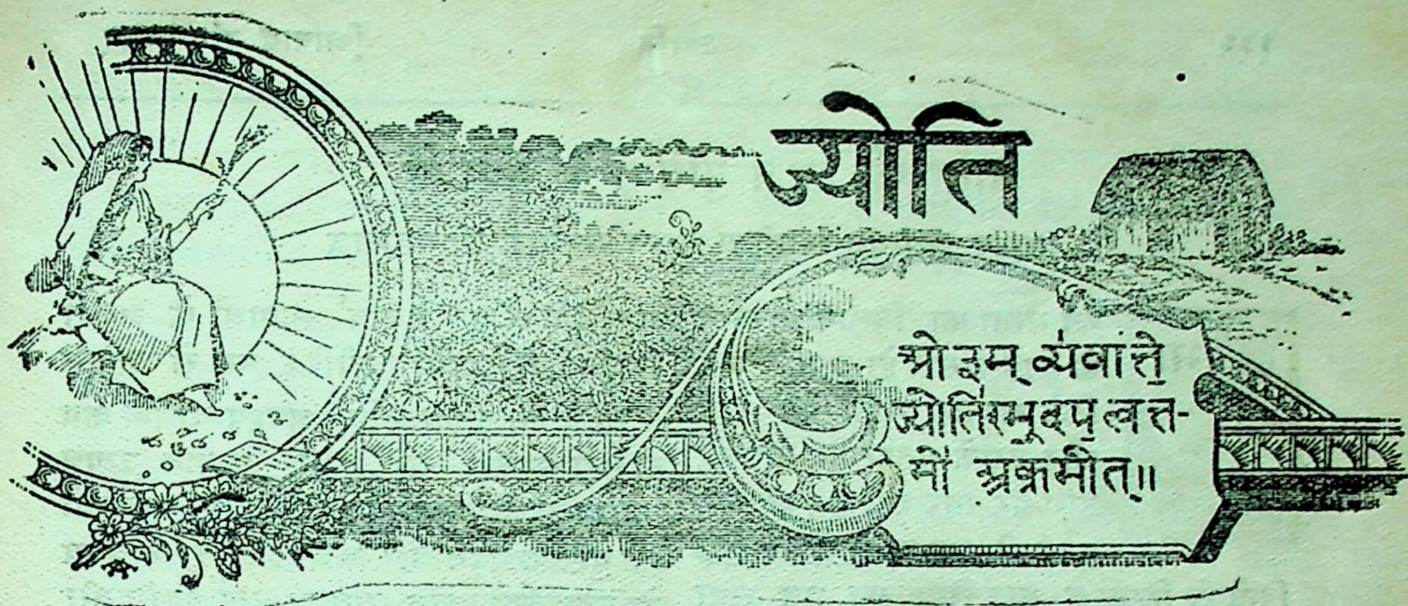
(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये



वर्ष ५ | आषाढ १९८१---जुलाई १९२४ ई० | संख्या ३

संगठन

ले०—श्री० पं० जगन्नारायण देव शर्मा कविपुष्कर

(छप्पय)

जो रखता अस्तित्व जाति का जीवन-धन है।
जिसमें अविरल शक्ति सुधरता जिससे जन है॥

प्रेम-एकता-ज्ञान आदि का जो साधन है।
रक्षा-सत्य-समाज-राज्य-हित-यत्न-सृजन है॥

उसको कहते संगठन, जग में मंगल-मूल है।
जो इससे मुख मोड़ता, उसमें भारी भूल है॥

माता की लाज पुत्रियों के हाथ में

लखक—श्रीयुत् स्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी जी महाराज



भारत माता का विलाप सन्तान के लिये असह्य हो गया, इसी लिये सन्तान माता की रक्षा और उसके पुनरुत्थान के लिए हाथ पैर मार रही है। अबतक पुरुष ही यत्न करते रहे थे, कुछ दिनों से स्त्रियों ने मातृ-सेवा का व्रत लेना शुरू कर दिया है।

मन कितना ही उठने वाला विशाल क्यों न हो बिना दृढ़ बलवान शरीर और आत्मा के वह विवश ही रहता है। भारतीयों में मानसिक भाव बड़े व्यापक हैं, परन्तु आत्मा और शरीर की निर्बलता के कारण उनके संकल्प केवल संकल्प मात्र ही रहते हैं। फिर निर्बल, तेजहीन शरीर के अन्दर तेजस्वी आत्मा का निवास भी दुस्तर है।

कहा जायगा कि सुशिक्षित पुरुषों ने शारीरिक उन्नति और दृढ़ता की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया है। परन्तु सन्तान वही कुछ बनती है जो उसे पिता माता (विशेषतः माता) बना दें। भारत को वीर सिंह सन्तान चाहिये, वेद के आदेशानुसार—

अस्य यजमानस्य वीरो जायताम्।

राष्ट्र में वीर सन्तान उत्पन्न होनी चाहिये।

वह वीर सन्तान कैसे उत्पन्न होगी?

आजकल की विदेशी शिक्षापद्धति ने जहां भारतीय बालकों के शरीर निस्तेज कर दिये हैं वहां आर्य बालिकाओं को भी अत्यन्त निर्बल बना दिया है। आज से ४० वर्ष पहिले की आर्य देवियां यद्यपि सर्व भाषाओं के अक्षरों से शून्य थीं तथापि शारीरिक बल से वञ्चित न थीं; उनमें इतनी शक्ति अवश्य थी कि कम से कम स्वस्थ और दृढ़ाङ्ग सन्तान उत्पन्न करें। विदेशी शिक्षा ने भारत की कुछ पुत्रियों को पुस्तक पढ़ने और अक्षर लिखने के योग्य तो बना दिया परन्तु साथ ही उन्हें दृढ़ांग वीर संतान उत्पन्न करनेके योग्य नहीं छोड़ा। ऊंची एड़ी के बूट और रंग बिरंगी रेशमी साड़ियां पहिन कर हमारी पुत्रियां और बहिनें तितलियाँ बना दी गईं। फिर तितलियों के गर्भ से सिंह कैसे पैदा हो सकते हैं।

६०० वर्ष हुए मेवाड़ की गद्दी पर राना अजयसिंह बैठे। उनके पीछे उनके भाई अमरसिंह के पुत्र को गद्दी मिलनी थी। उन का पुत्र प्रसिद्ध राना हम्मीर हुआ जिसने ६४ वर्षों में मेवाड़ की काया पलट दी थी। उसने मेवाड़ के खोए हुए सहस्रों दुर्ग ही मुसलमानों से न लौटा लिये अपितु बादशाह महमूद ख़िलजी को भी ३ महीने तक चित्तोड़ के कारागार में रक्खा और उससे अजमेर, रनथम्भोर, नागौर, सुई, शिवपुर के इलाके ही न छुड़वा लिये प्रत्युत ५० लाख रुपया हर्जाना और १०० हाथी कर में लिये। वह हम्मीर किस माता का पुत्र था? सुनो!

एक दिन अमरसिंह जंगली सुअर के शिकार के लिये जा रहा था सुअर एक ज्वार के खेत में घुस गया। अमरसिंह के साथियों को खेत में जाते देख एक राजपूतनी लड़की ने जो मचान पर बैठी थी उनको खेत में घुसने से रोक कर कहा—

" तुम सब हट जाओ मैं शिकार को खेत में से निकाल देती हूं।"

ज्वार के एक चार गज लम्बे लट्ठे को उखाड़ कर उससे सुअर को मार उनके सामने खींच लाई और विदा हो गई। राजपूत बहादुर उस शक्ति को देख आश्चर्य में आ गए। उन सबने पास की नदी के किनारे बैठ शिकार रूंधा और जलसा मनाने लगे। उसी समय किसी का चलाया एक मिट्टी का गोला कुमार अमरसिंह के घोड़े को लगा और उसकी हड्डी तोड़ दी। देखने पर मालूम हुआ कि मचान पर से उसी कुमारी राजपूतनी ने जानवरों को हांकने के लिये यह गोला चलाया था। उससे हानि देखकर वह कुमारी उतरी और कुमार से क्षमा प्रार्थना करके चली गई। जब सब राजपूत घर को लौटे तो रास्ते में देखा तो वही कुमारी सिर पर दूध का घड़ा रखे दोनों हाथ से दो मस्त भैंसे पकड़े लिये, जा रही है।। हंसी में उसके सिर से दूध गिराने के लिए एक सवार आगे बढ़ा। कुमारी घबराई नहीं एक भैंसे को घोड़े की टांग में अड़ा कर घोड़ा और सवार दोनों को अड़ा दिया। अमरसिंह ने कुमारी के पिता के पास पहुंच कर उससे विवाह करने का प्रस्ताव किया। वह चन्दावत राजपूत था। निर्धन होते हुए भी अमरसिंह के बराबर बेपरवाही से बैठ गया और प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। उसकी धर्मपत्नी ने जब समझाया तब अमरसिंह का चन्दावत राजपूतों में से विवाह हुआ। उन दोनों की सन्तान राना हम्मीर था।

कैलवे के फतहसिंह की माता और धर्मपत्नी ने चितौरगढ़ से निकल कर मुग़ल सेना में हलचल डाल दी थी और सैकड़ों को मार कर देश की स्वतन्त्रता पर अपनी जान कुर्बान करदी।

वह पुस्तक की विद्या व्यर्थ है जो शरीर और आत्माको निर्बल करदे। झाँसी की रानी की कहानी भी कोई बहुत पुरानी नहीं है। ३२ वर्ष पहिले की एक घटना तो मेरे सामने ही घटित हुई थी। एक नव विवाहित जाट लड़की यात्रा में कुटुम्ब के साथ सोई हुई थी। रात को चोर ने चाँदी की चूड़ी उतारने के लिए हाथ बढ़ाया। १७ वर्ष की जाट लड़की ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। श्वसुर और अन्य बड़े बूढ़ों से लजाते बोल न सकती थी। तीन घंटे तक उसी तरह पकड़े रक्खा जब चोर ने हाथ छुड़ाना चाहा तो उसकी कलाइयां इतनी दबाई कि चोर चीख उठा तब पुरुष जागे और चोर पकड़ा गया।

ऐसी दृढ़ाङ्ग देवियां यदि सत्य विद्या के भूषण से आभूषित करदी जांय तब वह सन्तान उत्पन्न हो सकती है जिसकी 'वेद' ही राष्ट्र के लिये आवश्यकता बतलाता है। अब तक कन्या पाठशालाओं और महाविद्यालयों के संचालकों के पास यह सन्देश भेजता रहा हूं और अब जब कि कन्या गुरुकुल खोलने का साहस किया गया है वही सन्देश उस संस्था के संचालकों के पास पहुंचाना चाहता हूं।

नोटः—यह लेख कन्या गुरुकुलांक के लिये आया था परन्तु मुझे बड़ा खेद है कि असावधानता से कहीं पीले कागजों की कापियों के साथ चला गया बहुत ढूंढ़ने से भी न मिला। परन्तु आज अचानक मिल गया है अतः इसे इस अंक में ही पाठकों की भेंट किया जारहा है आशा है कि पाठक और लेखक महोदय भूल को क्षमा करेंगे।

सम्पादिका

महात्मा गांधी और हम

लेखक—एक "गांधी-दयानन्द-भक्त" डी. एस. सी



महात्मा गांधी के लिये हमारे हृदय में श्रद्धा और भक्ति है, उनके विचार हमारे लिये आदर और सन्मान की वस्तु हैं, उनके कृत्य हमारे गौरव और मान की सामग्री हैं वह केवल भारत के ही भूषण नहीं हैं वरन संसार के शिरोमणि हैं। उनका देशप्रेम, स्वार्थ त्याग, तपोमय जीवन और आत्मसंयम आज प्रत्येक भारतवासी के हृदय पर अपनी छाप लगायेहै। हमारे हृदय सम्राट! आज जो श्रद्धाञ्जलि हम आपको भेंट करते हैं, हमें शोक है कि उसमें कतिपय पुष्प कांटेदार हैं। प्रभो! हमारा हृदय दुःख और शोक से विह्वल है कि सदैव की भांति आज हमारी पुष्पाञ्जलि के पुष्प सर्वथा कंटक रहित नहीं। भगवन्! बड़ा यत्न किया कि इन पुष्पों से कांटे अलग करके अर्पण करें, परन्तु सब प्रयास विफल गया। कांटे को तोड़ते हैं पुष्प-पल्लव बिखर जाते हैं, पंखड़ियां टूट कर गिर जाती हैं और थोड़े समय में ही पुष्प अपनी सुरभि सुवास को खो बैठता है। अतः देव! अखंड निखिल प्रसून अर्पण हैं, देखना कहीं आपकी कोमल उंगलियां छिल न जायें, यह पुष्पमाला कहीं आपके निर्मल कोमल हृदय को आघात न पहुँचाये। प्रभो! सदा की भांति भक्त की श्रद्धाञ्जलि अब की बार भी स्वीकार हो, बाह्यरूप अथवा कुरूप की ओर ध्यान न देते हुये भीतरी भाव को ही अंगीकार कीजिये। "भिलनी के बेर सुदामाके तण्डुल रुचि रुचि भोग लगाये।"

महात्मा गान्धी और आर्य समाज

२९ मई के यंग इन्डिया में हिंदू मुसलमानों का तनाज़ा! शीर्षक एक विस्तृत लेख महात्मा जी की लेखनी से निकला है इसमें उन्होंने इन दो महान् जातियोंके वर्तमान वैमनस्य और झगड़े की उत्पत्ति के क्या कारण हैं और इनका क्या इलाज है? उसी महत्वपूर्ण विषय पर अपने विचार प्रगट किये हैं। शोक कि इस अंक में हमारे पास उतना स्थान नहीं कि हम महात्मा जी के लेख के समस्त अंगों पर अपने विचार प्रगट करसकें। अतः हम महात्मा जी के आर्यसमाज सम्बन्धी विचारों की ही आलोचना करेंगे। आधुनिक शुद्धि आन्दोलन को महात्मा जी ने इस झगड़े का एक मुख्य कारण माना है और क्योंकि आर्यसमाजी ही विशेष कर इस शुद्धि आन्दोलन के प्रवर्तक हैं अतः परोक्षरूप से महात्मा जी ने आर्यसमाज को ही इस झगड़े का मुख्य कारण ठहराया है। केवल इतना ही नहीं, महात्मा जी ने आर्यसमाज के प्रवर्तक, आर्यसमाज के धर्म, ग्रन्थ उसकी कार्यप्रणाली और उसके नेताओं की भी बड़ी कड़ी समालोचना की है। यह कोई बुरी बात नहीं। आर्यसमाज अपनी बुराइयां अथवा त्रुटियां सुनने से नहीं घबराता और फिर महात्मा गान्धी जैसे निष्पक्ष व्यक्ति के मुख से। हमें शोक है तो केवल इतना ही कि महात्मा जी ने इस अवसर पर उस विवेचना से काम नहीं लिया जोकि उनकी विचार शैली का एक प्रधान अंग है। अस्तु, महात्मा जी ने आर्यसमाज पर निम्नलिखित दोष लगाये हैं:—

(१) स्वामी श्रद्धानन्द जी की तकरीरें ऐसी होती हैं जिन पर कई बार बहुतों को गुस्सा आजाता है। ......वह निडर और बहादुर आदमी हैं परन्तु दुर्भाग्य से वह यह मानते हैं कि प्रत्येक मुसलमान आर्यसमाजी बनाया जा

सक्ता है उन्हें अपने तथा अपने काम पर श्रद्धा और एतबार है। पर यह जल्दबाज़ हैं और थोड़ी सी बात पर जोश में आजाते हैं आर्य-समाज की परम्परा की विरासत उन्हें मिली है।

(२) स्वामी दयानन्द महात्मा जी के लिये सन्मान के पात्र हैं। परन्तु इतने बड़े सुधारककी लिखी "सत्यार्थप्रकाश—जोकि आर्यसमाज की बाइबिल है बड़ी ही निराशाजनक पुस्तक है।

(३) स्वामी दयानन्द ने अनजान में जैन धर्म इस्लाम, इसाइयत और खुद हिंदू मत के अर्थ का अनर्थ किया है।

(४) उन्होंने दुनियां के सब से ज्यादह सहन-शील और उदार धर्म को तंग बना डालने की कोशिश की है।

(५) स्वयं मूर्तिभञ्जक होते हुए भी उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में मूर्ति पूजा की स्थापना की है क्योंकि उन्होंने वेद के एक एक अक्षर को ईश्वर स्वरूप बना दिया है।

(६) आर्यसमाज की जो आज इज़्ज़त है वह 'सत्यार्थप्रकाश' की शिक्षा के गुणों के कारण नहीं वरन् उस के संस्थापक के महान् और उदात्तशील की बदौलत है।

(७) जहां कहीं आर्यसमाजी हैं वहाँ चेतना और प्राण हैं, परन्तु तो भी उनकी दृष्टि संकु-चित और स्वभाव विवाद प्रिय है।

(८) आर्यसमाजी उपदेशक को दूसरे मत के खण्डन में जो मज़ा आता है वैसा शायद ही किसी बात में आता हो।

(९) आर्यसमाजी मुसल्मान औरतों को भगा ले जाते हैं और उन्हें आर्यसमाजी बना लेते हैं।

महात्मा जी ने उपरोक्त नौ दोष आर्य्य-समाज पर लगाये हैं। यह हम आगे चल कर विचार करेंगे कि उनमें कहां तक यथा-र्थता है परन्तु हमें शोक से कहना पड़ता है कि यह दोष लगाकर महात्मा जी ने अपनी उज्ज्वल न्यायपरता पर एक स्याह धब्बा लगाया है जो कि आंखों और हृदय को बड़ा कष्ट-प्रद है। यह हम इस लिए नहीं कहते कि महात्मा जी के लगाये दोषों को हम निर्मूल मानते हैं वरन इसलिए कि इस स्थल पर आर्य्यसमाज और केवल आर्य्य-समाज के ही छिद्रान्वेषण की कोई आव-श्यकता न थी। क्या महात्मा जी की सम्मति में आर्य्यसमाज और केवल आर्य्य-समाज ही इस तनाज़े के लिये ज़िम्मेवार है? क्या महात्मा जी समझते हैं कि मुसलमान इस दोषसे सर्वथा मुक्त हैं? यदि नहीं तो केवल आर्यसमाजकी इतनी कड़ी समालोचना क्यों? आर्यसमाज के नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आर्यसमाज की ही शिक्षा विरासत में ली तो क्या मुसलमानों ने इसलाम की शिक्षा विरासत में नहीं ली? आर्यसमाज ने तो केवल जल्दबाज़ी और विवादप्रियता ही सिखलाई है, परन्तु इसलाम ने? इस्लाम बड़ा धर्म है उसने संसार में तीव्र स्फूर्ती पैदा की। परमात्मा की एकता और मनुष्य मात्र के लिये भाईपने और बराबरी का भाव फैलाया संसार का बड़ा उपकार किया। इस के पहले प्रवर्तक निसन्देह आदर्शवादी थे। हम महात्मा जी से पूछ सकते हैं कि क्या इस्लाम की यही शिक्षा है? यदि ऐसा ही है तो फिर ख्वाजा हसन निज़ामी ने रंडियों और भड़ुओं से तबलीग का काम लेना कहां से सीखा; आगाखान ने भोले भाले आद-मियों को धोखा देने और लूटने की शिक्षा कहां से पाई, एक अनाचारी और व्यभिचारी मुसलमान के हृदय में शुद्ध विचारों की उपस्थिति और इस कारण अन्य मतावलम्बी महात्मा से उसकी श्रेष्ठता, मौलाना मुहम्मद अली को किसने सिखाई; अथवा गुण्डापन जो कि महात्मा जी के शब्दों में मुसलमानों की विशेषता है हिन्दुओं की नहीं—मुसल-मानों में कहां से आया? यदि मुसलमानों

में यह बातें उन्हें इस्लाम से विरासत में नहीं मिलीं तो क्या आर्यसमाजियों ने ही महात्माजी के बतलाये अवगुण—जल्दबाज़ी, विवादप्रियता और संकुचिता—जो उपरोक्त मुसलमानी अवगुणों से यदि कहीं कम नहीं तो किसी प्रकार अधिक निन्दास्पद भी नहीं आर्यसमाज से विरासतमें ली हैं। जो नियम एक पर लागू है क्या वह दूसरे पर नहीं। क्या यह न्याय है अथवा नीति ?

महात्मा जी ने वेद की आलोचना की, स्वामी दयानन्द की आलोचना की, सत्यार्थ-प्रकाश की आलोचना की। हम पूछते हैं कि इस स्थल पर इस की क्या आवश्यकता थी। यदि थी तो क्या हम पूछ सकते हैं कि—कुरान, हज़रत मुहम्मद और इसलाम धर्म की हदीसें किस न्याय नियम के अनुसार इस आलोचना से बच सकते हैं ? फिर यह ऐसा क्यों नहीं किया गया ? इसका ठीक २ उत्तर तो महात्माजी स्वयम् ही दे सकते हैं हमारी तुच्छ बुद्धि में तो यही आता है कि महात्मा जी के हृदय में हिन्दू—मुसलिम ऐक्य ने इतना घर कर लिया है कि इस समय इस प्रश्न से बढ़कर उन के लिये कोई प्रश्न नहीं। वह दोनों में दोष देखते हैं परन्तु हिन्दुओं के दोषों को वह निर्भय होकर बतला देते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि हिन्दू उन्हें शान्ति से सुनने के लिये तैयार हैं। मुसलमान उन्हें भय है कि इतनी शान्ति से अपने दोष सुनने को तैयार न हों। अतः उनमें दोष रहते हुए भी इस समय इनको प्रकट करने से कोई लाभ नहीं, वरन सम्भावना यह है कि हिन्दू—मुसलिम—ऐक्य को धक्का लगे। ऐक्य स्वराज्य और अन्त में सत्य का एक रूप है अतः इस अन्तिम सत्य की प्राप्ति के निमित्त जहां हिन्दुओं के सम्बन्ध में पूरा अखंड सत्य-जैसा महात्मा जी उसे समझते हैं- कहने में कोई हानि नहीं वहां इस समय मुसलमानों के विषय में अधूरा सत्य कहना ही उचित है।

स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य समाज की शिक्षा

महात्मा जी का पहिला आक्षेप स्वामी श्रद्धानन्द जी पर है। हम इस विषय को व्यक्तिगत विषय नहीं बनाना चाहते अतः स्वामी जी के पक्ष में कुछ न लिखेंगे। स्वामी जी ने स्वयं भी अपने ऊपर लगाये आक्षेपों का कोई उत्तर न देने का निश्चय करके बड़ा अच्छा किया है। सन्यासी का गौरव इसी में है। स्वामी जी आर्य समाज के एक मुख्य नेता और कार्यकर्ता हैं। आर्य समाज के लिये उनके हृदय में जो लगन है वह किसी से छिपी नहीं। उन का सारा जीवन समाज की सेवा में बीता है। समाज के लिये उन का त्याग एक उज्वल उदाहरण है। वह हमारे पूज्य हैं। अतः हमारा उन के पक्ष में कुछ लिखना पक्षपात रहित कदापि न समझा जायगा। परन्तु महात्मा जी ने स्वामी जी को आर्य समाज के साथ इस प्रकार मिला दिया है कि आर्यसमाज की स्थिति स्पष्ट करते हुए स्वामी जी पर लगाये हुए दोषों का स्वयं निरूपण हो जाता है। महात्मा जी लिखते हैं कि "दुर्भाग्य से स्वामी जी यह समझते हैं कि प्रत्येक मुसलमान को आर्य-समाजी बनाया जा सकता है।" भगवन्! यह विश्वास केवल स्वामी जी का ही नहीं वरन् प्रत्येक आर्य समाजी बाल, युवा, वृद्ध, नर और नारी का समान है। न केवल मुसल्मानों को ही वरन् हिन्दू, जैन, ईसाई, समस्त संसार को हम आर्यसमाजी बनाना चाहते हैं। हमारा अटल विश्वास है कि एक दिन हम अवश्य सफल होंगे। जिस दिन हमारा यह विश्वास हट जायगा उसी दिन

आर्यसमाज की आवश्यकता न रहेगी । हम अपने समाज मन्दिरों को, अपनी अन्य सारी संस्थाओं को स्वयं अपने हाथों ताला लगा देंगे । आर्य समाज एक सत्य का प्रतिनिधि है। प्रत्येक आर्यसमाजी का विश्वास है आप उस से चाहे सहमत न हों - कि इस सत्य का आश्रय लेकर ही मनुष्यमात्र परमानन्दको प्राप्त हो सकताहै । प्रत्येक प्राणी को इस आनन्द प्राप्ति के योग्य बनाना हम अपना कर्तव्य और जीवन का लक्ष्य समझते हैं। महात्मा जी लिखते हैं 'दुर्भाग्य से'। यह क्यों ? क्या आर्यसमाज की शिक्षा इतनी बुरी है कि जो इस पर चला उस का भाग फूटा ? या इस लिये कि यह असम्भव है । महात्मा जी अहिंसा धर्म के कट्टर पक्षपाती हैं । उन का अटल विश्वास है कि इस के बिना संसार का कल्याण नहीं । उनका प्रयत्न यही है कि प्राणीमात्र को इस धर्ममार्ग पर लाया जाय और उनका विश्वास है कि लाया भी जा सकता है । तो क्या हम यह समझ लें कि महात्मा जी का यह विश्वास दुर्भाग्य सूचक है ? यदि नहीं तो क्या महात्मा जी बतलानें की कृपा करेंगे कि आर्यसमाज के लिये ही यह दुर्भाग्य क्यों है ?

महात्मा जी लिखते हैं कि "स्वामी जी जल्दबाज़ हैं" । इस का उत्तर हम आगे चल कर आर्यसमाज के ही प्रसंग में देंगे ।

स्वामी दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज

महात्मा जी लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द मेरे लिये सन्मान के पात्र हैं। उन दयानन्द के शील के प्रति महात्मा जी का असीम आदर भाव है । 'उनके ब्रह्मचर्य को मैंने अपने लिये हमेशा अनुकरण योग्य माना है । उन की निर्भयता ने मुझे हमेशा मुग्ध किया है। यह सब होते हुये भी 'सत्यार्थप्रकाश'—जोकि आर्य समाज की बाइबिल है, इतने बड़े सुधारक की कृति होते हुये—जैसाकि स्वामी दयानन्द थे-बड़ी निराशाजनक है।' 'सत्यार्थ प्रकाश' महात्मा जी के लिये निराशाजनक हो सकती है, परन्तु महात्माजी जब तक इस विषय में कोई दलील न दें हमारे लिये कुछ भी कहना कठिन है । परन्तु यह हमारी समझ में नहीं आया कि यदि स्वामी दयानन्द ऐसे ही महान् हैं जैसा महात्मा जी उनको बतलाते हैं, यदि वह एक वास्तविक सुधारक थे तो उनकी कृति 'सत्यार्थप्रकाश' जोकि दयानन्द के प्रेरक मनोभावों का वास्तविक स्वरूप दिखलाती है किस प्रकार इतनी निराशाजनक हो सकती है ? महात्मा जी कहते हैं कि स्वामी दयानन्द ने अज्ञान में जैन धर्म, इसलाम और ईसाई मत के अर्थ का अनर्थ किया है । कदाचित् इसी कारण महात्मा जी को सत्यार्थप्रकाश निराशाजनक लगी है । इन धर्मों के संबंध की बातों में महात्मा जी ने दयानन्द के अज्ञान की कल्पना की है । हम महात्माजी को विश्वास दिलाते हैं कि योगीराज दयानन्द ने भूल कर कुछ नहीं लिखा । उन्होंने जो कुछ लिखा खूब सोच विचार, भली प्रकार छान बीन करके इन धर्मों के आचार्यों से पूछ तांछ कर लिखा है । महात्मा जी की तरह स्वामी दयानन्द ने भी अपनी गुलखलासी का कोई रास्ता रहने नहीं दिया है । स्वामी दयानन्द ने वेद को और एकमात्र वेद को सब सत्य विद्याओं का स्रोत माना है । वह ईश्वर की वाणी है और इस कारण स्वतः प्रमाण है। संसार के प्रचलित धर्म भी या तो वैदिकधर्म के बिगड़े हुये रूप हैं अथवा मनुष्य के मस्तिष्क की कल्पना हैं । इसी लिये उन्होंने प्रत्येक धर्म को वैदिकधर्म की ही कसौटी

पर परखा। जो इस पर पूरा उतरा वह सोलह आने सच्चा। शेष में जितना खोट हो वह अवैदिक खोट है और इसका दयानन्द ने घोर प्रतिरोध किया है। महात्मा जी स्वयं लिखते हैं कि 'सब धर्म थोड़े बहुत अंश में सच्चे हैं क्योंकि सब की उत्पत्ति एक ही ईश्वर से हुई है। फिर भी सब धर्म अपूर्ण हैं क्योंकि वह हमें अपूर्ण मनुष्य के द्वारा मिलते हैं" बिल्कुल यही धारणा स्वामी दयानन्द की थी। उन्होंने सब धर्मों में विद्यमान सत्य को ईश्वरदत्त माना है और उनके आगे सिर नवाया है। केवल अपूर्ण मनुष्यों द्वारा सत्य में मिलाई हुई खोट का ही उन्होंने खण्डन किया है। जहां कदाचित् महात्मा जी अपने अन्तरात्मा को ही इस सत्य असत्य के जांचने की कसौटी मानते हैं, वहां ऋषि दयानन्द ने वेद को ऐसा माना है। अन्तरात्मा अपनी परस्थिति के अनुसार भूल कर सकता है उस समय सत्य का निर्णय कैसे हो? ऋषि दयानन्द कहते हैं वेद को देखो—जो वह कहता है वही सत्य है। क्योंकि वेद सत्य प्रभू की कल्याणी वाणी है।

महात्मा जी ने एक और बात लिखी है 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यसमाज की बाइबिल है। महात्मा जी का यह लिखना प्रगट करता है कि आर्यसमाज के विषय में उनका ज्ञान कितना अधूरा है। "सत्यार्थप्रकाश" आर्यसमाज में एक बड़े मान्य की पुस्तक है परन्तु वह हमारी बाइबिल नहीं। हमा एकमात्र धर्म ग्रन्थ वेद हैं उनके अनुकूल जहां से भी हमें शिक्षा मिलती है वह हमारे लिये मान्य है। "सत्यार्थप्रकाश" हमारे लिये इसी लिये मान्य ग्रन्थ है कि वह वेदानुकूल धर्म का प्रतिपादन करती है। यदि कल को हमें कोई यह सिद्ध करदे कि "सत्यार्थप्रकाश" का अमुक वाक्य वैदिक अर्थ के विरुद्ध है तो हमारे लिये "सत्यार्थप्रकाश" का वह भाग सर्वथा त्याज्य हो जाता है। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक गुरू दयानन्द ने वेद को ही सब सत्य विद्याओं का पुस्तक माना और उसी का पढ़ना पढ़ाना सब आर्यों का कर्तव्य बतलाया है।

अनुदार और मूर्तिपूजक स्वामी दयानन्द

परन्तु ऐसा करके किंचित् महात्मा जी की सम्मति में "दयानन्द ने सबसे ज्यादह सहनशील और उदार धर्म को तंग बना डालने की कोशिश की है। स्वयं मूर्तिभञ्जक होते हुये भी उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में मूर्ति पूजा की स्थापना की है क्योंकि उन्होंने वेद के एक २ अक्षर को ईश्वर स्वरूप बना दिया है"। हम यहां यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि महात्मा जी के लेख का यह अंश हमारी बिल्कुल समझ में नहीं आया। महात्मा जी का यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता कि दयानन्द ने वेदों का आश्रय लेकर जो हिन्दुओं को जात पांत की ज़ंजीरों को तोड़ने, विधवा की पुकार के सुनने, अछूतों का उद्धार करने की शिक्षा दी इससे हिन्दू धर्म को अनुदार बना दिया। दयानन्द ने कहा है कि सब मनुष्य परमात्मा के अमृतपुत्र हैं अपनी योग्यतानुसार—जो कि उनके अपने स्वतन्त्र कर्मों का फल है—परम पिता के राज्य में सुख भोग के समान अधिकारी हैं। हिन्दू धर्म कहता था कि 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्', दयानन्द ने इस सिद्धान्त का घोर विरोध किया; हिन्दू लोग स्त्रियों और शूद्रों को पैर की जूती समझ, उन पर नाना प्रकार के अत्याचार करते थे। दयानन्द ने उन्हें ऐसा करने से रोका। हिन्दू कहते थे कि हमारा धर्म ही सच्चा धर्म है परन्तु इस सत्य से

कोई अहिन्दू लाभ नहीं उठा सकता था, दयानन्द ने मुसलमान, ईसाई इत्यादि प्रत्येक के लिये वैदिक धर्म का द्वार खोल दिया। क्या इन कारणों से दयानन्द अनुदार सिद्ध होते हैं। यह सत्य है कि वेद विरुद्ध किसी भी धर्म, सिद्धान्त और आज्ञा के साथ समझौता करना दयानन्द ने त्याज्य बतलाया है और आर्यसमाज दृढ़तापूर्वक ऋषि की इस आज्ञा पर स्थिर है। वह धार्मिक मामलों में समझौता करने को तैयार नहीं। वह विष-मिश्रित अमृत को स्वीकार करने से इन्कार करता है। आचारहीन वाममार्गियों को, कबरें पूजने वाले, मुंह पर थुकवाने वाले, झूठा खाने वाले हिन्दुओं को वह सत्य धर्म से भ्रष्ट समझता है और डंके की चोट ऐसा कहता है। यह सब बातें रखते हुये व्यक्तियों के लिये वैदिक धर्म का दर्वाज़ा बन्द है। क्या महात्मा जी चाहते हैं कि जिसकी जो इच्छा हो वह करता रहे और तिस पर हिन्दू अथवा वैदिक धर्मी कहलाता रहे? अगर यह बात है तो निःसन्देह हम अनुदार हैं; और हमारी दृष्टि संकुचित है, हम ऐसी उदारता को दूर से ही प्रणाम करते हैं। हम अपने पक्ष को महात्मा जी के उदाहरण से ही स्पष्ट करते हैं। आज कल महात्मा जी भरसक यत्न कर रहे हैं कि स्वराज्यपार्टी का कोई भी सदस्य कांग्रेस की कार्यकर्तृ-सभा का सभासद न बन सके। तो क्या महात्मा जी अनुदार हैं? अपने विश्वास पर दृढ़ रहना और उसके अनुकूल जीवन को बनाना दृष्टि को संकुचित नहीं करता, हां हठ से दूसरे की बात को न सुनना, उसपर विचार न करना अवश्य हृदय को संकुचित करता है। परन्तु आर्यसमाज का तो नियम ही यह है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वथा तत्पर रहना चाहिये।

महात्मा जी ने दयानन्द को मूर्तिपूजक ठहराया है, ऐसा क्यों? दयानन्द ने वेद के एक एक अक्षर को सत्यस्वरूप माना है। हमें महात्मा जी क्षमा करेंगे यदि हम बड़े विनीत भाव से उन से प्रार्थना करें कि महाराज आप इस विषय पर कुछ न कहें। वेदों पर सम्मति देने का आप को अधिकार नहीं। यह आप तभी कर सकते हैं यदि आप यह सिद्ध करदें कि वेदों का ज्ञान कई स्थलों पर मिथ्या है। परन्तु ऐसा करना आप के अधिकार से बाहर है। दयानन्द योगी था, संस्कृत का निपुण पंडित था। आपने न वेदों को पढ़ा है और न संस्कृत के पंडित होने का आपका दावा है। फिर आप किस प्रकार दयानन्द के किये हुये वेदार्थ की विवेचना करने का अधिकार रख सकते हैं? दयानन्द जिस समय अपना वेद भाष्य कर रहे थे अनेक स्थलों पर जहाँ उन्हें अपने किये अर्थों में भ्रम प्रतीत होता था वह रुक जाते थे, इस अवस्था में वह योग समाधि द्वारा ही अपने भ्रम को दूर करने में समर्थ होते थे। उनकी संस्कृत की विद्वत्ता अद्वितीय थी। उनके वेदार्थ की शैली एक वैज्ञानिक शैली है श्री अरबिन्द घोष संस्कृत के महान् पंडित हैं। उनका मत है कि वेदों का यदि ठीक २ अर्थ होसकता है तो वह दयानन्द की ही शैली से। महात्मन्! आप हमें क्षमा करेंगे यदि इस विषय में हम आप की अपेक्षा श्रीयुत घोष महाशय के वचनों को अधिक मान दें। हम नहीं समझते किस प्रकार दयानन्द ने वेदों को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक मान कर मूर्तिपूजा के सूक्ष्म रूप की स्थापना की।

"सत्यार्थप्रकाश" आर्यसमाज के लिये मान की वस्तु नहीं।

आगे चलकर महात्मा जी लिखते हैं कि

आजकल जो आर्य्यसमाज की गति है वह "सत्यार्थप्रकाश" के कारण नहीं, वरन् उसके संस्थापक के महान् और उदात्तशील की बदौलत है। महात्मा जी स्वयं मानते हैं कि आर्य्यसमाज ने देश जाति और धर्म की बड़ी सेवा की है, जहां कहीं आर्यसमाजी हैं वहां जीवन और चेतना है। परन्तु इसका कारण स्वामी दयानन्द के विमल जीवन को ठहराते हैं। भगवन! किसी भी महापुरुष का जीवन तभी हितकर होसकता है यदि हम उससे शिक्षा ग्रहण कर उस पर चलने का यत्न करें, उसके सदुपदेशों को कार्यरूपमें परिणत करें। स्वामी दयानन्द का जीवन उनके विचारों का प्रतिबिम्ब था। किसी भी महापुरुष के जीवन को आप उसके विचारों से पृथक् नहीं कर सकते। वह अपने विचारों की सृष्टि में निवास करता है और उन्हीं के अनुकूल अपना आचरण बनाता है। यह बात हो नहीं सकती कि अशुद्ध विचार शुद्ध जीवन के प्रवर्तक हों। यह तो वही बात है कि सूर्य प्रकाशमय है परन्तु अन्धकार का कारण है; गंगा जल शान्तिदायक है परन्तु वह कड़वा और गरम है। दयानन्द वही था जो उसके विचार थे; उसके विचार वही थे जिनके अनुकूल वह कर्म करता था, उसके कर्म ही उसके शील का कारण हैं। दयानन्द के विचार "सत्यार्थ प्रकाश" में बन्द हैं। यदि आप दयानन्द के जीवन को समझना चाहते हैं तो "सत्यार्थ-प्रकाश" को अवश्य पढ़ना पड़ेगा। "सत्यार्थ-प्रकाश" में ऋषि ने संक्षेप से वैदिक जीवन का तत्त्व और आदर्श समझाया है। दयानन्द क्यों इतना महान् था इसका उत्तर "सत्यार्थप्रकाश" ही दे सकता है। दयानन्द "सत्यार्थप्रकाश" है और "सत्यार्थप्रकाश" दयानन्द। आप दोनों को अलग नहीं कर सकते। आर्यसमाज का मान दयानन्द से है क्योंकि वह दयानन्द के "सत्यार्थप्रकाश" में बतलाये वेदमार्ग का अनुसरण कर रहा है।

झगड़ा करना और खण्डन आर्यसमाजियों के गुण हैं।

फिर महात्मा जी लिखते हैं कि आर्य-समाजी विवाद-प्रिय हैं; उनके उपदेशकों को खण्डन में बड़ा आनन्द आता है। आर्यसमाज खण्डन से नहीं घबराता वरन सत्य स्थापना के लिये इस को परम आवश्यक समझता है। धर्मराज्य हो ही नहीं सकता, यदि पाप राज्य का नाश न किया जाय। भूमि में बीज बोने से पहिले उसके भीतर से रोड़े, कंकड़ अवश्य बाहर निकालने होंगे; घास फूंस अनावश्यक और हानिकारक वनस्पतियों को अवश्य उखाड़ बाहर करना होगा। यही सिद्धान्त आर्यसमाज का है, इसी के अनु-कूल उसके उपदेशक श्रोताओं के मनों में शुद्ध भाव डालने से पहिले उनके दिल में पहिले से विद्यमान भ्रममूलक, कुतर्क-निर्भर भावों को बाहर निकालना आवश्यक समझते हैं और क्योंकि यह झूंठे विचार एक प्रकार से मन में जड़ पकड़ गये हैं इसलिये इन्हें समूल उखाड़ने में बड़े बल का प्रयोग करना पड़ता है। इस बल प्रयोग से लोग घबरा उठते हैं और चीत्कार करने लगते हैं, परन्तु होश में गन्दे पीपमय फोड़े को चीरा देते समय कौन व्यक्ति डाक्टर से प्रसन्न होता है? तब क्या डाक्टर अपना काम करना छोड़ दे? आर्यसमाज को इतनी खण्डन की क्यों आवश्यकता पड़ी यह ठीक २ जानने के लिये हमें उस समय की अवस्था को न भूल जाना चाहिये जब कि आर्यसमाज का जन्म हुआ था। अंग्रेज़ी सभ्यता ने हमारी आंखों को चकाचौंध कर दिया था, पादरियों और मुसलमान प्रचारकों के आक्रमणों ने अपने धर्म से हमारा विश्वास हटा दिया था।

अपने पूर्वजों को हम लकड़हारे और पनिहारे ही समझते थे। वेद और शास्त्रों को हम जंगलियों की बिलबिलाहट से अधिक दर्जा न देते थे, अपना रहन सहन छोड़ विदेशियों की नकल कर अपने को कृतकृत्य मानते थे। हिन्दुस्थानी इतिहास निकम्मा, हिन्दुस्थानियों के पूर्वज असभ्य जंगली, उनका धर्म ग़लत, उनका रहन सहन बेढंगा, उनका आचार व्यवहार निन्दनीय, यहां तक कि भारतीय रमणियां भी घृणित होरही थीं। काले चमड़े वाला साहब बनने में ही हम अपना गौरव समझते थे। मुसलमानी सभ्यता में मुसलमानों ने हम पर जो प्रहार किया वह हमारे शरीर पर था, वह केवल बलात् ही हमें मुसलमान बनाते रहे थे, हमारे मनों को न जीत सके थे; परन्तु अंग्रेज़ी सभ्यता में अब हमने आत्मसमर्पण कर दिया हुआ था। ऐसी अवस्था में ईसाइयों और मुसलमानों ने हिंदुओं को एक तर नवाला समझा और दबादबी हड़प करने लगे। हिन्दू घटने लगे, ईसाई और मुसलमान बढ़ने लगे। विनियुक्त स्वार्थ के पक्षपाती हमारे धर्म नेताओं ने उस समय आंखें मूंद लेना ही अपना कर्तव्य समझा। यह अवस्था थी जब कि आर्यसमाज ने जन्म लिया। इस कड़े समय में हिन्दू धर्म की, हिन्दू जाति की, आर्य सभ्यता की यदि किसी ने रक्षा की तो वह आर्यसमाज था। उसने नदी का रौ फेर दिया। ज़ो आक्षेप ईसाई पादरी और मुसलमान वाअज़ हमारे धर्म पर करते थे उनका मुंह तोड़ जवाब दिया। जो दोष यह हम पर लगाते थे उन को उन्हीं के इतिहास और धर्मग्रन्थों के आधार पर आर्यसमाज ने उन्हीं पर घटा कर सिद्ध किया कि इन धर्मों की शिक्षा सत्य पर निर्भर नहीं। ऐसा करने में आर्य समाज ने केवल Physician heal thyself (वैद्य महाशय पहले अपना तो इलाज करो) के सिद्धान्त पर अमल किया। इस समय यदि आर्यसमाज खण्डन न करता तो कोई बतला सकता है कि वह क्या करता? जब घर के चारों ओर आग लग रही हो, चोर उचक्के इस सुअवसर को पाकर घरबार की सामग्री लूट रहे हों तो क्या कोई घर के भीतर बैठ कर परमात्मा का ध्यान कर सकता है या आत्म उन्नति कर सकता है? जब आप ही न रहे तो उन्नति किसकी? परन्तु आज यह अवस्था इतनी भयानक नहीं है और इसी लिये "आर्यसमाजी उपदेशक दूसरे धर्मों की आलोचना करना भूल गया है। उसकी शक्तियां जाति के रचनात्मक कार्य में अधिक लगती हैं।" परन्तु भगवन्! हमें अपना कार्य करने नहीं दिया जाता। हम अपने किये पापों का प्रायश्चित्त कर अपनी भूलों को सुधारना चाहते हैं परन्तु हमें बीच में ही रोक दिया जाता है। हम अपने "अछूत" भाइयों को गले लगाने को आगे बढ़ते हैं, मौलाना मुहम्मदअली बोल उठते हैं "आधे आधे बांटलो" मानो यह भी गाजर मूली हैं; हम अपने मलकाने भाइयों को—जिन्हें हमने मूर्खता से अपने से अलग कर दिया था—उनके पुनः अधिकार देने को तय्यार होते हैं—समस्त मुस्लिम भारत हाथ धो हमारे पीछे पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में आप ही बतलाइये हम क्या करें? क्या आंखें बन्द कर चुपचाप बैठ जायें, या खुली आंखें परन्तु संज्ञाहीन की भांति इन अपने दिल के टुकड़ों को अलग होने दें और चूं न करें। यदि चुप रहें तो अपना नाश अपने सामने देखें, यदि बोलें तो आप हमें विवादप्रिय, झगड़ालू और खण्डनप्रिय कहते हैं। करें तो क्या करें। आप ही बतलाइये?

आर्यसमाजी और स्त्रियों का भगाना

आर्यसमाजी मुसलमान स्त्रियों को भगा कर ले जाते हैं! शिव! शिव। हमारी आँखें क्यों न फूट गयीं जिस दिन उन्होंने महात्मा जी की लेखनी से यह वाक्य देखे। महात्मा जी और यह इल्ज़ाम! इसकी तो स्वप्न में भी कल्पना न थी। अबतक का हमारा पिछला तजरुबा यही कहता है कि महात्मा जी ने कोई ऐसी बात न कभी लिखी और न कभी कही है जिसके लिये उनके पास पूरा २ सबूत न हो। परन्तु शोक यहां पर ऐसा नहीं। महात्मा जी ने अपने विचार की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया आप लिखते हैं "मैंने सुना है"। तब क्या, जैसा कि मोपलों के सम्बन्ध में कही हुई डाक्टर सय्यद मुहम्मद की बातों पर विश्वास कर लिया, आपने इस पर विश्वास कर लिया? यदि नहीं तो क्या "यद्यपि मुझे इस पर विश्वास नहीं" यह चार शब्द उसके साथ जोड़ देते तो उचित न था? आप १२ जून के यंग इन्डिया में लिखते हैं कि "मैंने तो जो बात कान पर आई उसे कह कर दोनों फरीक को यह मौक़ा दे दिया है कि वह इस इल्ज़ाम को झूठ साबित करें। भगवन्! यह किस प्रकार? क्या आपने कोई उदाहरण दिया जिसे हम झूठा सिद्ध करें। आपको सन्देह है कि आर्य समाजियों ने ऐसा किया हो। आपको आर्य समाजियों ने विश्वास दिलाया कि यह असत्य है फिर आपको विश्वास क्यों नहीं आता? डाक्टर सय्यद महमूद पर इतना विश्वास और हम गरीबों पर इतना अविश्वास! शोक हमें आपकी न्यायपरता समझ में नहीं आती।

हमने संक्षेप से महात्मा जी के लगाये दोषों का उत्तर दे दिया। एक बात और महात्मा जी ने कही है। आर्यसमाजी बड़े जल्दबाज़ हैं, उतावले हैं, असहिष्णु हैं। सम्भव है हम ऐसे ही हों। गतवर्ष एक सिक्ख सज्जन ने सिक्खों के विषय में इस से भी बढ़कर बात कही थी। उसने कहा था कि सिक्ख एक बारूद का ढेर हैं जो कि ज़रा दियासलाई दिखलाई और झट भक से उड़ गया। मुसलमानों के विषय में महात्मा जी स्वयं मानते हैं कि बात २ में उनकी तलवार म्यान से बाहर निकलने को उतावली रहती है। और यह बात पंजाब के आर्य, सिक्ख और मुसलमानों में अधिक पाई जाती है। पंजाब में ही आर्यसमाज का अधिक प्रचार और अधिक ज़ोर है अतः बाहर वालों की दृष्टि में पंजाबी आर्य-समाजियों को सन्मुख रख कर आर्यसमाज की तुलना की जाती है। इसी कारण जो प्रान्तीय दोष हमारे में हैं वह भी आर्यसमाज के सिर मढ़ दिये जाते हैं। यह कहना कि आर्यसमाज भी इन दोषों को ठीक नहीं कर सका कदाचित् अधिक ठीक होता, परन्तु यह कहना कि आर्यसमाजी होने के कारण उन में यह दोष हैं ठीक नहीं। यह बहुतों का मत है कि पंजाबियों के विचार और कार्य में बहुत कम अन्तर होता है। जहां जो उनके मन में आया वह झट उसे कार्य में लाने के लिये तत्पर होजाते हैं। यह पंजाबियों का ऐसा स्वभाव होने के कारण है। पंजाब आरम्भ से ही सैनिक प्रान्त रहा है। एशिया से जितने भी आक्रमण भारत पर हुये उन सब में पहली तलवार पंजाब ने ही अपनी छाती पर ली। भारत का क्षत्रिय प्रान्त होने के कारण इस में क्षत्रियत्व का होना आवश्यक था। यही कारण है कि प्राचीन समय में भी और मुसलमानी काल में भी पंजाब कभी विद्या का केन्द्र नहीं बना, न ही यहां किसी विचारक ने जन्म लिया। परन्तु इसने

शत्रु की तलवार को अपने सीने पर खाकर भारत के अन्य प्रान्तों को इस योग्य अवश्य बनाया, ऐसी अवस्था में कुछ २ उतावलापन पंजाबी स्वभाव में आजाना आवश्यक था। और फिर भारतव्यापी धर्मयुद्ध में भी तो पंजाब ने क्षत्रिय वीर का धर्म निभाया है। यह सौभाग्य पंजाब को ही प्राप्त है कि मुसलमानों और ईसाइयों के धार्मिक आक्रमणों का उत्तर दे। पंजाबी स्वभाव के उतावलेपन का यह कारण है। परन्तु जहां यह उतावलापन दोष है वहां यह गुण भी तो है। यह इसी स्वभाव का फल है कि महात्मा जी को अहिंसात्मक असहयोग का सब से उज्वल क्रियात्मक उदाहरण पंजाबी अकाली वीरों ने ही अपने चरित्र से दिया है। ......

आर्यसमाजी तुनक मिज़ाज हैं। इस विचार की पुष्टि में महात्मा जी १२ जून के यंग इन्डिया में उन प्रस्तावों, लेखों और गुस्से (protest) की झड़ी को पेश करते हैं जो कि इस विवाद में आर्यसमाजियों की ओर से उनके विरुद्ध लग गई है। प्रभु! आप का उदाहरण ठीक नहीं। इस मामले में आप आर्यसमाजियों पर जल्दबाज़ी का दोष नहीं लगा सकते। आर्यसमाज रूपी माता से जन्म लेकर माता की ही गोद में आर्यसमाजियों ने अपना बाल्यकाल बिताया, उसी माता के दूध से उनका पालन पोषण हुआ, उसी माता की छत्रछाया में वह युवा और वृद्ध हुये, और उसी की गोद में वह परगति पाने के इच्छुक हैं। माता का खून उन की नस नस में चक्कर लगा रहा है। माता के दिये हुये विचार ही उनके मस्तिष्क में विद्यमान हैं। माता से इतना गहरा सम्पर्क होने के कारण हम जानते और इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि और कोई नहीं जानता, कि हमारी मां कितनी महान् है, उसका हृदय कितना कोमल है, उसके भाव कितने शुद्ध हैं, उसका स्नेह कितना उच्च है, उसका प्रेम भी कितना मीठा है और उसका त्याग कितना अद्वितीय है। हम अपनी माता की रग रग को और नस २ को जानते हैं। हमें यह सोचनेकी आवश्यकता नहीं कि वह क्या है! उसका निर्मल उज्वल शुद्धस्वरूप सदा हमारी आंखों के सामने है। यदि उस पर कोई दोष लगाया जाता है तो हम तत्काल जान जाते हैं कि इसमें कितनी वास्तविकता है। यदि वह दोष निर्मूल है तो उसे समझने में देर नहीं लगती। यही कारण है कि आपने जो आर्यसमाज पर दोष लगाये उनका वास्तविक मूल्य समझने में हमें देरी नहीं लगी। अतः आपके दोषों का तत्क्षण विरोध हमारी तनुक मिज़ाजी का सबूत नहीं।

भगवन्! क्रिया और प्रतिक्रिया समस्त प्राणी जाति का गुण है। आप सुई चुभोएं। यदि शरीर में जीव और प्राण हैं तो आपको तत्क्षण उत्तर मिलेगा, यदि शरीर मुर्दा है तो तलवार से काटने पर भी कुछ न बनेगा। यही दशा मानसिक जीवन की है। जो सभा या सुसाइटी मुर्दा है, संज्ञाहीन है, उसपर कितने भी आक्रमण हों कोई उत्तर नहीं मिलेगा। उसकी अवस्थामें उत्तर का न मिलना उसकी सहिष्णुता का आवश्यकीय द्योतक नहीं। आर्यसमाज एक जीवित-जागृत संस्था है। इसमें युवा काल का रक्त प्रवाह बह रहा है। यदि कोई इस से टक्कर लेगा तो यह सृष्टि नियम के अनुकूल आक्रमण को अवश्य रोकेगा। दल बल से रोकेगा। क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होगी। इसे आप तनुक मिज़ाजी कहें, असहिष्णुता कहें, जो चाहें कहें यह जीवन का प्राकृतिक लक्षण है।

हमारा काम समाप्त हो गया। अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार हमने आर्यसमाज की

वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने का यत्न किया है यदि इसमें हमसे कोई भूल हो गई हो तो हमें उसके लिये हार्दिक पश्चात्ताप होगा। एक बात अन्त में और लिख कर हम अपनी विचारमाला को समाप्त करते हैं। आर्यसमाज निर्दोष है, परन्तु सारे आर्यसमाजी भी ऐसे ही हैं यह हम नहीं मानते। व्यक्तिगत रूप से हम में से अनेकों में अनेक दोष हैं। महात्मा जी के बतलाये हुये दोष भी हैं और उनके अतिरिक्त और कितने ही दोष होंगे, परन्तु इनका कारण हमारी अपनी वैयक्तिक दुर्बलता है, आर्य-समाज की शिक्षा नहीं। हमारी निजी कम-जोरियों से उत्पन्न दोषों को संस्था के सिर मढ़ना ठीक नहीं। हमारा कर्तव्य है कि महात्मा जी ने हम पर जो दोष लगाये हैं उन पर विचार करें और जहां तक वह हम में हों उन को दूर करने का यत्न करें, उनके अतिरिक्त और भी जो हम में दोष हैं और जिन से हम परिचित नहीं उनका भी संशोधन करें। महात्मा जी से यही प्रार्थना है कि इस आत्म-शुद्धि के लिये हमें आशीर्वाद दें और उस पतितपावन जगन्नियन्ता से याचना है कि हमें बल दें, बुद्धि दें जिससे हम सत्यार्थ से कभी विचलित न हों।

जीवन-ज्योति

लेखक-श्री० हरिशङ्कर शर्म्मा कविरत्न

जीवन की ज्योति जगादो

अघ—अनाचार का क्षय हो, आशा से भरा हृदय हो,
वेदों का भानु उदय हो, ऐसा शुभ दृश्य दिखादो,
जीवन की ज्योति जगादो।

सब सदाचार में रत हों, फैले न अनेकों मत हों,
सत्कर्म करें, उन्नत हों, वह शिक्षा सुधा पिलादो,
जीवन की ज्योति जगादो।

बन वीर, न हिम्मत हारें, प्राणों को प्राण पर वारें,
सद्धर्म सदा विस्तारें, सुखमूल सुरीति सिखादो,
जीवन की ज्योति जगादो।

आदर्श बनें गृहजीवन, हों निर्मल प्यारे तन मन,
परहित साधन ही हो धन, ऐसा सन्मार्ग सुझादो,
जीवन की ज्योति जगादो।

पहला सा गौरव पावें, बिछुड़ोंको फिर अपनावें,
पतितों को गले लगावें, मिथ्या भय भावभगादो,
जीवन की ज्योति जगादो।

तमाखू

लेखक—श्रीयुत प्रो० रामशरण सक्सेना एम० एस० सी०



तमाखू का पौदा पहिले पहिल अमरीका में बोया जाता था। कहते हैं कि स० १४९२ ई० में जब कोलम्बस अमरीका के समीप क्यूबा द्वीप में पहुँचा तो उसने देखा कि यहां के जंगली लोग तमाखू की पत्ती में आग लगा कर पीते और मुख तथा नासिका से धुआं बाहर निकालते थे। कोलम्बस तमाखू का पौदा अमरीका से यूरप में लाया। वहां से मुसलमानों द्वारा यह एशिया में पहुंचा। लोग इसके कुछ ऐसे मतवाले बने कि बिना किसी सोच विचार के बहुतों ने इसे गृहण किया और बड़ी ऊंची पदवी पर पहुँचाया। यहां तक कि आज कल भारतवर्ष के कोने कोने में यह बोया जाता है और सिख लोगों की थोड़ी सी संख्या छोड़ कर देश के समस्त लोग इसका सेवन करते हैं। कहीं २ पर तो इसका प्रचार इतना बढ़ गया है कि स्त्रियां भी हुक्क़ा पीती हैं। छोटे २ बच्चे तो प्रायः बहुत से स्थानों में पीते ही हैं। कुछ लोगों में भ्रम से फैल गया है कि इसके धुएं से बहुत से रोग विनष्ट हो जाते हैं और इसलिये बहुत से माता पिता नन्हें बालक के मुंह में तमाखू का धूआं केवल इस लिये छोड़ते हैं कि वह मसान इत्यादि के रोग से सुरक्षित रहे।

तमाखू पीने, खाने, सूंघने और लेप करने के कामों में आता है। इसके पीने की वर्तमान काल में दो विधियां हैं एक पुरानी हुक्के द्वारा पीने की, दूसरी नवीन चुरट, सिगरट, बीड़ी इत्यादि के रूप में पीने की। जो लोग इसे हुक्के द्वारा पीते हैं वह तमाखू में गुड़ का शीरा मिलाकर खूब कूटते हैं फिर इस कूटे हुये तमाखू को चिलम में जलाकर इसका धूआं खींचते हैं, जो हुक्के के पानी में से गुज़र कर नली द्वारा होता हुआ मुख में प्रविष्ट होता है। अंत में उसे श्वास द्वारा मुख तथा नासिका से बाहर निकाल देते हैं। इस विधि से बहुत से घुलन शील गैस जो तमाखू के धुएं में उपस्थित होती है पानी में घुल कर कम हो जाती है। नवीन विधि के अनुसार तमाखू पीने में परिश्रम तो कुछ नहीं करना पड़ता अपितु तमाखू से उत्पन्न हुई सम्पूर्ण गैसें मुख द्वारा सीधी शरीर में पहुँचती हैं। पीने का तमाखू नाना प्रकार का बाज़ार में बिकता है। जो तमाखू बहुत तेज़ होता है उसे लोग बड़े चाव से मोल लेते और पीते हैं और दूर २ से कड़वा तमाखू मंगाते हैं। बहुत से सुगंधित खमीरे के तमाखू भी मिलते हैं जिनके लिये लखनऊ बड़ा प्रसिद्ध है। उसी प्रकार सिगार और सिगरिट भी विविध प्रकार की बाजारों में मिलती हैं शौकीन लोग हुक्के तथा सिगार पर अपना पर्याप्त धन व्यय करते हैं।

पीने के सिवाय तमाखू पान के साथ खाया भी जाता है। कहीं पर तो इसका प्रचार इतना बढ़ गया है कि घर २ में स्त्री पुरुष दोनों ही पान चबाते हैं और साथ ही तमाखू का प्रयोग करते हैं। पान के साथ तमाखू का कुछ ऐसा संबन्ध सा हो गया है कि ऐसे लोग कम मिलेंगे जो केवल पान ही खाते हों और तमाखू नहीं खाते। पीने का तमाखू भी नाना प्रकार का बाज़ार में मिलता है। यह पत्ती, चूर्ण, दाना, गोली, और शीरे

के रूप में बिकता है। इसके भी शौकीन लोग बड़े दीवाने होते हैं।

कुछ प्रान्तों में ऐसे लोग भी मिलते हैं जो न तो तमाखू खाते हैं और न पीते हैं परन्तु नासिका द्वारा सूंघते हैं। उनके पास सदैव ही हुलास शीशी में बन्द रहती है और दिन भर सूंघते हैं। हुलास चूर्णरूपमें बिकता है और इसके भी बहुत से नमूने पाये जाते हैं।

तमाखू की पत्ती में कई एक ऐन्द्राइकक्षार (Alkaloid) होते हैं जिनमें से मुख्य निकोटीन [Nicotine] है यह देखनेमें तैल जैसा द्रव होता है जिसमें अप्रियगंध आती है और जो पानीमें घुल जाती है। इसकी मात्रा २ प्रतिशतक से ८ प्रतिशतक होती है। साधारणतया निकोटीनकी मात्रा ६ या ७% होती है। यह अत्यन्त ही विषैला पदार्थ है। इसकी जितनी अधिक मात्रा तमाखू में उपस्थित होती हैं तमाखू उतना ही अधिक कडुआ और उत्तम गिना जाता है। लोग उसे उतनाही अधिक पसन्द करते हैं।

निकोटीन (Nicotine) पर बहुतसे परीक्षण हुये हैं। उन्होंने यही सिद्ध किया है कि यह बड़ा घातक विष है। इसके $\frac{१}{१०}$ ग्रेन से कुत्ता १० मिनिट में मर जाता है। इस विष से मनुष्य ३० सैकिन्ड में ही मरते देखे गये हैं। विश्लेषण करने से पता लगा है कि एक पौन्ड या आध सेर तमाखू में ३८० ग्रेन या २ तोले १॥ माशे निकोटीन (Nicotine) उपस्थित होती है और वह इतना विष है कि यदि आध सेर तमाखू इस भांति पिया जावे कि उसका पूरा २ असर हो तो उस से ३०० मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है। सिगार के विषय में भी यही है कि यदि एक सम्पूर्ण सिगार एक साथ पिया जावे तो वह दो मनुष्यों की जान का घातक हो सकता है। जब छोटे बच्चों के मारने की प्रथा प्रचलित थी तो स्त्रियां हुक्के की चीकट बच्चे के मुख में रख दिया करतीं थीं। चीकट में निकोटीन उपस्थित होने के कारण बच्चे की तत्काल मृत्यु हो जाती थी। जहां सांप अधिक निकलते हैं वहां के लोग सांप के मुख में हुक्के की चीकट डालकर मार डालते हैं। निकोटीन सांप के लिये बड़ा तीव्र विष है जिससे सांप की मृत्यु तत्काल ऐसे हो जाती है जैसे बिजली के गिरने से। अफ़रीका की कुछ जातियां सांप को तमाखू के तैल से ही मारती हैं जिसे यह पत्तियां को गरम करके निस्सारण द्वारा प्राप्त करतीहैं। उससे और अन्य हानिकारक कीटाणु भी मारे जाते हैं। हुक्के के पानी में निकोटीन घुली होने के कारण विशेष प्रकार की अप्रिय गन्ध आती है और यह कीटाणु इत्यादि मारने के काम आसकता है। यह तो सब हुक्के पीने वाले जानते हैं कि हुक्के का पानी ऐसी जगह नहीं फैंकना चाहिये जहां मनुष्य गुजरते हैं क्योंकि उस के वाष्प का आंखों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और रतौंदी आने लगती है अर्थात रात के समय दीखना बंद हो जाता है।

तमाखू का विष इतना तीव्र होता है कि यदि कोई इसे हुक्के या सिगरट द्वारा पिये भी नहीं केवल इसके हलके धुयें में दो चार मिनिट बैठने से मूर्छित हो जायगा। यह देखा गया है कि जो लोग तमाखू नहीं पीते वह यदि हुक्के का धुआं सूंघलें तो उनको तत्काल उल्टी (कै) आजाती है और शरीर चक्कर खाने लगता है। जहां तमाखू बोया जाता है उसके खेतों के किनारे २ थोड़ी देर तक घूमने से मूर्छा आजाती है। यदि तमाखू की पत्ती गरम करके पेट पर बांध

ली जावे तो थोड़े समय में ही जी मिचलाने लगता ह, उल्टी होने लगती है और मनुष्य की बुरी अवस्था हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि तमाखू कितना विषैला पदार्थ है।

तमाखू को जब जलाते हैं तो इसके धुंये में निकोटीन (Nicotine) के सिवाय और भी कई विषैले पदार्थ होते हैं जिनमें से मुख्य यह हैं:—

पाईरिडन (Pyridine), पिकौलीन (Picoline) ; उदगन्धिद (Sulphuritted hydrogen) कर्बनिक ऐसिड गैस (Carbondioxide) कर्व एकऔषित (Carbon monoxide) उदसायनिकाम्ल (Hydrocyanic acid) इत्यादि । इनके पृथक २ गुण बताने की आवश्यकता नहीं। यह कहना पर्याप्त है कि यह विषैले पदार्थ वाष्परूप में जब शरीर के अन्दर प्रविष्ट होते हैं तो इनका बहुत कुछ अंश खून में मिलकर शरीर में ही रह जाता है, जो नाना प्रकार के रोगों का उत्पादक होता है। विषैला खून होने के कारण शरीर का रंग पीला पड़ जाता है, आंखों से पानी बहने लगता है, खांसी आने लगती है, जिस से बार २ थूकना पड़ता है इत्यादि। उदसायनिकाम्ल (Hydrocyanic acid) की तनिकसी मात्रा ही जीवन की घातक होती है। ज्वार के खेतों में जब तक वर्षा नहीं होती पशुओं को नहीं चरने देते, क्योंकि उसकी कौंपल में कुछ अंश इसी अम्ल का होता है जिसको गांव के लोग भौंरी के नाम से कहते हैं और जिसके खाते ही क्षण भर में पशु मर जाते हैं। कर्बन एक औषिद (carbon monoxide) भी ऐसा ही विषैला गैस है। जो लोग कमरे में आग जलाकर दरवाज़ा बन्द करके सो जाते हैं सुबह को प्रायः मरे हुए पाये जाते हैं। ऐसी मृत्युओं की रिपोर्ट डाक्टरी की पत्रिकाओं में पाई जाती है । उदगन्धिद (sulphuretted hydrogen) भी विषैला गैस है। यह सब बातें इसकी पुष्टी करती हैं कि तमाखू का धुंआं कितना विषैला है।

जो लोग तमाखू को चिलम में जलाकर और धुयें को हुक्के के पानी में से गुजार कर मुख द्वारा भीतर ले जाते हैं उन्हें सिगरेट और बीड़ी पीने वालों की अपेक्षा कम हानि होती है क्योंकि धुयें को मुख तक पहुंचने से पूर्व बहुत चलना पड़ता है जिस से बहुत से घुलनशील पदार्थ पानीमें घुल जाते हैं, कुछ ठंढे होकर नलों में चीकट के रूप में जम जाते हैं, कुछ नहचे का कपड़ा चूस लेता है, और शेष भाग शरीर के अन्दर प्रविष्ट करता है, फिर इस का जो कुछ अंश रक्त चूस लेता है वही हानि का कारण बनता है। सिगरेट पीने वाले के जले तमाखू से उत्पन्न हुई सम्पूर्ण गैसें सीधी शरीर में प्रविष्ट होती हैं जो बड़ी हानि पहुंचाती हैं । जो तमाखू खाते या नासिका द्वारा सूंघते हैं वह भी बड़ी हानि उठाते हैं। डाक्टरों का मत है कि तमाखू का विष केवल पीने, खाने, या सूंघने वालों को ही नहीं सताता, अपितु उनकी संतान तक को भी हानि पहुंचाता है।

जब लोगों को तमाखू पीने की आदत पड़ जाती है तो बिना उसका सेवन किये न तो उन्हें भोजन ही पचता है, और न शौच ही आता है, और इससे लोग यह समझने लगे हैं कि पाचन शक्ति बढ़ाने अर्थात् बदहज़मी दूर करने के लिये तमाखू बड़ी उत्तम दवा है। परन्तु डाक्टरों के अनुभव में यह बात आचुकी है कि प्रायः तमाखू का प्रयोग पाचन शक्ति की निर्बलता का कारण होता है। यह बात तो सिद्ध हो चुकी है कि जितने भी नशे के पदार्थ हैं वह शरीर में पहुंच कर अंतड़ियों में उत्पन्न हुये उस रस की मात्रा

को कम कर देते हैं जो पाचन में विशेष सहायता करता है, साथ ही वह मेदे की चैतन्यता में निर्बलता उत्पन्न कर देता है जिसका स्पष्ट परिणाम पाचन शक्ति की निर्बलता होती है । तमाखू इस अंश में विशेष रूप से हानि पहुंचाता है । हुक्का पीने वालों को जब भूख लगती है तो हुक्का पीने से भूख नष्ट होजाती है । यद्यपि शरीर को उस समय भोजन की आवश्यकता तो होती है परन्तु उसके लिये रुचि नहीं रहती जिसका परिणाम शरीर की निर्बलता होती है, इसका कारण डाक्टर लोग यह बताते हैं कि तमाखू के प्रभाव से मेदे (Stomach) की चैतन्यता विनष्ट हो जाती है जिस से पाचन शक्ति में निर्बलता आजाती है । जो लोग तमाखू सूंघते हैं तो इसी प्रकार की अवस्था नासिका में उत्पन्न हो जाती है और फिर इसके सहयोग से मेदे तक अचैतन्यता जा पहुंचती है ।

डाक्टरों का मत है कि लकवे (Paralysis) का रोग देशों में जो इतना बढ़ रहा है इसका मूल कारण प्रायः तमाखू का प्रयोग है । तमाखू के प्रयोग से आंखों की शक्ति भी निर्बल होजाती है जिसके कारण भिन्न २ रंगों में भेद करना असम्भव हो जाता है । इस रोग को Colour blindness कहते हैं । इस रोग के रोगियों की संख्या नित्य बढ़ने का मुख्य कारण तमाखू का प्रयोग बतलाया जाता है ।

उक्त बातों से स्पष्ट है कि तमाखू कैसा विषैला पदार्थ है जिस से छोटे, बड़े, स्त्री, पुरुष सब को ही बचना चाहिये । लोगों को हानि से बचाने के लिये डाक्टर महोदयों ने बहुत से संयम पट (Temprance chart) प्रकाशित किये हैं जिन में स्पष्टरूप से, यह बताया गया है कि तमाखू के प्रयोग से रक्त, आंख, दिल, दिमाग़ इत्यादि पर उसका कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है । शिक्षा विभाग के बड़े अधिकारियों की ओर से अध्यापकों तथा उपाध्यायों को विशेष हिदायत होती है कि वह लड़कों को तमाखू पीने से रोकें । भारतवर्ष में तमाखू का प्रयोग इतना बढ़ गया है कि जब तक प्रत्येक व्यक्ति विशेष यत्न न करे तब तक इसकी जड़ उखड़ना बड़ी कठिन है । इस लिये जातीयता के लिये सम्मान रखने वाले प्रत्येक देश हितैषी का कर्त्तव्य है कि वह नवयुकों को तमाखू के प्रयोग से बचावें ।

भानु-भुवन या मोहन-माया

अनुवादिका—कुमारी सुमित्रादेवी जलविद्

पात्र पुरुष

अम्बालाल सेठ—बम्बई के एक धनी मतपत्नीक, बानप्रस्थ आश्रमी सज्जन, गांधी के अनन्य भक्त बनकर साबरमती के तीर पर रहने वाले एक गृहस्थ, पत्नी के स्वर्गवास के पश्चात् अहमदाबाद में आ बसे थे ।

नरोत्तमदास—अम्बालाल के दामाद, मधुरी के पति, गुजरात कालिज में रसायनशास्त्र के अध्यक्ष ।

साराभाई—विद्याभ्यास के लिये बचपन से विलायत में रहने वाला अम्बालाल का इकलौता पुत्र। पाश्चात्य सभ्यता के रंग से रंजित नकली युरोपियन जेंटलमैंन।

मोहनदास—नरोत्तमदास का बालमित्र, एक अनुभवी नरसिंह।

जीवराज—अहमदाबाद के प्रसिद्ध वैद्य।

हीरासिंह—पंजाब के एक बड़े प्रतिष्ठित जागीरदार, असहयोगी पुत्रके पिता। न्हानालाल, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, सी. एफ. एन्डूज़, अनूपराय इत्यादि।

स्त्री

मायावती—सेठ अम्बालाल की बहिन, काव्य कल्पना में पागल ललना।

मधुरी—सेठ अम्बालाल की पुत्री, नरोत्तम की पत्नी, टैगोर की कविता में मस्त युवती।

पुष्पा—मधुरी की छोटी भगिनी।
दास, दासी आदि।

प्रथम अंक

स्थान—साबरमती के तीर अम्बालाल सेठ का बंगला।

(अम्बालाल सेठ महात्मा गांधी के अनन्य भक्त हैं, जब से देश में असहयोग की धूम मची है तबसे अपनी मिलका धंधा छोड़कर, सच्चे असहयोगी बनकर अहमदाबाद में साबरमती के तीर पर आ बसे हैं। अब तक बम्बई में रह कर खूब धन सम्पत्ति एकत्रित करली है, स्त्री का देहावसान हो गया है, अतः यहीं पर एक बड़ा सुन्दर बंगला लेकर अपना समय गांधी की भक्ति में व्यतीत करने के लिये आ बसे हैं। इनकी बैठक क्या है? मानों एक अजायब घर है। जिसमें बड़ी बड़ी अमूल्य वस्तुओं का संग्रह करके उन्हें बैठक की शोभा वृद्धि के लिये योग्य स्थान दिया गया है। बैठक में छत पर टंगे हुए झाड़ फानूस, मर्यादापूर्वक रक्खी हुई मेज़, कुर्सियां उसकी आभा को बढ़ा रही हैं। इस घर में अम्बालाल का ही राज्य नहीं है अपितु उनकी भगिनी मायावती तथा ज्येष्ठ सुतादि भी अपना पूरा हक़ समझती हैं। सेठ जी महात्मा जी के भक्त हैं, मायावती कवि न्हानालाल की कविताओं से मुग्ध हो काव्य कल्पना में दीवानी हैं, उनकी बड़ी पुत्री मधुरी रवीन्द्र बाबू की रचनाओं में मस्त हो मस्तानी बनी हैं। अतः प्रत्येक ने अपने अपने देवताओं की प्रतिमाओं को पृथक् पृथक् कमरे में स्थान देकर बड़े बड़े साजों से सजाकर आदृत किया है। यद्यपि सेठ जी पूरे असहयोगी हैं तथापि, उनके अजायब घर में प्रायः आधी से ऊपर वस्तुएं विदेशी हैं। उन्हें खद्दर के आच्छादनों से छिपाकर स्वदेशी बनाया गयाहै, मानो किसी युरोपियन को जबरदस्ती हिन्दू धर्म का पाठ पढ़ा कर हिंदू बनाया गया हो)।

इस अजायब घर की ख्याति सुन कर दूर दूर से प्रेक्षकगण आते हैं, जब देखो तब बैठक के द्वार पर जमघट जमा ही रहता है। अनूपराय को कभी खाली बैठा नहीं पाते। यह सदा दर्शकों को अजायब घर दिखाता हुआ ही मिलता है। इस समय भी एक पार्सी एक क्रिश्चियन, तथा एक प्रेमीयुगल देखने की चाह से अन्दर मौजूद हैं। वह प्रत्येक

वस्तु को देख देख कर उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे हैं।

अनूप०—(वृद्ध पारसी को दर्शक पंजिका दिखाकर) आप में से किसी ने इस में अपना नाम न लिखा हो तो लिखते जाइये और यदि आपकी इच्छा हो तो कोई अच्छा सा श्लोकादि भी साथ लिखते जाइयेगा। (पुस्तक दर्शकों के आगे रखता है, अमेरिकन महिला नाम लिखने आती है उसे कुछ ठहर कर कहता है-'कोई श्लोक या वाक्य भी साथ लिख दें)'

[प्रणयी युगल धीरे २ प्रेमालाप कर रहे हैं]

मोती—मणि! प्रिये तुम्हें मानना ही पड़ेगा।

मणि—परन्तु मोती! मैं क्या करूं, मेरा साहस नहीं पड़ता, मुझे लज्जा·····

मोती—इसमें लज्जा कैसी? कल तो फिर पंचमी है·········

अनूप०—(दोनों को देखकर) आप लोग अजायब घर देखेंगे क्या?

मोती—हां जी देखेंगे क्यों नहीं।

अनूप—अच्छा तो सब इस ओर आइये। [दांई ओर लेजाकर कवि न्हानालाल के बस्टसे दिखाना प्रारम्भ करता है।] मोती और मणी दूसरी रवीन्द्रबाबू की प्रतिमा की आड़ में खड़े होकर प्रेमालाप में प्रदर्शिनी की सुध भूल जाते हैं।

पारसी—तो क्या बावा सचमुच ईस में रविण्डरनाठ टागोर रहते थे?

अनूप—(उसको उत्तर देता है और क्रिश्चियन को कौच पर बैठा देख कर कहता है) प्रदर्शिनी के आसनों पर बैठने की मनाही है।

क्रिश्चियन—टो फेर आदमी यहां आकर बैठे कहां? खड़े खड़े टो पांव भी दूखने लगा। [सिग्रेट पीता है]

अमेरिकन महिला—Oh my! And so, you say your great man Gandhi had pitched his camp right here, eh?

अनूप—(मोती और मणि को साथ न देख कर दूसरी ओर देखता है, फिर उन्हें रवीन्द्र की प्रतिमा पर हाथ लगाते देख कर कहता है) प्रदर्शिनी की किसी भी वस्तु को मत छूओ।

मोती—[उस के शब्दों पर ध्यान न देकर] परन्तु मणि! इस का सत्य कारण तो कहो।

मणि—[तिरछी निगाह फेंक कर] तुम्हारा निरन्तर विदेश वास मुझ से सहन नहीं होता।

मोती—[हर्ष और क्षोभ के पूर्णावेश में] ओ हो, मणि! तुम भी·········[उस का हाथ पकड़ता है]।

अनूप—[दोनों को वहां ही देख कर पास जाता है और कहता है] आपने नाम दर्ज किया क्या?

मोती—[चकित होकर] हैं, क्या?

अनूप—[अपने शब्दों पर खूब ज़ोर देकर] मैं आपसे पूछता हूँ कि आपने दर्शक-पंजिका में अपना नाम दर्ज किया है कि नहीं?

मोती—नाम लिखूं ? किस लिये ? [यहां क्या हो रहा है इस की सुध उसे न थी, परन्तु मणि यह सब देख कर मोती को पांव से धकेल कर नाम लिखने जाती है]।

अनूप—यदि इच्छा हो तो कोई अच्छा सा श्लोक भी लिख दें।

मोती—अच्छा कृपानिधान ! (दोनों नाम लिखते हैं, अनूप अपने काम में लगता है)

अनूप—(एक योग्य वक्ता की भांति खड़ा होकर बोलता है) देवियो और सज्जनों ! इस स्थान पर आज से २५, ३० वर्ष पूर्व अहमदाबाद के कलेक्टर का बंगला था। यहां जब सत्येन्द्र नाथ टैगौर कलेक्टर नियुक्त होकर आये तब वे अपने साथ अपने अनुज विश्वविख्यात, भारतभूषण कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ को भी लाये। मतलब यह कि गीतांजलि, भाली चित्रादि के रसिककर्ता का बाल्य काल यहीं व्यतीत हुआ था। (क्रिश्चियन के सिग्रेट के धूएं से अमेरिकन स्त्री छींकती है। अतः अनूप अपना भाषण स्थगित कर धूम्रपान का निषेध करता है और फिर बोलना आरम्भ करता है) आहा! कविराज की कल्पना शक्ति कैसी विलक्षण है और कैसे गूढ़ विचार हैं। (क्रिश्चियन को) सुनते हो ! यहां धूम्रपान की सख्त मनाही है। सिग्रेट पीनी है तो बाहर जाओ।

क्रिश्चियन—अच्छा साहिब [उठ कर चल देता है]

अनूप—[क्रिश्चियन से पारितोषक की आशा थी उसके नष्ट होजाने से गुनगुनाता है] कैसा असभ्य है ? अच्छा सुनो [न्हानालाल का बस्ट दिखा कर] देखो इस दैवीमुख से कैसी अमृत-धारा बहती है। वाक्‌देवी की तुष्टता से कैसे वचन उच्चरित होते हैं !

अमेरिकन महिला—Sure this gug is not Tagore as I saw him way back in salt lake city in the fall of.

अनूप—[अंग्रेजी नहीं जानता इस लिये चौंकता है, परन्तु शीघ्र भूल समझ जाता है अतः बात काट कर, एक मेज के पास जाकर मयूर पंख की लेखनी निकाल कर उस ललना को दिखा कर उसका ध्यान इधर बटाता है] देखिये ! सरस्वती प्रेषित यह अमर लेखनी देखिये। यह रवीन्द्र बाबू की असाधारण लेखनी है, इसे अम्बालालकी पुत्री मधुरी ने बड़े यत्न से प्राप्त किया है।

अमेरिकन महिला—Let me see it [हाथ में लेती है, अन्य प्रेक्षक रवीन्द्र की मूर्ति देख रहे हैं, उनका ध्यान उधर ही है] How much ? [हाथ में लटकते हुये बटुए में से पैसे निकालती है]।

अनूप—[दाम बढ़ाता है] नहीं मेम साहब यह बिकाऊ नहीं है [कलम रख देता है, बांई ओर से बहुत सुन्दर वेश में माया आती है]।

माया—प्रेक्षकों को देख कर संकुचाती है। ओह प्रभु ! हद्द होगई अब तक भी

दर्शकों का झमेला है। [उल्टे पांव लौट जाती है]

पारसी—[अनूप० से] क्यों रे बाबा! यहां आकर फेर चले जाने वाली औरट कौन ठी?

अनूप—अरे! यह तो इस बंगले के आधुनिक मालिक सेठ अम्बालाल की बहिन मायावती थी। लोग इन्हें मिस माया के नाम से पुकारते हैं तो खुश होती हैं। [टैगोर का एक चित्र दिखलाता है] यह देखिये! भारत के कवीन्द्र की दैवीं मुखाकृति। यह त्रिकालगामी दृष्टि से किस भांति छिप सकती है? अच्छा अब यह देखिये, इधर आइये।

मोती—[आत्म कथा में मग्न किंचित् उच्च-स्वर से बोल उठता है] और फिर तू इसका मुख देख कर विरह व्यथा सहन करेगी।

अनूप—हैं, हैं, क्या? [सब मुस्कराते हैं] [प्रेक्षकों से] यह देखिये, भारत के वर वीर, असहयोग के महारथी, महात्मा गांधी का चित्र! इस महात्मा के लिये मैं अधिक क्या कह सकता हूँ जो आप न जानते होंगे। अफ्रीका से लौटने पर प्रथम यहीं आकर रहे थे और उनके पादारविंद से पावन धरणी को इसके आधुनिक मालिक ने अपना निवृत्ति काल व्यतीत करने के लिये ही खरीदा है। बम्बई के प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित, साहसी व्यापारी अम्बालाल सेठ को कौन नहीं जानता है? परन्तु महात्मा गांधी और कविराज के निवास स्थान में बसकर वे उन्हीं के तुल्य विश्व विख्यात होना चाहते हैं। (दर्शकगण महात्मा जी की प्रतिभा देखने में मस्त हैं और अनूपराय की वक्तृता सुन रहे हैं, इस बीच में अम्बालाल सेठ दूसरे द्वार से प्रविष्ट हो दर्शकों को देख निस्तब्ध खड़े होकर सुनते हैं) सेठ सज्जन पुरुष हैं। राज्यकार्य तथा सामाजिक व्यवहार में अग्रणी हैं। साहित्य के शौकीन तथा कला कौशल में प्रवीण हैं। प्रजा के नेताओं के लिये तथा देश के उद्धारकों के लिये, जनता में उच्च भावना भावित करने के पक्षपाती हैं, अतः अपनी उदारवृत्ति से इन्होंने अपना आवास गृह भी एक अजायब घर की तरह खुला रखा है। लाखों रुपये खर्च करके इन्हों ने हिंद के विख्यात नर वीरों की स्मारक वस्तुएं अनेक मुसीबतें सहकर संग्रह की हैं। यह देखिये (महात्मा गांधी के चित्र के ऊपर टंगे हुये स्वर्ण के चौखटे में जड़े हुए बड़े कद के चित्र की ओर इशारा करता है) अम्बालाल सेठ की तस्वीर।

पारसी—यह स्वयं सेठ जी हैं क्या? (टकटकी लगा कर देखता है) मस्तिष्क तो ऐसा नहीं दीखता। यह भाग्य का फेर है।

अमेरिकन स्त्री—Just like your other great guns of commerce. Hearey, brutish, anything but refined, spiritual, artistic! (उसकी ओर पीठ करके खद्दर पर निकली हुई महात्मा जी की तस्वीर देखती है, अंबालाल सेठ दुःखी होकर उसी द्वार से लौट जाते हैं)।

अनूप—[विषय बदलने के लिये] [मूर्ति की बाईं ओर अलमारी के पास पड़े हुए आसन को दिखा कर कहता है] यह कौच देखो, यह गांधी जी का प्रियतम विरामासन है। सेठ अंबालाल प्रति दिन प्रातः इसी आसन पर बैठ कर नवजीवन की अर्चना करते हैं। [दक्षिण ओर का द्वार दिखा कर] मेरे साथ आइये देखिये यह सेठ का अभ्यास गृह है। आगे बढ़िये महात्मा जी का निजी पुस्तकालय दिखाऊं, इसे नवजीवन मन्दिर कहते हैं।

पारसी—और टागोर वाला रूम कहां है ?

अनूप—[बाईं ओर की भीत का ओर दिखा कर] इस भीत की दूसरी ओर कविराज का शयन गृह है। अब यहाँ मायावती रहती है और इसका नाम भानु-भुवन रक्खा है। हम लोग नव-जीवन मंदिर देख कर भानु-भुवन अथवा मायामहल में जायेंगे [दर्शक-गण कवि नन्हालाल के बस्ट को देखते हुए निकल जाते हैं, केवल अमेरिकन ललना पीछे रह जाती है]।

अमेरिकन स्त्री—[एकान्त पाकर जिस मेज में कलम रखी थी वहां जाकर बटुए में से सोने की मोहरें निकाल कर अनूप को ललचाती है] Come ! out with your great man's pen! five gold Sovereigns for it !

अनूप—No, Lady Pen not sell ! [खाना खोलता है] खाने में कलम देख कर ललना झपटती है और पांच मोहर मेज पर रखती है, अनूप उठा कर अपनी जेब में डालता है, पुनः दोनों दायीं ओर के द्वार से निकल जाते हैं।

मणी—नहीं प्रियतम ! नहीं ! कोई देख लेगा तो…………

मोती—देख, अब कोई नहीं है ! मणि प्रिये ! यह अंतिम…………कितने वर्षों के पश्चात् फिर …………[अनूप फिर लौटता है]

अनूप—ओ, हो, ही, ही, ही, (हंसता हुआ लौट जाता है) यह काम छोड़ने योग्य नहीं है। मैंने ७५ वीं लेखनी बेची है और यदि आज के जैसा बिल्ला जाल में फंस जाय तो नौकरी ढूंढनी ही न पड़े (हंसता है और फिर अदृश्य होता है मणि तथा मोती भी शरमिंदा हो जाते हैं)

(बाग़ की ओर से साराभाई का प्रवेश)

साराभाई—कैसा स्वागत होगा—पिता जी तो अब भी मुझ से रूठे प्रतीत होते हैं। (अम्बालाल सेठ की तस्वीर पर ध्यान जाते ही) यही हैं। बूढ़े में बहुत अन्तर नहीं दीखता। मुझ से जैसी क्रूरता करते हैं वैसी यदि लड़कियों से न करते हों तो अच्छा हो। (सारा भाई का वेश भूषा सब युरोपियन सी है)

पुष्पा—(बिलौरी काच का जल सींचन हाथ में लिये आती है। साराभाई को देख कर जरा लज्जित होती है) ओह !

साराभाई—(एक दम पीछे हट कर) पुष्पा! ठीक यही है। बड़ी होगई है।

पुष्पा—[पहिचानती नहीं है, परन्तु सभ्य देख कर स्वागत करती है] आप प्रदर्शिनी देखने आये हैं? (उत्तर में साराभाई दौड़ कर पुष्पा का हाथ पकड़ते हैं पुष्पा घबराती है)

पुष्पा—अरे! अरे! यह क्या करते हो? मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो, (जल पात्र साराभाई के मुख पर फैंकती है)

साराभाई—(खूब हंसते हैं) पुसी! माई डीयर पुसी! भाई को भी भूल गई हो क्या?

पुष्पा—कौन? सारु? आओ आओ (जलपात्र मेजपर रख कर उसकी ओर देखती है)

साराभाई—बेबी! क्या मुझ में बहुत परिवर्तन हो गया है?

पुष्पा—मैंने तो अब पहिचाना। हां बहुत परिवर्तन हो गया है, तब तो कैसे कोमल, निर्बल और बालक जैसे थे?

साराभाई—और अब अधेड़ पुरुष बन गया हूं? क्यों बेबी?

पुष्पा—कैसी बड़ी लम्बी दाढ़ी है, जो टैगोर को भी मात करती है। (स्नेह के आवेग में) तुमने सत्यतः मुझे बहुत डराया था अच्छा सारु! अब मैं तुम्हारा बदला लेती हूँ। (साराभाई का कोट पकड़ती है)

साराभाई—तुम तो डर कर, पर्वत की तरह स्तम्भित हो गई थीं?

पुष्पा—हां! अपनी आत्मरक्षा के लिये भागने को थी।

साराभाई—बेबी! सचमुच तुमने मुझे नहीं पहिचाना?

पुष्पा—नहीं। तो थोड़ी देर ठहरो। मैं पिता जी को बुला लाऊं।

(जाना चाहती है)

साराभाई—[उसका हाथ पकड़ कर रोकते हैं] नहीं। जरा ठहरो। अब भी क्या पिता जी पूर्ववत् मुझ से नाराज हैं।

पुष्पा—[एक ठंढा सांस खींच कर] हां तुम्हारा नाम लेते भी नहीं और लेने भी नहीं देते।

साराभाई—हां पिता जी का क्रूर स्वभाव न बदला?

पुष्पा—नहीं, मधु को या मुझे तुम्हारे पास पत्र लिखने की मनाही तो नहीं करते परन्तु जैसे तुम्हारी पर्वाह ही न हो ऐसे कभी तुम्हारी पूंछ ताँछ नहीं करते।

साराभाई—परन्तु मेरा क्या अपराध है? यह समझ में नहीं आता।

पुष्पा—अपराध? इतने वर्ष तुम्हें विलायत में बसाया सो क्या व्यापारी बनने के लिये? [पुष्पा हंसती है] स्वयं मुझ को तो इस विषय में कुछ दुःख नहीं है परन्तु मधु और पिता जी के लिये तो तुम्हारा सिविल सर्विस की परीक्षा में फेल होना ही बड़ा भारी अपराध है।

साराभाई—[हंसता है] सिविल सर्विस नौकरी नहीं है क्या?

पुष्पा—हां, हां, परन्तु सरकारी अमलदारी तो होती ?

साराभाई—इसे तो विदेशियों की गुलामी कहते हैं।

पुष्पा—हां, अब तो कदाचित् पिता जी भी यही कहेंगे। परन्तु व्यापारी के यहां नौकरी करके तुमने कुल की बड़ाई में कुठाराघात करके पिता जी की सब आशायें मिट्टी में मिलादीं।

साराभाई—(कुछ अप्रसन्न होकर) परन्तु प्रत्येक क्या प्रत्येक परीक्षा में पास होता है ? मैं फेल न होता तो और किस प्रकार पास होते ? हम लोगों को कौनसी नौकरी की अपेक्षा थी ? परन्तु औरों के लिये तो पेट पूर्तिका साधन था। यदि धनी लोग परीक्षायें करलें तो ग़रीबों के पेट पर लात मारना कहलावेगा।

पुष्पा—सो हम क्या नहीं समझते हैं भाई ! परन्तु पिता जी के साथ सिर खप्पी कर लेना। यदि सरकारी नौकरी नहीं करनी थी तो बैरिस्टर ही बन जाते ? उसे भी क्यों रद्द कर दिया ?

साराभाई—मेरी अपेक्षा तो तुम भली प्रकार बैरिस्टरी कर सकती हो। देखो बेबी ! मुझे हवा खाने के लिये बहुत से वर्षों का समय मिला है अब कुछ काम करने को भी मन होता है। सो न करूं क्या ? बैरिस्टर बन कर १० वर्ष तक बम्बई में मक्खियां मारने के सिवाय क्या मिलता ?

पुष्पा—तुमने कभी प्रयत्न किया था क्या ? [दोनों भाई बहिन हंसते हैं।] पिता जी तो यही समझते हैं कि तुमने गोपालदास के यहां नौकर रह कर हमारा नाक कटवा दिया है।

साराभाई—परन्तु अब तो मैं नौकर नहीं हूं, बल्कि उसका भाईवाल हूं, और योरप के समस्त जौहरियों में श्रेष्ठ गिना जाता हूँ ?

पुष्पा—भाई ! यह तो तुम जानते ही हो कि यदि कोई पिताजी का सामना करे तो उन्हें बुरा लगता है। और यदि तुमने उनका कहना किया होता तो शायद जज या सर नाइट भी बन गये होते।

साराभाई—[हंस कर] पिता जी तो असहयोगी बन गये हैं न ?

पुष्पा—सो अपने लिये बने हैं न कि तुम्हारे लिये। तुम तो सरकारी नौकर होते या बैरिस्टर होते। तुम्हें अपना काम करना ही पड़ता (दोनों हंसते हैं)

साराभाई—अच्छा ये बातें फिर होंगी। कहो सब कुशल तो हैं ?

पुष्पा—नम्बर वन। पिता जी, फूफी, मधु और उसके पति (मज़ाक में सबको अपने आप झुक कर प्रणाम करती है) सेवक.........

साराभाई—बेबी ! तुम बहुत बिगड़ गई हो, क्या कभी तुमने अपना मुख मुकर में देखा है ?

पुष्पा—[हर्ष से पुलकित होकर]
"मुखड़ा क्या देखें दर्पन में !
मुखड़ा क्या देखें दर्पन में !"
हां तो भी दिन में तीन बार अवश्य देख लेती हूं।

साराभाई—तुम कैसी सुन्दरी पुतली हो सो जानती हो क्या ?

पुष्पा—[पुनः झुक कर प्रणाम करती है] महाशय ! आप जब विदेश गये थे तब मैं आठ वर्ष की भी नहीं थी। वह भूल गये क्या ?

साराभाई—और मधु ? बारह वर्ष की थी ? अब तो उसका विवाह भी हो गया !

पुष्पा—और विवाहको भी दो वर्ष बीत गये ।

साराभाई—मधुरी का गृहस्थ जीवन किस प्रकार व्यतीत हो रहा है ?

पुष्पा—[ठंढी आह भर कर] हां अच्छा है, परन्तु मधुरी ज्यों ज्यों बड़ी हो रही है त्यों त्यों नादान बन रही है ।

साराभाई—क्यों भला ?

पुष्पा—मैंने तुम्हें लिखा था न कि पहिले यहां हिन्द के दो नेता रह चुके हैं इस लिये पिता जी ने, इस भूमि को पतितोद्धारिणी समझ कर यह बंगला खरीद लिया है ।

साराभाई—हां, हां, म० गांधी, और टैगोर की बात और भी कहीं से सुनी थी ।

पुष्पा—बस तभी से मधुरी और उसके पति का कलह जागृत हुआ है। पिता जी तो गांधी में इतने लीन हो गये हैं कि अपना निवास स्थान भी अजायब घर बना दिया है, और मधुरी को टैगोर का मद चढ़ा है। प्रथम उसने टैगोर के समस्त ग्रन्थ अंग्रेज़ी में पढ़े, फिर बंगला सीखकर उस में पढ़ने शुरू किये। अब उनका गुजराती भाषा में अनुवाद कर रही है । उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते फिरते, जब देखो तब टैगोर ही टैगोर का जाप जपती है, गत वर्ष तो टैगोर का नाम भी न जानती थी ।

साराभाई—परन्तु इस से पति-पत्नि में कलह कैसे हुआ ?

पुष्पा—भाई ! तुम क्या समझो ? मधु प्रत्येक बात में हद कर देती है । पल में आनन्द की सीमा उलंघन कर जाती है तो पल में उसके खेद की पराकाष्ठा ही नहीं रहती । उसका पति तो बड़ा सरल और भला है, अपने कार्य में भी दक्ष है, परन्तु मधु पर न जाने कौन-सा भूत सवार है कि प्रेम-प्रणय करने पर भी उसको उपेक्षा ही करती है । उस का यह स्वभाव ही नरोत्तम को अखरता है ।

साराभाई—मधु उसे उपेक्षा से क्यों देखती है, उसकी परवाह क्यों नहीं करती ?

पुष्पा—क्यों न हो ? जब कि नरोत्तमदास को ओक्सिजन और हाइड्रौजन की खोज में गीतांजलि पढ़ने का अवसर ही न मिला । और यदि उसने उसे पढ़ा भी होगा तो मधु की तरह महत्व क्यों नहीं दिया ? बस यही कारण है कि नरोत्तम को देख कर यही कहा करती है कि—

साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।

साराभाई—बेबी ! यह तो प्रणय कलह है ?

पुष्पा—परन्तु मुझे तो यह गंभीर मामला दीखता है । अभी कल ही के झगड़े में दोनों में इतना वैमनस्य हुआ कि

२४ घंटे में एक दूसरे के साथ एक शब्द भी नहीं बोले। प्रायः प्रतिदिन ऐसा ही हुआ करता है इसीलिये नरोत्तम सर्वदा शोकसागर में निमग्न रहते हैं। [दोनों कुछ देर ठहर कर] भाई! तुम ही इसे कुछ समझाओ। तुम से हो कुछ डरती है, और स्नेह भी करती है। पिताजी तो गांधी भक्ति में लीन हैं, अतः मधुरी के स्वभाव को जान कर उसे कुछ नहीं कहते। तुम कहोगे तो अवश्य समझ जावेगी, वह तुम्हें मिलने के लिये बहुत उत्सुक हैं? कहो तो, बुलाऊं?

साराभाई—नहीं अभी नहीं। सब बातों का विचार करते हुए यही अच्छा है कि मैं आज अदृश्य ही रहूँ। पिता जी घबरा कर कहीं कोश में ही ढूंढ़ने लगें कि मैं उन का हो पुत्र हूं। [दोनों हंसते हैं] कल ही तार आनेवाला है, इसलिये यदि मैं स्टार आफ इण्डिया के रिब्बन के साथ पिता जी को मिलूंगा तो उनकी घबराहट कम हो जावेगी।

पुष्पा—हाँ, यही ठीक होगा।

साराभाई—बेबी! तुम नहीं जानती हो कि तुम्हारे भाई कौन हैं?

पुष्पा—स्टार आफ इण्डिया-तब तो तुम सचमुच नाइट अरे नहीं, सर नाइट बन गये हो?

साराभाई—[उपेक्षा से] और यदि चाहूं तो बेरोनेट भी बन सकता हूं।

पुष्पा—परन्तु इस विषय में तुमने हमें तो लिखा ही नहीं?

साराभाई—सत्याग्रहियों को इस से आनन्द होता है?

पुष्पा—[किंचित् अप्रसन्नमुख हो] हां, यह भूल गई थी। पिता जी अब इस से भी प्रसन्न नहीं होंगे।

साराभाई—वे कहेंगे तो हम ज़ोर देकर सरकार को एक बड़ा लम्बा चिट्ठा लिख कर, रवीन्द्रनाथ की तरह खिताब और मैडल वापिस कर देंगे। कारण में कहेंगे कि हम असहयोगी हैं।

पुष्पा—[खिन्न चित्त होकर] हां! यही ठीक होगा।

साराभाई—परन्तु इस में Legion d'honneur का Grand Cross को अस्वीकृत करने की आवश्यकता नहीं है।

पुष्पा—[पुनः हंसती है] हां यह तो होगा, परन्तु भाई यह तो बताओ कि तुमने कौन से काम किये कि तुम इतने उच्च पदाधिकारी हो गये?

साराभाई—बेबी! यह तुम न समझ सकोगी परन्तु हठ करती हो इसलिये कहता हूं। एक बार मैंने ब्राज़ील से क़ाफ़ी मंगाकर आफ्रिका में उत्पन्न करने का अख्तरा बताया, और उसी के द्वारा लाखों अंग्रेज़ों और फ्रेंच लोगों को निवास स्थान दिखाया तथा पेटपोषण का साधन बताया था। यह बदला उसी का है। [इतने में दर्शकों के साथ अनूप० का प्रवेश और उद्यानके द्वार से प्रस्थान] परन्तु यह क्या? इस बंगले को होटल बनाया है या पाठशाला? ये पशु यहां कैसे आये थे?

पुष्पा—नहीं नहीं, ये तो दर्शक थे? हां यदि पिता जी इसे विद्यापीठ को देदें फिर इस में पाठशाला लगे तो कोई आश्चर्य नहीं है। देखो लोग पिताजी की उदारता से कैसा अनुचित लाभ उठाते हैं। परन्तु अपनी धुन के धुनी पिताजी इसकी पर्वाह ही नहीं करते। अब यदि तुम्हें जाना हो तो चले जावो। पिता जी यहां आतेही होंगे।

साराभाई—अच्छा जाता हूँ, परन्तु याद रखना बहिन! मेरी वह बात किसी से न कहना। (प्रस्थान)

पुष्पा—[साराभाई को देखकर] कितना बड़ा हो गया है, और कैसा गठीला नवयुवक हो गया है। [उद्यान में जाती है। थोड़ी देर में अम्बालाल आते हैं]

अम्बालाल—[स्वगत] लोकप्रिय होना बड़ा कठिन है। देखो मैं लोगों को अपना बंगला और उस में मौजूद पदार्थों को मुफ़ में ही अजाइब घर की भाँति दिखाता हूं। और लोग, धन्यवाद के बदले मुझे जन्ममूर्ख बताते हैं [अपने चित्र को गौर से देखते हैं। बाग में से नये पुष्प लिये पुष्पा का प्रवेश]

पुष्पा—[फूलदान में फूल रखती है और ताजा पानी उस में डालती है] पिता जी! अपनी फोटो देख रहे हैं क्या?

अम्बालाल—हां, तुम्हें कैसी प्रतीत होती है?

पुष्पा—चित्रकार ने आपको बड़ा उत्तम और सुन्दर दर्शाया है।

अम्बालाल—[आनन्द से] अच्छा?

पुष्पा—हां बहुत ही सुन्दर।

अम्बालाल—[चिढ़कर] ऐसे है?

पुष्पा—पिताजी! सभा कब होगी, और हम कब जावेंगे?

अम्बालाल - यहाँ से दर्शक चले जायं फिर चलते हैं।

पुष्पा—[अप्रसन्न होकर] प्रतिदिन दर्शक!

अम्बालाल—[किंचित् अहंभाव से] क्यों न आयें? आज तो यह तीसरा ग्रुप है। इस में एक अमेरिकन महिला भी है। परन्तु साधारणतया दर्शक लोग प्रायः अज्ञानी और विवेकशून्य होते हैं।

पुष्पा—(हंसती है) क्यों? आज किसी ने कुछ कह दिया है क्या?

अम्बालाल - [फोटो देखकर] कहते हैं कि मुझ में ज्ञान और बुद्धि नहीं है।

पुष्पा—सचमुच क्या यही कहते हैं?

अम्बालाल—हां, इस में विचित्रता ही क्या है! तुम भी तो यही कहती हो कि चित्रकार ने मुझे चित्र में बहुत सुन्दर दिखाया है।

पुष्पा—[उस की मानसिक वेदना समझ जाती है] नहीं पिता जी! मैं तो यह कहना चाहती थी कि चित्रकार ने आपको १० वर्ष छोटा दिखाया है। इससे आप को बुरा लगा क्या? [अम्बालाल सिर हिलाते हैं] इसी दर्शक पंजिका में नाम दर्ज होते हैं क्या?

अम्बालाल—हां इसी में।

पुष्पा—चलिये देखें। क्या क्या लिखा है? [मेज के पास खड़ी होकर पुस्तक खोलकर पढ़ती है] अहा! इसे पढ़ने में खूब आनन्द आता है। लीजिये प्रारम्भ में मंगलाचरण ही है "अम्बालाल सेठ को मेरा सादर नमस्कार"

अम्बालाल—इस में तो सभ्यता है।

पुष्पा—[आगे पढ़ती है] "स्थान सुन्दर है, परन्तु एक विश्रान्तिगृह की न्यूनता है"।

अम्बालाल—इन लेगों के लिये एक धर्मशाला बनवाऊं क्या ?

पुष्पा--[पढ़ती है] gertrude Davis, Passionate admirer of Rabindra Nath Tagore हमारी मधु की भांति ही है, Oh, if only the walls of this house could speak.

अम्बालाल--[हर्षित होकर] हां, ठीक है ।

पुष्पा--[पढ़ती है] They would weep, what a fall From Tagore to Ambalal.

अम्बालाल—[निस्तेज और हताश होकर] आगे पढ़ो ।

पुष्पा –[पढ़ती है] " The best cycle is B S. A."

अम्बालाल—दर्शक पंजिका में भी इश्तिहार !

पुष्पा –[पढ़ती है] " मैं मणि को आमरण चाहूंगा" "मैंने मोती को अपना सर्वस्व अर्पण किया", यहभी खूब है ।

अम्बालाल—क्या तुम्हें नहीं मालूम होता कि यह बंगला हमारे निवासगृह के स्थान में प्रेमियों के मिलने का स्थान बन गया है ? [बायीं ओर से यकायक हाथमें कागज़ लिये रोषावेग से पूरित मायावती का प्रवेश]

माया—मुझ से यह न सहा जायगा । अरे अब तो हद हो गई ।

अम्बालाल—क्यों ? क्या है माया ? [पुष्पा जल पात्र उठाकर फूलों को पानी देने चली जाती है]



जलपात्र लेकर पुष्पा फूलों को पानी देने जाती है

माया—देखो तुम्हारा अनूपराय बिना किसी सूचना के ८-१० आदमियों को लेकर मेरे कमरे में घुस आया है।

अम्बालाल—अच्छा तो फिर इस में क्या हुआ?

माया—पूंछते हो क्या हुआ? मैंने पूरी तरह से ड्रेसिंग भी नहीं किया हुआ था।

अम्बालाल - जब तुम भली प्रकार जानती हो तो इस समय तक पूरी तरह से ड्रेसिंग क्यों न किया था?

माया—वाह खूब कहते हो। अपने घर में भी किसी तरह चैन नहीं लेने देते हो। मैं आज तक एकान्तमें शान्त चित्त से एक शब्द भी नहीं लिखने पाई हूं।

अम्बालाल—एक शब्द के लिये एकान्त? किस लिए चाहती हो?

माया—मैं छोटे छोटे नाटकों की ढव से कुछ लिखना चाहती हूँ।

अम्बालाल—माया। बहिन! यह तुम्हारा काम नहीं है। तुम घर सम्भालो। यदि पुष्पा न होती तो प्रभु जानते हैं इसकी दशा क्या हो जाती?

माया—मुझे गृहकार्य अच्छे नहीं लगते और न मुझ से होते ही हैं। आप बतायें क्या कवि न्हानालाल और सरोजिनी नायडू घर संभालते हैं?

अम्बालाल—हरे! हरे! हरे! तुम अपने आपको सरोजिनी नायडू समझती हो? बहिन माया! देखो इस बात को मत भूलो कि तुम इस घर में सब से बड़ी स्त्री हो, घर की मुखिया और स्वामिनी हो।

माया—सो केवल गदहों की तरह काम करने के लिये। क्यों?

अम्बालाल—सौ सेवकों के होते हुए भी तुम्हें गदहा ही बनना पड़ा? घर का काम तुम स्वयं नहीं कर सकती हो परन्तु देख रेख तो रखनी चाहिये। सचमुच कवि न्हानालाल ने तुम्हें सिर चढ़ा रक्खा है और रवीन्द्र बाबू ने मधुरी को पागल बना छोड़ा है इस लिये समस्त घर का भार, इस विचारी बेबी पर रहेगा, क्यों?

पुष्पा—पिता जी! आप मेरी चिन्ता न कीजियेगा मुझे घर के काम बहुत रुचते हैं।

माया—और मुझे अखरते हैं। स्वभाव की भी कोई औषधि है?

अंबालाल—परन्तु तुम म० गांधी के वचन भूल गई हो.........

माया—अब बताओ, तुम पागल हो कि मैं? जहाँ देखो वहीं महात्मा जी का प्रमाण!

अम्बालाल—[रोष में] महात्मा जी तुम्हारे मन को भ्रमित करने वाले न्हानालाल से हज़ार दर्जे ऊंचे हैं! उन की ऐसी अवज्ञा..........

माया—मैं कहां करती हूँ? मैंने तो यही कहा है कि सब अपने अपने स्थान में शोभा देते हैं। म० गांधी राजनीति के विषय में एक हैं और राज्य शासन के विषय में गांधी का वाक्य भरत वाक्य है। परन्तु काव्य रचना में......[प्रेक्षकों के साथ अनूप का पुनर्प्रवेश]

पुष्पा—[उन्हें देख कर घबराती है] ओह !
[जल पात्र लेकर भाग जाती है]

माया—ओह ! फिर वही बला [सेठ अंबालाल उन में से प्रत्येक को सभ्यता से नमस्कार करते हैं]

अनूप०—चलो अब बाग में चलें वहाँ आप को प्रेम मन्दिर दिखाऊंगा ।

पारसी—वोह क्या होगा, भला ?

अनूप—आप देखेंगे तभी मालूम होगा । कहा तो यह जाता है कि रवीन्द्र बाबू ने उसे बनवाया था परन्तु अब तो सेठ के दामाद नरोत्तम दास का प्रयोगालय है । चलिये [सब बाग की ओर से उस में प्रविष्ट होते हैं । अमेरिकन महिला सेठ की ओर एक रुपया फेंक जाती है]



अमेरिकन महिला सेठ की ओर एक रुपया फेंकती है

अम्बालाल—हरे ! हरे ! माया ! देखा तुमने ! वह स्त्री मेरी ओर रुपया फेंक गई है। तुम्हारा क्या विचार है, उसने किस लिये फेंका होगा ?

माया—तुम्हें बंगले का नौकर समझ कर इनाम दिया होगा।

अम्बालाल—[मान हानि मान कर] लोक-

प्रिय बनने के लिये उदार बनने का यह परिणाम !

मायावती—[क्रोध से] यह तो अभी कम है। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह बंगला अब तक तुम्हारे हाथ में क्यों रह गया है ? (बाग में से मोती मणी आते हैं, यहां लोगों को देख कर उल्टे पांव लौट जाते हैं) यह स्थान तो धर्मशाला से भी अधिक हीन हो गया है। यदि इन दर्शकों में से कोई सारा भेद ले जाय और रात को सोते हुओं को जान से मार डाले तो आश्चर्य ही क्या है।

अम्बालाल—जाओ। जाओ तुम व्यर्थ बातें बनाती हो। मैं तो सोच रहा हूं कि इसे विद्यापीठ के अर्पण कर दूँ।

माया—यदि ऐसा ही करना है तो देर क्यों करते हो ? जानते हो ! अधिक विलम्ब करोगे तो इस का एक भी कौच न बच रहेगा। यह देखो इस कौच की झालर किसी ने काट डाली हैं (दिखाती है) यह भी किसी गांधी का स्मारक चिन्ह लेने वाले का काम होगा। और मेज के खाने में कलम तो एक भी नहीं बचती।

अम्बालाल—शिव ! शिव ! यह तो हद होगई।

[नरोत्तम दास का प्रवेश]

नरोत्तम—[रोष से] कोई बतला सकता है कि यह एक घर है या रेलवे स्टेशन ?

अम्बालाल—परन्तु नरोत्तम ....

नरोत्तम—मैं आपको स्पष्ट कहता हूं कि यदि आज के पश्चात् किसी नेमेरे प्रयोगालय में पांव धरा तो मैं डाइनमाइट द्वारा पलभर में साफ मैदान करदूंगा।

माया—मैं अपने कमरे में अंदर से कल चढ़ा दूँगी।

नरोत्तम—मुझ से यह व्यवहार नहीं सहा जाता।

माया—इन का व्यवहार ऐसा है कि उलटी आती है।

अम्बालाल—सब को सन्तुष्ट करना कैसा कठिन काम है ?

नरोत्तम—परन्तु इस विधि से कोई सन्तुष्ट न होगा।

अम्बालाल—मुझे तो बहुत संतोष होता है।

माया—सो जाना हुआ है-

अम्बालाल—जिस समय मैंने यह बंगला खरीदा था, मुझे अपार आनन्द हुआ था। कई वर्षों तक मैं स्वप्नावस्था में महापुरुषों के संग रहता था, उनके निवास स्थानमें बसता था, परन्तु आज मैं यहां इस प्रकार निवास करता हूँ जैसे म० गांधी और रवीन्द्र का औरस हूँ। जहां वे शयन करते थे तहां सोता हूं, वे बैठते थे वहाँ बैठ कर निरन्तर बिचार करता हूँ ?

नरोत्तम—कैसे ?

अंबालाल—क्या आप स्वयं यह अनुभव नहीं करते कि यहां का वायुमण्डल ही भिन्न है ?

नरोत्तम—हाँ, पुराने खंडहरातों का सा दीखता है।

अंबालाल—क्या यहां की भीतों में से यश और महत्ता के झरने नहीं झरते ?

नरोत्तम—मेरी दृष्टि में तो चूना झड़ता नज़र आता है, और दर्शकों के बारंबार आने जाने में ज़हरीले जन्तु प्रविष्ट होते होंगे ?

अंबालाल—तुम चाहे कुछ कहो। परन्तु मुझे तो इन जन्तुओं द्वारा प्रजा को प्रेरित करने वाली धर्मोत्पत्ति नज़र आतीहै।

नरोत्तम—Microbes में से धर्म भी उत्पन्न होता है यह तो आज ही जाना है! हां, रोग उत्पन्न होते हैं सो कई वर्षों से जानता हूं।

अम्बालाल—[उसके वचन पर ध्यान न देकर एक कौच पर बैठ जाता है] जब मैं यह ध्यान करता हूं कि इस आसन पर जिस पर मैं बैठा हूँ कभी महात्मा जी बैठे होंगे............

नरोत्तम—अतः इस पर बैठना आपको सुखद प्रतीत होता है ?

अम्बालाल—यदि सुखद न हो तब भी क्या? परन्तु तब मैं यही समझता हूं मानो मैं विक्रमादित्य के राज्य सिंहासन पर बैठा हूं।

मायावती—[अम्बालाल का साथ देकर] हां देखिये इस मेज को! इस पर शायद कभी कवि न्हानालाल ने "गुणिदल गुजरात" इस रचना की एक पंक्ति लिखी होगी !

अम्बालाल—[माया को अपनी ओर देखकर] हां, देख यह टेबल! जहां किसी परम सिद्ध मनुष्यने अपनी अद्भुत साधना पूरी की होगी। इसे देखते ही क्या तुम्हें लेखनी उठाने का मन नहीं होता ?

नरोत्तम—किस लिये ?

अम्बालाल—काव्य रचना के लिये। देखो तो सही, माया अभी से लेखनी उठा कर लिखने भी लग गई है।

माया—[नरोत्तम को उत्तर का अवसर न देकर] हां! इसीलिये, इस घर को तुम अपने लिये या हम सब के लिये रहने दो परन्तु सब दुनियां को यहां आमन्त्रण देने की आवश्यकता नहीं है।

अम्बालाल—परन्तु यदि दुनियाँ मेरे सुख और ऐश्वर्य्य को जानने ही न पाये तो मैं किस प्रकार सुखी हो सकता हूं। सुख छिपाना स्वार्थपरता की पराकाष्ठा है।

माया—'स्नेहीजनसंविभक्तं दुःखमपि सह्यं भवति' यह तो कवि कह गये हैं परन्तु 'सर्वजनसंविभक्तं सुखमधिकतं भवति' यह आज ही सुना।

अंबालाल—[बाग में जीवराज को आते हुए देखता है] यह लो वैद्यराज आगये।

[जीवराज का प्रवेश]

नमस्ते अस्तु वैद्यराज!

(अपूर्ण)

प्रार्थना

लेखक—'गुलाब'

चले मत तुम योंही जाना ।

मैं अनाथ हूँ, विश्व विदित तुम हो नाथों के नाथ ।
मुझ अन्धे का तुम न छोड़ना अन्धे पथ में हाथ ॥

मुक्ति का मारग दिखलाना ।
चले मत तुम योंही जाना ॥ १ ॥

मेरी अश्रुभरी आंखों को देख विश्व—आधार !
कमल नेत्र से करुण-बहाना तुम आंसू की धार ॥

न हंसना देख म्लान बाना ।
चले मत तुम योंही जाना ॥ २ ॥

आ जावे यदि मधुर घड़ी यदि होवे रम्य प्रभात ।
तो उज्वल प्रकाश फैलाना मेरे जीवन ! तात !!

कुहासे से न दिवस छाना ।
चले मत तुम योंही जाना ॥ ३ ॥

मैं कविता बनकर यदि छेड़ूं विश्व विमोहन राग ।
नाच नाच तुम मुझे रिझाना ले अनन्त अनुराग ॥

मोह प्राणों में भर जाना ।
चले मत तुम योंही जाना ॥ ४ ॥

कांटेदार कठिन कानन के बीन धरूं यदि फूल ।
तो, न उन्हें मुरझाने देना करना स्वयं कुबूल ॥

फूल भक्तों पर बरसाना ।
चले मत तुम योंही जाना ॥ ५ ॥

फ़रेब—खयाल !

लेखक--श्रीयुत राजनारायण चतुर्वेदी 'आज़ाद'



मेरे ग़मगुसार दिल ! क़यामत तक मेरा साथ देनेवाले दिल ! तू इतना क्यों बेचैन है? तू क्या चाहता है ?······क्या कहा ? तुझे नहीं मालूम ! फिर इतना क्यों तड़फता है ? खुद भी परेशान होता है मुझे भी परेशान करता है। ठहर-ठहर ! ज़रा दम तो लेले। न मानेगा, तेरा तड़फना बन्द न होगा— तू मचलता ही जायेगा ! भोले भाले नादान बच्चे की तरह फैल मचाता ही जायेगा ? अच्छा मचा ! लेकिन याद रख ! तेरी ख्वाहिश कभी पूरी न होगी । तू रोयेगा और खूब रोयेगा। रोते २ तेरी हिचकियां बंध जायेंगी--तुझे तसल्ली देनेवाला कोई न होगा तेरे गुबार, तेरे अरमान, तेरी हसरत आंखों की राह आंसुओं के दरिया होकर वह निकलेंगे। तू उसमें गोते लगायगा, चन्द गोते खाकर डूब जायगा-तुझे कोई न बचा सकेगा--क्या कहा ? तू क्यों रोयेगा ? ठीक है ! क्यों रोयेगा ?

उफ़ ! बेचैनी ! ग़ज़ब की बेचैनी है! क्या करूं ? कहां जाऊं ? एक से एक प्यारी सूरतें इन्हीं नज़रों से गुज़र चुकीं हैं-कितनी ही दिल फरेब अदाओं की चोटें झेल चुकी हैं, कितने ही तीरे मिज़गां के तीर का निशाना बन चुकी हैं। कितनी ही प्रेमपूण कहानियां लिख डालीं, मगर ऐसी बेचैनी तो कभी नहीं हुई--ऐसे भाव तो कभी नहीं उभड़े।

आह ! तुझ पर क्या गुजरती है ? तू ही जानता है। दिल में तूफान उठ रहा है, दिमाग़ में जोर शोर से आंधी चल रही है, होशो हवास ने साथ छोड़ दिया-अक़्ल ने अलविदा कहकर रुख़सत ली। किसके लिये, एक रक्त और मांस के बने हुए पुतले के लिये ! छिः ! क्या वह तमाम उम्र ऐसा ही हसीन बना रहेगा ? क्या उन चिकने गुलाब को मात करने वाले रुखसारों पर झुर्रियां न पड़ जायेंगी ? क्या उस स्याह फ़ाम लहराती हुई जुल्फों पर सफेदी न छा जायगी ? क्या इस चन्दरोजा फस्ले बहार पर मौसिमे ख़िज़ां का दौरा न होगा ? अहले शबाब के फूल मुरझा कर हुश्न की डाली से गिर न जायेंगे ? याद रख ! वह फूल जिन पर तू जान देता है-जिनपर मर मिटने का दम भरता है। वह गर्दोगुबार आलूदा जमीन पर गिर कर बिखर जायेंगे--सरे राह पैरों के नीचे कुचले जायेंगे-क्या तुझे रंज न होगा ? क्या तेरे आंखों से दो बूंद आंसू न गिरेंगे ? क्या तू न रोयेगा ?

मेरे सरसब्ज़ गुलशन को बयाबान बनाने वालें, परिस्तान को कब्रिस्तान बनानेवाले, देवता को शैतान बनानेवाले दिल ! मुझपर रहम कर ! मुझे गुमराह मत कर ! मेरी नज़र उधर से मत हटा । जहाँ मेरे होशोहवास गये हैं वहीं इनको भी जाने दे ! दीवाने के पास इनका क्या काम ? मैं होशो हवास खोकर मजनूं बनूंगा-- घरबार छोड़कर सहरा की खाक छानूंगा-तेरी गली में आकर "हाय लैला" की आवाज लगाऊंगा, तू खिड़की खोलकर झांकेगा-मेरी हालत पर मुसकरायेगा--खिलखिला कर हंस देगा, मैं कलेजा थाम कर तेरे दर पर बैठ जाऊंगा--तू ठोकरें मारकर मुझे उठा देगा,

मैं सर्द आह मार कर तेरी तरफ हसरत भरी हुई निगाहों से देखता हुआ चल दूँगा। क्या तुझे मेरी जुदाई का रंज न होगा? तू न रोयेगा? हाँ हां क्यों रोयेगा?

फिर आया! मेरी आंखों के सामने फिर आया! क्या करूं? आखें बन्द कर लूं! यह क्या? तू फिर आगया! आखें बन्द कर लेने पर भी आगया--क्यों? समझ गया तू मेरे नजरों में समाया हुआ है--मेरे दिल में तसव्वर की तरह घुसा हुआ है। मेरे रग २ में बसा हुआ है--तुझसे छिपकर कहां जाऊं? आंखें खोलता हूं, तुझे देखता हूँ, बन्द करता हूँ तुझे पाता हूँ--सोता हूँ ख्वाब में तू नज़र आता है--तेरा तसव्वर चैन नहीं लेने देता। जिधर देखता हूं तू ही तू है!!

"सम्मोह"

लेखक--श्री० मार्कण्डेय पांडे

(१)

कैसे भूला जा सकता है, जिस को देखा अभी अभी।
अंकित है मम मन मन्दिर में, प्रतिमा सुन्दर सभी अभी॥
जब उस अतुलित चन्द्रप्रभा का, खिंच आताहै चित्र कभी।
होते नीर निमग्न नयन हैं, लग जाती झड़झड़ी तभी॥

(२)

तृण-शैया पर बन्दीगृह में, ध्यान लगाये सोया था।
दर्शन हित मम हृदय विचारा, जो खोल खोलकर रोया था॥
अर्ध-रात्रि निस्तब्ध समय में, देख रहा था स्वप्न विचित्र।
देवी के हा! नाममात्र से, खिंच आती है मूर्ति सचित्र॥

(३)

स्वप्नावस्थित देख रहा था, आई इक बाला मम पास।
उसके चिंतित-मुखपर सहसा, हुआ विलोकित कृत्रिम हास॥
स्वर्गिक मुख पर खेल रही थी, एक अनोखी शान्त मली।
सौम्यमूर्ति के अवलोकन से, खिल जाती थी हृदय कली॥

(४)

कांतार कुसुम की माला ले, मैं चला उसे पहिनाने को।
अन्तरधान हुई वह जननी, कहां कान्ति वह पाने को॥
मेरे कर्ण-कुहर में आया, मां ने जो ये शब्द कहे।
निद्रा टूटी शान्त हुआ पर, अब तक हैं वे गूंज रहे॥

\+ \+ \+ \+

स्नेह सुमन की माला होगी, जभी ऐक्य की डोरी में।
पहिनूंगी मैं उसे सुखी हो, स्वतंत्रता की लोरी में॥

वैज्ञानिक संसार

रबड़ का फर्श



एक लेखक का विचार है कि वह दिन शीघ्र आने वाला है जब कि रबड़ के फर्श का भी उतना ही रिवाज हो जायगा जितना आजकल रबड़ की जूतों की एड़ियों का है। गत तीन वर्ष से भिन्न २ प्रकार के रंगों के रबड़ के फर्श लगाने के स्लेट बनाये जारहे हैं जिन में राई के धागों की मात्रा बहुत कम करदी गयी है। इन को देखकर बहुत से लोगों को विश्वास होगया है कि यह कई प्रकार के मकानों में फर्श लगाने के काम आसक्ते हैं। रबड़ के साथ सीमैंट का मेल करने से ऐसा उत्तम फर्श तय्यार होता जैसा किसी भी अन्य पदार्थ से आजकल बनाया जाता है। इस में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं, सिवाय इस के कि आजकल के स्थायी फर्शों की अपेक्षा उस में आरम्भिक व्यय कुछ अधिक होता है। यह रबड़ की सीमैंट का फर्श एक बार लगा लेने से मकान की आयुभर पुनः लगाने की आवश्यकता न होगी। अनुमान किया जाता है कि दस वर्ष के भीतर २ अमरीका में १००, ०००, ०००, वर्गफुट रबड़ का फर्श प्रति वर्ष लगा करेगा।

मिश्र की पुरानी घड़ी

मानवजाति के प्राचीन इतिहास में कई स्थलों पर समय को ठीक २ नापने का इतना अप्रमत्त वर्णन आता है कि यह अनुमान सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में भी किसी न किसी प्रकार की घड़ियों का प्रयोग रहा होगा। हमारे ज्योतिष शास्त्र में घड़ी, पल इत्यादि शब्द समय की बांट के सूचक हैं। रेत घड़ी का विवरण तो हमारे बहुत से पाठक जानते होंगे। अब मिश्र देश की पुरानी दो जल घड़ियों का पता चला है जिसमें एक तो ३५सौ वर्ष पुरानी प्रतीत होती है, और दूसरी इससेभी पुरानी। पहली घड़ी में जल के एक रस बाहर निकलने से समय नापा जाता था और दूसरी में जल के भीतर आने से। दोनों में वर्ष भर के बारह महीनों दिन और रात के भिन्न २ परिमाण के अनुकूल बारह २ भिन्न भिन्न परिमाणमाला खुदी हुई हैं। इससे पता चलता है कि उन दिनों में घन्टा वर्ष के मास के अनुसार छोटा बड़ा होता था।

फांसी देने की नवीन रीति

नैवाड़ा, अमरीका में एक कानून पास हुआ था कि आगे को मृत्यु दंड साधारण रीति से फांसी पर लटका कर न दिया जाय वरन् किसी बिषैली गैस द्वारा शीघ्र से शीघ्र पीड़ा रहित तरीके से अपराधी के प्राण लिये जायें। इस कानून के अनुसार गत मार्च में सब से पहिला दण्ड मिला। अपराधी एक चीनी हत्यारा था। उसे एक ऐसे कमरे में बन्द कर दिया जिस में से जरासी भी गैस बाहर नहीं निकल सक्ती थी। अन्त में उस कमरे में हाईड्रोसायनिक गैस पहुंचाई गयी। भीतरसे अपराधी की अवस्था देखने के लिये

एक शीशों वाली खिड़की रखी हुई थी। कोई ६ मिनिट तक वह सिर पटकता रहा और इसके बाद शांत होगया। विज्ञानकी दृष्टि से विचार यह था कि मृत्यु के पीछे उसे पुनर्जीवित करने का यत्न किया जायगा। परन्तु वह समय जिस के पश्चात् मृत्यु गृहमें कोई अन्य व्यक्ति अपने जीवन को संकट में डाले बिना जा सकता था इतना लम्बा था कि यह प्रयत्न छोड़ना पड़ा। अपराधी को इस प्रकार दण्ड देने के फैसले के विरुद्ध अमरीका की सब से बड़ी अदालत में अपील की गई थी कि मृत्युदण्ड का यह तरीका अति निर्दय और अमानुषिक है। अदालत ने यह मानने से इनकार कर दिया कि पीड़ा रहित मृत्युदण्ड की एक रीति दूसरी से अधिक निर्दयी है और अपील खारिज कर दी।

क्या भूगर्भ-ताप हमारे काम आसक्ता है ?

ज्यों २ हम भूगर्भ के भीतर घुसते जायं गरमी बढ़ती जाती है। भिन्न भिन्न स्थानों पर ७० फुट से २५० फुट नीचे जाने पर ताप एक दर्जा बढ़ जाता है। मनुष्य पृथ्वी के ऊपर पांच मील तक ऊंचा चढ़ गया है। यदि वह पृथ्वी के भीतर भी ५ मील तक घुस सके तो तापके बड़े भारी केन्द्र में पहुंच जायगा। उसके मन में यह विचार अवश्य आयेगा कि इस ताप को पृथ्वी के बक्षस्थल पर किस प्रकार लेजाया जाय, जिससे कि वह मानवजाति के काम में आसके। अमरीका की खनिक समिति (Bureau of Mines) इस परिणाम पर पहुंची है कि यह विचार स्वप्न कोटि से बाहर नहीं निकल सकता। असीम खर्च कुछ बड़ी कठिनाई नहीं है। यद्यपि ५ मील गहरा गढ़हा खोदने में ५ करोड़ रुपये के लगभग खर्च होगा परन्तु कठिनाई यह है कि किसी भी भूगर्भ स्थित चट्टान में ताप की मात्रा, तापमापक-यन्त्र द्वारा आये हुये परिमाण के अनुसार नहीं, वरन् चट्टान की ताप-प्रवाहक शक्ति से परिमित है। इसको समझने के लिये जल का उदाहरण लीजिये। किसी भी पथरीली चट्टान में से कितना जल रिसरिस कर नीचे गिर सकता है इसका प्रमाण ऊपर रखे हुये जल की मात्रा अथवा दवाव पर निर्भर नहीं वरन् चट्टान में सूक्ष्म छिद्रों की नाप पर अवलम्बित है। इसी प्रकार चट्टान द्वारा कितने समय में कितना ताप निकल सकता है, समझिये। इस ताप की मात्रा बहुत कम है। यह पहिली कठिनाई है। दूसरी कठिनाई यह है कि ताप भूमि के ५ मील भीतर विद्यमान है, उसे ऊपर कैसे लाया जाय? एक विचार यह है कि ऊपर से लोहे के नलकों द्वारा पानी डाला जावे, ज्यों २ वह नीचे जायगा गरम होता जायगा--और फिर पानी से गरमी लेकर अन्य काम में लाई जासक्ती है। परन्तु पानी की यह गरमी हमें भूमि से पांच मील नीचे प्राप्त है, अतः हमारे किसी काम की नहीं। गरम जल को ऊपर लाते समय वह उसी वेग से ठंढा होगा जिस से कि वह नीचे जाते हुए गरम हुआ था और लौटकर आने पर हमें उतना ही ठंढा मिलेगा जितना हमने भीतर डाला था। यदि लौटने वाले लोहे के नल के को हम किसी प्रकार ताप के नष्ट होने से सुरक्षित भी कर सकें तब भी यह ताप हमें इतना महंगा पड़ेगा कि तब तक हमारे किसी काम का न होगा, जबतक हमें कोयले का ताप आजकल जितना सस्ता मिलता है उससे सस्ता न पड़े।

संगीत और पुष्प

संगीत और राग इस जगत में कोमलता और मधुरता, अतः आनन्द के एक रूप हैं। परन्तु ऐसे भी प्राणी हैं जिन्हें न केवल यही कि सङ्गीत से कोई प्रेम नहीं वरन् इससे वास्तविक घृणा है। कोमल माधुर्य्यमय सौन्दर्य्य का दूसरा प्रतिनिधि संसार के अनेक पुष्प और कुसुम हैं। सौन्दर्य्य सौन्दर्य्य को चाहता है, कोमलता कोमलता की आकर्षक है। जैसे को तैसा चाहता है यह संसार की एक परीक्षित बात है। सदाचारी सदाचारी से अथवा चोर चोर से घृणा करे यह बात संसार में देखी नहीं जाती। सौंदर्य लावण्य से, सुन्दरता रमणीयता से घृणा करे, क्या यह सम्भव है? आज हम अपने पाठकों को इस अनन्त संसार के अतुल भण्डार से एक ऐसी ही लीला का दर्शन कराते हैं।

अभी इन्हीं दिनों यह बात देखने में आई है कि कई प्रकार के ऐसे भी पुष्प हैं जिनको संगीत से बड़ी घृणा है। जहां पर दिन में कई घण्टों तक बराबर शब्द होता रहे, वहां के निकटवर्ती कोई २ फूल उस शब्द की आवाज़ से अपना मुख फेर लेने की आदत गृहण कर लेते हैं। Cyclamen और Carnation जाति के पुष्प संगीत से बड़ी बुरी तरह से प्रभावित होते हैं। एक स्थान पर जहां कि नृत्य-संगीत होरहा था इन पुष्पों से मण्डप सजाया गया था। कुछ घण्टे के पीछे देखा गया कि सब के सब फूलों ने जान बूझकर संगीत स्थान की ओर अपनी पीठें फेर लीं। उन का मुख संगीत की ओर फेर कर रखा गया, परन्तु थोड़ी देर पीछे उन्होंने इस ओर से फिर अपना मुंह फेर लिया। एक प्रकार का सफैद कमल का फूल होता है, उसने भी ऐसा ही किया। इस 'घृणा' का क्या कारण! अभी तक वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके।

हमारी मंजूषा

अलंकार तथा गुरुकुल समाचार— यह स्नातक मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुखपत्र अभी दो मास से सिद्धहस्त लेखक श्री० प्रोफेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के सम्पादकत्व में गुरुकुल कांगड़ी से प्रकाशित होने लगा है। वार्षिक मूल्य ३) रु० है। विदेश के लिये ४) है। श्रावण का अंक हमारे सामने है। इसमें रायल ८ पेजी आकार के ४ फार्म या ३२ पृष्ठ हैं। इस में ४ मनोहर भावपूर्ण कवितायें और ५ लेख हैं जिन में से 'शब्द शास्त्र तथा प्राचीन आर्यसभ्यता' नामक लेख, 'क्रांति करो पर शान्त बने रहे' नामक कविता विशेष रूप से पढ़ने योग्य हैं।

आर्य्यसमाज में इनेगिने ही पत्र हैं जिस पर आर्यभाषा की उच्च कोटि की मासिक पत्रिकायें अभी तक केवल दो ही थीं, एक ज्योति, दूसरा आर्य। अतः आर्य्यभाषा साहित्य की वृद्धि के लिये जितने भी उत्तम पत्र

हो उतना ही अच्छा है। हम सहयोगी 'अलंकार' का हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि सञ्चालक महोदय शीघ्र ही इस के आकार प्रकार इत्यादि उन्नत करके इसे आर्यभाषा का सचमुच अलंकार बनाने की चेष्टा करेंगे। आर्य्यजनता को इसे अवश्य मंगाना चाहिये।

परवार बन्धु—भारतवर्षीय जैन परवारसभा का मुख पत्र है। सम्पादक श्री पं० दरबारी लाल साहित्यरत्न न्यायतीर्थ हैं। पृष्ठ संख्या ५६, वार्षिक मूल्य टाइटिल पेज पर नहीं है। यह जबलपुर से दो वर्षों से निकलता है। आकार प्रकार अच्छा है। लेख और कवितायें भी उत्तम होती हैं।

आर्यजगत्—यह नया आर्य्यभाषा का साप्ताहिक पत्र अभी थोड़े दिन से ही लाहौर से आर्य्य गज़ट के सम्पादक ला० खुशालचंद जी के सम्पादकत्व में निकलने लगा है। वार्षिक मूल्य ४) यह आर्य्य प्रादेशिक सभा का मुख पत्र है।

प्राप्ति स्वीकार—

१. कल्पवृक्ष—वार्षिक मूल्य २॥) कल्पवृक्ष कार्य्यालय उज्जैन से प्रकाशित

२. वन्दे जिनवरम आणि राजहंस मराठी का मासिकपत्र मूल्य २॥) कृष्णजी रामचन्द्र लाटकर, वन्देजिनवरम् प्रेस बेलगांव से प्राप्त।

३. विज्ञापक—वार्षिक मूल्य २।) यह पत्र वड़ौदा की सुप्रसिद्ध जयदेव ब्रदर्स वड़ौदा द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

४. भूगोल—सम्पादक रामनारायण मिश्र बी. ए. वार्षिक मूल्य ३। यह सचित्र मासिकपत्रिका अभी तीन मास से मेरठ से निकलने लगी है। लेख भूगोल के विज्ञान सम्बन्धी ही रहते हैं। पत्रिका शिक्षित वर्ग के देखने योग्य है।

५. वीर—भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद का पाक्षिकपत्र है मूल्य २॥) मिलने का पता—राजेन्द्रप्रसाद जैन, प्रकाशक 'वीर' बिजनौर यू० पी०

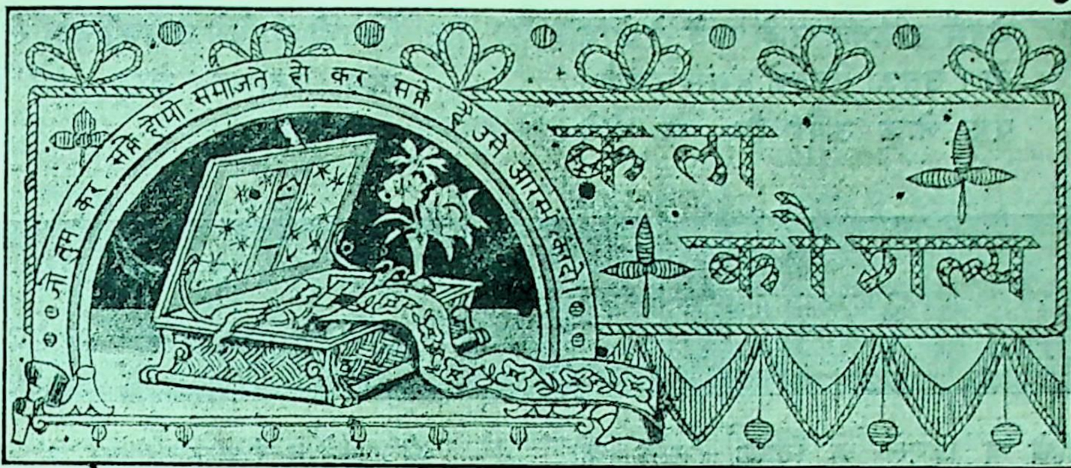
हमारे पास निम्न पुस्तकें भी बहुत दिनों से आई हुई हैं, किन्तु इनकी समालोचना अगले अंक में होगी, प्रेषक महोदय देरी के लिये क्षमा करें।

१. भाषा विज्ञान—रचयिता श्यामसुन्दर दास जी बी० ए०

२. उपयोगितावाद।

३. जातक कथामाला।





इलियन लेस

लेखिका—श्रीमती ओ३मवती देवी

संकेत:—चेन के लिए "चै" तेहरे क्रोशिये के लिए "ते" दोहरे क्रोशिये के लिए "दोहरा" सादा क्रोशिया="सादा" कंगूरा वा नोक

वस्तुएं:—खूब महीन तागे वा रेशम से ८ नं० के लोहे के क्रोशिये से यदि यह बीनी जाय तो बढ़िया २ कपड़ों के ऊपर लगानेवाली बड़ी सुन्दर लेस बनती है। केवल एक साथ न बनकर पहिले इसका एक ऊपर का हिस्सा टुकड़े २ बनाकर जोड़ लेते हैं फिर नीचे चार पंक्ति और बीनी जाती हैं और ऊपर २ पक्ति और बीनी जाती हैं तब लेस पूरी होती है।

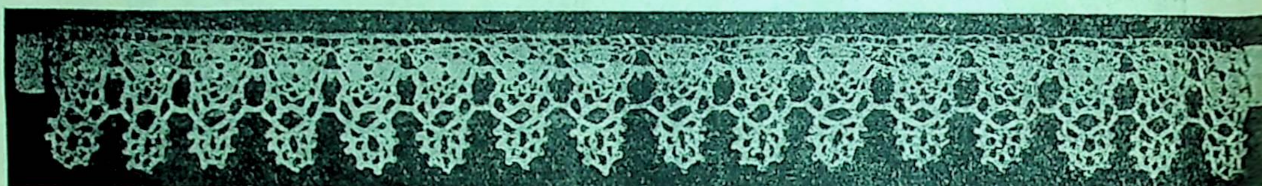
आरम्भ में ८ चेन करके एक सादा फंदा पहिली चेन में डालकर छल्ले के रूप में करो।

१ घेरा:—छल्ले के अन्दर बीनो, ३चे, पहिले ते के लिए, ५ते., ५चे., ६ते., ५चे., ६ते., ५चे., १ सादा. चेनों के सिरे पर जो तेहरे के स्थान में पहिले बीनी थी।

२ घेरा:—*१ दोहरा प्रत्येक तेहरे के ऊपर, ५चे., १ दोहरा चेन के छल्ले के बीच में ५चे., १ दोहरा उसी में, ५चे., १ दोहरा. तेहरे पर., इस * चिन्ह से बनाओ और अन्त में सादा फन्दा करके जोड़ दो।

३ घेरा:—*१ दोहरा, हर एक दोहरे पर जो झुंड में हैं, ५चे., १ दोहरा पहिले चेन के छल्ले में, ७चे., १ दोहरा अगले छल्ले में, ५चे., पिछला छोटा छल्ला छोड़ दो फिर उसी प्रकार * आरम्भ की तरह दोहरों पर दोहरे बीनो और घेरे को सादे फन्दे से जोड़ कर पक्की तरह सफाई से समाप्त कर दो, धागा तोड़ दो। यह एक तिकोना ऊपर का फूल तैयार हुआ। इसी प्रकार एक और बीनो और उनको पिछले घेरे में के ७ चेन के अन्तवाले छल्ले के आने पर ४थी चेन के साथ अगले फूल की पिछली ४थी

चेनमें डालकर सादे फन्दे से जोड़ दो। उनको चित्रके ढंगसे रक्खो। एक नोक ऊपर हो, दो नीचे जितनी चाहिये उसकी नाप से ऐसे फूल बनाकर जोड़ लो फिर आगे बीनो।



नीचे के हिस्से के लिए:—धागे को दाहिने हाथ की तरफ के पहिले तेहरे से जोड़ दो, ५चे., ५ दोहरे छोड़कर १ दोहरा बीनो पिछले में बीनो, ५चे., १ दोहरा पहिले छेदमें, ७चे, १ दोहरा. अगले में,७चे.,१दोहरा अगले में., ५चे १ दोहरा दोहरे पर ५चे., ४ दोहरे छोड़कर १ दोहरा पिछले दोहरे पर, ५चे., १ दोहरा दूसरे नमूने के दाहिनी तरफ के दोहरों के झुंड में के पहिले दोहरे पर, और फिर ऊपर बताई हुई के अनुसार सारी पंक्ति बीनो।

२ पंक्ति:-५ दोरे पहिले छल्ले में २ दोहरे १ कंगूरा (४ चेन करके सादा फन्दा दोहरे पर लौट कर बीनकर जो नोक सी बनती है) २ दोहरे दूसरे छल्ले में, ३ दोहरे, १ कंगूरा ३ दोहरे ३सरे और चौथे छल्ले में, २ दोहरे, १ कंगूरा, २ दोहरे ५ वें छल्ले में ५ दोहरे बराबर बिना नोक अगले छल्ले में, ३ दोहरे, १ कंगूरा ३ दोहरे अगले छल्ले में जो कि दो फूलोंके नमूने के बीच में है और इसी प्रकार सारी पंक्ति हर एक फूल के ऊपर बीनो।

३ पंक्ति:-धागे को पहिले कंगूरे पर जोड़दो, ५चे., १ दोहरा अगले कगूरे में १० चे., १ दोहरा अगले कंगूरे में, ५चे., १ दोहरा अगले कंगूरे में, ५चे.; १ कंगूरा अगले नमूने के पहिले कंगूरे में, और इसी प्रकार सब कहीं दोहराओ।

४ पंक्ति:-५ दोहरे बीचवाले छल्ले से पहिले छल्ले में, बीच के छल्ले में पहिले ५ दोहरे, ६ कंगूरे (४ चेनो के) बीन कर एक सादा फंदा पहिले कंगूरे में डालकर सब ६ कंगूरों को एक छल्ले में बना लो, फिर ६ दोहरे और १० चेनोंवाले छल्ले में बीनो, लौटो। ५चे., १ दोहरा हरएक कंगूरे में बीनो, ५ चे., १ दोहरा १० चेन के छल्ले में के पहिले दोहरे पर लौटो। २ दोहरे १ कंगूरा, २ दोहरे, हरएक ५ चेनों के छेद में, ५ दोहरे फूल के अगले छल्ले में, ५ दोहरे दो फूलों के बीच में के छल्ले में, और इसी प्रकार हर फूल पर आरम्भ से दोहराओ। अब ऊपरके किनारे के लिए—धागा जोड़ कर २ चेन, २ छोड़ो, १ तेहरा सारी लेस पर।

२ पंक्तिः—३ दोहरे हर एक दो चेन के छेद में।

———

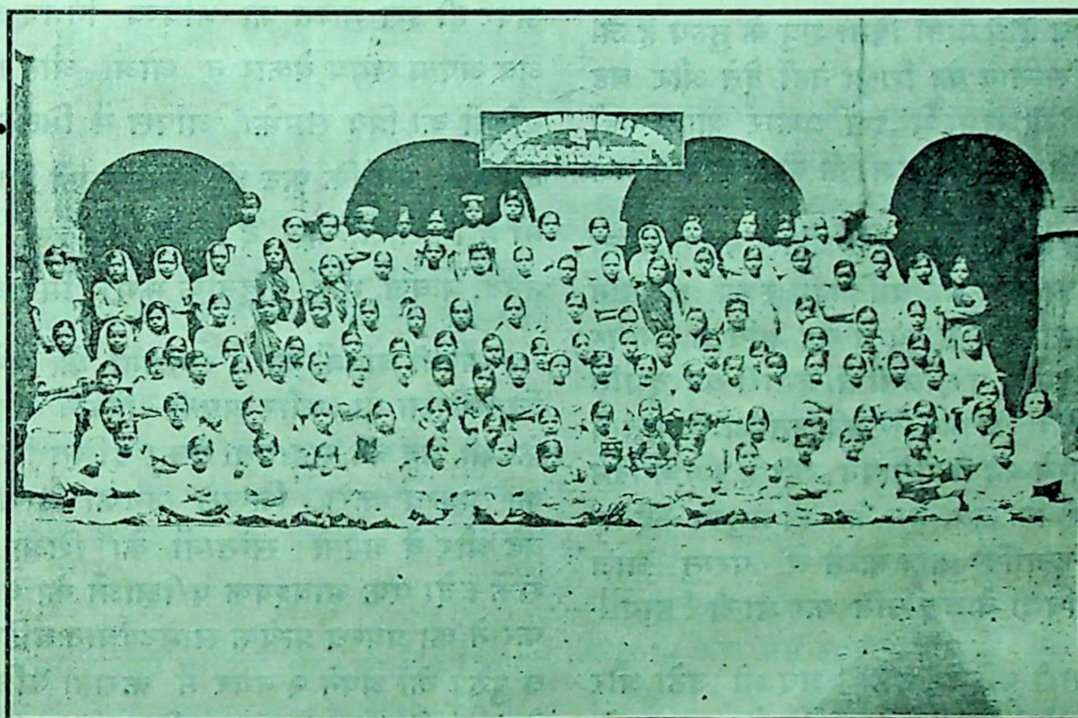
भारतीय महिलाओं का अपनी बहिनों के प्रति कर्त्तव्य

लेखिका—कुमारी शिवरानी देवी विदुषी



प्रायः देखा जाता है कि बहुत सी बहिनें अपनी प्रिय पुत्रियों को विद्या पढ़ाना उचित नहीं समझतीं और अगर विद्या पढ़ाती भी हैं तो अधूरी। केवल चिट्ठी पत्री लिखने के लायक। यह ठीक नहीं, क्योंकि इस अर्धशिक्षा से हानि के सिवा लाभ नहीं। वह ज्ञान धर्म और वेद शास्त्र की पुस्तकों को नहीं पढ़ सक्तीं और न यह समझतीं कि हमारा धर्म क्या है, उस की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिये।

चुकी हैं और अपना २ चमत्कार दिखला चुकी हैं। सीता महारानी, दमयन्ती, द्रौपदी, इत्यादि जिन्होंने राजसुख और सन्तान प्रेम को तिलांजलि देकर के अपने पति के साथ वनों में भ्रमण किया और अनेकों कष्ट भोगे। महारानी कौशिल्या और महारानी सुमित्रा कैसी २ शिक्षिता थीं, जिनके पुत्र उनकी शिक्षा से ऐसे २ आज्ञाकारी, यती, ब्रह्मचारी एवं बलवान् हुये जिन्होंने सहस्रों राक्षसों का वध किया और जिन की कीर्त्ति आज तक संसार में वर्त्तमान है और सर्वदा रहेगी।



गुजराती कन्या पाठशाला

वग़ैर पढ़े हुए उनको यह ज्ञात नहीं होगा कि हमारे भारतवर्ष में प्राचीन काल में कैसी २ शिक्षिता महिलायें पदार्पण कर

प्यारी बहिनो! अगर वे स्त्रियां ही शिक्षित न होतीं तो उनके पुत्र ऐसे तेजस्वी, यशस्वी, बलवान, और जगत-प्रसिद्ध किस प्रकार होते?

स्त्रियाँ अशिक्षित होने के कारण मैके में मा, बहिन, भावज और नौकर चाकर इत्यादि से लड़ाई झगड़ा किया करती हैं, और जब पति गृह को जाती हैं तो सास व ननद, देवरानी व पति तक से लड़ती हैं और उनकी बुराइयाँ लिख २ कर पिता के यहां भेजती हैं। जिसका परिणाम अति हानिकारक होता है। जब माता पिता सुनते हैं तो उनका हृदय भी दुःखी होता है और इधर भी यह ज्ञात हो जाने पर कलह होती है। परन्तु यह उनका अपराध नहीं है यह तो उन माता पिता का अपराध है जो शिक्षा नहीं देते, क्योंकि कहा है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथाः॥

सच है वे माता पिता शत्रु के तुल्य हैं जो अपनी सन्तान को शिक्षा नहीं देते और वह सन्तान भी सभा में इस प्रकार शोभा नहीं पाती जिस प्रकार हंसों के बीच में बगुला।

इस अविद्या ने हम पर किस कदर अपना प्रभाव डाला है, यह पाठिकायें स्वयं अनुमान कर सक्ती हैं। जो आज यह अविद्या हम पर अपना प्रभाव न डालती तो हमारी यह दुर्गति क्यों होती, कि अब पैर की जूती और सन्तान पैदा करने की मैशीन बन रही हैं। एक दिन वह था कि जब हम को ही मनुष्य—देवी लक्ष्मी इत्यादि कहा करते थे, परन्तु आज इस अविद्या ने यह गति कर डाली! हाय!

प्यारी बहिनो, उठो! अब भी उठो और चेत जाओ! शिक्षारूपी ज्योति को ग्रहण करो और आलस्यरूपी निद्रा के अन्धकार को त्याग दो। स्वयं विदुषी बनो और अपनी बहिनों को जो घोर अन्धकार में पड़ी हुई हैं, विदुषी बनाओ। प्यारी शिक्षित महिलाओ तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम अन्य देवियों के उपकारार्थ अपने २ नगर में स्त्रियों की एक सभा करो और उसमें स्त्री शिक्षा, मितव्ययता, बच्चों के पालन पोषण, उनकी शिक्षा और गृह सम्बन्धी विषयों को अच्छे प्रकार से सब उपस्थित महिलाओं को समझाओ। गृहस्थ आश्रम के अर्थ क्या हैं? इसमें कब पदार्पण करना चाहिये? और किस प्रकार रहना चाहिये? और हमारा परम धर्म है कि हम अपने पूर्वजों की सेवा करें—इत्यादि विषयों पर ऐसी शिक्षायें देनी, व ऐसे कार्य करने उचित हैं जिस से इस भारत की स्त्रियाँ सुधरें और यह भारत मिट्टी में न मिले, जो इस समय परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ रहा है।

प्यारी बहिनों! अब संभल जाओ, तुम्हारे ऊपर ही इस भारत का भविष्य निर्भर है। अब अपना समय बेकार न खोओ और सब बहिनों को प्रिय समझो, आपस में मिलजुल कर रहो, क्योंकि फूट ही आपत्ति की निशानी है। सास, बहू, देवरानी, जिठानी, व ननद, भावज, भाई, बहिनोंके झगड़े मिटाओ।

अपनी बहिनों को व सन्तानों को यथोचित शिक्षा दो—और अपनी निर्धन बहिनों को भी धन की सहायता देकर उचित शिक्षा का प्रबन्ध करो, जिससे उनका उत्साह बढ़े और वे अपनी सन्तानों को शिक्षा दे सकें। दो एक आवश्यक परीक्षाओं को पास कराने का प्रबन्ध प्रत्येक सामर्थ्यवान महिला व पुरुष को अपने २ नगर में कराना उचित है। इस विषय में "प्रयाग महिला विद्यापीठ" ने जो कार्य कर दिखाया है वह प्रशंसनीय है—वह दिन पर दिन उन्नति कर रही है और महिलाओं का उपकार करने में तनमन धन से तत्पर है—धनवान महाशयों का कर्त्तव्य है कि उसकी सहायता करें—

परन्तु केवल परीक्षा दिलवा देना ही हमारी प्रिय बहिनें को अपना मुख्य कर्त्तव्य न समझ लेना चाहिये, वरंच परीक्षा सम्बन्धी विषयें को पढ़ कर उन का प्रयोग भी करना उचित है। जब तक उनका प्रयोग न किया जायगा, तब तक सुधार नहीं हो सकता। जैसे—भोजन बनाने की विधि, कपड़ा सीने का गुण, इत्यादि किताबों से पढ़ कर प्राप्त कर लिया परन्तु जब तक हाथ से स्वयं न करेंगी, तब तक न कपड़ा ही सीं सकती हैं, न भोजन ही बना सकती हैं। यदि प्राप्त हुये ज्ञान से करें भी तो ठीक न होगा। उनके लिये गृह-सम्बन्धी पूर्ण विषयें व कार्यों का जानना परमावश्यक है। जैसे घर में मेल से रहना, घर का काम काज स्वयम् हाथ से करना, आय और व्यय का विचार करके प्रत्येक गृहकार्य करना। अपने सम्बन्धी और रिश्तेदारों का सम्मान करना, पूर्वजों की सेवा करना, किसी को कटु वचन न कहना, अपने से छोटें को प्यार से रखना, अपने घर और बच्चें को स्वच्छ रखना, और उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना, स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयें पर ध्यान देना, भोजन इत्यादि का ठीक समय पर तय्यार करना, अपने कुल के व समाज के नियमें का पालन करना, इत्यादि, यह ऐसे कार्य हैं जिन पर कटिबद्ध न रहने से कुल में कलङ्क का टीका लगता है।

हमारी प्रिय बहिनें को उपरोक्त गृह-सम्बन्धी शिक्षा अवश्य देनी चाहिये। शिक्षा-रूपी दीपक तम रूपी रात्रि के लिये रवि का काम देती है।

शोक है कि भारतीय महिलायें अशिक्षित होने के कारण उन्नति नहीं कर सकतीं। अगर इनको शिक्षा दी जावे तो यह पुरुषों से शीघ्र और अधिक शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। अबतो वर्तमान समय में हमारी बहिनों का केवल इतना ही कर्त्तव्य समझा जाता है कि रूखा सूखा, मोटा झोटा भोजन तय्यार कर दें और टहलवे की तरह दिन रात घर का काम करती रहें, और सास ननद की झिड़कियां सहती रहें, और गहने कपड़े में मस्त घर की चार दीवाली के अन्दर छिपी बैठी रहें, बाहर की हवा न लगे। परन्तु इनकी यह पदवी नहीं, शास्त्रों में, वेदों में इन को गृहलक्ष्मी, देवी कहा है और वास्तव में यह लक्ष्मी हैं ही, इनका सत्कार करना उचित है--देखिये 'मनु'जी ने कहा है:-

जिस घर में नहिं होत है, नारिन को सत्कार।
कहत मनु निज शास्त्रमें, सो घर होत उजार॥

इसलिये इनका आदर करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। और इनके वह बड़े कर्त्तव्य हैं जो एक सच्चे प्रतिपालक के होने चाहिये। अपनी प्रजा को सुखी व अमन चैन से रक्खे और उसका समुचित सुधार करें, इत्यादि।

मैं आशा करती हूँ कि मेरी प्यारी बहिनें मेरे इस विषय पर अवश्य ध्यान देंगी और इस से कुछ लाभ उठावेंगी, ताकि हम अभागी बहिनों में शिक्षा का प्रचार हो। अविद्यारूपी तम का शिक्षारूपी रवि से नाश हो और हम सब महिलायें स्त्री शिक्षा पर ध्यान देकर, सुशिक्षिता होकर देशोद्धार करें। प्राचीन महिलाओं की तरह विदुषी बनें और अपनी सन्तान को ब्रह्मचारी व शिक्षित बनावें।

———

" कान्हा "

लेखक—श्री बलवन्तराय सचदेव लाहौर

(अप्रेल के अंक से आगे)

मेरी पांचवीं की परीक्षा में भी तीन महीने रह गये। माता ने फिर मुझे दिल्ली भेजा कि बहू को ले आवे। मैं अपने पिता के साथ दिल्ली गया और कान्हा को लिवा लाया। इस एक वर्ष में मैं तो शायद ही बढ़ा हुआ हूंगा परन्तु कान्हा आगे से भी दूनी मालूम देने लगी और उसका मुख गुलाब की तरह खिल उठा। कान्हा को आये एक ही महीना हुआ होगा एक दिन रात को मेरी माता को बुखार हो गया और साथ ही खांसी आने लगी। भाग्य में दुख और शोक तो था ही कोई पांच रोजके बुखार में ही मेरी माता का स्वर्गवास हो गया। जिस समय वह मरीं, मैं उसके साथ चिपट कर बावलों की तरह "माता जी" "माता जी" कह कर पुकारने लगा परन्तु वहां सुन कौन रहा था? मृत्यु से दो दिन पहिले शाम को जब मैं उनके पास गया था, तब उन्होंने मुझे पास लिटा लिया था और थोड़ा हंस कर प्यार किया था।

मैं उन की गोद में बैठना चाहता था परन्तु उन को कहीं कष्ट अधिक न हो जावे इस लिये न बैठा। हाय! मैं व्यर्थ ही डरा, गोद में भी न बैठ सका! कुछ तो सुख मिलता! कुछ तो धीरज होता! उसके बाद वह फिर न हंसी। आज वह बिल्कुल सफेद हो गई थीं। आंखें आधी बन्द थीं—सांस नहीं था—शरीर गर्म था। हाथ पैर नर्म थे—कान्हा रो रही थी और स्त्रियां भी रो रहीं थीं। पिता जी दौड़े दौड़े गये, डाक्टर को बुला लाये। दांत निकाल कर गिड़गिड़ा कर उनसे प्रार्थना की कि—" डाक्टर साहिब। फीस चाहे जो लो पर इन्हें एक बार अच्छी तरह देख दो क्या यह बेहोश हो गयी हैं? शरीर देखिये कितना गर्म है?" डाक्टर ने करुणा दृष्टि से उनकी ओर देखा। और प्रेम से उनके कन्धे पर हाथ धर कर कहा—"मर्द हो मर्द की तरह विपत्ति में धैर्य धरो। व्यर्थ की आशा और मृगतृष्णा को छोड़ दो। यही भगवान की इच्छा है और वह पूरी हुई।"

मेरे हाथ पांव फूल गये। दिल बैठ गया, और मैं पागलों की तरह कान्हा के कन्धे का सहारा लेकर रोने लगा। पिता ने आवाज करारी बनाई रखी—आँसू भी नहीं गिरने दिये पर उनका भी मन नीचे को धंसने लगा। और वह धड़क से चारपाई पर गिर पड़े॥

इतना कहकर महेन्द्र खूब ज़ोरसे रो पड़ा।

रघुः—महेन्द्र माता की याद से रोना तो आता है, परन्तु भाई रोओ मत, कहो आगे बात क्या है जो तुम्हें आज कल दिन रात सोच में डाले रहतो है।

मैंः—नहीं रोता कहाँ—हूं—बात ही तो सुनाता हूं। माता की मृत्यु के बाद हम घर में सारे ही बहुत उदास रहा करते थे। पिता जी ने तो अपना कमरा दूसरी छत पर बना रखा था और वहीं दिन रात बैठा करते थे। मेरी परीक्षा में अब एक ही महीना रहता

था। पिछले दो महीने न तो मैं पढ़ा ही था और न स्कूल ही गया था, इस लिये मुझे गणित अच्छी तरह नहीं आती थी। मैंने घर पर पढ़ाने वाला एक मास्टर नियुक्त किया था। इन घर वाले मास्टर जी का नाम मंगलदास था, आयु इनकी कोई चौबीस पच्चीस वर्ष की होगी, एफ ए. पास थे डील डौल से भी अच्छे थे। मुझे सात रुपये महीने पर एक घंटा रोज पढ़ा जाया करते थे।

एक महीने में मैं ने परीक्षा के लिये तैयारी कर ली और परीक्षा दे दी। पास हो जाने के बाद जब मैं छठी कक्षा में हुआ तो पढ़ने लिखने में किसी से कम न था।

एक दिन प्रातः के समय मंगलदास मेरे पिता को मिलने आया और मिलने के बाद उसी दिन से फिर मुझे पढ़ाने लगा। मैंने उस दिन तो पढ़ लिया परन्तु रात को पिता जी से कहा कि मंगलदास के पढ़ाने की अब मुझे कोई आवश्यकता नहीं लेकिन उन्हों ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया कि बेटा सात रुपये की तो बात है। अच्छा है जो तुझे वह एक घंटा पढ़ा जाया करेगा।" मैं चुप हो गया और नीचे चला गया।

अब वह मुझे रोज रात के समय पढ़ा जाता था, परन्तु रघु क्या कहूं लज्जा आती है। होंठ फड़क उठते हैं। यह महल, यह ठाठ, यह नौकर चाकर सब मानों कान्हा के लिये तुच्छ थे। बस और क्या चाहती थी। मंगलदासको देखते ही हंसती थी, घुल घुल कर मेरे सामने ही उसी से बात करती थी जैसे वह उसी का सगा था। इज्जत आबरु सब कच्चे धागे में बन्धे लटक रहे थे और वह कच्चा धागा उसीके हाथमें था। कान्हा ने इस बात को न जाना और लगी इस कच्चे धागे को दोनों हाथों से तोड़ने।

मास्टर साहिब की क्या कहूं मुझे तो सवाल निकालने को देदेते और आप कान्हा के साथ बात आदि करने में लगे रहते थे। पढ़ना तो एक घंटा होता था परन्तु आजकल एक क्या दो दो घंटे बैठे रहते थे। मैं अभी तक बुद्धू का बुद्धू ही था, और बिना समझे बूझे उनके प्रेमालाप में कभी कभी शामिल हो हंस भी देता था। वह मुझे तो अवश्य ही खुश रखते थे। और जब कभी मैं लम्बा सवाल निकालने बैठता था तो वह दोनों हंसते हंसते दूसरे कमरे में भी चले जाया करते थे। रात का समय होता था, नौकर चाकर आदि सब घर से बाहर हमारे घर के पास ही छोटे बने हुए घरों में रहते थे। मेरे घर में प्रेम सरोवर लहरें मार रहा था। उस समय मैं प्रेम का कंगाल नहीं था—वह प्रेम नहीं पाप था, तब मैंने पाप की परवाह न की। मैंने उसे देख कर भी न देखा और वे समझ गधे की तरह जानकर भी न जाना, परन्तु आज उसे सोचकर भी कांप उठता हूँ?

मैं एक श्रेणी और आगे बढ़ा और सातवीं श्रेणी की हवा खाने लगा। इन्हीं दिनों में कान्हा का भाई आया और कान्हा को दिल्ली लिवाले गया। मास्टर साहिब तो आजकल भी आया करते थे परन्तु उनका मुख कभी कभी उदासीनता की झलक अवश्य ही दिखा देता था। आजकल वह एक ही घंटा पढ़ा कर चले जाते थे, उस एक घंटे में भी वह आधा घंटा कान्हा की बातें करते थे। कान्हा को गये कोई तीन महीने हुए होंगे। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस दिन रविवार था। स्कूलसे छुट्टी थी मेरे पिता नीचे आये और मेरे ससुर का पत्र हाथ में ले कर के खुशी से बोलेः—"पुत्र बधाई हो तेरे घर बेटा उत्पन्न हुआ है"। मैंने सिर नीचे कर लिया। परन्तु यह मालूम नहीं क्यों?

पिता जी ने लड्डुओं के कितने ही टोकरे मंगवाये और पानी की तरह लोगों के घरों में बहा दिये। उस दिन जब मंगलदास पढ़ाने को आया तो पिता ने कहा "आज महेन्द्र को मत पढ़ाइये, आज खुशी का दिन है, लीजिये लड्डू खाइये, महेन्द्र के घर लड़का हुआ है।"

यह सुनते ही मास्टर साहिब चुप कर गये और कुछ सोचते हुवे बनावटी सी हंसी हंस दी।

कान्हा आपने मायके से तीन महीने के बाद आई, क्योंकि बच्चे के जन्म के बाद उसे कुछ बुखार रहता था। वह अब दुबली थी। मंगलदास से अब इतना हंसहंस के बातें नहीं करती थी जितना कि पहिले—परन्तु बातें आदि होतीं अवश्य थीं।

मैं अब आठवीं में हुआ इसी वर्ष मेरा कद्द आदि भी बढ़ गया, दुनिया की हवा भी मेरे ऊपर असर करने लगी और इन्हीं दिनों पण्डित जी ने हमें स्कूल में बताया के ब्रह्मचर्य आश्रम और गृहस्थआश्रम क्या हैं। मैंने पंडित जी से एक पुस्तक पढ़ने के लिये इस बारे में ली और उस में लिखा हुआ खुलासा हाल पढ़ा। गृहस्थाश्रम के पढ़ते ही मेरा दिल हवा होने लगा बार बार बिचार आया कि "यह बेटा मेरा २ कह कर पुकारते हैं कैसे हुआ ?" मैंने वह पुस्तक पडितजी को वापिस करदी। इस वर्ष में रघु! मैं क्या कहूं मैं तो बिलकुल ही बदल गया था। जितना बेवकूफ होता था उतना ही चालाक हो गया। अब मंगल ने मुझे पढ़ाना ही क्या था, उस का मुंह देखते ही मेरा कलेजा उबल उठता था परन्तु पिछली बातों का स्मर्ण आते ही मेरे होश गुम हो जाते थे।

एक दिन मंगलदास मुझे पढ़ाने को आया, अलज़बरे का सवाल निकालने को दिया। सवाल देते ही आप साथ वाले कमरे में चले गये जहां कान्हा बच्चे को सुला रही थी। कान्हा ने मुझे द्वार के पीछे बातें सुनने के लिये खड़ा होते देख लिया था, इसलिये वह घबरा उठी और मंगलदास को वहाँ से जाने को कहा, परन्तु उसने मुझे नहीं देखा था, वह वहीं बैठा रहा और लगा प्रेम वार्त्तालाप बातें करने। ज्यों ज्यों वह बातें करता था त्यों २ कान्हा का मुंह फीका पड़रहा था। कान्हा की रोनी सी सूरत बन गई और वह बच्चे को उठा पिछले दालान में चली गई। मंगलदास कुछ देर तो उस के मुंह की तरफ देखता रहा परन्तु पीछे निराश हो कर फिर वापिस लौट आया। मैं भी झट वहां से हट कर कुर्सी पर आ बैठा।

उस दिन मैं ने किसी न किसी तरह गुस्से को रोक कर घंटा व्यतीत कर दिया। परन्तु ज्यों ही मंगलदास घर से बाहर हुआ मैं दौड़ा हुआ पिता जी के पास गया और इधर उधर की बातों में मैंने कह दिया कि मंगलदास का हिसाब ठीक कर दीजिये क्योंकि मैं अब उससे पढ़ना नहीं चाहता। पिता जी ने फिर ज़ोर देकर कहा—बेटा सात रुपये की तो बात है कुछ उससे भी पढ़ लिया कर। मैं ने उत्तर में कह दिया कि मुझे अब मास्टर की बिल्कुल आवश्यकता नहीं और न ही मैं उन से घर पर पढ़ूंगा। बस क्या था, छुट्टी हुई। जितना नहाए उतनाही पुण्य काफ़ी था। पिता जी ने मुझे हठ करता देख मेरी बात मान ली और दूसरे ही दिन उसको वेतन दे बिदा किया। अब कान्हा की सुनो। वह दालान से तब वापिस आई जब मगलदास मेरे कमरे से बाहिर हुआ। आते ही सीधी रसोई में चली गई और मैं ऊपर पिता जी को मिलने गया, मैंने तो उस दिन भोजन कर लिया परन्तु कान्हा ने भोजन को खाना क्या? छूआ तक भी नहीं। (अपूर्ण)

कन्या गुरुकुल समाचार

गत मास से यहां पर गर्मी का प्रभाव बहुत घट गया है प्रायः दो चार दिन बाद वर्षा होती रही है इस कारण वायु ठंढी ही रही है। कोठी की छत्तों पर ब्रह्मचारिणियों तथा कार्य्य कर्त्रियों के विस्तरों की पंक्तियां बहुत शोभायमान थीं विशेषतः चांदनी रात्रियों में। परन्तु वर्षा के आगमन पर उन लोगों का विस्तरे उठा कर अर्ध सुप्त अवस्था में उठ कर जाना भी गुरुकुलमें बड़ी सनसनी फैलाता रहा है।

गत दो मास में कोई ब्रह्मचारिणी दीर्घ रोगी नहीं हुई प्रायः सभी स्वस्थ रही हैं। परन्तु परस्पर में असावधानी से खेल कूद करते हुये एक दूसरे को धक्का देदेने से एक ब्रह्मचारिणी के बांह की हड्डी टूट गई थी किन्तु उसी समय इलाज शुरू होगया और अब वह बांह प्रायः ठीक ही है।

ब्रह्मचारिणियों के तौलने की मशीन भी प्राप्त हुई है अतः आषाढ़ मास में इन सबकी तौल की गई है।

पिछले दिनों में बकरीद पर कई दिनों तक हिन्दू मुसलिम वैमनस्य के कारण शहर में बड़ा भीषण दृश्य होता रहा है जो सभी समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। उन दिनों में कन्या गुरुकुल में परमात्मा की कृपा ही रही। यद्यपि अनिष्टकी आशंका दिन रात बनी रहती थी और गुरुकुल के प्रेमियों को इसकी रक्षा के लिये बड़ी चिन्ता रहती थी, अतः यहां पर दिन रात स्वयं सेवकों का दल रक्षा करता रहता था, तथापि गुरुकुलवासिनी देवियों में भय का संचार नहीं था। इसी दुर्घटना की आशंका से ही कन्या गुरुकुल में टेलीफोन भी लगवाया गया और शस्त्रधारी सेवकों के लिये शस्त्र प्राप्त कर लेने का भी यत्न किया गया।

टेलीफोन

कन्या गुरुकुल में हर एक नई बात बड़ी सनसनी फैलाने वाली होती है चाहे कितनी ही छोटी हो। जिस दिन यहां पर टेलीफोन आया उसी दिन से लड़कियों के लिये एक नया तमाशा उपस्थित होगया। एक तो इन दिनों टेलीफोन का उपयोग भी अधिकता से होता था दूसरे नई चीज़ थी। घंटी हुई और कन्यायें तमाशा देखने उपस्थित हुईं।

कार्य्यकर्तृ देवियों में न्यूनता

गत मास में यहाँ कई स्थान रिक्त हुये जिनकी पूर्ति अभी तक नहीं हुई है। श्रीमती चन्द्रवती जी अध्यापिका ज्वर से पीड़ित हो कर एक मास के अवकाश पर जासपुर चली गई थीं वह १५ अगस्त को आवेंगी। श्रीमती रमादेवी भंडारिन एक मास की छुट्टी पर घर गई थीं वह भी दो चार दिन में आने वाली ही हैं। कुमारी सुमित्रा देवी तथा सुभद्रा देवी जी अध्ययनार्थ जलन्धर विद्यालय चली गई हैं। कई देवियों के कार्य करने के लिये प्रार्थना पत्र आये हुये हैं आशा है कि रिक्त स्थान की शीघ्र ही पूर्ति हो जावेगी।

बृहद्वकाश

कई संरक्षकों के पत्र पर पत्र आरहे हैं कि लड़कियाँ छुट्टियों में घर जा सकेंगी या नहीं। यह सूचना उनको कई बार दी जा चुकी है अब फिर भी दी जाती है कि कन्यायें छुट्टियों में घर नहीं जा सकेंगी। पहिले १४ जुलाई की छुट्टियों में देहरादून भेजने का विचार था, कोठी भी किराये की ली हुई थी परन्तु डाक्टरों की सम्मति यह थी कि मलेरिया में कन्यायें लौट कर यहां न आवें, अतः पीछे ही जावें। इस सम्मति का आदर करते हुये यही निश्चय था कि १५ अगस्त को कन्यायें देहरादून जावेंगी। परन्तु पिछले दिनों दिल्ली की दुर्घटनाओंके कारण कन्यागुरुकुलमें जो विशेष प्रबन्ध करना पड़ा उसको दृष्टि में रखकर प्रबन्धकर्ताओं की सम्मति यह हुई कि यतः इन्होंने १५ अगस्त को जाना ही है अतः इन्हें अभी भेज दिया जावे। इस फैसले के अनुसार ब्रह्मचारिणियां २८ जुलाई को देहरादून चली गई हैं।

यात्रा में कौन २ गई हैं।

विदेश यात्रा दो दिन के लिये भी करनी हो तो प्रत्येक मनुष्य को कुछ तैय्यारी करनी ही पड़ती है फिर यहाँ पर लग भग एक सौ देवियों की यात्रा थी। ४, ५ दिन तक कपड़े विस्तरे समान आदि ठीक होता रहा और गुरुकुल की कार्य्यकर्त्री देवियों के लिये यह दिन बहुत कार्य्य के थे। ब्रह्मचारिणियाँ यात्रा की खुशी में फूली नहीं समाती थीं। जहां देखो यात्रा की ही चर्चा हो रही है। प्रायः सभी लोग हर्ष से उत्साहित थे। नौकर चाकर सभी उत्सुक थे। कन्याओं के साथ उनकी प्रधान अधिष्ठात्री तथा अन्य सभी अध्यापिकायें और कर्मचारी गण गये हैं केवल आचार्य्यों और उनके साथ दो पुपिल टीचर जिन्होंने विशेष परीक्षा की तैय्यारी करनी है रह गयीं हैं। देहरादून में बाहरी प्रबन्ध के लिये गुरुकुल कांगड़ी से वहां के कार्यालयध्यक्ष श्री अमरनाथ सप्रू जी भेजे गये हैं और सब भांति उत्तम प्रबन्ध रखने का यत्न किया जारहा है।

पत्र व्यवहार

कई संरक्षकों के पत्र देहरादून का पता जानने के लिये गुरुकुल कार्यालय में आ रहे हैं। इन संरक्षक महाशयों तथा सब लोगों की सूचना के लिये यह बतलाना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि जिन लोगों को अपनी कन्याओं के सम्बन्ध में कुछ विशेष सूचना लेनी हो वह देहरादून के पते पर पत्र व्यवहार न करें वरन् पहिले की तरह यहीं कन्या गुरुकुल के पते पर ही करें। यहीं के कार्यालय से उन्हें सूचनायें मिल सकेंगी। यहीं पर शुल्क इत्यादि भी भेजते रहें क्योंकि कार्यालय विभाग यहीं पर है।

शुल्क

कन्या गुरुकुल कार्यालय में कई पत्र कन्याओं के शुल्क कम करने या सर्वथा मुक्त करने के सम्बन्ध में आये हैं। हमें बड़ा दुःख है कि गुरुकुल के पास अभी तक कोई निधि इस अंश की पूर्ति के हेतु नहीं है, अतः हमें ऐसे प्रस्तावों को साफ़ इन्कार करना पड़ता है। आर्य्यजनता को चाहिये कि कन्याओं के लिये कुछ छात्र वृत्तियां निकालें ताकि इस प्रकार की त्रुटि पूर्ण हो सके। गुरुकुल की सभा ने तो वर्तमान ८—६ मास के आय के अनुमान से यह निश्चय किया है कि मासिक शुल्क ११) से १५) कर दिया जाय और कन्याओं को वस्त्र पुस्तकें इत्यादि यहीं से देनी चाहिये। प्रस्ताव देर से पास होचुका है

परन्तु अभी तक उस को प्रयोग में नहीं लाया जा सका। अब शीघ्र ही यह सूचना सर्क्यलर पत्र के रूप में संरक्षकों के पास पहुंचेगी और कम से कम आगामी प्रवेश की तिथि से यह नियम अवश्य लागू होगा।

आगामी प्रवेश कब होगा।

आगामी प्रवेश की तिथि अभी तक निश्चित नहीं है किन्तु जनता के सन्तोष के लिये इतना कहा जा सकता है कि नवम्बरसे पूर्व प्रवेश न हो सकेगा। कन्या गुरुकुल का वार्षिक उत्सव मनाने की जो तिथि निश्चित होगी उसी के साथ ही प्रवेश की तिथि होगी अतः अभी तीन महीने तक धैर्य्य धारण करें।

आगामी प्रवेश में आयु का प्रश्न

यद्यपि सभा के विशेष नियम के अनुकूल प्रारम्भमें गुरुकुल में ११ वर्ष या कुछ ऊपर की कन्यायें भी प्रविष्ट कीगई थीं तथापि आयु का नियम अब प्रति वर्ष शिथिल नहीं होगा। अतः ८-६ वर्ष से ऊपरकी कन्याओं के संरक्षकों को चाहिये कि प्रार्थना पत्र भेजकर कन्याओं को अवश्य प्रविष्ट कर लेने के लिये बाधित करने का कष्ट न उठावें, किंतु सभा के नियमों का पालन करें और नियम पालन करने का ही आदर्श रक्खें। यदि गुरुकुल की आयु से ऊपर कन्या हो चुकी है तो उसके शिक्षण के प्रवन्ध का भार स्वयं ही उठावें न कि गुरुकुलको नियम भंग करनेका पाठ पढ़ावें।

—:o:—

विचार प्रवाह

ज्योतिका विशेषांक और आर्यसमाज।

ज्योति का विशेषांक जो कि कन्या गुरुकुल के अंक के रूप में गत मास निकला था उसके सम्बन्ध में हमारे पास कई सज्जनों के पत्र आये हैं। जिनमें से कई स्वयं पत्रों के सम्पादक भी हैं और प्रतिष्ठित पत्रों के। परन्तु आर्य्य समाजी नहीं। इस से ज्ञात होता है कि ज्योति का विशेषांक आर्य्यसमाज से बाहिर कुछ दिलों को अपनी ओर खींचने की शक्ति रखता है। परन्तु खेद है कि इनी गिनी दो चार समाजों को छोड़कर किसी भी समाज ने इस के लिये विशेष रूप से आर्डर नहीं भेजे। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य समाज में अपनी चीज़ की क़दर करने की आदत है ही नहीं। हम ज्योति के विशेषांक की तारीफ़ नहीं करते क्योंकि हमारी दृष्टि में हम उसे जिस रूप में जनता को देना चाहते थे वह इस से कहीं बढ़कर थी, जोकि कन्या गुरुकुल के कार्य्य भार के कारण समग्र रूप से पूर्ण न हो सकी। परन्तु बाहरी जनता की दृष्टि में इस विशेषांक का कुछ मूल्य है। वहाँ से बराबर माँग आरही हैं, परन्तु आर्य समाज चुप है। हम पूछते हैं कि और कुछ नहीं तो क्या कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के दर्शन करने और उसके विषय में कुछ जानने की इच्छा से ही प्रेरित होकर आर्य समाजी भाइयों को उचित न था कि प्रत्येक समाज के जितने सभासद हों वह ज्योति के ग्राहक तो बेशक न बनते किन्तु इस विशेषांक को तो केवल ।~), ।=) आने खर्च करके अपने पास रखते? परन्तु उन्होंने

कन्या गुरुकुल के सम्बन्ध में प्रकाशित इस प्रथम सूचना का—जिसके द्वारा गुरुकुल की प्रसिद्धि होती है—उचित आदर नहीं किया। आर्य जगत में इस अङ्क का कुछ मूल्य नहीं, कुछ कदर नहीं!

क्या आर्य्य जनता का कन्या गुरुकुल से यही प्रेम है?

यदि यह उदासीनता के भाव ही सचमुच उनके कन्या गुरुकुलके प्रति भाव की झलक है तो हम निस्सन्देह कहेंगे कि कन्या गुरुकुल का भविष्य निराशा जनक है। कोई भी संस्था बगैर जनता की सहायता के नहीं चल सक्ती फिर कन्याओं के शिक्षणालय? इसमें धनकी बड़ी भारी आवश्यक्ता है। अभी तो आर्य जनता ने इसे भुलाया ही हुआ है क्योंकि जनता से इसके सम्बन्ध में धन के लिये अपील ही नहीं हुई है, परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि कन्या गुरुकुल के प्रति उनका कोई कर्त्तव्य ही नहीं है।

हम आर्य्य जनता और आर्य्य समाजों को पुनः याद दिलाते हैं कि वह ज्योति के कन्या गुरुकुलांक के लिये शीघ्र आर्डर भेज कर मंगा कर पढ़कर देखें कि कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ क्या है? इसे क्या बनाना है और किस प्रकार, इन आवश्यक्ताओं को पूर्ण करना है। दाम बहुत नहीं खर्च होते हैं केवल ॥) प्रति अंक और इकट्ठा में

१० प्रति ४॥)
१५ प्रति ६)
२० प्रति ७॥)
५० प्रति १३)
१०० प्रति २५)

डाक व्यय अलग देना होगा।

दिल्ली का हिन्दू मुस्लिम फिसाद

यों तो हिन्दू मुसल्मानों के फिसाद हमेशा से चलते ही चले आये हैं परन्तु कई वर्षों से जबसे मुलतान, मलाबार, सहारनपुर गोंडा, मेरठ इत्यादि में दंगे फिसाद हुये हैं तब से दोनों जातियों में वैमनस्य के कारण कहीं न कहीं झगड़े होते ही सुनाई पड़ते हैं। कहां तो आज से चार पाँच वर्ष पूर्व जब महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था तो उस समय यह अवस्था थी कि लोगों ने गीत बनाये थे कि "हिन्दुओं की राम नौमी आई, हिन्दू मुसलमान रल मिल मनाई" मुसलमानों के त्यौहार पर हिन्दुओं ने मिठाई इत्यादि बांट कर अपनी ऐक्यता को प्रमाणित किया और मुसलमानों ने हिन्दुओं के त्यौहारों पर। परन्तु आज हम यह देखते हैं कि कोई मुस्लिम पत्र, कोई मुस्लिम नेता ऐसा नहीं जो निष्पक्षपात भाव से हिन्दू मुस्लिम झगड़े के प्रश्न पर बिचार कर सके। और हिन्दू तो हैं ही कायर। कायरता अपने आप में ही बड़ा भारी दोष है।

सच है 'मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।
पारब्रह्म को पाइये मन ही की परतीत॥

मन बड़ा बली है। मनकी प्रवृत्तियों को दबा लो तो बिजयी बन कर संसार के मालिक बने रहोगे, मनकी लगाम ढीली छोड़ो तो फिर खाई खंदक में ही गिरते पड़ते चलोगे। मुसलमानों और हिन्दुओं में भक्षक और भक्ष्य का सम्बन्ध रहा है और मुसलमान हमेशः बलात्कारी ही हुए हैं। सभी नहीं किंतु अधिकांश में यही यथार्थता है। कदाचित यह उनके अत्यधिक मांस, मद्य सेवन द्वारा ही ऐसी राक्षसी प्रवृत्ति हो गई है और अब पीढ़ी दर पीढ़ी जड़ पकड़ गई है परन्तु है यही। महात्मा गाँधी जी ने

अपने आत्मसंयम के बल द्वारा उनकी यह प्रवृत्ति दूर करने की चेष्टा की थी, प्रारम्भ में वह कुछ सफल प्रयत्न दीख पड़े, परन्तु यह प्रभावक्षणभंगुर था, उनके मनके ऊपर अमिट तरीके से अंकित नहीं किया जा सका था। इतने में संसार की कई घटनायें आपहुंची और उनके पुरुषार्थ को मटियामेट करने लगीं। हिंदू और मुसलमान दोनोंको परस्पर अत्यन्त अविश्वास है और अविश्वास रहते हुये कोई स्थाई मेल नहीं हो सकता।

यद्यपि हिंदुओं और मुसलमानोंके झगड़ों में दोनों पक्ष के दुष्ट मनुष्य, गुण्डे ही लड़ाइयां करते हैं, भद्रपुरुष इस दंगे फिसाद में क्रियात्मक रूप से शामिल नहीं होते वरन बीच बचाव करने को खड़े होते हैं। परन्तु यदि दिल को टटोलो तो पता लगता है प्रत्येक को अपने मतावलम्बियों के साथ ही दिली सहानुभूति होती है। क्यों? इस लिये कि मन में संस्कार पड़े हुये हैं वह अपना प्रभाव डालते हैं। दिल्ली के दंगे फिसाद में भी यही दशा दीख पड़ी। नेता लोग अन्य बातों में लगे रहनेके कारण पहलेतो परिस्थिति को संभाल नहीं सके और फिर वह सच्ची घटनाओं के जानने और प्रकाशित करने की ओर से उपेक्षा रखते रहे हैं। हिंदू मुसलमानों में जब तक भक्ष्य और भक्षक का सम्बन्ध रहेगा कभी भी मेल नहीं होगा। मुसलमानों के नेताओं का बल इस ओर लगना चाहिये कि वह मुसलमान जनताकी मानसिक गति को उनकी भूलें, बतलाते हुये और शांत रखते हुए सम चाल से चलाने का प्रयत्न करें और हिंदू नेताओं को चाहिये वह हिंदुओं के ऊपर दबाव डालकर उन्हें शुद्धि और संगठन के नाम पर उद्धत न बनने दें। परन्तु परस्पर के अविश्वास को प्रत्येक मौके पर उखाड़नेकी सोचें। अधिकार और कर्तव्य दोनों दलों के समान हों तभी यह दंगा फिसाद रुक सकेगा। वरना जब जब अवसर उपस्थित होगा तब २ यह दोनों गुलाम जातियां-जोकि शासकों की मशीनगनों के डर से ही दबी रहती हैं--उभरती रहेंगी और आपस में लड़ मरकर विदेशी शासन की नींव को सींचती रहेंगी।

हिंदुओ! सोचो तो सही कि हज़ारों गायें पल्टन के लिए कटती हैं परन्तु तुम चूं तक नहीं करते। किंतु अपना भाई यदि ऐसा करता है तो तुम गौमाता की रक्षा के नाम पर उससे अपना दिली गुब्बार निकालने का यत्न करते हो। हम मानते हैं कि गौहत्या पाप है, महापाप है और किसी को सहन नहीं करना चाहिये। परन्तु पक्षपात क्यों? अगर आपमें इतनी ही भक्ति और प्रेम है तो गौहत्या सर्वथा रोकिये। गौ के बचाने के नामपर सैकड़ों भाइयों की हत्या करा लेना, अबलाओं पर अत्याचार करने के मौके देना, मशीनगनों द्वारा मानव जाति को भुन जाने, का मौका देना कहाँतक बुद्धिमत्ता है?

दूसरी ओर मुसलमान भाइयो! अगर आप अपने हिन्दू भाइयों का चुनैती देते हुये इस प्रकार के जुलूस निकाल कर गाय की कुर्बानी करते हो तो सैकड़ों का हनन और बहुतों पर अत्याचार करके अपनी जाति और अपने धर्म को कलंकित करते हो यही क्या त्यौहार मनाने का आनन्द है! कदापि नहीं। त्यौहार आनन्द और हर्ष मनाने के लिये होते हैं उन्हें उसी प्रकार के काम में लाना चाहिये। दोनों दलों के नेताओ? प्रजा के दिलों को पुनः प्रभावित करो और अपने सद्भाव तथा निष्पक्षपात फैसले द्वारा दोनों दलों के मन मुटाव को दूर करके पुनः भ्रातृ-भाव स्थापित करो। तभी देश में शान्ति रहेगी। तभी स्वराज्य का प्रवेश होगा।

हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य में कांग्रेस का कर्त्तव्य ।

चूंकि हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य दिनों दिन बढ़ता ही जाता है और शांत होने के उपाय सोचने की बजाय उलटा ही मार्ग ग्रहण किया जारहा है इसलिये देश की महासभा का कर्त्तव्य है कि वह सब से प्रथम अपना ध्यान इस ओर लगाये और इस समस्या को शीघ्र ही हल करके फिर दूसरी ओर लगे। अबतक तो पंजाब को ही हिन्दू मुस्लिम झगड़ों का केन्द्र कहते थे, परन्तु घटना चक्र ऐसा है कि पता चलता है कि यह वैमनस्य भारत व्यापी है। नहीं २ देशी राज्यों में भी कूट २ कर भरा है। तव क्या कांग्रेस का कर्त्तव्य और भी अधिक नहीं हो जाता कि वह इस प्रश्न की अवहेलना न करके इसे सन्मुख होकर देखे और हल करने के उपायों पर विचार करे।

हमारी सम्मति में हिन्दुओं का यह विश्वास है कि ऐक्य के नाम पर हिन्दू नेता भी मुसलमानों की ज्यादती की ओर से आंख मींच लेते हैं और हिन्दू दोनों तरफ से संकट उठाते हैं। मुसलमान जनता भी अत्याचार करे और हिन्दू और मुसलमान नेता आँखें मींचे रहें। हिन्दुओं का यह भ्रम मूलक विश्वास दूर करने के लिये कांग्रेस की ओर से प्रयत्न हो। इस दुर्घटना की जाँच के लिये कमेटी बैठे, उस के सदस्य ऐसे हों जिन पर दोनों दलों को पूर्ण विश्वास हो और वह अपनी जो रिपोर्ट दें उस पर कार्य्य किया जाय। दूसरी ओर मुसलमानों को शुद्धि और संगठन से शिकायत है अतः कांग्रेस इसका प्रयत्न करे कि न मुसलमान ही हिन्दुओं को बलात्कार मुसलमान बनावें, न हिन्दू शुद्धि की घोषणा करें। दोनों ही अपने २ धर्म में इच्छुक लोगों को प्रविष्ट कर लिया करें परन्तु यदि दोनों में से किसी दलके लोगोंको किसी एक दूसरे की ओर से कुछ शिकायत हो तो परस्पर में एक दूसरे का सिर न तोड़ कर कांग्रेस से नियत की हुई सभा द्वारा अपना फैसला करा लिया करें। इस प्रकार सम्भव है कि हिन्दू मुस्लिम ऐक्य स्थिर रहसके।

मुस्लिम संगठन

महात्मा गांधी ने यह निश्चय किया है कि वह कुछ नेताओं को साथ लेकर पंजाब और दिल्ली का दौरा करेंगे और वहां की हिन्दू मुस्लिम एकता की जटिल समस्या को पूर्णतया समझ कर उसके हल करने का प्रयत्न करेंगे। महात्मा जी के साथ जो नेताओं के आने की घोषणा है उनके सम्बन्ध में अभी से ऐसे भाव हो रहे हैं कि जिनसे पता लगता है कि जनता का उनकी शक्ति पर विश्वास हटचुका है। कारण यह है कि जिन मुसलमान नेताओं ने हिन्दू मुस्लिम ऐक्य पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की घोषणा दी थी ओर जो प्राण पण से भी ऐक्य कायम रखने की चेष्टा करते रहे थे वहभी आज बदल चुके हैं। पंजाब के मुस्लिम नेता जिन पर हिन्दुओं का भी पूर्ण विश्वास था और जो महात्मा गांधी के पूर्ण हाथ बटाने वाले रहे हैं उन महामान्य डाक्टर किचलू पर भी लोगों को अविश्वास होरहा है। कारण कि जेल से निकलने पर उन्होंने शपथ की थी कि वे हिन्दू मुस्लिम एकता को पुनः कायम किये बिना दम न लेंगे। इस सम्बन्ध में उन्होंने क्या २ काम किये और कितने सफल प्रयत्न हुये यह तो दैव जाने परन्तु आज उनकी तरफ से यह घोषणा अवश्य निकलती है कि "मैं अपना समय मुस्लिम संगठन में खर्च करूंगा।" मुस्लिम संगठन के नाम से लोग दहल उठे हैं। परन्तु हम डा० किचलू जी

से नम्रता पूर्वक अनुरोध करेंगे कि वह मुस्लिम संगठन अवश्य करें और उस में मुसल्मान गुण्डों और दुष्ट लोगों को अपने उत्साह पूर्ण व्याख्यानों और उपदेशों से अत्याचार, बलात्कार निर्बलों की हत्या इत्यादि राक्षसी कार्य्यों से दूर हटने की शिक्षा देवें। और मुसलमान समाचार पत्रों तथा पैम्फलेट लेखकों को यह समझाने का यत्न करें कि वह झूंठी और रोष दिलाने वाली बातों को छाप कर लोगों को भड़काने से उपरत रहें, तथा दूसरे धर्म वालों पर गन्दे, कुटिलता पूर्ण आक्षेप करने में अपनी शक्ति न लगा कर हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिये अभीष्ट बातों की ओर झुकें, अपने नेताओं के वचनों को सुनें उनका पालन कर के अपनी जाति को सुसंगठित करें। यदि संगठन से यह अभिप्राय हो तो प्रत्येक प्रान्त और शहर में इस प्रकार के मुस्लिम संगठन होने चाहियें ताकि देश में शान्ति स्थापित रहे।

विलायत को भारत की याद

अभी हाल ही में वृटिश पार्लियामेन्ट की लार्ड सभा ने फिर भारत को स्मर्ण किया है, क्योंकि भक्त लोगों पर जब २ भारी भीड़ पड़ती है तभी वह अपने इष्ट देव की आराधना और स्मर्ण करते ही हैं। वृटिश सर्कार भी भारत की हित चिन्तक है अतः गहरे समय में पुनः भारत को स्मर्ण करलेना क्या नई बात है? कहा जाता है कि इस सभा में भारतीय व्यवस्था पर फिर वाद विवाद हुआ। सब दलों के सदस्यों ने गौराङ्ग उच्च पदाधिकारी कर्मचारियों के 'कम वेतन' पर बड़ा खेद प्रगट करके भारत की पुरानी सूखी हड्डियों में से और रक्त निकालने का प्रयास किया है। परन्तु गरीब, भूखसे पीड़ित भारतीय कर्मचारियों का ध्यान भी न आया। लार्ड पील ने साम्राज्य वादियोंके अनियन्त्रित शासन के प्रति सहानुभूति प्रगट करते हुये सब प्रकार के सुधारों के पक्ष में अपनी सम्मति प्रगट की। ली कमीशन की रिपोर्ट को शीघ्र ही काम में लाने की कोशिश पर ज़ोर दिया गया और उसकी खूब जी खोल कर प्रशंसा भी की गई। इसके बाद स्वर्गवासी गोपीनाथ साहा की देशभक्ति के प्रसंग में महाशय देशबन्धु दास ने जो अपने विचार प्रगट किये हैं उन्हीं को लेकर लार्ड महोदय पील ने दास महोदय की न केवल निन्दा ही की वरन उन्हें दण्ड देने की भी धमकी दी जिस पर लार्ड ओलिवियर ने इस का विरोध करते हुये कहा कि देशबन्धु जी बड़े सच्चरित्र सज्जन हैं परन्तु भारत में कुछ सज्जनों की मानसिक वृत्तियां ही परिवर्त्तित हैं और वह समझते हैं कि गुप्त समितियों और हत्या काण्डों द्वारा ब्रिटेन के डरा २ कर ही हमारे भारतको अभीष्ट सिद्धि होगी ऐसे विचारकों में से देशबन्धु दास भी एक हैं।

ब्रिटिश सर्कार भारत के विषय में चाहे कितना ही भ्रम जनक जाल फैलाये परन्तु भारत वासियों का अधिकाँश भ्रम दूर हो चुका है। उन्हें यह अच्छी तरह पता लग गया है कि माँगने से अब कुछ नहीं मिलेगा जो कुछ मिल सकता है वह अपने आपको स्वावलम्बी बनाने से ही मिलेगा।

बेलगांव कांग्रेस में सभापति कौन हो?

आगामी कांग्रेस के सभापति चुनने का प्रस्ताव सन्मुख है। भारत के बीस प्रान्तों से भावी सभाध्यक्ष के चुनाव के सम्बन्ध में मत लिया गया है जिसमें से गुजरात ने कोई मत ही न देने का निश्चय किया है। अजमेर-मेवाड़ ने अभी तक कोई सम्मति नहीं भेजी बाकी १८ प्रान्तों में से १६ की सम्मति

महात्मा गान्धी जी के अध्यक्ष बनाने के पक्ष में है, ८ श्री सरोजिनी नायडू के पक्ष में और ८ श्री० राजगोपालाचार्य के पक्ष में । शेष नेताओं को इतनी भी नहीं मिली । इस से स्पष्ट है कि भारतीय जनता महात्मा जी की ओर ही टक टकी लगाये है । समस्या विकट है । महात्मा जी दो वर्ष से देश की अवस्थासे सर्वथा अनभिज्ञ रहे हैं । इतने अवसर में घटना चक्र बड़ी प्रबलता से चलता रहा है । परिस्थितियां बदलती रही हैं । नेताओं ने एक दूसरे के छिद्रान्वेषण के कार्य्य के और बुरा भला कहने के सिवाय कोई कार्य नहीं किया । कांग्रेस का कार्यक्रम स्थगित रहा, जनता का विश्वास नेताओं पर से उठ चला है और हिंदू मुस्लिम ऐक्य की कच्ची मूल को उपद्रवों की धारायें तोड़ चुकी हैं । इस समय भारत की नाव के मांझी बनने का यदि किसी को अधिकार है तो वह महात्मा गांधी जी को ही है । यदि किसी प्रकार इसकी रक्षा हो सक्ती है तो वह महात्मा के हाथों में ही इसका इलाज है । परन्तु वह महात्मा क्या कहते हैं ? सुनो । वह १७ जुलाई के यंग इन्डिया में लिखते हैं कि:-

भावी कार्यावली का चित्र जब मैं अपनी आंखों के सामने खींचता हूं तो मेरा हृदय कांपने लगता है । साल भर तक प्रधान कर्मचारी के नाते अन्य कर्मचारियों से काम कराने का विचार ही मुझे घबराहट में डाल देता है । देशकी गति न समझ सकने के कारण राष्ट्र पोत के पतवार थामने के लिये मैं अपने को अयोग्य समझता हूं । चरखा, हिंदू मुस्लिम एकता अछूत, समस्या के अतिरिक्त मैं और कोई. कार्य क्रम जानता ही नहीं । वृटिश माल का वहिष्कार आर कौंसिलों के कार्य क्रम के सम्बन्ध में जनता में उत्साह फैलाने जैसा कोई कार्य्यक्रम सफल कराना मेरे लिये सर्वथा असम्भव है । अनेक सम्भावनाओं के ये थोड़े से नमूने हैं । इनमें सहायता करना यदि मेरे लिये सम्भव न हो तो अन्ततः भीतर से इनका विरोध करना उचित नहीं है । जिस कार्य्य में मेरा विश्वास नहीं है वा नहीं हो सकता उसे करना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है"

इन विचारोंके साथ वहुतसे लोगोंका मत भेद है अतः कांग्रेस का अध्यक्ष बनकर कौन अधिक उपयोगी होगा यह कहना बड़ा कठिनहै

बाढ़ या दैवकोप !

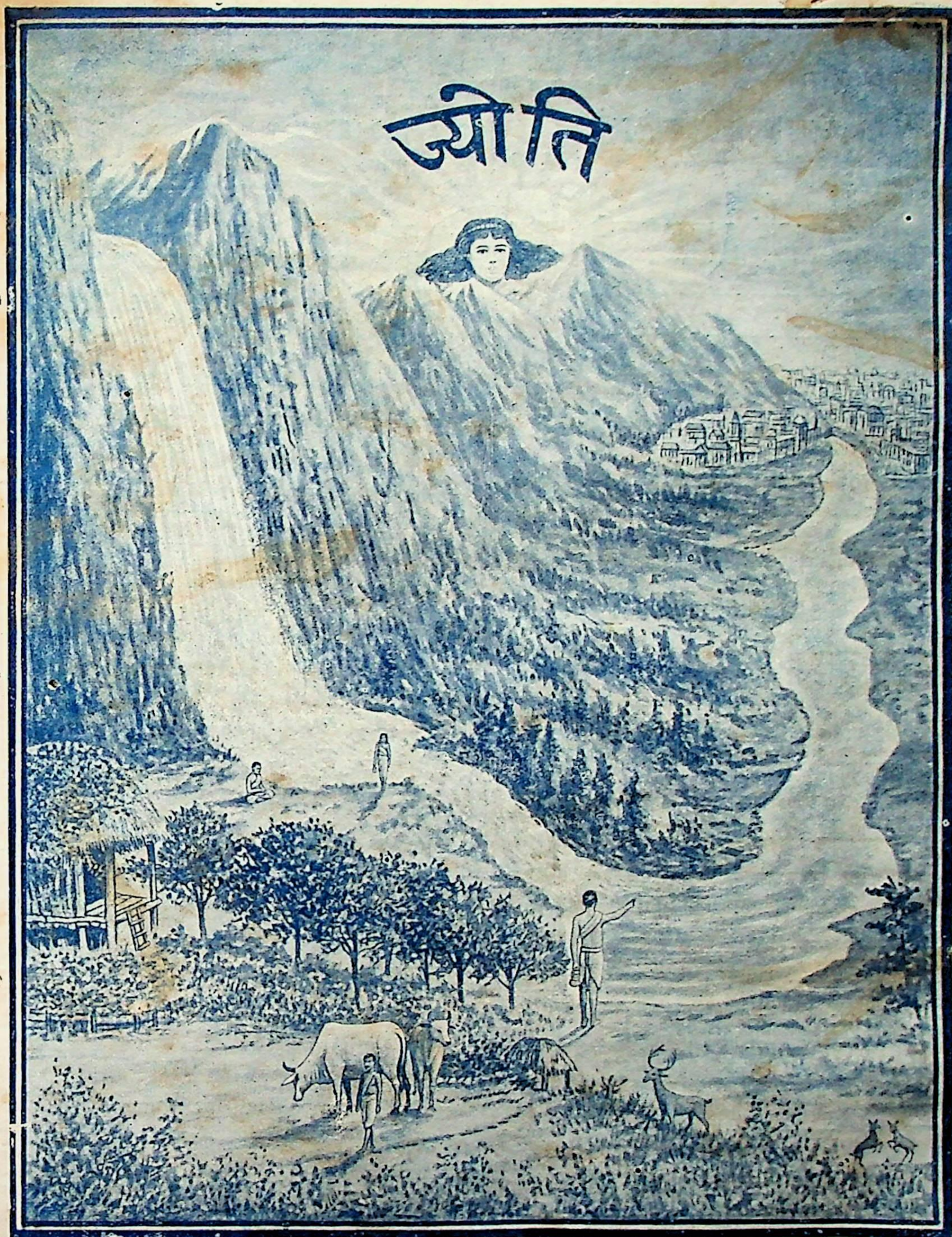
उत्तरी भारत में अब तक वर्षा बहुत कम हुई है और सम्भावना अनावृष्टि की है । लोगों को भय है कि कहीं सूखा ही न पड़े परन्तु दैव की प्रतिकूलता देखिये कि दक्षिण भारत में बाढ़ की बड़ी भयंकर खबरें आरही हैं । नदी के बन्द टूट रहे हैं, गांव डूब रहे हैं, मकान गिर रहे हैं हजारों लोग घर बार विहीन हो रहे हैं । मद्रास में कई मील तक रेलवे लाइन पर भी बहुत खतरा है फसल को भी बहुत नुकसान हो रहा है ।

कहते हैं कि 'छिद्रेष्वनर्था वहुली भवन्ति' भारत के विषय में यह पूर्ण रूप से लगता है । यहां पर प्रति वर्ष कुछ न कुछ अनिष्ट होते ही रहते हैं, कभी रोग, कभी दुर्भिक्ष कभी बाढ़ । तिस पर भी विदेश में यहां से खिंचा खिंची होती रहती है । हा भारत ! तू किस प्रकार बचेगा । तेरी सन्तान या तो ऐशो आराम में मस्त है या फांकों से मर रही है । भाई भाई के गले पर छुरी चला रहे हैं । तेरे उद्धार की ओर इनका ध्यान ही नहीं वरना क्या यह ऐसे गाढ़ समय में अपनी शक्ति का ह्रास परस्पर के विवादों में व्यय करते ! भारत तू अपने इन अबोध बच्चों की अन्तरात्मा में धार्मिक भाव, सार्वभौमिक प्रेम और दया के सञ्चार के लिये परमात्मा से प्रार्थना कर और उसकी अकृपा को दूर करनकी याचना कर तभी तेरा कल्याण होगा

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पब्लिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया।

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५] श्रावण १९८१—अगस्त १९२४ [खण्ड ५, संख्या ४



वार्षिक मूल्य ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४) विदेश का मूल्य ६)

सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय, दरियागंज, दिल्ली में—पं० अनन्तराम शर्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ।

विषय सूची

—:(*):—

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी।

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।

पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं. जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में गाहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

(५) पत्र व्यवहार में गाहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर ग्राहक नं० न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी गाहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-गाहक-गण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबंधकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर. 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये



वर्ष ५ | श्रावण १९८१—अगस्त १९२४ ई० | संख्या ४

मोहमन्त्र की माला है

लेखक—" श्रीहरि "

खोज खोज कर हम हारे हैं, तुमको पाते नाथ ! नहीं।
छुपे हुये हो मन मन्दिर में, फिर भी आते हाथ नहीं॥
प्रियतम ! तव मञ्जुल मधुर स्मृति, विरहानल की ज्वाला है।
शुद्ध प्रेम रस प्याला है या, मोह मन्त्र की माला है॥ १॥

× × × ×

भगवन् ! भव भव विभव भावना, भूल न मन में आती हैं।
स्वर्ग और अपवर्ग कथायें, मुझे न छलने पाती हैं॥
प्यासा, पी उन्मत्त हुवा तव, सरस प्रेम रस हाला है।
हो स्वतन्त्र जप रहा वही अब, मोह मन्त्र की माला है॥ २॥

गृहाश्रम

लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी

विवाह के लिए पति कैसा हो

ओ३म् असुन्वन्त मयजमानमिच्छ-
स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या
नमो देवि निऋर्ते तुभ्यमस्तु॥

यजु० १२-६२

भावार्थ—सत्याचरण युक्त देवि! तू इस (स्तेन, तस्कर) चोर और डाकू से अन्य पति की इच्छा कर अर्थात् विवाह से पूर्व जब वर देखा जाता है उस समय जिस पुरुष में यह अवगुण हो उस से विवाह न कर और (असुन्वन्त, अयजमान) प्रशंसित कर्मों से रहित और अदान शील से भी विवाह न कर और तू गुणयुक्त पति को प्राप्त हो और वह तेरे लिये अन्न और सत्कार का देने वाला हो।

इस मंत्र में विधि और निषेध मुख से पति के विषय में कहा गया है, विधि मुख से स्पष्ट लिखा है कि जो चोर और डाकू हो, जो दूसरों के धन को छुपकर अथवा प्रगट रूप से हरण करता हो उसके साथ कन्या विवाह न करे। प्रश्न होता है, यदि किसी में यह अवगुण न हो तो उसके साथ विवाह किया जाय? तब वेद भगवान् निषेध मुख से उपदेश देते हैं कि जिनमें दानादि उत्तम गुण न हों उसके साथ भी विवाह न किया जाय। यह कोई आवश्यक नहीं है कि जिसमें बुराई न हो वह अच्छे काम करता हो क्योंकि कई बुरे काम छोड़ कर भी अच्छे कामों में उदासीन रहते हैं अतः इस मंत्र में उनका भी निषेध है।

विवाह दूर हो

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहागहि।
पुरीष्यः पुरु प्रियोग्ने त्वं तरामृधः॥

यजु० ११-७२

भावार्थ—हे विज्ञान युक्त बलवान्; पालने में श्रेष्ठ प्रीति युक्त! आप दूर देश से आवें और आप शत्रुओं को नाश करने वाले हों।

इस मंत्र में जहां विवाह इच्छुकों के गुणों का वर्णन है वहां 'परावत' शब्द से यह भी विधान किया है कि आप दूर देश से आने वाले हों। जो महानुभाव यह कहा करते हैं कि वेद भगवान् ने दूर देश में विवाह करने का कोई स्पष्ट उपदेश नहीं किया है वह इस मंत्र को ध्यान पूर्वक पढ़ें। इस मंत्र का देवता अग्नि और ऋषि वारुणि है।

स्त्री कैसी हो

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।
सा तुभ्यमदिते मह्योखादधातु हस्तयोः॥

यजु० ११-५६

भावार्थ—हे सत्कार के योग्य, अखंड सुख भोगने वाली, प्रेमयुक्त, अच्छे केशों वाली, सुकर्म करने वाली, स्वादु भोजन बनाने वाली! तेरे हाथों में भोजन बनाने के पात्र देते हैं।

इस मंत्र में केशादि के साथ २ भोजनादि बनाना भी लिखा है। स्त्रियों को गृह में भोजन आवश्यक है। वर्तमान समय में जो स्त्रियों को भोजन बनाने से घृणा है यह अच्छी बात नहीं है।

विवाह टूट नहीं सकता

उत्थाय वृहती भवोदुतिष्ठ ध्रुवा त्वम्। मित्रैतां त ऊखां परि ददाम्यभित्या एषा मा भेदि ॥ ११-६४

भावार्थ—हे कन्ये! तू ध्रुवा अर्थात् तू मंगलकार्यों में निश्चित बुद्धि वाली हो। विवाह के लिये तू उठ और पति को स्वीकार कर। हे मित्र! तेरे लिये इस प्राप्तव्य कन्या को भय रहित होने के लिए देता हूँ, तू इसको छोड़ने वाला न हो।

इस मंत्र के पूर्वार्ध में कन्या को उपदेश है, कि तेरे में आलस्यादि न हों। तू पतिकुल में जाकर रहने वाली हो, वहां से जाने वाली न हो, और पति को उपदेश है कि इस कन्या को भय रहित रहने के लिये आपको देता हूं। वर्तमान समय में लोग स्त्री को छोड़ कर स्वयं अपनी जान बचाने को तो भाग जाते हैं, वह स्त्री को भय रहित नहीं करते हैं। वैदिक धर्मियों का कर्तव्य है कि वह ऐसी अवस्थाओं में भी सामान्यावस्थावत् रक्षा करें और स्त्री को किसी अवस्था में भयभीत न होने दें। और दूसरा उपदेश यह है कि किसी को विवाह करके छोड़ने वाला मत हो। यह प्रसन्नता पर है कि कोई विवाह करे अथवा न करे। पर जब विवाह किया हो तो गृहाश्रम का धर्मपूर्वक ही पालन करना चाहिये।

यह विवाह से संबंध रखने वाले वेद के कुछ मंत्र हैं। यदि लोग इस भांति सोच समझ कर गृहाश्रम में प्रविष्ट हों तब ही गृह सुख धाम बन सकते हैं। यदि विषय भोगार्थ ही प्रवृति हो तो सुख मिलना असंभव ही है।

उमा का उत्तर

लेखक—श्री बलराम उपाध्याय बी० ए०

तजि मानहिं ध्यान कियो उनको हिय मन्दिर मूरति आनि कै थाप्यो।
नैनन नीर अन्हाइ चढ़ाइ कै प्रेम को पुष्प पवित्र संवार्‌यो॥
रूप अनेकन या जग मांहि तजों निज नाथहिं नग्न भये का?
स्वांति की बूंदहि आस लग्यो जग गंग को धार बहै तो हमें का?

हमारा कर्त्तव्य एवं स्वदेशप्रेम

लेखक—श्रीयुत् बुद्धिसागर वर्मा विशारद बी० ए०



महात्मा कपिल के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक सृष्टि में जीव तीन प्रकार की योनियों में आता है। (१) कर्मयोनि—जिसमें मुक्त आत्मायें सृष्टि की आदि में अमैथुनी सृष्टि से उत्पन्न होती हैं। (२) उभययोनि—जिसे दूसरे शब्दों में मनुष्य योनि भी कहते हैं। इस योनि में जीव अपने पूर्व जन्म के कर्मों को भोगता है और आगे के लिये भले या बुरे कर्म करता भी रहता है। (३) भोगयोनि—जिसमें जीव अपने पिछले कर्मानुसार पशु पक्षी आदि के शरीर को पाकर केवल फल भोगता है।

इस समय कर्मयोनि के अभाव से और भोग योनि वाले जीवों का ज्ञान रहित होने से तथा कर्तव्य करने में असमर्थ होनेसे ऋषियों मुनियों का समस्त उपदेश और ज्ञान विज्ञान इसी मनुष्य योनि के निमित्त ही समझना चाहिये। मनुष्य योनि को सांसारिक जीवन सुचारु रूप से व्यतीत करने के विचार से प्राचीन महर्षियों ने ४ भागों अथवा 'वर्णों' में विभाजित किया है। यथाः—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत॥

यजुर्वेद अ० ३१। मं० ११

उनमें से प्रथम तीन वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य जो "द्विज" कहलाते हैं, वेद विद्या तथा ऋषि उपदेश के अधिकारी हैं। परन्तु शूद्र विशेष बुद्धि और ज्ञान न रखने के कारण उन उपदेशों को ग्रहण नहीं कर सकता। इसीलिये मनु महाराज कहते हैंः—

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।

मनु० १। ६१

अर्थात् शूद्र का यही एक गुण कर्म है कि वह निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ कर द्विजातियों की यथावत् सेवा करे और उसी से अपनी जीविका चलावे। श्री १०८ महर्षि दयानन्द जी 'सत्यार्थ प्रकाश' के चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ ६२ में लिखते हैंः— "शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञान सम्बन्धी काम कुछ नहीं कर सकता किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है।" यही कारण है कि शूद्र को यज्ञोपवीत देने का विधान नहीं है। और द्विज मात्र को यज्ञोपवीत धारण करने का उपदेश है। यथाः—

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति।

सुश्रुत सूत्रस्थान अ० २

अर्थात् ब्राह्मण तीनों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का यज्ञोपवीत करा सकता है।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

मनु० अ० २। श्लो० ३६

अर्थात् गर्भ से अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का, गर्भ से एकादश वर्ष में क्षत्रिय का और द्वादश में वैश्य का उपनयन करे।

अब देखना यह है कि यज्ञोपवीत धारण करने का अभिप्राय क्या है? यह कोई आभूषण अथवा शोभा की वस्तु नहीं है। हम देखते हैं कि आज कल की सभ्यता में हमारे भाई इसके महत्व को भूल बैठे हैं। विशेषकर पाश्चात्य विद्या व्यसनी युवक समुदाय तो इसे अनावश्यक समझने लगा है। उन्हें कोट हैट, और नैकटाई के आगे यह पवित्र सूत्र तुच्छ जंचता है। उन्हें यह नहीं मालूम है कि यज्ञोपवीत अहर्निश हमें इस बात की सूचना देता रहता है कि हमारे ऊपर तीन ऋण लदे हुए हैं उनसे अपने जीवन काल में हमें उऋण होना है। वे तीन ऋण कौन हैं? इसका वर्णन नीचे किया जाता है।

(१) देवऋण—अर्थात् देवताओं का ऋण

शायद आप कहें कि देवताओं के बाप दादा से हमने क्या कर्ज़ लिया था न जिसका चुकाना हमारा धर्म हुआ? इसका भी उत्तर सुनिये। आप नित्य प्रति शुद्ध वायु सूंघ कर उसके बदले अशुद्ध वायु छोड़ते रहते हैं। आप नित्य प्रति शुद्ध जल पीकर अशुद्ध जल का परित्याग करते रहते हैं। आप पृथ्वी की छाती फाड़ कर अपने पीने को पानी निकालते

हैं। सैकड़ों योग्य अयोग्य कार्य आपके पृथ्वी ही पर हुआ करते हैं इत्यादि २। क्या आप इन सब देवताओं के ऋणी नहीं हैं? अवश्य हैं। अतः हमारे और आपके ऊपर न जाने कितना देवताओं का ऋणरूपी भार लदा हुआ है जिसके कारण हम लोग अपनी जीवन नौका को सुगमता से संसार सागर पार नहीं लगा पाते और अपने दूसरे भाइयों के लिये भार-रूप होकर कष्ट झेलते हैं। परन्तु वे विचार-शील और कर्मनिष्ठ पुरुष जो अपने देवऋण को धीरे २ हल्का करते जाते हैं, सुखी रहते हैं। यह बोझ हल्का कैसे हो? ऋषियों का उपदेश है कि इसका उपाय केवल कर्मकाण्ड अर्थात् नित्य देवयज्ञ (हवन यज्ञादि) करते रहना है। देखिये, श्री स्वामी दयानन्द जी महाराजकृत पंचमहायज्ञविधि और सत्यार्थ-प्रकाश।

(२) ऋषिऋण—अर्थात् जो कुछ ऋषियों ने किया, जिस विषय का उन्होंने उपदेश किया अथवा जिस कर्म से वे सदा प्रसन्न रहे, जो कुछ संसार की उन्नति के लिये उनका उद्देश्य रहा और जिस धर्म मार्ग में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण आयु व्यतीत कर दी, उसी का अनुकरण करना, उसी पर आरूढ़ रहना, उसी का उपदेश करना और वैदिक धर्म का प्रचुर प्रचार करना यही ऋषियों के ऋण से उऋण होना है।

(३) पितृऋण—अर्थात् पितरों का ऋण। इस ऋण की महता सर्व श्रेष्ठ है अतः पहले इसका शब्दार्थ जान लेना चाहिये। "माता च पिता च पितरौ" अर्थात् माता और पिता को मिला कर पितर संज्ञा होती है। अब हमें यह देखना चाहिये कि 'पिता' और 'माता' में किस २ का समावेश हो सकता है। और क्यों? प्रत्येक मनुष्य के तीन प्रकार के पिता और तीन ही प्रकार की मातायें होती हैं। जो इन छहों की भक्ति पूर्वक सेवा करता है वही वास्तव में पितृ-ऋण से उऋण हो सकता है। तीन प्रकार के पिताः—

(१) पहला पिता सर्वशक्तिमान, दयालु, सृष्टिकर्त्ता, जगदाधार, परमपिता, परमात्मा है। प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह नित्य ईश्वर की उपासना श्रद्धाभक्तिपूर्वक करता हुआ वेदानुकूल कार्य करने में तत्पर रहे। क्योंकि वेद ही उस परम पिता की आज्ञा है।

(२) पिता वह है जो माता के गर्भ में ईश्वराज्ञानुकूल मनुष्य का बीज बोता है। और कठिन से कठिन परिश्रमों द्वारा न जाने किन २ मुसीबतों को झेल कर धन और अन्न एकत्रित करता है, जिससे हमारे शरीर का पालन पोषण होता है। जो मनुष्य अपने इस देवता स्वरूप पिता को दुख देते हैं वे निस्सन्देह बड़े कृतघ्नी हैं। उन्हें ईश्वर के राज्य में सुख और शान्ति कभी नहीं मिल सकती। यदि विश्वास न हो तो भारतवर्ष के ही अर्वाचीन इतिहास को पढ़ डालिये।

(३) पिता गुरु है जो निष्कपट रूप से विद्या दान देता है। जिसकी कृपा से मनुष्य मनुष्य बनता और विद्वानों की सभा में पूजा एवं सत्कार का पात्र बनता है। विद्वान पुरुष का महत्व राजा से भी बढ़कर है। यथाः—

विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

वह गुरु मनुष्य को विद्यारूपी ऐसी कुंजी प्रदान करता है जिसके द्वारा वह वेदरूपी कोष से धर्मरूपी धन प्राप्त कर अपने इस लोक और परलोक दोनों को सुधार सकता

है। ऐसे निष्काम परोपकारी गुरु की जो मनसा वाचा कर्मणा सेवा नहीं करता वह घोर कृतघ्नी है। भीष्मपितामहजी ने महाराज युधिष्ठिर को उपदेश करते हुये कहा थाः—

विद्यां श्रुत्वा ये गुरुं नाद्रियन्ते,
प्रत्यासन्ना मनसा कर्म्मणा वा ।
तेषां पापं भ्रूण हत्या विशिष्टं,
नान्यस्तेभ्यः पापकृदस्ति लोके ॥

अर्थात् जो विद्या पढ़कर मन वचन कर्म से गुरु का सत्कार नहीं करते उनका पाप गर्भपात के पाप से भी बढ़ा हुआ है और इस संसारमें उनके समान कोई भी पापी नहीं है।

न ते ऽवमानमर्हन्ति न तेषां दूषयेत्कृतम् ।
गुरूणामेव सत्कारं विदुर्देवा महर्षिभिः ॥

अर्थात् गुरु लोग अनादर करने योग्य नहीं हैं। और न उनके काम में व्यर्थ दूषण ही निकलना चाहिये। समस्त देवताओं और महार्षियों ने गुरुओं का सत्कार करना ही धर्म बताया है। इसी प्रकार

(१) पहली माता वह है जिसने हमको ६ मास गर्भ में रक्खा नाना प्रकार के दुःख सहे वे लोग कैसे नराधम होते हैं जो अपनी पूज्या माता को दुःख झेलते अपनी आंखों से देखते हैं और उसका कोई उपाय नहीं सोचते। वे माता की महत्ता को तनिक नहीं विचारते। माता लड़के को जैसा चाहे वैसा बना सकती है। इतिहास इसके ज्वलन्त उदाहरण दे रहा है। आल्हा, ऊदल, नेपोलियन, क्षत्रपति शिवाजी, वीर लक्ष्मण, महारथी भीम, मौलाना शौकतअली, मुहम्मद अली आदिके चरित्र हमारे सामने हैं। एक सुयोग्य माता बीसों पण्डितों से बढ़कर है। फिर भी लोग नहीं समझते कि माता का दर्ज़ा गुरुजनों में कितना ऊंचा है। मातृशक्ति का महत्त्व कितना उच्च है। हा! वह माता जिस का हृदय बच्चे की आंख दुखने से भी अत्यन्त क्लेशित हो जाता है। हा! वह बेचारी माता जिसकी निगाह सदा अपने कलेजे के टुकड़े से ही लगी रहती है। हा! वह स्नेहमूर्ति माता जो जाड़े के मौसिम में भी स्वयं भीगी जगह में पड़ी रहकर अपनी आंखों के तारे राजदुलारे को आराम से थपक २ कर सुलाती है। वह पूजनीय माता जो अपनी छाती का दूध पिला २ कर अपने नन्हे सुकुमार को पालती है पोषती है। क्या इसी योग्य है कि उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाय? नहीं, कदापि नहीं। उसकी जितनी भी पूजा की जाय थोड़ी है। माता को दुख देने वालों की आत्मा कभी शान्ति और सुख नहीं प्राप्त कर सकती।

(२) माता हम गौ को मानेंगे। यह गौ माता ही की दया है कि हम दूध घी से अपने शरीर को बलिष्ठ बनाते हैं। यह गौ माता ही की कृपा है कि हम उसके पुत्रों द्वारा अन्न उपजाते हैं। गौ माता की ही सहायता से हम अन्न, वस्त्र पाकर सुख से जीवन यात्रा करते हैं। इसमें ज़रा भी अत्युक्ति नहीं कि समस्त संसार—विशेषकर हमारा भारत देश गाय के सींगों पर ही टिका हुआ है। फिर भी हम देखते हैं कि गौ माता के शरीर का कोई भाग भी तो ऐसा नहीं जो मनुष्य के काम न आता हो। हड्डी, चमड़ा, दूध, गोबर, लड़के बच्चे सभी तो किसी न किसी रूपमें अपने काम आते हैं। फिर यह कृतघ्नता कि हम अपने ही हाथों उसके गले पर छुरी चलवाते हैं। क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या आर्थिक सभी प्रकार से गोधन की महत्ता विचित्र है। गौवंश की उचित देख रेख और रक्षा न होने ही के कारण आज भारत दरिद्र

और परमुखापेक्षी बन रहा है। भारतकुल उजागर महर्षि दयानन्द जी सरस्वती कहा करते थे कि गाय और विधवाओं की आहों ने ही भारत को ग़ारत कर दिया। यह अक्षरशः सत्य है। गौ का हम पर कितना उपकार है और उसकी रक्षा हमारे लिये कितनी आवश्यक है? इस विषय में उक्त स्वामी जी कृत 'गोकरुणानिधि' देखिये।

(३) माता हमारी प्यारी भारतभूमि है। सज्जनवृन्द! यह वही भारतमाता है जिसे कभी स्वर्णभूमि कहलाने का गौरवप्राप्त था। जो कभी महाराजा रामचन्द्र, गौतम कणाद, हरिश्चन्द्र और राणा प्रतापसिंह जैसे सुपुत्र पैदा करती थी। क्या यह वही माता है जिसे अब विदेशी जन तुच्छ निगाहों से देखते हैं? जिसके पुत्रों पर अफ्रीका और फ़िज़ी आदि देशों में घोर अत्याचार होते हैं। जब हम विचारते हैं कि हमारी यह दीन हीन दशा क्यों होगई? वह भारतभूमि जिस में भरत और लक्ष्मण जैसे भाई, महात्मा कृष्ण जैसे योगी, भीष्म पितामह जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ, स्वा० शंकराचार्य जैसे तत्वज्ञानी, महाराणा प्रताप जैसे शूरवीर देशभक्त हो गये हों आज इस दशाको क्यों प्राप्त है? तो उत्तर मिलता है है कि आज कल हम भारतियों के दिलों में अपनी भारतमाता के गौरव का कुछ भी ध्यान नहीं। हम अपने देश के प्रति अपने कर्तव्यों को स्वप्न में भी नहीं विचारते। यही कारण है कि हम में एकता और संगठन का अभाव है। यह स्पष्ट है कि जहाँ एकता नहीं, प्रेम नहीं, पारस्परिक सहानुभूति नहीं, वहां राग द्वेषादि अवश्य अपना डेरा जमाते हैं, और वहां के मनुष्य नाना प्रकार के दुखों की अग्नि ज्वाला में जला करते हैं। नागरिकता (citizen ship) का उच्च भाव इसी बुनियाद से सम्बन्ध रखता है। स्वार्थसाधन और स्वदेशभक्ति में विरोध है। स्वार्थी व्यक्ति अपने ही सुख की सामग्री जुटाया करता है उसे दूसरे के सुख दुख से कोई प्रयोजन नहीं। ऐसे मनुष्य समाज की उन्नति में विघ्न रूप हुआ करते हैं। समाज और देश की अवनति से स्वार्थी व्यक्ति स्वयं भी अवनत दशा को प्राप्त होता चला जाता है। यही कारण है कि महात्मा गांधी जैसे तपस्वी नेता के अनथक परिश्रम से भी भारत की उन्नति होती नहीं दीख पड़ती। प्रत्येक कार्य क्रम की कुछ दिन चलकर इतिश्री होजाती है। स्वार्थ ने जनता को अन्धा बना रक्खा है। इसी को लक्ष्य में रखकर दूरदर्शी सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज का नवां नियम ही बना दिया है:—"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये।" इसी नियम की पुष्टि 'जान म्यौर हेड' ने भी अपनी Ethics (आचार नीति) नामक पुस्तक में की है। अस्तु।

अमेरिका की उन्नति का एकमात्र कारण स्वदेशभक्ति ही है। अंग्रेज लोगों को ही देखिये। वे चाहे जिस देश में रहें अपनी Sweet country अर्थात् प्यारी जन्म-भूमि को नहीं भूलते। सन् १७१६ ई० में जब देहली का यवन बादशाह 'फ़रुर्खसियर' बीमार हुआ और सारे हकीमों औरवैद्यों का परिश्रम विफल हुआ तो दैवयोग से एक अंग्रेज़ी डाक्टर हेमिल्टन (Hamilton) को उसे निरोग करने का यश प्राप्त हुआ। बादशाह प्रसन्न हुआ। उसने कहा "ऐ नेक डाक्टर! इस वक्त जो तेरी इच्छा हो माँग ले"। हेमिल्टन यदि चाहता तो इस समय करोड़पती हो सकता था। परन्तु नहीं, उसने कहा "ऐ बादशाह! तूकेवल बंगालमें मेरे देशवासी

भाइयों से व्यापार पर कर लेना छोड़दे और कुछ गांव गुज़ारे की भांति प्रदान कर। इस के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये।" देखिये, इस अंग्रेज़ में कितना स्वदेश प्रेम था। यह उसी का फल है कि आज अंग्रेज़ जाति बड़े समारोह से हम पर शासन कर रहा है।

जापान को ही देखिये कितनी कुछ उन्नति कर गया है! यह सोचिये तो सही, वह कौनसी शक्ति थी जिसने जापान ऐसे छोटे टापू को रूस ऐसे विस्तृत राज्य पर विजय लाभ कराया? वह कौनसा बल था जिसने 'कोरिया' को भी जापानी राज्य में शामिल कर लिया था? पाठक! यह स्वदेश प्रेम का ही बल है जिससे साहस का अंकुर स्वयमेव हृदयक्षेत्रों में फूट निकलता है।

लेख बहुत बढ़ता जाता है अतः जापानियों के स्वदेश प्रेम के केवल दो दृष्टान्त देकर यह दिखाया जाता है कि उन्हें 'जापान शब्द' से भी कितना प्रेम है।

(१) एक समय एक जहाज पर कुछ जापानी और कुछ भारतीय छात्र यात्रा कर रहे थे। दैवात् भारतीयों के पास भोजन की सामग्री समाप्त होगई। अब वे भूख से विकल होने लगे। एक जापानी युवक यह दृश्य न देख सका। उसका कोमल हृदय पिघल उठा। उसने अपने पास से कुछ भोज्य सामग्री उनके निमित्त प्रस्तुत की। जब जहाज़ अभीष्ट स्थान पर पहुंचा और वे लोग एक दूसरे से अलग होने लगे तब वह जापानी युवक अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन भारतीय छात्रों से कहने लगाः—"भाइयो! मुझ से जो सत्कार आप लोगों का न बन पड़ा हो उसके लिये उदारता पूर्वक क्षमा करना, और अपने देश में जाकर 'एक जापानी हम लोगों का उचित सत्कार भी न कर सका'। ऐसा कहकर हमारे देश को कलंकित न करना।"

(२) एक दिन एक जापानी चोरी करने गया और एक घड़ी चुरा लाया। किन्तु जब घर पहुंच कर उसे देखा तो उस पर ज़ार रूस का चित्र बना हुआ था। उसने झट घड़ी के मालिक को एक पत्र लिखाः—महाशय! मैं ज़ार रूस की मनहूस तसवीर देखना नहीं चाहता और न यह घड़ी जिसे मैंने आप के यहां से चुराई है अपने पास रखना पसन्द करता हूं। मुझे अपने देश के शत्रु के राज्य की बनी हुई वस्तु से अत्यन्त घृणा है। अतः यह आपकी घड़ी आप ही को वापिस की जाती है। आपको मुबारक रहे।" पाठक! जिस देश के चोरों के भी ऐसे उच्च विचार हों। क्या वह कभी उन्नति में पीछे रह सकता है। सच हैः—

"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

प्यारे नवयुवको! भारतमाताके कल्याण के लिये तन-मन-धन सब कुछ अर्पण करने को तैयार रहो। कर्मवीर बनो। तुम से बूढ़ी भारतमाता को बहुत कुछ आशा है। क्या तुम्हें देश का दारिद्र देख कर दुख नहीं होता? प्यारे भाइयो! साहस पूर्वक ईश्वर का भरोसा रख कर (With a heart within and God overhead) कार्यक्षेत्र में उतरो। हम आप प्रेम से मिलकर सरतोड़ प्रयत्न करें। माता के अनाथ बच्चों की परवरिश करें, बालविधवाओं का हृदय शीतल करें, अछूतों का उद्धार करें, समाज को संगठित करें, कलाकौशल की उन्नति करें। साहित्य का भण्डार भरें, प्राणीमात्र पर दया करें, वैदिक सिद्धांतों का प्रचार करें। और

जातीयता के उस पवित्र पौदे की दुष्ट नर पिचाशरूपी चौपायों से रक्षा करें जिसे दया में आनन्द प्राप्त करने वाला एक सच्चा सुधारक अपने रक्त से सींच कर पुनर्जीवित कर गया है। महात्मा भर्तृहरिजी का कथन हैः—

सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥

अर्थात् संसार में पैदा होना उसी का सफल है जिसके द्वारा वंश उन्नति को प्राप्त हो वैसे तो मरकर कौन नहीं पैदा होता है? अर्थात् सभी पैदा होते हैं। अतः भारत वासियो! परोपकार करना सीखो। देश का हित और सेवा ही मुख्य उद्देश्य समझो क्योंकिः—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः,
परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
पयोधरो वर्षति नात्महेतवे,
परोपकाराय सतां विभूतयः॥

कोई उर्दू कवि कहता हैः—

वही इन्सान है जिसमें कि,
हमदर्दी की आदत हो।
वही है मर्द कामिल जो,
शरीके रंजो राहत हो॥

इसलिए

भिन्न वर्ण या भिन्न भांति के तुम भी सब हो,
किंतु तुम्हारा एक लक्ष्य हो एक ही ढब हो।
मुसलमान या आर्य, जैन, ईसाई तुम हो।
स्मरण रहे इस भूमि में भाई तुम हो।
रूप रंग आकार में, भाषा में तुम भिन्न हो।
जन्म भूमि सेवा करो, यह कर्त्तव्य अभिन्न हो।

————

विश्वास

लेखक—श्री 'जीवन'

संभव है दिननाथ, बिना पंकज खिल जावे।
अचल हिमालय हाथ, लगाने से हिल जावे।
पत्थर भी गल जाय, तेल औ जल मिल जावे।
प्रकृति-नियम टल जाय, वायु बादल मिल जावे।
संभव है यह 'भागीरथी, की उल्टी धारा बहे।
यह संभव नहीं परन्तु अब 'पराधीन भारत रहे॥

विचित्र चोर

अनुवादिका—कुमारी सुमित्रा देवी जलविद्



कई मनुष्योंका कथन है कि यदि कोई एक इन्द्रिय अपना कार्य करना छोड़ दे तो उसके स्थान में अन्य एक आध इन्द्रियों की शक्ति प्रबल हो जाती है और क्षीण इन्द्रिय की क्षति की पूर्ति कर देती है। मि० वसन्तराय की आंखों पर इतनी दृढ़ पट्टी बंध चुकी है कि वे समीपस्थ वस्तु को भी भली भांति नहीं देख सकते हैं। इस अवस्था में इनकी श्रवणशक्ति को पूर्वापेक्षा अधिक बलवती होजाना चाहिये। परन्तु इनके शयनगृह का द्वार खोला गया है इस बातकी उन्हें तनिक खबर न हुई। आगन्तुक ने अपनी जिह्वा का ताला खोला तभी वे जान सके कि इस घर में उनके अतिरिक्त कोई और भी विद्यमान है।

मि० वसन्तराय जब वकालत करते थे तब सम्पूर्ण सूरत जिले में इनकी समता का वकील न था परन्तु लगभग एक वर्ष से आंखों की बीमारी से उन्हें वकालत स्थगित करनी पड़ी है। इस समय उनकी अवस्था ५५ वर्ष की है। कानून के शास्त्री होने के अतिरिक्त अच्छे लेखक भी हैं। जिस समय वकालत करते थे उस समय उन्होंने दो तीन छोटे २ उपन्यास भी लिखे थे परन्तु प्रेक्टिस छोड़ने के पश्चात् उनके लिखे हुए "अधोगति के मार्ग" नामक उपन्यास ने थोड़े से समय में ही गुजरात में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। उसकी पहली आवृत्ति हाथों हाथ बिक गई।

वकालतके समय इन्होंने खूब धन कमाया था। लोग कहते हैं कि इनका लगभग लाख दो लाख रुपया नक़द जमा है, इसके अतिरिक्त शहर में एक सुन्दर भवन है और एक बड़ी सुन्दर कोठी भी है। प्रेक्टिस छोड़ने के बाद मि० वसन्तराय ने शहर का मकान किराये पर दे दिया है और कोठी में स्वयं निवास करते हैं। सन्तान में एक मात्र पुत्री कुंज लक्ष्मी है। कुंज की माता आज से दो वर्ष पूर्व कुंज को संसार में मातृसुख से वंचित कर परलोक गामिनी हो चुकी हैं। माता की मृत्यु के पश्चात् घर का कार्य भार तथा पिता की टहल सेवा का बोझ कुंज पर ही पड़ा। यौवन के आंगन में स्थित, सुशिक्षित १८ वर्ष की बालिका अपने पिता की एक मात्र सहाया है। कुंज का विवाह सूरत में ही एक प्रतिष्ठित और अमीर घराने के सुशिक्षित, सुन्दर नवयुवक विनोदराय के साथ हुआ है। विवाह सम्बन्ध से कुछ काल पश्चात् ही विनोद ने अभ्यास क्रम की वृद्धि के लिये विदेशयात्रा की। पति-विरह के तीन वर्ष का समय कुंज ने पिताकी सेवा शुश्रूषा में और पति के नियमित आने वाले पत्रों के पढ़ने में तथा लिखने में व्यतीत किया।

मि० वसन्तराय के नेत्र लगभग १५ दिन से अधिक बिगड़ गये हैं। चिकित्सक ने आंखों पर मज़बूत पट्टी कस कर बांध दी है कि वे आँखों से श्रम न लें परन्तु १५ दिन की अंधावस्था उनकी श्रवणशक्ति को तीव्र न कर सकी। आगन्तुक जब बोला तभी उसकी उपस्थिति का ज्ञान उन्हें हुआ।

आगन्तुक ने कहा—"आप देख सकते हैं?" आवाज़ अपरिचित थी।

वसन्तराय ने द्वार की ओर घूमकर पूछा 'यह कौन हैं ?'

आगन्तुक—"भूत हूं ? मैं कौन हूं, यह जानने की आप को आवश्यकता नहीं है। परन्तु मैं क्या कर रहा हूँ यह बता सकेंगे" ?

वसन्तराय—"मेरी बला जाने कि तुम क्या कर रहे हो और क्या करोगे"।

आगन्तुक ने आश्चर्य से कहा—"मैं आप के सामने तेज़ चमकती हुई छुरी लिये खड़ा हूँ सो क्या आप नहीं देख रहे हैं।"

वसन्तराय ने सिर हिला कर जवाब दिया—मैं बिलकुल नहीं देख सकता यह प्रथमवार है अतः मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।"

थोड़ी देर के पश्चात् वसन्तराय को मालूम हुआ कि कोई किवाड़ बन्द कर रहा है। वसन्तराय डरकर दोनों हाथ जोड़कर बैठे रहे। कुछ देर तक घर में निस्तब्धता सी छा गई। पुनः एकाएक शांति भंग हुई। कोई अत्यन्त आवश्यक बात कहता हो इसप्रकार आगन्तुक ने कहा—"मैं चोर हूँ"

वसन्तराय चौंके। उनके मुख से एक शब्द न निकला। वे छुरी के भय से चिल्ला न सके। यदि चिल्लाते तब भी सहायता की सम्भावना कम ही थी क्योंकि उनकी कोठी एकान्त में और अन्य बंगलों से बहुत दूर थी। उन्हें मौन साधे देख आगन्तुक ने विषय बढ़ाया।

आगन्तुक—"कुछ देर पहिले मैंने एक युवती को नौकर के साथ बाहर जाते देखा था, मुझे भास हुआ कि कोठी में अब कोई नहीं है अतः मैं अन्दर प्रविष्ट होगया।"

वसन्तराय ने अपनी उपस्थितिको अनावश्यक जतलाते हुए कहा—"व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाय तो सत्यतः यहां कोई भी नहीं है, मैं हूं परन्तु नहीं जैसा ही"।

आगन्तुक ने सहानुभूति दिखलाते हुए कहा—"क्यों, क्या हुआ है ?"

वसन्तराय—"मैं अन्धा होगया हूं"

आगन्तुक—"कैसे" ?

वसन्तराय—आंखकी पुतलियां सूज गई हैं"

आगन्तुक—"बहुत दुखती हैं।"

वसन्तराय—"दुखती तो नहीं हैं, परन्तु मेरा मग़ज़ सुन्न होगया है। मुझसे कोई काम नहीं होता बस दिनभर बैठा ही रहता हूँ बिचारी कुंज भी घबड़ा जाती होगी।"

आगन्तुक—"कुंज कौन ? आप की पुत्री ? जो अभी बाहर गई है ?"

वसन्तराय—"हाँ वही। घरमें और कोई स्त्री नहीं है"

आगन्तुक—"आह ! उसने बिचारे उस नवयुवक को बहुत तंग किया है। वह लगभग आध घंटे से एक टक लगा कर उसकी राह देख रहा था।"

वसन्तराय ने आश्चर्य से पूछा—"नवयुवक ! कौनसा युवक" ?

कुंज की राह निहारने वाला युवक कौन हो सकता है यह वे न समझ सके। कुंज के चरित्र पर शंकित होने के लिए कोई प्रमाण उनके पास न था। परन्तु फिर भी चोर का कथन उन्हें सत्य जंचा। अन्त में निराश होकर गुनगुनाये "हे प्रभु"। वसन्तराय

की आकृतिसे चोर समझ गया । उसे प्रतीत हुआ कि भाला निकल गया । बात टालनी चाही । उसने कहा "नहीं, नहीं । मैंने तो योंही मज़ाक से कहा था" ।

बसन्तराय मनुष्य स्वभाव पहिचानने में अभ्यस्त थे । वकालत में ३० वर्ष व्यर्थ नहीं खोये थे, बोले "झूठ मत बोलो तुमने जो देखा है उसे सच २ कहो ।"

आगन्तुक—"मैं आप को दुःखी नहीं करना चाहता । जितना कहा उतना ही बस है ।"

बसन्तराय-"इस से मुझे अधिक दुःख होगा । आधी बात कहने से जो शंका उत्पन्न हुई है वह उग्र रूप धारण करेगी । इसलिए सच्ची बात पूरी २ कह दो ।"

आगन्तुक—"मुझे बहुत शोक है, क्या आप को विदित न था" ?

बसन्तराय—"यदि मुझे ज्ञात होता तो पूछने की आवश्यकता ही क्यों होती ?"

आगन्तुक—"मैंने तो समझा था कि दोनों पति पत्नि होंगे । यहां से कुछ दूरी पर एक कोठी है उसकी चौक में कब से एक चट्टान के पास सूखी झाड़ियों में खड़ा बाट देख रहा था । देखने से तो एक प्रतिष्ठित, सुशिक्षित और सज्जन जान पड़ता था । आपकी पुत्री उसको देखकर आश्चर्यान्वित हुई है ऐसा प्रतीत होता था । परन्तु क्षणमात्र में दोनों के नेत्रों में स्नेह की ज्योत्स्ना चमक उठी । मैंने सोचा कि दोनों अभी गाढ़ आलिंगन करेंगे परन्तु नौकर साथ था इसलिए ऐसा न करके दोनों वहीं चट्टान पर बैठ गये और नौकर कोठी में चला गया ।"

(२)

इतना सुनने पर भी बसन्तराय सच्चा भेद न जान सके, उनके मस्तिष्क में शंका ने अपना घर पूरी तरह से कर लिया था, अतः वे कुछ निर्णय न कर सके ।

बसन्तराय—"हाय कुंज ने अन्त में इसी मार्ग का अनुसरण किया. मेरी दी हुई शिक्षा सब व्यर्थ हुई ।"

कुंज की मासी ललिता इस कोठी में रहती थी । प्रातःकाल उसने कुंजको दोपहर के समय अपने यहां बुलाने के लिये नौकर के हाथ चिट्ठी भेजी थी । कुंज मासी की आज्ञा शिरोधार्य मानकर बसन्तराय से छुट्टी लेकर यहां आई थी । बसन्तराय विचार सागर में गोते खाने लगे "क्या वह चिट्ठी झूठी थी ? ललिता की नहीं हो सकती ? मेरी आंखों की ख़राबी से क्या कुञ्ज ने यह अनुचित लाभ लिया है ? नहीं, नहीं । यह कभी नहीं हो सकता । कुञ्ज मुझे कभी धोखा नहीं दे सकती । उसका चरित्र नितान्त निर्मल है मैं व्यर्थ ही शंका कर रहा हूं ।"

परन्तु थोड़ी देर में फिर वही शंका उठी "हरे हरे ! कुञ्ज ! अन्त में तूने यही मार्ग पकड़ा ? तुझे फंसाने वाला यह बदमाश कौन होगा ?" बसन्तराय के हाथ इस भांति हिल रहे थे मानो अभी उस दुष्ट युवक की गर्दन मरोड़ देंगे ।

आगन्तुक चोर से बसन्तराय की यह दशा न देखी गई । उसने उनकी शंका दूर करने का बहुत प्रयत्न किया । परन्तु परिणाम उल्टा हुआ । बसन्तराय अत्यन्त कुपित हुए ।

बसन्तराय—'मैं सब समझता हूँ तुम झूठ मत बोलो, झूठ बोलने से मेरी वेदना घटनेके स्थानमें बढ़ रही है" ।

कुछ देर के बाद वसन्तराय स्वस्थ हुए। अपरिचित व्यक्ति के सामने घर के छिद्र व्यक्त हो रहे हैं यह उनसे देखा गया। उन्होंने बात टालने के लिए कहा "अच्छा इसे रहने दो। बतलाओ तुम किस प्रयोजन से आये हो। क्या चोरी करोगे ?"

चोर—"हां। इसी लिये तो आया हूँ।"

वसन्तराय—"मैं भी बड़ा भाग्यशाली हूँ। एक ओर यह आंख की पीड़ा, पिछले सप्ताह कोई चोरी कर गया। अभी यह भूला ही न था कि इस लड़की की चिंता जागी और तू भी फिर चोरी करने आया है, और अभी न जाने क्या २ बाकी है जो होगा ?"

आगन्तुक—"अधोगति के मार्ग" के लेखक वसंतराय आप ही हैं क्या ?

वसन्तराय—"हां मैं ही हूँ"।

आगन्तुक—मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा है कि आप के यहांसे कोई चोर आपकी अलमारी तोड़ कर आपकी लड़की की हीरे की चूडियां, एक मोती का हार और दो सौ रुपये के नोट चुरा ले गया है। क्यों यह बात ठीक है" ?

वसन्तराय—"हां ठीक है"।

आगन्तुक—समाचार पत्रों में यह भी लिखा था कि भाग्य से गुप्तखाना चोर की नज़र में नहीं पड़ा इसलिए अन्य अमूल्य आभूषण बच गये हैं। आप ने यह समाचार पत्रों में देकर बुद्धिमत्ता नहीं दर्शाई। मैं समझता हूँ कि अब भी वे बहुमूल्य आभूषण उसी गुप्त स्थान पर पड़े हैं।

वसन्तराय को अब ख्याल आया कि वे आभूषण वहां से हटा लेने उचित थे परन्तु अब हो ही क्या सकता था ?"

चोर—"समाचारपत्रों ने आपके सिर पर इस आपत्ति के टूटने से बहुत सहानुभूति प्रकट की है। आप एक लोकमान्य लेखक हैं अतः लोगों ने चोर को बुरा भला कहा था। मेरा खयाल है कि आपके बचे हुये आभूषण भी चोरी चले जायं तब भी आपको लाभ ही होगा। आपके शिर पर पड़ी हुई विपत्ति का ज्ञान लोगों को होगा और सब आपके साथ हमदर्दी प्रकट करेंगे। परिणाम में आप के ग्रन्थों की आवृत्तियां एक के बाद दूसरी इस प्रकार बिक जायेंगी। मैं भी आपकी पुस्तकें पढ़ने वाला शौकीन हूं। "अधोगति के मार्ग" मुझे सब से अधिक प्रिय लगता है। यहां आने के लिये प्रस्तुत हुआ तब वह पुस्तक साथ ही लेता आया। यदि आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे तो मैं चोरी किये बिना ही लौट जाऊंगा। मैं अपनी इस पुस्तकमें आपके हस्ताक्षर कराना चाहता हूँ। अपने माननीय लेखक के हस्ताक्षर वाली पुस्तक प्राप्त कर सकें ऐसे भाग्यशाली चोर बहुत कम मिलेंगे।"

वसन्तराय—"परन्तु मैं अपने हस्ताक्षर किस भांति करूं ? मुझे बिल्कुल दिखाई नहीं देता।"

चोर—"इस में दिखाई देने न देने की क्या बात है, जहां मैं कहूं आप नाम लिख दीजियेगा ; बस ! काम समाप्त हुआ"

वसन्तराय—"बहुत अच्छा लाओ, यदि चोरी की विपत्ति नाम लिख देने से ही टल जाती है तो इससे उत्तम क्या हो सकता है!" चोर ने पुस्तक उनके आगे रख दी, वसन्तराय ने जेब से फाउन्टेन पेन निकाल कर उसके बताये स्थान पर अपना नाम लिख दिया।

चोर—"आहा कैसे सुन्दर अक्षर हैं। मैं समझता हूँ आप देखते हुए भी इतना सुन्दर न लिख सकते। मेरे हृदय में आपके प्रति सचमुच बहुत मान है। आपकी पुस्तक में मेरे सदृश काम करने वाले लोगों के साथ बहुत सहानुभूति प्रकट की है अतः सुशिक्षित चोरों के हृदय में आपके लिए सम्मान का भाव प्रादुर्भूत होना स्वाभाविक है। अच्छा, अगली चोरी के विषय में पुलीस तक़ाज़ा करती ही होगी।"

वसन्तराय—"हां"।

चोर—"कुछ पता लगा कि नहीं?"

वसन्तराय—"कुछ भी नहीं"।

चोर—"कहां से लगे? इनके काम ही ऐसे हैं। इनकी बेपरवाही के कारण हमारा मार्ग और भी सरल हो जाता है। यही कारण है कि चोरी का धंधा बहुत ही उत्तम है। मुझे पुलीस के साथ अत्यन्त स्नेह है। साधारण जन मेरे कार्य में खलल मचाते हैं परन्तु पुलीस वाले ऐसी मूर्खता नहीं करते हैं। अन्य मनुष्य आधी रात को भी गाढ़ निद्रा से जाग पड़ते हैं, और कोई तो चोर चोरी कर रहा हो तब अचानक आकर उसकी मेहनत व्यर्थ गुम कर देते हैं। इसलिए कई बार चोरों को अपना काम छोड़ कर छुट्टी लेनी पड़ती है। परन्तु पुलीस ऐसा अत्याचार नहीं करती। यह सदा सोई रहती है और चोर को स्वतन्त्रता पूर्वक काम करने की छुट्टी दे देती है। हां। यह तो हुआ। पर अब मैं अपना समय व्यर्थ खो रहा हूँ। आपकी पुत्री वापिस कब लौटेगी?"

वसन्तराय—"लगभग आध घंटे में लौटने के लिए कह गई है।"

चोर—"तबतो अब मुझे छुट्टी लेनी चाहिए। मेरे यहां रहते वह यहां आ पहुंचेगी तो मुझे देख कर भयभीत हो शोक करेगी......। नहीं! मेहरबान अब आपकी अलमारी की ओर नज़र भी नहीं करूंगा"

वसन्तराय कुछ कहना ही चाहते थे कि चोर झट बोल उठा—"आप के हस्ताक्षरों से मुझे पूर्णतया सन्तोष हो गया है। परन्तु जाने से पहिले एक चिट्ठी लिखकर आपकी पुत्री को एक सलाह देना चाहता हूँ। सो यह कि अपने वृद्ध, चक्षुहीन पिता को अकेले घर के किवाड़ खुले छोड़ कर चले जाना मानो चोर को निमन्त्रण देना है।"

यह कह कर चोर ने एक काग़ज़ फाड़ा और उस पर कुछ लिखा—काग़ज़ पर चलती हुई लेखनी की आवाज़ वसन्तराय सुन सके। चोर ने काग़ज़ की तह करके मेज पर धर दिया। फिर कहा "अच्छा, तो मैं

आज्ञा मांगता हूं और मेरी दिली इच्छा है कि आप की सब चिन्तायें दूर हो जाय।" उस चोर ने किवाड़ खोले और बाहर निकल कर फिर बन्द कर दिये। इस बार किवाड़ के खुलने और बन्द होने का शब्द स्पष्ट बसन्तराय सुन सके।

(३)

चोर कोठी से निकल कर २० क़दम गया होगा कि उसे कुंज घर लौटती हुई दिखाई दी। उसे देखकर वह ठहर गया। कुंज के समीप जाने पर चोर ने उसे ठहर जाने के लिये कहा। एक अपरिचित व्यक्ति को इस प्रकार रोकते देख कुंज डरी। नौकर कुछ बोलना चाहता था परन्तु ठहर गया।

चोर—देवी कुंज! मैं अभी आपके पिता के पास से आ रहा हूँ; आपके पिताजी की लिखी पुस्तकें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। मुझ पर कृपा कर के उन्होंने मेरी इस पुस्तक पर अपना नाम भी लिख दिया है।" यह कह कर उसने वह पुस्तक कुंज को दिखाई। पुस्तक देखने से कुंज को विश्वास हो गया कि यह सत्य कह रहा है।

चोर—"मुझे लगता है कि मेरे द्वारा आपके पिता आपकी गुप्त बात सुन कर शंकित हो गये हैं।"

कुंज—"कौनसी गुप्त बात?"

चोर—"उस कोठी के सामने खड़े हुए युवक को मिलने गई थी, वही बात।"

कुंज—"अच्छा फिर क्या हुआ? पिता जी ने क्या कहा?"

चोर—"मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ था कि वे बहुत क्रुद्ध हो गये हैं।"

कुंज—"हे प्रभु! न जाने उनके मन में कैसी कैसी शंकायें उत्पन्न हुई होंगी। उनके हृदय को कितना दुख हुआ होगा!"

चोर—"देवि। मुझे इसके लिये अत्यन्त शोक है, मेरे मुख से अकस्मात यह बात निकल गई।

कुंज—"इसमें आपका या मेरा दोष नहीं है। जब मैं ही नहीं जानती थी तब पिता जी को कहती ही क्या?" कुंज अपने पिता के संदेह को दूर करने के लिए कोठी पर जाने के लिए विह्वल हो उठी। इस लिए चोर को वहीं विचार सागर में छोड़ कर चली गई।

चोर कुछ देर तक वहीं खड़ा रहा। पुनः एक दम कुछ सोच कर ललिता की कोठी के पास शीघ्रता से क़दम बढ़ाता हुआ पहुंच गया। उस कोठी के सामने जिस स्थान पर वह युवक ठहरा था वहीं वह एक पल के लिये ठहर गया। 'अन्दर जाना चाहिये कि नहीं' वह इसी उधेड़ बुन में पड़ा था कि वही नवयुवक और उसके पीछे एक ३५—३६ वर्ष की स्त्री कोठी से बाहर निकली।

चोर ने उस नवयुवक को इशारे से अपने पास बुला कर कहा "कुंज को इस समय आपकी अत्यन्त आवश्यकता है। मैं अभी अभी उसकी कोठी पर से आ रहा हूँ आप शीघ्र वहां पहुंचियेगा।"

नवयुवक—" परन्तु आप कौन हैं? आपको किसने भेजा " ?

चोर—यह बहुत लम्बी बात है। आप संक्षेप में समझ जाइये। देर मत कीजिये नहीं तो कुंज को दुःखी होना पड़ेगा। आप दोनों यहाँ इस चट्टान पर बैठे थे सो मैंने दूर से देखा था। यह बात जब मैं वसन्तराय को मिलने गया तब अकस्मात् मेरे मुख से निकल गई। यह सुन कर वे अत्यन्त कुपित हुए, उन्होंने समझा कि न जाने किस बदमाश ने मेरी लड़की को अपने पाश में फंसा लिया परन्तु आप तो वैसे नहीं दीखते।"

नवयुवक—" आप निरे पूरे गधे हैं। दूसरों की बातों से आप को क्या प्रयोजन? बदमाश कैसा और बात कैसी। मिस्टर! आप जानते हैं? कुंज मेरी पत्नी है"

यह नवयुवक और कोई नहीं वरन् विनोदराय थे। वे चोर को उसी प्रकार आश्चर्य्य सागर में डुबा कर ललिता के साथ कुंज की कोठी की ओर रवाना होगये।

(४)

चोर कुछ देर तो किं-कर्तव्य विमूढ़ की न्याईं खड़ा रहा। परन्तु पीछे से किसी ने उसके कन्धों पर हाथ रखा तभी उसे कुछ ज्ञान हुआ। उसने पीछे से घूमकर देखा तो सूरत के पुलिस डिपार्टमैंट के इन्सपैक्टर को अपनी ओर घूरते हुए पाया।

इन्सपैक्टर—" क्यों महाशय जी! आज कौनसा शिकार मारने निकले थे " ?

चोर ने कृत्रिम रोष दिखाते हुए कहा-"अर्थात्? आप क्या कहना चाहते हैं?"

इन्सपैक्टर—" अपनी चतुराई रहने दीजिये। आज से चार दिन पूर्व मैंने आपको देखा था तभी मैं समझ गया था कि आप कोई चीनी साहूकार हैं। तुम्हारी चाल ढाल से ही मैंने समझ लिया था कि तुम कोई रहस्य रखते हो। तभी से मैं तुम्हारे पीछे २ घूमता हूं। वसन्तराय की कोठी पै जाते हुए मैंने तुम्हें देखा था। आज से आठ दिन पहिले वहां चोरी हुई थी सो तुम्हारा ही पराक्रम है। आज कोई शिकार हाथ लगा या नहीं " ?

चोर—आपने इतना कष्ट उठाया था यदि थोड़ा सा और कष्ट उठा कर कोठी पै आते तो समझ सकते कि मैं वहां क्यों गया था। मैं वहां मि० वसन्तराय को मिलने गया था। उनकी पुस्तक मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। इस पुस्तक पर उनका नाम लिखाना था" यह कहकर वह पुस्तक दिखाई।

परन्तु इन्सपैक्टर कुंज की तरह सहज में मान जाने वाला आसामी न था वह बोला "मुझे लगता है अवश्य तुमने वहां से कुछ चुराया है। मि० वसन्तराय की अंधावस्था से अवश्य तुमने कुछ लाभ उठाया होगा "।

चोर—" यदि आपको अब भी सन्देह है तो मेरी तलाशी ले लीजियेगा "।

इन्सपैक्टर—"यूं तो तुम बड़े चतुर हो। परन्तु कोठी पर चल कर वसन्तराय के सामने ही तलाशी ली जायगी।"

चोर—"इस समय वहां जाना उचित नहीं है। एक तो मि० बसन्तराय आंखों की पीड़ा से पीड़ित हैं। इसके सिवाय हम दोनों में जो बात चीत हुई उस में एक ऐसी बात होगई है जिस से त्रस्त हो रहे हैं। और इसी समय उनके दामाद भी वहीं गये हैं। इस लिये वहां जाकर उन्हें दुःखी करना ठीक नहीं है।

इन्सपैक्टर ने समझा कि चोर कोठी पर जाने में घबड़ाता है अतः उसने कहा "इसकी कोई चिन्ता नहीं है तुम्हें चलना ही पड़ेगा"। अब चोर का वहां चले बिना छुटकारा ही न था इस लिए उसे चलना ही पड़ा। दोनों वसन्त राय की कोठी पर गये।

(५)

चोर के वचनों से कुंज के हृदय पर बड़ा आघात पहुंचा। वह पिता के मन को शांत करने के लिये बड़ी शीघ्रता से मार्ग तय करके कोठी के द्वार पर पहुंची। उसने धीरे से द्वार खोला परन्तु फिर भी वसन्तराय ने पूछा "यह कौन है?"

कुंज—"पिता जी मैं हूं"

वसन्तराय—ज़रा कुपित होकर "हां तू कहां गई थी?"

कुंज—"मासी जी के यहां।"

वसन्तराय—"अरे लड़की! झूंठ मत बोल। सच बतला तू कहां गई थी?"

कुंज—"पिता जी घबराइये नहीं शान्त हूजिए मैं अभी आपको बतलाती हूं"

वसन्तराय—"अरे दुष्टा! बातें मत बना। जा मैं तेरा मुंह देखना नहीं चाहता"। पिता के यह वचन सुन कर कुंज अपने कमरे में लेट कर रोने लगी, रोते रोते आंखें सूज गईं। परन्तु उसके मन में यह इच्छा बनी हुई थी कि पिता को किसी न किसी प्रकार शान्त करना चाहिये। वह वहां से उठ कर फिर पिता के पास आई और बोली "पिता जी! आपको किसी ने झूंठ कह कर बहका दिया। आपकी कुंज ऐसा काम करने से पूर्व तापती मैय्या की गोद में खेलना अधिक पसन्द करेगी"।

वसन्तराय—"मुझे किसी ने झूंठ कह दिया है यह तुम्हें किसने कहा?"

कुंज—"जो मनुष्य आप से वह बात कह गया है, उसी ने रास्ते में मुझे यह बात कहने के लिये रोक लिया था। वह कहता था कि वह आपको मिलने आया था। उसने यह बात आपसे कह दी थी इस लिये मुझ से क्षमा माँगता था।

वसन्तराय—"हाँ, क्यों न मांगता? पहिले तो एक पिता को पुत्री के विषय में शंकित करना फिर क्षमा मांगना! अच्छा बता तो सही यह बात सत्य है या झूंठ?"।

कुंज—"सत्य भी है और असत्य भी है!"

वसन्तराय—"इस का क्या मतलब?"

कुंज—" पिता जी ! क्या आपको विश्वास हो सकता है कि आपकी यह पुत्री आपको कलंकित कर सकती है ? आप का संदेह झूंठा है । मेरी मासी की चिट्ठी प्रातः काल आई थी यह आपको याद होगा । क्यों आई थी यह मैं भी नहीं जानती थी । जब उनकी कोठी पर गई तभी उनका रहस्य समझ सकी "।

वसन्तराय—"कौन सा रहस्य "?

कुंज—" मुझे कहते शरम लगती है ।"

" तब मैं कहूं " किवाड़ पर से ही ललिता की आवाज़ आई । उसके पीछे २ विनोदराय भी थे । इन दोनों को देख कर कुंज का मुंह शरम से लाल हो आया ।

ललिता—" वसन्तराय ! आपके दामाद आप से मिलने आये हैं "।

वसन्तराय—" कौन ? विनोदराय ? यहां कैसे ? विदेश से कब लौटे ?

वसन्तराय ने एक दम दो तीन प्रश्न इकट्ठे पूंछ डाले उनके आश्चर्य का वारापार न रहा ।

विनोदराय—" पिता जी ! मैं कल की मेल से आया हूँ । आप सबको आश्चर्य में डालने के लिये ही मैंने पहिले सूचना नहीं दी थी, आपकी बीमारी का समाचार मुझे बम्बई में मिला था । मैंने तार द्वारा ललिता चाची को खबर देदी थी इस लिये उन्होंने सब प्रबन्ध कर रक्खा था ।"

रिश्ते में ललिता कुंज की मासी और विनोद की चाची लगती है । दोनों वियोगी प्रेमी युगल अकस्मात् मिलने का आनन्द अनुभव करें इसी लिये उसने प्रातः की चिट्ठी में यह समाचार नहीं लिखा था ।

वसन्तराय विनोद से कुशल क्षेम पूछ रहे थे कि एक दम कुंज चिल्ला उठी " अरे यह क्या ? यह चोरी चली जाने वाली चूड़ियां और हार यहां कैसे आया ?" ऐसे कहकर वह भाग कर मेज़ के पास गई । " अरे २००) के नोट भी पड़े हैं यह कौन रख गया होगा ? और यह चिट्ठी किस की है " ?

वसन्तराय—" चिट्ठी में क्या लिखा है " ?

कुंज चिट्ठी पढ़ने लगी । उसके ऊपर लिखा था " तुम्हारे पिता के नाम के बदले में ।" वसन्तराय इन शब्दों का मर्म समझ गये वे और के सामने भेद प्रगट करना ही चाहते थे कि द्वार से आवाज़ आई "मि० वसन्तराय ! आपको मेरे मित्र एक इन्सपेक्टर मिलना चाहते हैं । आज्ञा हो तो अन्दर लाऊं ?"

यह आवाज़ उसी चोर की थी दोनों अन्दर आये । कुन्ज के मुख पर खोये हुये आभूषण मिलने का आनन्द स्पष्ट झलक रहा था । चोर ने पूछा—

क्यों बहिन ! अब तो खुश हो ?

कुन्ज अपना पहिला गुस्सा भूल गई और बोली "हां भाई ।"

इन्सपेक्टर यह व्यवहार देखकर दंग रह गये । उन्हें स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि एक चोर का इस प्रकार सत्कार होगा । इसमें उनका आश्चर्य बढ़ गया ।

चोर—"मि. सुन्दरदास! आपने समाचार पत्रों में 'विचित्र चोर के विषय में कुछ पढ़ा होगा ?"

इन्सपेक्टर—"हां अवश्य! क्या आप ही वह आदमी हैं? भले आदमी होकर आप यह धन्धा क्यों करते हैं?"

चोर—यह आप न समझ सकेंगे। आपको मालूम है कि मुझे रुपये पैसे की कोई दरकार नहीं है। जहां जहां मैंने चोरी की है वहां चुराया हुआ माल फिर सही सलामत चार या आठ दिन में मिल गया है। यह भी आप जानते होंगे। मुझे इस में एक प्रकार का आनन्द आता है। यहां पिछले सप्ताह मैंने चोरी की थी सो भी किसी ख़ास उद्देश्य से। मुझे मि. वसन्तराय की पुस्तकों से ख़ास प्रेम है। 'अधोगति के मार्ग' इस पुस्तक में इनका नायक एक चोर है यह पढ़कर मुझे बहुत आनन्द हुआ था। यदि मुझे कोई खुश करता है तो मैं सदा उसका बदला चुकाने की ताक में रहता हूं। मैंने सोचा था कि यदि मैं इनके यहाँ चोरी करूंगा तो समाचारपत्रों द्वारा यह समाचार सारे देश में फैल जायेगा और लोगों का इन पर स्नेह अधिक होगा और इनकी पुस्तकें बड़ी संख्या में बिक जावेंगी। इसी विचार से मैंने चोरी की थी और परिणाम भी मैंने सोचा था वैसा ही निकला।"

इन्सपेक्टर—परन्तु भले आदमी! उपकार करते हुये अपनी हानि लाभ का तो विचार करना चाहिये था ?"

चोर—"कैसा हानि लाभ ?"

इन्सपेक्टर—"पिछले आठ दिनों में यदि चोरीके माल सहित पकड़े जाते तो परोपकार के बदले जेल में क़ैद होना पड़ता।"

चोर—"परन्तु माल मेरे पास होता तब तो?"

इंसपेक्टर—"इसका मतलब मैं नहीं समझा ?"

चोर—"अर्थात्, जिस घर में मैं चोरी करता हूँ वहां से माल बाहर नहीं ले जाता परन्तु उसी घर में रहने देता हूं। हां स्थान परिवर्तन अवश्य कर देता हूँ। यहां की अल्मारी में से आभूषण निकाल कर मैंने उस कुर्सी की गद्दी में छिपा दिये थे। आज आठ दिन व्यतीत हो गये थे इस लिये मैं उन्हें फिर अल्मारी में रखने के लिये आया था। जब मैं वसन्तराय के साथ बात चीत कर रहा था तब कुर्सी की गद्दी में से आभूषण और नोट निकाल रहा था।"

इन्सपेक्टर इस भेद को सुनकर असमंजस में पड़ गये। क्या करना चाहिये यह उनको नहीं सूझता था। चोरी के अपराध में इसे पकड़ना चाहिये या नहीं यही विचार उनके मग़ज़ में घूम रहा था।

चोर—'वसन्तराय! आप को मेरी बात पर विश्वास होता है कि नहीं ?"

बसन्तराय—"आपका कथन अक्षरशः सत्य है। आपने मुझपर बड़ा भारी उपकार किया है।" "और हम पर भी"। विनोद और कुञ्ज एक साथ बोल उठे।

इन्सपेक्टर—"अच्छा! यदि अच्छा है तो अब यह उदारता छोड़ देना। नहीं तो किसी दिन सरकार के मेहमान बनना पड़ेगा अब जा, राम राम भज।"

"आपने मुझे मार्ग में रोका था तब भी मैं राम का नाम ही ले रहा था।" इतना कह कर चोर हंसा और क्षणमात्र में ही अदृश्य होगया।

—०—

ज्योति की ज्योति

लेखक—"इन्दु"

ज्योति ! तुम्हारी ज्योति खूब जगमगा रही है ।
सोये सुधि बुधि त्याग उन्हें यह जगा रही है ॥
दुख दरिद्र भय शोक आदि को भगा रही है ।
भूले भटके पथिक राह पर लगा रही है ॥ १ ॥

* * *

अहो ! ज्योति की ज्योति ! खिलाकर छटा निराली ।
दीन वृद्ध भारत की तूने लाज बचाली ।
सब विधि किया निहाल देश को तू ने आली ।
तव शुभ सिंचन सों चहुंदिश छाई हरियाली ॥ २ ॥

* * *

भारत के तू रोम रोम में समा रही है ।
पतित जनों को उन्नति मग में रमा रही है ॥
प्रिय भक्तों कर विजय पताका थमा रही है ।
दुष्टों को कर परास्त भ्रम में भ्रमा रही है ॥ ३ ॥

* * *

दुराचार व्यभिचार आदि को नशा रही है ।
बैर द्वेष दुष्कर्म सभों को खसा रही है ॥
हत्—आशों के आश हृदय में बसा रही है ।
रोतों को हे ज्योति ! सत्य तू हंसा रही है ॥ ४ ॥

* * *

होते ही नभ में विकसित यह छटा तुम्हारी ।
हुई अन्त दुर्दैव रूप तम की अंधियारी ॥
सृष्टि सुभूषित भई सत्य विद्या से सारी ।
धन्य ज्योति ! तुम ही ने माई की विपदा टारी ॥ ५ ॥

* * *

उन्नति रूप प्रकाश देश को दिया तुम्हीं ने ।
परोपकार अरु देशोद्धार व्रत लिया तुम्हीं ने ॥
अहो ! ज्योति-कर "इन्दु" ज्योति-मय किया तुम्हीं ने ।
विश्व ज्योति-मय किया शान्ति सुख दिया तुम्हीं ने ॥ ६ ॥

* * *

सद्विचार

लेखिका—श्रीमती अम्बादेवी विदुषी विशारदा

कहैं यहै सब श्रुति सुमृति, और सयाने लेग।
तीन दबावत निसक ही, पातक, राजा, रोग॥



इस असार संसार में प्रायः शारीरिक बल ही सार मान लिया गया है, यहां निर्बलों पर बली नाना प्रकार के अत्याचार करते देखे जाते हैं। सिंह को 'मृगेन्द्र' इसीलिए कहा जाता है कि वह बन जंतुओं में सबसे अधिक शारीरिक शक्ति रखता है। गरुड़ भी 'पक्षीराज' इसी कारण कहाता है। मानव जाति में प्रायः नारियों की अपेक्षा नर ही सबल हैं। जन प्रवाद है कि स्त्री का सहारा पुरुष इस प्रकार है, जिस प्रकार लता का सहारा वृक्ष। स्त्री-जाति निर्बल और अबला होने पर भी नर समूह की जननी है। मानव-समाज का कर्तव्य तो यह था कि वह इसकी मानसिक, शारीरिक उन्नति कर मातृ-ऋण से उऋण होता और इसे प्रकृति के प्रबल अत्याचार से बचाकर अपना कल्याण करता, यही तो मनुष्य की मनुष्यता या पुरुषों का पुरुषत्व है। किंतु बहु-संख्यक नर-समाज ने इस प्रकृति पीड़िता जाति को अधिकतर अपने निर्मित विधानों से सताया ही है। प्रकृति ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये रोग बड़े भयंकर उत्पन्न किये हैं। जब इन्हें रोग सताते हैं तो प्राण-ग्राहक और संघातिक ही होते हैं, जिसके कारण उन्हें इस संसार को छोड़ कर ही चल देना पड़ता है। ये रोग अधिकांश प्रसव-काल के पश्चात् होते देखे गये हैं। इन रोगों में उनकी कोई समुचित चिकित्सा भी नहीं करता कराता। प्रायः देखा गया है कि सास, ननद, जिठानी, देवरानी सभी असह्य कुवाक्य बाणों की वर्षा करती रहती हैं। सेवा की तो कौन कहे चुपचाप पड़े रहने में भी बाधा ही डाली जाती है, क्योंकि अवगुण की खान इस नर-जननी को पुरुष-वर्ग ने कथा-कहानी और और मान्य ग्रन्थों में बुरी तरह बदनाम किया है। उन्हें व्यर्थ मान कर घास, फूंस के समान चिता में झोंक देने की आज्ञा देदी हैः-

ढोल गंवार पशु और नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

यह क्यों? सुनते हैं पुराने समय के यूनानी पादरियों ने तो इनके शरीर में आत्मा होने पर भी सन्देह किया था। हमारे शास्त्रकारों तथा अन्य ग्रंथकारों ने भी अपनी प्रबल प्रतिभा का बल लगा कर, ज्ञान चक्षु से देखने पर इनमें अवगुण ही देखे। इस ईश्वरीय सृष्टि में इनका कुछ अधिकार है भी या नहीं, इसके विषय में यही कहना ठीक है, कि अधिकार शब्द स्त्रियों के लिए नहीं है। विद्याध्ययन, दाय भाग आदि सब ही कुछ इनसे छीन छान कर निर्धन नाम दे दिया है। स्वर्थियों ने स्वार्थान्ध हो वेद भगवान् और मनु के नाम से श्लोक बनाकर प्रसिद्ध कर दिये और इनकी गणना शूद्रों के साथ २ कर दी गई है। यथाः—

स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।
अर्थात् स्त्री और शूद्र न पढें यह श्रुति है।
अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथा कालं यथाक्रमम्।
नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मेव्यवास्थितिः।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः॥

मनुस्मृति।

अर्थात् स्त्रियों के ये सब कर्म शरीर के संस्कार के लिए उचित समय पर सम्पूर्ण रीति से क्रमपूर्वक मंत्र रहित करने चाहिये। स्त्रियों का संस्कार मंत्रों से नहीं होता, यही शास्त्र की मर्यादा है। स्मृति तथा धर्मशास्त्र में और किसी मंत्र में भी इनका अधिकार नहीं है। इसलिए कि ये झूठ के समान अशुभ हैं।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य भी कहते हैं:—

तूष्णी मेताःक्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः॥
याज्ञवल्क्य स्मृति।

अर्थात् सब कर्म स्त्रियों के बिना मन्त्र पढ़े होते हैं केवल उनके विवाह में मंत्र पढ़े जाते हैं।

पढ़ने के समान ही दाय-धन पर भी इनका अधिकार नहीं है।

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः।
यत्ते समाधिगच्छन्ति यस्यते तस्य तद्धनम्॥
—मनुस्मृति।

अर्थात् भार्या, पुत्र और दास ये तीनों शास्त्र में निर्धन कहे गये हैं। ये जो कुछ पैदा करें, उस धन पर उसके स्वामी का ही अधिकार होता है।

यहीं तक बस नहीं किया गया, इनका विवाह भी बाल्यकाल में गुड्डे-गुड़ियों के खेल के समान आंखों का सुख देखने के लिए धर्म माना गया और इस आज्ञा का पालन न करने पर माता-पिता आदिकों को नरक में जाने का भय दिखाया गया है। अनेक "निर्णय सिंधु" आज भी इसी अनुचित और असामयिक निर्णय पर डटे हैं, वे कहते हैं:—

विवाह प्रशस्त कालमाह, सप्तेति... ...।
—निर्णय सिंधु।

अर्थात् विवाह का उत्तम समय ७ वर्ष है। यह समय गर्भ की तिथि से गिनना चाहिये। इस प्रकार जन्म की तिथि से ६ वर्ष और ३ मास की आयु ही विवाह का ठीक समय है।

नहीं तोः—

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥
—संवर्तस्मृति।

प्राप्तेतु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिवति शोणितम्॥
—यम स्मृति।

माता पिता से कहा गया कि आंख मीच कर विवाह करने में ही कुशल है। रोगी, निरोगी, बाल, वृद्ध, योग्य, अयोग्य का विचार करोगे तो कुम्भीपाक मिलेगा।

वैवाहिक आयु की व्यवस्था कैसी उत्तम है:—

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादश वार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥
—मनुस्मृति।

अर्थात् ३० वर्ष का पुरुष १२ की कन्या को और २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की कन्या को ब्याहे।

ऐसी व्यवस्था बना, अधिकारों को छीनकर उनको आभूषणादि के प्रलोभन दे वश में किया गया। सब से बड़ी चतुरता तो यह की गई कि सब कुछ उस मनु के नाम से किया जो कहते हैं किः—

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥
— मनुस्मृति।

अर्थात् ऋतुमती होने पर भी चाहे कन्या जन्मभर घर में ही रहे परन्तु इसे किसी निर्गुण पात्र को कभी न दे।

आगे इससे बढ़िया बात सुनियेः—

शय्यासनलंकारं कामं क्रोधमनर्जवम्।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत्॥
—मनुस्मृति।

अर्थात् शय्या, आसन, आभूषण, काम, द्रोह, कुटिलता और निन्दित आचरण ये मनु ने स्त्रियों के लिए ही बनाये हैं।

भला ऐसी आचरणहीना, अवगुण सम्पन्ना को स्वच्छन्दता कैसी? इसी कारण घर के अंदर कैदी के समान उसी प्रकार सुरक्षित रक्खा गया, जिस प्रकार वर्तमान अंग्रेज़ी गवर्नमेंट भारतवासियों को सुख शांति से रखना चाहती है। पं० चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में यही कहना ठीक प्रतीत होता है:— "स्त्रियों को विलास की सामग्री, पैर की जूती, मोल की बांदी, व्यभिचार की माध्यम और बच्चे (संतान नहीं) बनाने की मशीन बना दिया है।"

न्यायानुसार तो इस संसार में कोई भी स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है, जो वह पुरुष की धर्महीन आज्ञाओं तथा इच्छाओं का पालन करने को विवश हो और सेंतमेंत मारने पीटने के अत्याचार को चुपचाप सहती रहे। प्रत्येक स्त्री गृहणी है, घर की स्वामिनी है, जिस पुरुष ने वेद और ईश्वर को साक्षी देकर उसका हाथ पकड़ा है उसे अर्द्धांगिनी बनाया है—उसके सर्वस्व में वह बराबर की अधिकारिणी है। किन्तु दुर्भाग्य-वश वर्तमान भारतवर्ष में यह बात ग्रंथों का कलेवर बढ़ाने ही के लिये है। न्याय का नाम ही नाम है, जिससे सहृदया अबलाओं को महान् कष्ट भोगना होता है और समाज के अत्याचार को मन मसोस कर सहती हैं। किसी कवि की यह उक्ति ठीक ही है:—

कहिवे कि वृथा सुनिवे कि हंसी,
को दया करके उर आनत है।
उर पीर बढ़ी, तजि धीर सखि,
कहि को नहिं कासे बखानत हैं॥
कवि 'बोधा' कहे में सवाद कहा,
पुनि कही हमरी को मानत है।
हमें पूरी लगी कि अधूरी लगी,
यह जीव हमारो ही जानत है॥

हैरल्ड बेगमी ने अपने एक पत्र में लिखा था, कि:—

"भारत की महिलायें हम लोगों को देखने में सुन्दरी भले ही लगें, किन्तु वे सुखी नहीं हैं। चैतन्य होते हुए भी अबला, पराधीन, सत्वरहित केवल पुरुष की कर्मचारिणी हैं। वे पुरुषों के साथ में दोपहर की कड़ी धूप में खेतों में काम कर सकती हैं, किन्तु भोजनालय में वा विशेष उत्सव के समय पुरुष के साथ २ एक पंक्ति में बैठकर भोजन नहीं कर सकतीं। भारत में स्त्रियों का जन्म होना ही संसार के अधिकांश सुखों से वंचित रहना है। माता का स्तनपान करते भले ही वे आनन्द कर लें, परन्तु बड़े होने पर उन्हें अपनी और अपने भाई की विषम स्थिति का ज्ञान भले प्रकार हो जाता है। प्राकृतिक दृश्य तो ईश्वर ने उनके लिए बनाये ही नहीं। उनकी दशा मनुष्य वर्ग से न मिलकर पक्षियों से अधिक मिलती है। अन्तर इतना है, कि पक्षी पिंजरों में बन्द रहते हैं और ये घरों में पुरुषों ने अपने हित के लिए काम करना इन्हें सिखा दिया है साथ ही अच्छे चुग्गे पानी का भी पर्याप्त प्रबन्ध कर दिया है" अस्तु।

बेगमी महोदय का यह कथन हमारी दशा पर अक्षरशः घटित होता है किन्तु यह सब स्वार्थी समाज की लीला है। हमारे शास्त्र और वेदों का 'अर्द्धांगिनी' शब्द इस दासत्व प्रथा का खंडन करता है। आज का स्वार्थी-समाज भले ही सभायें कर २ के अपने मनगढ़न्त मनमाने निश्चय करले कि

कन्याओं को यज्ञोपवीत का अधिकार नहीं है। ऐसा निश्चय हमारा नहीं हमारे विरोधियों का ही ह्रास करेगा। असंस्कृता, विद्या बुद्धि से रहित, यज्ञोपवीत रहिता माताओं से उत्पन्न हुए किस मुख से अपने को द्विज कहलाने के अधिकारी हो सकेंगे? जो हो वे अपने किये का फल भोगेंगेः—

सर्वांग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघातकी।
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा बातकी

इस समय तो हमको अपनी उन विदुषी माताओं और बहिनों से प्रार्थना करनी है, जो इस अन्याय और अत्याचार के प्रतिकार में अपनी विद्या बुद्धि को काम में नहीं ला रही हैं। उनको अब सावधान होकर अपने अधिकारों को पाने का उद्योग करना चाहिये क्योंकिः—

यद्यपि जग दारुण दुख नाना।
सब तें कठिन जाति अपमाना॥

तात्पर्य यह हैः-कि यह समस्त अत्याचार, अन्याय, अधर्म, दुर्व्यवस्थायें जो स्त्री जाति के विपरीत चल रही हैं वे उसी समय दूर हो सकती हैं, जब हम स्वयं अपना संगठन कर उनको दूर करें और उच्च तथा स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दें:—"

नहीं स्वत्व की हीनता को सहैंगी।
कुरीतें हटा के सुरीतें गहैंगी॥
न बातें कभी स्वत्वहारी सहैंगी।
लिये धर्म आधार सीधी रहैंगी॥

पाप का फल

लेखक---श्रीयुत रामचन्द्र सिंह भादरा

मुरला ने अपनी छोटी बहिन से कहा—"सुशीला! मैं जा रही हूँ"।

सुशीला—"कहां"?

मुरला—"जहां मेरे आराध्यदेव हैं, स्त्री पुरुष का भेद नहीं है, सधवा विधवा का ख्याल नहीं है, बकरी बाघ एक घाट पानी पीते हैं।"

सुशीला—"क्यों?"

मुरला—"इसलिए कि मैं विधवा हूँ। हिंदू समाज में विधवा का पृथ्वी पर पैर रखना पाप है।"

सुशीला—"बहिन मैं भी चलूंगी"।

मुरला—"ना, ना, ऐसा मत कह। तू कुंवारी है, तेरे लिए संसार का सुख बना है"

सुशीला—"बहिन आज जो कुंवारी है वही कल विवाहिता होगी; जो सधवा है वही विधवा होगी। राव-रंक, सधवा विधवा, अमीर-गरीब का होना तो विधिना के हाथ है। मैं भी उसी के दरबार में क्यों न चलूं?"

अपनी बहिन की निष्कपट बातें सुन मुरला का हृदय भर आया। आंखें आंसुओं से छलछला आईं। वह कुछ कहना ही चाहती थी, कि बड़ी भौजाई वहां आ धमकी। दोनों को एकांत में देख जलभुन गई और कड़क कर बोली—"तुम लोगों का रंग ढंग कुछ मालूम नहीं होता है। जब देखो, तब लोग बात चीत में मशगूल रहती

हो। मालूम होता है, घर तुम लोगों का है और हम लोग तुम लोगों की दासी हैं"।

सुशीला—"भौजी! ऐसा क्यों कहती हो? तुम लोग तो चादर ताने सोई पड़ी थीं। हम दोनों ने झाड़ू लगाई, बर्तन साफ किये। इसपर तुर्रा यह, कि, तुम हमी लोगों को बुरा भला कहती हो?"

इस बात को सुन वह स्त्री और भी कुढ़ गई और कर्कशस्वर में बोली—"सुशीला, तुम्हारा भी कुछ रंगढंग नहीं मालूम होता है। तूही थी, कि मुन्ना को दिन भर खिलाती फिरती थी, पर अब पास भी नहीं फटकती है, और कुछ कहने पर लालपीली होती है। यह सब तेरी बाहन की करतूत है। ससुर जी की कृपा है, कि दूसरे की बला को हम लोगों के सिर ला मढ़ा है और हम लोगों की छाती पर कोदों दलवाते हैं।"

ये बातें मुरला के हृदय में तीर समान चुभ गईं। आँखों से सावन भादों की तरह बूंदें झरने लगीं। खड़े २ सोचने लगी—"कहां थी कहां आई! संसार में भला जले पर मलहम लगानेवाला कौन है? यह मेरी भूल थी, सरासर भूल थी, कि सुख की आशा कर दूसरे के घर आई।"

बाहन के आंसू सशीला से देखे नहीं गए। वह सिसकती हुई उसकी गोद में पड़ गई। इसी समय किसी ने आंगन से पुकाराः—"सुशीला"। सुशीला बाहर चली आई। उसकी अंख के आंसू अभी सूखे नहीं थे। मुंह सूखा सा था। उस की ऐसी दशा देख आगन्तुक ने ताड़ लिया कि जरूर घर में कुछ खचखच हुआ है। और इसका कारण मुरला ही है। उसने कहा—

"सुशीला, दस दिन के बाद मुरला चली जायगी। सब के सिर का बोझ उतर जायगा बेचारी, दस दिन भी सुख से न काट सकी!

ये वाक्य सुशीला के हृदय में विंध गये। वह पक्षाघात के मारे के समान जहां की तहां ही खड़ी रह गई।

(२)

मुरला के ससुर एक सीधे साधे आदमी हैं। छल कपट उन्हें छू तक नहीं गया है। संसारी दावपेंच से कोसों दूर हैं। यही कारण है कि इनके छोटे भाई महावीर ने इनकी सारी जमीदारी हड़पली है। तीन चार बीघा जमीन बच गई है। इसी से परिवार का लालनपालन होता है। बड़े लड़के का देहांत तो हो ही गया है एक और लड़का है जिसका नाम दीनेश है। यह बी. ए. क्लास में पढ़ता है। व्यय का प्रबंध इसे स्वयं करना पड़ता है।

गर्मी की छुट्टी है। कालेज सब बन्द हैं। दीनेश घर पर आया हुआ है। मुरला को भी बुला लिया है जब तक वह घर पर रहता है तब तक तो मुरला के दिन सुख आराम से कटते हैं। पर उसके पीठ फेरते ही उस पर दुख का पहाड़ आ पड़ता है। चारों ओर से कटु—वाक्यों की बौछार होने लगती है! अबला को कहीं पैर रखने की भी ठौर नहीं मिलती है।

जब कभी 'रामायण' पढ़ती है तो अड़ोस पड़ोस की स्त्रियां कहने लगती हैं "सीता बन ने चली है सीता आपने भाग्य को नहीं देखती है। पति को तो खा बैठी है, पर चली है रामायण पढ़ने।" यदि कभी किसी बालिका से बात चीत करती है तो वह कहने लगती हैं कि आज कल की रांडें तो सांड़ हो गई हैं। अभी पति को मरे दस दिन भी नहीं हुए हैं।

पर देखो तो कैसे हंस २ कर बातें कर रही है।"

ऐसी ही दशा में स्त्रियां प्राण दे देती हैं, पर मुरला अपने जीवन-बोझ को सिर पर उठाये फिरती है। इसका एक मात्र कारण यह है कि उसके पति मरते समय कह गये थे—"प्रिये, सासु ससुर, माता-पिता और परपरिवार की इज्ज़त तेरे हाथ है। दो साल की बालिका तेरी गोद में है। प्रेमी जन की दृष्टि पलट जाएगी। पर ज़िन्दगी से निराशा मत होना। ऐसी दशा में रामायण नौका का काम देगी।"

जीवन संगी साथ में नहीं है। पर उसके शब्द हैं। उसी के सहारे वह अपनी जीवन नौका को संसार तूफान में खेती चली जा रही थी कि चट्टान की टक्कर लगी। मुरला सहम गई। नौका इधर उधर डगमगाने लगी।

(२)

प्रातःकालका समय है। शीतलमन्द सुगन्ध समीर बह रही है। देव कन्या उषा की ज्योति विशाल २ अट्टालिकाओं की दिवारों पर छिटक रही है। थानेदार शफ़ी अपने दल बल के साथ महावीर की बैठक पर बैठा हुआ है। पर महावीर को भी मालूम नहीं है कि थानेदार का आगमन क्यों हुआ है। वह कुतूहल भरी दृष्टि से इधर उधर देखता है। इतने ही में शफ़ी ने कहा—'बाबू साहेब,, ज़रा तकलीफ़ कीजिए। आप से कुछ कहना है। दोनों उठकर एकान्त में चले जाते हैं।

शफ़ी—'एक लड़का झाड़ियों में पाया गया है। वह किसका है ?

महावीर—"कैसा लड़का ? मुझे क्या मालूम"

शफ़ी—"बाबू साहेब, इन बातों से काम नहीं चलेगा। सीधेसाधे बता दीजिए। आपको तो नहीं मालूम है पर मुझे मालूम है। शायद पुलिस के हथकण्डों से तो आप भी अपरिचित नहीं होंगे।"

महावीर का माथा ठनका और लड़खड़ाती हुई अवाज़ में कहने लगा—थानेदार जी, सचमुच कहता हूँ। मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।"

शफ़ी—'इसीलिए, तो कहता हूँ कि मुझे मालूम है। लड़का आपका है। इज्ज़त आबरू आपके हाथ में है।"

महावीर समझता था कि टालमटोल करने से काम चल जाएगा। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि चोर उसी के जंघों के नीचे से निकला है तो उसने लक्ष्मी की शरण ली और चांदी की जूत से शफ़ी को भी ठीक कर दिया। लक्ष्मी ? तेरी मया अपरम्पार है। संसार में जो कुछ तू कर दे, थोड़ा है।

थानेदार बाहर निकला। जांच पड़ताल शुरू हुई। एकएक कर के सब के घर की जांच की गई। दाई ने कहा—"मुजरिम का पता लग गया है। वह मुरला है।

मुरला के ससुर वहीं खड़े थे। इस बात को सुनते ही वह कटे वृक्ष के समान ज़मीन पर गिर पड़े। कहीं मुंह दिखाने की ठौर न थी चारों ओर से धिक्कार, धिक्कार, की वर्षा होरही थी। वे उठे और घर आ चारपाई पर पड़ गये। उनके आंखों से आंसुओं की धारा वह रही थी। हृदयमें लोकलज्जा का ताण्डव होरहा था। सब लोग हैरान थे पर किसी को

कुछ पूछने की हिम्मत न पड़ती थी। अंतमें उनकी स्त्री ने कहा—"क्या कारण है कि आप बोलते नहीं हैं और आंखों से आंसू बहा रहे हैं ?"

पति—"प्रिये, संसार में अब मैं बोलने लायक नहीं रह गया हूं। मुरला ने मेरे मुंह पर वह कारिख पोत दी है जो लाख यन्त्र करने पर भी नहीं छूट सकती है।"

पत्नी नें पति के हृदय की बात समझ ली वह जान गई कि यह सब महावीर की करतूत है। इस कलमुहे ने तो घर धरती पहिले ही हड़प ली थी, बची थी एक इज्जत इस पर भी धावा बोल दिया है। उसने अपने पति को ढाढ़स देती हुई बोली—"नाथ,मुरला निष्कलंक है। यह सब तो उसी पापी की करतूत है। रांड तो घर में बैठे सुख की नीद ले रही है।"

पति—"जो कुछ हो। मुरला को आज घर छोड़ देना पड़ेगा। मैं अपने भाई बिरादरी में नाक नहीं कटाऊंगा। सब की यही राय है।" (अपूर्ण)

भानु भुवन या मोहन माया

अनुवादिका—कुमारी सुमित्रादेवी जलविद्

(गतांक से आगे)

जीवराज—(माया से) वन्दे, माया ? कहो कैसी हो ? (अम्बालाल सेठ से) मिस्टर सेठ ! नमस्कार सुनाइये, सब कुशल हैं ?

अम्बालाल—हां, सब कुशल हैं।

जीवराज—(सेठ की ओर पीठ करके) क्यों पुष्पे ! क्यों मधुरी, और नरोत्तम तुम भी कुछ कहो।

नरोत्तम—(मुस्कुरा कर) आज तो खूब शिष्टाचार दर्शाया जारहा है।

अम्बालाल—नहीं भाई ! यह तो दूसरी बार हमारा अजायबघर देखने की नीयत से आये हैं। (वैद्य से) कहिये वैद्य जी प्रदर्शनी दिखायें।

जीवराज—(हंस कर) नहीं जी, आपकी बड़ी कृपा है। मेरा इसे एक बार देख लेना ही बस है।

अम्बालाल—हां, ठीक है आप तो यहां के पुराने गृहस्थ हैं, मि० टैगोर और म० गांधी के विशेष वैद्य हैं, फिर आपके लिये यहां क्या नवीनता हो सकती है ?

जीवराज—हाँ रवि बाबू की चिकित्सा तो एक ही बार की थी परन्तु म० गांधी की कई बार.......(बीच में माया बोल उठती है)

माया—(हर्ष से पुलकित होकर) क्या सच-मुच रवि बाबू से आपका मिलाप हुआ है और आप का उनसे विशेष परिचय है ?

जीवराज—क्यों नहीं ? ज़रूर है।

माया—(मन्द स्वर से स्वगत) आह! यह कोई भाग्यशाली व्यक्ति है।

अम्बालाल—आप बड़े अच्छे अवसर पर आये हैं, मुझे आपकी सलाह लेनी है।

जीवराज—तब तो मैं सेवक वस्तुतः सौभाग्य शाली हूँ।

अम्बालाल—देखिये डाक्टर साहिब, यह बंगला मुझे स्मृति-भंडार प्रतीत होता है। मैं इसे जगत्प्रसिद्ध करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी भगिनी और दामाद इस में बाधक हैं मुझे ऐसा करने से रोकते हैं।

जीवराज—(व्यंग से) नरोत्तम! इस की प्रख्याति में बाधक बनते हो? इस सभ्यता के युग में यह ठीक नहीं।

नरोत्तम—मैं, दर्शक पंजिका की सूचनाओं को पढ़कर या सुनकर तमाशा देखना नहीं चाहता।

माया—मुझे भी यह नापसन्द है।

अम्बालाल—परन्तु मैं प्रजा को गांधी-भक्ति में मस्त देखना चाहता हूं। जब तक प्रजा अपने नेताओं को तथा पुनीत प्रभावशाली नरवीरों को नहीं पहिचान लेगी तब तक सच्ची देशभक्ति और प्रेम प्रकट नहीं होसकता। जनता जब तक महात्माओं के विषय में ज्ञान प्राप्त न कर लेगी तब तक उस में महत्वा-कांक्षा के अंकुर का प्रस्फुट होना असम्भव है। महात्मा जी समस्त भारत में चक्कर लगा चुके हैं। परन्तु कितने स्त्री पुरुष ऐसे है जिन्होंने महात्मा जी को अपनी आंखों से देखा और कानों से सुना होगा? इस ज़माने में प्रति लाख एक मनुष्य भी भाग्य से ही महात्मा के सहवास में आया होगा, यही कारण है कि महात्मा जी का आदर्श लोगों में प्रवृत्त नहीं हुआ और आदेश माना नहीं गया। मैं ऐसे तीर्थ स्थानों में महती शक्ति देखता हूं इसीलिए इस स्थल को तीर्थ बनाकर धर्मलब्ध करना चाहता हूँ।

मैं यह भली प्रकार जानता हूं कि मुझ में विमल शाह सरीखी शक्ति नहीं है, मुंजल मेहता के सदृश बुद्धि नहीं है और तेजपाल व वस्तुपाल जितनी लक्ष्मी भी मेरे पास नहीं है। परन्तु फूल नहीं तो न सही फूल की एक पत्ती ही सही।

नरोत्तम—मुझे तो इस में, फूल क्या, फूल की पत्ती क्या, फूल का पराग भी प्रतीत नहीं होता है।

जीवराज—मैं यह जानता हूं कि तुम्हें यह बंगला प्यारा नहीं लगता।

नरोत्तम—अरे, तुम तो कहते हो प्यारा नहीं लगता परन्तु भाई मुझे तो इसे देख कर भय प्रतीत होता है।

अम्बालाल—यदि ऐसा ही है तो इस में दोष किस का है?

नरोत्तम—क्या मेरा है?

अम्बालाल—तेरा नहीं तो और किस का है? यदि तुम इस बालचेष्टा को बृहद्‌रूप न दो तो—(नरोत्तम बीच में बात काट कर)

नरोत्तम—आप इसे बालचेष्टा कहते हैं? खूब करते हैं।

अम्बालाल—यदि यह बालचेष्टा नहीं है तो डाकृर साहब से पूछ देखो।

जीवराज—(गंभीर स्वर से) नरोत्तम! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम कभी कभी राई का पर्वत बना देते हो। इस क्षणिक मोह को भी तुम जीवन भर की माया समझते हो?

अम्बालाल—हां, ठीक ऐसा ही है। इसीलिए मधु और हठ करती है। परन्तु नरोत्तम! जरा विचार देखो इसमें अकुलाने की क्या आवश्यकता है? यह रवि बाबू की पुस्तकें पढ़ कर दीवानी होगई है सो इस लिए कि पहिले इसने कभी ऐसी पुस्तकें पढ़ी ही नहीं थीं।

जीवराज—और हां, उसकी वह रचना सचमुच दिल को मोह लेने वाली है।

माया—हां हां, वर्णनातीत एवं अलौकिक है।

जीवराज—(सभ्यता से) माया जी! क्या कहा?

नरोत्तम—फूफी जी! आप चुप रहिए।

माया—(रोष से) अच्छा तो क्या मुझे अपने विचार प्रकाशित करने का अधिकार नहीं है?

नरोत्तम—हां, नहीं है। आपने ही मधु को फुसलाया है।

माया—(क्रोध से) क्या सचमुच?

नरोत्तम—हां हां, ठीक कहता हूं, आपने ही उसका दिमाग़ फिरा दिया है। स्त्री जाति के निकम्मे भाव उस में भर दिये हैं।

माया (क्रोध न संभाल कर) नरोत्तमदास! संभल जाओ!

नरोत्तम—क्या संभालूं, अपना सिर संभालूं? तुम्हारी यह कृत्रिम अभिलाषाएं मुझे नहीं भातीं। तुम ही ने मेरी स्त्री को जादू का मन्त्र पढ़ाकर पागल किया है। विवाह से पहिले वह कैसी सरल और सीधी थी! मुझ से किस प्रकार प्रेम करती थी! अब वह सब कहां गया? टैगोर की कविताओं में! साधारणजनों की बुद्धि में मैं उसका पति हूँ, वह मेरी विवाहिता स्त्री है, परन्तु उस के विचार सागर में उस का कान्त कोई और ही है। मधु को अब महाकवि की रट लगी है उसे मेरी परवाह नहीं है। यदि आप को मालूम नहीं है तो लो मेरे मुख से सुन लो कि मधु अब मुझ से सर्वथा स्नेह नहीं करती क्योंकि वह पराये पर मस्त है।

अम्बालाल—जाओ! जाओ!

नरोत्तम—मैं विश्वास दिलाता हूं कि मधु अब मेरी नहीं रही। वह प्रेम मायावी ही था। परन्तु कवि पर यह अथाह और आंतरिक प्रेम है। इसमें दोष नहीं होगा यह ठीक होसकता है। इसीलिए मैं कहता हूं कि इस बंगले की हवा इसे भी लग गई है। मेरे और पुष्पा के सिवाए सब यहां पर माया जाल में फंस गये हैं।

माया—(व्यंग से) ओ हो हो! यह कैसा दीर्घदर्शी सूत्र है।

नरोत्तम—फूफी जी! सब से बड़ी पागल

तो आप हैं, जिन्हें वृद्धा होकर शोडश-वर्षीय युवती बनने का शौक़ हुआ है-परन्तु जया का जयन्त मिलता ही नहीं।

माया—(क्रोध से अम्बालाल से) भाई, अपने दामाद को हटालो नहीं तो……

नरोत्तम—(माया की बात की उपेक्षा करके) दूसरे नम्बर पर मेरे श्वशुर अम्बालाल सेठ आप स्वयं, जिनकी गांधी भक्ति का ठिकाना ही नहीं।

अम्बालाल—माफ़ कीजिए।

नरोत्तम—क्या आप इसे झूठ समझते हैं? मैं अपनी बात की पुष्टि के लिए प्रमाण दे सकता हूँ। देखिए आप के पास Young India और नवजीवन की कितनी प्रतियां रक्खी हुई हैं। तिस पर भी आपने गणेश द्वारा प्रकाशित गांधी जी की लेख-माला की १००० प्रतियां ली हैं। सो किस लिए भला?

अम्बालाल—वे इसलिये कि उस में से कुछ खोजना हो तो तुरन्त मिल जाय।

नरोत्तम—परन्तु इस बिषय की जितनी पुस्तकें पड़ी हैं उन में से एक भी आपने पढ़ी हैं?

अम्बालाल—पागलों की सी बातें मत कर। सोच, यदि पुस्तकालय की सभी पुस्तकें पढ़ने लगें तो हमारा पता ही न चले!

नरोत्तम—और फिर गांधी जी की लेखनी, कलमदान, नयी पुरानी नोट बुक्स, पीकदान, जलपात्र, वस्त्रादि सब वस्तुएं एकत्रित की जारही हैं वह क्या पागलपन नहीं है?

अम्बालाल—वह तो मानसिक पूजा के साधन हैं!

नरोत्तम—(जीवराज से) पूछिये डाक्टर साहिब पूछिये कि गत सप्ताह १०) देकर जो एक पुरानी चिलम भंगी के हाथ से ली थी क्या वह भी पूजा का साधन है?

अम्बालाल—दश रुपये क्या अधिक दे दिये? वह चिलम भंगी के हाथ मे होने के कारण अस्पृश्य थी इसी लिए क्या?

नरोत्तम—अरे भलेमानस! मैं यह नहीं कहता। पर मैं कहता हूं कि इतना तो पता लगा लेते कि आया महात्मा जी कभी चिलम फूंकते थे या नहीं?

अम्बालाल—निसन्देह! जिस मनुष्य ने मेरे हाथ चिलम बेची उसने शपथ खा कर कहा था कि बह चिलम गांधी जी की ही है।

जीवराज—जहां तक मैं जानता हूँ, महात्मा जी को धूम्रपान का शौक ही न था। हां यह नहीं कह सकता कदाचित बचपन में उनकी यह आदत रही हो। परन्तु………

अम्बालाल—अच्छा वैद्यराज! तब तो मुझे फिर उसकी खोज करनी चाहिये। सम्भवतः उस भंगीसे भूल होगई हो?

नरोत्तम—और तीसरी, परन्तु सबसे बड़ी पगली, मेरी मधुरी ! मेरी पत्नी !

माया—(बोलनेका समय पाकर) हां पगली है, काव्य माधुर्य्य से पगली बनी है। विश्वास करो नरोत्तम कि तुम्हें यह पागलपन का रोग न होगा तुम Poetry Proof हो।

नरोत्तम—(उसे सुनता ही नहीं) अभी कल की ही बात है कि मैं अपने शयनागार में रुमाल खोज रहा था। आप बतइये मुझे वहां क्या मिला ? अनुमान कीजिये देखूं। हजार कोशिश कीजिये परन्तु आप लोग न बतला सकेंगे। क्या मिला कहूँ ? एक बड़ी सुन्दर बनारसी साड़ी में लिपटी हुई पांव में पहिनने की जूती का जोड़ा और उसके भीतरी भाग में रेशम से कसीदा निकाला हुआ रवि बाबू का नाम मिला।

माया—(गर्व से) वह तो मैं ही खोजकर लाई थी। आप क्या कहते हैं कि हम महाकवि की पुनीत स्लीपर की जोड़ी मोरी में फेंक दें ?

नरोत्तम—फूफी जी ! परमेश्वर भला करें। आपने इतना भी विचार न किया कि रवि बाबू की ऐसी वस्तु यहां कहां से आई और यदि थी तो इतने वर्षोंतक वह सुरक्षित क्यों कर रही ? ये स्लीपर तो मेरे सामने सहपाठी रवजी धोलकी के हैं, उसने स्वयं ही मेरे सामने मखौल में ऊपर फैंक दिये थे। आप उसे ढूंढ़ लाई थीं तो आपने उसे अपने कमरे में ही क्यों न रखा ?

माया—मैं अविवाहिता होकर किसी पर पुरुष की ऐसी वस्तु अपने यहां कैसे रख सकती हूँ ? मैंने तो केवल कवि न्हाना लाल की एक नोट बुक, पैंसिल और चश्मे का केस यह तीन वस्तुएं अपने पास इकट्ठी की हैं।

अम्बालाल—नरोत्तम ! धैर्य्य धारण करो, शान्त होओ। सब अच्छे हो जायेंगे। मधु को मोह ने फसा लिया होगा परन्तु अधिक काल के लिये नहीं। यह तो भ्रमर की पुष्प पर प्रीति आज इस पुष्पसे कल दूसरे से। मकरन्द पान के पश्चात् उस पर प्रेम नहीं रहता। यदि तुम इसका कुछ भी दुःख अनुभव न करो तो यह क्षणिक मोह स्वयं दूर भाग जायगा। आजकल की लड़कियों में जिन्होंने अंग्रेजी पद्धति से शिक्षा प्राप्त की है, इस प्रकार का कृत्रिम भाव और आनुमानिक प्रेम बहुत स्थानों पर देखा गया है। ये बिचारी जितने उपन्यास और कविताएं पढ़ती हैं उन सब में अपने आप को ही नायिका मान लेती हैं। और नायक उनके कर्त्ताओं को। अतः यह मायावी प्रेम स्वयं जाग उठता है। मधु को यहां स्वतन्त्रता मिली है इस लिए उस का भी यही हाल है। अन्यत्र तो यह सब मन में ही रहता होगा। परन्तु उससे वस्तुतः कुछ बिगाड़ नहीं होता।

जीवराज—मैं भी यही कहता हूँ। वैद्यक के अनुसार तो मैं इस प्रकार की व्यथा को एक रोग समझता हूँ।

नरोत्तम—परन्तु इस का उपचार भी बतावेंगे ?

जीवराज—हां इसीक्षण, जाइये जाकर मधु से प्रेमालाप कीजिए, बस तत्काल वह रवि बाबू की धुन त्याग देगी ।

नरोत्तम—मुझे और कुछ नहीं चाहिए। परन्तु मैं मधु के पास जाता हूँ कि वह मेरे पाद प्रहार की ध्वनि सुन कर भाग खड़ी होती है।

अम्बालाल—(बात बदलने के लिए) वैद्यराज ! आज आप यहीं भोजन कीजियेगा।

जीवराज—माफ़ कीजिए । आज तो मुझे प्रयोगालय देखना है अतः न कर सकूंगा। परन्तु कल ·····

अम्बालाल—कल नहीं तो परसों रवीन्द्रनाथ भी कदाचित् यहां पधारेंगे।

नरोत्तम—(चौंक कर) क्यों ?

अम्बालाल—शान्तिनिकेतन और विश्वभारती के लिए चन्दा एकत्रित करने के लिए निकले हैं। यहां से भी कुछ पाने की आशा करते हैं। हमारे यहां ही ठहरेंगे यह संदेशा भेजा है।

नरोत्तम—(क्रोधित होकर) तब तो मेरा यहां काम ही नहीं। चलो जीवराज! तुम्हें प्रयोगालय में ले चलूं (दोनों का प्रस्थान) (अपूर्ण)

वैज्ञानिक संसार

मूंगा



कदाचित् हमारे सब पाठकों को यह पता न होगा कि मूंगा क्या वस्तु है। गाँव के लोग प्रायः उसकी माला बनाकर गले में पहनते हैं। अनघड़ी हुई अवस्था में इसकी भस्म बनाकर हकीम और वैद्य लोग कई प्रकार के रोगों में काम में लाते हैं। यह मूंगा एक प्रकार के जीवों का शरीरगृह है जो कि समुद्र में रहता है। जीवित मूंगा कितने ही व्यक्तियों का समूह होता है जो कि पेड़ की टहनियों की न्याँई अलग अलग होने पर भी जुड़ी रहती हैं। प्रत्येक टहनी-जिस को कि हम जीव के पेटसे तुलना कर सकते हैं जिसका अग्रभाग जानवर का मुंह होता है-के भीतर से नुकीले बाल जैसे पतले पंजे निकलते हैं जिन से यह प्राणी अपने अहार को पकड़ कर मुंह के द्वारा अपने पेट में डाल लेता है। यह सबका सब समूह एक छोटे से चूने के प्याले में सुरक्षित रूप से निवास करता है।

यह प्राणी पक्के मांसभक्षी जीव हैं। किसी भी प्रकार के निरामिश भोजन को छूना तक पाप समझते हैं। डाक्टर वाहम ने इनके आहार और विहार के सम्बन्ध में अनेक तजरुबे किये हैं। वह बतलाते हैं कि जब जरा सा गोमांस, रस या कुलीर मांस का टुकड़ा इनके पास रखा जाये तब मुंह के भीतर से नुकीले बाल बाहर निकलने लगते हैं। एक प्राणी अपने अन्य साथियों को समाचार पहुंचा देता है कि भोजन उपस्थित

है और वह सब अपने २ बाल निकालने आरम्भ कर देते हैं। इस समय इस प्राणि-समूह का आकार एक सुन्दर पुष्प के समान बन जाता है। इस से यह पता चलता है कि यह प्राणि-समूह इस समय भूखा है और भोजन पकड़ने के लिये तय्यार है। इन बालों के सिरे पर काटने के लिये डंक होते हैं और इनके समीपवर्ती भाग से एक प्रकार का रस (Mucus) निकलता है जिसमें कि वह अपने भोजन को घोल लेते हैं।

मूंगों को कई भिन्न २ प्रकार का भोजन दिखलाया गया, परन्तु इन्होंने मांसाहार को ही पसन्द किया। इनकी किसी भी जाति ने निरामिश भोजन को ग्रहण नहीं किया।

जब इनका पेट भर जाता है और भूख दूर हो जाती है तो यह बाल भीतर को घुसने आरम्भ हो जाते हैं और शेष भोजन को परे ढकेल देते हैं। इन प्राणियों की एक जाति १५० फुट मोटा मूंगा बनाने के लिये ६५३० से ७६२० वर्ष लेती है। एक दूसरी जाति यह काम १५०० वर्ष में ही कर लेती है और एक तीसरी जाति केवल १००० वर्ष में।

जल की त्वचा

हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि गत महायुद्ध में सिपाहियों को बेहोश करने अथवा अन्य प्रकार से आहत करने के लिये गैस का बड़ा प्रयोग किया गया था। इस सम्बन्ध का एक समाचार अभी २ आस्ट्रे-लिया से आया है। एक सिपाही पर बुरी तरह से गैस का प्रयोग किया गया था। उसका इलाज करते समय ऐसे लक्षण दिख-लायी पड़े जिनसे विदित होता था कि त्वचा पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा है। थोड़े से समय पीछे शरीर पर से समस्त चमड़ा उतर गया और वह केवल मांस, कच्चे मांस—का ढ़ेर ही रह गया। डाक्टरों ने बड़ा यत्न किया कि किसी प्रकार उसके शरीर पर नया चमड़ा निकल आवे या किसी अन्य प्राणी का चमड़ा जोड़ दिया जाये, परन्तु उनका सब प्रयत्न निरर्थक गया। मांस को किसी प्रकार भी छूना बड़ा ही कष्टप्रद था। गत चार वर्ष से रोगी पानी में ही निवास कर रहा है। बड़ी सावधानी से पानी का ताप ठीक २ रक्खा जाता है। इस प्रकार का प्रबन्ध किया गया है कि जिससे सोते समय वह जल में डूब न जाये, आरम्भ में वह कई बार डूबते २ बचा है। इसके निरोग होने अथवा अन्य किसी प्रकार से उसकी पीड़ा के कम होने की कोई आशा नहीं दिलाई जाती, तिस पर भी समाचार यह है कि उस कष्ट के अतिरिक्त जो कि स्पष्ट है रोगी स्व-स्थ है और साधारणतया प्रसन्न है। उसके मन से मृत्यु द्वारा कष्ट से छूटने की अभि-लाषा दूर हो गयी है।

सूक्ष्म जीवनाणु

आजकल वैज्ञानिक संसारमें जीवनाणुओं (Bacteria) के विषय में बड़ी चर्चा है। इस चेतन जगत में मनुष्यहित तथा अपहित के अनेक कार्य इन जीवनाणुओं द्वारा सम्पादित होते हैं। खेतों में फसल और उद्यानों में फल पैदा नहीं हो सकते यदि यह पहिले भूमि को उर्वरा न बनादें, दूध से दही नहीं बन सकता यदि इनकी सहायता न हो! कितनी ही औष-धियों से हम वञ्चित रहें यदि इनकी कृपा न हो, इसके विपरीत संसार के बड़े २ भयंकर रोगों का–जैसा टाईफाइड ज्वर, राज यक्ष्मा व हैज़ा इत्यादि का मूल कारण भी यही हैं। यह जीव इतने सूक्ष्म हैं कि सूक्ष्म-वीक्षण

यन्त्र की सहायता बिना इनका देखना असम्भव है। बहुत से रोगोत्पादक जीवनाणु जल द्वारा मनुष्य शरीर में घुसकर अपनी संहार लीला का आरम्भ करते हैं। कुंवों में 'तालावों' तथा थोड़े जलवाली नदियोंमें सुअवसर मिलने पर यह असंख्य राशि में उत्पन्नहोकर इन जलाशयों से जल पीने वालों को पीड़ा के कारण बनते हैं। इसी लिये आजकल के डाक्टर जल को छान कर पीने पर बड़ा बल देते हैं। केवल कपड़े से ही छानना पर्याप्त नहीं क्योंकि यह जीव कपड़े के छिद्रों में से बड़ी सुगमता से निकल जाते हैं। अतः बड़े २ नगरों में जहां कि वाटर वर्क्स हैं जल को छानने का विशेष प्रवन्ध किया जाता है। साधारण रीति से थोड़ा सा जल घर में छानने के लिये एक विशेष प्रकार का यन्त्र मिलता है जिस में से जल मोमबत्ती के आकारकी एक "कच्ची" चीनी मिट्टीकी नलकी में से छनकर शुद्ध किया जाता है। भट्टी में पकाते समय इस नलकी पर किसी प्रकारका पालिश नहीं किया जाता। इससे इसके छिद्र खुले रहते हैं और इन में से जल रिसता रहता है। इसके छिद्र इतने सूक्ष्म होते हैं कि जीवनाणु उन में से नहीं निकल पाते। यह छिद्र इतने महीन होते हैं कि एक इञ्च में ६ लाख के लग भग समा सकते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उपरोक्त जीवनाणुओं के शरीर की सूक्ष्मता की सीमा ६ लाख प्रति इञ्च से कम नहीं। हम समझ बैठे थे कि किसी जीव के देह का यह सब से सूक्ष्म आकार है। इस से भी सूक्ष्म शरीर किसी जीव का हो सकता है यह हमारे विचार में नहीं आता था। परन्तु परमात्मा की सृष्टि अनन्त है। जितना भी ज्ञान बढ़ता है उतनी ही हमारी अल्पज्ञता सिद्ध होती है। अब वैज्ञानिकोंने पता लगाया है कि यह जीवनाणु इतने सूक्ष्म भी हो सके हैं कि यह (वर्कफील्ड) छानने के यन्त्र की नलकी में से बड़ी सुगमता से निकल जाते हैं, अथवा इनके शरीर का परिमाण इतना सूक्ष्म है कि यह एक इन्च में ६ लाख से भी कहीं अधिक समा जाते हैं। इनको हम यदि सूक्ष्म जीवनाणु का नाम दें तो अनुचित न होगा। यह वही जीव हैं जो कि चेचक, टाईफायड, लाल ज्वर, सुखडा तथा इन्फ्ल्यूऐन्ज़ा इत्यादि के लिये उत्तरदाता हैं। सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र में जीवनाणुओं को देखने के लिये जिस पदार्थ में इन्हें देखना हो उसे तेल अथवा जल में घोलकर यन्त्र में इस घोल का एक विन्दु रखकर देखते हैं। बहुधा स्पष्ट रूप से देखने के लिये इस विन्दु को रंगना पड़ता है। इससे घोलने वाला तरल पदार्थ रंगा जाता है और या तो जीवनाणु पर किंचित भी नहीं चढ़ता अथवा इनका रंग घोल के रंग से सर्वदा भिन्न होता है। इस प्रकार यह बड़ी सुगमता से देखे जा सकते हैं। परन्तु उपरोक्त सूक्ष्म जीवनाणुओं के विषय में एक बड़ी कठिनता है। रंग के अणु इनके परिमाण से कहीं बड़े होते हैं अतः वह इनको स्वय ही ढांप लेते हैं। तो भी बड़ा यत्न करने पर जो दिखलाई देता है वह बहुत ही नन्हे २ विन्दु से होते हैं और इनका यह आकार अन्य जीवनाणुओं से सर्वथा भिन्न है। फिर हम यह कैसे जानें कि यह जीवित हैं ? जीवन का एक बड़ा लक्षण यह है कि इस का धारण करने वाला अपने जैसे अनेक जीव उत्पन्न कर सकता है। एक से (अथवा दो से) अनेक बन जाना यह सजीव जगत का बड़ा लक्षण है। इन सूक्ष्म जीवनाणुओं के विषय में भी यह बात पाई जाती है और इसी लिये हम कहते हैं कि यह सजीव हैं।

———

हमारी मंजूषा

मेरी कैलाश यात्रा—लेखक स्वामी सत्यदेवजी, प्रकाशक दी लचानिया पब्लिशिंग हाउस आगरा, दूसरा संस्करण, पृष्ठ संख्या १४० मूल्य ॥।)

१९१५ में योरोपीय महायुद्ध के समय में स्वामी सत्यदेव जी ने कैलाश और तिब्बत की यात्रा की थी। इस पुस्तकमें उसी यात्रा का अति मनोरञ्जक और रोमांचकारी वर्णन है। लेखक की वर्णन शैली सरस और सरल है। पुस्तक उपन्यास से भी बढ़कर मनोरञ्जक है। बिना समाप्त किये छोड़ने को मन नहीं चाहता। प्रत्येक भारतीय युवक को इसका एक बार अवश्य पाठ करना चाहिये जिससे उसके हृदय में भी भारत माता के दर्शनों के लिए लालसा और साहस उत्पन्न हो। पुस्तक में पहाड़ी दृश्यों के ७ चित्र भी हैं जिससे यह और भी चित्ताकर्षक हो गई है।

हिंदी भाषा का विकास लेखकश्री बाबू श्यामसुन्दरदास जी बी० ए० प्रकाशक श्री रामचन्द्र वर्म्मा साहित्य रत्नमाला कार्यालय बनारस सिटी, पृष्ठ १३२ मूल्य ॥=)

बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने 'भाषा विज्ञान' नाम से हिंदी में एक अपूर्व ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थ में उन्होंने हिंदी भाषा के साहित्य के विषय में बडी योग्यता से विवेचना की है। हिंदी भाषा की उत्पत्ति कहां से हुई, भिन्न २ समय में इसका क्या रूप रहा और किन कारणों से रूपभेद होता गया, इन्हीं उपयोगी विषयों पर संस्कृत से लेकर खड़ी बोली तक लेखक ने अपने विचार प्रगट किये हैं। भाषा विज्ञान से हिंदी के इतिहास का कुल अंश लेकर 'हिंदी भाषा का विकास' नाम से यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है। पुस्तक का विषय वैज्ञानिक है तिसपर भी शैली मनोरञ्जक है। थोड़ा सा ध्यानपूर्वक पढ़ने से बड़ा आनन्द आता है। प्राचीन आर्य भारत में कब और कैसे आये इस विषय पर योरोपियन विद्वानों ने अपने कल्पनात्मक विचार प्रगट किये हैं। परन्तु उनका आधार कोरी कल्पना है अतः इस कल्पना को इतिहास का स्थान नहीं दिया जा सकता तो भी हमारे योग्य लेखकने इसी काल्पनिक आधार पर हिंदी भाषाकी उत्पत्ति को निर्धारित किया है। एक बात और है। लेखक ने वेदों की संस्कृत को ही हिंदी भाषा का मूल आधार माना है और यह मानकर कि वेद मनुष्य कृत हैं इनके मंत्रोंकी रचनाके सम्बंध में भी अनेक कल्पनायें कर डाली हैं। यह एक विवादास्पद विषय है। इस बात का कोई सबूत नहीं कि वेदों का कोई संपादन काल था। ऐसी २ कल्पनायें विषयको सरल बनाने में चाहे सहायता दें परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि कोण से इनका महत्व सर्वत्र नष्ट हो जाता है। विज्ञान भी कल्पना (Imagination) के बिना एक पग उन्नति नहीं कर सकता, परन्तु विज्ञान की कल्पना का मूल आधार घटना (Facts) होते हैं। हमारे इतना कहने पर भी पुस्तक की उपयोगिता में कोई कमी नहीं आती। प्रत्येक साहित्य के विद्यार्थी को भाषा विकास का ज्ञान होना परमावश्यक है और इस ज्ञान पूर्ति के लिये उक्त प्रस्तुत पुस्तक बड़ी सहायता दे सकी है। यह हमारे सौभाग्य की बात है कि हिंदी साहित्य में अब

ऐसी २ सारगर्भित पुस्तकें निकलने लग पड़ी हैं।

अगले सात वर्ष—लेखक श्रीयुत सत्यभक्त प्रकाशक सोशलिस्ट बुक शाप कानपुर पृष्ठ संख्या लगभग २०० मूल्य १)

पादरी वैक्सटर ने१८६६में Forty Future Wonders of Scriptural Prophecy (बाइबिल में वर्णित चालीस भविष्यत आश्चर्य) नाम की एक पुस्तक लिखी थी। इसके १५ संस्करण निकल चुके हैं और कोई सवालाख प्रतियां बिक चुकी हैं। यह हिंदी पुस्तक उसी पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। असली पुस्तक में भारत के विषय में बहुत कम लिखा गया है अतः हिंदी लेखक ने पुस्तक के उपसंहार के रूप में इसके दूसरे भाग में भारत सम्बंधी भविष्य बाणियों कोएकत्र कर दिया है।

आगामी सात वर्षों में संसार में क्या २ मुख्य घटनायें होंगी यही इस पुस्तक का विषय है। योरोप का भविष्य क्या होगा, इंगलैंड की राजसत्ता का नाश, भारत में एक बार पुनः कुछ समय के लिये मुसलमानी राज्य की स्थापना, संसार पर आने वाले अनेक संकट इत्यादि विषय का रोचक वर्णन पुस्तक में किया गया है। लेखक भविष्य-वाणी सदैव सत्य होती है इस बात को नहीं मानता। उस के मत में जहां तक इनका आधार सामयिक घटनाओं को विचार पूर्वक दर्शन और मनन पर है वहीं तक इनके सत्य होने की संभावना है।

पुस्तक रोचक और शिक्षाप्रद है। इस विषय की हिन्दी में यह पहिली ही पुस्तक है। मूल्य कुछ अधिक है।

पथ्य—लेखक श्री व्यास पूनमचंद तनसुख वैद्य, प्रकाशक पंडित मीठालाल व्यास ब्यावर राजपूताना पृष्ठ २८० मूल्य १)

यह निर्विवाद है कि मनुष्य का स्वास्थ्य उसके भोजन पर निर्भर है। ठीक प्रकार से ठीक २ परिमाण में किया हुआ भोजन न केवल मनुष्य को स्वास्थ्य रखने में ही सहायता देता है वरन् रोगी के रोग को दूर करने का भी बड़ा भारी साधन है। इस पुस्तक में लेखक ने पथ्य सम्बंधी अनेक जानने योग्य बातों का संग्रह किया है। किस समय क्या वस्तु खानी चाहिये, उसको पकाने की क्या विधि श्रेयस्कर है? उसके क्या २ गुण हैं, किस ऋतु में इसका सेवन करना चाहिये? इत्यादि अनेक उपयोगी बातों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त स्वस्थ्य सम्बन्धी और भी कितनी ही बातों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक निसन्देह लाभकारी है।

रजस्वला के समय पालन करने के आरोग्यता के नियम—लेखक और प्रकाशक उपरोक्त सज्जन, पृष्ठ ४८ मूल्य ।)

स्त्री के जीवन में रजस्वला-काल बड़ा महत्त्व का समय है। इसःसमय नियम पूर्वक रहने पर ही उनका स्वास्थ्य तथा जीवन का सुख निर्भर है। परन्तु हमारी अनेक बहिनें अज्ञानता से इस सत्य को न समझ कर अनेक उल्टे व्यवहार कर बैठती हैं जिस से उन्हें आयु पर्यन्त कष्ट भोगना पड़ता है। इस पुस्तक में स्त्री समाज को रजस्वलास म्बन्धी भूलों से सावधान कर उन्हें ज़रूरी बातें बतलाने की चेष्टा की गयी है। पुस्तक स्त्रियों के बड़े हित की है, और प्रत्येक युवती को इस का पाठ करना चाहिये।

आर्य्याभिविनय भाषाटीका—(दूसरा भाग) निर्माता श्री स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती, प्रकाशक श्री राजपाल प्रबन्धकर्ता आर्य पुस्तकालय, अनारकली लाहौर। पाकेट साईज, सुंदर कपड़े की जिल्द पृष्ठ १४४ मूल्य ।≈)॥

इस पुस्तिका में परमात्मा की प्रार्थना, स्तुति, सम्बंधी अनेक वेदमंत्र पदार्थ और भावार्थ सहित दिये गये हैं। सायं और प्रातः ईश भक्ति अवश्य करनी चाहिये इसके लिए इस पुस्तक में बड़ी श्रेष्ठ और उत्तम सामग्री एकत्र की है। वेद के पवित्र मंत्रों का पाठ कितना आनंददायक और ज्ञानवर्धक है यह कुछ वही जानते हैं जिन्हें इसका सौभाग्य मिला हो। इस पुस्तक के प्रति दिन के पाठ से यह आनन्द सर्वसाधारण को सहल में ही प्राप्त होसकता है।

कवि—कौमुदी - हिन्दी कविता सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्रिका, सम्पादक श्री पंडित रामनरेश त्रिपाठी। प्रकाशक हिन्दी-मन्दिर प्रयाग, पृष्ठ ५२ साईज ३०×२०/१६ वार्षिक मूल्य २)

हिन्दी में आजकल जो खड़ी बोली की कविता की दुर्दशा हो रही है यह किसी भी मासिक पत्रिका के पाठ से पता लग सकता है। कविता कला से अनभिज्ञ अनेक कविगण अपनी कलानिपुणता दिखलाने का प्रयास करते पाये जाते हैं। न इसमें भाषा सौन्दर्य है और न भाव, न मधुरता यही कारण है कि यह अभी तक रसिक हृदय पाठकों और कला—निपुण कवियों को अपनी ओर खैंच नहीं पाई है। कवि—कौमदी का जन्म खड़ी बोली की कविता के सरस, सुबोध और व्यवहार योग्य बनाये जाने के ही लिये हुआ है। इसमें कविता विषयक गद्यलेख, कविताएं और कहानियां भी रहेंगी। ''समस्या पूर्ति के साथ ऐसे विषय भी दिये जायेंगे, जिन पर कवि लोग अपनी २ कल्पना की छटा दिखलावेंगे।' इस प्रकार इस पत्रिका द्वारा उत्तम साहित्य की वृद्धि, रसिकों का मनोरञ्जन और आगन्तुक कवियों का मार्ग प्रदर्शन होगा। श्रीयुत रामनरेश जी स्वयं कवि हैं, कविता मर्मज्ञ है, अतः आशा है कि पत्रिका अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होगी।

इस पत्रिका का पहिला अकं हमारे सामने है। कुल मिलाकर १० लेख और कवितायें हैं, लेख आलोचनात्मक और विद्वत्ता पूर्ण तथा कविता रसमय और सारगर्भित हैं। आरम्भ में मुरली मनोहर का तिरंगा चित्र है।

कवीन्द्र—कविता सम्बन्धी मासिक पत्र। सम्पादक स्वामी नरायणदत्त सरस्वती और सहायक सम्पादक श्री अनूप शर्म्मा बी० ए० पृष्ठ सं० ४८ मूल्य ३)

यह पत्रभी उपरोक्त उद्देश्य से ही प्रकाशित हुआ है। इसकी दूसरी संख्या हमारे सामने है जिसमें हिंदी के कितने ही प्रसिद्ध कवियों की ललित और रसभरी कवितायें हैं कितने ही कविता सम्बन्धी सुपाठ्य लेख हैं। आरम्भ में श्रीकृष्ण का बाल काल सम्बन्धी एक तिरंगा चित्र है। पत्र का सम्पादन योग्यता और परिश्रम से किया गया है और विषय बाहुल्यता लाने का पूरा यत्न किया गया है। आशा है यह पत्र भाषा की अच्छी सेवा करेगा।

बनलता - मासिक पत्रिका, सम्पादक श्री रुद्रदत्त बी० ए० प्रकाशक श्री गिरजादत्त शुक्ल "गिरीश" बी० ए० वनलता सेवा संघ प्रयाग। वार्षिक मूल्य ३॥)

इस स्त्री उपयोगी पत्रिका का चौथा अंक हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुआ है। इस में स्त्री सम्बन्धी विषयों पर उत्तम १४ लेख और कवितायें हैं। लेख सभी ही सुपाठ्य, मनोरंजक और पवित्र भावों से भरे हैं। शर्मा जी की गिरफ्तारी शीर्षक लेख में आज कल जो हिंदी पत्रों में स्त्रियों का नग्न और अर्धनग्न चित्र देने की कुप्रथा चल पड़ी है उसका बड़ा सुन्दर उपहास उड़ाया गया है। ५ वे अंक से इसका मूल्य केवल ॥।) वार्षिक करदेने की सूचना दी गयी है। आशा है कि ऐसी उत्तम और इतनी सस्ती पत्रिका से हमारा स्त्री समाज अवश्य लाभ उठावगा।

हिंदी-पुष्कर—सचित्र मासिक पत्र संपादक श्री बृजेन्द्रचन्द्र मिश्र शास्त्री। प्रकाशक पं० गंगासहाय पाराशरी, 'सुन्दर निकेतन' बरेली, साईज २० + ३० सोलह पेज़ी पृष्ठ ५२, वार्षिक मूल्य २॥)

इसका दूसरा अंक हमारे सामने है। छपाई कागज़ साफ़ सुथरा, लेख और कविता उत्तम, रोचक और भावपूर्ण। आशा है पत्र हिन्दी भाषा की अच्छी सेवा करेगा।

कुसुमोद्यान

महात्मा गांधी और कपड़े

आज कल सभ्य संसार में देह की सजावट पर जितना बल दिया जाता है उसको दृष्टि में रखते हुये महात्माजी से एक मुसलमान सज्जन ने कपड़ों के लिये जो आग्रह किया है वह स्वभाविक ही है। परन्तु वह महात्मा कैसा उत्तम और उच्च भाव से पूर्ण उसका उत्तर देते हैं यह सब फैशन पसन्द लोगों को ध्यान से पढ़ना चाहिये। ज्योति के पाठकों के हितार्थ हम प्रश्न और उत्तर दोनों ज्यों के त्यों उद्धृत करते हैं:—

एक मुसलमान भाई लिखते हैं

मैंने आपको नडियाद स्टेशनपर दो मरतबा देखा है और बुद्धजयन्ति के मौकेपर आपकी तसवीर "जामे जमशेद" में देखी। उससे मालूम हुआ कि आपने कच्छ यानी लंगोट पहनने का नियम रक्खा है। भारत में करोड़ों आदमियों को एक जून पूरा खाना भी नहीं है और वे बिना वस्त्र के नंगे फिरते हैं, इस स्थिति का ख्याल करके आपने यह पोशाक़ धारण की होगी, ऐसा मेरा ख्याल है। आप की सत्य मान्यता पर मुझे शङ्का नहीं करनी है, मेरी तो यह अर्ज है कि ऐसी पोशाक मर्यादा और सभ्यता के अनुकूल नहीं है। इसलिये आप अपना पहले का पोशाक ही पहने। जैसे पुरुष वैसे स्त्रीवर्ग भी आपके दर्शनों के लिये और आपके साथ चर्चा करने के लिए आते हैं। स्त्रियोंके आगे मर्यादा और सभ्यता की बहुत जरूरत रहती है। आपको निश्चय करना चाहिये और मानना चाहिए कि हिन्दुस्तानमें हरेक आदमीके लिये टोपीकुरता (गलेमें पट्टीदार-खुली गरदनका नहीं) और

धोती वा पाजामा और चप्पल (जूता) इतना पोशाक होना जरूरी है । भारत संतानों को दो मरतबा पूरा खाने को और इतना ही पोशाक मिले तो वह सन्तोषकारक है । ऐसा माननेके लिए औरऐसी मान्यतासे आपको अपने पहले का ही पोशाक धारण करके कच्छ व लंगोट जो मर्यादारहित दिखाई देता है उसे दूर करने की आवश्यकता है ।"

महात्मा जी का उत्तर

यह पत्र जैसा है वैसा ही मैंने दे दिया हैं । दूसरे मुसलमान भाई और कितने ही हिन्दू भाईयों को भी जैसी इस भाई को शंका हुई है वैसी ही शंका हुई होगी । यह जान कर मैंने इस पत्र का जवाब देने की हिम्मत की है । खुद मुझ से सम्बन्ध रखने वाले कितने ही पत्र आते हैं । लेकिन उनके बारे में चर्चा करना व्यर्थ समझ कर 'नवजीवन' में मैं उनकी चर्चा नहीं करता हूं । पर इस पत्र में कितनी ही भूल हैं जिनका बताना मैं आवश्यक समझता हूं ।

मेरे कच्छ पहनने का सबब टीकाकार ने ठीक २ समझ लिया है । उस कारण को दूर करने के लिये सिवा स्वराज्य के दूसरा रास्ता नहीं है । हिन्दुस्तानी भाई बहिन स्वराज्य प्राप्त करके मेरे इस कच्छ को उतार सकते हैं । या ईश्वर मुझे ऐसा कमजोर कर दे कि मुझे ज्यादा कपड़ों के बिना चलही न सके तो यह उतर सकता है । शुरू में कच्छ पहनने के वक्त खुद मुझे यह डर था कि इस पर असभ्यता का आरोप होगा । किंतु मेरा जीवन जिस दशा में बह रहा है उसका बिचार करते हुए मुझे यही ठीक मालूम हुआ कि मैं इस असभ्यता को बरदाश्त करने का साहस करूं । मैं हमेशा अपने मुसलमान मित्रों के लिए बहुत कुछ करने को तैयार रहता हूँ । मुझे उनकी बहुत जरूरत है । पोशाक बदलने के पहले मैंने एक मित्र के साथ चर्चा भी की । उन्होंने इस बिचार को पसन्द किया और इससे मुझे बहुत हिम्मत हुई । इन तीन साल के अनुभव के बाद इस परिवर्तन के लिये मुझे जरा पश्चाताप नहीं हुआ है, अधिकाधिक सन्तोष ही होता जाता है ।

मैं ग़रीब से ग़रीब हिंदुस्तानी के जीवन के साथ अपने जीवन को मिला देना चाहता हूं । मैं जानता हूँ कि दूसरे तरीकों से मुझे ईश्वर के दर्शन हो ही नहीं सकते । मुझे उसे प्रत्यक्ष देखना हैं इसके लिए मैं अधीर हो बैठा हूं । जब तक मैं ग़रीब से ग़रीब न बन सकूं तब तक साक्षात्कार हो ही नहीं सकता । जब तक उन्हें पूरा खाने को नहीं मिलता है और पहनने के लिए कपड़े नहीं मिलते हैं तब तक मुझे खाना और कपड़े पहनना बुरा लगता है । यदि ईश्वर ने मुझे कमज़ोर नहीं बनाया होता तो मैंने अपने जीवन में और भी अधिक परिवर्तन किये होते । टीकाकारों को भारतवर्ष के नर कङ्कालों के हाल की कल्पना भी नहीं आसकती । इसका अनुभव करने के लिए तो उन्हें दूर गावों में जाना चाहिये और गांववालों के साथ मिलकर रहना चाहिये ।

हिन्दुस्तान के लिए यह भाई जिस प्रकार का पोशाक चाहते हैं वैसा पोशाक तो उन्हें दो सौ चार सौ बर्ष में भी नही मिल सकता । उन्हें यह जानना चाहिये कि हिंदुस्तान के करोड़ों लोगों को तो कच्छ भी नहीं मिलता है । यह सिर्फ लंगोटी ही लगा कर फिरते हैं । करोड़ों को चप्पल जूता भी नहीं मिलता है, उन्हें उसकी ज़रूरत भी नहीं मालूम होती है, गले में पट्टीदार कुरते, ये ग़रीब लोग कहां से लावें ? उन्हें टोपी भी कौन दे ? ऐसे कपड़े पहन कर हम इन ग़रीबों को कपड़े न पहना सकेंगे, ले-

किन हमारा धर्म तो यह है कि उन्हें पहना कर पहने और खिलाकर खांय। इन टीकाकार को तो पोशाक की पड़ी है। मैं उन्हें नम्रता पूर्वक यह खबर देना चाहता हूं कि इस देश के ग़रीबों को तो खाने को भी पूरा नहीं मिलता है फिर पोशाक के सुधार की तो बात ही क्या हो सकती है।

अब सभ्यता को लीजिये। सभ्यता कोई ऐकान्तिक शब्द नहीं है। उसका सब जगहों पर एकही अर्थ नहीं होता है। पश्चिम की सभ्यता पूर्व के लिये असभ्यता हो सकती है। पश्चिम का कितना ही पहनावा पूर्व में असभ्य समझा गया है। अमेरिका में तो मुझे कैद ही में रक्खा जायगा। श्री नारायण हेमचन्द्र धोती पहनने के लिए क़ैद किए गये थे। मेरी माता हमें-भाइयों को पतलून पहनते देख दुःखी होती थीं। इसे वह नंगा पहनावों में मानती थीं। असंख्य हिन्दू कच्छ को असभ्य पोशाक मानते ही नहीं। साधु लोग केवल लंगोटी ही पहनते हैं। इससे वे असभ्य नहीं गिने जाते।

मेरी नज़र में तो कम कपड़े पहनने में असभ्यता है ही नहीं। कपड़ों की ज़रूरत केवल शरीर की रक्षा के लिए है। उपरोक्त टीकाकार ने जिस दृष्टि से पोशाक के बारे में लिखा है उस दृष्टि से तो ज्यादा कपड़े पहिनने में जो बुराई है वह मेरे धर्म-भिखारी के कच्छ में नहीं है। मनुष्य का शरीर जैसा है वैसा ही यदि उसको देखा जाय और उसका विचार किया जाय तो उसमें मोहका कोई भी कारण दिखाई नहीं देता। इस नर-कंकाल को जब अनेक प्रकार के काट के और भांति २ के कपड़ों से सजाते हैं तब वह मोह पैदा करता है। यह विचार ठीक है। इसका एकही दृष्टांत देता हूं। मुरदे पर कोई मुग्ध हुआ है, ऐसा आज तक मालूम नहीं हुआ है। मोह सिर्फ उसमें रहने वाले जीव के सम्बन्ध में है। फिर शरीर के लिए इतना विचार क्यों? इतना शृंगार किसलिए?

कितनी ही बहनें मुझे दर्शन देनेके लिए आती हैं। वे मुझ पर प्रेम रखती हैं। और मुझे आशीर्वाद देती हैं। हिंदू और मुसलमान दोनों बहनें आती हैं। मेरा विश्वास है कि वे मेरे शरीर को देखने के लिए नहीं आतीं। वे मेरे शरीर को देखती हैं ऐसा मुझे कभी मालूम नहीं हुआ है, और होना भी ऐसा ही चाहिये। पुरुष हो या स्त्री उसे मित्रके शरीर को देखना ही न चाहिये। अनजान में अगर देख लिया जाय तो फौरन् नज़र हटा लेनी चाहिए। एक को दूसरे का केवल चेहरा ही देखने का अधिकार है। लक्ष्मण जैसे संग संयमी ने तो सीता जी के केवल पैर की उंगलियां ही देखी थीं। क्योंकि वे सीता जी के चरणों की वन्दना किया करते थे। इस लिए जब बहनें मुझे आशीर्वाद देने के लिए आती हैं, मुझे अपने कच्छ के लिए उन्हें देख कर कभी संकोच नहीं हुआ। मैं तो उनकी दया का भूखा हूँ। मैं उनसे बहुत मदत चाहता हूं। वे थोड़ी मदद कर भी रही हैं। लेकिन वह अभी बहुत ही कम है। हिंदू और मुसलमान बहनें जब चर्खे को अपना लेंगी, जब खादी को अपना शृंगार बनावेंगी तब मैं मान लूंगा, मुझे सर्वस्व मिल गया। तब फिर मैं इस भाई को भी धोती और भले ही पट्टीदार कुरता पहनकर सन्तोष पहुंचाऊंगा। क्योंकि जहां बहनों को खादी का रंग लगा कि स्वराज मिल ही गया। मैं समझता हूं। लेकिन इसके दरम्यान इस भाई को मुझ पर और मुझ जैसे कच्छ पहिनने वालों पर दया रखनी चाहिये और कच्छ को असभ्य मानते हुए भी अपना भाई समझ कर इन कच्छ वालों की असभ्यता को सह लेना चाहिये।

मोहनदास करमचन्द गांधी।

(नवजीवन)

काबुल में महात्मा गांधी

किसान से लेकर राजा तक खद्दर पहिनते हैं।

जनरल नादिर खां ने—जो कि अफ़गानिस्तान तथा ब्रिटेन की लड़ाई में अफ़गान सेना के सेनापति थे—एक पत्र-प्रतिनिधि से बातचीत करते हुए कहा है कि मुझे महात्मा गांधी के प्रोग्राम में पूरा विश्वास है। इस बात पर शोक प्रगट किया कि भारतीय जनता ने महात्मा गांधी जी की शिक्षाओं को लापरवाही से देखा है। इस लापरवाही का प्रमाण यह है कि अब लोगों ने विदेशी कपड़ा पहनना शुरू कर दिया है, अफ़गानिस्तान में किसान से लेकर राजा तक सब खद्दर पहिनते हैं। अफगानिस्तान में हिंदू मुसलिम एकता आदर्श रूप में स्थापित है। वहां गो हत्या का नाम भी नहीं है। जहांतक सम्भव होसका है विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया है। जनरल नादिर खां को अफगानिस्तान के भविष्य में पूरा विश्वास है। महात्मा जी पर पूरा विश्वास प्रगट करते हुए खद्दर को लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। मुसलमानों को कहा कि उन्हें चाहिए कि वह देशभक्त हों। हिंदुओं से कहा कि इन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि वह हिंदू मुसलिम एकता के बिना स्वतंत्र नहीं हो सकते। (अर्जुन)

लैनिन अमर है?

रूसका प्रसिद्ध बोलशेविक नेता परमगति को प्राप्त होचुका है, परन्तु उसके शरीर और 'आत्मा' को जीवित रखने के लिए बहुत कुछ किया जारहा है। इस विषय में Current Opinion लिखता हैः—

यद्यपि लैनिन मर चुका है परन्तु वह अब भी बोल रहा है, उसकी प्रेतात्मा अपने विचारोन्माद में अब भी वैसे ही बातें कर रही है। उसी के नाम का सहारा लेकर आजकल भी राजशासन किया जारहा है। क्योंकि आधुनिक रूसी सरकार नास्तिक विचार रखती है अतः उसे लैनिन की आत्मा के अमरत्व में विश्वास नहीं। परन्तु वह इस प्रकार का अति-ठंढ उत्पन्न करने वाला यन्त्र बना रही है जिसमें कि लैनिन के शरीर को आनेवाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सके। इस प्रकार लैनिन मास्को का बादशाह टट *(Tut) बन गया है, जिसने कि बोलशेविक मत का पूज्य सन्त, अथवा विनाश होने वाली प्रकृति के देवता का रूप धारण कर लिया है। इस सोशिलिस्ट सम्प्रदाय ने ईसाइयत के स्थान में उसके मृत शरीर की पूजा को स्थान दिया है।

लैनिन की बीमारीके समय भी इस बोलशेविक सरकार ने लैनिन के नाम से घोषणापत्र निकाले थे, और ऐसा प्रतीत होता है कि यह कूट रचनायें अभी चलती रहेंगी। यह कहा जाता है कि शोशियलिज़्म के इस मुंहफट ने अपनी वसीयत में अपने ५०,००० भक्तों के लिए अपनी सम्पत्ति दान की है। इन भक्तों को धन अथवा जायदाद के रूप में कुछ न मिलेगा वरन साईबेरिया में देश निकाला ही यह उत्तरदान है। ऐसी अवस्थाओं में किसी मुकदमे की आवश्यकता नहीं। अपराधी को इतना ही कह देना पर्याप्त है कि लैनिन की वसीयत में तुम्हारा नाम है।

हम नहीं समझते कि उपरोक्त में कहां तक सचाई है। सम्भव है कि यह भी सभ्यता अभिमानी ईसाई देशों के लैनिन के विरुद्ध उस आंदोलन का ही एक अंश हो जो कि उसके जीवन काल में किया जाता रहा है।

* प्राचीन मिश्र का एक बादशाह

मजदूर सरकार पर बरट्रन्ड रूसल के विचार

श्रीयुत बरट्रन्ड रूसल इंगलैंड के विचारकों में बड़ा उच्च स्थान रखते हैं। भारतवर्ष और मजदूर सरकार के सम्बन्ध में The Tomorrow में इस प्रकार उन्होंने अपने विचार प्रगट किये हैं:—

निसन्देह मेरे कुछ विचार हैं जिनके अनुसार मजदूर सरकार को भारत के साथ बर्ताव करना चाहिये था। मैं यह नहीं कहता कि उन्हें भारतको इसी क्षण छोड़ आना चाहिये, परन्तु यह मैं बड़े बल पूर्वक कहता हूं कि उन्हें यह अपनी इस इच्छा की स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये थी कि वह भारत को उपनिवेशों के बराबर स्वराज्य देने को तैयार हैं। उन्हें प्रसिद्ध आदमियों की, विशेष कर भारत वासियों की एक कान्फ्रैन्स बुलानी चाहिये थी जो कि सारी अवस्था पर-अन्य राज्यों सम्बन्धी परिस्थिति को न भूलती हुई विचार कर सक्ती। उन्हें भारतवासियों को ही अपने लिये भावी राज्य का कार्यक्रम बनाने की आज्ञा देनी चाहिये थी। क्योंकि जब तक भारतीय स्वयं ऐसा कार्यक्रम न बतलावें वह अंग्रेज़ों पर अपना राज्य जारी रखने का दोष नहीं लगा सकते।

यह सत्य है कि मज़दूर सरकार पिछले समय की धोखाबाज़ी के स्थान में दयानतदारी और शुद्ध विश्वास को स्थान देने का यत्न कर रही है, लेकिन ऐसे कितने ही अत्याचारी नियम हैं जिनको इसने अभी तक छुआ ही नहीं। लोगों के निजी पत्रों, समाचारपत्रों तथा पुस्तकों आदि को ज़प्त कर लेना बड़ा कड़ा नियम है। जहाज द्वारा आये हुये माल पर चुंगी लेने वाला अवसर किसी भी प्रकार के छपे हुये माल को यदि वह उसे पसन्द नहीं, रोक लेता है। कई बार ऐसा हुआ है कि कई हिन्दुस्तानी विद्यार्थी जब इंग्लैन्ड के विश्वविद्यालयों से शिक्षा पाकर लौटकर हिन्दुस्थान में आते हैं तो उनकी वह पुस्तक जिन्हें विश्वविद्यालय ने उन्हें पढ़ने का आदेश किया था छीन ली जाती हैं।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भारतकी निर्धनता का कारण बाहर के पूंजीपतियों की सरकार द्वारा सहायता है। यद्यपि सब नहीं, परन्तु बहुत से पूंजीपति अंग्रेज़ हैं। धनी पार्सियों की इसमें अपनी ज़िम्मेवारी है। परन्तु यह पूंजी की रक्षा कोई देश की राजनैतिक अवस्था को योंही बिगड़ने देने के लिये कोई सच्चा बहाना नहीं।

वनिता विनोद

स्त्री जगत

देवी वसन्ती प्रथम कमला लेक्चरार

'स्त्री धर्म' लिखता है कि २५ सितम्बर को मिसेज़ एनी विसेन्ट को राजनीतिक और और धार्मिक क्षेत्र में कार्य करते हुये ५० वर्ष पूरे हो जांयगे। हमारी पाठिकायें मिसेज़ बेसेन्ट को अच्छी तरह जानती होंगी। उन्हें अब लगातार काम करते हुये ५० वर्ष होगये हैं। इतनी देर तक की देश सेवा का शायद ही किसी देवी को सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा।

इन्होंने बालकों और बालिकाओं की शिक्षा की वृद्धि के लिये भी बड़ा पुरूषार्थ दिखलाया है। अब इनको कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'कमला लेकचरार' की उपाधि मिली है। गत वर्ष सर आशुतोष मुकर्जी ने अपनी पुत्री कमलाकी स्मृतिमें४००००रू०कलकत्ता विश्वविद्यालय को दान दिये थे कि इसके सूद से १०००) रु० सालाना गुज़ारा और एक स्वर्ण पदक प्रति वर्ष दिया जाया करे। वहां की सेनेट ने प्रथम मिसेज़ बेसेन्ट को ही इस पद के योग्य समझा है।

जापान की साधुनी देवियां

बौद्धधर्म की एक शाखा जूड़ो धर्म है जो जापान में प्रचलित है। उसका ७५० वां जन्मोत्सव था। अतः जापान के सब हिस्सों से ३५० से ऊपर साधुनी देवियां [नन्स] एक मन्दिर में इकट्ठा हुई और उन्होंने यह प्रस्ताव पास किया कि अपने धर्म की सब से बड़ी सभा के सदस्यों के चुनाव में उन्हें भी महन्तों के समान अधिकार दिये जावें। इस प्रस्ताव में एक बात यह भी कही गई थी कि नन्स के लिये एक उच्च कोटि का शिक्षणालय भी स्थापित किया जाय जो कि वर्तमान शिक्षणालय से बहुत बढ़कर हो।

इसके बाद अपनी पाठशाला में ही इनकी ख़ास सभा हुई जिसमें सभी ने अपने काले कपड़े पहिने हुये थे। जन्मोत्सव पर जापान साम्राज्य के जूड़ों मतावलम्बी हज़ारों महन्त उपस्थित थे।

———

श्रीमती पार्वती देवी जी जो अभी २ यू० पी० सरकार की जेल से छूटी हैं, पंजाब में हिन्दी प्रचार के लिये दौरा करने वाली हैं।

———

यह कहा गया था कि दिल्ली में गत हिंदू मुसलमानों के झगड़े के अवसर पर हिन्दुओं ने दो मुसलमान स्त्रियों पर आक्रमण किया। हिंदूरक्षासमिति का कथन है कि यह समाचार असत्य है, उसे बहुत खोज करने पर भी ऐसी घटना का पता नहीं लगा। यदि यह बात सिद्ध हुई तो वह अपराधियों को यथोचित दंड दिलवाने का भरसक यत्न करेगी।

———

राष्ट्रीय ऋण और उसका कर लगाने की व्यवस्था तथा देश के बणिज व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ता है यह जाँच करने के लिये इग्लैन्ड के प्रधान मन्त्री श्री मैकडानल्ड ने १३ सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त की है जिन में श्रीमती बारबरा बूटन नाम की सम्पत्तिशास्त्रविज्ञ एक विदुषी महिला भी है। आप की आयु २७ वर्ष की है। आपने कैम्ब्रिज के गरटन कालिज में सम्पत्ति शास्त्र में बड़ी उच्च उपाधि प्राप्त की थी।

—०—

गतवर्ष भारत में ८९२ विधवाओं का पुनर्विवाह हुआ। यह संख्या इससे पहिले दो वर्षों में ४५३ और ३१७ थी। इनमें से पंजाब सीमा प्रांत और देहली प्रांत में ६६९ विवाह हुये। इनमें से १६३ ब्राह्मण १८३, खत्री, २३२ अरोडा, १०५ अग्रवाल, ६३ राजपूत, १९ कायस्थ और १२७ अन्य जातियों की थीं। संयुक्त प्रांत में १२७ और सिंध में ५६, बंगाल में १६, बम्बई में ११, मद्रास में १७ और मध्यभारत में ३ विवाह हुये।

—०—

अभी २ रूस में एक पुरानी किसी नंगी स्त्री की पत्थर की पूरे आकार की मूर्ति मिली है। उसके अंग बहुत बड़े २ हैं। यह ज्वालामुखी पहाड़ से निकलने वाले पिघले हुये

आग्नेयोद्गार में धसी हुई थी और किंचित् इसी कारण ही यह सुरक्षित रह सकी। मूर्ति संसार में सब से पुरानी है। अब तक जिस प्राचीन समयमें वैज्ञानिकों के मतानुसार मनुष्य का सब से पहिले इस सृष्टि में प्रादुर्भाव हुआ यह उस से ४००० वर्ष पहिले की अनुमान की जाती है। यह खोज विकासवाद के सिद्धांत को एक और धक्का है।

—०—

कविता की एक छोटीसी पुस्तक अभी २ छपी है, जिसकी लेखिका एक १३ वर्षीया स्काच बाला है, उसने चार वर्ष की आयु में कविता करनी आरम्भ करदी थी।

—०—

लीग आफ नेशन्स के दफ्तर में ३७० कार्यकर्ताओं में से आधे से अधिक स्त्रियां हैं।

—०—

जापान में स्कूल की शिक्षा समाप्त कर के अब लड़कियां आगे कालिज में पढ़ने के लिये अधिक उत्सुक हैं। इस वर्ष से पहिले स्कूल शिक्षा समाप्त होने से पहिले ही उन में से बहुधा विवाह कर लेती थीं।

—०—

कैनेडा में स्त्रियों की रुचि और सब कामों की अपेक्षा गृहपत्नी बनने में अधिक है। वह नौकरों से न करवाकर घर के कामों को अपने हाथों करना अधिक अच्छा समझती हैं। इस पर भी वह अतिथि सत्कार बड़ी श्रद्धा और प्रेम से करती हैं। वह नौकरों के वेतन और भोजन पर धन को व्यय करने की अपेक्षा इससे एक मोटरकार खरीदना अधिक पसन्द करेंगी। पति भी गृहस्थी के काम में अपनी पत्नी की पूरी सहायता करते हैं।

——

अनारि नारियों से

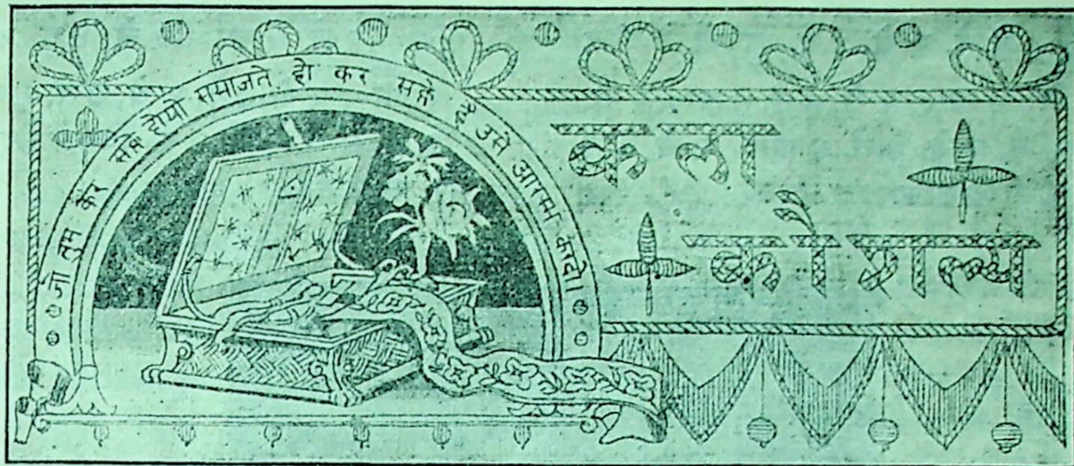
ले०—कविवर 'निर्मल'-प्रयाग

दोहा

ठोकर खा दर दर फिरो, खोल कुरीति-किवाड़।
भारत की हे नारियो, जीवन जन्म बिगाड़॥

[कवित्त घनाक्षरी]

माँगो बरदान घेर घेर के अघोरियों से,
मोरियों का पानी गटा गट्ट पिया कीजिये।
'निर्मल' मसानी मियां भूतड़ों के डर से,
वराही के चबूतरों की पूजा किया कीजिये।
लोक लीला देख देख लाड़ली लगन लाय
दम्भी दुराचारियों से लाला लिया कीजिये।
भारत की नारियो! बना के रंग ढंग हाय!
जीवन को जार यों विजार जिया कीजिये।



सुन्दर लेस

लें०—श्री० ओ३म्वती देवी

इस महीन सुन्दर लेस को यदि १०० न० के धागे और ६ नं० के क्रोशिये से बीना जाय तो $2\frac{3}{4}$ इंच चौड़ी बनेगी और दुपट्टे इत्यादि में लगाने से बड़ी अच्छी सजेगी।

चेन = "चे"; तेहरा क्रोशिया = "ते"
५२ चेन करके आरम्भ करो

१ पंक्ति:–१ ते ८ वीं चेन में, ३ ते. अगली तीन बराबर चेनों में * २ चे, २ छोड़ो १ ते. अगली चेन में, इस * चिन्ह से ११ दफ़ा और बीनो सारे १२ खाने बने। २ चे, २ चे छोड़कर, ३ ते. अगली ३ चेनों में, ३ चेन लौटो।

२ पंक्ति:-१ ते प्रत्येक दोनों तेहरों पर, ११ खाने. २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, पिछले ८ चेन के छल्ले में ५, चे. लौटो।

३ पंक्ति:–४ ते, पहिले २ चेनों वाले घर में, २ चे, ४ ते, अगले में, १० खाने, २ चे, ३ ते अन्त में ३ चे, लौटो।

४ पंक्ति:–२ ते, ६ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे ४ ते, २ चे, ४ ते, पिछले छेद में, २ चे, ४ ते उसी में और ५ चे, लौटो।

५ पंक्ति:–४ ते दो तेहरों के झुण्डों के बीच की जगह में, २ चे, ४ ते, उसी में और २ खा०, २ चे, ४ ते, अगले में २ चे, ४ ते, अगले घर में, ८ खाने, २ चे, ३ ते, ३ चे लौटो।

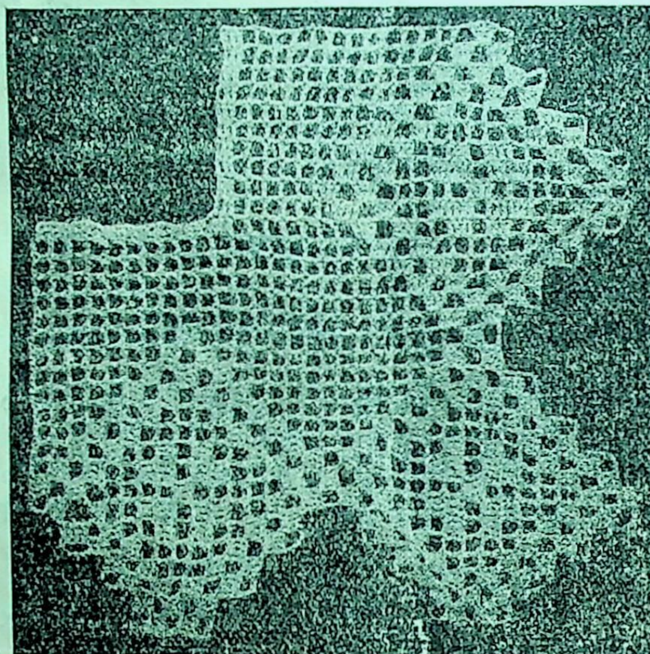
६ पंक्ति:–२ ते, ७ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे-४ ते, ४ खा०, २ चे, ४ ते पिछले छल्ले में, २ चे, ४ ते, फिर उसी में ५ चे लौटो।

७ पंक्ति:-४ ते, २ चे, ४ ते, झुण्ड के बीच में, १ खा, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, १ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, ६ खा०, २ चे, ३ ते, ३ चे लौटौ।

८ पंक्ति:–२ ते, ५ खा० २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, १ खा० २ चे, ७ ते, २ चे, ७ ते, १ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते उसी ज़गह में-फिर ५ चे लौटो।

९ पंक्ति:–४ ते, २ चे, ४ ते, झुण्डों के बीच में, ४ खा०, २ चे, ४ ते, ४ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, ४ खा०, २ चे, ३ ते ३ चे लौटो।

१० पंक्ति:–२ ते, ५ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे, १ खा०, २ चे, ७ ते, २ चे, ७ ते, १ खा० २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, पिछले छेद में ५ चे लौटो।



११ पंक्ति:–४ ते पहिले छेद में, २ चे, ४ ते, अगले छेद में, १ खा० २ चे, ४ ते १ खा०, २ चे, ४ ते २ चे, ४ ते, ६ खा. २ चे, ३ ते, ३ चे लौटो।

१२ पंक्ति:–२ ते, ७ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, ४ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, ५ चे लौटो।

१३ पंक्ति:–४ ते पहिले खाने में, २ चे, ४ ते, ८ खा०, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, ८ खा. २ चे, ३ ते, ३ चे लौटो।

१४ पंक्ति:–२ ते, ६ खा०, * २ चे, ४ ते, इस * निशान से ३ बार, ५ चे लौटो।

१५ पंक्ति:–४ ते पहिले खाने में, २ चे, ४ ते, २ चे, ४ ते, १० खा०, २ चे, ३ ते, ३ चे, लौटो।

१६ पंक्ति:—२ ते, ११ खा, २ चे, ४ ते २ चे, ४ ते, ५ चे, लौटो

१७ पंक्ति:–४ ते, पहिले खाने में, १२ खा, २ चे, ३ ते, ३ चे लौटो।

लेस की दूसरी पंक्ति से आगे जितनी चाहो बढ़ाओ।

स्यालकोट में स्त्रियों के कार्य्य

लेखिका---कुमारी दमयन्ती देवी लेडी डाक्टर

आर्य्य-स्त्रीसमाज स्यालकोट कई वर्षों से यथाशक्ति स्त्रीजाति की सेवा करती रही, इस का सारा भार श्रीमती कर्मदेवोजी मुख्याध्यापिका आर्य्य कन्या पाठशाला स्यालकोट पर रहा। मेरी लेखनी में इन देवी जी के गुण वर्णन तथा जो समाज़ सेवा इन्होंने की, उसका धन्यवाद देने की शक्ति नहीं है। इतना कहना आवश्यक समझती हूँ कि इन्होंने अपना सर्वस्व स्त्रीजाति के उद्धारार्थ अर्पण कर दिया। यह स्त्रीसमाज में तन, मन,धन से सदा सेवा करती आई हैं। यह स्वयं ही प्रधाना, मन्त्राणी, ख़ज़ानची तथा उपदेशिका इत्यादि का काम एक शरीर होते हुये सब अपने ऊपर लिये बैठी थीं। परन्तु एक वर्ष से चन्द एक देवियों ने इन का कार्य देख कर भार बटाने का यत्न किया और इस वष ऋषिपक्षोत्सव से कुछ दिन पहिले उनको प्रधाना का पद देकर बाकी काम स्त्रीसमाज की मेम्बरों ने बाँट लिया। श्रीमती कर्मदेवी जी ने भी सहर्ष काम सब को समझा दिया। फिर नियमानुसार मार्च माह से काय्य आरम्भ किया गया।

ऋषिपक्षोत्सव में और स्थानों की भांति १५ दिन तक खूब प्रचार किया गया। भजन, प्रार्थना,उपदेश इत्यादि के साथ स्त्रियों तथा लड़कियों के दिल बहलाव के लिये आर्य्य-कन्या पाठशाला की कन्यायों केखेल [क]भाग से लेकर आठवीं जमात तक हुये जो उनमें प्रथम रहती थीं,उन्हें इनाम दिया गया।

उपदेश बड़े ही गम्भीर विचारों के होते रहे सबसे अधिक आकर्षणीय उपदेश कुमारी शांतिदेवी का पांच यज्ञों पर था। उन्होंने अपने मधुर स्वर में वेद मंत्रों के अर्थ सहित दृष्टांत देकर स्त्रीजाति पर बड़ा उपकार किया हमें इस देवी के उपदेश से इसलिये विशेष प्रसन्नता हुई कि इस देवी ने आर्य्य-कन्या पाठशाला स्यालकोट में ही शिक्षा पाई और यह पहिला समय था कि इन्होंने उपदेश दिया।

यहां पर यह बता देना भी उचित है कि इस ऋषिपक्ष पर स्त्रीसमाज ने कुछउपनियम बनाये,जिनका यहां पर लिख देना उचित है

(१) प्रत्येक मैम्बर मातृ-भाषा जानने वाली हो।

(२) बाल तथा वृद्ध विवाह के हटाने में यत्न करने वाली हों।

(३) सायं प्रातः संध्या करने वाली हों, गायत्री मंत्र अवश्य जाने।

(४) कम से कम आठवें दिन अवश्य हवन करें,जो हवन मंत्र न जानती हों गायत्री का जाप कर आठवें दिन आहुति दें।

(५) स्यापे की कुरीति को हटाने का यत्न करने वाली हों।

(६) स्वदेशी वस्त्र धारण करने वाली हों। इत्यादि उपयोगी नियम बनाये गये,जिनको बहुमत से पास किया गया। अबतक समाज नियम से अपना काम कर रही है। इस वर्ष एक नई बात और आरम्भ की गई कि गृहो-पासना पूर्णमाशी और अमावस्या के दिन शहर में रहनेवाली बहिनों केघरों में की जाती है जिसका असर आस पास के लोगों पर

अच्छा पड़ता है। हवन करने के पश्चात् भजन तथा उपदेश विचारशील बहिनोंके होते हैं।

अब तक इस समाज में विचार होता रहा कि आस पास गाओं में प्रचार करना चाहिये, परन्तु कार्य्य करने वाली बहिनों को काम की अधिकता से यह सुभीता प्राप्त न हुआ, लेकिन जून१६२४ में एक ग्राम रामपुर जो उगोकी से कुछ दूरी पर है वहां की एक देवी की इच्छा प्रगट करने पर कन्यायें और स्त्रियें २२ की तादाद में रेल द्वारा उगोकी पहुंचीं। दोपहर का समय होनेसे गर्मी अधिक थी, तिस पर मील डेढ़ मील का उगोकी से चल कर रायपुर पहुंचना और भी कठिन था, परन्तु कन्यायें हंसती दौड़ती गईं जिस से स्त्रियों का उत्साह बढ़ता गया। वहां पहुंच कर भजन, उपदेश तीन देवियों के हुये। एक हिंदी में दो पंजाबी में हुये। उपस्थिति अच्छी थी। स्त्रियों ने बड़े ध्यानसे सुना और हमारा विचार है कि इसका असर गांव की स्त्रियों पर बड़ा हुआ और हमें इस छोटे से गांव से ६रुपये ३आने बिना मांगे दान के प्राप्त हुये।

मुझे पूर्ण आशा है कि यदि इस भांति उत्साह से आर्य्य—स्त्रीसमाज स्यालकोट काम करती गई तो इसका प्रभाव पंजाब की अन्य समाजों पर अच्छा पड़ेगा और पजाब की स्त्रियां अपनी उन्नति करती हुई संगठन कर दूसरे प्रांतों को उठाने में अग्रसर रहेंगी और स्त्री समाजें भी हमारी भांति पत्रों द्वारा अपने कार्य को जनता के सामने रखेंगी।

कनाडा की देवियां

कनाडा की देवियां गृहकार्य में बहुत मन लगाती हैं और उसे आदर की दृष्टि से देखती हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वहां पर नौकरानियां बहुत मंहगी हैं। वहां पर नौकरानी को भोजन और प्रति सप्ताह १५) कम से कम देने होते हैं और भण्डारिन के ४५) रुपये और भोजन।

लेकिन वह पत्नी जिसे कुछ भी वेतन नहीं मिलता और जेब खर्च भी बहुत थोड़ा मिलता होगा, बड़े लगन से घर के कार्य करती रहती हैं और अपने सम्बन्धियों की आवभगत भी अच्छी तरह करती हैं। कनाडा का अतिथ्य सत्कार बहुत खर्चीला होता है। हरएक चीज़ उपस्थित करनी पड़ती है। और मेहमान को घर के काम में बिल्कुल नहीं लगाया जाता।

पूर्वीय कनाडा में तो १० में से एक ही के घर में मोटरकार होगी, लेकिन पश्चिमी में सब के घर। और यदि मोटरकार रखने और रसोइया रखने में रुचि का प्रश्न हो तो मोटर रखना ही पसन्द आता है।

इस गृहकार्य प्रेम का रहस्य क्या है ? देवियाँ मोटरकार रखना क्यों पसन्द करती हैं ? कारण है उन का निस्स्वार्थ भाव। क्योंकि वह जानती हैं कि मोटरकार रखने से सारे कुटुम्बको लाभ रहेगा। दूसरी तरफ गृहकार्य में उन्हें उनके पति बहुत सहायता देते हैं और घर के धंधे भी इस तरह नियमित हैं कि मेहनत बहुत कम पड़े।

पति का काम यह होता है कि सर्दियों में मकान को गर्म रखनेवाली भट्टी की आग की देख रेख करे। शाम को खाने के बाद धोने धाने का काम करे। और बहुधा प्रातःकाल का भोजन तैयार करे—तीसरे पहर की चाय का रिवाज ही नहीं है लेकिन कनाडा के पतियों का बड़ा भारी गुण यह है कि वह अपनी पत्नियों को नये से नये फैशन की

मेहनत बचानेवाली मशीन लाकर देते हैं। उनके घर भी इस प्रकार के होते हैं कि काम में मेहनत कम लगे, सामान भी उसी प्रकार लगा रहता है और मशीने भी प्राप्त कर दी जाती हैं।

देखने में सुन्दर, खाने में भी स्वादु

कनाडा की गृह पत्नियां कृषि कालेज में जा कर घरेलू विज्ञान की उचित शिक्षा प्राप्त कर लेती है। वहां पर भोजन को साफ़ और स्वच्छ तरीक़े से चित्ताकर्षक बनाने पर बड़ा बल दिया जाता है। मामूली से काम जैसे सेव, व सन्तरा छीलना और उनकी फांकें करनी और भाजी के एकसां टुकड़े करके पकाना इत्यादि बहुत अच्छी तरह सिखाया जाता है। बहुत कामवाले किसानों के घरों में भी भोजन बहुत सुन्दर तरीक़े से बनाकर सजा कर खिलाया जाता है। बहुत सी कनाडा के किसानों की स्त्रियां अपनी रोटी आप इस लिये नहीं पकातीं कि उन्हें रसोइया नहीं मिलता वरन इसलिये कि उन्हें इसमें स्वाद आता है, और वह शर्त लगाकर रोटी सेंकती और केक बनाती हैं और फिर नुमायश करती हैं कि किसका बनाया भोजन अच्छा है। वह इसमें समय की बचत नहीं करतीं। हमारी नवशिक्षिता बहिनों को विशेषतः पंजाबी देवियों को जिनके घर और विशेष कर भोजन शाला बड़ी गन्दी रहती है और कभी कोई चीज़ ढंग से रक्खी नहीं होती इनसे शिक्षा लेनी चाहिये।

कान्हा

लेखक—श्रीयुत बलवन्त सचदेव

गतांक से आगे

मैं भोजन करने के बाद सीधा ही अपने कमरे में गया, वहां कान्हा अपने बिछौने पर पड़ी सिसक २ कर रो रही थी। मेरा भी दिल उमड़ आया और मन बार बार सोचने लगा कि कान्हा के आंसू पोंछकर मैं उससे पूंछूं कि वह क्यों रोती है? मैं जानता ही था के वह क्यों रोरही है परन्तु फिर भी इतना साहस न हुआ कि पूंछूं। दूसरे दिन दोपहर को कान्हा का भाई दिल्ली से खबर लाया कि उसकी माता तीन रोज से बहुत बीमार है और कान्हा को दिल्ली लिवा लेने के लिये उसे भेजा है। मामला ही ऐसा था न मैं रोक सका और न ही पिता जी ने कुछ कहा। हां मैं स्टेशन पर छोड़ने अवश्य गया था, उस दिन भी कान्हा ने भोजन नहीं किया और गाड़ी में बैठते समय भी उसके मुख पर निराशता और शोक इन्द्र धनुष की तरह बिराजमान थे। एक बार तो मैं भी उस दुःखभरी भोली सूरत को देखकर कांप उठा। परन्तु तुरन्त ही अपने आप को संभाल, गाड़ी के चलने पर घर को वापिस आया।

रघु! कान्हा के चले जाने के बाद एक दिन सुबह को मैं तेरे घर की ओर किताबें उठाये जारहा था, जब मैं मंगल के घर के पास पहुंचा तो आगे से मुझे पोस्टमैन चिट्ठियां पकड़े हुये मिला। मैंने आगे की तरह अपनी डाक पूंछी क्योंकि पिता जी की बहुत चिट्ठियां आया करती थीं। उसने कहा—जी हां आज आपकी दो ही चिट्ठियां हैं। मुझे चिट्ठियां देने के लिये उसने अपनी

चिट्ठियों का बंडल निकाला और पिता जी की दोनों चिट्ठियां मेरे हाथ में रख दीं। परन्तु उस बन्डल में ऊपर वाली चिट्ठी देखकर मैं चकित रह गया। वह कान्हा के हाथ की लिखी हुई थी।

मैंने झट चिट्ठियों वालेसे पूंछा-भाई यह चिट्ठी किस की है?

उसने उत्तर दिया—यह मंगलदास की है। मेरा साहस ही कम होने लगा परन्तु मैंने झट ही कह दिया— लाओ यह भी दे दो मैं मंगलदास जी ही के यहां जा रहा हूं। उसका क्या था, वह मुझे अच्छी तरह जानता था, झट चिट्ठी मेरे हाथ में दे दी और चल दिया।

मैं थोड़ा आगे बढ़ा परन्तु उस चिट्ठी के पढ़ने के लिये इतना व्याकुल था कि मुझे झट वहीं से घर को वापिस आना पड़ा। अपने कमरे में आते ही उस चिट्ठी को ऐसा खोला जैसे वह मेरी अपनी ही चिट्ठी थी।

उसमें लिखा था—

मंगल

नीच! स्वार्थी! विश्वासघाती! कमीने मुझे भुला दे! तेरा नाम आग! अंगारेकी तरह छाती पर धरा था, खून पीने वाले पिसू—हट, मर। मैंने तुझे छोड़ा। भगवान के नामपर छोड़ा—पापी अब तो तेरी याद क्या आती है उसमें तो बास आती है-अब इस हवा का रुख छोड़ दे। तुझे छू कर जो हवा आवेगी उसमें साँस लेने से मेरा दम घुटता है। पापी उस समय मैं बालिका थी तूने मुझे धोखा दिया मैंने भी अन्धी होकर उसे धोखा न समझा और पाप के सागर में कूद पड़ी। मैंने अपने प्राणनाथ को धोखा दिया है उस का फल अब मैं अपने जीवनभर भोगूंगी। अब तू मेरी आंखों के सामने मत आना, और न ही मुझे फिर कभी ऐसी चिट्ठी लिखना। कान्हा

"अपूर्ण"

विचार प्रवाह

राजनीति और सदाचार

भारत के राजनैतिक कार्य्यक्षेत्र में महात्मा गांधी के आगमन से पहिले शुद्ध आचार को वह उच्च स्थान नहीं मिला था जो कि महात्मा जी ने उसे प्रदान किया है। जब हम कांग्रेस के पुराने इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो हमें पता लगता है कि एक समय था जब कि वैयक्तिक सदाचार और राजनीतिक कार्य के क्षेत्र भिन्न २ समझे जाते थे। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में प्रायः यह दृश्य देखा जाता था कि दिन के समय प्रतिनिधि लोग अधिवेशन में सम्मिलित होते थे, धूंआँधार वक्तृता करते थे और रात को मदिरा के प्यालों और नाच रंग की महफिलों में अपनी दिन की थकावट दूर करते थे। कितने ही ऐसे बड़े २ नेता थे जिनका कि निजी जीवन हमारे समाज के लिये बदनामी का कारण था, परन्तु उनकी राजनैतिक सेवा, दिमागी प्रतिभा और गूढ़ विद्वत्ता उस दोषपूर्ण जीवन को सर्वदा ढांपे रहती थी। यदि कोई इस जीवन की ओर इशारा कर देता था तो उसे तत्काल बन्द कर दिया जाता था। महात्मा गांधी के चिरस्मरणीय कृत्यों में एक सब से बड़ा कार्य यह है कि उन्होंने

प्रत्येक व्यक्ति और विशेषकर प्रत्येक कार्यकर्ताको सदाचारी होना आवश्यक बतलाया। उन्होंने सदाचार की विस्तृत व्याख्या की। उन्होंने जहां राजनैतिक कार्यकर्ताओं के लिये सदाचारी होना आवश्यक ठहराया था वहां राजनीति से झूंठ, छल, कपट, को भी बाहिर निकालने पर पूरा २ ज़ोर दिया। यह कहना सर्वथा ठीक है कि उन्होंने राजनीति को धर्म का एक अंग बना डाला। देश ने उनके इस प्रयत्न को बड़े आदर से देखा। कार्यकर्ताओं में जनता का विश्वास बढ़ गया और समस्त देश ने सदाचार सोपान की एक और सीढ़ी पर पग बढ़ाया।

दुर्भाग्य से आज देश के मन पर महात्मा गांधी का वह प्रभाव नहीं जो कि १९२० में था। इसके कारणों की विवेचना करने की इस समय कोई आवश्यक्ता नहीं। हमें केवल यही बतलाना है कि महात्मा जी के बतलाये हुये कार्यक्रम के प्रति अश्रद्धा की वृद्धि के साथ साथ उपरोक्त सदाचारी जीवन से भी लोगों का वह प्रेम नहीं रहा। आज पुनः उस नीति का मान हो रहा है जिसके अनुसार राजनैतिक कार्यक्षेत्र में छल, कपट और असत्य को खुली आज्ञा है। यह सब बातें पश्चिमीय राजनीति का अंग हैं। स्वराज्यपार्टी ने इसी पश्चिमी ढंग को ग्रहण किया है, परन्तु शोक है कि इसके साथ २ वह स्वदेशी—महात्मा गांधी द्वारा बतलाये हुई—धर्मपरायणता की आवश्यक्ता पर कुछ बल नहीं देती। हम नहीं कह सक्ते कि तारकेश्वर सम्बन्धी सत्याग्रह और उस में भाग लेने वाले स्वयंसेवकों के सम्बन्ध में जो २ बातें सुनने में आ रही हैं उनमें कहां तक सत्य है। परन्तु यदि उसमें बहुत थोड़ी सी भी सच्चाई है तो हमारी गर्दन व मस्तिक लज्जा से झुक जाना चाहिये। क्या हम आशा करें कि स्वराज्यपार्टी के नेता अपने कार्य को इस दोष से बचाने का भरसक यत्न करेंगे!

स्वर्गवासी लोकमान्य तिलक!

लोकमान्य को स्वर्गवास हुये आज ४ वर्ष हो गये हैं, परन्तु उनकी आत्मा आज भी हमें उसी प्रेम, उत्साह, धैर्य्य और निर्भयता से प्रेरणा कर रही है जैसा कि उनके जीवनकाल में किया करती थी। राजनैतिक कार्यक्रम की उनकी बतलायी नीति और रीति पर भारत के राजनैतिक फिर सिर झुका रहे हैं। जहाँ उनकी मृत्यु के पीछे दो वर्ष तक गाँधी युग का खूब ज़ोर रहा और लोकमान्य के कट्टर अनुयायी ने भी महात्मा जी के आगे सिर झुकाया, वहां आज स्वराज्यदल लोकमान्य को ही अपना गुरू मानकर सर्व कार्य करने में तत्पर है। हमारे लिये यह कहना बड़ा कठिन है कि इन दोनों में से कौन सा पथ अधिक सफल होगा, परन्तु यह घटना लोकमान्य के बुद्धिबल और कार्यदक्षता की सूचक है कि आज भारत का एक बड़ा भाग उनके बतलाये पथ को पुनः स्वीकार कर रहा है। धन्य हैं, तिलक भगवान्? प्रभु बल दें कि हम आपके सद्गुणों को धारण कर सकें।

अकाली आन्दोलन।

पंजाब में अकाली आंदोलन आज कल एक विचित्र और बड़ी संकटाकीर्ण अवस्था में से निकल रहा है। हमारे प्रांत के भूतपूर्व लाट की बड़ी अभिलाषा थी कि उनके ही समय में यह आन्दोलन समाप्त हो जाय। हमारे नये गवर्नर सर मैल्कम हेली ने भी कार्यभार संभालते ही अपना ध्यान इस ओर

दिया, परन्तु शोक कि कोई समझौता न हो सका। शूरवीर अकालियों की निर्भयता, धर्मानुराग, निःस्वार्थ सेवा और तपोमय जीवन के आगे पंजाब सरकार की कठोरता विफल रही। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार जो कार्य बल द्वारा नहीं कर सकी, उसे वह अब नीति द्वारा करने का विचार रखती है। अकालियों के विरुद्ध ज़बरदस्त प्रचार हो रहा है। ऐसे सिक्खों की सभायें और समितियां बन रही हैं जो कि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा रहे हैं। यह भी शब्द सुन पड़ते हैं कि गुरुद्वारा कमेटी ने रुपये के मामले में ठीक २ हिसाब जनता के सामने रखा ही नहीं। कई लोगों का कहना है कि इस समय भी रुपये के विषय में महन्तों के समय से कम गोल माल नहीं। परन्तु यह एक विचित्र बात है कि आज तक किसी भी दानी की ओर से किसी न्यायालय में हिसाब समझने के लिये कोई मुकद्दमा नहीं चलाया गया—यद्यपि आज कई मास से इस प्रकार की किंवदन्तियां सुनाई पड़ रही हैं। कभी २ उन अकालियों के क्षमापत्र भी छापे जाते हैं जिन्होंने मुकद्दमे के भयसे क्षमा मांगली हो। बतलाया जाता है कि यह लोग कभी बड़े २ जत्थेदार थे। इन पत्रों में क्षमा प्रार्थी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी पर खुल्लम खुल्ला यह दोष लगाते हैं कि कमेटी जान बूझ कर लोगों को उल्टे मार्ग पर चला रही है, भोले भाले जिमींदारों को धोखा देकर जेल भिजवा रही है। उनको अपनी खेती बाड़ी के कार्य से हटाकर आलसी और निकम्मा बना रही है, इत्यादि।

हमें भय है कि कहीं यह घर की फूट अकाली गुरुद्वारा संशोधन के कार्य को भी हानि न पहुंचावे। एक और घटना का वर्णन करते हुये हमें बड़ा दुःख और खेद होता है। वह यह कि आज अकाली आंदोलन से हिन्दुओं की सहानुभूति भी कम हो रही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भी आन्दोलन की सफलता के लिये बाहर वालों की सहानुभूति एक बड़ा भारी सहायक अंग होती है। यह विश्वास कि हम सन्मार्ग पर चल रहे हैं, हमारा आन्दोलन धर्मपथ से विचलित नहीं हुआ बाहरवालों की सहानुभूति से ही दृढ़ता पकड़ता है। यह इस दृढ़ता का परिणाम है कि आत्मगौरव और आत्मबल का उदय होता है। हिन्दुओं ने गुरुद्वारा सुप्रबन्ध में चाहे कभी भी सिक्खों को कोई सीधी, स्पष्ट सहायता न दी हो, परन्तु उनकी सहानुभूति सदा इनके साथ रही है, लेकिन आज यह बात नहीं। अब इनका अकालियों पर वह विश्वास नहीं जो कि पहिले था। भूल से या अनजान में अकालियों ने हिन्दू मन्दिरों पर आक्रमण किये, परन्तु उनका जिम्मेवार नेताओं की ओर से कोई विरोध नहीं किया गया। आगे के लिये कोई विश्वास नहीं दिलाया गया। इन अकाली-पीड़ितों का कथन है कि सफलता के मद में चूर आज अकाली न्यायपरता को भूल गये हैं और इनमें अहंकार की उत्पत्ति हो रही है। अस्तु,

इन दोषरोपणों में कहां तक सचाई है, हम नहीं जानते। परन्तु यह मानना पड़ता है कि आज अकालियों के साथ उस प्रेम और श्रद्धामय सहानुभूति का अभाव है, जो कि कुछ समय पहिले थी। अकाली नेताओं को विवेचनापूर्वक इसके कारणों पर विचार करना चाहिये और स्थिति को उन्नत बनाने का यत्न करना चाहिये।

स्वराज्यपार्टी

स्वराज्यपार्टी देश के सामने बड़े २ प्रण करके कौंसिल में आई थी कि "सरकार कौंसिलों द्वारा भारतेतर सभ्य देशों को धोखा दे रही है। वह जो चाहती है, हमारे माडरेट दल के भाइयों और चापलूस धनियों की सहायता से कौंसिल में पास करवा लेती है और फिर घोषणा कर देती है कि देश की प्रतिनिधि कौंसिलें हमारे साथ हैं। इन्हीं कौंसिलों द्वारा असहयोगियों पर अत्याचार करने के लिये कानून पास करवाये जा रहे हैं। इस प्रकार यह चतुर सरकार कौंसिलों द्वारा भाई भाई को आपस में लड़वा कर अपना उल्लू सीधा कर रही है। सरकार की इस नीति को रोकने के लिये आवश्यक है कि इसका प्रतिरोध किया जावे। हमने देख लिया कि कौंसिलों का सर्वथा बहिष्कार किया जाना असम्भव है, वहां जाने के लिये सदस्य मिल ही जांयगे। फिर क्या यह उचित नहीं कि कौंसिलों में वह लोग जावें जो कि कौंसिलों के भीतर भी सरकार की हां में हां न मिलाकर उसका ज़बरदस्त मुकाबिला कर सकें। भीतर भी लड़ाई हो बाहर भी। महात्मा गांधी का कार्यक्रम अथवा सत्याग्रह ही देश को स्वराज्य दिला सकता है, यह सत्य है—परन्तु यह कौंसिलें उसके मार्ग में रुकावट हैं। हम कौंसिलों में जाकर इस रुकावट को सर्वथा दूर करेंगे और कौंसिलों के भीतर और बाहर सब प्रकार से देश को सत्याग्रह के लिये तय्यार करेंगे"। यह बातें थीं, यह वायदे थे, जिनके आधार पर स्वराज्यपार्टी ने लोगों से वोट लिये थे। परन्तु शोक! आज स्वराज्य पार्टी की नीति बदल रही है। वह भी जानमें अथवा अनजान में शनैः २ सहयोगियों की श्रेणी में मिलती जारही है। हम पूछते हैं कि कौंसिलों में जाकर हम कितना स्वराज्य के अधिक निकट पहुंच गये हैं? कितना हमने सरकार के हाथों को अत्याचार करने से रोक लिया है? बाहरी असहयोग और सत्याग्रह की तय्यारी में कौंसिलों ने मदद दी है? क्या यह सत्य नहीं कि कौंसिलों में जाकर इन नेताओं ने रचनात्मक कार्यक्रम की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया? क्या यह सत्य नहीं है कि पार्टीके लिये धन की लालसा से प्रेरित होकर इन्हें कौंसिलों में जाकर अपने विचारों की बलि देकर पूंजी पतियों से समझौता करना पड़ा है? क्या यह सत्य नहीं कि अब सरकार के प्रतिरोध, घोर अविरल प्रतिरोध एक रस प्रतिरोध की नीति को तिलाञ्जली दे दी गई है और अब बराबर का सहयोग (Responsive Co-operation) के राग अलापे जा जा रहे हैं? अब सरकारी कमेटियों में बैठने, प्रस्ताव पेश करने और सरकार से सहायता लेने में कोई आपत्ति नहीं! चार वर्ष हुये कौंसिल प्रवेश का प्रतिरोध करते हुये पंडित मोतीलाल जी ने लिखा था कि कौंसिलों के विषयुक्त वायु में जाकर कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही दृढ़ विचारों वाला क्यों न हो, रोगी हुये बिना बच नहीं सकता। उन्हें क्या पता था कि स्वयं उनकी आंखें बन्द हो जायेंगी और बड़े चाव से वह इस विषमिश्रित वायु का सेवन करेंगे।

कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। हमने जनवरी मास की 'ज्योति' में जो विचार प्रगट किये थे शोक! कि आज वह सब ठीक निकल रहे हैं। कौंसिलों में जा स्वराज्यपार्टी अपना अस्तित्व खो रही है और नरमदल की नीति और रीति पर चल रही है। कहीं पूंजीपतियों को रिशवत दी जाती है, तो कहीं मुसलमानों को; कहीं सहयोगियों का सहारा ढूंढा जाता है, तो कहीं स्वतन्त्र विचारपार्टी

का ! परन्तु 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा' इस प्रकार जुड़ा हुआ कुनबा कबतक रहेगा ? पंडित मोतीलाल जी यह तो मानते हैं कि कौंसिलों में जाकर वह कुछ नहीं कर सकते, यदि देश उनके साथ न हो। परन्तु वह देश को साथ रखने के लिये कर क्या रहे हैं ? देश को साथ रखने के लिये सरकार के सेक्रेटरियट दफतरों में समय बिताने, कमेटियों में शामिल होने और कौंसिलों में वह प्रस्ताव पास करवा लेने की—जिन पर कभी कोई अमल नहीं करेगा—आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है कि आप देश के टूटे-फूटे झोंपड़ों में जायें, आधा पेट खाने वाले और भूख से पीड़ित भारत की दशा को देखें, गरीबों को आशा और सहारा प्रदान करें; वह आप की कौंसिल में की गई धाराप्रवाह वक्तृताओं को नहीं समझ सकते। यह हम मानते हैं कि आप कौंसिलों में जाकर कुछ कार्य अवश्य कर सकते हैं, परन्तु यह तभी जब देश और देश की सहानुभूति आप के साथ हो। यदि आप दो मास शिमला और दिल्ली में रहते हैं तो जब तक आप दश मास भारत के झोंपड़ों में रह कर मां के चरणों में न बैठेंगे, मां का आशीर्वाद न पा सकेंगे। अब भी समय है कि आप नीति-निपुणता का परिचय दें।

———

आर्यसमाज और महात्माजी

महात्मा जी के लेख से आर्यसमाज में जो हल चल उत्पन्न हुई थी वह अब प्रायः शान्त हो चुकी है। अब समय आगया है कि महात्मा जी और आर्यसमाजी दोनों शान्तिपूर्वक अपनी २ स्थिति पर विचार करें। महात्मा जी से हमारी विनीत प्रार्थना है कि वह इस विषय पर विचार करें कि आर्यसमाज-सम्बन्धी उनके विचारों के प्रगट होने से क्या उनको हिन्दू मुसल्मानों की एकता-स्थापना में कुछ भी सहायता मिली है ? हमारा तुच्छ विचार यही है कि उनके इस लेख ने आर्यसमाजियों का इतना मन दुःखाया है कि वह महात्मा जी से खिन्न होगये हैं। आज शान्तिपूर्वक विचार करने से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि महात्मा जी को अपने कार्य में आर्यसमाज की त्रुटियां दर्शाने से कोई लाभ नहीं हुआ, वरन् पंजाब के हिन्दुओं पर से भी उनका प्रभाव कम होगया है। पंजाब में—सिक्खों के अतिरिक्त—सामाजिक-जीवन की आर्यसमाज जान है। इसकी उपेक्षा करके अथवा इसको दूसरों की दृष्टि में गिराकर यहां कोई भी सार्वजनिक कार्य करना असम्भव है। महात्मा जी ने यह लेख लिखकर हमारे सार्वजनिक जीवन को बहुत पीछे ढकेल दिया है और अब इसको प्राकृतिक (Normal) अवस्था तक आने में बड़ी देरी लगेगी।

आर्यसमाजियों से भी हमारी यह प्रार्थना है कि वह महात्मा जी की बतलाई त्रुटियों को अपने से दूर करें। अपने जीवन को अधिक शुद्ध और निर्मल बनावें और अपने कृत्यों को अपने धार्मिक विचारों के अनुकूल बनावें। जो विचारें वही कहें और जो कहें वही करें !

———

हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू मुसलमानों की एकता की समस्या दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही है; जितना इस गांठ को खोलने का यत्न किया जाता है उतना ही यह और कड़ी पड़ती जाती है। कवि का कहना कि " मरज़ बढ़ता गया ज्यूं ज्यूं दवा की " हमारी अवस्था पर

बिल्कुल लागू हो रहा है। गत चार वर्ष से इस एकता की आवश्यकता पर बड़ा बल दिया जा रहा है, इसकी प्राप्ति के लिये अनेक साधन वर्ते जा रहे हैं, परन्तु इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगेगा कि इन दो वर्षों में जितने झगड़े, दंगे और फिसाद हुये हैं उतने इससे पहिले कदापि न हुये थे। हम यह नहीं कहते कि यह फिसाद हमारी एकता प्राप्ति सम्बन्धी प्रयत्नों का सीधा परिणाम है। फिसाद इससे पहिले भी हुआ करते थे, यद्यपि वह इतने भीषण और उनका क्षेत्र इतना विस्तृत न होता था। हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि प्रयत्न होने पर भी फिसादों की मात्रा और राशि में अधिकता है। क्या हमारे लिये यह सोचने का स्थान नहीं कि हमारे सब प्रयत्न विफल क्यों हो रहे हैं? सन् १९२० और २१ की एकता का आज निशान भी नहीं रहा, क्यों? उल्टा वैमनस्य क्यों बढ़ रहा है? दो वर्ष पहिले की एकता स्थापना में महात्मा गान्धी का हाथ था, आज महात्मा जी के रहते हुये भी फिसाद नहीं रुक सकता, इसका कारण?

हमारे तुच्छ विचार में दो वर्ष पहिले की एकता की नींव रेत पर रखी गई थी। इस में एक तीसरी जाति के प्रति वैर और घृणा का भाव ही लक्ष्य था। मुसलमान खिलाफ़त के प्रश्न से पीड़ित थे और हिन्दू स्वराज्य चाहते थे। और दोनों ही बृटिश सरकार को अपने इस ध्येय प्राप्ति के मार्ग में रुकावट समझते थे। भारत सरकार इसी सरकार की प्रतिनिधि है। अतः भारत सरकार पर दबाव डालने से यह दोनों समस्यायें सुलझ सकेंगी, और भारत सर- को तभी तंग किया जा सकता है जब कि हिंदू मुसलमान मिल कर काम करें, एकता का यही प्रेरक कारण था। थोड़ा सा विचारने से भी पता लगेगा कि यह एकता का ठेका कोई महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर नहीं किया गया था। एकता को सदाचार की नींव पर स्थापित नहीं किया गया था, वरन् वाणिज्य की नीति पर। "तुम भारत को स्वराज्य दिलाने में हमारी सहायता करो—मानो स्वराज्य कोई हिंदुओं ही के लिये हो और हम खिलाफ़त के लिये तुम्हारे सहायक बनते हैं और हम दोनों मिल कर भारत सरकार पर प्रहार करते हैं।" इस एकता का सूत्र आपस का प्रेम न था, वरन् एक तीसरे के प्रति घृणा. हम यह नहीं कहते कि महात्मा गांधी के या अन्य नेताओं के भी यही विचार थे—परन्तु, जनता ने इस को ऐसे ही समझा।

आज खिलाफत की समस्या हल हो चुकी है—चाहे वह किसी के भी द्वारा हो—अब इस व्यापारिक ठेके की आवश्यकता नहीं और वह टूट गया। यदि इतना ही होता तो भी कोई बात न थी, एकता न रही न सही, वैर तो नहीं? परन्तु अब तो एकता के स्थान में वैर और शत्रुता है। इसका क्या कारण? जैसा कि हम पहिले कह आये हैं एकता की नींव प्रेम न था, वह नींव हिल गई और सरकार का विच्छेदकारी मन्त्र ऊपर से फूंका गया। जादू चल गया। सरकार ने जनता के मनों को खूब पहिचाना और इसी मनोविज्ञान के सहारे एकता के कच्चे धागे को तोड़ गिराया। इन वर्षों में महात्मा जी तथा अन्य नेता यही उपदेश करते रहे कि हिंदू बड़े भाई के समान हैं, बड़े भाई को छोटे की ख़ातिर यदि अपना हक भी छोड़ना पड़े तो कोई हानि नहीं। स्वराज्य मिलने पर हम मुसलमानों को वह जो मांगेंगे देंगे, इत्यादि बातें एकता स्थापना के उद्देश्य से कही जाती थीं। अंग्रेजी भारत सरकार ने

हमारी मनोवृत्तियों को समझ कर उपरोक्त बातों को अपने ही समय में कार्य में लाना आरम्भ कर दिया। मियां फज़ल हुसैन उस को एक बड़ा उपयुक्त साधन मिल गया और दो चार नौकरियों तथा ऐसी ही अन्य बातों के लिये हम कुत्तों की तरह आपसमें लड़ पड़े। यह आग पंजाब में लगी और सारे भारत में फैल गई। आज वैमनस्य को चिरस्थायी बनाने वाला कारण यही है। यदि नेता इस गांठ को सुलझाये बिना एकता स्थापित करना चाहेंगे तो यह कदापि न होगी। श्रीयुत दास का हिंदू-मुस्लिम पैक्ट इसको सुलझाने का तरीका नहीं। इसने तो जलती आग पर तेल का काम किया। आज हिन्दू मूर्खता से कहिये, हृदय की क्षुद्रता से कहिये—मुसलमानों को अपने भाग में से देने को तय्यार नहीं, और मुसलमान केवल अपने भाग से सन्तुष्ट नहीं—जैसा कि मुस्लिम लीग के गत लाहौर वाले अधिवेशन ने स्पष्ट-रूप से बतला दिया है। इसी का हल सोचना नेताओं का कार्य है क्योंकि इस गांठ के सुलझाये बिना एकता का मार्ग सुगम नहीं बन सकता।

इस एकता स्थापना में एक और भी रुकावट है। आज कल मुसलमानों का कोई ऐसा नेता नहीं जिस की आवाज़ सुनने और जिसकी आज्ञाओं को मानने के लिये वह तय्यार हों। आज मौलाना मुहम्मदअली या मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, हकीम अजमल खां या डाक्टर अंसारी मुसलमानों के नेता नहीं रहे। मुसलमानों की यह धारणा है कि यह नेता हिंदुओं से रियायत करते हैं। यही अवस्था हिन्दुओं की भी होगई है। हमें शोकसे कहना पड़ता है कि महात्मा गांधी के हिन्दू-मुस्लिम तनाज़ा शीर्षक लेख से हिन्दू भी बिगड़ गये हैं। उनकी आशा थी कि महात्मा जी दूध का दूध और पानी का पानी कर देंगे, परन्तु वह अब यह समझते हैं कि महात्मा जी भी मुसलमानों की ही रियायत करते हैं। अतः साधारण हिंदू जनता को हिंदू-मुस्लिम एकता-सम्बन्धी प्रश्न को सुलझाने के लिये महात्माजी पर विश्वास नहीं। अतः हमारी समझ में इस एकता की स्थापना के लिये बड़ा आवश्यक है कि नेतागण जनता का खोया हुआ विश्वास फिर से प्राप्त करें और वह तभी हो सकेगा जब वह काले को काला कहने में संकोच न करेंगे, एक को दबा कर दूसरे को अधिक दिलवाने का यत्न न करेंगे। अपनी इच्छा से मनुष्य मनों छोड़ देता है परन्तु दब कर वह छटांक को भी देने को तय्यार नहीं होता। यह मनुष्य स्वभाव का नियम है, यही मानवप्रकृति है। जब आपस में प्रेम और विश्वास हो जायगा तो मुसलमानों से आप जो कहेंगे वह छोड़ने को तय्यार हो जायेंगे और हिन्दुओं से जो मांगोगे वह देने में झिझक न करेंगे। परन्तु अभी २ इस समय यह कहना और करना एकता को कोसों दूर करने वाला सिद्ध होगा।



भारत सरकारसे रजिस्ट्री
किया हुआ

४७००० एजेन्टों द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से अच्छा प्रमाण है



(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिस के सेवन करने से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे पीले दस्त इन्फ्लूऐंजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥) डा० ख० १ से २ तक ≈)



दाद की दवा

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे में आराम करने वाली सिर्फ यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।) डा० ख० १ से २ तक ≈) १२ लेने से २।) मे घर बैठे देंगे।



दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताजा और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मँगाकर पिलाइये, बच्चे इसे खुशी से पीते हैं। दाम फी शीशी ॥।) डा० ख० ≈)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता— सुखसञ्चारक कम्पनी मथुरा।

मुफ्त नमूना मँगाकर देखो

मुख विलास पान में खाने का मसलाः—

पान में खाने देखो दुनियाँ में नई चीज़ है, इस की सिफत को आज़मा कर देखो। कीमत बड़ी डिब्बी ३॥।), छोटी डिब्बी १॥≈) फी दरजन।

प० प्यारेलाल शुक्ल हूलागंज
कानपुर।

—※—

जल्दी कीजिये संस्करण समाप्त होने वाला है।

स्त्रियों और कन्याओं के लिये
अपूर्व पुस्तक !

आर्ष पाठावलिः

(प्रथमभाग)

कुमारी विद्यावती सेठ द्वारा रचित

यह पुस्तक ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में से चुनी २ सरल सिद्धान्त की बातों को लेकर बहुत मनोरजक पाठों में लिखकर रची गई है। प्रत्येक पाठ में बड़े खूबसूरत चित्र हैं। प्रथम चित्र रंगीन है, जिसमें अध्यापिका बच्चों को "ओ३म्" का ज्ञान बता रही है। विद्याप्रेमी शूद्र झंडा लेकर वेद पढ़ने का अधिकार मांग रहा है यह चित्र तथा अन्य भी चित्र बड़े शिक्षाप्रद हैं।

पुस्तक में १३५ पृष्ठ हैं, कागज़ व छपाई बढ़िया है इस पर भी मूल्य बहुत थोड़ा रक्खा गया है।

मूल्य { बिना जिल्द ॥≈)
{ सजिल्द ॥।)

पं० वज़ीरचन्द शर्मा
अध्यक्ष वैदिक पुस्तकालय,
लाहौर रोड, लाहौर।

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ
और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पब्लिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया।

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५] भाद्रपद १९८१—सितम्बर १९२४ [खण्ड ५, संख्यां ५



वार्षिक मूल्य ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४) विदेश का मूल्य ६।

विषय सूची।

—:(*:—

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी।

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।
स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ।।) है।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ।।) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता हैं।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

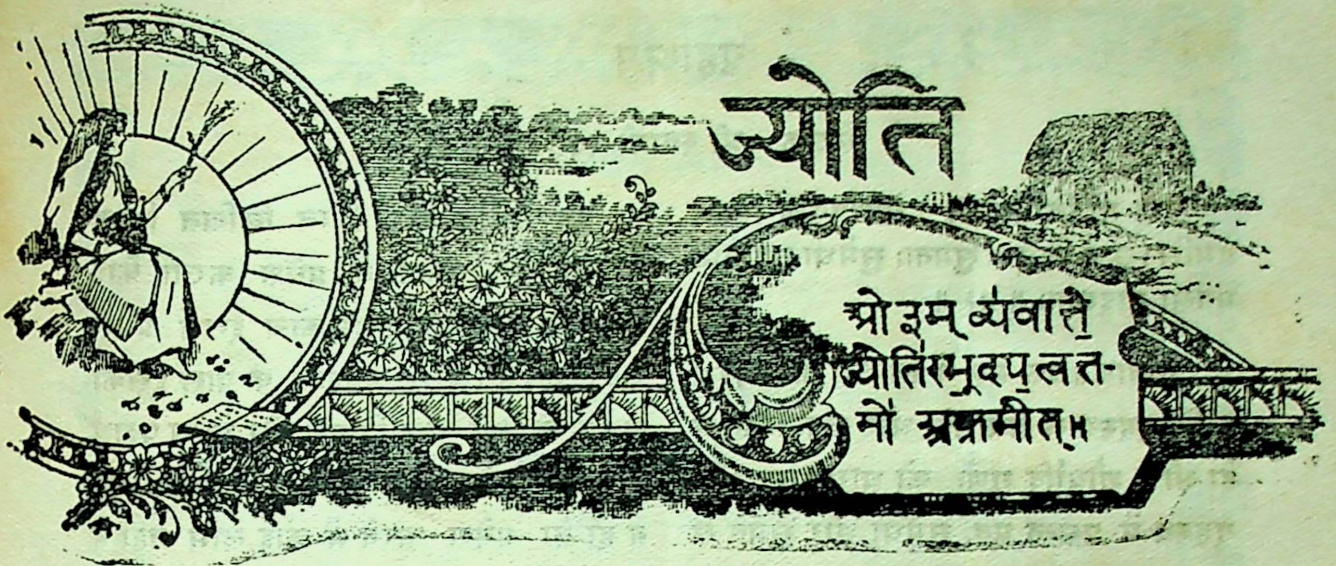
(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, **'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये**



वर्ष ५ | भाद्रपद १९८१—सितंबर १९२४ ई० | संख्या ५

भक्तिभेंट

लेखक—"श्रीहरि"

लोनी ललित लताओं से मैं, हटा हटा कर अलियों को।
परमप्रेम से ले आया हूं, चुनचुन कर इन कलियों को॥१॥
भक्ति-सूत्र में गूंथ गूंथ कर, माला मञ्जु बनाई है।
भगवन्! हो स्वीकार चरण में जो मन में यह भाई है॥२॥

गृहाश्रम

लेखक – श्री स्वामी स्वतंत्रानन्दजी

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रत एमसि। ऊर्जं विभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

भावार्थ॥ इस मंत्र में स्नातक को उपदेश है कि गृहस्थ से मत डरो और कंपायमान न हो और शौर्यादि गुणों को धारण कर और गृहस्थ में प्रसन्न मन, सुमेधा और सुमन से प्रवेश कर

गृहस्थ कैसा हो।

उपहूताऽइह गावा उपहूतऽ अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलालऽउ पहूतोगृहेषु नः॥
क्षेमायवः शांत्यै प्रपद्ये शिव ९ शग्म ९ शंयोः शंयोः ॥ ४३ ॥

भावार्थ गृह में शान्ति, सुख और सुखों के साधनों की प्राप्ति करो और इस गृहस्थमें गौएं बकरीएं और भेड़ें रखो और इस गृहस्थ में खाने योग्य पदार्थ प्राप्त करो।

गृहस्थ में अतिथि

येषामद्ध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानंतु जानतः॥यजु३.४२

भावार्थ॥ जिस गृहस्थ में अतिथियों का सत्कार होता है और प्रसन्न मन से अतिथि जहां वास करते हैं और गृहस्थी के सत्कार को जानते हुए परस्पर बातें करते हैं वह गृहस्थ उत्तम है।

इन तीनों मंत्रों में निम्न लिखित शिक्षा मिलती है:—गृहस्थ में प्रवेश करना कोई बुरी बात नहीं है। निःसंकोच इसमें प्रवेश कर सकते हैं। परंतु प्रवेशक के पास इसको चलाने के लिये गौआदि पशु और भोज्य पदार्थ हों तब तो प्रवेश उत्तम होगा यदि ऐसे साधन न हों तो प्रवेश करने में कोई लाभ नहीं है इस समय जो आदमी यह देखकर कि उन की आयु २५ वर्ष की होगई है इस लिये उन्हें अवश्य ही गृहस्थ में प्रविष्ट हो जाना चाहिये इस बात पर किंचित मात्र ध्यान नहीं करते कि उनके पास गृहस्थ को चलाने के साधन भी हैं वा नहीं। कई भद्र पुरुष तो ऋण लेकर भी इस बोझ के उठाने का उद्यम करते हैं। वह वेदाज्ञा के प्रतिकूल काम करने से प्रशंसनीय नहीं हैं। जहां वह स्वयं दुःखी होते हैं वहां अपने कुटुंब को भी दुःख सागर में डालते हैं। यदि कोई साधन संपन्न होकर प्रविष्ट हो तो उसका कर्त्तव्य है वह पांच यज्ञों का पालन करने वाला भी हो कि इस प्रकरण में केवल अतिथि यज्ञ का वर्णन उपलक्षण रूप से है। यदि वह साधन संपन्न होकर भी इनका पालन नहीं करता है तो गृहस्थ में पतित है अतः गृहस्थियों को गृहस्थ वेदानुकूल बनाकर गृहस्थ में सुख भोगना चाहिये।

—०—

गान्धारी

ले० सुकवि "गुलाब"

देवि ! क्या जन्मांधिनी तुम हो कहो—
　　प्राणधन के दर्शनों की वञ्चिता ?
क्या हुई गान्धार की सुख दामिनी
　　मोहनी—लावण्यता सुख—सञ्चिता ?

अब गया पहिचान शशि वदनी ! तुम्हें,
　　अन्धपति पा—के त्रिकट अन्धत्व है ।
धन्य थे धृतराष्ट्र पाकर के तुम्हें,
　　खूब दिखलाया, महान—ममत्व है ॥

क्या हृदय में देखती सौन्दर्य हो ?
　　धार बरसाती सुधा की हो वहां ?
तव समान सती—सुहागिन देवि ! हे,
　　इस अधम—कलिकाल में होगी कहां ?

प्राण में पति भक्ति का अनुराग से,
　　सत्य, नीरव—शंख होगा गूंजता ।
बन्धनों में मुक्तिका सुख—स्वाद भी,
　　प्राणधन के—पैर होगा पूंजता ॥

यश—मुकुट तुमने पहिन, संसार में—
　　एक उच्चादर्श रक्खा भक्ति का ?
कौन गृह की लक्ष्मी ने पा—लिया—
　　होयगा परिचय तुम्हारी—शक्तिका ?

स्त्री शक्ति की महत्ता।

लेखिका—श्रीमती चन्द्रवती जी कन्या गुरुकुल



जब हम संसार चक्र के ऊपर दृष्टिपात करते हैं और उसकी प्रत्येक सुन्दरता प्रधान वस्तु को बड़े गौरव के साथ अवलोक करते हैं तो सहसा हृदय के अन्दर प्रश्न उपस्थित होता है कि वह कौनसी शक्ति है जो इस सौन्दर्य के प्रचुर भण्डार को अतीव उदारता के साथ विकीर्ण कर रही है और वह द्रव्य क्या है जिस में नानाविध रूपों और रंगों को धारण करने की सामर्थ्य है तो इस गहन प्रश्न के समाधानार्थ महर्षि कपिल अपने सांख्यदर्शन के अन्दर उत्तर देते हैं कि इस सृष्टिरूपी ग्रन्थ के निर्माता पुरुष परमेश्वर हैं और नाना रंग रूपों को धारण करने वाली प्रकृति रूपीस्त्री है कि जिसके बिना पुरुष परमेश्वर सृष्टि को सृजन करने में नितान्त असमर्थ है और प्रकृति भी कर्त्ता पुरुषके बिना अन्धकारमयी है अर्थात् पुरुष में बनाने की शक्ति है और प्रकृति में बनने की। इससे निरन्तर संसार चक्र चलता है।

आधुनिक युग के वैज्ञानिकों के मत में भी यही है कि संसारगत किसी वस्तु की उत्पत्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक स्त्री तत्व और पुरुष तत्व इन दोनों का संयोग न हो। इसी प्रकार से प्रश्न उपनिषत् के अन्दर भी आता है कि परमेश्वर ने संसार को रचने के लिये सब से पहिले इन दो तत्वों को उत्पन्न किया। यदि हम इस प्राकृतिक संसार रूपी चक्र को हम मनुष्य समाज रूपीचक्र पर चरितार्थ करें तो अयुक्त न होगा यद्यपि वह उपमा सर्वान्शों में नहीं घट सकती तथापि बहुत कुछ अंशों में घटती है। जैसे प्रकृति और पुरुष के कई सामान्य विशेष गुणों से अखिल संसार चक्र चल रहा है वैसे ही स्त्री और पुरुषों के गुणों से मनुष्य समाजरूपी चक्र चलता है।

स्वभावतः जब हम मनुष्य समाज के प्रत्येक पक्ष पर विचार करते हैं और इसकी सुव्यवस्थित सुस्वर और क्रमबद्ध गुणों की शृंखला को पाते हैं तो सहसा भगवान की महती ज्ञानकारी और विज्ञान पर मोहित हो जाते हैं कि उस परमेश्वर ने मनुष्य समाज को उन्नत करने के लिए एक दूसरे से कई भिन्न तथा विचित्र गुणों को प्रदान करके अपने सुव्यवस्थित प्रबन्ध का परिचय दिया है यद्यपि स्त्री और पुरुष अहंभाव में आकर एक दूसरे के गुणों को तुच्छ प्रमाणित करें तथापि परमेश्वर दृष्टि से प्रत्येक गुण अपनी २ विशेषता रखता है। इसी प्रकार मनुष्य समाज में स्त्री अपने गुण और पुरुष अपने उपयोगी गुण रखता है।

यद्यपि स्त्री के हृदय स्थल में आत्मा उसी श्रेणी की निवास करती है जोकि पुरुष के अन्दर विराजमान है परन्तु परमेश्वर ने उसे कर्मानुसार स्त्री का शरीर देकर और उसके शरीर के कई भिन्न २ भागों को पुरुष से कुछ अन्यथा रचना करके उसे स्त्री का नाम और रूप दिया जिससे वह पुरुष की अपेक्षा गुण भी कुछ और ही प्रकार के रखने लगी। इसलिए कोई पुरुष को स्त्री की और स्त्री को पुरुष की अपेक्षा तुच्छ सिद्ध करे तो कदापि संगत नहीं हो सकता।

यदि पुरुष का स्त्री से कुछ मस्तिष्क विशेष है तो समता की मूर्ति भगवान ने स्त्री को हृदय ऐसा शुद्ध और कोमल प्रदान किया है कि पुरुष श्रेणी ऐसे पवित्र दिल को धारण करने की शक्ति ही नहीं रखती। यद्यपि स्त्री जाति ने पुरुषों की तरह युद्ध विज्ञान, ग्रन्थ रचनादि, व्यापारादि कार्य्यों में भाग नहीं लिया परन्तु कारुण्यता, दयालुता, सदाचार, निःस्वार्थता, कोमलता, नम्रता, विनयपूर्वक भाषण, शिशुपालन, गृह का हिसाब किताब, इत्यादि गुण दिमाग़ी गुणों से कम मूल्य नहीं रखते। जहां यह एक एक गुण हृदय को प्रिय लगता है और अपनी २ प्रतिभा रखता है वहां यह गुण कितना भारी है कि जितने भी अद्य पर्य्यन्त ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्द पर्य्यन्त महात्मा हुए हैं वह सबके सब इन्हीं की शुभ कोख से उत्पन्न हुए और इन्हीं माताओं की गोद में पले हैं इसलिए मनुजी महाराज ने कहा है, कि—

"उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रन्तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते"॥

"अर्थात् उपाध्याय से दशगुणा आचार्य्य का, आचार्य से सौगुणा पिता का, पिता से हजारगुणा माता का गौरव अधिक है।

भगवान ने एक प्रकार से मनुष्य समाज की उन्नति तथा अवनति का बोझा स्त्री जाति पर ही धर दिया है क्योंकि इस विषयमें शास्त्रों का मतभी यही है महर्षि कणाद अपने वैशेषिक दर्शन में कहते हैं कि "कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः" अर्थात् कारण के गुण लेकर ही कार्य की उत्पत्ति होती है ऐसेही धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में कहते हैं कि 'कारणानुरूपं कार्यमिति" अर्थात् कारण के अनुरूप ही कार्य की उत्पत्ति होती है क्योंकि बाह्य उपदेश और ज्ञान मनुष्य के बाहरी आचार व्यवहार को ढाल सकता है परन्तु जो संस्कार और विचार हमने अपनी माता दुग्ध के साथ पान किये हैं, जो मातृभाव हमारी बाहरी तथा भीतरी रग २ और नस २ में प्रवेश कर चुके हैं, उन को बाहरी उपदेश नहीं उखाड़ सकते। अतः मनुष्य का आदि गुरू परमेश्वर ने माता को ही नियत किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज अपने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देते हैं कि 'मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषोवेद' जितना निःस्वार्थभाव से माता बच्चे का पालन पोषण तथा शिक्षण करती है उतना और कोई नहीं कर सकता क्योंकि मनुष्य जैसे टेढ़े प्राणी को सीधा करना किसी उदार तथा निःस्वार्थ आत्मा का ही काम था अतः परमेश्वर ने स्त्रीजाति कोही ऐसा कोमल उदार और सरल हृदय प्रदान किया कि जिससे यह बिना किसी आपत्ति के इस बोझ को सहार सकें। यह महान् कार्य केवल दिमाग़ी ज्ञान रूपी ख़ुशकी से सिद्ध नहीं हो सकता था, क्योंकि नित्यप्रति का अनुभव भी यही बतलाता है कि पिता लोग एक घन्टे भर के लिए भी रोते हुए बच्चे को नहीं सम्भाल सकते। बच्चा रात भर रोता रहे, पिता को पता तक भी नहीं होता, वह आनन्द से सोया रहता है, परन्तु त्याग की मूर्त्ति विचारी मां उसे गोद में लिये रात भर जागती रहती है। इन सर्व प्रतिभाशाली गुणों के अतिरिक्त स्त्रियां अपने कई अन्य गुणों का भी समय २ पर परिचय देती रही हैं। जैसे युद्ध में शस्त्र लेकर लड़ने के लिए जाना इस में राजपूत रमणियां प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ब्रह्मविद्या विषयक सूक्ष्म प्रश्नों पर गम्भीर विचार जैसे उप-

निषदों में मैत्रेयी याज्ञवल्क्य का सम्वाद दिमाग़ को चकरा देता है, इसी प्रकार से बालब्रह्मचारिणी गार्गी सुलभादि देवियों का भी वर्णन आता है, जोकि मंत्र द्रष्टा ऋषिकाएं हो चुकी हैं। इन उदाहरणों से उन की मस्तिष्कीय शक्तियों का भी पर्य्याप्त रूप से परिचय होता है। इस अवनत आधुनिक युग में भी स्त्रियां पुरुषों के समान उपाधियां ग्रहण कररही हैं। कोई ऐसा व्यवसाय व विद्या नहीं जिसमें स्त्रियों ने नाम न पाया हो। कई डाक्टरिन् हैं, कितनी ही पंडिता और अध्यापिका हैं यहां तक कि प्राड्विवाक हैं अर्थात् वकालत तक भी करती हैं और कई तो राज्य तक भी कर चुकी हैं। इन गुणों के साथ २ भगवान् ने इनके अन्दर आकर्षण शक्ति इतनी भर दी है कि जहां जाएं जिस सभा में वक्तृता करें वहां ही सन्नाटा छा जाता है और अतुल प्रभाव होता है इसका कारण देवियों में इनकी दिव्य शक्ति है इसी ने ही इन्हें देवी का पद दिया है। पुरुषों को कोई देवा व देवता नहीं कहता। इस दिव्य मातृ शक्ति के सन्मुख स्वामी दयानन्द जैसे व्यक्ति को भी एक बार सिर झुकाना पड़ा। यह दिव्य शक्ति का ही प्रभाव है कि एक छः फुट परिमाण का लम्बा हट्टा कट्टा आदमी अपनी दुबली पतली मां के समक्ष कूर्म की तरह सिकुड़ जाता और विनीत भाव से झुक जाता है। जहां इनके अन्दर यह महाप्रतिभा शाली आन्तरिक गुण हैं वहां बाहरी सौन्दर्य्य भी न्यून नहीं है। मानों प्रकृति ने सुन्दरता के भण्डार का सार स्त्री जाति को ही प्रदान कर रक्खा हो। इन सारी विभूतियों के प्राप्त होने पर भी अहंभाव ज़रा नहीं, सारे गुणों को हज़म करने के लिए परमेश्वर ने इन्हें नम्रता और लज्जा का चूर्ण साथ दे दिया है। संसार के इतिहास में यह सदाचार की उदाहरण हैं। सर्व जनता इन्हें सदाचार की मूर्ति मुक्त कंठ से स्वीकार करती है। ऐसा भगवान् मनु कहते हैं कि "यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" जहां ऐसी गुणों की खान देवियों की पूजा होती है वहां सचमुच देवता रमण करते हैं।

इसी प्रकार कठोर से कठोर और कठिन से कठिन कार्य्यों के करने की शक्ति भगवान् ने पुरुषों को दे रक्खी है, धन कमाना, युद्ध करना, कृषि कर्म, भूगोलभर की यात्रा करना, बड़े प्रबन्ध, मानसिक शक्ति का आधिक्य, सर्व कुटुम्ब का पालन, राज्यादि कार्य्यों का करना, स्त्रियों के गुणों से यह भी कम नहीं हैं। पर हां दिल के बिना दिमाग़ की सार्थकता, और दिमाग़ के बिना दिल की सार्थकता नहीं, दिमाग़ में भी वैद्यक विद्यानुसार पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों में कोई पांच, छः औंस का अन्तर है। तात्पर्य्य यह कि प्रत्येक जाति अपने रूप में विशेष २ गुण रखती है।

स्त्री के सर्व गुण प्रेममय और आकर्षण शाली हैं, पुरुष के सब गुण कठोर और साहस पूर्ण हैं अर्थात् स्त्री दिमाग़ गौण और दिल मुख्य रखती हैं, पुरुष दिमाग़ मुख्य और दिल गौण रखता है। इससे स्त्री की प्रकृति भक्ति प्रधान और पुरुष की ज्ञान प्रधान है। इस से यह सारे शब्द "विद्या, श्रद्धा, भक्ति सरस्वती, सन्ध्या उपासना, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग हैं।

अब इन भिन्न २ गुणों के कारण कोई एक दूसरे से छोटा नहीं कहा जा सकता सभी अपने २ उपयोग में मुख्य हैं। जैसे एक डाक्टर, दूसरा प्रोफ़ैसर हो तो दोनों अपने २ स्थान पर मुख्य तथा उपयोगी

हैं। इन्हें एक दूसरे की अपेक्षा छोटा कोई नहीं कह सकता।

कल्पना करो यदि इनमेंसे अर्थात् स्त्री तथा पुरुषमें से कोई बड़ा भी हो तो उन्हें अपने आपको बड़ा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि बड़प्पन इसी में है कि दूसरे बड़ा समझें। जैसे एक बार स्वामी दयानन्द जी महाराज से किसी ने कहा कि महाराज छोटा तो बड़े को नमस्ते करे बड़ा क्यों करता है, तो यथार्थवादी ऋषि उत्तर देते हैं कि भाई बड़े को यह नहीं समझना चाहिए कि मैं बड़ा हूं दूसरे बेशक समझें।

इसी प्रकार जितना २ भगवान् ने किसी को बड़ा बनाया है उतने २ कर्तव्य भी उसके बढ़ा दिये हैं तैत्तरीयोपनिषद् में आता है कि "मातापूर्व रूपं पिताउत्तररूपं प्रजा संधिः" अर्थात् माता बच्चे के उत्पन्न और पालन करने में मुख्य और पिता गौणरूप हैं। इससे विदित होता है कि जहां माता को अधिकार और आदर इतना दिया गया है वहां कर्तव्य भी कितने सख्त हैं। ६,१० मास तक १० बारह बच्चों के गर्भ धारण करना और रसनेन्द्रियं को जीत कर बड़ी कठिनाइयां सहकर उनका पालन करना यह थोड़ा तप और कष्ट नहीं है।

अतः हम यदि सृष्टि नियम पर विचार करें तो हमें ज्ञात हो जायगा कि प्रकृति अपना पलड़ा सम रखती है। प्रकृति ने सृष्टि में शांति तथा समता रखने के लिए सबको अपने २ कर्तव्य और धर्म निर्धारित कर दिये हैं ताकि जगत में साम्यता बनी रहे जब तक मनुष्य समाज अपने २ धर्मों और गुणों का उचित उपयोग करता है तब तक समता और शाँति बनी रहती है। और जब इससे च्युत होता है अर्थात् प्राकृतिक नियमों का उल्लङ्घन करता है तब प्रकृति देवी को बाधित होकर कोप करना पड़ता है और शांति भंग हो जाती है। अतः प्रत्येक का प्राकृतिक नियमानुसार जीवन व्यतीत करना ही परम धर्म है।

——०——

पतित भारतीय स्त्रियों के लिये आश्रम और शिक्षणालय



यह बड़े हर्ष की बात है कि कुछ नर और नारी इस यत्न में लगे हैं कि ऐसी स्त्रियों को—जिन को पैदायश अथवा विशेष अवस्थाओं ने लज्जाजनक जीवन व्यतीत करने पर बाधित किया हो और अब वह स्वयं उस में निकलना चाहती हों, अथवा जनता चाहती हो कि उन को पवित्र जीवन व्यतीत करने का पुनः मौक़ा दिया जाय—अवश्य बचाने का ढंग निकालना चाहिये"। १६२३ में कलकत्ते में पाप व्यवसाय को दबाने के लिये एक कानून पास किया गया था जिसके अनुसार कलकत्ते के सब वेश्यागृहों से सब १३ वर्ष से नीची आयु वाली कन्याओं को —जिनकी संख्या २००० से ऊपर होगी—हटा लेने का अधिकार पुलिस को प्राप्त है परन्तु शोक! कि हमारे यहां ऐसे आश्रम ही नहीं हैं जहां इनको रखसकें। कलकत्ते की एक सभा कलकत्ता विजिलेन्स सुसायटी भारतीय पतित स्त्रियों के लिये,—युरोशियन या विदेशी देवियों के लिये नहीं—आश्रम और शिक्षणालय बनाने के लिये एक लाख रुपये की अपील कर रही है परन्तु तो भी उसे धन प्राप्त नहीं हो रहा है।

परदे की प्रथा से दबे हुये बंगाल प्रान्त में एक देवी के लिये अपना सतीत्व बेचना सहल है परन्तु हाथ या दिमाग से किये काम की कदर नहीं। इस सामाजिक बुराई को जनसमाज अभी तक सुधारने का ध्यान नहीं कर रहा है यह विचारकर बड़ा भय होता है और जब यह मालूम पड़ता है कि कलकत्ते में १० वर्ष से ऊपर की प्रति शतक चार स्त्रियां वेश्यायें हैं तो इसकी भयंकरता कितनी बढ़जाती है।"

मद्रास में कुछ यत्नशील देवियों ने इस सम्बन्ध में काम शुरू कर दिया है परन्तु सारे भारतवर्ष में इस प्रकार की पतित देवियों के उद्धार के लिये बड़ा जरूरी है कि मुख्य २ स्थानों पर बड़े २ आश्रम बनाये जावें जिनकी अध्यक्षा लायक स्त्रियां हों—क्योंकि यह काम स्त्रियां ही सफलता और योग्यता से कर सकतीं हैं, पुरुष नहीं—और जिसकी मालिक सभा प्रतिष्ठित भद्रपुरुषों और देवियों की मिश्रित सभा हो तथा उसके पास इतना धन अवश्य हो कि इनके शिक्षण के लिये उचित साधन प्राप्त कर सके तो इन पतित देवियों की रक्षा और शिक्षा उचित हो सक्ती है और कुछ समय के बाद यही अपनी अन्य पतित बहिनों के सुधारार्थ किये आन्दोलन को आगे बढ़ाकर तथा इस काम में सहायता देकर न केवल अपने जीवन को ही सफल बना सकतीं हैं वरन् परोपकार द्वारा देश व जाति का भी कल्याण कर सकती हैं।

परन्तु एक बात पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये, वह यह कि सिर्फ दिखलावे के लिये ऐसे आश्रम न बनने पावें नहीं तो जिस बुराई से बचाने का यत्न किया गया वही रूपान्तर धारण कर के वहां भी उपस्थित हो जायगी और प्रयत्न विफल होगा। इन 'बचाई हुई' देवियों को व्रत और उपदेश दे कर उनके नित्यप्रति के जीवन को पवित्र बनाने के यत्न के साथ २ इन्हें दस्तकारी, चर्खा, खड्डी कपड़ों की काट छांट, सिलाई तथा पाक विद्या अथवा दायीगीरी और चिकित्सा आदि जीवनोपयोगी विषयों की क्रियात्मक शिक्षा दिलानी चाहिये और योग्यता और आयु के अनुसार तथा मन के झुकाव को देखते हुये प्रत्येक को दो, चार वर्ष का कोर्स बना कर शिक्षा देकर उन्नत करना चाहिये न कि वर्तमान अनाथालयों की भांति अनाथा कन्याओं और स्त्रियों को भरती कर के इकट्ठा तो कर लें और जनता से धन भी, वस्त्र इत्यादि भी अपील करके लेते जांय परन्तु उनके जीवन को उपयोगी और स्वावलम्बी बनाने की ओर ध्यान ही न दें, तो वह अनाथ की अनाथ ही बनी रहें, न उनके आत्मसन्मान का भाव हो, न स्वावलम्बन न आत्मरक्षण न, देश चिन्तन। वह केवल मात्र मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों की पूर्ति का साधन ही रह जायं। ऐसे सुधार से लाभ नहीं, वह आडम्बर और दम्भ है उस से विनाश की ही सम्भावना है, उद्धार की नहीं।

सरलोपदेश—सप्तक

लेखक-प्रो० पं० टीकाराम जी भट्ट विशारद,

अपक-पंथ पै पांव, न पुरुषों के तुम रखना।
कभी न दुर्गुण-भरी, स्वाद शिक्षा का चखना॥
उन्नति और सुधार, आज जन जिसे पुकारें।
है यह कोरा दम्भ, न बुध इस पथ पग धारें॥१॥

प्रदर्शिनी का दृश्य, सकल है यहां दिखाता।
इस भ्रम से प्रिय बहिन! जोड़ना कभी न नाता॥
रखते केवल रंग, सभी गुण-गंध गंवाते।
इन पुष्पों से भवन, न अपना चतुर सजाते॥२॥

पश्चिम-गुण-गण-ग्रहण, उचित ही है कर लेना।
किन्तु धूल में मिला, जाति-गौरव मत देना॥
तितली तुम को बना, रिझाते जो निज मन को।
खोकर खद्दर साड़ि, सजाते मल-मल तन को॥३॥

यह भारी अपमान, नहीं उनके हित सहना।
मातृ-भूमि-ऋण-उऋण-हेत उद्यतही रहना॥
परदा हिय पै डाल, मुखों से दूर हटा दो।
दया-धर्म-वीरत्व-प्रेम की गंग बहादो॥४॥

नर सब नैतिक-दाँव, आज नलके सम हारे।
तुम दमयन्ती बनो, नशाओ दुःख हमारे॥
निज शिशु-गण पै ध्यान, जाति-जनका नहिं जाता।
इनकी रक्षा करो, बनो तब सच्ची माता॥५॥

इनका शिक्षा-भवन, तुम्हारा अंक-स्थल है।
पुरुष-वर्ग के पास, सदा इनको कल कल है॥
जाति-ज्योति-स्वर-सने, सुनाओ इनको गाने।
राम-कृष्ण-अभिमन्यु, वीर हैं तुम्हें बनाने॥६॥

फिर भारत की भूमि, रहेगी नहीं विपन्ना।
होकर धन-जन युक्त, बनै वैभव सम्पन्ना॥
गाँधी गुरुता गहै, तिलक फिर भाल तिलक हो।
मोती गले का हार, लाज-पत पलक पलक हो॥७॥

हिन्दू स्त्रियों के पतन पर ऐतिहासिक दृष्टि ।

लेखिका—कुमारी अम्बादेवी विदुषी विशारदा,



इस चतुर्विध सृष्टि में चारों ओर दृष्टि दौड़ाने से यही दृश्य दिखाई देता है, कि बली निर्बल को सताने, दबाने और खानेके लिये तैयार है। उद्भिदों की ओर ध्यान देने से जान पड़ता है कि छोटे पौदे का खाद्य, पेय बड़े वृक्ष स्वयं खा जाते हैं और उस को अपनी छाया में पनपने नहीं देते, बर्षादि ऋतु में अवश्य उन को कुछ मिल जाता है। उस का कारण बड़े वृक्ष की दयालुता नहीं है, प्रत्युत उपर्युक्त खाद्य, पेय पदार्थ की अधिकता ही होती है। यही बात नभचर, चलचर और थलचर प्राणियों के विषय में दिखाई देती है, बाज़, नांके, बड़ी मछलियाँ और सिंहादि हिंस्र जन्तु इस के प्रमाण हैं। यह बात यहीं तक होती तो कुछ विशेष विचारणीय प्रश्न न था, क्योंकि अज्ञानान्धकार से आच्छादित प्राणी समूह जो कुछ न करे वही थोड़ा है। इसे अच्छे, बुरे, शुभ, अशुभ, श्रेय, अश्रेय का कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं है। किन्तु दुःख उस समय होता है, जब देखते हैं कि ललक २ उच्चस्वर से "आहार निद्रा भय मैथुनञ्च········" का पवित्र पाठ करने वाला मानव-समाज भी अपने निर्बल अंग, नहीं, नहीं अपनी जननी जाति के प्रति ऐसे २ अन्याय-पूर्ण कार्य करता देखा जाता है, कि जिस को देखकर न्याय, दया और अधिकार रोते दिखाई देते हैं। हिन्दू-धर्म के वैदिक कालीन साहित्य में —जिसमें स्त्री जातिके स्वत्वों पर न्याय दृष्टि डाली गई है—कहा गया है कि:—

ओं सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ यजु०, अध्या० ३४, मंत्र १० ॥

अर्थात् हे कुमारियो! तुम ब्रह्मचर्य आश्रम के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त हो, युवती होकर, अपने को अभीष्ट, स्वयं परीक्षा किये, वरने योग्य पतियों को आप बरो और उन पतियों के साथ आनन्द कर, प्रजा पुत्र इत्यादिकों को उत्पन्न किया करो।

[श्री० स्वामी दयानन्द जी सरस्वती]

रामायण काल से पतन प्रारम्भ हो जाता है। यहीं से बहुविवाह की कुत्सित प्रथा का प्रारम्भ हो जाता है। सर्व श्रेष्ठ प्रजापालक नृपति राजा दशरथ इस प्रथा को कार्य रूप में परिणत करते हैं। वशिष्ठ मुनि से व्यवस्थापक चुप्पी साध लेते हैं। लंका का राजा रावण और किष्किन्धाधिपति बाली और भी आगे बढ़ जाते हैं। या यह कहा जा सकता है कि समस्त क्षत्रिय—समाज स्त्री-स्वत्वों को दलन करने के लिये तुला बैठा है। सारा महिला--मंडल बिलासिता की सामग्री बन जाता है या बना दिया जाता है। यहां तक कि इस संक्रामक रोग के कीटाणु बनवासिनी ऋषि पत्नी रेणुका को भी अपने प्रभाव से प्रभावित कर लेते हैं। तपस्वी यमदग्नि यम और अग्नि का रूप धारण कर लेते हैं। अपने वीर पुत्र को मातृ-वध का घोर कुकर्म करने के लिए उद्यत कर देते हैं। ब्राह्मण वृत्ति क्षत्रिय-कर्मा परशुराम अपने तीक्ष्ण फरसे से इस पातक के मूल को नाश करने में लग जाते हैं, क्षत्रिय-समाज की बुद्धि ठिकाने आ

जाती है, नारीकवच जैसे क्षत्री नारियों का कवच धारण करके प्राण बचाते हैं और स्त्रियां अपना धर्म पालन कर उन की जान बचाती हैं। यह काम जननी जाति के ही हिस्से में आया है:—

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।"

वीराग्रणी, दृढ़व्रती, अपना कर्तव्य पालन कर अरण्य का मार्ग लेते हैं। रजोगुणी नरपतिवर्ग के पुराने संस्कार फिर जागृत हो जाते हैं। अन्त में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की बारी आती है, मातृशक्ति के सच्चे उपासक; एकपत्नीव्रती, अपने सच्चे वैदिक पत्नीवृत का अनुपम आदर्श संसार के सामने रखते हैं।

इसके पश्चात् महिलाओं की महत्ता का संहारक महाभारतका समय आता है। प्रत्येक राजा और उसके कर्मचारियों के महल पशुशालाओं की तरह रमणियों से भर जाते हैं। कहा जाता है कि भगवान् श्री कृष्ण जी महाराज की रानी, पटरानियों की संख्या १०८ से कुछ ऊंची थी। इस काल में दुर्योधन द्वारा देवी द्रौपदी की कौरव सभा के बीच में दुर्दशा की गई, वह उसका प्रत्यक्ष-प्रमाण है।

तदुपरान्त सूत्रकाल पर दृष्टि डालनेसे स्त्रियों की सामाजिक-अवस्था अत्यन्त हीनता को प्राप्त हुई ज्ञात होती है। अब वे सीधी शूद्र श्रेणी में परिगणित की जाती हैं और सूतजी महाराज की अपार अनुकम्पा से पौराणिक श्रोताओं की पंक्ति में बैठा दी जाती हैं। अब उनको कपोल-कल्पित, मनगढ़न्त, अस्वाभाविकता-परिपोषित कहानियाँ सुनाकर २ उनका मस्तिष्क झूंठी, भ्रमात्मक बातों से भर दिया जाता है, जिसका प्रभाव आज तक बना हुवा है। वे एक बन्दर में बालब्रह्मचारी, ज्ञान-ध्यान-सम्पन्न वीरवर हनुमान की भावना करती दिखाई देती हैं। साँपों में नाग, और तक्षक जाति के वीरों को देखती हैं। गधे में शीतला और कुत्ते में भैरवदेव के दर्शन करती हैं। आज कल के मुसलमान गुण्डों के डंडों में उनको अनोखी करामात दिखाई देती है। नगर निवासिनी मूढ़ महिला-मंडली में यह विश्वास फैला हुआ है कि मुसलमान गुण्डे और मुसलमान स्त्रियां डंडे और शीशा लिये रहती हैं जिस हिन्दू बालक, बालिका वा स्त्री के ऊपर डंडा फेर दिया जाता है वा शीशा दिखा दिया जाता है, वही उनके पीछे २ चल देता है (यह कानों सुनी बात है)। गोपिकाओं वा कृष्ण की रासलीला में कोई दार्शनिक तत्त्व है वा नहीं, वे नहीं जानतीं। वे तो केवल इतना ही जानती हैं कि कृष्ण राधिका के साथ नाचा करते थे। यह सब उपर्युक्त पौराणिक भ्रमात्मक भावना विकारक कथाओं का परिणाम है। जो सूत्रकाल में उन ज्ञान हीना माताओं तक पहुंचाई गई।

इसके बाद पौराणिक काल आता है। इस समय में तो हमारे शास्त्राकार और ग्रन्थाकार अपनी प्रबल-प्रतिभा का बल लगा कर, सूक्ष्म ज्ञान चक्षु से देखने पर भी इन्हें अवगुणों का भांडार पाते हैं। इस ईश्वरीय सृष्टि में इनका कुछ अधिकार है भी या नहीं; इसके विषय में यही कहना ठीक है कि अधिकार शब्द इस युग में तो भारतीय स्त्रियों के लिये था ही नहीं। विद्याध्ययन दायभाग आदि सब ही कुछ इनसे छीन छान कर निर्धन नाम दे दिया गया था जो अब तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। वेद भगवान और मनु के नाम पर श्लोक और मनमानी श्रुतियाँ बना २ कर प्रसिद्ध कर दी गई और कहा गया:—

स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः
(स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है)

अमन्त्रिकातुःकार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथा कालं यथा क्रमम् ॥
नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः।
निरिन्द्रिया ह्यमंत्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥
मनुस्मृति ।

अर्थात् स्त्रियों के ये सब कर्म शरीर संस्कार के लिए ठीक समय पर पूर्ण रीति से यथा क्रम मंत्र रहित होने चाहिएं। शास्त्र की यही मर्यादा है कि स्त्रियों का संस्कार मन्त्रों से नहीं होता। स्मृति तथा धर्मशास्त्र और किसी वेदमन्त्र में इनका अधिकार नहीं है इसलिए यह झूठ के समान अशुभ हैं।

देखिये, मनु महाराज! आपका "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" वाला श्लोक स्वार्थियों द्वारा किस तरह पददलित किया गया है? इस अन्याय पर सम्भवतः याज्ञवल्क्य महाराज को कुछ दया आ गई हो और उन्होंने व्यवस्था दे दीः—

"तूष्णी मेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ॥" याज्ञवल्क्य स्मृति ।

अर्थात् सब कर्म स्त्रियों के बिना मंत्र पढ़े होते हैं, केवल उनके विवाह में मंत्र पढ़े जाते हैं।

यहीं तक बस नहीं किया गया। विवाह सा महत्त्व और दायित्व-पूर्ण संस्कार भी गुड्डे गुड़ियों के खेल के समानः-

"विवाह प्रशस्त कालमाह, सप्तेति...।" निर्णय सिन्धु।

अर्थात् सात वर्ष की अवस्था में वा गर्भ तिथि से लेकर ६ वर्ष ३ मास की आयु ही में विवाह कर देना श्रेयस्कर समझा गया। इस व्यवस्था का पालन न करने वालों को कहा गया है किः—

"माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैवच।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्
संवर्त्त स्मृति।

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिवति शोणितम् ॥" यमस्मृति।

माता पिता से कहा गया कि आंखें मीच कर विवाह करने में ही कुशल है। रोगी सोगी बाल- वृद्ध, योग्य- अयोग्य का विचार करोगे तो कुम्भीपाक मिलेगा। इन भयानक और वीभत्स भरी व्यवस्थाओं को देते हुए उस मनु को भी जो उच्च स्वर से पुकार कर कहता है किः—

"काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥"
मनुस्मृति।

अर्थात् ऋतुमती होने पर भी चाहे कन्या जन्म भर घर में ही रहे परन्तु इसे निर्गुणी पात्र को कदापि न दे।—बीच में घसीटा गया और उसके नाम से भी यह श्लोक पेश किया गया किः—

त्रिशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥
मनुस्मृति।

अर्थात् ३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या को और २४ वर्ष का ८ वर्ष की कन्या ब्याहे। यही क्यों दाय धन पर तथा आचरण पर भी उसी मातृशक्ति भक्त मनु के नाम से घोर आक्रमण किया गया है। और ऊपर कहा गया निर्धन नाम भी दे दिया गया है और निन्दित आचरणों की खानि इसी जननी जाति को बतलाया गया है।—

"भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृता।
यत्ते समाधि गच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥

शय्यासनमलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम्।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत्॥"
मनुस्मृति।

अर्थात् भार्या, पुत्र और दास शास्त्र में निर्धन कहे गये हैं, इनके उपार्जित धन पर स्वामी का अधिकार होता है। शय्या, आसन, आभूषण, काम, क्रोध, द्रोह, कुटिलता और निन्दित आचरण भी मनु ने स्त्रियों के ही लिए बनाए हैं।

फिर भला ऐसी दरिद्रदलिता, आचरण-हीना, अवगुण सम्पन्ना को तुलसीदासजी ने-

"ढोल गंवार पशु अरु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥"

बतलाया है तो कुछ अनुचित नहीं किया। सम्भव है इसी आधार पर आज-कल के कई भागवती पंडित सप्ताह बांचते २ कन्याओं का पढ़ाना पाप बतलाने लगते हैं और कहते हैं कि इनको उसी प्रकार स्वतन्त्रता की वायु से, जेलखाने के कैदी की तरह सुख-शान्ति से सुरक्षित रखना चाहिये जिस प्रकार ब्रिटिश गवर्नमेंट भारतवासियों को रखना चाहती है। अथवा पं० चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में यही कहना चाहिये कि:—

"स्त्रियों को विलास की सामग्री, पैर की जूती, मोल की बांदी, व्यभिचार की माध्यम और बच्चे (सन्तान नहीं) बनाने की मशीन बना दिया है।" न्यायानुसार तो इस संसार में कोई भी स्त्री, पुरुष की गुलाम नहीं है जो वह पुरुष की धर्महीन आज्ञाओं तथा इच्छाओं का पालन करने को विवश हो। तथा सेंत मेंत पीटने के अत्याचार को चुपचाप सहती रहे। "प्रत्येक स्त्री गृहणी है, घर की स्वामिनी है, जिस पुरुष ने वेद, ईश्वर और अग्नि को साक्षी देकर उसका हाथ पकड़ा है, उसे अर्द्धाङ्गिनी बनाया है, उसके सर्वस्व में वह बराबर की अधिकारणी है।" किन्तु आज कल अर्द्धाङ्गिनी, सहधर्मिणी, सहचारिणी, पत्नी आदि शब्द तो कोष का कलेवर बढ़ाने के लिये ही समझने चाहियें। वास्तविक नाम जो स्त्रियों के लिये दिये जाते हैं, वे तो यही हैं-पांव की जूती, घर की दासी, रसोइन वा एक कवि के शब्दों में: —

"...नारी बस बालक बनावन की कल है..."

अपनी इस दुर्दशा का उल्लेख कहां तक करें, द्विवेदी जी के शब्दों में:—

"...अपनी दशा याद करते ही फटा....."

हमको अपने पतन की ज़रा भी चिन्ता न थी, यदि हमारे सोदर भाइयों, प्यारे पिताओं और पुत्रों में पौरुष की प्रबल जागृति बनी रहती। वे मानमर्यादा के लिए संसार में जीते होते! उनके भीतर राम का रक्त विद्यमान होता! वे उच्च-स्वर से कहते होते कि:—

"जो निज कुल मर्याद,
सहित जीवन तो जीवन।
नहिं ताते शत गुणित,
मरन रन में जस पीवन॥
राज साज पकवान रसीले,
धन सम्पति बड़ाई।
सब ही तुच्छ तुच्छतम निहचै,
निज मर्याद गंवाई॥"

परन्तु आज महात्मा गांधी जी को भी दुःख के साथ कहना पड़ता है कि "मैं हिन्दुओं की नामर्दी का खयाल करके ज्यादह शर्मिन्दा होता हूँ। जिन के घर लूटे गये वे अपने माल असबाब की हिफ़ाज़त करते हुए वहां मर क्यों न गये? जिन बहिनों की बेइ-ज़्ज़ती हुई उनके नाते-रिश्तेदार उस वक्त कहां गये थे?" किन्तु यह सब फल उसी

निन्द्यनीति का है जिसके द्वारा जननी दासी बनाई गई हैं। उनके अधिकारों को कुचल कर उन्हें श्रृङ्गार रस की सामग्री मात्र बना डाला गया है। कवियों ने तो यहां तक कह डाला है-"चित्र लिखित कपि देख डराती।" "सीय न दीन्ह पग अवनि कठोरा"—फिर अब वीरों की उत्पत्ति कैसी? वीरांगना ही वीर जननी हो सकती है। उदाहरणतः हमीर की माता की कथा लीजिये जिसने एक जुवार के फटेरे से जंगली दंतैले सूअर को अपने खेत से निकाल दिया था। पढ़ जाइये लक्ष्मीबाई, चांदबीबी, आदि ऐसी ही माताएँ थीं। वीरांगनाओं का स्पष्ट प्रण होता है:—

"कर रिपुदल संहार, देश की लाज बचावै।
निज-भुज-बल से, मातृभूमि का भार हटावै॥
सुख स्वराज्य की ध्वजा, गगनमंडल फहरावै
बन धर्म—धार, देश का नाम बढ़ावै॥
वाकी सेवा करने में, बड़भागिन सुख पाइ हैं
नहिं यह जीवन सदा, इकली बैठ बिताइ हैं॥

आज अमेरिका का स्त्री समुदाय अपनी दो कोटि संख्या से शासन में उलट—फेर कर सकता है। किन्तु भारत का रमणी-समूह विलासिता की सामग्री संग्रह करने के लिये स्वदेशवासियों की गाढ़ी कमाई को, विदेशी चूड़ी, साड़ी, लैवेन्डर, फैशनेबिल कंघे आदि में बड़ी बेदर्दी के साथ व्यय करने में अपना सौभाग्य मानता है। यह सब भारतीय भामनियों के मस्तिष्क की उपज नहीं है, यह तो अनुभवशील, शिक्षित पुरुषों के ही परम पुरुषार्थ का परिणाम है। क्योंकि चरखे की घाँय घांय और चक्की की घुमर २ से उनके दिमाग़ परेशान होते थे। इसलिये नागरिक सज्जनों ने तो इसे अपने घर से निकाल देने में ही अपना श्रेय समझा है। अभीतक चूल्हा और शेष रहा है। धीरे २ इसकी फिक्र की जारही है। फिर तो श्रीमतियों को तो सिवाय ताश खेलने के और कर्तव्य शेष रहेगा ही नहीं, बस यही कला और सौन्दर्य का मूल है। प्राचीन काल में भले ही:—

"इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।"

सच्चा सिद्ध होता हो परन्तु यह सच्चे सुधार का मार्ग नहीं है, सच्चामार्ग तो आत्मनिर्भरता है। अपनी आवश्यकीय सामग्री अपने आप जुटाने से ही व्यक्ति, जाति, और देश उन्नत होते हैं क्योंकि:—

लघयनखलु तेजसा
जगन्नमहाविच्छतिमूर्ति मन्यतः

इस लिये समस्त देश की नारी जाति को आज अपनी और अपने देश के पुरुष वर्ग की दशा सुधारनी है। उनका कर्तव्य है कि वे अपने जीवनों को सुधारने में दत्तचित्त हों। अपने कर्तव्यों को पहिचाने, अधिकारों को ग्रहण करें। माता, पिता, बहिन, भाई आदि की धर्मानुकूल आज्ञाओं का हृदय से पालन करें। धर्मच्युत बात के पीछे चलना, ईश्वराज्ञा का उल्लंघन करना है। जो कदापि करणीय नहीं।

"वरं विन्ध्याटव्या मनशन तृषार्तस्य मरणम्।
वरं सर्पाकीर्णे तृण पिहित कूपे निपतनम्।
वरं गर्तावर्ते गहन जल मध्ये विलयनम्।
न धर्माद्भ्रंशो वरं कुलजस्य श्रुतवतः।

विन्ध्यागिरि के गहन जंगल में भूखे और प्यासे रह कर मरजाना श्रेष्ठ है। सापों से भरे घास में छिपे हुये कूप में गिरकर मर मिटना भी अच्छा है, लहरों से कल्लोल करते हुये मगरमच्छ, नाक आदि भयानक जलचरों से परिपूरित समुद्र में डूब जाना भी अच्छा है परन्तु कुलीन नारियों का वेद मार्ग से विचलित होकर धर्म से पतित होना अच्छा नहीं।

इसलिये भारत की देवियों को अपने उत्थान की ओर स्वयं ही पग बढ़ाना चाहिये और अपनी दशा उन्नत करनी चाहिये।

पाप का फल

लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र सिंह भादरा

(गतांक से आगे)

(४)

बारह बज चुके हैं। लोग निद्रादेवी की गोद में सो रहे हैं। आकाश काली घटाओं से आच्छादित है। झीम २ बूंदें पड़ रही हैं। कटावनी हवा बह रही है। कृष्णपक्ष की रातें तो योंही भयानक होती हैं, पर यदि वर्षाऋतु हो तो फिर उनका क्या कहना है? ऐसी भयानक एवम् तूफानमय रात है कि आदमी की कौन कहे- कोई बिल्ली को भी अपने घर से नहीं निकाल सकता है। पर मुरला अपने घरसे निकाल दी गई है। वह इधर उधर भटकती फिरती है। न रास्ते का ज्ञान है न शरीर का ध्यान है। और न यही निश्चित है कि कहां जाना है। एक बात निश्चित है, वह यह कि इस ग्राम को त्यागना है जिस में न्यायान्याय धर्माधर्म और सत्यासत्य का कुछ विचार नहीं है।

चलते २ एक कुंए के पास पहुंचती है। समाज के अत्याचार से हृदय व्यथित है। ज़िंदगी से निराशा है। ऐसे व्यक्ति का जीना मरना बराबर है जिसका संसार में अपना कोई नहीं है। इस विचार से वह अपनी जीवन-ज्योति को उसी कुंए में बुझाना ही चाहती है कि पति की वह शिक्षा याद आ जाती है जो उसने मृत शय्यापर पड़े दी थी। पति की शिक्षा और अपने विचार में मुठभेड़ हो रही थी कि एक और आवाज कान में पड़ी जो मचान पर पड़े हुए किसान की थी। वह अपने साथीसे कह रहा था—"भाई, अनाथों का नाथ कोई नहीं है। धर्माधर्म का पचड़ा तो पण्डितों ने यों ही लगा छोड़ा है। निराधिनी तो घरसे निकाली जाती है; पापनी घर में बैठे चैन की बंशी बजाती है।" साथी ने कहा 'ना, भाई ऐसी बात नहीं है। धर्म की विजय अवश्य होती है, पर कसौटी पर कसे जाने के बाद।"

इन शब्दों से मुरला को कुछ ढाढ़स हो आया है। जीवन ज्योति की आशा फिर हृदय में जगमगा पड़ी। वह आगे बढ़ी। समाज के अत्याचार को सहते २ हृदय इतना कड़ा होगया है कि गीदड़ और उल्लू के भयानक शब्दों का उसे तनिक भी ख़याल नहीं है। एक काला नाग फुंफकार छोडता हुआ पैर के नीचेसे निकल गया है। वह सहम जाती है। मन में सोचने लगती है - "सांप भी मुझ से घृणा करता है। मेरा शरीर स्पर्श करना महापाप समझता है?"

ऐसे ही विचारतरङ्ग में वह डूबते उतराते जा रही है कि टिमटिमाती हुई एक रोशनी दिखाई देती है। वह आगे बढ़ती है, पर रोशनी दूर है। वह थक कर बैठ जाती है। थोड़ा आराम कर फिर उठती है आगे बढ़ती है। मरता क्या न करता। चार बजते २ वह रोशनी के पास पहुंच जाती है।

पहुंच कर क्या देखती है कि रोशनी स्टेशन पर जल रही है। गाडी आगई है। जनता गाडी पर चढ़ रही है। मुरला भी चढ़ जाती है और एकस्थान पर चुपचाप बैठ जाती है। इसी समय टिकिट बाबू आजाता है। जांच पडताल शुरू हो जाती है। सब मुसाफिर टिकिट दिखा देते हैं पर मुरला

चुपचाप बैठी रहती है। टिकिट बाबू पूंछता है—"तुम्हारा टिकिट कहां है?"

मुरला—"मेरे पास टिकिट नहीं है।"

बाबू—"तू कहां जावेगी"?

मुरला—"बनारस"

बाबू—बनारस का भाडा पांच रुपया लगता है दे दो अन्यथा उतार दी जाओगी।

एक मुसाफिर पास ही में बैठा हुआ है। वह कहता है—"बाबू बनारस का भाडा तो यहांसे सिर्फ १॥) लगता है।"

'बाबू—'जनाब, यदि जंकशन से चार्ज किया जायेगा तो कितना लगेगा?"

मुसाफिर चुप हो जाता है। गार्ड सीटी बजाता है। गाड़ी चल पड़ती है। बाबू मुरला को उतारने पर तुल जाता है। मुरला की आंखें आंसुओं से छलछला आती हैं। वह इधर उधर उस बालक के समान देखती जिसके हाथ से चील मिठाई छीन कर उड़ गई है। मुसाफिर कहता है "क्यों बिचारी को तंग कर रहे हो"?

बाबू कहता है-"इतनी दया है तो रुपया क्यों नहीं देदेते" मुसाफिर पांच रुपया निकाल कर दे देता है। बाबू की टेंट गर्म होती है। मुरला का पीछा छूट जाता है।

(५)

दीनेश बी. ए. की परीक्षा दे घर लौट पड़ा है। स्टेशन से गांव दो मील की दूरी पर है। वह आकाश में महल बनाते हुए जा रहा है कि "गांव में पाठशाला खोलूंगा। मुरला को अध्यापिका बनाऊंगा। ग्राम में पंचायत कराऊंगा। महावीर की बेईमानी की पोल खोलूंगा। जमीन हड़पने का मजा चखाऊंगा। भाई साहेब की ससुराल जाऊंगा सुशीला से भेंट करूंगा। बी. ए. की शर्त थी वह भी पूरी होगई।

इस प्रकार सोचते विचारते वह गांव के पास पहुँच जाता है। पर लोग इसे देख कर इधर उधर कतरा जाते हैं। कोई बात चीत नहीं करता है। अब इसके सारे विचार रफू-चक्कर होने लगते हैं। वह सोचने लगता है कि क्या कारण है कि लोग मुझसे नहीं बोलते हैं। क्या मेरी पढ़ाई से ये लोग ईर्षाद्वेष करते हैं? या महावीर की माया में फंस गये हैं?"

इस विचार में मग्न वह घर पहुंच जाता है। पर घर और बाहर की दशा एक सी है। भाई बन्धु कोई पास नहीं फटकता है। मां पुत्र को देखते ही फूट २ कर रोने लगती है। वह पूछता है—"मां, क्या कारण है कि लोग मुझसे बात चीत नहीं करते हैं आप भी मुझे देखते ही रोने लगी हैं?"

माता सारी बात आद्योपान्त सुना देती है। वह सुनते ही आग बबूला हो जाता है। यह कहते हुए उठ पड़ता है—"बेईमान, हम लोगों का इतना सुख भी नहीं देख सका। इस का मज़ा न चखाऊं तो दीनेश नहीं।'

(६)

चन्द रोज से गांव में एक सन्यासी का आगमन हुआ है। कोई इनको तांत्रिक मांत्रिक समझता है। कोई धुरन्धर विद्वान् कहता है। स्त्रियां बच्चा देने वाली मशीन समझती हैं। पर वे किसी से विशेष बात चीत नहीं करते हैं। यदि जनता बहुत आग्रह करती है, तो कह देते हैं दीनों की रक्षा करो। यही सब शास्त्रों का सार है।

संयोग वस दीनेश इसी महाराज की कुटिया पर पहुंच जाता है। आंखें लाल लाल हैं। होठ फड़क रहे हैं। मुख मण्डल पर प्रतीकार का चिन्ह साफ़ प्रतिविम्बित होरहा

है। सन्यासी जी देखते ही हृदयकी बात ताड़ लेते हैं और बड़ी नम्रता पूर्वक कहते हैं—"युवक, बैठ जा। कहां जाना है, रात बहुत होगई है।

दीनेश—"महाराज, गृहस्थों के नसीब में बैठना कहां लिखा है? उन्हें रातविरात से क्या भय है?

सन्यासी—'क्यों, ऐसी क्या बात है। गृहस्थ ही तो सबके अवलम्ब हैं?" दीनेश अपनी राम कहानी सुना देता है। सन्यासी महाराज सुनकर दंग हो जाते हैं और कहते हैं—"दीनेश, शांति कर, परमात्मा सब भला करेगा।"

दीनेश—"महाराज, शांति कहां जब तक महावीर इस दुनियाँ में है?"

सन्यासी—युवक, तुमने पाप लाद रक्खा है। इसका नतीजा बुरा होगा।

दीनेश—"सन्यासियों को संसार के बुरे भले से क्या लेना है। उनको तो केवल अपनी रोटी से काम है। दुनियां भले ही भाड़ में जाय।"

सन्यासी—(हंसकर) यह तुम्हारा कहना ठीक है। हम लोगों को दुनियां के पचड़ों से क्या लेना है। पर जगदीश्वरानंद के साथ स्टेशन तक जा। अभी रात काफ़ी पड़ी है।"

दोनों उठकर चल पड़ते हैं। स्टेशन पर जाकर जगदीश्वरानंद बनारस को तार देता है। तार का मज़मून देख दीनेश दंग होजाता है और कहता है "जगदीश्वरानंद! मैं नहीं जानता था कि सन्यासियों में आप लोग ऐसे भी रत्न हैं। आप कृपया मेरी ओर से अपने गुरुदेव से क्षमायाचना कीजिएगा। मैं मुरला के पिता के घर जारहा हूं। यदि वहां भी पता न लगा तो कल मैं भी सुबह की गाड़ी से लौट आऊंगा।"

(७)

अभी उषा का आगमन नहीं हुआ है। "विदेश समाचार कार्य्यालय" के सामने कुछ मनुष्य बातचीत कर रहे हैं। जिनमें हमारे परिचित दीनेश, जगदीश्वरानंद और सन्यासी महाराज भी हैं। सन्यासी महाराज ने कहा "क्यों, मंत्री जी कहीं कुछ खबर है?"

मन्त्री—"हां महाराज खबर तो है पर आशा कम है।"

सन्यासी—'क्यों"

मंत्री—"क्योंकि हमलोगों में से कोई उस स्त्रीका परिचित नहीं है। दूधका जला छांछ को भी फूंक २ कर पीता है। समाजने उसे सताया है। वह किसी का विश्वास नहीं करती है। इसके अलावा आरकाटियों की माया का क्या कहना है। झूंठ सांच बोल दुनियाँको फंसाना ये खूब जानते हैं। मछली का निकालना असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य तो अवश्य है"।

सन्यासी—"आप कोई चिन्ता न करें। ईश्वर भला ही करेगा।"

दस बजे हैं। कचहरी दर्शकों से ठसाठस भरी है। "आरकाटिओं और विदेश समाचार कायालय" के कार्यकर्ताओं की मुठभेड़ की खबर चारों ओर फैल गई है। उसीसमय न्यायाधीशका आगमन होता है। दोनों फरीक़ अपना २ दावा सामने रखते हैं आरकाटिओं का कहना है कि स्त्री जाने को तैयार है। ये लोगव्यर्थ ही अड़चन डालते हैं। मंत्री जी का कहना है कि स्त्री जाने को तैयार

नहीं है। ये लोग इसे फुसला कर ले जाना चाहते हैं।

फैसला मुरला ही के 'हां' और 'ना' पर निर्भर है। वह कचहरी में लाई जाती है। आंखें आंसुओं से भरी हुई हैं। वह दीनेश को देखते ही सिसक २ कर रोने लगती है। सब लोग अवाक् हैं। मजिस्ट्रेट को भी कुछ करते धरते नहीं बनता है। वह पूछता है—क्यों तू आरकाटियों के साथ जाने को तैयार है?

मुरला हां और ना कुछ नहीं कहती है। अपनी आपबीती आद्योपान्त सुना देती है। न्यायाधीश अवाक् हैं। दर्शकों की आंखें आंसुओं से भरी हुई हैं। सबके हृदय से हिंदू समाज के लिए धिक्कार २ की आवाज आ रही है। दीनेश की जो दशा है वह लेखनी बयान नहीं कर सकती है। लज्जा और विषाद से सिर नीचे किये हुये पत्थर की मूर्ति के समान चुप चाप खड़ा है। इसी समय न्यायाधीश फैसला सुना देता है। आरकाटी मुंह की खाते हैं और मुरला मंत्री जी को सौंपी जाती है।

साँझ का समय है। सब लोग मुरला को घर जाने के लिए आग्रह कर रहे हैं; पर मुरला जाने को राजी नहीं होती है। उसी समय दीनेश के नाम का एक पत्र आता है जिसमें लिखा है-"महावीर के घर में भीषण अग्निकाण्ड होगया है, जिसमें उसका एकलौता लड़का भी जलगया है। गांव पर हैजे का प्रकोप है। महावीरभी उसका शिकार हो गया है तुम्हारा उपस्थिति अतिशीघ्र वांछनीय है। विधवाओं की खबर लेनेवाला भी कोई नहीं है। उनकी करुणक्रन्दन एवम् चीत्कार सुनकर पत्थर का हृदय भी पिघल जाता है।"

विधवाका नाम सुनतेही मुरला का हृदय भर आया। उसने कहा—"दीनेश, शीघ्र जाओ। अब उन दीनों के ईश केवल तुम्हीं हो। मैं भी विधवाओं की पुकार को घरों में फैलाऊंगी और भारत माता को उनकी करुणक्रन्दन से बचाने का प्रयत्न करूंगी।

इसी समय किसी ने खबर दी कि शफी भी इस संसार से चल बसा है। कल वह घोड़ेपर चढ़ा जारहा था कि घोडा एकाएक बिजुकपड़ा। और वह धडामसे जमीनपर आ गिरा। प्राणपखेरू उड़ गये।

इस प्रकार सबको पाप का फल हाथों हाथ मिला।

साहित्य सम्मेलन

लेखक—श्री० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी



हिन्दीसाहित्यसम्मेलन का पंद्रहवां अधिवेशन देहरादून में होने वाला है। सम्मेलन के सभापति के चुनाव के सम्बन्ध में चर्चा चल चुकी है। इस लिये मेरा भी इस बारे में कुछ निवेदन कर देना अनुचित न होगा। यह तो स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है कि सम्मेलन का सभापति साहित्य सेवी ही होना चाहिये।

इसके लिये युक्ति और प्रमाण की आवश्यकता नहीं। इस समय मेरी दृष्टि दो सज्जनों की ओर जाती है। उन में एक वृन्दावनवासी पूज्य पंडित राधाचरण गोस्वामी जी महाराज हैं और दूसरे सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा हैं। यह दोनों ही सज्जन अपने अपने विषय के अद्वितीय विद्वान् और सब तरह से सम्मेलन के सभापति पद के उपयुक्त हैं। परन्तु मेरी सम्मति है कि अब के पूज्य गोस्वामी जी ही सभापति बनाये जायं।

वृद्धावस्था में दो २ होनहार सुपुत्रों के अकस्मात् कालकवलित हो जाने से गोस्वामी जी के चित्त में गहरी चोट पहुंची। इससे वह अब लिखना पढ़ना छोड़ भगवान् के भजन में ही अपना समय बिताते हैं। यही कारण है कि अधिकांश हिन्दी प्रेमी उन्हें भूले से गये और नवयुवक मंडली तो उनसे बिलकुल अपरिचित सी हो रही है। ऐसी अवस्था में गोस्वामी जी का कुछ परिचय दे देना अनुचित और अनवसर की बात न समझी जायगी।

श्रद्धेय पंडित राधाचरण जी गोस्वामी की अवस्था इस समय पैंसठ के ऊपर है। आप वृन्दावन के प्रतिष्ठित रईस हैं। आप संस्कृत के विद्वान् और हिन्दीसाहित्य के एक स्तम्भ हैं। जिस समय भारतेन्दुजी हिन्दी का मार्ग परिष्कार कर रहे थे उस समय आपने उनका हाथ बढ़ाया और साथ दिया था। उस समय हिन्दी की दशा आजकल सी न थी जो लक्कड़ तोड़ तुकड़ों की कौन कहे छन्दोरहित रचना करने वाले भी युगान्तर उपस्थित करने का दम यों आसानी से भर लेते। उस समयकी हिन्दी सेवा बड़ी कठिन थी। न इतने लिखने वाले थे और न इतने पढ़ने वाले ही। गोस्वामीजी उन इने गिने हिन्दी सेवकों में हैं जिन्होंने स्वार्थत्याग पूर्वक हिन्दी का मार्ग परिष्कृत किया है। इन्हें इस बार भी सभापति न बनाना कृतघ्नता होगी।

गोस्वामी जी महाराज व्रजभाषा साहित्य के भण्डार हैं। वह उसके केवल ज्ञाता ही नहीं उसपर उनका पूर्ण अधिकार है। अष्टछाप के कवियों के तो पूरे जानकार और प्रमाण हैं। वह स्वयं सुलेखक और सुकवि हैं।

गोस्वामी जी सुलेखक और सुकवि ही नहीं सम्पादन कला के भी ज्ञाता हैं। उन्होंने 'भारतेन्दु' नाम का मासिकपत्र निकालकर बहुत दिनों तक उसका सम्पादन उत्तम प्रकारसे किया था। उसमें विविध विषयों के चटपटे लेख निकलते थे। उसकी गिनती अच्छे मासिकपत्रों में थी। हास्यरस के तो आप सिद्धहस्त लेखक हैं। "नापितस्तोत्र" "स्वर्गयात्रा" आदि लेख पढ़कर अब भी पेट में बल पड़ जाते हैं। जिन्हें गोस्वामी जी के चटपटे लेखों का आनन्द लेना हो वह उनका 'भारतेन्दु' ढूंढ़कर पढ़ें।

गोस्वामी जी की लिखी (१) सरोजनी नाटक, (२) विधवाविपत्ति, (३) विरजा, (४) जावित्री, (५) यमलोक की यात्रा, (६) स्वर्ग यात्रा आदि कई पुस्तकें हैं।

गोस्वामी जी सुवक्ता भी हैं। आपके व्याख्यान बड़े ओजस्वी और प्रभावोत्पादक होते हैं। भक्तिरस की वक्तृताएं सुनकर तो श्रोता गद्गद हो जाते हैं। आप राधारमणी गुसाईं होने पर भी सुधार के पक्षपाती हैं आप के विचार बड़े उदार और उदात्त हैं।

श्रीयुत वियोगी हरिजी अपने 'कविकीर्तन' में गोस्वामी जी का कीर्तन यों करते हैं।

"राधारमनी पूज्य गुसाईं वंस उजागर।
राधाचरणप्रवीन लीनकाव्यामृत सागर॥
भारतेन्दु को सखा सनेही प्रेमविलासी।
भजन भावना रंग्यो रहत वृन्दावनवासी"॥

तात्पर्य यह कि पूज्य गोस्वामी जी सब प्रकार से सम्मेलन के सभापति होने के उपयुक्त और अधिकारी हैं। अब तक इन का सभापति न होना हिन्दी वालों के लिए लज्जा और कलंक की बात है। पूज्य गोस्वामी जी अत्यन्त वृद्ध हैं इस लिये इस वार उन्हें सभापति बनाकर उनके अनुभव, उनके ज्ञान और उनके अनुशीलन का लाभ हम लोगों को उठाना चाहिये।

सम्मेलन की स्थायीसमिति और स्वागत समिति के सदस्यों से अनुरोध है कि वह अबके श्रद्धेय राधाचरण जी गोस्वामीजी को ही सभापति निर्वाचित करें। इससे सम्मेलन का ही गौरव बढ़ेगा, कुछ उनका नहीं। आशा है मेरा नम्र निवेदन अरण्य-रोदन न होगा।

———

भानु-भुवन या मोहन-माया

अनुवादिका— कुमारी सुमित्रा देवी, जलविद्

(गतांक से आगे)

अम्बालाल—(माया से) नरोत्तम के सामने तो मैंने कहने को कह दिया, परन्तु मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि मधु उसे बहुत दुःख देती है। उस का व्यवहार असह्य है। किसी पुरुष की जूती रखना सो भी यदि म० गांधी सरीखे महापुरुष की ही तो माना जा सकता है परन्तु—

माया—तुम्हें भी अपने दामाद का पक्ष करना है ?

अम्बालाल—नहीं ! मुझे तो इस बात से कोई सरोकार नहीं है, परन्तु इस कलह से मुझे अपनी दौहित्र और पौत्र देखने की आशा त्याग करनी होगी। सारू आज्ञा का अपालक निकला, मधु ने विवाह किया परन्तु उस का यह हाल है। पुष्पा अभी बच्चा है।

(बाग की ओर से सरदार हीरासिंह का प्रवेश)

माया—(उसे देखकर घबराती है) अरे! यह भूत कहां से निकल आया ?

अम्बालाल—होगा कोई दर्शक ! कोई परदेशी जान पड़ता है।

हीरासिंह—(अम्बालाल के समीप आकर ज़ोर से) जनाब !

अम्बालाल—क्यों जी, क्या फ़रमान है ?

हीरासिंह—क्या वह वही मकान है जहां बेवक़ूफ़ मोहनदास कर्मचद गांधी रहता है और जहां कमबख़्त शायर टैगोर रहता था ?

अम्बालाल—(उसे पागल समझ कर) कोई सेवा फ़रमाइये ?

हीरासिंह—सेवा चाकरी यही कि तुम जाओ और उस कमबख़्त को इधर भेजो।

अम्बालाल—अब गांधी जी और बाबू जी यहां नहीं हैं।

हीरासिंह—नहीं हैं ?

अम्बालाल—जी नहीं।

हीरासिंह—(नहीं मानता, कौच पर बैठ जाता है) और सुनाओ, मैं उस के लिए यहां बैठा हूँ।

अम्बालाल—मुझे दुःख है कि आप को बहुत समय तक यहाँ ठहरना पड़ेगा।

हीरासिंह—कुछ परवाह नहीं, मुझे कुछ काम नहीं है। उन दोनों में से किसी एक को भी जब तक न देख लूं मैं यहां से तिल भर नहीं हटूंगा।

अम्बालाल—मगर उन्हें इस मकान को छोड़े कई साल गुजर गये।

हीरासिंह—(कूद कर) इस मकान से चले गये ? काहे को ? कहां हैं ?

अम्बालाल—(उसे सचमुच पागल समझ कर झूठमूठ बनाता है) मालूम नहीं, सुना है कि वे आजकल बम्बई में हैं।

हीरासिंह—बम्बई में है ? वहां से उसने मेरे युवा बेटे को देश निकाला दिला दिया।

अम्बालाल—आप का बेटा ?

हीरासिंह—जी हां ! वह विचारा बच्चा सत्तरह १७ वर्ष का कालिज में पढ़ता था। इस गांधी गधे ने जगाया सत्याग्रह और असहयोग / असहकार और टागौरने किया ख़िताब से इन्कार ! जिससे सब बच्चे कालिज छोड़ चलते बने। अभ्यास छोड़ कर, किताब फैंक कर दो दिन मेरे हरि ने चरखा चलाया। फिर फ़ौज में आग लगाने गया, सिपाहियों को निमकहरामी सिखाने लगा। मैं यहां हाज़िर न था। सबब यह कि मैं इस कमजात सरकार के झगड़े में घूमता था। सरकार ने उस बच्चे को फंसाया और पकड़ा था। बीस बीस वरस तक मैंने सरकारी नौकरी की है उस का मुझे यही बदला मिला कि मेरे हरि को फांसी के बदले देश निकाले की सजा हुई। मगर यह पाप किस का, उसी गधे का जिसने सत्याग्रह का पाठ पढ़ाया और सरकार का अपमान करना सिखाया।

अम्बालाल—सरदार जी ! मगर इस में क्या बुरा हुआ, आप के पुत्र को देश सेवा करने का मौका मिला सो तो बड़ी अच्छी बात हुई समझो।

हीरासिंह—अच्छी बात ! गुनहगार हुआ सो अच्छी बात। बदनाम हुआ वह अच्छी बात, देश निकाला हुआ वह अच्छी बात, और वह भी किस लिए ? फ़ौज को बिगाड़ने के लिए; सिपाहियों को नामर्द करने के लिए ! हथियार फैंक दो, हुक्म का अमल मत करो। कोर्ट मार्शल में वे वफादारी और नाफरमानी का कुछ और ज्यादा प्रमाण मांगते हो ? तमाम काम सामने रखा है। (मन्द होकर) यदि वह हथियार लेकर विदेशी बदमाशों के सामने होता तब भी मुझे कुछ दिलासा मिलता। उस में मारा जाता तो मैं कुछ समझता। मगर यह शैतानियत यह हैवानियत किस फायदे की ? आपको इस में आनन्द होता है मगर मेरे ज़िगर में तो आग भभक रही है।

माया—सरदार जी ! मैं आपके लिये आर्ज़ूमन्द हूं।

हीरासिंह—(पसीज कर) आज़ूमंद हो या हंसती हो ? हंसो, बेलाशक हंसो, मगर मैं भी कहता हूं कि अगर मैं एक बार पलभर के लिये भी तुम्हारे बाबूजी और गांधी जी को देख पाता तो उसे मलियामेट कर देता (टैगोर की मेज़ पर अपनी मोटी सोटी ज़ोर से फटकारता है)

माया—(भागकर मेज़ के पास जाती है) ओ!

हीरासिंह—माफ़ करो मेरा सिर घूमता है।

अम्बालाल—नहीं जी हम आपसे माफ़ी मांगते हैं।

हीरासिंह—(माया से) मुझ पर दया नहीं आती ?

माया—मुझे दिल से आपके साथ हमदर्दी है।

हीरासिंह (मानो मन में बोलता हो) क्या अमीर खासी औरत है ? और (अम्बालाल से) दोस्त ! तुम भी बड़े नेक आदमी हो।

अम्बालाल—यह मेरी बहिन माया है।

हीरासिंह—२४ वीं पल्टन का कप्टन हूं (दुःखी होकर) मेरा क्या हाल हुआ है। तीन तीन ज़माने की नेकी, वफ़ादारी, इमानदारी सब डूब गई !

अम्बालाल—(उसे सान्त्वना देने के लिये) ऐसा ही होरहा है। आयुपर्य्यन्त अपनी जान को खतरे में रखकर नेकनीयत कायम रखी जाय तो वह भी फक़्त एक ही चूक में, एक ही गल्ती में सब पानी हो जाती है।

हीरासिंह—आप क्या समझे सेठ जी, हम सिपाहियों को इस तरह का अपमान ज़हरी ज़ख्म के समान दुःख देता है ? और सो भी एक भोले भाले बच्चे के कसूर के लिए !

अम्बालाल—इस को कसूर मत समझो, यह तो आपके हरिसिंह ने बड़प्पन का काम किया है। देश सेवा के लिए जान देना और महात्मा भक्ति में कुरबानी करना इससे अधिक क्या सद्भाग्य हो सकता है ?

हीरासिंह—अजी, कहो तो सही आप ने खुद क्या कुरबानी की है ?

माया—मेरे भाई ने विदेशियों से अपना व्यापार सर्वथा बन्द कर दिया, अपनी परम्परागत मान मर्यादा को लात मार दी है।

हीरासिंह—(चारों ओर देखकर) और क्या सारी प्रोपर्टी भी छोड़ दी है ? (उत्तर न पाकर) माफ कीजिए, मैं आप का वख्त ज़ाया कर रहा हूं। आप को मेरी बातों से शोक होता है।

अम्बालाल—अजी नहीं जी............

हीरासिंह—तो क्या मेरे साथ हंसी करते हैं !

अम्बालाल—(घवड़ाकर) अजी, नहीं जी, आप की इस हक़ीकत से अज़ायबी होती है।

माया—खुदा के लिए आप कविराज और महात्मा पर से गुस्सा दूर कर दें। जो होना था सो हो गया, इस में इन को कोई कसूर नहीं है।

हीरासिंह—तो क्या मेरा कसूर है ?

माया—नहीं। मगर यह शोक दूर कीजिए, बेचैनी छोड़िये और अपने पुत्र की भांति देश सेवा में लग जाइये।

अम्बालाल—और महात्मा के बताए मार्ग का अनुसरण कीजिए।

हीरासिंह—(गुस्से के नूर में) नहीं, हरगिज़ नहीं। वह तो नामर्दों के लिए है,

कमज़ोर औरतों के लिए है। हमें यह बुज़दिली पसन्द नहीं। क्या हुकम मानो क्या तलवार पकड़ो। बंदूकों को चिराग़ लगा दो और कोई रास्ता नहीं है। अगर मुझे तुम्हारे महात्मा का पता मिल जाये तो मैं उसे भी थोड़ा सा पाठ पढ़ा दूँ।

माया—भैया! मुझको तो डर लगता है, कहीं यह जोश में कुछ गड़बड़ न मचा दे। (प्रस्थान)

अम्बालाल—नहीं! ऐसा क्या कभी हो सकता है। गांधी जी कौन और कहां हैं, इसका इसे कुछ भी ज्ञान नहीं है। (घड़ी देखकर) चलो अब व्याख्यान का समय होगया है वहां चलें।

(अम्बालालका प्रस्थान, दाईं ओर से पुष्पा का प्रवेश)

पुष्पा—क्यों फूफी जी अभी आप तैयार नहीं हुईं?

माया—पुसी! अभी आती हूं। (प्रस्थान)

पुष्पा—(स्वगत) फूफी जी कैसी लगती हैं (मधु को पुकारती है) मधु··· ओ मधु··· (दाईं ओर से मधु का प्रवेश) (खूब सज धज कर आती है)

मधुरी—क्यों डियर पुसी!

पुष्पा—धीरे बोलो, मुझे तुम्हें एक बड़ी हास्यास्पद बात कहनी है। ऐसी कि तुम्हें स्वप्न में भी उसका ख्याल न होगा। (चारों ओर देखती है)

मधुरी—ओ बाबा! भूमिका बांधने में ही क्यों विलम्ब करती हो? जो कहना चाहती हो झटपट कह डालो।

पुष्पा—मैंने अभी सारू भाई को देखा है।

मधुरी—क्या? भाई सारा को? कहां देखा और कब देखा?

पुष्पा—यहीं अभी आध घंटा हुआ है। बहुत बदल गया है, बड़ा सुन्दर लगता है ऐसा मानो······परन्तु तुम्हें मैं नहीं बताती मुझे जिस प्रकार आश्चर्यमय किया था उसी प्रकार तुम्हें भी अकस्मात् मिल कर आश्चर्यन्वित करेगा। सायं समय या कल प्रातःकाल फिर आयेगा, परन्तु अभी से किसी को मत कहना।

मधुरी—परन्तु वह पैरिस से यहां के लिए कुछ नया पुराना तो नहीं कर आया?

पुष्पा—नहीं बाबा! तुम भी "अतिस्नेहः पापशंकी" क्यों होने लगी हो? अरे वह तो खूब कमा कर आया है और मान प्राप्त करके आया है।

मधुरी—परन्तु यहां तक आकर भी मुझे क्यों न मिला?

पुष्पा—पिता जी के डर से। कहता था कि समस्त परिवार को आज न मिलने के कई कारण हैं। चलो अब चलें। नरोत्तम कहां हैं? वह हमारे साथ चलेंगे कि नहा?

मधुरी—आशा तो ऐसी है कि वे नहीं चलेंगे यदि वे चलेंगे तो फिर मैं नहीं जाऊंगी।

पुष्पा—अभीतक रूठी हुई हो। तुम्हारा गृहस्थजीवन भी खूब है। मुझ से तो यह नहीं सहा जाता।

मधुरी—ऐसे मनुष्य के साथ पाला पड़ गया वहां और क्या होगा। जीवन का केवल एक ही ध्येय, मुझ पर वाक्य बाण किस प्रकार फैंके जायं, मुझे नीचा

किस प्रकार दिखाया जाय। मैं जिस बात को चाहती हूं उसे धिक्कारते हैं। जो मुझे रुचता हो वह इन्हें बुरा लगता है।

पुष्पा—परन्तु बहिन ! क्या पांचो अगुलियां एक सी होती हैं ? भिन्न विचारों के होने से क्या नित्य का रूठना अच्छा है ? मेरा तो विश्वास है कि विचारे नरोत्तमदास को इससे बहुत दुःख है।

मधुरी—इसमें दोष किसका है ?

पुष्पा—मैं क्या जानूं मुझे तो यही दीखता है कि वह तुम्हें बहुत चाहते हैं।

मधुरी—(हंसती है) मुझे चाहते हैं ? पगली मत बन ! चाहते होते तो इस प्रकार बर्ताव करते ? उनका आत्मा क्षुद्र है और उसमें केवल सामान्य सुखको ही स्थान है। उन्हें आदर्शजीवन की अभिलाषा ही नहीं। काव्यकला का उनके लिए कोई मूल्य नहीं। उन्हें केवल दो वस्तुयें प्यारी हैं, एक रसायनशास्त्र दूसरी उनकी मुरली।

पुष्पा—हां, मधु उसी मधुर मुरली ने तुम्हें मुग्ध बनाया था।

मधुरी—वे दिन गये। परन्तु उस समय भी मैं तो इनकी मुरली में मोहन की तान सुनती थी। मेरा दृश्य देखकर तू संभल जाय तो बस है। पुसी डियर ! मैं तो यही चाहती हूँ कि तुम विवाह न करो।

पुष्पा—नहीं बहिन मुझे तुम्हारा यह आशीर्वाद नहीं चाहिए। मुझे फूफी की तरह कुमारी नहीं रहना है। यदि मैं विवाह न करूंगी तो वह इसी लिए कि मुझपर किसी को मोह न हो। (नरोत्तम को आता देख) परन्तु बहिन यदि तुम मेरा कथन करो तो मैं जाऊं, नरोत्तम आते हैं तुम उनके साथ…(नरोत्तम का प्रवेश पुष्पा का प्रस्थान)

मधुरी—(पुष्पा को पुकारती है) पुष्पा ! जल्दी करो जाने का समय हो गया है।

नरोत्तम—(नम्रता से) मधुरी !

मधुरी—(कर्कश स्वर से) मुझे बुलाया गया है क्या ?

नरोत्तम—हां।

मधुरी—क्या फरमाते हैं ?

नरोत्तम—एक…

मधुरी—किस लिये ?

नरोत्तम—कारण ? मैं तुम्हें चाहता हूँ, पूजा करता हूँ, मेरी मधु ! उसे…(मधुरी काष्ठपुतलीवत् खड़ी रहती है) मुझ से इस प्रकार नहीं रहा जाता। चलो हम पहिले की भांति स्नेहस्निग्ध हो कर रहें।

मधुरी—क्या तुम समझते हो कि अब गुजरा हुआ जमाना फिर से आ सकता है ?

नरोत्तम—क्यों नहीं ? यदि हम दोनों चाहें तो क्यों न आएगा ? याद करो प्रिये ! हम बम्बईमें किस प्रकार सुख से निवास करते थे। मुझे तो इसी घर का दोष दिखाई देता है कि जिसने हमारे जीवन में विष घोल दिया है। इसके वायुमंडलमें भूत भरे हैं, और जो कोई यहां रहते होंगे उन्हें लग जाते होंगे।

मधुरी—(व्यंग से) इन सब आम वाक्यों का भाव यही कि मैं पागल हूं।

नरोत्तम—नहीं नहीं केवल यही कि तुम मोहजाल में फंस गई हो। पागलपन

नहीं है, और इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। मेरे विचार में नव-विवाहितों को नये घर में ही रहना चाहिये जिससे पुराने घर का किसी प्रकार का रोग न होजाय।

मधुरी—जरा स्पष्ट तौर से बात कीजिये। कहिये, देखूं आप को मुझ में कौन सा दोष दिखाई देता है? काव्य रचना का शौक, साहित्य प्रेमादि ही क्या आप को मेरे दोष प्रतीत होते हैं? मैं आदर्श जीवन चाहती हूँ क्या यही मेरा दोष है? या तुम्हें विज्ञान पर प्रीति है उसमें कोई दोष निकालती हूँ?

नरोत्तम—तुम काव्य-रचना और साहित्य-प्रेम इन दोनों में ही निमग्न होतीं तो मुझे किंचित क्लेश न होता परन्तु काव्य और कवि ये दोनों ही एक नहीं होते।

मधुरी—अन्त में रवि बाबू पर आए।

नरोत्तम—हां लो, तुम कहती हो तो कहता हूँ कि रवि बाबू।

मधुरी—परन्तु उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ किया है जो……

नरोत्तम—उन्होंने मेरे सुखी गृहस्थ जीवन में आग लगादी है। तुमने इस घर को मन्दिर बनाया और उसमें रवि बाबू को देवता के रूप में बिठाया है स्वयं उसकी पुजारिन बनी हो। पहिले तो तुम गुर्जर कवियों की भी थोड़ी बहुत क़दर किया करती थीं परन्तु अब जब से यहां आये हैं तब से तो मानों संसार में केवल एक ही व्यक्ति हो ऐसा ही समझने लग गई हो।

मधुरी—एक बार जिसने रवि बाबू का रसास्वादन किया हो………

नरोत्तम—(प्रेमसे) इतना मीठा है?

मधुरी—और अच्छा यदि मान लिया जाय कि यहां आकर मुझ में पक्षपात का भाव आ गया है तो उस से क्या हुआ? यहां वे रहते थे, और उनके यहां रहने का कोई चिन्ह देखती हूँ तो उन पर अधिक प्रीति है इस से क्या हुआ? (अपूर्ण)

स्त्रीजाति के कर्त्तव्य

लेखिका—कुमारी शकुन्तला देवी



यह भारत का अहो भाग्य है कि लोगों का ध्यान कन्याओं की शिक्षा की ओर हो रहा है। और कन्यायें पूर्ण शिक्षा प्राप्त करके आगे के लिये और दूसरी कन्याओं को उचित शिक्षा देने का प्रयत्न करती हैं। ठीक इसी प्रकार होते होते कुछ वर्षों तक जब हमारे देश की बहिनें अथवा मातायें बुद्धिमती होकर दूसरे घरों की कन्याओं को अथवा माताओं को सुधारने का प्रयत्न करेंगी, तो अल्प समय में ही भारत के कोने कोने में आनन्द मंगल का नाद होता हुआ सुनाई पड़ जायगा। क्योंकि अब तक हमारी देश-मातायें अपने ही स्त्रीत्व

खोना है। और उनको पर्दे में बन्द कर रखते हैं, जिससे बिचारियों को स्वप्न में भी ऐसा ख्याल न होता होगा कि बाहर क्या हो रहा है? पहिले तो पिता के घर में ही कैद रहीं फिर सुसराल में जाकर तो काला पानी ही हो गया। दिन रात सास नन्दों के ताने सहते ही जीवन व्यतीत होता है। और अबला जानकर अत्याचारों की भरमार की जाती है। इस प्रकार घर में नित्यप्रति अशान्ति को देखकर लोग कुछ २ कन्याओं को विपत्ति से छुड़ाने लगे हैं। उन्होंने सोचा कि अबलाओं पर अत्याचार करना मानों अपने ही ऊपर अत्याचार करना है क्योंकि माताओं के दिन रात--शोकातुर होने से उनकी सन्तान भी निर्बल और आलसी होती है, इससे पुरुष भी अबल बनने लगे। ऐसे ऐसे अत्याचारों को देखकर लोगों ने कन्याओं को पढ़ाना आरम्भ किया। क्योंकि जब माताएं शिक्षिता होंगी तभी अपनी सन्तान को उचित शिक्षा देकर भविष्य में भीम जैसे बाल ब्रह्मचारी और अभिमन्यु जैसे शूरवीर पुत्र बनाने की आशा रख सकतीं हैं अस्तु!

अब शिक्षा की ओर ध्यान आते ही प्रश्न किया जा सकता है कि किस भांति की होनी चाहिये? आज कल शिक्षा आरम्भ तो हो ही गयी है परन्तु उचित और लाभदायक नहीं। लड़कियों को शिक्षा बिलकुल लड़कों की भांति दी जाती है जिससे वे गृह प्रबन्ध के विषय में कुछ भी नहीं जानतीं। ईश्वर ने सृष्टि के आदि में ही स्त्री और पुरुषके काम विभक्त कर दिये हैं इससे कोई अपरिचित ही नहीं—अर्थात् गृह सम्बन्धी धन्धे लड़कियों को सौंपे हैं और बाहर से धन कमाकर कुटम्ब का भरण पोषण करने का काम पुरुष का रक्खा है। परन्तु इस से मेरा तात्पर्य केवल यही नहीं है कि लड़कियों की शिक्षा केवल गृह के प्रबंध पर ही होनी चाहिये क्योंकि अब कुछ २ ऐसा जमाना होता जारहा है कि बहुतसी कन्याएं घरों के धन्धों ही में लगती हैं और बहुत सी अपने जीवन को आदर्श बनाने के लिये आजीवन अविवाहित रहती हैं जिनके उदाहरण सामने ही हर जगह विद्यमान हैं! परन्तु अब मैं उन स्त्रियों के कुछ कर्तव्य लिखती हूं जो गृहस्थी हैं।

धार्मिक जीवन बनाने की क्रियात्मक रूप से शिक्षा देने का पूर्ण उद्योग होने के पश्चात् सब से पहिले कन्याओं को बचपन से ही पाकशाला का काम सिखाना चाहिये। जो कन्याएं केवल पढ़ना ही जानतीं हैं उनके लिये यह जरूरी नहीं कि वह सारे ही काम अच्छी तरह जानतीं हों किन्तु जहां तक देखा जाता है अनपढ़ों की अपेक्षा उनको इस काम के लिये विशेष अभ्यास करना पड़ता है। फिर भी पाक चातुरी और स्वच्छता नहीं आती क्योंकि इसमें भी बहुत विद्वत्ता की बात है। प्रत्येक का काम नहीं कि बढ़िया से बढ़िया खाना तैयार कर सके, इस में भी अभ्यास की आवश्यकता होती है। इस लिये कन्यापाठशालाओं में पाक विधि सबसे बढ़कर सिखाना चाहिये। यद्यपि आजकल थोड़ी नौकरी वाले भी नौकर रखने लग गये हैं पर वैसा काम नौकर नहीं कर सकते जैसा घर को स्त्रियां कर सकतीं हैं तथा नौकर उतने उत्साह से भी नहीं करते।

दूसरे रोगी सेवा का काम भी कन्याओं का ही विशेष काय है। क्योंकि घर में यदि कोई बीमार होजाय तो अधिकतर उसकी सेवा का भार स्त्रियों पर ही पड़ता है। पुरुष तो बाहर अपने काम पर चले जाते हैं और स्त्रियां ही सारा दिन घर की खबर रखतीं हैं, और रोगी की सेवा भी करतीं हैं। आजकल रोगी सेवा की शिक्षा का अभाव है

को न समझ सकी थीं और यह न जानतीं थीं कि कन्याओं को कैसी शिक्षा होनी चाहिए और लड़कों को कैसी ? तभी तो आज तक इन हानियों को दूर न कर सकीं थीं। परन्तु प्रति दिन घरों में होने वाले लड़ाई झगड़ों से सज्जन लोग कभी २ सोचा भी करते थे कि ये सांसारिक धंधे कभी शांतिपूर्वक भी होंगे या ऐसे ही सदा प्रत्येक गृहस्थी के घर में अशान्ति और अविद्यान्धकार ही छाया रहेगा ? इस समस्या की पूर्ति के लिये सैकड़ों वर्ष व्यतीत होते चले गये, लोग "लकीर के फ़कीर" बने हुए यथा तथा अपने सर्व-विपत्ति-सम्पन्न जीवन को व्यतीत करते ही चले गये। रात से दिन हुआ और दिन से रात होते ही होते इसी प्रकार युग ही व्यतीत हो गये। फिर कुछ २ समय परिवर्तन होता गया। लोग अपनी अज्ञानता की ओर कुछ २ ध्यान देने लगे परन्तु अभी भी वह समय है कि लोग सोचते अधिक हैं परंतु करने के लिये अभी भी दूर हैं। इस अन्धेर नगरी की स्त्रियों का वही हाल है जैसा कि पाश्चात्य ऐतिहासिक सृष्टि के आदि का बताते हैं कि "पहिले मनुष्य अब के मनुष्यों के समान न थे। उनकी सूरत और ही प्रकार की थी। वे वनों में वृक्षों पर रहा करते थे जैसे कि वर्तमान समय में भी अफ्रीकादि की तरफ देखे जाते हैं, और हिन्दुस्तान में भी कुछ लोग पाये जाते हैं, जिनको अपने पराये का कुछ भी ज्ञान न था वे घास फूस और जीवादि खाया करते थे। इत्यादि सारी ही बातें वर्तमान सभ्यता से विपरीत थीं। ज्यों ज्यों शनैः शनैः ज्ञान उत्पन्न होता गया इनकी चाल, ढ़ाल, रहन, सहन, शक्ल सूरत में भी परिवर्तन होता गया और उस घटना के पीछे यह समय आगया कि रेल, तार, डाकखाने, हस्पतालादि बनाकर लोगों के संकट निवारण किये जाने लगे हैं। और, इससे भी अधिक उद्योग करने का प्रयत्न कर रहे हैं।" ठीक ऐसी ही बातें स्त्री-सृष्टि की भी समझो, कि कुछ समय पहिले लोग घर में कन्या का उत्पन्न हो जाना अपने कुल को कलंक लग जाना समझते थे। और राजपूताने में तो ऐसी चालें थीं कि जिसके घर कन्या उत्पन्न हो जाती थी वह उसे बाज़ार में ले जाता था और हाथ में तलवार भी रखता था। वहां जाकर कहता था कि 'जिसे इस कन्या को बचाना है बचाले नहीं तो अभी इसे मार डालता हूं।" यदि कुछ समय के अन्दर उसे कोई ले लेता था तब तो उसके प्राण बच जाते थे नहीं तो उसी समय सबके सामने उसे काट डालते थे। ऐसे और भी उदाहरण टाड के 'राजस्थान' से प्रमाणित किये गये हैं। यह बातें झूठ नहीं हैं; किन्तु वास्तविक हुआ करती थीं। उस समय यदि कोई कन्या को बचाता था तो भोगविलास की ही इच्छासे बचा लेता था। फिर होते २ मारने की चाल दूर होती गई, पर पर्दे में छुपा कर रखने लगे। फिर कुछ वर्ष पढ़ाने के विरोधी रहे। और अब वह जमाना आता जा रहा है कि लोग इस बात पर विचार करने लगे हैं, कि इसमें हानि है या लाभ ? अभी तक वह समय नहीं आया है कि कन्यायें अपनी पूर्ण सभ्यता का नेतृत्व रंग भूमि में प्रगट कर सकें ! परन्तु जब पूर्वोक्त दुर्घटनायें दूर हो गईं तो आगे के लिये भी आशा की जा सकती है। जो अब कमी है वह भविष्य में पूरी होगी। परन्तु अभी मनुष्यों के हृदय में तीन हिस्सों से भी अधिक कुटिलता है अभी तक कन्याएं अपने बलसे एक हिस्से को भी पूर्ण दृढ़ नहीं कर सकीं हैं। अभी भी लोगों के ख्याल ऐसे हैं कि लड़कियों को पढ़ाना अपनी प्रतिष्ठा को

खोना है। और उनको पर्दे में बन्द कर रखते हैं, जिससे बिचारियों को स्वप्न में भी ऐसा ख्याल न होता होगा कि बाहर क्या हो रहा है? पहिले तो पिता के घर में ही कैद रहीं फिर सुसराल में जाकर तो काला पानी ही हो गया। दिन रात सास नन्दों के ताने सहते ही जीवन व्यतीत होता है। और अबला जानकर अत्याचारों की भरमार की जाती है। इस प्रकार घर में नित्यप्रति अशान्ति को देखकर लोग कुछ २ कन्याओं को विपत्ति से छुड़ाने लगे हैं। उन्होंने सोचा कि अबलाओं पर अत्याचार करना मानों अपने ही ऊपर अत्याचार करना है क्योंकि माताओं के दिन रात--शोकातुर होने से उनकी सन्तान भी निर्बल और आलसी होती है, इससे पुरुष भी अबल बनने लगे। ऐसे ऐसे अत्याचारों को देखकर लोगों ने कन्याओं को पढ़ाना आरम्भ किया। क्योंकि जब माताएं शिक्षिता होंगी तभी अपनी सन्तान को उचित शिक्षा देकर भविष्य में भीम जैसे बाल ब्रह्मचारी और अभिमन्यु जैसे शूरवीर पुत्र बनाने की आशा रख सकतीं हैं अस्तु!

अब शिक्षा की ओर ध्यान आते ही प्रश्न किया जा सकता है कि किस भांति की होनी चाहिये? आज कल शिक्षा आरम्भ तो हो ही गयी है परन्तु उचित और लाभदायक नहीं। लड़कियों को शिक्षा बिलकुल लड़कों की भांति दी जाती है जिससे वे गृह प्रबन्ध के विषय में कुछ भी नहीं जानतीं। ईश्वर ने सृष्टि के आदि में ही स्त्री और पुरुषके काम विभक्त कर दिये हैं इससे कोई अपरिचित ही नहीं—अर्थात् गृह सम्बन्धी धन्धे लड़कियों को सौंपे हैं और बाहर से धन कमाकर कुटम्ब का भरण पोषण करने का काम पुरुष का रक्खा है। परन्तु इस से मेरा तात्पर्य केवल यही नहीं है कि लड़कियों की शिक्षा केवल गृह के प्रबंध पर ही होनी चाहिये क्योंकि अब कुछ २ ऐसा जमाना होता जारहा है कि बहुतसी कन्याएं घरों के धन्धों ही में लगती हैं और बहुत सी अपने जीवन को आदर्श बनाने के लिये आजीवन अविवाहित रहती हैं जिनके उदाहरण सामने ही हर जगह विद्यमान हैं! परन्तु अब मैं उन स्त्रियों के कुछ कर्तव्य लिखती हूं जो गृहस्थी हैं।

धार्मिक जीवन बनाने की क्रियात्मक रूप से शिक्षा देने का पूर्ण उद्योग होने के पश्चात् सब से पहिले कन्याओं को बचपन से ही पाकशाला का काम सिखाना चाहिये। जो कन्याएं केवल पढ़ना ही जानतीं हैं उनके लिये यह जरूरी नहीं कि वह सारे ही काम अच्छी तरह जानतीं हों किन्तु जहां तक देखा जाता है अनपढ़ों की अपेक्षा उनको इस काम के लिये विशेष अभ्यास करना पड़ता है। फिर भी पाक चातुरी और स्वच्छता नहीं आती क्योंकि इसमें भी बहुत विद्वत्ता की बात है। प्रत्येक का काम नहीं कि बढ़िया से बढ़िया खाना तैयार कर सके, इस में भी अभ्यास की आवश्यकता होती है। इस लिये कन्यापाठशालाओं में पाक विधि सबसे बढ़कर सिखाना चाहिये। यद्यपि आजकल थोड़ी नौकरी वाले भी नौकर रखने लग गये हैं पर वैसा काम नौकर नहीं कर सकते जैसा घर की स्त्रियां कर सकतीं हैं तथा नौकर उतने उत्साह से भी नहीं करते।

दूसरे रोगी सेवा का काम भी कन्याओं का ही विशेष काय है। क्योंकि घर में यदि कोई बीमार होजाय तो अधिकतर उसकी सेवा का भार स्त्रियों पर ही पड़ता है। पुरुष तो बाहर अपने काम पर चले जाते हैं और स्त्रियां ही सारा दिन घर की खबर रखतीं हैं, और रोगी की सेवा भी करतीं हैं। आजकल रोगी सेवा की शिक्षा का अभाव होने

के कारण स्त्रियां अपनी अशिक्षिता से तनिक सा रोग होने पर हाय हाय करके तथा उल्टी पुल्टी दवा करके उसे बढ़ा देती हैं एक तो बीमार स्वयं दुखी होता है दूसरे स्त्री के हाहाकार से दुगना बीमार पड़ जाता है घर में उल्टी आफत आजाती है। इस लिये छोटी अवस्था से लेकर ही छोटी छोटी बातें सिखानी आरम्भ करनी चाहियें जिससे भविष्य में बड़ी २ बातों को भी सुगमता से सहन कर सकें और माता बनकर अपनी सन्तान तथा परिवार वालों का दुःख निवारण कर सकें।

तीसरी बात शिशु पालन की है जो कि पाठशालाओं में सिखानी बहुत ही अत्यावश्यक है क्योंकि कन्याएं भविष्य में माता बनती हैं तो उनको पता ही नहीं होता कि शिशु की पालना किस प्रकार करनी चाहिये। आरम्भ से लेकर शिशुरक्षा कैसे होती है? यह वे बिलकुल जानती ही नहीं। आजकल माताओं की मूर्खता से हजारों बच्चे प्रति वर्ष असमय ही काल के गाल में चले जाते हैं। और जो दुर्भाग्य से बच भी जाते हैं तो उनका उचित पालन नहीं होता उनके स्वभाव भी बुरे पड़ जाते हैं और रात दिन गलियों में फिरते रहने से गालियें देना सीख जाते हैं। माता पिता का कहना नहीं मानते जिस से उनको भविष्य में पछताना पड़ता है, माता पिता स्वयं अपने भाग्य को ठोकते हैं। पर वे अपनी अज्ञता के वश यह नहीं जानते कि हमारे ही मूर्ख होने से सन्तान मूर्ख हो जाती है। जिस घर के स्त्री और पुरुष दोनों ही शिक्षित हैं, वहां के बालक भी शिक्षित और गुणी होते हैं। उनका घर स्वर्ग से भी बढ़ कर आनन्द दायक हो जाता है।

चौथी शिक्षा शिल्पकारी है जो कई प्रकार की होती है। इसके सीखे बिना स्त्रियां अपने स्त्रीत्व से भी हीन समझी जाती हैं। यह एक ऐसी विद्या है जिससे परिवार में बड़ा सुख होता है, जैसा चाहे घरमें कपड़ा तैयार हो सकता है और घर की सजावट के लिये भी जैसी चाहे वैसी वस्तुयें बना सकती हैं। और गरीब घरों में भी जहां दर्जी को पैसा देने की सामर्थ नहीं वे अपने घरों का काम स्वयं कर सकती हैं तथा दूसरों के भी कपड़े सींकर गुज़ारे लायक धन कमा सकती हैं।

पांचवे गानविद्या भी अत्यावश्यक है जब मनुष्य का चित्त गृहस्थ के धन्धों से दुःखित होजाता है तो एकान्त में आनन्द पाने के लिये ईश्वर का गान करता है और स्त्रियां परस्पर गा बजाकर अपने हृदय को आनन्दित करती हैं। जिससे हृदय में दुगना हुलास उत्पन्न हो जाता है।

इसलिये जब कोई कन्या पाठशाला या कन्या गुरुकुल खोलें तो पहिले स्त्री शिक्षा के उच्च आदर्श को अपना आदर्श समझ कर आरम्भ करें। और उचित शिक्षा का प्रबन्ध भी करे ताकि कन्यायें उत्तम शिक्षा युक्त हो कर गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाने में समर्थ हों। इस प्रकार जब हमारी देश बहिनें उचित शिक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को उचित बनाकर भारत का उद्धार करने का प्रयत्न करने लगेंगी तो अल्प समय में ही भारत के कोने २ में आनन्द के गीत गाते हुए सुनाई पड़ेंगे और हृदय रूपी मन्दिर में ज्ञान रूपी दीपक जगमगाता हुआ दृष्टिगोचर हो जायगा। पूर्व दिशा से ज्ञान रूपी चन्द्रमा उदय हो जायगा, प्रतिभा की प्रभा चारों ओर फैल जायगी। हृदयोदधि में स्वतन्त्रता लहरें मारने लगेगी और अनन्त रत्नों का ढेर प्राप्त हो जायगा।

वैज्ञानिक-संसार

तारकोल से हानि।

हमारे पाठक कोलटार या तारकोल के नाम से अपरिचित न होंगे। फिनाईल, कारबोलिक एसिड, नाना प्रकार के मोहनी-मोहन रंग, सैकरीन (जो कि साधारण खांड से कई सौ गुना अधिक मीठी वस्तु है) इत्यादि पदार्थ इसी तारकोल में से निकलते हैं। रेल के स्टेशनों पर शौचस्थानों में प्रायः चारों ओर दीवारों का नीचे का भाग इस से पोता रहता है। इस का कारण यह है कि तारकोल में कितने ही ऐसे घातक पदार्थ रहते हैं जो कि इन गन्दे स्थानों में उत्पन्न होने वाले रोग के कृमियों का नाश कर देते हैं। यही कारण है कि फिनाईल, कोलतार से बनाया हुआ साबुन और अन्य भी कई रूपों में कोलतार हमारे घरों में सूक्ष्म रोगाणुओं के मारने के काम में आता है। अब कोलतार का एक और गुण ज्ञात हुआ है जो कि हमें इस के प्रयोग में सावधान होने की सूचना देता है।

एक बड़े भयानक प्रकार का, भगन्दर से कुछ २ मिलता हुआ फोड़ा होता है जिस को अंग्रेजी में कैन्सर Cancer कहते हैं। आज कल योरोप में इसके इलाज के सम्बन्ध में बहुत कुछ अनुसन्धान हो रहा है। प्रायः देखा गया है कि उन मज़दूरों को जो तारकोल सम्बन्धी कारखानों में काम करते हैं यह फोड़ा अधिक होता है। पता लगा है कि तारकोल जिस स्थान पर शरीर से छू जाता है वहां खुजली होने लगती है और पीछे से वह कैन्सर का रूप धारण कर लेता है। अभी तक यह पता नहीं चला कि तारकोल में ऐसा कौनसा रासायनिक द्रव्य है जिसका यह परिणाम होता है, परन्तु इससे हमें यह शिक्षा अवश्य मिलती है कि इस तारकोल और तारकोल से सम्बन्ध रखने वाले अन्य रोगजीवनाणु घातक पदार्थों से सावधान रहना चाहिये। कोलतार साबुन तो कदापि न वर्तने चाहियें।

(Discovery)

कीट पतंग

(१) भिड़

कहावत है कि एक चीनी महात्मा ने पहिले पहिल कागज़ बनाया और उसने यह विद्या भिड़ों से सीखी थी। उसके देखते २ कुछ भिड़ों ने अपने बलिष्ट जबड़ों से वृक्षों से नन्हे नन्हे टुकड़े काटे और उनको मुंह में चबा कर कड़ी बारीक लेई सी बना ली। फिर इस लेई की कितनी ही महीन २ तहें बना कर अपना छत्ता बना लिया जो कि बड़े कड़े और लचकदार कागज़ की भांति था।

आज कल संसार में जितना कागज़ काम आता है उसका बहुत बड़ा भाग वृक्षों की लेई से ही बनाया जाता है। बारीक कागज़ कपड़े, चीथड़े और सन से बनाया जाता है।

(२) चींटी

बड़े प्राचीन समय से सिंह को बल का प्रतिनिधि माना गया है, बलवान की उपमा सिंह से दी जाती है, परन्तु चींटी से तुलना करने पर पता लगता है कि इस उपमा में कितना सार है। फिर चींटी के कार्य केवल शारीरिक बल तक ही परिमित नहीं रहते वरन् उनमें बुद्धिमत्ता और चतुरता की मात्रा भी बढ़ चढ़ कर रहती है।

यह देखा गया है कि एक छोटी सी खेत की चींटी अपने जबड़ों से अपने से तीन सहस्र गुणी भारी चीज़ को बड़ी सुगमता से उठा लेती है। यदि मनुष्य में भी इतनी ही शक्ति हो तो वह ७५०० मन बोझ उठाले, अथवा दूसरे शब्दों में इतनी शक्ति होने पर कोई भी पुरुष अपनी पीठ पर खूब बड़े २ रेल के दो इंजनों को लादकर सुगमता से जहां चाहे लेजा सकता है।

क्रिया-भवन में तजुरूबा करके देखा गया है कि एक चींटी अपने से १३०० गुना भारी एक चांदी की गाड़ी को सुगमता से खींच कर अपने बिल की ओर ले गयी। जब कभी वह थक जाती थी और गाड़ी सुगमता से नहीं खिचती थी तो वह पहिले एक तरफ से ढ़केलती थी और फिर दूसरी तरफ से।

चींटी में इतना बल कहां से आता है? यह कौन कह सकता है।

गृह—निर्माण में भी चींटियां कमाल करती हैं। वह बीस बीस फुट ऊंचे मकान बना डालती हैं। मिश्र की सब से ऊंची मीनार—जो कि सहस्रों वर्षों से संसार के आश्चर्यों में से एक मानी जाती है—४८२ फुट ऊंची है। यदि इस को बनाने वाले पुरुषों की ऊंचाई ६ फुट मान ली जाय तो इस का यह अभिप्राय हुआ कि उन्होंने अपने से ८० गुणा अधिक ऊंचे गृह निर्माण किये।

यदि चींटी की ऊंचाई चौथाई इञ्च मानी जाय तो साधारण गणना से पता लग जायगा कि यह छोटे २ जीव अपनी ऊंचाई से ९६० गुणा अधिक ऊंचे भवन निर्माण कर लेते हैं और बिना किसी मशीन की सहायता के अथवा मिश्र वालों से १२ गुणा अधिक बलवान हैं।

यह बात तो बहुतों को पता होगी कि चींटियां ऐसे जीवों को पालती हैं जिनका यह "दूध दोहती हैं। एक प्रकार की चींटी होती हैं जो कि अपने लिए कुकुरमुत्ता (पजाबी खुम्बें) बोती है।

इन छोटे २ जीवों मे चींटी को अपने बनाव शृंगार का भी बड़ा ध्यान रहता है। प्रत्येक समय यह अपने को झाड़ती पोंछती और बुरुश फेरती रहती है।

मंगल निवासियों से वार्त्तालाप

अगस्त १९२४ में मंगल सितारा पृथिवी के निकट तर होने वाला था। गत १२० वर्ष में यह इतना निकट कभी नहीं आया। कई वैज्ञानिकों का विचार है कि इस समय यह जानने का भरसक प्रयत्न किया जाय कि मंगल में प्राणी रहते हैं कि नहीं?

वैज्ञानिकों के अतिरिक्त बहुत कम लोग इस तजुरुबे की महत्ता का अनुमान कर सक्ते हैं। यदि यह सफल हुआ तो हमारी सभ्यता कई सहस्र वर्षों की छलांग मारकर आगे बढ़ जायगी। दूसरे शब्दों में इस का अर्थ यह है कि क्योंकि मंगल ग्रह हमारी पृथिवी से कई हज़ार वर्ष बड़ा है अतः वहां के निवासी विद्या, ज्ञान और विज्ञान में हमारे से कहीं अधिक जानते हैं। यदि हम उन से एक बार वार्त्तालाप करने का मार्ग खोज निकालें तो वह हमें अपने विद्या और खोजों का ज्ञान सहज में ही दे सकेंगे।

यह तजुरुबा अगस्त मास में रोल्पस पर्वत राशि की जुफगराओ नाम की १४००० फुट ऊंची चोटी से किया जाने वाला था, इस समय मंगल हम से ३ $\frac{1}{2}$ क्रोड मील दूर होगा। साधारणतया यह हम से २५ क्रोड मील दूर रहता है। हमारे पाठकों ने बीवार-

गीर लैम्प देखे होंगे । लैम्प के पीछे खूब चमकदार गोलाकार कटोरी सी रहती है। इससे रोशनी खूब तेज़ हो जाती है क्योंकि इस पर किरणें पड़कर, लौट कर बहुत दूर २ तक प्रकाश फैला देती हैं। इसी नियम का सहारा इस तजरुबे में लिया जाने वाला था। प्रकाश संकेत (Light Signals)—जो कि पर्वत की हिमाछादित चोटियों पर से अपने प्रकाश को लौटाकर बड़ी दूर तक गिरा सकेंगे—द्वारा ही मंगल निवासियों से बात चीत की जाने वाली थी। वह प्रकाश संकेत एक बड़े भारी लैन्स द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले थे।

विचार था कि ज्योतिषी गण बड़े शक्ति शाली दुर्वीक्षण यन्त्रों द्वारा मंगल में किसी प्रकार की स्फूर्ती के चिन्हों को देखेंगे जिनसे यह पता लग सके कि मंगल निवासियों तक हमारे प्रकाश संकेत पहुँच गये हैं। यह संकेत कितनी ही वार दुहराये जायगें। और भी कितने यन्त्र काम में लाये जायेगें। एक ऐसा यन्त्र भी होगा जो करोड़ों मीलों तक "बे तार" समाचार पहुँचा सके।

एक प्रश्न हो सकता है कि यदि मंगल में जीव रहते हैं और वह हम से कहीं अधिक ज्ञानवान हैं तो उन्होंने हमारे साथ बात चीत करने का अब तक कोई यत्न क्यों नहीं किया? यह सम्भव है कि वह ऐसा करते रहे हों परन्तु हमने अभी विज्ञान में इतनी उन्नति नहीं की कि उनके संकेतों को समझ सकें और वह हार कर बैठ गये हों।

सम्भव है कि मंगल निवासी हमारे संबन्ध में इतना ज्ञान रखते हैं कि हम उसका अनुमान भी नहीं कर सक्ते। यदि वह हमारे से लाखों और करोड़ों वर्ष का अधिक संचितज्ञान रखते हैं तो यह भी संभव है कि उन्होंने ऐसे दुर्वीक्षण यन्त्र बना डाले हों जिनके द्वारा वह हमें अपने बाज़ारों में चलते फिरते देख सके हों; हमारे जहाजों और रेल गाड़ियों को इधर उधर घूमते फिरते देखते हों और हमारी पृथिवी के आकार को भी हमारी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हों।

तजुरुबे की सफलता की एक आशा इस बात से भी होती है कि कुछ समय से आकाश में से विचित्र प्रकाश की किरणें आरहीं हैं जिन के विषयमें जर्मन वैज्ञानिकों का अनुमान है कि किंचित यह मंगल निवासियों द्वारा भेजे हुये संदेश ही हों। कुछ वर्ष हुये मार्कोनी ने जिसने कि बे तार समाचार का अविष्कार किया था-यह कह कर वैज्ञानिक संसार को चकित कर दिया था कि उसने ऐसी प्रकाश की किरणों का पता पाया है जोकि १५०,००० गज़ गहरी हैं। इस पृथिवी पर अब तक कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना जिसके द्वारा इस माप का एक बहुत ही छोटे भाग की गहराई वाली किरणें पैदा की जासकें।

——o——

कुसुमोद्यान

इस्लाम धर्म में स्त्रियों का स्थान

महाशय पी० जी० कनेकर 'इन्डियन सोशल रिफार्मर' को एक पत्र में लिखते हैं कि कुछ वर्ष हुये मैंने नीचे लिखे हुये वाक्य पढ़ेः—

"इस विवाह (अर्थात मुहम्मद साहब ने अपने गोद लिये हुये लड़के ज़ैद की बीवी ज़ैनाब के साथ जो विवाह किया था) के अवसर पर कुरान में एक और आयत रची गई जिसके अनुसार हज़रत मुहम्मद की सब बीवियों को दुनियां की निगाह से छुपना पड़ा और उसीके अनुसार मुस्लिम देवियों के वस्त्रों और वेश भूषा पर एक रुकावट पड़ गई। इसलिये मुहम्मद साहबकी ईर्षाके कारण (जो कि उनके मरने के बाद तकभी प्रभाव डाल सकी क्योंकि उन्होंने अपनी मृत्यु के पश्चात अपनी बीवियों के पुनर्विवाह का भी निषेध किया) स्त्री जाति हमेशः के वास्ते सब सार्वजनिक जीवनके कार्यों से प्रथक कर दीगई और घरों की चार दीवारी के भीतर भी उन्हें स्त्रियों और निकटतम सम्बन्धियों के साथ ही रहने सहने, वार्त्तालाप करने की अनुज्ञा रहगई।

इस प्रकार अरब देश की मुसलमान देवियां तो दासत्व को प्राप्त होगईं लेकिन पहिले की ग़ैर मुस्लिम अरबी देवियां अपने पति की सहधर्मिणी और सहचारी बनी रहीं। यह नई मुस्लिम देवियाँ अपने पति के केवल घरेलू आनन्दों में भाग ले सकती थीं लेकिन उससे पहिले इनकी दशा इतनी हीन न थी। वह सामाजिक और सार्वजनिक जीवन क्षेत्रों में भाग लेती हुई आनन्द मंगल का प्रचार करतीं थीं। प्राचीन बद्दूओं में वह आदर की पात्र और पूज्य मानी जातीं थीं किन्तु इस्लाम ने उन्हें करुणा की पात्र और अविश्वास पात्र बना डाला। वह अपने पति की 'हरम' अर्थात पवित्र वस्तु तो कहलाईं परन्तु इससे उन्होंने यह परिणाम निकाला कि स्त्रियां ऐसी पवित्र वस्तु हैं जिसे उनकी निजी आचारकी पवित्रता गिरावट से नहीं बचा सक्ती वरन् उनकी रक्षा के लिये परदों, बन्द दरवाजों और नपुंसक रक्षकों की आवश्यकता है।"

(डाक्टर वील की जर्मन की पुस्तक 'मुहम्मद और कुरान' से अनुवादित)

यदि डाक्टर वील के उपरोक्त वाक्य ठीक हों तो यह मानना ही पड़ेगा कि इस्लाम ने समाज सुधार के चाहे कुछ और कार्य्य किये हों परन्तु स्त्रियों की स्वतन्त्रता उनमें से एक नहीं थी। इस सुधार में तो इस्लाम ने पीछे की ओर ही पैर बढ़ाया। क्योंकि अरब में इस्लाम धर्म के प्रचार के पूर्व स्त्रियों में बहुत उत्तम स्वतन्त्रता थी। महाशयजी, आप अपने 'रिफार्मर' के उसी अंक के शीर्षक 'साप्ताहिक समाचार' के अंतर्गत "कमाल पाशा के ख़िलाफ़त पर विचार" नामक वाक्य समूह प्रकाशित करते हैं जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि इस्लाम के जो कट्टर पक्षपाती हैं उनकी सृष्टि में इस्लाम स्त्रियों की स्वाधीनता के पक्ष में नहीं है। क्योंकि कमालपाशा का ही कथन है कि "जब हम लोगों ने यह निश्चय कर लिया कि स्त्रियों को बुर्का नहीं पहिनना चाहिये तो हमें स्वयं खलीफ़ा साहिब के ही विरोध का सामना करना पड़ा।"

क्या ईसाई धर्म ने स्त्रियों को ऊपर उठाया ?

महाशय कनेकर आगे चलकर उसी पत्र में लिखते हैं कि :—

"पश्चिम में स्त्रियों की स्वाधीनता ईसाई धर्म के कारण नहीं है वरन् स्वच्छन्द विचार ही इसका मूल है। ईसाई धर्म जूडो धर्म से निकला है। "बहुपत्नी की प्रथा यहूदियों में ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ही उठ चुकी थी परन्तु ईसाई धर्म के प्रारम्भिक दिनों में 'पुराने अहदनामे' Old Testament का इतना प्रभाव था कि कई बड़े २ पादरी भी स्वयं इस प्रथा का खण्डन करने का साहस न कर सके और ईसाई धर्म के पुरोहित १०६० ईस्वी से पूर्व इसका प्रतिरोध न कर सके। लूथर और अन्य सुधारकों ने आगे तक भी इसे चलने दिया। तथापि यह बहुपत्नी की प्रथा स्त्रियों के प्रति घृणा की स्पष्ट सूचना थी और हिब्रू लोगों ने जब से इसकी बुराई देखी उससे बहुत पहिले ही ग्रीक लोगों ने, रोम वालों ने तथा अन्य वर्बर जातियों ने इसे हटा दिया हुआ था"।

प्राचीन मिश्र देश में यद्यपि बहुपत्नी की प्रथा का कठिन निषेध नहीं था तथापि ईसाई युरोप में आज से कुछ साल पहिले स्त्रियों की जो दशा थी उससे कहीं ज्यादः स्वतन्त्रता उन्हें उस समय मिश्र वालों ने दी हुई थी। जर्मन जातियों में ईसाई धर्म फैलने के पूर्व स्त्रियों की बड़ी उन्नत स्थिति थी। एक पत्नी व्रत ही प्रायः सर्वत्र था और स्त्रियों को पवित्रता की मूर्ति और देवी स्वरूप समझते थे। प्राचीन रोम में एक पत्नीव्रत का ही कड़ा नियम था और समाज में स्त्रियों का बड़ा मान था। इसके विपरीत ईसाई धर्म के प्रारम्भिक पुरोहितों की शिक्षा ने युरोप में स्त्रियों के अधिकारों की उन्नति में वाधा डाली और इसका मूल आधार सेंट पाल और पुराने अहदनामे की शिक्षा ही थी।

सेन्ट पाल ने बहुतेरे स्थलों पर स्त्रियों के प्रति अपने भाव प्रगट किये हैं जिनसे शिक्षित वर्ग बखूबी परिचित है, यथाः "उसे गिरजे घर में जाकर अपना सिर ढक रखना चाहिये और जैसे उसका पति प्रश्न करता है उस प्रकार प्रश्नोत्तर नहीं करने चाहियें। वह अपने पति के आधीन है और पति उसका स्वामी है। पुरुष स्त्री के लिये नहीं बनाया गया था वरन् स्त्री पुरुष के लिये बनी थी। उसे उपदेश देने का अधिकार नहीं है क्योंकि वही संसार में तबाही लाई है। लेकिन सन्तानोत्पत्ति द्वारा उसका उद्धार हो सकेगा।"

पुराने अहदनामे में सृष्टि उत्पत्ति के वर्णन में 'ईव' अदम के शरीर की एक पसली से बनाई गई थी इससे स्त्रियों का पद पुरुषों से नीचा था। इस कथा का प्रभाव ईसाइयों के स्त्रियों के प्रति वर्ताव में अभी भी कुछ वर्षों पूर्व तक रहा है। ईसामसीह ने ब्रह्मचर्य्य व्रत को गृहस्थ धर्म से ऊंचा बताया था लेकिन ईसाई पुरोहितों ने इसका क्या मतलब निकाला यह आप निम्नलिखित वाक्य से अच्छी तरह समझ सकेंगेः—

"अगर कोई यह कहे कि ब्रह्मचर्य्य अवस्था या वानप्रस्थ अवस्था से गृहस्थ दशा अच्छी है तो उस पर लानत है।"

(कौन्सिल आफ़ ट्रेन्ड का केनन)

एक 'Apocryphal Gospels' में एक स्त्री ईसा मसीह से प्रश्न करती है कि यह पाप रूप संसार कब तक रहेगा ? उसके उत्तर में ईसा कहते हैं किः—

"तब तक जब लों तुम स्त्रियां विवाह कर करके बच्चे पैदा करती रहोगी।"

विवाह संस्कार के साथ पाप का इस प्रकार सम्पर्क बना देने का यह फल हुआ कि ईसाई लोग विवाह को घृणित समझने लगे। सन्तानोत्पत्ति के बाद स्त्री को गिरजे घर के बाहर सिर झुकाना पड़ता था तब वह शुद्ध होती और पुनः पूजा में शामिल हो सक्ती थी।

स्वभावतया जन साधारण ने यह अनुभव करना शुरू किया कि प्रेम का यह तरीक़ा अस्वाभाविक और असत्य है और वह स्वेच्छा-चारी हो गये। व्यभिचार की बड़ी भयंकर वृद्धि हुई और राज-सभा तथा धर्म-सभा दोनों ने कुछ समय तक क्रियात्मक रूप से इसको विहित बनाया। 'बकहार्ट' का कथन है कि १४९० ईस्वी में केवल रोम देश में ही ६८०० वेश्यायें थीं (असंख्य घर में डाली हुई स्त्रियां इसके अतिरिक्त)। जर्मन नगरों में जब विदेशी रजवाड़े आते थे तो म्युनिसि-पैल्टी की ओर से इनके वैण्ड उनका स्वागत करते थे और ईसाई धर्म ने उस समय कानून बनाया था कि समय समय पर उन्हें अवश्य पूजा में सम्मिलित होना चाहिये।"

लेकी का कथन है कि—"मध्यकालीन युरोप के लेखों में नन्स लोगों के मन्दिरों के वर्णन से पता लगता है कि वह वेश्या गृह के तुल्य ही थे, उनकी चहार दिवाली के अन्दर असंख्य नन्हें बच्चों की हत्या होती थी और क़ुर्जी लोगों में वर्जित सम्बन्धियों के साथ सम्भोग का इतना कठिन भयंकर रोग था कि बारम्बार बहुत कड़े नियम बनाने पड़े कि पुरोहित लोगों को अपनी माता और बहिनों के साथ भी रहना भी वर्जित है।"

विवाह की रुकावट होने से क़ुर्जी लोगों में सैकड़ों प्रकार की भयंकर अस्वाभाविक बुराइयां फैल गईं और वह विवाह बिना स्त्रियों को घर में डालने लगे। कई २ सर्दारों ने अपने इलाके के क़ुर्जियों को स्त्रियों को विवाह बिना घर में डालने की आज्ञा इस शर्त पर देदी कि वह क़ुर्जी इनको इसके लिये धन (टैक्स) दिया करें। यह बुराई यहां तक फैली कि गिरजे के अधिकार में रहने वाले लोगों ने पुरोहितों के आक्रमण से अपने कुटुम्ब की देवियों की रक्षा के हेतु क़ुर्जी लोगों को स्त्रियों को घर में बैठालने के लिये बल पूर्वक अनुरोध करते थे। यह हैं मध्यकालीन स्त्रियों की गिरावट के कुछ दृश्य। अब आगे देखिये। मिसेज़ केडी स्टैन्टन १८५० वर्षों तक ईसाई प्रभाव रहने के बाद भी बोस्टन में जो स्त्रियों की स्थिति थी उसका इस प्रकार वर्णन करती हैं:—

"स्त्रियां किसी सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं समझी जाती थीं चाहे वह उनको मिली हुई हो या उन्होंने पैदा की हो। अगर वह कुमारी हो तो उसे सारी सम्पत्ति किसी ट्रस्टी के अधिकार में रखनी होती थी जिस के आधीन वह स्वयं हो। परन्तु अगर इस का विचार विवाह का हो और अपनी सम्पत्ति आप रखने की इच्छा हो तो उसे अपने वरण किये हुये पति के साथ कानूनन ठेका करना पड़ता था जिसके अनुसार अपनी सम्पति और पदवी वह उसे सौंप देती थी। कोई स्त्री चाहे वह कुमारी हो या विवाहिता, स्त्री होने मात्र से किसी विश्वास और उत्तरदा-यित्व पूर्ण-पद पर नियुक्त नहीं हो सक्ती थी। वह व्यक्ति नहीं समझी जाती थी। उसे नागरिक नहीं माना जाता था। मानव कुटुम्ब का वह कोई अंग न थी। विवाहिता स्त्रियों

की स्थिति घर की दासी से ऊंची न थी। अंग्रेजी साधारण नियम के अनुसार उसका पति उसका मालिक और स्वामी था। उसी को उसके शरीर तथा उसके कमसिम बालकों के ऊपर अधिकार था। वह इसे अपने अंगूठे की बराबर की छड़ी से पीट सकता था और उसे शिकायत करने का कोई हक़ न था.................. ।

मसेचुसेट का साधारण कानून यह था कि पति पत्नी एक ही मनुष्य हैं परन्तु वह मनुष्य हमेशः पति ही होता था। वसीयत द्वारा वह अपनी पत्नी की सारी सम्पत्ति हर सकता था और वह भी धन जो विवाह से पूर्व उसका अपना था। वह स्त्री की सभी सम्पत्ति और पैदा की जायदाद का मालिक था। पत्नी कोई वसीयत नहीं कर सकती थी, कोई इकरार नहीं करसकती थी, या पति की मर्ज़ी विना अपनी सम्पत्ति बेंच सक्ती थी। एक चिथड़े कपड़े पर भी उसका अधिकार न था। उसे निज का कोई अधिकार न था, न वह अपनी आत्मा को ही अपना कह सकती थी। उसका पति उसके बच्चोंको हरणकर सकता था, उसके कपड़े लूट सक्ता था, कुटुम्ब की पालना की अवहेलना कर सक्ता था, इसके विरोध में उसे कानून द्वारा कोई सहायता न थी। यदि पत्नी अपनी मेहनत से धन कमोती तो भी पति को अधिकार था कि उस तनख्वाह पर अपना अधिकार जमावे।"

स्त्रियों की स्वाधीनता के नवीन आन्दोलन का भी प्राटेस्टेन्ट चर्च के भी क़र्ज़ी लोगों ने बड़े बल पूर्वक विरोध किया। जब १८४० में ऐबी केली, लूक्रीटा माट और छै अन्य अमेरिकन देवियां लंडन में दासत्व-विरोध-सम्मेलन में व्याख्यान देने आईं तो उनसे पूर्व ही अमरीका के क़र्ज़ी लोगों के झुंड पहुंचे हुये थे, जो लंडन की जनता में इनके विरुद्ध भाव फैलाने के उद्देश से आये थे। इस का परिणाम यह हुआ कि इन देवियों को केवल स्त्री मात्र होने के कारण ही उस सम्मेलनमें भाषण करने की आज्ञा न दी गई। धर्म की आंड में आज्ञा रोक दी गई। १८७८ईस्वी तक भी प्राटेस्टेन्ट क़र्ज़ी स्त्री स्वाधीनता के प्रश्न का बलपूर्वक विरोध करते रहे। जिन्हों ने इनका साथ दिया वह या तो स्वच्छन्द विचार वाले लोग थे या क़र्ज़ी के विरोधी साम्यवादी लोग थे, परन्तु क़र्ज़ी और भक्त ईसाई नहीं थे।

(वैदिक मेगज़ीन)

वनिता विनोद

स्त्री जगत्

'वर्मा न्यूज़' पत्र की सम्पादिका एक महिला

ब्रह्मदेश के इस सुविख्यात समाचार ने बड़ा सराहनीय काम किया है। उसने एक देवी को अपना मुख्य सम्पादक बनाया है। यह प्रथम चीनी देवी हैं जिन्होंने समाचार पत्र के सम्पादन का भार उठाया है।

——

मद्रास में स्त्रियों का काम

मद्रास शहर में एक स्त्री समाज बनाई गई है जिसका उद्देश यह है कि जो स्त्रियां 'देवदासी' बन जाती हैं उनको दस्तकारी आदि के काम सिखाकर, या देवदासी बनने की हानियों का उपदेशों द्वारा प्रचार करके अथवा जो वापस आना चाहें उनके लिये सुरक्षित निवास स्थान बनाकर कर उसमें उन्हें रखकर उनको पतित होने से बचाया जा सके। अभी तक इसमें केवल २० देवियों के लिये ही स्थान है, किन्तु कमेटी की सदस्यायें प्रभावशाली हैं अतः सफलता शीघ्र होगी।

——

चीन में स्त्री सुधार

चीन में शान्सी प्रान्त का गवर्नर बड़ा उदार है। वह दो सुधारों की ओर लगा हुआ है। उसका विचार है कि वह लड़कियों की शिक्षा को आवश्यकीय बना दे और जो लड़कियों को शिक्षा न दें वह राजदण्ड के भागी हों। दूसरी बात यह कि कानून बन जावे कि स्त्रियां भी जायदाद की मालिक समझी जाया करें। वर्तमान में चीनी स्त्रियां धन सम्पत्ति की मालिक नहीं हो सकतीं। यदि कोई स्त्री विधवा हो जाये, या अविवाहिता रहना चाहें या तलाग ले तो उसकी जायदाद खतरे में पड़ जाती है।

——

मातृपन के लिये धन की सहायता

मि० जोशी आगामी एसेम्बली में एक प्रस्ताव पेश करने वाले हैं कि फैक्टरी, खान तथा खेतों पर करने वाली गर्भवती स्त्रियों को प्रसव से पूर्व और पश्चात छे २ हफ्ते की छुट्टी देना चाहिये अर्थात लगभग ३ महीने की छुट्टी लेनेका अधिकार होना चाहिये और उन्हें छुट्टी की तनख्वाह मिलनी चाहिये ताकि वह अपना और अपने बच्चे का भरण पोषण कर सकें।

——

गुलबर्गा के दंगे में मारी गई ३०—४० स्त्रियों और कई बच्चों की लाशें कुओं और जंगलों में मिली हैं।

——

ट्रावन कोर की महारानी साहिबा ने अपने रिजेन्ट बनजाने के शुभ अवसर पर ट्रिवेन्डम सेन्ट्रलजेल तथा ट्रावन कोर के मुफ़स्सिल जेलों के सब सत्याग्रही कैदी छुड़वा दिये और इस उपलक्ष में वायकोम सत्याग्रह भी एक दिन के लिये बन्द रहा।



स्ट्राब्यरी लेस

ले०—ओमवती

काटन नं ३० और क्रोशिया नं० ६, त्रिकोण का तिरछा तरफ़ ११ इञ्च लम्बा और दोनों सीधे तरफ़ ८ इञ्च होने चाहियें, खद्दर या लट्ठे जिस कपड़े पर टांकने हों उसके एक तरफ ११ इञ्च वाला हिस्सा टांको। ऐसे ही बिलकुल बराबर ३ और तीनों तरफ़ टांको इसके किनारे लेस टांक दो या ज़रा सी पट्टी पर टांक कर वह पट्टी जोड़दो।

आरम्भ में १६५ चेन करो और एक चेन छोड़कर १६४ दोहरे हरएक घर पर बीन कर एक कोने की लम्बाई पूरी करो।

१ पंक्तिः ३ चेन, १ दोहरा छोड़ कर १ ते. अगले में २७ लैस्यट (३चेन, २छोड़ो १ दोहरा, ३ चेन, २ छोड़ो, १ ते)

२ पंक्तिः-८ चेन, १ ते, दूसरे ते पर, फिर बन्द लैस्यट (५ चे, १ ते.) बीनो हर लैस्यट पर, २७ होंगे, १ ते. कोने वाली लौटती हुई चेन पर लौटो।

३ पंक्तिः-३ चे, १ ते, २ लैस्यट, * ३० ते. बराबर, १ लैस्यट, इस * चिन्ह से ३ दफ़ा बीनो, और ठहरो। हर एक अगली लकीर का पिछला खुला वार छोड़ दिया गया है जिससे घटता जाता है और त्रिकोण का रूप बनता जाता है।

पंक्तिः-८ चे, से लौटो, १ ते. २ सरे ते. पर ३०ते, तेपर १ बार या बन्द लैस्यट, इसी प्रकार सब के ऊपर, अन्त में २ बार, १ ते. कोने के घर में। लौटो।

५ पंक्तिः-३चे. १ ते २सरे ते पर, १ लैस्यट* ६ ते. ५ लैस्यट* इस तरह तीन दफ़ा और। लौटो।

६ पंक्तिः-८ चेन, १ ते. दूसरे ते.पर, ४बार, ६ते। ते. पर, * ५ बार, ६ते., * इस से २ दफ़ा और, १ बार, १ ते. किनारे पर

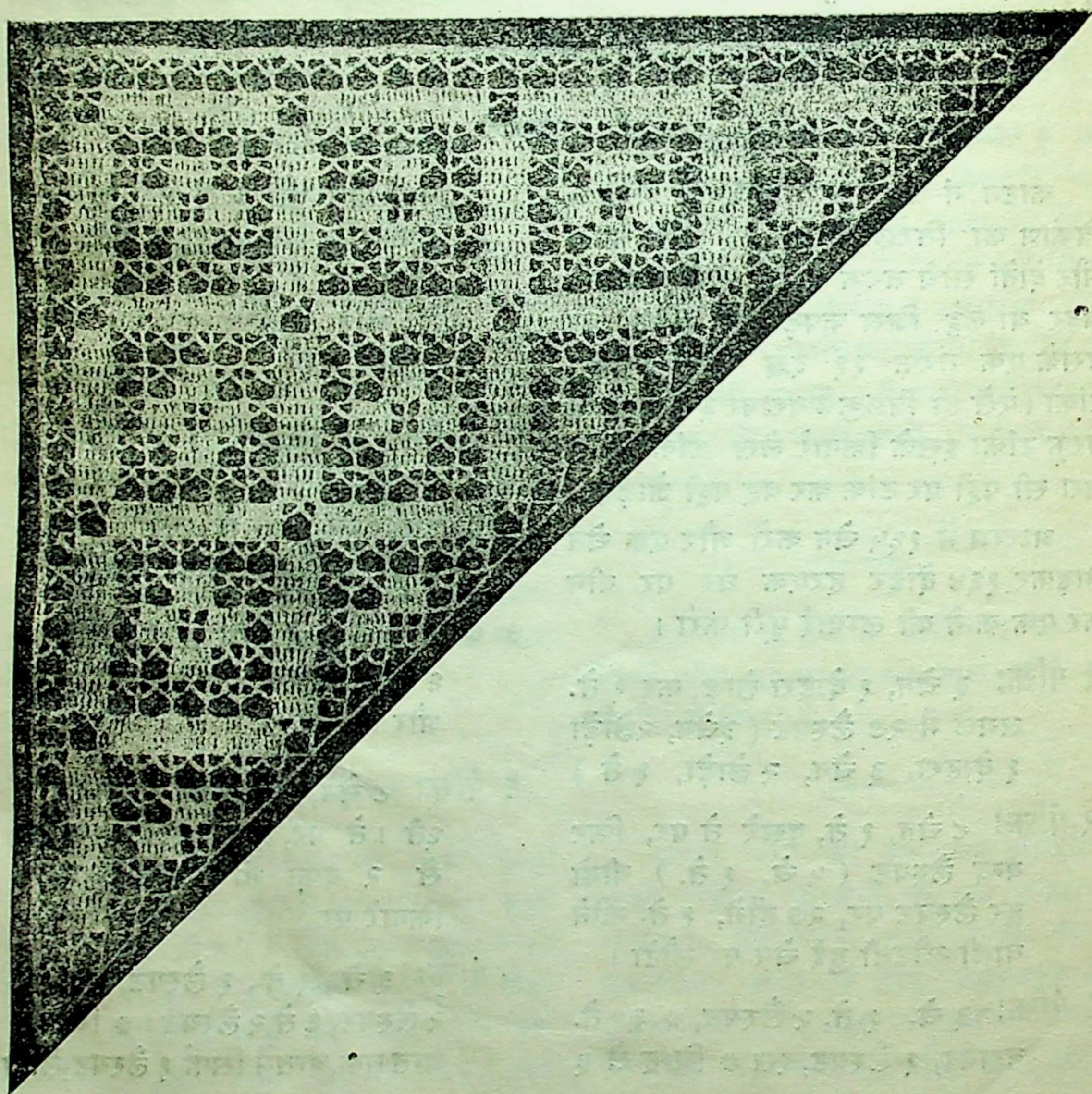
७ पंक्तिः-३ चे., १ ते, १ लैस्यट, * ६ ते., २ लैस्यट, ६ ते, २ लैस्यट। * चिन्हसे अन्त तक, अन्तमें सिर्फ १ लैस्यट, लौटो

८ पंक्तिः—८ चे, ७ ते. झुंड पर, २ बार, ६ ते फिर, * २ बार, ६ ते. * इससे किनारे तक, अन्त में १ बार और १ ते किनारे पर। लौटो

६ पंक्तिः—२ चे., १ ते., १ बार * ६ ते, १ लैस्यट, ६ ते., २ खा., ६ते, १ लैस्यट * इससे अन्त तक, अन्त में २ ख़ाने, यह नमूने की बीच की लकीर है, लौटो।

१० पंक्तिः—५ चे., १ ते., ते. पर, १ ख़ा., ६ ते., १ बार ६ ते। * १ बार, ६ ते., २ ख़ा., ६ ते., १ बार ६ ते, * इस से अन्त तक १ बार, १ ते, किनारे पर। लौटो

११ पंक्तिः—किनारा, १ लैस्यट, * ६ ते., २ लैस्यट ६ते., ख़ानों पर, २ लैस्यट; इससे २ दफ़ा और ६ ते. ते. पर २ लैस्यट। लौटो



१२ पंक्तिः— ८ चे., १ ते., दूसरे ते पर, १बार, ६ ते, * २ बार, ६ ते., * अन्त तक, १ बार, और एक ते., किनारे ।

१३ पंक्तिः—लौटो । किनारा बीनो, १ लैस्यट * ६ ते., ५ लैस्यट, * इससे, २ दफ़ा और, ६ ते , १ लैस्यट लौटो

१४ पंक्तिः—८ चे , १ ते , दूसरे ते पर, ६ ते., * ५ बार, ६ ते., * इससे २ दफ़ा और, १ बार, १ते किनारे ।

१५ पंक्तिः—३सरी की तरह परन्तु इसमें तेहरोंके ४ झुण्ड न होंगे । ३ ही होंगे घटाव की वजह से चित्र देखो ।

१६ पंक्तिः—४वीं की तरह

१७ पंक्तिः—५वीं की तरह

और इसी तरह नमूने की तरह बीनते जाओ जबतक ५ वीं पंक्ति को ३सरी दफ़ा बनाने का वख़्त न आजाय (त्रिकोण की ४१ पंक्ति), इसमें किनारा हमेशा की तरह बीनकर, फिर, १ लैस्यट, ६ ते., ५ लैस्यट तेहरों पर, यह छोटी सी पंक्ति केवल ४४ फन्दों की है ।

४२ पंक्तिः—लौटो ८ चे , १ ते , २सरे तेहरे पर, ४ और बार, ६ते., १ बार., और १ ते. किनारे पर । लौटो

४३ पंक्तिः किनारा, १ लैस्यट, ६ ते., २ लैस्यट, ६ ते , १ लैस्यट

४४ पंक्तिः लौटकर ८ चे., ७ ते., झुंडपर, २ बार, ६ ते , १ बार, १ ते , किनारे पर लौटो ।

४५ पंक्तिः—किनारा बीनो, १ लैस्यट, ६ ते., १ लै०; ६ ते, २ ख़ा लौटो ।

४६ पंक्तिः—५ चे , १ ते. ते, पर, १ ख़ा, ६ ते १ बार, ६ ते., १ बार, और १ ते, किनारे लौटो ।

४७ पंक्तिः—किनारा बीनो १ लैस्यट, ६ ते , २ लैस्यट, लौटो ।

४८ पंक्तिः—८ चे , १ ते दूसरे तेहरे पर, १ बार, ६ ते , १ बार १ ते. किनारे लौटो ।

४९ पंक्तिः— किनारा, १ लैस्यट, ६ ते., १ लैस्यट लौटो ।

५० पंक्तिः—८ चे., ७ ते , झुंड पर १ बार, १ ते., किनारे लौटो ।

५१ पंक्तिः—किनारा, २ लैस्यट लौटो

५२ पंक्तिः—८ चे., १ ते दूसरे ते पर, १ बार १ ते, किनारे पर

५३ पंक्तिः—लौटकर किनारा और १ लैस्यट, लौटो ।

५४ पंक्तिः—८ चे., २ ते किनारे पर, लौटो ।

५५ पंक्तिः—३चे.,१ते किनारेके लिये और अब त्रिकोण की सूरत पूरी होगई । सूत तोड़ो न पर एक चेन की लकीर तिरछी तरफ बीन दो । ८ चेन, १ दोहरा चेनों की बीच की चेन में जो लौटती दफ़ा बनी थी, ८ चेन १ दोहरा चेनों की बीच में । इसी तरह सब में । अन्तमें २ दोहरे आरम्भ की दोहरों वाली लकीरके सिरे पर । बस तोड़ कर पक्की तरह ख़तम कर दो ।

——**——

गृह प्रबन्ध ।

सब्ज़ियों और फलों के औषधसम गुण

प्रत्येक मनुष्य को यह जानना परमावश्यक है कि सब्ज़ तरकारियों और फलों द्वारा किस प्रकार स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है और किस प्रकार यह शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं।

हमें आधुनिक सभ्यता का बड़ा अभिमान है परन्तु यदि हम तरकारियों और फलों के उस ज्ञान के आधे भाग को भी व्यवहार में लावें जिस को कि असभ्य जंगली और पशु अपने व्यवहार में लाते हैं तो हम डाकृरों की फीस और दवाइयों से बहुत कुछ बच सकते हैं।

मनुष्य का शरीर कोई २० रसायनिक द्रव्यों के मेल से बना है, इनमें से १५ के विषय में हमें पूरा २ ज्ञान है।

हम शक्कर, तैलय तथा पौष्टिक पदार्थों की ओर तो ध्यान देते हैं परन्तु उन धातुओं और लवणों का प्रायः भुला ही देते हैं जो हमें तरकारियों और फलों से मिलते हैं और जो हमारे शरीर में हड्डियों और अन्य अवयवों के बनाने, पाचन शक्ति तथा नाड़ियों की क्रियाओं का ठीक रखने में बड़े काम आते हैं।

मनुष्य शरीर को प्रतिदिन २ से ३ माशे के लगभग गन्धक की आवश्यक्ता है। परन्तु यह कितने मनुष्य जानते हैं कि प्याज़—जिसको कट्टर हिन्दू विषकी भांति समझते हैं,—गन्धक का बड़ा भारी कोश है।

प्याज़ में चिकित्सा सम्बन्धी अनेक गुण हैं यह युरिक एसिड(Uric acid)—जिस के कारण जोड़ों में दर्द होने लगता है—को जोड़ों में से घोलकर हटा देता है और अन्य शारीरिक विषों का भी नाश करता है। दिमागी बीमारियों के लिये यह बड़ी पौष्टिक औषध है और इनको अन्य किसी सब्ज़ी में मिलाये बिना खाना चाहिये। डाकृर लोग दिमागी बीमारियों में प्राय Strychnine का प्रयोग करते हैं परन्तु प्याज़ हलका होने के कारण कहीं अधिक उपयोगी हैं। जब मनुष्य का शरीर बिलकुल थक गया हो और जीवन आनन्द रहित बन गया हो और यही लगता हो कि अब अन्त हुआ और अब हुआ तो ऐसी अवस्थामें प्याज़ और केवल प्याज़ के सेवन ने सारा रोग दूर कर दिया है। यदि नींद न आती हो तो प्याज़ की भाजी और बिना छने आटे की रोटी और साथ ही दो तीन मील प्रति दिन की सैर Bromides और Chlorals की अपेक्षा कही बढ़कर सिद्ध हुई है।

पुराने घरों में सरदी की मौसम में प्याज़ का शरबत (प्याज़ का रस और खांड़) एक बड़ी साधारण औषध थी और आजकल भी गांव की महिलायें इस पर बड़ा विश्वास करती हैं।

कटा हुआ प्याज़ वायु में से गन्दी हवा को चूस लेता है और इस प्रकार वायुशोधक का काम देता है। इस लिये इन अशुद्ध गन्दे वायु के कारण यह कच्चा खाने योग्य नहीं रहता, अतः कुछ देर पहिले से कटा हुआ प्याज़ कदापि नहीं खाना चाहिये। यदि प्याज़ के साथ अजमूद का सेवन किया जाय

तो इसकी बदबू स्वांस को खराब नहीं करेगी।

यदि आप बसन्त ऋतु में शारीरिक निर्बलता के लिये किसी पौष्टिक औषधि के सेवन की आवश्यकता अनुभव करते हैं तो किसी भी patent औषध की अपेक्षा गाजर का सेवन कहीं अधिक उपयोगी है। गाजर में लोह की बड़ी मात्रा होती है और यह खून को खूब बढ़ाता है। यह चेहरे के रंग को भी साफ करते हैं। जिनको मस्तिष्क से अधिक काम लेना पड़ता है, उनको यह बतला देना पर्य्याप्त है कि किसी भी अन्य खाद्य पदार्थ से इन में चार गुण अधिक फास्फोरस होता है। भरने के पीछे परीक्षा करके यह देखा गया है कि पागलों और मूर्खों के दिमाग़ मे बहुत कम फासफोरस मिलता है। इसके विपरीत बड़े २ विद्वानों और बुद्धिमान व्यक्तियों का दिमाग़ इस से खूब भरपूर पाया गया है।

दालें, बादाम, अखरोट, मूंगफली, पिस्ता, मटर, सेम के बीज और विशेष कर गाजर में फासफोरस खूब रहता है और ऐसे रूप में कि इस के सेवन से मछली और अन्य पदार्थों की भांति नशा नहीं होता।

गाजर कच्ची खानी चाहिये परन्तु खूब बारीक कस और पीसकर। इसमें सलाद अथवा काहू के पते डालकर भी खासक्ते हैं। गाजर के पत्ते भी कच्चे खाये जा सक्ते हैं। इनमें गाजर की अपेक्षा तीन गुना अधिक फास्फोरस होता है। यह विशेष कर उन रोगों में जिन में दिल और दिमाग़ कमज़ोर हो गया हो बड़े काम की है।

काहू दिमाग़ को ठंडा रखने के लिये और नींद न आने में बड़े काम की चीज़ है। इसका वही प्रभाव होता है जो कि अफीम का होता परन्तु वह हानि नहीं होती जो कि अफीम से अवश्य होती है। यह इस समय खाना चाहिये जब कि अभी हरा ही हो और सफेद न हो गया हो क्योंकि औषधि का गुण हरे भाग में ही होता है।

पार्सले (अंग्रेज़ी साग) एक बड़ा गुणकारी साग है। यह रीह के दर्द, पट्ठों के दर्द और बेचैनी में बड़े काम की है। इसका सख़्त भाग नहीं खाना चाहिये। इसका केवल रस चूस कर फोक थूक देना चाहिये।

सेम और इसी प्रकार की अन्य दानेदार फलियां, पालक, डैन्डेलियन (एक प्रकार की अंग्रेजी भाजी) और कच्ची बन्दगोभी में लोहा और फास्फोरस होता है। यह उन लोगों के लिले जिनमें खून की कमी है बड़े काम की है। पालक और डन्डेलियम का गुरदों पर बड़ा प्रभा होता है और यह शरीर के इस भाग को साफ रखते हैं। एक और सबजी होती है जिसको सूत मूली, भरचुना अथवा पालाग्राह कहते हैं। यह गुरदों के दर्द वाले के बड़े काम की है। बन्द गोभी बहुत ही लाभदायक सबजी है यथा सम्भव इसे कच्ची ही खाना चाहिये। उबाल कर हलुवा तो कभी भी नहीं बना डालना चाहिये और न ही इसमें अधिक मिर्च मसाला डालना चाहिये। बाहर खुली हवा में व्यायाम और अधिक सबज़ी का सेवन बहुत से गुरदे के दर्द के रोगियों को लाभदायक होगा।

निम्बू कितनी लाभदायक वस्तु है यह भली प्रकार नहीं जाना गया, वायु के दर्द जिगर सम्बन्धी रोगों, जुकाम, पित्त और ज्वर में यह बहुत ही लाभदायक है। खांड के साथ मिला कर लेने से निंबू का रोगों को दूर करने का गुण जाता रहता है अतः

यह खांड के साथ मिला कर न लेना चाहिये।

पांच छः संतरे प्रति दिन खाना न केवल मुंह को ही स्वादिष्ट करता है वरन् सारे शरीर को लाभ पहुंचाता है। बड़े सख़्त ज़ुकाम में यह बड़ी अच्छी, किसी प्रकार की हानि न पहुंचाने वाली औषधि है। गरम किये हुये दूध में मिला कर खा लेने से दूध में बाईटेमिन C के अभाव की पूर्ती करते हैं।

रुबाब नाम की एक सब्ज़ी है जो कि योरोप और अमरीका में बहुत होती है। इस के खाने से कब्ज़ी को तुरन्त लाभ होता है।

टमाटर जिगर के रोगों को दूर करते हैं यह छील कर और कच्चे खाने चाहियें।

अनानास पेट की कितनी बीमारियों के लिये—विशेष कर बदहज़मी में बड़े काम की चीज़ है। इस का रस ही खाना चाहिये और गूदा थूक देना चाहिये। रस गले पड़ जाने और सांस लेने के मार्ग की सोजन और खांसी में बड़ा लाभदायक है। अनानास नमक लगा कर खाना चहिये, खांड लगा कर नहीं।

चुकन्दर रक्त पैदा करते हैं। इसे कच्चा ही खाना चाहिये।

सेब सब फलोंमें अधिक लाभदायक है। अंग्रेज़ी कहावत कि एक सेब प्रदिदिन खाया हुआ डाक्टर का घर से परे रखता है बहुत कुछ सत्य है।

स्वास्थ को बनाये रखने और आयु को बढ़ाने तथा अंतड़ियों को साफ़ रखने और कब्ज़ को दूर करने में सेब सब फलों से उत्तम है। जिगर पर इसका Calomel (कब्ज़ दूर करने वाली एक अंग्रेज़ी दवाई है।) से बढ़ कर असर होता है और फिर यह दिमाग़ को भी मज़बूत बनाता है। सेब खाने का सबसे अच्छा समय प्रातः निराहार अथवा भोजन से आध घन्टा पीछे है।

शराब तथा मदिरा छुड़ाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि शराबी को सिवाय सेब के और कोई चीज़ खाने को न दी जाय। इन में जो मैलिक एसिड होता है वह शराब की इच्छा दूर करता है।

कान्हा

लेखक—श्रीयुत बलवन्त सच्चदेव

(गताङ्क से आगे)

"रघु! छै महीने हुये जब तुम मेरे घर आये थे और मुझे बागमें लेजानेको हठ किया था मैंने तुम्हारे पूंछने पर भी कुछ न बतलाया था परन्तु उसही दिन मुझे यह चिट्ठी मिली थी और मैं इसी की सोच में बावरे की तरह घर पर ही रहा"।

रघुः—अच्छा उस दिन तुम उसी चिट्ठी की सोच में पड़े थे?

मैंः—हां हां बस उसी चिट्ठी को आये कोई दो महीने व्यतीत हुये होंगे कि मुझे कान्हा के भाई को चिट्ठी आई कि उसकी माता अब आगे से तो अच्छी हैं परन्तु निर्ब-

लता अभी बहुत है। पिताने जब इस चिट्ठी को पढ़ा तो बोले:—

महेन्द्र ! मैंने तुझे दिल्ली बहू को लाने के लिये भेजना तो था परन्तु अभी कुछ दिन ठहर कर जाना होगा क्योंकि अभी उसकी माता अच्छी तरह निरोग नहीं हुई।"

मैं चुप रहा परन्तु दूसरे दिन मेरा मन कान्हा को मिलने के लिये घबरा उठा और इसी नशे में मैंने एक चिट्ठी कान्हा को लिख दी कि वह यहां कब आयेगी और जब भी लिखे मैं दिल्ली से ले आऊंगा।

मैं यह तो लिखने के लिये भूल ही गया था कि कान्हा अपने धर्म से गिर गई है और अब वह मेरी पत्नी नहीं है। मैंने चिट्ठी डालदी मगर पछताया बहुत।

उसके तीन ही दिन बाद मुझे उस पत्र का उत्तर मिल गया उसमें लिखा था:—

प्रिय प्राणनाथ, नमस्कार।

पत्र आपका मिला।

परन्तु मैं पापात्मा आपके उत्तर में क्या लिखूं। मैं अब आपकी पत्नी कहाने के योग्य नहीं हूँ। मैं अपने भाग्यपर हायर करती हूं परन्तु कोई चारा नहीं, बस नहीं। कोई उपाय नहीं। मैं जानतीं हूँ आप क्षमा कर देंगे। आप देवता हैं—आप सज्जन हैं आप स्वभाव से ही दीन दुखियों को प्यार करते हैं। आप धन्य हैं। मैं भी आपको प्यार करती हूँ। पर क्या करूं मैं तो कलंकित हूँ मेरा मानव जीवन धिक्कार है परन्तु प्राणनाथ! यह सारा दोष न मेरा है और न ही आपका यह दोष तो बालबिवाह का है। अच्छा यदि आप मुझे ग्रहण न करेंगे तो मैं विष खाकर अपना अन्त कर दूंगी क्योंकि मैं आपके शुभ जीवन में कांटा होना नहीं चाहती। ईश्वर आप को सुखी रखे। आपकी दासी

'कान्हा'

यह चिट्ठी आते ही मैं धबरा उठा और फिर शुरू से अन्त तक जैसे मैं तुम्हें सुना रहा हूँ जैसे जैसे विवाह हुआ था सोचने लगा। ग़लती तो सचमुच घर वालों की थी क्योंकि उन्होंने मेरा विवाह बाल्य अवस्था में कर दिया। न हम घर के न घाट के। जो मन में आया कर लिया।

मेरे मन में कान्हा को दिल्ली से जल्दी लानेका विचार था परन्तु जितनी देर पिता जी न कहते मैं अपने आप कैसे चल पड़ता?

कोई एक महीना ऐसे ही व्यतीत होगया एक दिन सांयकाल के समय पिता जी ने मुझे कहा:—बेटा आज रात की गाड़ी दिल्ली जाकर बहू को तो ले आ।

मैंने धीमी सी आवाज से उत्तरदिया—तो मेरा बिस्तरा बन्धवा दीजिये।

मैं उसी रात अपनी गाड़ी पर बैठ जब स्टेशन पर पहुंचा तो गाड़ी में अभी थोड़ी देरी थी। आज मंगलदास भी स्टेशन पर किसी मित्र को छोड़ने आया हुआ था, मैं उसे देखते ही गुस्से से लाल हो गया और उसके नमस्कार का उत्तर देते ही मैंने उसे एक ओर आने को कहा:—वह चकित था कि मैं क्या पूछूंगा, परन्तु मैंने पूछना क्या था, कुछ बताना ही था।

मैंने कहा:—आपकी सब काररवाई को जानता हूं आपने यह बहुत ही बुरा किया जो कान्हा को पत्र लिखा आगे यदि आप कभी ऐसी

बात करेंगे तो आपको इसका फल बुरी तरह भुगतना पड़ेगा। ख़बरदार!

मैं यह कहता हुआ उसको वहीं खड़ा छोड़ आप हट गया और अपने बिस्तरे के ऊपर आ बैठा। थोड़ी ही देर में गाड़ी आ गई, मैं उस पर सवार हुआ और दूसरे दिन प्रातःकाल दिल्ली पहुंचा। एक दिन दिल्ली रहा। कल रात की गाड़ी से कान्हा को साथ ले आज सुबह यहां पहुंचा हूँ। अब सुनो रघु! मैं इस सोच में बैठा था कि कान्हा कलंकित तो अवश्य है, मैं उसे गृहण करूं या ना—कि तुम आगये। अच्छा अब तुमने आदि से अंत तक सुना हैं तुम ही भला बताओ कि मुझे क्या करना चाहिये?

रघुः—भाई महेन्द्र! बात यह है कि मेरे विचार में तुम्हें अपनी अर्द्धांगिनी को गृहण कर लेना चाहिये। दोष सारा बालविवाह का है और यदि तुमने अपनी पत्नी को गृहण न किया तो वह सच ही प्राण त्याग देगी।

दोष तेरे पर होगा, और तेरे पिता दुखी होंगे। तुम जानते ही हो कि पिता और माता केदुःख हरनेके लिए तुम्हारा बालविवाह हुआ था और यदि तुम्हारे पिता अब भी दुखी रहे तो तुम्हरा विवाह ही निष्फल गया।

महेन्द्र तू मुंह से तो बातें कर लेता है परन्तु मैं जानता हूँ कि तेरा कोमल मन कान्हा को विष खाते न देख सकेगा।

रघु फिर चुप कर गया और थोड़े ही समय के बाद महेन्द्र को नमस्कार कर घर को चल दिया।

रघुनाथ नीचे उतरा ही था कि महेन्द्र फिर विचारों से घिर गया और बैठ कर सोचने लगा—धर्म पर चलूं तो कान्हा को ग्रहण नहीं कर सकता परन्तु यदि धर्म का विचार ही न लाऊं तो अलग बात है। यह अभी इन विचारों में ही था कि बच्चे के रोने की आवाज़ कानों में पहुंची और महेन्द्र उधर ही उठ कर के चल पड़ा। रसोई के साथ वाले कमरे से अब भी रोने की आवाज़ आ रही थी,वह ज्योंही किवाड़ खोलके अन्दर घुसा बस चकित रह गया, रंग फीका पड़ गया, होश हवास सब गुम होगये और एक चीख़ सी उस के मुंह से निकल गई। कान्हा चारपाई पर पड़ी हुई थी। उसे चेत नहीं था। सांस में कष्ट होता था। उसने उस कष्ट को सहकर महेन्द्र की ओर देखा। आंखें सफेद थीं, फट कर दूनी हुई जाती थीं उन्हीं आंखों से,आंसुओं की धार बह चली। महेन्द्र से कुछ न बन पड़ा। वह खाट के पास खड़ा होतेही कांप गया और बोला "कान्हा यह तूने क्या किया"।

कान्हा—"मैं पापनी हूं—मैंने--विष--खा लिया है।"

महेन्द्र के शरीर में बिजली दौड़ गई। पत्थर के बुत की तरह जहां खड़ा था वहीं खड़ा रह गया। फिर कुछ संभल कर थोड़े ही समय के पीछे बोला—'कान्हा तूने आत्म-हत्या.... " कह चुप कर गया। फिर रोगी की ओर ध्यान डाला और बोला "अच्छा मैं डाक्टर को लाता हूं" यह कहता हुआ जाने को ही था कि कान्हा सिर हिलाते हुये बोली—"कोई आवश्यकता नहीं—विष मेरे—बदन—में—फैल गया—है। ना—ही मैं—अब जीना चाहती हूँ। मैंने विष खाने से पहिले एक पत्र लिख कर यहां रखा है—कि मैंने—आप ही-विष खाया है—ताकि—आप को—कोई पूछताछ न हो।" इतना कहकर इशारे से महेन्द्र को चारपाई पर बैठने को कहा।

महेन्द्र ने देखा कि अब डाक्टर लाना तो निष्फल ही है, कान्हा की चारपाई पर बैठ गया।"

कान्हा ने हांफते हुए करुणा स्वर से कहा "आप धन्य हैं मैंने—आप—को—भी कलंक—लगाया—आप—एक बार—मुझे—फिर क्षमा कर दें।"

महेन्द्र—"प्रिये ! मैंने तुझे क्षमा किया।" कान्हा में अब बोलने की भी इतनी शक्ति न थी, तो भी साहस कर हांफती हुई बोली—"प्राण—नाथ—इस—बालक—ने तो कोई अपराध नहीं—किया—यदि—आप—इसे—ग्रहण—कर लें- तो मैं सुख से मृत्यु की शरण लूं।"

महेन्द्र अब भी रो रहा था। रोते हुये बालक को अपनी गोद में बिठा लिया और बोला—"कान्हा ! कान्हा ! ! मैं इसको ग्रहण करता हूँ।

और इसका पालन तन मन से करूंगा"

कान्हा ने एक ठंडी स्वाँस ली और घुटते हुए स्वर से कहाः—

'परन्तु—इस--बालक-का-विवाह--बाल-अवस्था में ...... न ...... कर ...... ना ...." और हिचकी आते ही स्वांस छोड़ दी।

समाप्त

श्रीमती रामाबाई रानडे

ज्योति की पाठिकाओं ने श्रीमती रामाबाई रानडे का नाम अवश्य सुना होगा। यहएक विख्यात महाराष्ट्र महिला थीं। उनकीमृत्यु से हमारी स्त्रीजाति को सामाजिक सुधार और समाज सेवाकेकार्य में बहुत घाटा पड़ा है। इन भद्र महिला के विषयमें कुछ परिचय देना स्त्री जातिके लिए बहुत लाभदायक और उपयोगी होगा इस खयालसे उनकी संक्षिप्त जीवन घटनायें यहां पर उद्धृत की जाती हैं।

रामाबाई जब अभी बहुत ही छोटीं थीं जब कि अभी उनकी उम्र १३ वर्ष की भी पूरी नहीं हुई थी तो उनका विवाह स्वर्गवासी जस्टिस रानडे के साथ हुआ था, यह उनकी द्वितीय पत्नी थीं। विवाह के होते ही उनकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। उनके सुविख्यात पति की अभिलाषा थी कि वह अपनी सहधर्मिणी को सचमुच की जीवन की संगी और सहायकारी बनावें अतः इसी लक्ष्य से उन्होंने रामाबाई की शिक्षा की जिम्मेवारी अपने सिर पर ली। उन्होंने उनके दिमाग़ तथा आचार व्यवहार को अपने ही सामाजिक और धार्मिक उच्च भावों के अनुकूल बनाया। पति की मृत्यु से पूर्व यह देवी अज्ञात रूप से घर के अन्दर ही अपने पति के साथ सर्वजनिक विषयों पर बात चीत करके ज्ञान बढ़ाती रहीं। उस समय महाराष्ट्र देवियों को बन्द करके रखा जाता था। और छोटी २ बालिकायें भी स्वच्छन्दतासे बाहरनहीं घूम सकती थीं। जब घर की अन्य स्त्रियां रामाबाई को पढ़ते देखतीं थी तो बड़ी नाराज़ होती थीं और अपनी हतक समझ कर उन्हें पुस्तक रख देने पर बाधित करती थीं। अतः रामाबाई केवल अपने पति के कमरे में एकान्त में ही स्वाधीनता पूर्वक पढ़ने लिखने का आनन्द उठा सकती थीं।

शादी के कई वर्षों बाद रामाबाई जी

को पण्डिता रामाबाई जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और तब से वह उनके स्कूल में पढ़ने लगीं। चूंकि वह इस प्रकार शिक्षा गृहण करने लगीं थीं अतः उनसे घर की कई अन्य स्त्रियां उनसे छूती तक न थीं और न रसोई के वर्तनों में हाथ लगाने देतीं थीं। यह एक ऐसी रिवाज़ है जो कट्टर हिन्दू घरों में हम अब भी पाते हैं। परन्तु रामाबाई जी बड़ी वीर देवी थीं और अपने पति की उत्तेजना से उन्होंने अपनी शिक्षा की उन्नति के लिये इन सब विघ्नों का धैर्य से सहन किया। उन्होंने बहुत दूर २ भ्रमण किया था और अपने पति की उच्च पदवी के कारण उन्हें बड़ी २ मशहूर देवियों से मिलने और बात चीत करके सभी तत्कालीन विषयों पर ज्ञान वृद्धि करने का बड़ा मौक़ा मिलता था। इस प्रकार वह स्वयं भी मराठीकी एक योग्य, सुरीली, प्रभावशालिनी लेखिका और वक्ता बन गईं और प्रार्थना समाज की वेदी से प्रायः करके उपदेश दिया करतीं थीं। उन्होंने अपने पति की वक्तृताओं तथा लेखों का संकलन करके उन्हें छपवाया भी।

१६०१ में उनपर वह भारी विपत्ति पड़ी जिससे बढ़कर भारतीय स्त्री के लिये और कोई नहीं हो सकती अर्थात उनके पति देव का स्वर्गवास होगया। रामाबाई हिन्दू रीति के अनुसार एक वर्ष तक बिलकुल एकान्तवास किया। इसके बाद उन्होंने अपने पति की इच्छा के अनुसार उन के सिखलाये पथ पर पैर रखा। वह अपनी गोद ली हुई पुत्री को साथ लेकर पूना चली गईं। उनके और कोई सन्तान न थी अतः उन्होंने अपने दुःख की शान्ति का उपाय उन कार्य्यों द्वारा किया जिन्हें वह जानती थीं कि उनके पति देव पसन्द करते थे। उन्होंने उधर ही प्रयत्न करना शुरू कर दिया। उन्हें यह मालूम था कि पूना में—जोकि ब्राह्मणों का गढ़ था—काम करना बड़ा कठिन है तथापि दृढ़ता न छोड़ी।

उनके शरीर तथा मुखाकृति में कोई विलक्षणता न थी, वह केवल सीधी साधी मामूली महाराष्ट्र महिला थीं। सादा भेष सादा रहन सहन और सादा खान पान था। उनके जीवन का सिद्धान्त ही सादा जीवन और उच्च आदर्श रहा है। वह कोमल और मृदुल स्वभाव वाली होती हुई दृढ़ और अचल सिद्धान्त वाली थीं यह उनकी आंखों की ज्योति से ही टपकता था।

उन्होंने अपने काम का आरम्भ पूना में स्त्रियोंकी एक समाजिक सभा बनाकर किया। उसके बाद अपढ़ स्त्रियों और विधवाओं के लिये स्कूल बनाया। जब स्वर्ग वासी मि० वी० यम मलाबारी ने सेवा सदन खोलने का विचार बनाया तो रामाबाई जी ने उस सभा का प्रधान पद ग्रहण किया जिस पर वह अपनी मृत्यु तक रहीं। सेवा समिति की प्रधाना बन कर प्रति मास पूना से आतीं और कई २ दिन 'सदन' में रहतीं और उस संस्था के कार्य्योंकी देख भाल कर के सुधार जातीं। इसके साथ२ पूना में काम की भी वृद्धि की। पूना में सेवा सदन की एक शाखा खोली और अपढ़ स्त्रियों और विधवाओं के लिये जो स्कूल खोला था उसी को उसका केन्द्र बनाया। उन्होंने अपना समग्र जीवन मानो इसी हेतु रखा थीं। पूना के सेवा सदन की वह प्राण सम थीं और उसकी उन्नति उन्हीं के त्यागमय और तन्मय जीवन के कारण हुई है। इसके अतिरिक्त बम्बई और पूना में जो कुछ स्त्री जाति के सम्बन्ध में आन्दोलन होता उसमें वह दिल चस्पी लेती थीं। उनमें नेतृत्व शक्ति तथा संगठन शक्ति बहुत थी। उन्होंने पूना में लड़कियोंकी शिक्षा को आवश्यकीय बनानेके आन्दोलन कानेतृत्व ग्रहण किया और अब स्त्री-स्वाधीनता के प्रश्न पर बड़ी

दृढ़ थीं। जो लोग उन्हें मिलते थे सभी उन की प्रशंसा और आदर करते थे। अपने आदर्श जीवन से—जो कि उन्होंने अपनी बहिनों के आगे रखा है—वह यह सिखलाती हैं कि अपने समय को, ख़ास करके विधवा हो जाने पर अपने जीवन को किस प्रकार दूसरों की सेवा में सफलता से व्यतीत करना चाहिये। उन्हें जो प्रेम था वह उन्होंने सेवा के रूप में प्रगट करके दिखाया यह बड़ा उच्च आदर्श है। हमारी अन्य बहिनों को इस जीवन से शिक्षा ग्रहण करके अपना जीवन भी वैसे ही बनाने की ओर झुकना चाहिये।

—:o:—

हमारी मंजूषा

भाषा विज्ञान—लेखक श्रीयुत बाबू श्याम सुन्दरदास बी. ए. प्रकाशक रामचन्द्र वर्म्मा साहित्य रत्न-मालाकार्यालय, काशी, पृष्ठ संख्या ३८८ मूल्य ३), सजिल्द

गत वर्ष हमें बाबू श्यामसुन्दरदास जी लिखित "साहित्यालोचन" शीर्षक पुस्तककी समालोचना करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आज इनकी दूसरी पुस्तक भाषा विज्ञान को पढ़कर हमें बड़ा आनन्द हुआ। बाबू साहब की साहित्य सेवा हिंदी भाषा के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। यदि इन्होंने इन दो पुस्तकों के लिखने के अतिरिक्त हिन्दी भाषा की और कुछ भी सेवा न की होती तब भी मातृभाषा आपकी सदा के लिये आभारी रहती। हिन्दी में इन पुस्तकों को लिखकर बाबू साहब ने यह भली भांति प्रमाणित कर दिया है कि हिन्दी एक जीवित जागृत भाषा है जिसमें कि इस प्रकार के वैज्ञानिक और मीमांसात्मक ग्रन्थ लिखे जाते हैं। इस प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशित होना हिन्दी की दिनों दिन उन्नति का सूचक है। अस्तु भाषा विज्ञान एक बड़ा महत्व पूर्ण और कठिन विषय है। इस विषय की अंग्रेज़ी में तो कई पुस्तकें हैं परन्तु हिन्दी में इस प्रकार की अब तक कोई पुस्तक न थी। हमें सन्देह है कि भारत में आजकल की प्रचलित अन्य भाषाओं में भी इस विषय की पुस्तकें हों। मनुष्य किस प्रकार बात चीत करता है, किस प्रकार उसकी भाषा उन्नत होती जाती है और किस प्रकार उसमें परिवर्तन होता है, उस भाषा का अन्य भाषाओं से क्या संबन्ध है इत्यादि गम्भीर विषय भाषा विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं, इस पुस्तक में लेखक ने इन्हीं विषयों का बड़ी योग्यता से प्रतिपादन किया है। हमारे देश में प्राचीन वैदिक काल से आज पर्य्यन्त जो २ भाषायें बोली तथा लिखी जाती रहीं हैं उन सब का इतिहास हमें इस पुस्तक में मिलता है, उनकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई, किस प्रकार उन्नति हुई, किस प्रकार एकका दूसरीमें परिवर्तन हुआ और किन कारणों से पुरानी भाषायें जैसे—संस्कृत, पाली, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, अवधी, उड़िया, बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, हिन्दी इत्यादि २ लोप होती गईं और नवीन का प्रचार अधिक होता गया, इन भाषाओं का एक दूसरे से क्या सम्बन्ध है इत्यादि सब

बातें का बड़ी मनोरंजक रीति से प्रतिपादन किया गया है। इन सब विषयोंकी आलोचना करते समय लेखककी दृष्टि कोण हिन्दी भाषा रहा है। पुस्तक के अन्तिम अध्याय में कोई १०० पृष्ठ में आधुनिक हिन्दी भाषा का किस प्रकार विकास हुआ इस का बड़ा विद्वत्ता-पूर्ण और रोचक वर्णन है। (यह १ अध्याय एक अलग पुस्तकाकार में छप चुका है जिसकी गत अगस्त मास की ज्योति में समालोचना हो चुकी है)

पुस्तक सारगर्भित, मौलिक तथा उपादेय है और हिन्दी भाषा के लिये गर्व की वस्तु है।

जातक कथामाला — अनुवादक तथा प्रकाशक श्री रामचन्द्र वर्म्मा, साहित्य रत्न-माला कार्यालय बनारस सिटी पृष्ठ १६० मूल्य १)

बौद्ध साहित्य में बुद्ध भगवान के पूर्व जन्मों के कृत्यों से संबन्ध रखने वाली कितनी ही कहानियां हैं जिन के लिये जातक शब्द प्रयोग किया जाता है। इन जातकों का बुद्ध धर्म में बहुत ऊंचा स्थान है क्योंकि यह सब कथायें समय २ पर स्वयं भगवान बुद्ध के श्री मुख से निकली हैं ऐसा बौद्ध लोग मानते हैं। इस पहिले भाग में इन्हीं में से ४५ कथाओं का संग्रह किया गया है।

सब की सब कहानियां न केवल रोचक ही हैं वरन् शिक्षा प्रद भी हैं। जीवों पर दया और प्रेम की शिक्षा बौद्ध धर्म का मुख्य आदेश है और वही इन कहानियों में विशेषतया पाई जाती है। इनके पाठ से जहां बौद्ध धर्म की मनोविज्ञानिक स्थिति का पता लगता है वहां बौद्धकाल में भारत इतिहास सम्बन्धी अनेक बातों का भी पता लग जाता है।

उपयोगितावाद—अनुवादक श्री उमराव सिंह कारूणिक, प्रकाशक चौधरी शिवनाथ सिंह शाण्डिल्य। पृष्ठ संख्या १४० मूल्य १)

जान स्टूअर्ट मिल इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हुये हैं। उनकी लिखी Utilitarianism नाम की पुस्तक बड़ी प्रसिद्ध है। उन के मत में किसी भी कार्य की योग्यता उसकी उत्तमता का सूचक है, जितना भी कोई कार्य अधिक उपयोगी है उतना ही वह अधिक उत्तम है। उनका यह सिद्धान्त आचार शास्त्र के किसी प्रकार भी विरुद्ध नहीं—क्योंकि वह उपयोगिता और सुख को, (निर्मल शुद्ध साधनों द्वारा प्राप्त सुख को) पर्याय वाची मानते हैं—इसी का प्रतिपादन इस पुस्तक में किया है। अनुवाद अच्छा हुआ है, भाषा सरल है, और मिल के भावों की रक्षा की गयी है। आरम्भ में मिल की एक छोटी सी जीविनी भी दी गयी है।

सुशिक्षा प्रवेशिका—लेखिका तथा प्रकाशिका श्रीमती विद्यावती देवी पुत्री बाबू रामस्वरूप असिस्टैन्ट मास्टर गवर्नमेंट हाई स्कूल बदायूं। पृष्ठ ७७ मूल्य ≡)॥

यह पुस्तक कन्या पाठशालाओं की चौथी कक्षा के लिए लिखी गई है। पुस्तक में बालकों के जानने योग्य कितनी ही बातें और सदुपदेश पाठों के रूप में वर्णन किये गये हैं। पुस्तक कन्याशालाओं के लिये उपयोगी है और परिश्रम से लिखी गई है।

विशेषांक—प्रताप कानपुर तथा अर्जुन देहली के विशेषांक इस मास में निकले हैं। प्रताप का विशेषांक बड़े मारके का निकला

है। उसके प्रायः सभी लेख विचारोत्पादक सारगर्भित और भाव पूर्ण हैं। आज भारत के सामने हिंदू मुस्लिम ऐक्य, पूर्ण स्वाधीनता, धर्म, गोरों कालों का प्रश्न इत्यादि जो भी महत्वपूर्ण विषय उपस्थित हैं प्रायः सबकी ही विद्वत्तासे आलोचना की गयी है। कविता भी मर्मभेदी और हृदयग्राही है। विशेषांक संग्रहणीय है। शोक कि कागज़ इतना बढ़िया नहीं जितना कि ऐसे उत्तम अंक के लिये होना चाहिये था। पृष्ठ ४४, मूल्य ॥)

अर्जुन का शिवाजी अंक ज्योति के आकार ४८ पृष्ठ पर १० चित्रों सहित प्रकाशित हुआ है जिनमें से ७ दिल्ली के गत हिंदू मुसलिम फिसाद से सम्बन्ध रखते हैं। इसमें महात्मा गांधी का संदेश तथा स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द, महात्मा हंसराज पं० भगवानदास, स्वामी सत्यदेव, डाक्टर केशवदेव इत्यादि विद्वानों के लेख हैं। अधिकांश लेख छत्रपति शिवाजी के जीवन सम्बन्धी घटनाओं और उनसे प्राप्त शिक्षाओं से सम्बन्ध रखते हैं। शोक कि इस अङ्क का भी कागज़ अच्छा नहीं और दिल्ली के दंगे सम्बन्धी तसवीरें भी साफ़ छपी हुई नहीं। मूल्य ।)



विचार प्रवाह



लार्ड लिटन और भारतीय देवियां

सुरक्षित और दृढ़ दुर्ग की उच्च अट्टालिका पर बैठकर यदि कोई राजपथ पर चलते हुए शस्त्र रहित और अस्त्रविहीन व्यक्ति पर तीर चलाये तो यह कायरता की पराकाष्ठा कही जायगी। अपने उच्च पद की चारदिवारी से रक्षित बङ्गाल के लाट ने जो भारतीय अबला नारी समाज पर बाण वर्षा की है हम नहीं समझते कि लाट महोदय के इस कृत्य को किससे उपमा दें। पुलीस को बदनाम करने के लिये भारतीय रमणियां अपने निज आचरण पर झूंठे दोष लगवाना सहज में स्वीकार कर लेती हैं यही लाट महोदय के कथन का सार है। हमें विस्मय है कि लाट साहब को यह कहने का और खुली सभा में कहने का साहस किस प्रकार हुआ ? यह इसी लिये न कि हम भारतवासी एक पराधीन जाति हैं और आजकल की पाशविक सभ्यता के मतानुसार पराधीन का कोई आचार विचार का आदर्श नहीं होता ! भगवन् ! हम पराधीन अवश्य हैं। हमारे में अनेक दुर्गुण हैं और अनेक कुकर्म हैं परन्तु इस गिरी हुई अवस्था में भी हम उसी उच्च सभ्यताके उत्तराधिकारी हैं जिसका ध्येय है

'मातृवत् परदारेषु'

यह उच्च निर्मल और पवित्र भाव आप की अंग्रेज़ी सभ्यता अभी तक अपने हृदय में धारण करना तो एक ओर विचार द्वारा भी समझने में असमर्थ है। राजमार्ग में चलती हुई दीन हीन फकीरनी को, गन्दगी का

टोकरा सिर पर लादे हुये भंगिन को, यदि आज भी 'माई' शब्द से कहीं पुकारा जाता है तो वह हमारे इसी अभागे देश में। हमारे भाई और पुत्र आप के विलायत में जाकर स्वभाववश किसी अंग्रेज़ रमणी को 'माता' कहकर पुकार बैठते हैं तो रमणी इस शब्द के अन्दर छिपे हुए गूढ़ प्रेम, श्रद्धा और भक्ति के भाव को समझ नहीं सकती और पागल की भांति उपहास सूचक हंसी हंस देती है। हम भारतवासी कितने ही निकम्मे हों, कितने ही नीच हों, परन्तु हमारे सतीत्व का जो उच्च आदर्श इस देश में है उस तक पहुंचने में अभी आपको सैकड़ों वर्ष चाहियें। आप विद्या में बड़े हों, बुद्धि में बड़े हों परन्तु आप का यह दावा कि आप सदाचार में भी हमें शिक्षा दे सकते हैं निरा भ्रम है। हमारी भारतीय नारी रत्न को अपने निज नाम का, अपने सतीत्व का कितना ध्यान और गौरव है उसे वह समाज जिस में स्त्रियां परपुरुषों के साथ हाथ में हाथ डालकर घूमती हैं, हंसी मज़ाक करती और बाहों में बाहें डालकर नाचती हैं भला क्या समझ सकता है?

'साईन्टिफिकिट अमरीकन' अमरीका का प्रसिद्ध पत्र है। उस में एक बार लिखा था कि गत महा युद्ध में बल्गेरिया को मित्र दल के साथ मिलाने के उद्देश्य से मित्र दल ने धन और स्त्रियों का खुले हाथ प्रयोग किया था। हम नहीं जानते कि इस में कहां तक सत्य है, परन्तु अंग्रेज़ी साहित्य में हमें इस बात के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि व्यापारी, राजकर्मचारी तथा अन्य व्यक्ति अपनी नीति और रीति को सफल बनाने में स्त्री के मन्द मुस्कान से कितना लाभ उठाते हैं। परन्तु यह Diplomacy है। हम यह मानते हैं कि इस प्रकार के कल्पित पात्र उपन्यास लेखक के मानसिक क्षेत्र की कृति हैं। परन्तु क्या इस लेखक का मन और विचार उस सभ्यता का फल नहीं जिस में उसका जन्म और पालन पोषण हुआ है? हम यह नहीं कहते कि आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता में स्त्री जाति का मान नहीं, हमारा कहना केवल इतना ही है कि स्त्री के आचार की पवित्रता का जो उच्च आदर्श हमारे देश में है उस से आप की सभ्यता अभी कोसों दूर है। आप पढ़े लिखे विद्वान् और बुद्धिमान व्यक्ति हैं परन्तु पाश्चात्य शिक्षा के रंग में रंगे होने के कारण आप हमारी मान मर्यादा के भाव को समझ ही नहीं सके। पद्मिनी सरीखी उन पूर्वजा वीरांगनाओं का रक्त अब भी हमारी रगों में प्रवाहित हो रहा है, जिन्होंने अपने मान की रक्षा के लिये अपने शरीर को तुच्छ समझ हंसते २ भस्म का ढेर कर दिया। लाट महोदय! आप भूल गये अपनी शिक्षा और विद्या को जब आपने ऐसा जघन्य निन्दनीय और नीच आक्षेप भारतीय सती पर किया, आप भूल गये अपनी माता की पुण्य स्मृति को और अपनी भगनी की पवित्र धरोहर को, अन्यथा कब सम्भव था कि आप नारी रत्न का इतना बड़ा अपमान करते तनिक भी न लजाते! यह ठीक है कि आप भारतीय नारी समाज को उस श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से नहीं देख सकते जिसके वह योग्य है इस के लिये पाश्चात्य शिक्षा के सांचे में ढली हुई आप के दिमाग़ की गढ़न्त ही जिम्मेवार है, परन्तु इस का यह तो मतलब नहीं कि आप भारत की देवियों का अपने देश की नारियों जितना भी मान न करें। यह आप को किसने अधिकार दिया कि आप बिना सोचे विचारे, बिना कोई कारण और उदाहरण पेश किये भारत की देवियों पर लांछन लगाने के लिये तय्यार हो जायें? यह

कहां का शिष्टाचार है? यह कहां की सभ्यता है? क्या आप की शिक्षा ने आप को यही सिखलाया है, क्या यही Chivalry है जिस पर योरुप इतना इतराता है? किसी पर भी मिथ्या दोष लगाना पाप है, परन्तु अबला सती पर मिथ्या दोष लगाना महा पाप है।

—:o:—

लार्ड लिटन अपनी सफ़ाई में

ऊपर लिखी टिप्पणी लिखने के पीछे, इस सम्बन्ध में श्रीयुत कविवर टैगौर और लार्ड लिटन के इस विषय में पत्र समाचार पत्रों में छपाये गये। कवि ने लार्ड महोदय से उनके उपरोक्त दोष सम्बन्धी वाक्यों की मीमांसा चाही थी। लार्ड लिटन ने भाषा के शब्द जाल से अपनी रक्षा करनी चाही है। वह कहते हैं कि भारत की स्त्रियों पर ऐसा घृणास्पद दोष लगाना उन का अभिप्राय न था। कुछ इने गिने पुरुष और स्त्रियां ऐसा करते हैं यही उन का अभिप्राय था। भारत की स्त्रियों के लिये उन के मन में बड़ी श्रद्धा और इज़्ज़त है इत्यादि—

इस पर महात्मा गांधी ने अपने 'यंग इन्डिया' में जो टिप्पणी की है वह लार्ड लिटन के इस लचर खुलासे का इतना मुंह तोड़ उत्तर है कि हम उसे यहां उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते:—

"लार्ड लिटन ने कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाम एक पत्र लिख कर अपनी सफ़ाई दी है। उनके खुलासे से मेरी राय में उनके द्वारा किया गया भारतीय स्त्री--जाति का अपमान घटता नहीं उल्टा बढ़ जाता है। लाट साहब ने जो व्याकरण के सूक्ष्म भेदों की दुहाई दी है, उससे मेरी समझ में यह मामला तय नहीं होता। मुझे यकीन है कि जब लाट साहब ने वे गंदे उद्गार प्रकट किये तब किसी को भी यह खयाल तक न था कि लाट सा० का कथन हिन्दुस्तान की स्त्रियों के सम्बंध में आमतौर पर था। पर लोगों की शिकायत तो यह है कि लाट सा० को यह तुहमत लगाने की जरूरत ही क्या पड़ी थी? जब कोई जिम्मेदार आदमी किसी पर कोई दोषा-रोपण करता है तब उसके सम्बंध में हमेशा दो अनुमान होते हैं--- एक तो यह कि खुद उसे उन बातों का पूरा यकीन हो चुका है और दूसरे वह दुनिया के सामने उसे साबित कर सकता है। दूसरा यह कि जिस बुराई के सम्बंध में वह इल्ज़ाम लगाया जाता है वह सर्व-सामान्य हो गई है। अच्छा तो अब पुलिस के सबूत के अलावा जनाब लाट साहब के पास कोई ऐसे सबूत हैं जिससे वे सर्व साधारण को अपनी बात का यकीन करा सकते हैं? और सर्व-साधारण को न सही, कविवर को ही सही। क्या वे इस बात को नहीं जानते कि सर्व-साधारण का मुत्लक विश्वास पुलिस पर नहीं रह गया है? क्या वे यह नहीं जानते हैं कि जहाँ तक सर्व-साधारण से ताल्लुक है पुलिस को आम तौर पर अपनी सुबुकदोषी साबित करना लाज़िमी है? खैरः अच्छा जरा देर के लिए यह भी मान लें कि यह तुहमत कुछ मर्दों और कुछ औरतों के निस्बत सच है, तो क्या वे यह साबित कर सकते हैं कि यह बुराई इतनी सर्व-व्यापक हो गई है कि जिसके लिये उन्हें जन-साधारण के सामने उसकी निन्दा करने की ज़रूरत हुई। यदि कोई जिम्मेदार हिन्दुस्तानी यह कहे कि अंग्रेज़ सिविलियन लोग चरित्र हीनता और अनीतिमत्ता के अपराधी हैं क्योंकि उसने ऐसे इक्के--दुक्के सिविलियनों को देखा है, तो क्या उसका यह कहना न्याय-युक्त होगा? और अगर कोई ऐसा कहेगा तो क्या लाट साहब तपाक के साथ उठकर उसे भली बुरी न सुनावेंगे और अदालत में घसीट कर उससे इस बात पर माफ़ी न मंगवायेंगे कि जो बुराई केवल कुछ लोगों पर घटती है उसे उसने एक सारे समाज पर लाद दिया। ऐसी अवस्था में क्या वह मुल्जिम 'कुछ' शब्द की ओट में अपनी सफाई दे सकेगा? यदि लार्ड लिटन के कहने का अभिप्राय सिर्फ़ इतना ही होता है कि हिन्दुस्तानी जन-समाज में कुछ पतित औरतें भी हैं,

जैसे कि तमाम राष्ट्रों में होती हैं, तब फिर उनको शिकायत के लिये जगह ही कहाँ रह जाती है ? फिर भी ऐसे भाषण में जो कि गंभीरता से पूर्ण था और वे जानते कि इस के एक एक शब्द यहाँ से बड़े ध्यान से पढ़ा जायगा और विदेशों में भी उसका काफ़ी वजन माना जायगा। अतएव मैं अदब के साथ यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि उसका उद्देश यह न रहा हो कि भारतीय स्त्रियों और पुरुषों पर छींटे उड़ाये जाँय, तो उनको बिला खरखशा इस तुहमत के लिए माफ़ी माँग लेनी चाहिये। ऐसा करके वे अपनी प्रतिष्ठा और गौरव की वृद्धि ही करेंगे। इसके खिलाफ अगर उनके पास वैसे सबूत हों जैसे कि मैंनै सुझाये हैं तो उन्हें हिम्मत के साथ अपने इल्ज़ाम की पुष्टि करनी चाहिये। और जन-साधारण के सामने वे सबूत उपस्थित कर देने चाहिए। लचर खुलासा कोई खुलासा नहीं होता। यह तो मानो जले पर नमक छिड़कना है।"

आर्यसमाज और महात्मा गांधी

महात्मा जी ने लार्ड लिटन के सम्बन्ध में जो कुछ ऊपर लिखा है उस से हम पूर्णतया सहमत हैं। परन्तु आशा है महात्मा जी हमें क्षमा करेंगे यदि हम उन से उनके अपने ही शब्दों में दो चार प्रश्न करने की धृष्ठता करें। महात्मा जी ने अपने हिन्दू-मुसलिम तनाज़ा शीर्षक लेख में आर्य समाज पर अपने विचार प्रगट करते हुए आर्यसमाजियों पर एक आक्षेप किया था कि वह हिन्दू बनाने के लिये मुसलमान स्त्रियों को उनके घरों से भगा ले जाते हैं। महात्मन ! क्या आर्यसमाज पर उपरोक्त दोष लगाते समय आपको खुद इसका पूरा यकीन हो चुका था और क्या आप उसे दुनियां के सामने साबित कर सक्ते हैं ? क्या आप इस बुराई को सर्व मान्य समझते हैं। ......खैर अच्छा जरा देर के लिये यह भी मान लें कि यह आक्षेप कुछ आर्यसमाज नामधारियों के सम्बन्ध में सच हैं तो "क्या वे यह साबित कर सकते हैं कि यह बुराई इतनी सर्वव्यापक होगयी है कि जिसके लिये उन्हें जन साधारण के सामने निन्दा करनी जरूरी हुई ? क्या आप 'मुझे ऐसा बतलाया गया है शब्दों की ओटमें अपनी सफाई दे सकते हैं ?" यदि महात्मा जी के लिखने का अभिप्राय सिर्फ इतना ही होता कि आर्यसमाजियों में कुछ ऐसे पतित आदमी भी हैं जैसे कि अन्य मतावलम्बियों में हैं तब फिर उनकी शिकायत के लिये जगह ही कहां रह जाती है ? फिर भी ऐसे लेखमें जो कि गंभीरता से पूर्ण था और जिसे वे जानते थे कि इसके एकएक शब्द यहां बड़े ध्यान से पढ़े जायगे और विदेशों में भी इसको काफी वजन दिया जायगा ? अतः हम अदब के साथ यह कहे बिना नहीं रह सकते कि यदि महात्मा जी का उद्देश यह न रहा हो कि आर्यसमाजियों पर छींटे उठाये जांय, तो उनको बिना खरखश इस आक्षेप के लिये माफ़ी मांग लेनी चाहिये। ऐसा करके वह अपनी प्रतिष्ठा और गौरव की वृद्धि ही करेंगे। इसके खिलाफ अगर उनके पास वैसे सबूत हों जैसे कि महात्मा जी ने स्वयं ऊपर सुझाये हैं तो उन्हें हिम्मत के साथ अपने इल्ज़ाम की पुष्टि करनी चाहिए, और जब साधारण के सामने वे सबूत उपस्थित कर देने चाहियें।

ली कमीशन की शिफ़ारशें रद्द

स्वराज्य पार्टी ने कई सफलताओं के बाद अब एक बड़ी सफलता ली कमीशन की रिपोर्ट की सिफारिशों को रद्द करते हुए प्राप्त की है। इस सफलता पर स्वराज्यपार्टी फूली नहीं समाई है किन्तु सरकार पर इस पराजय का कुछ भी असर हुआ नहीं मालूम होता है। सरकार अभी इन सिफारिशों को भारत की लार्ड सभा (कौंसिल ऑफ स्टेट) में पेश करना चाहती है और किसी न किसी प्रकार मचले हुए गोरे नौकरों की मांग पूरी करने का निश्चय किये हुये हैं। सरकार को इंग्लैण्ड से आने वाले गोरे नौकरों की अधिक चिन्ता है। वे विचारे इंग्लैण्ड सरीखे शीत प्रधान देश से सात समुद्र पार भारत की गरम हवा में आकर भारतीयों की सेवा करते हैं। केवल भारतीयों की सेवा के विचार से ही अपने घर बार का मोह छोड़ कर यहां आते और कुछ सैकड़ों और हज़ारों पर ही अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। हिन्दू मुसलमानों को परस्पर लड़ने झगड़ने से रोकने और नीच जाति के (अछूत कहे जाने वाले) लोगों की ऊंची जाति के लोगों के अत्याचारों से रक्षा करते हैं। ये परोपकारी निःस्वार्थी गोरे भारत की नौकरशाही के बड़े लाड़ले बेटे हैं। नौकरशाही की सत्ता के जहाज के भारी लंगर हैं। नौकरशाही को उनके ऐशो आराम की रात दिना चिन्ता रहती है। हज़ारों की नौकरियों में कुछ और सैकड़े मिलाकर नौकरशाही उन्हें खुश रखना चाहती है। ली कमीशन इसीलिये बिठाया गया था और उस कमीशन की सिफारिश हैं कि गोरेसिविलयनों को भर पेट देने के लिये आधे पेट भूखे रहने वाले भारतीयों पर दो करोड़ खर्चा और बढ़ाना चाहिये। भारत की बड़ी कौंसिल (एसेम्बली) में इस विषय की चर्चा हुई। तीन दिन की अच्छी ज़ोरदार बहस के बाद नौकरशाही को बुरी हार खानी पड़ी। ६८ विरुद्ध ४६ मत से सरकारी प्रस्ताव के विरुद्ध पं० मोतीलाल नेहरू का संशोधन पास करके सिफारिशों को एसेम्बली ने रद्द कर दिया है। इस जयपराजय का परिणाम तो शायद ही कुछ हो किंतु बहस में कई एक विषय बहुत स्पष्ट हो गये हैं।

इस कमीशन का कार्य कुछ ऐसे ही ढंग से हुआ है जिससे सरकार का झुकाव सिविलियनों की ओर साफ़ साफ़ दीखता रहा है। कमीशन के सामने सब साक्षियां बन्द कमरों में हुई हैं। फिर केवल रिपोर्ट प्रकाशित की गई है, साक्षियां नहीं। यह सब सर्व—साधारण से किसी गुप्त हेतु से ही छिपाया गया है। इस पर भी आश्चर्य यह है कि रिपोर्ट में दुहाई तो इस बात की दी गई है कि सरकार सब सिविलियन नौकरियां धीरे धीरे भारतीयों को ही देना चाहती है किन्तु उसमें नौकरियों के लिये गोरों की इंग्लैण्ड में भरती के बन्द करने के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। पर अप्रत्यक्ष रूप में गोरों को भारत में आने के लिये उत्साहित करने के लिये ही यह सब प्रपंच रचा गया है। वास्तविक बात यह है कि भारत का शासन इस समय इस ढंग से हो रहा है कि यहां गोरी-नौकरशाही की जगह ऐसी काली नौकरशाही स्थापित की जाय, जिस का रूप रंग, हाड़ मांस तो भारतीय हों किंतु उसका स्वभाव, रुचि और रीति व नीति पूरी तरह अंग्रेज़ी हो। इसीलिये वही भारतीय सिविलियन बनकर ऊंचे पद पर पहुंच सकता है जोकि अपने आत्मा को नौकरशाही

के हाथ में बेच देता है। श्री० पं० मोतीलाल नेहरू ने इस बात पर इसी लिये विशेष ज़ोर दियाहै कि हम लोग तो शासन का दृष्टिकोण भी बदलना चाहते हैं। गोरे माई बापों के बदले में हम काले माई-बाप नहीं चाहते किन्तु हमें तो भाई-बहिन की आवश्यकता है। मुख्य प्रश्न यही है कि सरकारी नौकरों की नौकरियों की बागडोर ही भारतियों के हाथ में रहनी चाहिये, न कि केवल उनके वेतनों को घटाने बढ़ाने के प्रस्तावों पर 'हां' या 'न' कहने मात्र का अधिकार। दूसरी बात जिस में सिवाय सरकारी लोगों के प्रायः सभी भारतीय सदस्य—यहां तक कि ईसाई सदस्य श्रीयुत एस. के. दत्त और सरकार द्वारा नियुक्त श्रीयुत सीतलवाद और शिव स्वामी ऐय्यर—भी सहमत हैं, वह यह है कि इंग्लैण्ड में नौकरियों के लिये गोरों की भर्ती एक दम बन्द कर देनी चाहिये। अपने अन्तिम भाषण में श्री० मोतीलाल नेहरू ने गृहसचिव से यही कहा है कि वह भारत-सचिव तक इस बात को पहुंचा दे। इस प्रकार विवाद से स्पष्ट होगया है कि गोरे सिविलियनों की भारी तनखाहों की नौकरियों से भारतीय तंग आगये हैं और वे इस प्रथा को यहीं समाप्त करना चाहते हैं। सरकार की इच्छा के यह बिलकुल विरुद्ध है और वह अपनी इच्छा को हर प्रकार से पूरा करेगी। हम देखना चाहते हैं कि श्री मोतीलाल नेहरू अपने दल की विजय को कामयाब विजय बनाने में कहां तक सफल होते हैं?

बंगाल में भी द्वैधशासनका अन्त

मध्यप्रान्त के बाद बंगाल में से भी द्वैध शासन की रथी उठ गई और वहां के मंत्रियों के विभागों का कार्य भी वहां के गवर्नर ने अपने हाथ में ले लिया है। लार्ड लिटन की सरकार ने वहां की स्वराजपार्टी से मुठभेड़ करने और उसको चारों खाने चित्त गिराने की पूरी कोशिश की किन्तु उलटे मुंह स्वयं गिरना पड़ा। अपनी कटती हुई नाक को बचाये रखने के लिये हज़ार कोशिशें की गईं किन्तु मन्त्रियों के वेतन का प्रस्ताव गिर ही गया। बंगाल की स्वराजपार्टी विशेषतः देशबन्धु दास के लिये यह विजय विशेष गौरव का अवश्य है और साथ ही पढ़े लिखे लोगों की राजनीति की चर्चा के लिये भी यह विषय विशेष महत्व का है किन्तु शहरों से दूर गावों के झोपड़ों—नहीं नहीं, जमीन के बिछौने और आसमान की छत तले भूखे पेट सोने वाले करोड़ों भारतीयों की 'रोटी-नमक की राजनीति का इस विजय और विषय से क्या सम्बन्ध? यह अभूतपूर्व विजय उनके लिये क्या करेगी? मध्यप्रान्त में उसने क्या कर दिखाया? हमें तो यह सब यत्न जड़ों में पानी न देकर पत्तों पर पानी छिड़कने के समान ही जान पड़ते हैं। अभी कलकत्ता में स्वराज्यदल ने अपने कार्यक्रम में ग्राम्यसंगठन को और (महात्मा गांधी के आग्रह पर ही सही) चरखा व खादी को भी विशेष स्थान दिया है। बंगाल के स्वराज्यवादी कौंसिल को तोड़ने की हवस पूरी कर कौंसिलों के काम से छुट्टी पाचुके हैं। क्या अब वे अपने ही कार्यक्रम के मुख्य-अंश ग्राम्यसंगठन और चरखा व खादी की ओर न झुकेंगे अथवा मध्यप्रान्त के स्वराज्यवादियों की तरह हाथ पर हाथ धर कर घरों में ही बैठ जायेंगे?

श्रीमती ऐनीवीसेंट फिर प्रगट हुईं

सब तरह के मतभेद को रखते हुये भी देवी बीसेण्ट के इस बुढ़ापे के उद्योग की सराहना जितनी भी की जाय, उतनी ही

थोड़ी है। बाल पक चुके हैं, शरीर ढीला पड़ चुका है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई हैं किंतु फिर भी देवी वीसेण्ट भारत के राजनीतिक क्षेत्र में अपने विचारों के अनुसार कार्य करने में किसी से पीछे नहीं है। महात्मा जी से बम्बई में मिलने के बाद वह मद्रास, कलकत्ता, नागपुर आदि सब जगह घूम कर शिमला पहुंच चुकी हैं। वहां वे भी मोतीलाल नेहरू से मिली हैं। दूसरे लोगों से भी मिली हैं। उनकी स्कीम यह है देश के सभी राजनीतिक-दलों की प्रतिनिधियों की प्रयाग या किसी केन्द्रस्थ जगह में नवम्बर के अन्त में एक परिषद् हो, जिस में इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट के सामने पेश करने के लिए स्वराज्य की एक स्कीम तैयार की जाय। देवी वीसेण्ट की इंग्लैण्ड के प्रति लगी हुई आशा का अभी भी भंग नहीं हुआ है। हमारा ख्याल है कि देवी वीसेण्ट की इस स्कीम में भी देश के पैसे, शक्ति और समय का अपव्यय ही होगा, कुछ लाभ नहीं। भारतीय महिलाएं देवी वीसेण्ट के इस उद्योगशील-चरित्र से बहुत कुछ सीख सकतीं हैं और भारतीय राष्ट्र के काम में अपने ही ढंग से बहुत अधिक हाथ बंटा सकती हैं। देवी वीसेण्टने इस समय फिर कार्यक्षेत्र में आते हुए महात्मा जी के आग्रह पर चरखा कातना भी स्वीकार किया है।

महात्मा गांधी का उपवास

महात्मा गांधी १८ सितम्बर को दिल्ली पहुँचे। यहां पर वह कुछ मास रहने का विचार करके आये हैं जिस में वह हिंदू मुसलिम समस्या पर शान्ति पूर्वक विचार कर सकें। वह चाहते हैं कि किसी एक अथवा अनेक व्यक्तियों को हिंदू और मुसलमान पंच मान लें और वह आद्योपान्त इस झगड़े का सारा ब्योरा सुनकर अपना मत प्रकट कर सकें कि किसका कितना अपराध है, किस की ओर से अत्याचार होते हैं, किस प्रकार अपराधियों को जाति दण्ड दे सकती और किस प्रकार देश में लगी यह आग बुझाई जा सकती है। वह यह भी चाहते हैं कि पंच कमेटी केवल दिल्ली के झगड़े के संबन्ध में ही विचार न करें वरन मलाबार मुलतान, सहारनपुर से लेकर दिल्ली और गुलबर्गा तक सब स्थानों पर किये गये फिसादों के सम्बन्धमें पूरी २ जांच करके अपना निष्पक्ष मत प्रगट करें। इस विषय में वह अभी परामर्श कर ही रहे थे कि कोहाट और लखनऊ के नवीन दंगे के समाचारों ने उनके मन पर बड़ा आघात पहुंचाया। १७ सितम्बर को उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि वह २१ दिन तक भोजन का सर्वथा त्याग करेंगे उनसे यह प्रति दिन का देवालयों का अपमान, स्त्रियों पर अत्याचार और निरपराधियों का पैशाचिक संहार देखा नहीं जा सकता। वह कहते हैं कि २१ दिन इस काम के लिये पर्याप्त हैं कि समस्त देशवासी मिलकर इस अग्नि को शान्त कर दें, या कम से कम इसे शान्त करने का शुद्ध हृदय से प्रबल उद्योग आरम्भ कर दें। यदि यह बात २१ दिन में असम्भव है तो वह अपना जीना नि-

रर्थक समझते हैं। महात्मा जी कहते हैं कि यह व्रत वह प्रायश्चित के रूप में कर रहे हैं। वह समझते हैं कि इस देश व्यापी जागृति को—जिसने कि आज यह पैशाचिक रूप धारण कर लिया है—उत्पन्न करने में उनका बड़ा भारी हाथ है। उन्हें शोक है कि वह इस जागृति को अहिंसात्मक न रख सके। यदि इस जागृति द्वारा इस प्रकार निरपराधियों को रक्तपात होना था तब तो इस से इसका न होना ही अच्छा था। क्योंकि यह जागृति उन्होंने स्वयं उत्पन्न की है अतः इस रक्तपात के लिये भी वह अपने को ही जिम्मेवार समझते हैं, और इसी लिये प्रायश्चित रूप से उन्होंने २१ दिन के लिये भोजन त्याग दिया है। हकीम अज़मलखां, मौलाना मुहम्मदअली इत्यादि नेताओं ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रार्थनाकी कि आप ऐसी भीषण प्रतिज्ञा नकरें, मौलाना मुहम्मदअली ने तो यहां तक कहाकि –"परमात्मा न करे यदि इन दिनों के उपवास के कारण आप का हम से विछोह होगया तो मैं आप को अहिंसावादी रहने का विश्वास नहीं दिला सकता। इस अवस्था में किंचित् मैं पहिला व्यक्ति होऊंगा जो कि इस असह्य आपत्ति के मूल कर्ताओं पर हिंसा का हाथ चला बैठू"। परन्तु महात्मा जी दृढ़ और अटल रहे।

इस अवस्था में देश के नेताओं, हिंदू और मुसलमानों पर कितना उत्तर-दायित्व आ पड़ता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। जो अपने को महात्मा जी के भक्त और अनुचर कहने में गर्व करते आये हैं आज उनकी भक्ति की जांच का समय है। महात्मा जी की इस भीषण प्रतिज्ञा ने जहां हमारे दिलों में एक प्रकार का सहम पैदा कर दिया है वहाँ यह एकता स्थापना के लिये एक दैवी प्रेरणा है। यदि इस अभागे देश के अच्छे दिन आने हैं तो अवश्य हम इस अंधकारमय रात्रि में भी सत्यपथ को उपलब्ध कर मनोवांछित ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे। यदि हमारे हृदय में एकता के लिए वास्तविक चाह है, यदि हमारे हृदय कोमलता, मधुरता, प्रेम और भक्ति जल से विहीन सर्वथा शुष्क नहीं हो गये, यदि धर्म का आदर्श केवल पाशविकता और झूंठा स्वाभिमान ही नहीं रह गया है तो क्या हम अपने मोहन की बंसी से यह दुःख भरी तान सुनकर भी चुप रह सकते हैं?

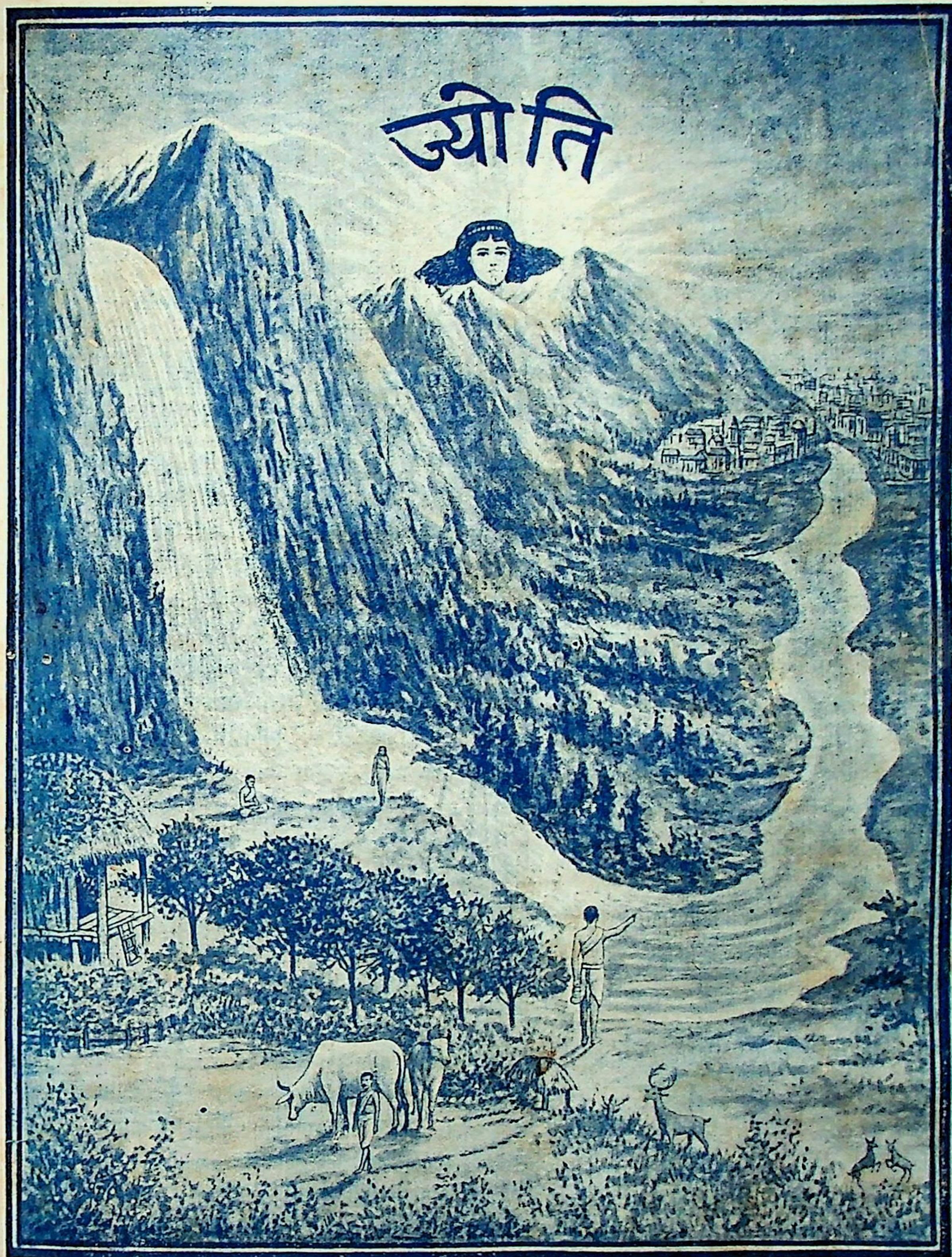
समाचार पत्रों से हम सहयोगी के नाते बलपूर्वक आग्रह करते हैं कि वह इस समस्त झगड़े को शान्त करने के लिये शुद्ध हृदय से भरसक यत्न करें। कोई ऐसा वाक्य अपने पत्रों में न आने दें जो कि महात्मा गांधी के जले हृदय पर नमक छिड़कने का काम दे।

(१८-९-२४)

सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ और द्वाव त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पब्लिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया।

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५] आश्विन १९८१—अक्टूबर १९२४ [खण्ड ५, संख्या ६



वार्षिक मूल्य ४॥) सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए० स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)

प्रति संख्या ॥) विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

—:o:—

ग्राहकों के लिये:--

(१) ज्योति प्रति अंगरेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी।

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य --

१ वर्ष के लिये ४॥) है।

६ मास के लिये २॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।

पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, **'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये**



वर्ष ५ } आश्विन १९८१—अक्टूबर १९२४ ई० { संख्या ६

तू और मैं । *

लेखक श्रीयुत मुकुन्द

कठिन-पिपासा मैं—तू प्रभो ! स्निग्ध-पय[1] ।
अन्धकार—घन मैं—तू है ज्योतिर्मय ॥
मैं बलहीन महा—तू है नव-बल-मय ।
मैं हूं अति कठोर—तू है सुदया-मय ॥
मैं माया-बन्धन—तू है सुमुक्ति मय ।
मैं अशान्ति-करणी[2]-तू देव ! शान्ति-मय ॥
मैं सन्तति दुष्टा—तू अम्ब, स्नेह-मय ।
मैं एक सहारा[3]—तू स्निग्ध-हिमालय ॥
तू जगत का प्राण—मैं हूं जगत-काल ।
मैं अति-भक्ति-हीन-तू भक्त प्रति पाल ॥
मैं हूं अणु-प्राय—तू उन्नत महान् ।
तू है विश्वराज—मैं दीन, अज्ञान ॥
कूटस्थी[4], चैतन्य, तू सचराचर में ।
श्यामल, सुन्दर है-मम-मन-मन्दिर में ॥

* बंगला से अनूदित

१—तरल जल । २-अशान्तिकारी । ३—रेगिस्तान । ४—बेहोश ।

गृहस्थ सम्बन्धी एक आवश्यक सुधार

लेखक-श्रीयुत सत्यदेव विद्यालंकार सम्पादक "मारवाड़ी"



वैदिक गृहस्थ का आदर्श इतना उच्च और पवित्र है कि यदि उस पर आचरण किया जाय तो आज गृहस्थ सम्बन्धी सब दुःखों का अन्त हो सकता है। वैदिक-शास्त्रों में गृहस्थाश्रम की मर्यादा को संयम पूर्वक निवाहने का विशेष आदेश किया है। आश्रमपद्धति की यही विशेषता है कि मनुष्य इस द्वारा अपने जीवन को सफल और पूर्ण बना सकता है। इन आश्रमों में यद्यपि प्रत्येक का अपना अपना महत्व है किन्तु फिर भी गृहस्थाश्रम को सबसे श्रेष्ठ पवित्र और उच्च बताया गया है। मनु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति आदि स्मृतिकारों ने—जिन्होंने समाजशास्त्र की व्यवस्था पर कुछ भी लिखा है—गृहस्थ की मर्यादा पर विशेष ज़ोर दिया है। गृहस्थ में प्रवेश करना वैदिक पद्धति के अनुसार कुछ सहज बात नहीं है। इस समय तो विवाह करना एक बिलकुल साधारण बात समझी जाती है और यह एक रिवाज़ सा हो गया है। माता पिता पुत्र या पुत्री का का विवाह करना आवश्यक समझते हैं—इतना आवश्यक कि इस समय समाज में ऐसे पुरुष बहुत मिलेंगे जो एक स्त्री के देहान्त के बाद दूसरा, तीसरा और चौथा विवाह भी झट कर बैठते हैं। इस प्रकार पुरुषों में पुनर्विवाह की रीति आम मिलती है। इतना ही नहीं किन्तु इसी विचार ने—कि विवाह आवश्यक है—समाज में गृहस्थ सम्बन्धी अनेक कुरीतियां पैदा करदी हैं। बालविवाह, वृद्धविवाह, बे जोड़ विवाह, कन्या-विक्रय आदि कुरीतियां बहुत सम्भव इसी विचार से पैदा हुई हैं। लड़के लड़कियां घरों में गुड्डे गुड्डियों के खेल खेलते हैं किन्तु माता पिता तो खुले बाज़ारों में ये खेल खेलते ज़रा भी नहीं शरमाते। इसी प्रकार पुरुष इतना व्यसनी बन चुका है कि ४०, ४५ वर्ष की आयु में भी वानप्रस्थ व संन्यास का विचार न करता हुआ गृहस्थ में ही फसा रहना पसन्द करता है। एस ही वृद्ध विवाहों से असमान—बे जोड़—विवाह होते हैं और कन्या-विक्रय का प्रपञ्च समाज में फैलता है। आज इन्हीं कुरीतियों ने स्वर्गधाम गृहस्थ को नरकधाम बना रक्खा है और इसी से संसार में जहाँ तहाँ दुःख ही दुःख दीख पड़ता है। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिये संसार छटपटा रहा है। वैज्ञानिक आविष्कारों की तरह सामाजिक आविष्कार भी जहां तहां हो रहे हैं किंतु समाज को इस नरक में से बाहिर निकालने में आज तक कोई भी आविष्कार सफल नहीं हुआ है। प्रेम विवाह और तलाग भी संसार के इन दुःखों को घटा नहीं सके। फ्रांस, इंगलैण्ड, अमेरिका और रशिया का गृहस्थ भी कुछ सुखी गृहस्थ नहीं है। अपने देश के गृहस्थ की तो बात ही क्या करनी है? स्त्रियों में परम्परागत पातिव्रत-धर्म की थोड़ी सी गन्ध रह गई है, इसलिये वे पुरुषों के अत्याचार व स्वेच्छाचार के विरुद्ध चाहे कुछ आवाज़ न उठाय किंतु इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुरुषों के स्वेच्छाचार और अत्याचार ने गृहस्थ को बिलकुल नरक-धाम बना दिया है।

आर्यसमाज के पण्डित, उपदेशक, सन्यासी और विद्वान् लोग अपने व्याख्यानों और लेखों में वैदिकगृहस्थ के बड़े मनोमोहक

सुन्दर और आकर्षक-चित्र प्रायः खींचा करते हैं, किन्तु ऐसा आर्यसमाजी शायद ही कोई मिले जिसका गृहस्थ उस चित्र के अनुरूप हो। निस्सन्देह, वह आर्यसमाजी अत्यन्त भाग्यशाली और धन्य होगा जिसका गृहस्थ वैदिक आदर्श को लिये हुये स्वर्गधाम बना हुआ होगा। किन्तु लेखक का ध्यान जहां तक जाता है, उसे एक दो आर्यसमाजी-गृहस्थ भी ऐसे नहीं दीखते हैं जिन्हें वह संसार के वर्तमान दुःखी गृहस्थ से ऊपर उठा हुआ कह सके। आर्यसमाज वैदिक सभ्यता की संरक्षक-संस्था है। उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द वैदिक-सभ्यता के पुनरुद्धारक-महापुरुष हैं। दुःख है कि उसके अनुयायी आर्यसमाजी उस महापुरुष के जन्म के बाद सौ वर्ष में भी अपना जीवन—अपना गृहस्थ—उसके आदर्श के अनुकूल नहीं बना सके। यह क्यों? इसका उत्तर एक ही है कि हम आर्यसमाजियों ने महर्षि के आदेश व उपदेश को जीवनमय बनाने का यत्न इतना कम किया है कि उसे न के बराबर कहने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। यही एक कारण है जिससे आर्यसमाज में समष्टिरूप में और आर्यसमाजियों में व्यक्तिरूप में कुछ ऐसी न्यूनतायें मिलती हैं कि उनसे आर्यसमाज और आर्यसमाजियों में एवं महर्षि दयानन्द का नाम—उज्वल होते हुये भी कलङ्कित ही हुआ है। यह कलङ्क अमिट हो सकता है यदि हम अब भी सावधान न हुये। आज इस लेख में वैयक्तिक जीवन—गृहस्थ—सम्बन्धी एक ऐसे सुधार की ओर आर्य भाइयों का ध्यान आकर्षित करना है, जिसका निर्देश महर्षि 'सत्यार्थ-प्रकाश' में कर गये हैं और जिसके पालन करने की ओर हमने बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया है।

पुनर्विवाह, नियोग आदि पर लिखते हुये महर्षि दयानन्द ने एक वाक्य बहुत ही भावपूर्ण लिखा है। वह वाक्य यह है कि

"द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है द्वितीय वार नहीं। कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्रीक पुरुष के विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है।..............................

..................यही धर्म है कि जैसे के साथ वैसे का ही सम्बन्ध होना चाहिये।"

यह वाक्य है जिसमें महर्षि दयानन्द ने समाजशास्त्र का एक वह सिद्धान्त लिख दिया है कि उसका पालन गृहस्थ के आधे से अधिक दुःखों को और तीन चौथाई से अधिक गृहस्थसम्बन्धी बुराइयों को निश्चय ही मिटा सकता है। जैसे के साथ वैसे का—गुण, कर्म, स्वभाव से यदि—विवाह सम्बन्ध किया जाय तो आयु भर सुख, शान्ति, सन्तोष से गृहस्थ का भारी भार निभाहना बहुत सुगम हो जाय। किन्तु इस समय आज भी बड़े २ आर्यपुरुष गुण, कर्म, स्वभाव से अधिक जन्म को, जन्मपत्रियों और कुण्डलियों को महत्व देते हैं। जन्म के बन्धन को तोड़कर अपने लड़के लड़कियों के विवाह सम्बन्ध करने वाले आर्यपुरुष बहुत कम हैं। इससे भी अधिक उपयोगी सिद्धान्त दूसरा है जिसकी ओर महर्षि ने अपने ऊपर के वाक्य में निर्देश किया है। वह यह है कि "द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही बार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय बार नहीं।" इसकी व्याख्या आगे

महर्षि ने इस प्रकार की है कि "कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्रीक पुरुष के विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है।" अब, आर्य पुरुष स्वयं कहें कि क्या उनमें यह अन्याय अर्थात् अधर्म विद्यमान है कि नहीं? यही अधर्म है जिसका फल गृहस्थ के दुःखों के रूप में भोगना पड़ता है। यदि यह अधर्म समाज में से उठ जाय तो निश्चय ही समाज विधवाओं की आहों और शापों से बहुत कुछ बच जाय। बहुत कुछ वे जोड़ —असमान आयु के—विवाह रुक जांय और कन्या विक्रय की बुरी प्रथा का मुंह भी बहुत अंशों में काला हो जाय। इस समय गृहस्थ के दुःखों को दूर करने के लिये बहुत कुछ यत्न हो रहा है और विधवाओं के संताप को मिटाने के लिये तो विशेष उद्योग के साथ विधवा विवाह का आन्दोलन किया जा रहा है। वह सब ठीक है किन्तु वे आन्दोलन तबतक सफल नहीं हो सकते जब तक कि इस आन्दोलन को नहीं उठाया जाता कि "कुमार के साथ ही कुमारी का विवाह होना चाहिये, मृतस्त्रीक-पुरुष के साथ नहीं।" जब ऐसे विवाह सम्बन्धों को अन्याय, अधर्म, पाप समझ कर रोका जायगा, तब मृतस्त्रीक-पुरुष स्वयं ही विधवाओं के साथ विवाह करेंगे और विधवा-विवाह का प्रश्न विशेष सुलभ हो जायगा। विधवाविवाह होने से असमान आयु के विवाह बन्द होंगे और विधवाओं की संख्या बढ़ने के बजाय घटनी शुरु होगी।

आज कितने ही आर्य-पुरुष हैं जिन्होंने समाजशास्त्र के इस सिद्धान्त को पैरों तले रौंदा है और एक स्त्री की मृत्यु के बाद फिर दुबारा कुमारी के साथ ही विवाह करते हुये समाज के प्रति अन्याय अधर्म व पाप किया है। दुःख तो यह है कि ऐसा अधर्म करने वाले इसे अधर्म नहीं कहते, पाप नहीं समझते और अन्याय नहीं मानते। वे यदि इसे अपनी कमज़ोरी मानें और पाप में गिरकर अपने को पापी समझें तब भी शायद उनके अधःपात का दूसरों पर कुछ प्रभाव न पड़े। किन्तु नहीं, आर्य पुरुषों में यह पतन-पाप या अधर्म—घर कर चला है। आज ऐसे अनेक आर्य पुरुष आर्य समाजों के पदाधिकारी हैं जिन्होंने इस नियम के विरुद्ध आचरण किया है। बात एक है, वह यही कि हमने महर्षि के आदेशों को जीवनमय बनाने की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया है। यही कारण है कि हमारे गृहस्थ महर्षि दयानन्द द्वारा पुनरुद्धार किये हुये वैदिक आदर्शों के अनुकूल नहीं बने हैं। हम आर्य पुरुष भी यह दावा नहीं कर सकते कि हमारे गृहस्थ सम्बन्धी सब दुःखों का अन्त हो गया है। आर्य समाज की वेदी के ऊपर खड़े होकर और अपने समाचार पत्रों के काग़ज़ों में हम वैदिक—गृहस्थ के अत्यन्त मनोमोहक चित्र अवश्य खींच सकते हैं किन्तु अब लोग उन चित्रों से ही आकर्षित नहीं होते। वेद के मन्त्र, उपनिषदों के वाक्य, स्मृतियों के श्लोक और रामायण व महाभारत के किस्सों से लोग थक चुके हैं, अब वे हमारे जीवनों को टटोलते हैं। यदि हम अपने जीवनों में उस आदर्श-चित्र की एक हलकी सी रेखा भी दिखा सके तो निश्चय ही निराश दुनिया आशा भरी खिंचावट से हमारी ओर खिंचती चली आयगी। अन्यथा माथे पर लगा हुआ टीका दिन पर दिन गहरा होता चला जायगा। क्या आर्य पुरुष इस छोटे से सुधार की ओर दृढ़ निश्चय और वेगवती अभिलाषा से आगे बढ़ेंगे?

———

विवाह

लेखक----श्रीयुत स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी

प्रत्येक देश और प्रत्येक मत में विवाह होता है। जो असभ्य माने जाते हैं उनमें भी विवाह की प्रथा है। अन्य देशों को छोड़ कर यदि भारतवर्ष को ही लें तो भी यही निश्चय होता है। भारत वर्ष में इस समय तीन सभ्यताएं अपना २ काम कर रही हैं (१) आर्य सभ्यता (२) ईसाई सभ्यता (३) मुहम्मदी सभ्यता-इन तीनों में विवाह की प्रथा नियम पूर्वक है। यह सत्य है कि उनके नियम भिन्न २ हैं। वह अपने २ ढंग से विवाह करते हैं, जहां मुहम्मदी भाई बहु,विवाह के पक्षपाती हैं वहां ईसाई इसके सर्वथा विरूद्ध हैं। जहाँ मुहम्मदी भाई समीप संवन्ध में विवाह करते हैं वहां आर्य समीप सम्बन्धी विवाह को घृणित मानते हैं। इसलिये वह प्रायः विवाह दूर ही करते हैं। इसी भांति ईसाई और मुहम्मदी भाई जहां विवाह सम्बन्ध को सामयिक मानते है वहां आर्य धर्म "एषा मा भेदि" का पाठ पढ़ाता है। इसी प्रकार अनेक प्रकार की भिन्नता परस्पर मिलती है। किंतु आज हमने इस भिन्नता पर कोई विचार नहीं करना है और नहीं यह दिखाना है कि उपरोक्त पक्षों में कौनसा पक्ष उत्तम है और कौनसा अधम है, और नहीं ईसाई तथा मुसलमानों पर कुछ लिखना है। इस लेख में केवल आर्य्यों के एक नियम पर लिख कर इस लेख को समाप्त करना है।

आर्य्य धर्म में जो विवाह के नियम हैं उन में एक नियम यह भी है कि विवाह समीप सम्बन्ध में न किया जाय अर्थात् समीप वंश में विवाह नहीं हो सकता है इसलिये विवाह में जहाँ और कई बातें देखनी पड़ती हैं वहाँ इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है। इस विषय में मनुस्मृति में एक श्लोक मिलता है जो इस नियम की सीमा बांधता है और बताता है कि समीप में किन किन स्थानों पर विवाह न किया। जाय यथाः--

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा चया पितुः।
सा प्रशस्ताद्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने।
मनु० अध्याय ३ श्लोक ५

अर्थात् जो कन्या माता की असपिण्डा हो और पिता से असगोत्रा हो वह ही विवाहार्थ प्रशस्त है।

इस श्लोक में असपिण्डा और असगोत्रा दो विशेषण दिये गये हैं और असपिण्डा शब्द के अर्थ टीकाकार और कई स्मृतियों के मूलकार भिन्न २ लिखते हैं। कोई ७ पीढी तक सपिण्डा मानते हैं और कोई २ पांच पीढ़ी तक ही सपिण्डा स्वीकार करते हैं और ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में ६ पीढ़ी अर्थ कहे हैं यह मत भेद सामान्य है यह निश्चित है कि किसी ने ७ से अधिक और पांच से न्यून नहीं मानी अतः हम इसपर कोई विवाद नहीं करते हैं हम पाठकों को बताना चाहते हैं कि इस का पालन नहीं होता है। स्मृतियों के कई टीकाकार देशाचार शब्द पर लिखते समय लिखते हैं कि दक्षिण देश में मातुल कन्या से विवाह होता है। इसका तो मुझे पता नहीं कि होता है अथवा नहीं होता परन्तु मैं ज्योति के पाठकों को एक और प्रांत

बताता हूं जहां पर असपिण्डा के अर्थों को अत्यन्त संकुचित किया गया है।

जिन महाशयों ने कभी जम्मू से कशमीर की यात्रा की है उन्हें, स्मरण होगा कि मार्ग में एक स्थान बटोत Batote आता है। प्रथम तो जम्मू का दृश्य ही भिन्न है क्योंकि जम्मू दो दृश्यों को मिलाता है एक ओर छोटे २ पर्वत हैं और दूसरी ओर नदी तथा भूमि तल हैं जम्मू से आगे चलने पर ऊधमपुर में जाकर जो जम्मू से ४१ मील पर है वह दृश्य लुप्त हो जाता है और पर्वत का दृश्य शेष रह जाता है। वहाँ से आगे बटोत पहुंचने पर जो जम्मू से ७८ मील है यह दोनों दृश्य बदल जाते हैं वहां शीत भी अधिक है और आजकल आस पास की पर्वती चोटियों पर बर्फ के दर्शन होते हैं और पर्वत भी ऊधमपुर से ऊंचे हैं। चन्द्रभाग भी समीप है इत्यादि।

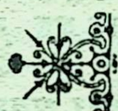
वहां से एक मार्ग किशतवार को जाता है। उस पर मार्ग कुछ चल कर यह प्रथा आरम्भ होती है जिसका हमने इस लेख में उल्लेख करना है। उस प्रांतमें ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा अन्य आर्य धर्मावलम्बी (वह किसी सम्प्रदाय में हों किन्तु वेद का नाम लेते हैं इस लिये मैंने आर्य धर्मावलम्बी शब्द लिखा है) सब लोग ही मातुल कन्या तथा फूफी की पुत्री से विवाह करते हैं और वह सपिण्डा केवल मौसी की कन्या को मानते हैं। यदि उनसे पूंछा जाय कि जिस भांति माता की भगिनी की कन्या भगिनी है वैसे माता के भ्राता की कन्या भगिनी क्यों नहीं है तो वह यही उत्तर देते हैं, माता के भ्राता की कन्या भगिनी नहीं हो सकती क्योंकि उसका सम्बंध पिता की ओर से है। इसलिए उस प्रांत में असपिण्डा के अर्थ यही माने जाते हैं। वह मौसी की कन्या से विवाह सर्वथा नहीं करते हैं और मातुल कन्या तथा फूफी की कन्या से खुला विवाह करते हैं। उन्हें इस में कोई संकोच वा लज्जा ही नहीं है। जैसे मुसलमान केवल सहोदरी को छोड़ते हैं वैसे यह अपनी माता पिता से उत्पन्न कन्या तथा माता की बहिनें जो हों उनकी कन्याओं को सपिण्डा मान कर छोड़ देते हैं और शेष कन्याओं को-जो स्मृतिकारों के पक्ष में सपिण्डा हैं क्योंकि मातुल कन्या दूसरी पीढ़ी में ही आ जाती है इसी भांति फूफी की कन्या का भी द्वितीय पीढ़ी में ही समावेश हो जाता है। असपिण्डा ही स्वीकार करते हैं। इस लिये उन्होंने असपिण्डा शब्द के अर्थों को अति संकुचित कर दिया है।

जिस भांति असपिण्डा शब्द के अर्थों का उस प्रांत में संकोच किया गया है उसी भाँति "असगोत्रा च या पितुः" शब्द में असगोत्रा शब्द के अर्थों का विस्तार दिया गया है। सामान्य रीति से इस शब्द के अर्थ यही हैं कि कन्या पितृ गोत्र की न हो अर्थात् अपने गोत्र से बाह्य किसी गोत्र की कन्या हो। परन्तु इस समय आर्यों में जो प्रथा है उसमें केवल एक गोत्र का छोड़ना नहीं है उनमें २—४ तक गोत्र छोड़े जाते हैं। यथा यदि किसी बालक का जन्म भारद्वाज गोत्र में हो और उसकी माता का जन्म शांडिल्य गोत्र में हो इन दोनों को छोड़ने पर कहा जाता है कि दो गोत्र छोड़े हैं और इससे भी अधिक इस उन गोत्रों को भी छोड़ दिया जाता है जिन गोत्रों में माता की माता का जन्म तथा पिता की माता का जन्म हुआ हो। इस भाँति इस समय चार गोत्र छोड़ कर सम्बंधों को लोगों ने दुसाध्य बना लिया है। जब चार गोत्र बालक पक्ष के छूटते हैं तो उसी प्रकार चार गोत्र कन्या

पक्ष के छोड़ने होते हैं। इस भांति इन्होंने असगोत्रा शब्द को इतना विस्तार दिया है कि योग्य वर कन्या का मिलना कठिन साध्य हो रहा है और जिस गृहस्थी से पूछो प्रायः यही कहते हैं "बड़ी कठिनाई है कि योग्य वर नहीं मिलते हैं"

उपरोक्त दोनों पक्षों को देखने से प्रतीत होता है कि इन्होंने वैसा ही किया है जिस भांति आर्य्यों का एक सम्प्रदाय तो काष्ठ धोकर लकड़ी अग्नि जलाता है और चक्की धोकर आटा पीसता है और दूसरी ओर वह भी है जो पशुओं को मार कर तो नहीं मरवाकर कर खा रहे हैं और चूल्हे की शुद्धता को तिलाञ्जली देकर म्लेच्छों का भोजन खा रहे हैं। आवश्यकता यह है कि उस शुद्धता और इस अशुद्धता को आगे पीछे कर के मध्य में लाया जाय। इसी भांति इन विवाहों में भी जिस प्रान्त में असपिण्डा का संकोच करके मौसी तक ही सीमा बना दी है और जिन प्रान्तों में असगोत्रा को बढ़ा कर चार गोत्र तक पहुंचा दिया है उभय पक्ष को आगे और पीछे करके ठिकाने लाया जाय।

इसके अतिरिक्त किसी २ स्मृतिकार ने एक और पक्ष भी लिखा है, उसे मैं इस समय यहाँ लिखना उचित नहीं समझता हूँ और इसी प्रकार किसी २ प्रांत में एक और प्रकार के विवाह की भी प्रथा है मैं उसका भी उल्लेख इस स्थान पर नहीं करता। भविष्य में यदि आवश्यकता हुई तो उस समय दोनों प्रथाओं का वर्णन भी कर दूँगा। इस समय इतना लिखना ही पर्याप्त समझता हूँ कि जो मातुल कन्यादि से विवाह करते हैं वह भी ठीक नहीं और जो उस गोत्र की कन्या को जिस गोत्र में माता का जन्म हुआ है अविवाहयोग्य मानते हैं वह भी अनुचित करते हैं।



मासावतरण



आश्विन

(ले०—श्रीयुत पंडित सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज)

हुई प्रकृति-साम्राज्य पर आश्विन में आसीन,
शरद्, इधर नभ हो चला निर्मल अभ्र-विहीन!
कहीं शस्य श्यामला मही जल—बहुल कहीं है;
फिर वह घन-स्वन-त्रस्त-शिखी[1]—रव रहा नहीं है!
कुछ प्रसन्न[2] कुछ अप्रसन्न[3] बहती सरिताएं,
ज्यों जननी तज, पति-गृह चलती हों वनिताएं!
जलते विरही चन्द्र से—रहते सदा अतन्द्र,
स्त्री-मुख ध्यायें किन्तु लख शरत् पूर्णिमा-चन्द्र !!

१--शिखी---मयूर;
२--३--नदी--पक्ष में:—
प्रसन्न-अकलुषित-(स्वच्छ);
अप्रसन्न--कलुषित-(अस्वच्छ)।

मातृ-स्नेह

लेखक—श्रीयुत अयोध्यानाथ भल्ला



सन्तान-स्नेह प्रत्येक माता का हृदयोद्गार है। माता का सब से अधिक स्नेह बालकों तथा बालिकाओं पर होता है। संसार में आज तक कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो मातृ-स्नेह का मूल्य चुका सके। यह स्नेह अमूल्य है। इस की कोई अवस्था नहीं है। यह ध्रुव के समान अचल है। सुरसरि का मन्द मन्द हृदय-सुखकारी पवित्र प्रवाह है। यह माता के हृदयतन्त्री का मधुर निनाद है। तथा अमृततरङ्गिणी का निष्कलङ्क कलानिधि के समान कमनीय कांति कलेवर है। कृष्ण के सुमधुर गोपिका-हृदयमोहित वंशीरव से अधिक हृदय विमुग्धकारी आंतरिक ध्वनि है।

मातृ-स्नेह इतना सरस, सरल, सुन्दर, शुचि तथा सान्द्र है कि माता अबोध बालक के प्रत्येक कार्य्यों में एक अद्भुत प्रकार का अवर्णनीय सुख लूटती है। माता उसके भोले भोले गोल कपोलों का चुम्बन करती है, अथवा उसकेकञ्ज समान कमनीय कोमल गात को हृदय से लगाती है, तो लेखनी में इतनी शक्ति कहां कि वह उसकी दशा अथवा हृदयामोद को काले अक्षरों से अङ्कित कर सदा के लिये यश भागी बने।

माता इस पवित्र स्नेह-प्रवाह में ऐसी प्रवाहित होती है कि वह तन, मन, धन, शोक एवम् सन्तापकी सुध बिलकुल भूल जाती है। उसको अनुमान होता है कि स्नेह स्वयम् शरीर उपस्थित हो गया है।

बालक तोतली बोली में माता को "अम्मां" कह कर मीठे मिसरी घुले स्वर से पुकारता है तो मातृस्नेह का वारापार नहीं रहता, वह स्नेह तथा सुख की चरम सीमा तक पहुंच जाती है। यह शब्द उसके कर्णगह्वरों में स्वर्गीय मन्दाकिनी की निर्मल सलिल धारा प्रवाहित कर देता है। वह इन वचनामृत को पुनः पुनः पान कर के भी तृप्ति नहीं होती और उसके लिये द्विगुणित हर्ष एवम् उत्साह से लालायित रहती हैं।

माता स्नेह भरी मीठी वाणी से 'ललला' कह कर पुत्र को बुलाती अथवा उस को अङ्क में बैठा कर मधुर २ वचनों का मधुपान करती है उस समय बालकों का कुम्हलाया हृदयारविंद विकसित होकर वचनालिगण की पूर्णरूप से प्रतीक्षा करने लगता है। उनका उत्साह बढ़ता तथा हृदय कलिकायें हर्ष से विकसित हो जाती हैं।

चाहे बालक कोई कठिन रोग से पीड़ित है अथवा किसी भयङ्कर महामारी से ग्रसित है तथा वैद्य ने मनुष्यों को उसके पास जाने का निषेध करदिया है, परंतु माता उसके पास प्रत्येक घड़ी बैठी रहती है। उस का पुत्र से वास्तविक तथा अखण्ड स्नेह है। और स्नेह ही उसको वहां बरजोरी से घसीट लाता है। यदि वह न जाये तो उस का हृदय हहश टूक टूक हो जाये, इस कारण वह जाती है और अवश्य जाती है। वह इस स्नेह में ऐसी लिप्त हो जाती है कि उस को अपने प्राणों तक का मोह छूट जाता है।

पुत्र महाताप अथवा पीड़ा से पीड़ित है परन्तु वह माताका स्नेहयुक्त कर परस्कर अद्भुत प्रकार की शान्ति से शान्त होता है। पीयूषवर्षणकारी निशानाथ का चाहे उत्थान पतन हो अथवा कलङ्कित कहलाता हो तथा चकवा चकई उसके अवलोकन से महादुःखी होते हों, परन्तु वह माता का स्नेहचन्द्र निष्कलङ्क है, उसका पतन ही नहीं होता और न किसी जीव को दुःखी करता है। वह चारों दिशाओं में निरन्तर अमृतवर्षा करता है। वह सदा हृदयाकाश में पूर्णकलाओं द्वारा विकसित रहता है। मातृस्नेह-सुगन्ध के सम्मुख कादम्बरी तथा पराग की सुगन्ध सुगन्धहीन हो जाती है।

आकर्षण

ले०—सुकवि 'गुलाब"

१.

कौन सी तूने मुझे मदिरा पिला दी, आह !
बह रहा है प्राण में अविरत उमङ्ग प्रवाह ॥
मूर्च्छना में मैं पड़ा, कर में लिये किसलय नवीन—
मोद संकुल में डुलाता, तू पवन--ठण्ढी, प्रवीन !
कौन हूं मैं, क्या न पूंछा मित्र से तूने कभी ?
छीन क्यों तू ले चला अनुराग सुख मेरे सभी ?
अब बहाता कौन सी छिप माधुरी ?
किस तरह समझूं, बता तव चातुरी ?

२.

उफ़ ! खिंचा जाता अरे ! अविराम तेरी ओर।
उठरही मानस-सरोवर में विचित्र हिलोर ॥
कौन सा टोना चलाया हाय रे अज्ञात नाम ?
यह परिश्रम क्यों ? हुआ मुझसे विधाता आज वाम !!
होरहा तू नभ-कुसुम सा, मैं लता सा, पत्र सा।
खोजता हूँ, तू कहां है, दीन के सुख सत्र सा ॥
आज विरह समान हाय ! कराहता।
एक छोटी सी झलक—मैं—चाहता ॥

——(-:o:-)——

मनुष्यों तथा पशु पक्षियों के कार्यों में भेद

क्या मनुष्य में स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति (FREE WILL) विद्यमान है वा नहीं ?

लें०—श्रीयुत् गुरुदत्त सिद्धान्तालङ्कार



निस्सन्देह मनुष्य सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ प्राणी है। भौतिकविकास सिद्धांत के अनुसार प्रकृति की सारी क्रिया (Process) का यह अन्तिम परिणाम है। इसी प्रकार आध्यात्मिक विकास सिद्धान्त के अनुसार भी मनुष्य योनि ही सब योनियों में श्रेष्ठ योनि है।

मनुष्य की इस सर्वतोपरि श्रेष्ठता का कारण उसकी उत्कृष्ट शरीर रचना और अंग रचना नहीं है। मोर आदि अनेक प्राणी मनुष्य की अपेक्षा देखने में अधिक सुन्दर प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार हाथी, कछुआ, अजगर आदि अनेक प्राणी मनुष्य की अपेक्षा अधिक आयु तक जीवित रहतेहैं। इसी तरह अनेकों प्राणी शारीरिक बल, शरीर की बनावट, शरीर तथा अंगों के बाह्य ढाँचे स्वास्थ्य तथा ज्ञानेन्द्रियों की अनुभव शक्ति तथा क्षमता में मनुष्य से कई दर्जे बढ़ चढ़ कर हैं। विषय से असम्बद्ध होने के कारण हम इस लेख में इन बातों का विस्तार से जिक्र करने में असमर्थ हैं। अतः मनुष्यके इस महत्व का कारण उसकी उत्कृष्ट अंग और शरीर रचना नहीं है, अपितु मस्तिष्क, ज्ञान, और स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति आदि विशेतायें ही उसके सब से अधिक श्रेष्ठ होने में मुख्य कारण हैं। मनुष्य को छोड़ कर पशु पक्षी आदि किसी भी अन्य प्राणी में मस्तिष्क नहीं है। सोचने, विचारने और ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति केवल मनुष्य में ही है। पशु पक्षियों के कार्य बुद्धि द्वारा प्रेरित नहीं होते। पशु, पक्षियों के सारे कार्य स्वाभाविक और नियत होते हैं। पशु, पक्षी अपने कार्य बुद्धि या मस्तिष्क द्वारा नहीं करते, अपितु वे अपने कार्य (Instinct) सहज क्रिया द्वारा ही करते हैं। पशु पक्षियों का प्रत्येक कार्य प्रकृति द्वारा नियत है। प्रत्येक बाह्य पदार्थ पशु, पक्षियों में एक नियत *Impulse* को पैदा करता है। पशु, पक्षी अपने में बाह्य पदार्थों द्वारा उत्पन्न *Impulse* की प्रतिक्रिया के रूप में एक नियत जवाब देते हैं। पशु पक्षियों के सारे कार्य नियत और स्वाभाविक होते हैं। उनके कार्यों में विकल्प पाया जाना असम्भव है। जिस प्रकार स्वाभाविक बुद्धि (Instinct) द्वारा पशु पक्षियों के सारे कार्य निश्चित होते हैं ठीक इसी प्रकार उन प्राणियों की शक्तियाँ भी स्वाभाविक बुद्धि द्वारा नियत होती हैं। पशु पक्षियों में पाई जानेवाली सारी शक्तियां स्वाभाविक होती हैं, उनकी प्राप्ति के लिये उनको किसी गुरू से शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। नमूने के तौर पर हम कुछ उदाहरण यहां पेश करते हैं। प्रायः सारे पशु पक्षियों में तैरने की शक्ति स्वभाविक होती है। पशु, पक्षियोंमें जन्म लेने के साथ अर्थात् प्रारम्भ से ही तैरने की शक्ति विद्यमान होती है। उन प्राणियों को तैरने का हुनर सीखने के लिये किसी साधन या गुरु

की आवश्यकता नहीं होती। उन में तैरने का (Instinct) स्वाभाविक व्यापार उन के माता पिता द्वारा वंशानुक्रमिता के अपरिवर्तनीय और अटल नियम द्वारा संक्रान्त होता है। इसी प्रकार पशु पक्षियों में अपने जाति के अनुकूल बोलने की शक्ति भी स्वाभाविक होती है। ये प्राणी जब बोलने लायक हो जाते हैं, तो वे अपने माता पिता के बिना सिखाये ही अपनी जबान बोलना प्रारम्भ कर देते हैं। अपने सजातियों के अनुकूल बोलने की स्वाभाविक शक्ति भी पशु पक्षियों में उनके माता पिता द्वारा ही संक्रान्त होती है। यद्यपि पशु पक्षियों में सजातियों के अनुकूल बोलने की शक्ति स्वाभाविक होती है, इसे सीखने के लिए उन्हें किसी दूसरे को गुरु रखने की ज़रूरत नहीं है परन्तु इन की बोलने की शक्ति स्वाभाविक (Instinctive) होने के कारण सीमित होती है। पशु पक्षी जन्म से लेकर मरण पर्यन्त एक जैसी आवाज़ करते हैं, उनकी वाणी की शक्ति या ज़बान में सदियां गुज़र जाने पर भी कोई परिवर्तन, विकास अथवा ह्रास दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार पशु पक्षियों की सारी क्रियायें तथा शक्तियां स्वाभाविक और सीमित होती हैं।

कई पशु, पक्षियों में सौन्दर्य और शृङ्गार का भाव बहुत ही उन्नत प्रतीत होता है। कई पशु पक्षी भवन निर्माण के हुनर में बहुत उन्नत और चतुर प्रतीत होते हैं, वे अपने निवास स्थान बहुत ही सुन्दर, पक्के, मज़बूत तथा भिन्न २ ऋतुओं के अनुकूल बनाते हैं। मक्खियों के छत्ते तथा भूण्डों की खक्खरें बहुत पक्की, मज़बूत, तथा देखने में बहुत सुन्दर और विशेषाकृति युक्त प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार मकड़ी का जाला केवल सूक्ष्म और सुन्दर ही नहीं होता, अपितु उसकी रचना रेखागणित के बहुत ही विषम चित्र (Geometrical figure) के समान होती है। जिस प्रकार अनेक पशु पक्षियों में शिल्प और भवननिर्माण (Architecture) का हुनर बहुत उन्नत प्रतीत होता है, इसी प्रकार अनेक पशु पक्षियों में आचार तथा सामाजिकता का गुण कई २ अंशों में साधारण श्रेणी के मनुष्यों से अधिक उन्नत होता है। चकवा चकवी के दाम्पत्य भाव की उपमा भारतवर्ष के साहित्य में बहुत ही प्रसिद्ध है। इसी प्रकार एक विशेष जाति के तोते तोतियों का आदर्श संयम और ब्रह्मचर्य निष्ठा बड़े २ संयमियों को भी विस्मय में डालने वाली है। उस जाति के तोतों में पति और पत्नी—एक नियत ऋतु को—जिसमें कि वे सतति उत्पन्न करने के लिए परस्पर मिलते हैं—छोड़ कर एक दूसरे से नियत दूरी पर रहते हैं। यदि पति पत्नी में से एक भी मर जाय, तो दूसरा आजन्म ब्रह्मचारी रहता है। सदाचार की तरह कई पशु पक्षियों में त्याग और सामाजिकता का भाव भी पाया जाता है। कीड़ियों और मधु मक्खियों की सामाजिकता, प्रबन्ध करने की शक्ति तथा इनके प्रशंसनीय श्रमविभाग और कार्य विभाग से बहुत से पाठक परिचित ही होंगे। इसी प्रकार पशु पक्षियों में अन्य अनेक शक्तियों की विद्यमानता के उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु नमूने के लिये इतने उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। परन्तु पशु पक्षियों में विद्यमान चातुर्य्य, शक्तियां, आचार का भाव, सामाजिकता तथा श्रमविभाग और कार्य विभाग उनके मस्तिष्क की उपज नहीं है, यह उपर्युक्त बातें उन में स्वाभाविक (Instinctive) हैं। प्रकृति की तरफ़ से भिन्न २ पशु पक्षियों में भिन्न २ शक्तियां

(Instinct) द्वारा डाली गई हैं। पशु पक्षियों में पाई जाने वाली शक्तियों की सीमा बिलकुल नियत है। सदियों के अर्से में भी उन में किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं आ सकता। पशु पक्षी आदि सहज व्यापार (Instinct) द्वारा कार्य करने वाले प्राणियों में विद्यमान शक्तियों का ह्रास और विकास नहीं हो सकता। पशु पक्षियों के सारे कार्य यान्त्रिक होते हैं। मशीन या कला की तरह उनकी प्रत्येक हरकत और गति निश्चित होती है। वे प्रकृति द्वारा नियत किये गये मार्ग से एक इञ्च भर भी इधर उधर नहीं जा सकते।

मनुष्यों के कार्य और उनकी शक्तियां पशु, पक्षियों के कार्यों और शक्तियों से बिल्कुल विपरीत होती हैं। मनुष्यों को प्रकृति ने सोचने, विचारने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये मस्तिष्क दिया है। मनुष्य अपने कार्य दिमाग़ द्वारा सोच विचार कर करता है। मनुष्य कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। प्रकृति के सुख देने वाले अनुकूल नियमों अथवा दुःख देने वाले प्रतिकूल नियमों को चुनना मनुष्य के अधीन है। परन्तु परिणाम भोगने में मनुष्य परमात्मा वा प्रकृति के अधीन है। पर सुख दुःख परिणाम उत्पन्न करने वाले मार्गों और प्राकृतिक नियमों का चुनाव करना पूर्णरूप से मनुष्य के ही अधीन है। मनुष्य के सामने प्रकृति के दोनों प्रकार के नियम हैं, यह उस की इच्छा पर निर्भर है कि वह उन में से किसी एक को स्वीकार कर ले। सर्व साधारण का अनुभव भी इस स्वतन्त्रता की पुष्टि करता है। प्रत्येक मनुष्य इस बात को अनुभव करता है, कि वह कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। यह उस की इच्छा पर निर्भर है, कि वह किसी कार्य को करे वा न करे।

प्रकृति के नियमों की तरह मनुष्य के सामने आचार और अनाचार सम्बन्धी दोनों प्रकार का मार्ग खुला हुआ है। यह उस की इच्छा पर निर्भर है, कि वह सदाचार सम्बन्धी नियमों को अपने जीवन में घटाने के लिये चुन ले अथवा अनाचार या दुराचार सम्बन्धी नियमों को। पाप पुण्य का इख्तियार करना मनुष्य के ही अधीन है। मनुष्यमात्र का अनुभव ही इस उपर्युक्त सच्चाई को सिद्ध करने के लिये सब से बड़ी युक्ति है। इस से बढ़कर इस पक्ष में और कोई भी प्रत्यक्ष और पुष्ट प्रमाण नहीं दिया जा सकता।

मनुष्यों की शक्तियां पशु, पक्षियों की शक्तियों की तरह सहज और स्वाभाविक नहीं है। पशु पक्षियों की सभी शक्तियां और सभी कार्य सहज होते हैं, परन्तु मनुष्यों को प्रकृति ने स्वाभाविक शक्ति नहीं दी। मनुष्य को प्रकृति ने सोचने विचारने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये मस्तिष्क दिया है। मनुष्यों को दूसरे से सीखे बिना अथवा स्वयं यत्न वा अनुभव किये बिना कोई भी विद्या प्राप्त नहीं होती। मनुष्यों द्वारा खोज किये गये भिन्न २ विज्ञानों शिल्पों तथा विद्याओं में समय समय पर ह्रास और विकास होता रहता है। परन्तु पशु पक्षियों के गुणों, और हुनर में नाम मात्र भी ह्रास और विकास नहीं होता। स्पञ्ज नामक सामुद्रिक कीड़ा अपना निवास स्थान (जिसे कि हम स्पञ्ज कहते हैं) यद्यपि बहुत ही सुन्दर, क्रमयुक्त और व्यवस्थित बनाता है, तथापि सदियों से क्या हज़ारों और लाखों वर्ष बीत जाने पर भी स्पञ्ज नामक कीड़े के इस हुनर में हम ज़रा सा भी परिवर्तन नहीं देख सकते। इसी प्रकार पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा, कि मूंगा नामक मणि, जो कि बहुत ही

सुन्दर और बहुमूल्य होती है, वह भी एक प्रकार के सामुद्रिक कीड़े का घर होता है। उस सामुद्रिक कीड़े का यह आश्चर्य जनक हुनर उसके मस्तिष्क के यत्न का परिणाम नहीं, अपितु उस का यह सहज अथवा स्वाभाविक व्यापार है, जो कि प्रकृति द्वारा नियत है। मूंगे को बनाने वाला सामुद्रिक कीड़ा अपने इस हुनर को घटा बढ़ा नहीं सकता और न ही उस में अपने प्रयत्न द्वारा परिवर्तन ही ला सकता है। इसी प्रकार पशु, पक्षियों के अन्य गुण और हुनर आदि भी उनके अपने मस्तिष्क की उपज नहीं हैं, अपितु प्रकृति के द्वारा नियत उनका यह सहज व्यापार है। परन्तु मनुष्यों द्वारा पता लगाये गये विज्ञान, विद्यायें, शिल्प आदि मनुष्यों के सहज गुण वा व्यापार नहीं हैं, यह सब उनके मस्तिष्क की उपज का परिणाम हैं। मनुष्यों द्वारा खोज किये गये विज्ञानों, शिल्पों और विद्याओं में समय २ पर परिवर्तन होता रहता है। समय २ पर उन में ह्रास और विकास भी होता रहता है। मनुष्यों का ज्ञान पशु, पक्षियों के ज्ञान की तरह अटल, परिवर्तन रहित तथा ह्रास विकास शून्य, सहज और स्वाभाविक नहीं है। बल्कि वह पशु, पक्षियों के हुनर तथा ज्ञान से बिल्कुल विपरीत होता है। यह मनुष्यों और पशु पक्षियों में बड़ा भारी भेद है।

हम पहिले कह चुके हैं कि पशु, पक्षियों का प्रत्येक कार्य प्रकृति द्वारा नियत है। प्रत्येक बाह्य पदार्थ पशु, पक्षियों में एक नियत Impulse को पैदा करता है। पशु, पक्षी अपने में बाह्य पदार्थों द्वारा उत्पन्न Impulse की प्रतिक्रिया के रूप में एक नियत जवाब देते हैं। जब भी कोई पदार्थ पशु, पक्षियों के सामने आता है, तो उसका परिणाम पहिले से ही निश्चित होता है, कि अमुक २ पदार्थ के दृष्टि गोचर अथवा प्रत्यक्ष होने पर अमुक २ पशु, पक्षियों में उस २ पदार्थ (Object) की प्रतिक्रिया वा जवाब के रूप में निम्न २ हरकतें वा क्रियायें होंगी। इस प्रकार पशु पक्षियों के सारे कार्य प्रकृति द्वारा नियत तथा सहज (स्वाभाविक) होते हैं। पशु, पक्षियों के कार्यों में विकल्प का पाया जाना असम्भव है। परन्तु मनुष्य के कार्य इससे बिल्कुल उलटे होते हैं। मनुष्यों को सोचने विचारने के लिये प्रकृति ने मस्तिष्क दिया है। मनुष्य कार्य करने में स्वतन्त्र हैं। वे पशु, पक्षियों की तरह कार्य करने में परतन्त्र नहीं हैं। मनुष्यों को अपने कार्यों और मार्गों के चुनाव करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। मनुष्यों के कार्य प्रकृति द्वारा नियत नहीं हैं। उनके प्रत्येक कार्य में विकल्प का पाया जाना सम्भव है। मनुष्य आचारवान (Moral) प्राणी है। उस में सदाचार के नियमों की पूर्णता और सत्यता को अपने जीवन में घटाने और अनुभव करने की प्रबल आकांक्षा है। मनुष्य में समय २ पर सदाचार संबन्धी संघर्ष (Moral struggle) होता रहता है। समय २ पर मनुष्य के मन में संशय उत्पन्न होता रहता है, कि उसके कार्य कहीं धर्म और सदाचार के विरोधी तो नहीं हैं। पशु पक्षियों के कार्य तथा क्रियायें इतनी अटल और निश्चित होती हैं, कि उन में संशय तथा विकल्प के लिये कोई स्थान ही नहीं है, परन्तु इसके विपरीत मनुष्य के प्रत्येक कार्य में विकल्प पाया जाता है। मनुष्यों के कार्य तथा कार्य करने के मार्ग परस्पर एक दूसरे से इतने अधिक भिन्न और विरुद्ध हैं, कि परिणाम की निश्चितता के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। किसी बाह्य पदार्थ (object) के दृष्टिगोचर व प्रत्यक्ष

होने पर मनुष्य उसकी प्रतिक्रिया वा प्रत्युत्तर के रूप में क्या क्रिया करेगा, यह कहना यदि असंभव नहीं, तो बहुत कठिन अवश्य है। पशु, पक्षियों के कार्यों तथा क्रियाओं की पूर्वकल्पना (Prediction) हम निश्चित रूप से कर सकते हैं। चूहे के दिखाई देने पर प्रत्येक बिल्ली उसे मारने के लिये अवश्य दौड़ेगी। इसी प्रकार प्रत्येक पशु अपने शिकार की गंध पाकर या उसे देख कर पकड़ने के लिये अवश्य दौड़ेगा। परन्तु मनुष्य के कार्यों और उसकी क्रियाओं के संबन्ध में इस प्रकार की पूर्वकल्पना करना या निश्चित परिणाम बताना बहुत मुश्किल है। एक ही बाह्य पदार्थ के दृष्टिगोचर होने पर या एक ही मामले में महात्मा तथा उच्च प्रकृति के धार्मिक लोग जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं,साधारण तथा नीच प्रकृति के मनुष्य उससे भिन्न मार्गों का अनुसरण करते हैं। एक उदाहरण से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जावेगी, कि एक ही मामले में भिन्न २ प्रकृति के लोग किस प्रकार भिन्न २ मार्गों का अनुसरण करते हैं। कल्पना कीजिये, कि एक धन सड़क पर पड़ा हुआ है, जिसके मालिक का ज्ञान नहीं है। भिन्न २ प्रकृति के लोग इस उपर्युक्त धन का भिन्न२ प्रकार से उपयोग करेंगे। एक तो उस धन को देखकर भी उसकी उपेक्षा करके चला जाता है दूसरा मनुष्य उसे उठाकर उसके मालिक को वापिस दे देता है, यदि उसके मालिक का पता नहीं लगता, तो वह उसे किसी परोपकारिणी संस्था को दान दे देता है। तीसरा आदमी उसे उठाकर उसके मालिक का पता लगाये बिना ही उसे दान में दे देता है। चौथा मनुष्य उस धन का न तो दान करता है, और न ही वह उसे उसके मालिक को ही देता है, अपितु वह उसे अपने कब्ज़े में कर लेता है। हम इस लेख में इस बात की आलोचना न करेंगे, कि किस मनुष्य का कार्य उचित है, और किस का अनुचित। उपर्युक्त उदाहरणों से यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है, कि एक ही मामले में और एक जैसी परिस्थिति के उपस्थित होने पर भिन्न मनुष्य किस प्रकार से भिन्न २ मार्गों का अनुसरण करते हैं। बहुधा अनेक मनुष्यों के कार्य के समान होने पर भी उनके उद्देश्यों अथवा प्रेरक हेतुओं (मोटिव्स) में बहुत ज़्यादा भेद पाया जाता है। यही कार्य भेद और उद्देश्य भेद ही आचारशास्त्र (Ethics) तथा उसकी कसौटियों की भिन्नता का मुख्य आधार है। मनुष्यों के कार्यों, और क्रियायों में इतना अधिक अन्तर है, कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है, कि कौनसा कार्य और मार्ग ठीक है, और कौनसा अशुद्ध ? स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने भी इस उपर्युक्त मतभेद और क्रिया भेद का ज़िक्र करते हुए गीता में लिखा है, कि "किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः"। यदि मनुष्यों के कार्यों पर पशु, पक्षियों के कार्यों की तरह प्रकृति की अटल मुहर लगी हुई होती, तथा उन के कार्यों में विकल्प न होता, तो सारा का सारा आचारशास्त्र और सदाचार निर्णय की कसौटियों की भिन्नता व्यर्थ हो जाय।

उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त पशु पक्षियों और मनुष्यों में एक यह भी बड़ा भारी भेद है, कि पशु पक्षी सदाचार शून्य (Non moral) प्राणी हैं, परन्तु मनुष्य सदाचारयुक्त (Moral) प्राणी है। पागल मनुष्य को छोड़कर शेष व्यवस्थित दिमाग़ वाले मनुष्यों का प्रत्येक कार्य सदाचारानुकूल अथवा सदाचार विपरीत (Immoral) कार्यों की श्रेणी में गिना जाता है। इसी प्रकार मनुष्य कर्मयोनि के प्राणियों में गिना जाने के

कारण अपने कार्यों का उत्तरदाता समझा जाता है। उसे अपने कार्यों के अनुकूल उचित पुरस्कार वा दंड भी मिलता है। परन्तु पशु पक्षी मनुष्य से विपरीत भोग योनि में हैं। वे अपने कार्यों के लिये किसी के सामने उत्तरदाता नहीं हैं। इसका कारण यह है, कि पशु पक्षियों के कार्य मस्तिष्क द्वारा प्रेरित नहीं होते, अपितु उन के सारे कार्य सहज क्रिया वा सहज व्यापार (Instinct) द्वारा नियत होते हैं, अतः पशु पक्षी कार्य करने में स्वतंत्र नहीं हैं, अपितु एक जड़ यन्त्र वा कला की तरह पराधीन हैं अतः वे अपने कार्यों के लिये उत्तरदाता भी नहीं है। चूंकि मनुष्यों को प्रकृति ने सोचने विचारने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये मस्तिष्क दिया है, तथा उसे स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति भी दी है, अतः मनुष्य अपने अच्छे और बुरे कार्यों के लिये स्वयं अपने आप ही जिम्मेवार है। इस तरह हमने मनुष्यों तथा पशु, पक्षियों के कार्यों तथा उनकी (Nature) में मुख्य २ भेद दिखाते हुए स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति (Free will) तथा सहज क्रिया वा व्यापार (Instinct) में भेद दिखाने का यत्न किया है। अब हम पाठकों के सामने इस बात पर अपने विचार प्रकट करेंगे, कि क्या मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति (Free will) विद्यमान है वा नहीं? क्या मनुष्यों के कार्य भी पशु पक्षियों की तरह यांत्रिक हैं वा नहीं?

स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति के सिद्धांत की पुष्टि में सब से पहिली और साधारण युक्ति यह है कि, यह सर्वसाधारण की धारणा और अनुभव के अनुकूल है। प्रत्येक मनुष्य की यह दृढ़ और प्रबल धारणा है, तथा वह इस बात को अनुभव करता है कि, वह कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। मनुष्य को प्रकृति ने सोचने विचारने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये दिमाग़ दिया है। मनुष्य में यह शक्ति है, कि वह प्रकृति के उन नियमों का ज्ञान प्राप्त कर सके, जिनके पालन करने से उसे अपने अभीष्ट फल (सुख) की प्राप्ति होती है, तथा जिनके पालन न करने के कारण उसे बड़े २ दुःख और कष्ट उठाने पड़ते हैं। यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है, कि वह प्रकृति के किसी नियम को स्वीकार करले। अच्छे या बुरे मार्गों का चुनाव करना मनुष्य के अधीन है। यह चुनाव करने की शक्ति केवल मनुष्य में ही है। मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी भी प्राणी में अपने मार्गों का चुनाव करने की वा स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति नहीं है। जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है, कि पशु, पक्षियों के सारे कार्य यान्त्रिक होते हैं। पशु पक्षियों की प्रत्येक क्रिया, हरकत और गति निश्चित होती है। प्रकृति के नियत किये गये मार्ग से वे एक इञ्च भर भी इधर उधर नहीं जा सकते। प्रत्येक बाह्य पदार्थ उन में एक नियत Impulse को पैदा करता है। यद्यपि हम इससे पूर्व स्वतन्त्र इच्छा द्वारा प्रयुक्त कार्यों तथा यांत्रिक कार्यों का संक्षेप से स्वरूप वर्णन कर चुके हैं, तथापि विषय को अधिक विस्पष्ट करने के लिये इस पर कुछ अधिक प्रकाश डालना अनुचित न होगा। यान्त्रिक कार्यों में सोचने विचारने तथा मस्तिष्क की अपेक्षा तो बिलकुल नहीं होती, पर इसके साथ २ इस प्रकार के कार्यों में स्वाधीनता तथा विकल्प का पाया जाना भी असंभव है। जैसे कि एक इञ्जिन वा यन्त्र को भाफ़ वा विद्युतादि भौतिक चालक शक्ति जिस दिशा में चलाती है इञ्जिन वा यन्त्र उसी दशा में ही अंधाधुन्ध चलता चला जायेगा। उस दशा से वह रत्ती भर भी इधर उधर मुड़ नहीं सकता। यदि उस यन्त्र वा इञ्जिन के मार्ग में रुकावट पैदा करने वाली कोई

वस्तु आवेगी, या तो वह वस्तु ही यन्त्र वा इञ्जिन धक्के से चकना चूर हो जावेगी, अथवा इञ्जिन वा यन्त्र उस वस्तु से टकरा कर स्वयं चकना चूर हो जावेंगे, यह भी हो सकता है, कि दोनों ही वस्तुयें परस्पर एक दूसरे से टकराकर निकम्मी हो जावें। सारे कथन का सारांश यह है, अंधापन (Blindness) निश्चितता तथा विकल्पराहित्य सारे यांत्रिक कार्यों का स्वाभाविक गुण (Nature) है। पशु पक्षियों के कार्य भी यन्त्र वा इञ्जिन की तरह अंधाधुन्ध निश्चित और विकल्प रहित होते हैं।

मनुष्यों के कार्य यन्त्र, इञ्जिन तथा पशु, पक्षियों की तरह अंधाधुन्ध, विचार विकल्प तथा उद्देश्य शून्य नहीं होते। प्रकृति ने मनुष्यों को सोचने, विचारने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये दिमाग दिया है। मनुष्यों के प्रायः सारे कार्य सोद्देश्यक होते हैं। मनुष्य, पशु पक्षियों वा यन्त्र की तरह कार्य करने में पराधीन नहीं हैं। वह किसी कार्य को करने वा न करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र है। उसे अपने मार्गों के चुनाव करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। पशु, पक्षियों की तरह मनुष्य के कार्यों पर प्रकृति की अटल मुहर नहीं लगी हुई। मनुष्य के कार्यों में विकल्प देखा जाता है। सुख और दुःखजनक दोनों प्रकारके परिणामों को उत्पन्न करने वाले नियम प्रकृति के सामने मौजूद हैं। यह मनुष्य के आधीन है, कि वह इन दोनों प्रकार के नियमों में से किसी एक को स्वीकार कर ले, तथा दूसरे को छोड़ दे।

इसके अतिरिक्त मनुष्य में सदाचार का भाव स्वभावतः ही विद्यमान है। पागल मनुष्य को छोड़कर किसी भी और मनुष्य को पशु पक्षियों की तरह सदाचार शून्य (Non moral) नहीं कहा जा सकता। सभी व्यवस्थित दिमाग रखने वाले मनुष्यों को सदाचारवान (Moral) अथवा सदाचारभ्रष्ट (Immoral) पुरुषों की श्रेणी में विभक्त किया जा सकता है। पर मनुष्य को उसके पागलपने की अवस्था को छोड़कर शेष किसी भी अवस्था में सदाचार शून्य (Immoral) प्राणी नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है, कि मनुष्य में सोच विचार कर स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति है। वह अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी है। यदि मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति (Free will) को स्वीकार न किया जाय, तो इस अवस्था में न तो किसी तरह उसे अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी ही ठहराया जा सकता है, और नहीं उसे अपने अच्छे कार्यों के लिये किसी तरह का पुरस्कार और बुरे कार्यों के लिये किसी तरह का दंड ही दिया जा सकता है। स्वतन्त्र इच्छा (Free will) की अविद्यमानता में मनुष्य को अपने अच्छे बुरे कार्यों के लिये उत्तरदायी ठहराना तथा उनके अनुकूल उसे पुरस्कार वा दण्ड देना महा अन्याय है।

सर्वसाधारण का अनुभव भी इस बात को पुष्ट करता है, कि मनुष्य कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र है तथा वह अपने कार्यों के लिये पूर्ण उत्तरदायी है। संसार के अन्दर शांति सुव्यवस्था और सदाचार को स्थिर रखने के लिये तथा उसे सर्वनाश से बचाने के लिये भी मनुष्य को उसके अच्छे और बुरे सब प्रकार के कार्यों के लिये उत्तरदायी मानना अत्यन्त आवश्यक है। संसार के प्रायः सभी धर्म, संसार की सारी सरकारें, तथा दुनियां के प्रायः सभी बड़े २ विचारक मनुष्य को अपने कार्यों के लिये पूर्ण उत्तरदायी मानते हैं। मनुष्य अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि उस में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति को स्वीकार न किया जाय, अतः उपर्युक्त युक्तियों तथा प्रमाणों के आधार पर मनुष्य में स्वतन्त्र इच्छा को मानने के लिये हमें बाधित होना पड़ता है।

(अपूर्ण)

"विचित्र जीवन" और श्री प्रेमचंद

लेखक—श्री बुद्धिसागरवर्मा विशारद बी ए०

आषाढ़ सं० १६८१ वि० की 'माधुरी' पढ़ रहा था। जी में आया देखें समालोचना किस किस पुस्तक की कैसी हुई है। अकस्मात् पं० कालीचरण शर्मा कृत 'विचित्र जीवन' की समालोचना पर निगाह पड़ी। समालोचक हैं हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री प्रेमचन्द जी। मुझे पुस्तक पढ़ने का सौभाग्य अब तक नहीं प्राप्त हुआ। किंतु समालोच्य भाषा से मालूम होता है कि लेखक ने यवन मत की कड़ी आलोचना की है। समालोचना इस प्रकार थी

"......इसमें हज़रत मुहम्मद के चरित्र के दोष दिखाये गये हैं। अत्यन्त अशिष्ट, भ्रष्ट और अविचार पूर्ण पुस्तक है। लज्जा और खेद का विषय है कि कुछ प्रकाशक टके कमाने के फेर में पड़कर ऐसी गंदी किताबें प्रकाशित कर रहे हैं। ऐसी किताबों से आर्यसमाज का गौरव नहीं बढ़ता और महात्मा गांधी के कथन ही की पुष्टि होती है। अगर मुसलमान लोग ऐसा साहित्य लिखते या प्रकाशित करते हों तो उसके जवाब में भी हिंदुओं को ऐसी पुस्तकें न लिखनी चाहिये हिंदू धर्म का आदर्श क्षमा और नेकी है।"

इस समालोचना को पढ़कर मेरे हृदय में भी कुछ विचार उत्पन्न हुये। उन्हें इस अवसर पर प्रकट करना ही उचित समझ पड़ा।

(१) पं० कालीचरण जी के मैंने कई व्याख्यान सुने हैं। वे कभी कोई बात अविचार पूर्ण मुंह से नहीं निकालते (जहां तक मैं जानता हूं) वे जिस बात को कहते या लिखते हैं उसका काफ़ी सुबूत भी रखते हैं। सच्ची बात कड़वी लगा ही करती है। न्याय तो कहता है:—

'शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि' जो सुधारक और missionary है वह तो सुधार तभी कर सकेगा जब पहले अवगुण अथवा दोषों को बताकर उन का खंडन कर लेगा। सुकुमार 'निर्बल' आलसी, जायका पसद रईसों को कड़वी डाक्टरी दवायें अथवा आयुर्वैदिक बेज़ायके काढ़े आदि नहीं भाते, तो क्या सर्वसाधारण में उन दवाओं का मान थोड़े ही घट जाता है अथवा उन का गुण थोड़े ही चला जाता है? मेरी समझ में नहीं आता कि समालोचक ने 'विचित्र जीवन' पुस्तक को अत्यन्त अशिष्ट, भ्रष्ट और अविचारपूर्ण कह कर अपने दिल का गुबार क्यों निकाला? अच्छा होता यदि प्रेमचन्द जी अत्यन्त अशिष्ट, भ्रष्ट और अविचारपूर्ण वाक्यों में से कुछ एक उद्धृत भी कर देते। तो उनकी अशिष्टता और भ्रष्टता की परिभाषा तो समझ में आजाती।

(२) समालोचक महोदय म० गान्धी की भांति मुसलमानों के बहुत तरफ़दार मालूम होते हैं। आप की राय है कि मुसलमान तो गन्दा साहित्य खुल्लम खुल्ला लिखते रहें। हमारे पूर्वजों और ऋषि मुनियों पर झूठे इलज़ामात लगाते रहें—जली कटी सुनाते रहें—पर हिंदुओं को चूं तक न करना चाहिये। खूब रही। विपक्षी झूठी बातें लिख २ कर हमें बदनाम करें—यही क्यों? हमारी बहू बेटियों का सतीत्व भ्रष्ट करें—हमारे भोले भाले भाइयों को फांसा

पट्टी देकर अथवा डरा धमकाकर मुसलमान बनायें—उन्हें सब माफ़! और हम अगर सच्ची बात भी लिखें—पुष्टि में प्रबल प्रमाण भी पेश करें—तो भी यह आफ़त! कि आर्य समाजी बैठे बिठाये वैर विरोध की आग भडकाया करते हैं। हम नहीं समझते यह कहां का न्याय है? सच तो यों है कि जिसके रक्त में कुछ भी जोश है—कुछ भी गरमी है वह तो अपने और अपने पूर्वजों पर लगाये हुये झूठे इलजामों को चुपचाप अब नहीं सहन कर सकेगा। हां जिनमें जोश नहीं, जो पराया मुख देखा करते हैं या जिनका सिद्धान्त है "Eat, drink & be merry for to-morrow thou shalt die" उनकी तो बात ही और है।

(३) आगे श्री प्रेमचन्द जी हिंदू धर्म के आदर्श की दुहाई देते हैं कि "हिंदू धर्म का आदर्श क्षमा और नेकी है" अच्छी रही। इस बेतुकी क्षमा और नेकी ही ने तो भारत में यवनराज्य का सिक्का बिठाया—हर बात में हिंदुओं को नीचा दिखाया—बहू बेटियों को बे इज़्ज़त कराया। यही क्यों? क्या कुछ नहीं कराया। नित्य प्रति के उदाहरण हमारे सामने हैं। फिर भी वही क्षमा और नेकी का पाठ पढ़ाया जा रहा है। माना, क्षमा हिंदू धर्म का आदर्श है किंतु कब? क्या हमारे घर चोर चोरी किया करें और हम क्षमा का मन्त्र जपते हुये बैठे २ देखा करें? हमारी स्त्रियों पर बलात्कार और अत्याचार होते रहें और हम घर में किवाड़ बन्द कर बैठे रहा करें, बाद को थोड़ी देर रो धो लिया करें? जब कोई पूंछे तब कह दिया करें "अजी होनहार को कौन मिटा सकता है। हमारे भाग्य में यही था—खैर क्षमा करो। हुआ सो हुआ।" यह क्षमा नहीं सरासर कमज़ोरी है। चोर को दण्ड न देना क्षमा नहीं है, अन्याय है।

यदि हिंदू जाति अब भी इसी को क्षमा और नेकी कहती रही तो फिर बस "हो चुकी निमाज़" वाली कहावत हैं। किये जाओ क्षमा और खूब पिटे जाओ। क्यों हिंदू संगठन के पीछे पड़े हो?

प्रेमचन्द जी से प्रार्थना है कि इस समालोचना पर पुनःविचार करें *

* इस लेख का उत्तरदायित्व सम्पादिका पर नहीं है।

परिवर्तन

(बंगाल की "एकाल सेकाल" के आधार पर)

ले०—श्रीकृष्ण पांडे

(१)



तःकाल का समय है। वृद्ध सदानन्द पूजन आदि से निवृत होकर अपनी बैठक में बैठे ही होंगे कि करुणामयी जलपान के लिये दूध और मिठाई लेकर आई। सदानन्द ने हाथ धोकर जलपान करना आरम्भ किया, उनको प्रसन्न देखकर करुणामयी ने कहा "तुम्हें किसी बात की चिंता है या नहीं ?"

"तुम्हीं ने चिंता करके कौन सा जग जीत लिया ?"

"यह सब बातें रहने दो, आज मेरा मन उदास है जैसे कोई मेरे कानों में कह रहा है कि लड़के को अपने पास रक्खो नहीं तो हाथ से चला जायगा।"

सदानन्द ने हंसते २ कहा "निर्मल अब दूध पीता बच्चा तो है ही नहीं जो बांध कर रक्खा जा सके। उसे लिखा पढ़ा दिया भगवान की दया से उसमें अपना भला बुरा विचारने की शक्ति भी है। जो कहना सुनना था वह मैंने पहले ही कह दिया, अब व्यर्थ चेष्टा करने से क्या लाभ ? परमात्मा को जो मन्जूर होगा, वही होगा, मनुष्य का विचारा कुछ भी नहीं होता"।

करुणामयी ने विरक्त होकर कहा—"मैं यह सब कुछ नहीं जानती, न मालूम हमारे किस पाप से लक्ष्मी जैसी बहू छोड़कर लड़का विदेश में पड़ा है। देखते हो बहू दिनों दिन सूखी जा रही है। तुम्हारे मन में तो जरा भी दया माया नहीं, तुम लोग निठुर हो, लेकिन मैं तो स्त्री हूं मुझ से उसकी यह दशा नहीं देखी जाती ! तुम आज ही चिट्ठी देकर निर्मल को बुलालो"।

सदानन्द ने कहा—"तुम नहीं जानती मेरी क्या हालत होरही है? मेरा हृदय काँच की भट्टी की तरह दिन रात धांय धांय जल रहा है। मैंने उसे जाते हुए कितना रोका, कितना समझाया लेकिन उसकी समझ में कुछ नहीं आया। कहीं मेरे मुंह पर ही कुछ उलटा सीधा जवाब न दे, इसी भय से मैंने और कहना उचित नहीं समझा। तुम्हें मालूम नहीं मैंने उसे तीन चिट्ठीयां दीं लेकिन मुझे एक का भी जवाब नहीं मिला। लाचार हो मैं भी भगवान् पर भरोसा कर चुप बैठ रहा।"

सदानन्द की बातें सुन करुणामयी की आंखों में आंसू भर आये, उसने रुंधे स्वर में कहा—"जो हो मेरा मन नहीं लगता, तुम किसी तरह लड़के को बुलालो।"

सदानन्द जलपान कर चुके थे, हाथ धोते २ बोले "अच्छा देखा जायगा।"

"देखा नहीं जायगा, तुम्हें मेरे सिर की कसम है, तुम आज ही से उसे बुलाने की चेष्टा करो"। इतना कहकर वो जूठा ग्लास और रकाबी लेकर चली गई।

(२)

दिन के दो बजे होंगे। निर्मल अपने मकान में बैठा हुआ कोई अंग्रेज़ी उपन्यास पढ़ रहा था, उस समय बाहर से किसी ने पुकारा "डाक्टर बाबू"।

निर्मल पुस्तक रखकर कमरे के बाहर आगया। उसने देखा कि दो मनुष्य एक व्यक्ति को लिये हुए उसके दवाखाने में बैठे हुए हैं। तीसरे व्यक्ति के माथे से खून बह रहा था, उसके हाथ पांव में भी कुछ चोट लगी थी, और वह बेहोशी की हालत में था। आगन्तुक दो मनुष्यों में से एक ने आगे बढ़ कर कहा,—डाक्टर बाबू! यह बिचारा ट्राम से गिर पड़ा है, इसकी रक्षा कीजिये।" निर्मल ने उसी वक्त अपने कम्पाउन्डर की सहायता से उसके घाव आदि धोकर उसमें बैंडिज बांध दी और होश में लाने के लिये एक खुराक दवा देकर कहा-"अब आप इन्हें ले जांय, शाम को एक बार खबर दे दीजियेगा।"

आगन्तुक में से एक ने कहा-"डाक्टर साहब! हम लोग इसका पता ठिकाना कुछ नहीं जानते। रास्ते में यह घटना घटने के कारण हम आपके पास इसे ले आये। जब आपने इतनी दया की है तो, जब तक इसे होश न हो अपने यहां ही सोने दें, देखने से ज्ञात पड़ता है कि यह किसी धनवान का लड़का है। होश आने पर एक गाड़ी करके इसके घर पहुंचा दीजियेगा"।

निर्मल बड़ी विपत्ति में पड़ा, यह तो होम करते हाथ जला! लाचार हो उसे नकी बात स्वीकार करनी पड़ी, आखिर करता तो क्या करता और कोई उपाय नहीं था।

आगन्तुक दोनों मनुष्य चले गये। निर्मल रोगी के पास बैठकर ही पुस्तक पढ़ने लगा। करीब आध घन्टे बाद उसे कुछ २ चेत हुआ निर्मल ने झट से एक दाग दवाई और दे दी। चेत होने पर उसने क्षीण स्वर में पूछा--"मैं कहा हूं ?"

निर्मल ने कहा-"कोई चिंता नहीं, महाशय! आप एक सुरक्षित स्थान में हैं। थोड़ी देर बाद जब आप को अच्छी तरह होश आजायगा तो आप घर पहुँच जायंगे। यदि आप चाहें तो अपने घर से किसी आत्मीय को बुला सकते हैं, आप अपना पता बतादें मेरा कम्पाउन्डर आपके घर जाकर खबर दे देगा"।

रोगी—"क्या आप डाक्टर हैं ?"

निर्मल—"हां, यह मेरा ही डाक्टरखाना है"।

रोगी के थोड़ा पानी माँगने पर निर्मल ने बरफ़ का एक छोटा ढेला उसके मुंह में डाल दिया। थोड़ी देर बाद रोगी ने फिर कहा-"आपने मेरे ऊपर जो उपकार किया है, उसके लिये मैं सदा आप का ऋणी रहूँगा। यदि कोई हर्ज़ न हो तो मुझे घर पहुंचादें यह मेरा पता है।" इतना कहकर रोगी ने अपने खून भरे कपड़े की जेब से एक कार्ड निकाल कर निर्मल के हाथ में दिया। निर्मल ने अपने कम्पाउन्डर को एक ट्रैक्सी बुलाने के लिये कहा...थोड़ी देर में ही ट्रैक्सी आगई और निर्मल रोगी के साथ उसमें जा बैठा और कार्नवालिस स्ट्रीट जाने के लिये कहा--

(३)

"सतीश बाबू हैं ?"

"कौन डाक्टर बाबू! भैया अभी स्टेशन गये हैं। आप बैठिये वह आते होंगे।" यह कहती हुई एक षोड़षवर्षीय युवती हाथ में एक पुस्तक लिये निर्मल के सामने आकर खड़ी हुई।

निर्मल ने पूंछा-"उनकी तबीयत कैसी है शोभादेवी ?"

"अच्छी है, आप बैठिये न।"

"हां हां, बैठता हूँ।" यह कहकर निर्मल एक चेयर खींच कर उस पर बैठ गये। उनके सामने ही एक कुर्सी पर शोभा बैठ गई।

सतीश को ट्राम से जो चोट लगी थी, उसका इलाज निर्मल ने ही किया था, इसी से निर्मल का इस घर में धीरे २ आना जाना बढ़ने लगा एवं सतीश से खूब मित्रता होगई। इसीसे सतीश की छोटी बहन शोभा एकान्त में बैठ कर बातें करने में नहीं सकुचाती थी। ब्रह्मसमाजी न होने पर भी शोभा की सब चाल ढाल ब्रह्मसमाज की तरह ही है, इस का कारण यह कि शोभा की शिक्षा दीक्षा अंग्रेज़ी ढंग से हुई थी। यद्यपि सतीश इस ढंग को बिलकुल ना पसन्द करता था, लेकिन पितृ-मातृहीना बहिन के हृदय को कहीं कष्ट न हो, इस खयाल से वह उसके काम में कुछ रुकावट नहीं डालता था।

इस सबब से शोभा की आज़ादी और भी बढ़ गई थी। वह जब तब सतीश के मित्रों के यहां अकेली चली जाती और उनसे घंटों गप्प लड़ाया करती। शोभा के ढंग को निर्मल ने कुछ २ समझ लिया था, किंतु मित्र की अनुपस्थिति में उस की युवा बहिन से एकान्त में बातें करते उसको कुछ भय हुआ। लेकिन सभ्यता के लिहाज से उसे शोभा का अनुरोध मानना ही पड़ा। थोड़ी देर तक चुप चाप बैठे रहने के बाद निर्मल ने पूछा—"क्या उनको लौटने में कुछ विलम्ब होगा।" चंचला शोभा ने एक तीक्ष्ण कटाक्ष चला कर मुसकराते हुए कहा—

"बैठिये न! आप घबराते क्यों हैं? भैया अभी आते हैं। ओह! मैं भी कैसी बेवकूफ़ हूं, आपको आये इतनी देर हुई, मैंने अभी तक कुछ खयाल ही नहीं किया।" यह कह शोभा ने नौकर को चाय लाने के लिए आदेश देकर कहा—"चाय अभी तैयार हो जाती है, तब तक अपने गांव की कोई बात ही कहें।"

"मुझे गांव से आये लगभग तीन महीने होगये, वहां की क्या बात कहूं।" इतना कह कर निर्मल चुप होगया।

"आपको आये तीन महीने होगये, और आप अपने घर की कुछ खबर नहीं रखते, आप बड़े विचित्र पुरुष हैं।" यह कह कर शोभा निर्मल के मुख को एक टक देखने लगी। निर्मल ने बात टालने की गरज़ से कहा—"इन सब फालतू बातों को जाने दीजिये, यदि आप को कष्ट न हो तो कोई गाना गाइये।"

"अच्छी बात है।" कह कर शोभा ने प्यानों खोलकर बंकिम बाबू का "वन्देमातरम्" गीत गाना आरम्भ किया। निर्मल बाबू खूब ध्यान से गाना सुन रहे थे, और रह रहकर शोभा के मुंहकी ओर देखते जाते थे शोभा भी निर्मल बाबू के भावों को लक्ष कर रही थी।

इतने में ही नौकर चाय लेकर आगया, शोभा ने गाना अधूरा छोड़ कर अपने हाथ से निर्मल को चाय का प्याला दिया।

चाय पीते २ निर्मल ने कहा—प्यानों बजाने में आप सिद्धहस्त हैं, वाह, क्या कहना हैं ईश्वर ने गला भी कमाल का दिया है, आप बहुत अच्छा गाती हैं।"

शोभा—"बंकिम बाबू की रचना ही ऐसी है।"

निर्मल—"लेकिन आप के सुरीले गले ने सोने में सोहागे का काम किया।"

शोभा ने बात का रुख पलट कर कहा—"अच्छा डाक्टर बाबू! आप के यहां स्त्रियां इस तरह से गाना बजाना नहीं जानतीं और जो जानती हैं, उनकी निंदा होती है। क्यों?"

शोभा के इस वाक्य ने निर्मल के हृदय पर बड़ा भारी आघात किया। वह मन ही मन सोचने लगा कि यदि घर घर में शोभा की तरह शिक्षिता स्त्रियां हों तो इस मृत्युलोक में ही स्वर्गीय जीवन का आनन्द मिलता......" निर्मल इसी विचार में मग्न था कि शोभा ने फिर कहा—"मैं समझती हूँ आप ने अपनी स्त्री को नियमितरूप से शिक्षा दी होगी।" निर्मल यही सोचने लगा कि शोभा के इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ क्योंकि विवाह के बाद वह एक दिन भी घर नहीं गया।

जिस उच्च आशा को लेकर निर्मल कलकत्ते आया था वह उनकी पूर्ण नहीं हुई, असफल होकर घर जाना उसके लिये लज्जाजनक था। उसने इस बात को यहीं दबाने की गरज से कहा—"मैं अब अधिक समय नहीं ठहर सकता एक अरजेन्ट काम है। सतीश बाबू को कह दीजियेगा यदि समय मिला तो मैं कल फिर आऊंगा।"

यह कहते २ निर्मल अपनी चेयर से उठ गया और अंग्रेज़ी प्रथा के अनुसार शोभा से शेक हैन्ड (Shake hand) करके शीघ्रता से घर के बाहर आकर ट्राम का इन्तज़ार करने लगा। (क्रमशः)

कुसुमोद्यान

"नवजीवन" के पाठकों के नाम महात्माजी का सन्देश

पाठक!

मैं तुम्हें क्या लिखूं? मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध, मेरी दृष्टि से असाधारण है। 'नवजीवन' के सम्पादक का पद मैंने न तो धन-लोभ से और न कीर्ति-लोभ से ग्रहण किया। मैंने तो अपने शब्दों के द्वारा तुम्हारे हृदय को हिलाने के लिये यह पद स्वीकार किया है। मेरे सिर तो यह अनायास आ पड़ा है। परन्तु जब से आया है तभी से मैं तुम्हारा ही चिन्तन करता रहता हूं। प्रति सप्ताह 'नवजीवन' में मैंने अपनी आत्मा उड़ेलने का प्रयत्न किया है। एक भी शब्द ईश्वर को साक्षी रक्खे बिना मैंने नहीं लिखा है। तुम्हें जो प्रसादी पसंद हो वही देना मैंने अपना धर्म नहीं समझा। कितनी ही बार मैंने कड़वी घूंट भी पिलाई हैं। किन्तु कड़वी या मीठी हर एक घूंट में मैंने वही बताने की कोशिश की है जिसे मैंने निर्मल धर्म माना है, जिसे मैंने स्वच्छ देश—सेवा मानी है।

आज जो मैं उपवास कर रहा हूँ सो संपादक पद के अधिक योग्य होने के लिए। मैं जानता हूँ कि अनेक पाठक भाई—बहिन मेरे लेखों को देखकर चलते हैं। कहीं मैंने उन्हें गलत रास्ता दिखाकर हानि पहुंचाई हो तो? यह ख्याल मुझे बराबर खटकता रहता था।

अस्पृश्यता के बारे में मुझे कभी लेशमात्र सन्देह न हुआ। चरखे के विषय में तो सन्देह के लिये जगह भी नहीं। वह लंगड़े

की लाठी है—सहारा है। भूखे को दाना देने का साधन है। निर्धन स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने वाला किला है। सब लोगों के द्वारा उसके स्वीकृत हुए बिना हिन्दुस्तान की फाकेकशी मिटना असम्भव मानता हूं। इस कारण चरखा चलाने में अथवा उसका प्रचार करने में भूल के लिये कहीं भी गुन्जायश नहीं है। हिन्दू मुसलमान ऐक्य की आवश्यकता के विषय में भी कहीं संशय के लिए स्थान नहीं। उसके बिना स्वराज्य आकाश पुष्पवत् है।

परन्तु विशाल अहिंसा को ग्रहण करने के लिये तुम तैयार हो या नहीं इसके विषय में मुझे सदा सन्देह रहा है। मैंने तो पुकार २ कर कहा है कि अहिंसा क्षमा वीर का लक्षण है। जिसे मरने की शक्ति है वही मारने से अपने को रोक सकता है। मेरे लेखों से तुम भीरुता को अहिंसा मान लो तो? अपने लोगों की रक्षा करने के धर्म को खो बैठो तो? तो मेरी अधोगति हुए बिना न रहे। मैंने कितनी ही बार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी धर्म हो ही नहीं सकती। संसार में तलवार के लिए जगह जरूर है। कायर का तो क्षय हो ही सकता है। उस का क्षय ही योग्य भी है। परन्तु मैंने तो यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि तलवार चलाने वाले का भी क्षय ही होगा। तलवार से मनुष्य किसी को बचावेगा और किसीको मारेगा? आत्मबल के सामने तलवार-बल तृणवत् है। अहिंसा आत्मा का बल है। तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है। जो इस बात को न समझ सके उसे तो तलवार हाथ में लेकर भी अपने आश्रितों की रक्षा जरूर करनी चाहिये।

ऐसा अनमोल अहिंसा धर्म मैं शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। खुद पालन कर के ही उसका पालन कराया जा सकता है। इससे इस समय मैं उस का पालन कर रहा हूँ। मेरे मन्दिरों को तोड़ने वाले मुसलमान को भी मैं तलवार से न मारूंगा। उस पर मैं क्रोध न करूंगा उसे भी मैं केवल प्रेम के ही द्वारा जीतूंगा।

मैंने लिखा है कि हिन्दुस्तान में यदि एक ही शुद्ध प्रेमी पैदा हो तो वह स्वधर्म की रक्षा कर सकता है। मैं चाहता हूं कि ऐसा बनूं। मैं हमेशा लिखता रहा हूँ कि तुम भी ऐसे बनो।

मैं जानता हूं कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है। पर प्रेम की तो सीमा ही नहीं होती। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरा प्रेम असीम नहीं है। मैं सांप के साथ कहां खेल सकता हूं? जो अहिंसा मूर्ति हो उसके सामने सांप भी ठंडा हो जाता है मुझे इस पर पूरा २ विश्वास है।

उपवास करके मैं जांच कर रहा हूँ, विशेष प्रेम उत्पन्न कर रहा हूँ। मैं अपना कर्तव्य पूरा करके तुम्हें तुम्हारा कर्तव्य बताने की इच्छा रखता हूं। तुम यदि मेरे साथ उपवास करोगे तो यह निरर्थक है। उसके लिए समय, अधिकार आदि की जरूरत रहती है। तुम्हारा कर्तव्य तो यही है कि जो तीन चीजें मैं भिन्न २ रूप में तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूँ उनको साधो। उनके द्वारा दूसरी सब बातें अपने आप सध जायेंगी। यह मेरा विश्वास है।

मेरे उपवास के औचित्य पर शंका करने के बदले तुम ईश्वर से यही मांगो कि मेरे उपवास निर्विघ्न पूरे हों, मैं फिर 'नवजीवन' के द्वारा तुम्हारी सेवा करने लगूं और फिर मेरे शब्दों में अधिक बल आवे।

महात्मा जी के उपवास का मर्म

विफल प्रार्थनायें।

उपवास के पहले दिन गांधीजी ने मुझे हुक्म दिया था कि मैं उनके सामने कुछ भी दलीलें पेश न करूं। पर कहीं मौलाना साहब (मुहम्मद अली) को ऐसा हुक्म दिया जा सकता है? उन्हें तो कहा जा सकता है! उन्हें तो रोना-गाना नहीं और धीरज रखना। उन्होंने सजल आंखों से दलीलें की, प्रेम-भरे रोष से दलीलें की। 'बापू यह क्या? इसे मुहब्बत कहते हैं? आपने तो हमें धोखा दिया? आपका तो यह इकरार था न कि जो कुछ काम करूंगा, तुम लोगों से सलाह मशवरा लेकर करूंगा। वह इकरार कहां गया?"

'कितनी ही बातें ऐसी होती हैं कि जिनके लिए मुझे खुदा से ही सीधा हिसाब कर लेना पड़ता है।'

हकीमजी भी घबड़ाये हुए थे ही। उनका कहना था कि अभी विचार और चर्चा चल ही रही है। ऐसी हालतमें आपका ऐसा भीषण काम कर बैठना जा नहीं कहा जा सकता। पन्द्रह दिन की मियाद दीजिए और अगर इतने दिनों में देशकी हालत न सुधरे तो आप ज़रूर रोज़ा रखिएगा, हम आपका न रोकेंगे।

'अच्छा पन्द्रह दिन की मियाद लेकर देख लीजिए। मेरे उपवास की बात पन्द्रह दिन तक जाहिर न कीजिए। यहां किसी को आने न दीजिए और फिर आकर मुझसे कहिए कि अब देशमें शान्ति है तो मैं छः दिन के बाद उपवास छोड़ूंगा! हकीम साहब हंसे शरीर की दृष्टि से बातें करने लगे। तब बापू जी कहने लगे '२१ दिन तक रोज़े के बाद मेरी तबियत आप से अच्छी ही होगी'। बेगम साहब तो परदा छोड़कर सब के बीच में आ बैठीं। आग्रह के साथ कहने लगीं—'मैं तो उपवास छुड़ाये विना यहां से उठूंगी नहीं। बी अम्मा अगर ऊपर होने लायक होती तो आतीं। पर वे बिस्तरे से उठ नहीं सकतीं इसीलिए मैं आई हूं। आप रोजा छोड़ दीजिये नहीं तो हम सब २१ दिन का रोजा रक्खेंगे।" इस तरह रात के १॥ बज गये। तब ज्यादह दलील न करते सब उठे। गांधी जी तो १॥ बजे कातने बैठे। कातना बाकी रह गया था।

मरने की कुंजी कैसे बताऊं?

दूसरे दिन मुझसे कहा-"अच्छा, महादेव, चौरी-चौरा और बम्बई के उपवास का मर्म तो तुम समझे हो न?"

'हां, जरूर'।

'तब इस उपवास को क्यों नहीं समझते?'

'वहां तो आपने अपना कुसूर माना था? यहां ऐसा मानने का कोई 'कारण नहीं। यहां कुसूर का तो सवाल ही नहीं है।'

'हैं'। यह कितना भ्रम! चौरी चौरा में तो ऐसे लोग थे जिन्होंने मुझे न कभी देखा, न कभी जाना चीन्हा। यहां तो मेरे परिचित, मुझ से मुहब्बत रखने वाले लोग हैं।'

'शौकत अली मुहम्मद अली तो रोकने की कोशिश कर रहे हैं। पर कितने ही लोग इनकी मानते ही नहीं, इसका यह क्या करें? आप भी क्या कर सकते हैं? वे तो समय पाकर ही ठीक होंगे।'

'यह दूसरी बात है। शौकत अली महम्मद अली तो कुन्दन हैं। वे तो खूब कोशिश कर रहे हैं। पर यह बाजी हाथ में नहीं रही। छः महीने पहले थी। मैं जानता हूं कि इस उपवास से उनके दिल में खलबली मचेगी

पर यह उसका गौण असर है। लेकिन, किसी पर असर डालने के लिये तो मैं उपकरता ही नहीं।'

'परन्तु हां, आपका कुसूर क्या है, यह तो रही गया।'

'कुसूर ? मैंने तो एक तरह से हिंदू जाति के साथ विश्वासघात ही किया। मैंने तो हिंदुओं से कहा 'मुसलमानों के गले मिलो, उन पाक जगहों की रक्षा के लिये तन, मन, अर्पण कर दो आज भी उनको अहिंसा का, मार का नहीं बल्कि मर कर झगड़े मिटाने का सबक दे रहा हूं। पर उसका नतीजा क्या देख रहा हूँ ? कितने मन्दिर टूटे ! कितनी ही बहनों ने मुझ से आकर शिकायतें की हैं ! कल ही मैंने हकीम जी से कहा—बहनों को मुसलमान गुण्डों का बराबर डर बना रहता है। कितनी ही जगह उन्हें बाहर निकलना मुश्किल होता है। भाई का पत्र आया है। उसमें बच्चों पर जो कुछ बीती है, वह कहीं गवारा हो सकती है ? मैं हिंदुओं से किस मुंह से कहूँ कि तुम बरदाश्त करते ही रहो? मैंने तो उन्हें विश्वास दिलाया था कि मुसलमानों की मुहब्बत का फल अच्छा ही निकलेगा, फल का विचार किये बिना आप उनके साथ मुहब्बत करो। इस विश्वास को सच्च साबित करने की शक्ति आज मुझमें नहीं रही न मुहम्मद अली शौकतअली में है, मेरी बात कौन सुनता है ? फिर भी मुझे तो हिंदुओं को मरने की ही बात कहनी है। सो यह मैं खुद मर कर ही कह सकता हूँ। मर कर ही मरने की कुंजी बता सकता हूँ, दूसरे किस तरह बताऊं ?

'मैंने असहयोग-आन्दोलन को शुरू किया। आज मैं देखता हूँ कि अहिंसा की गंध तक न होते हुए लोग आपस में असहयोग करने लगे हैं। इसका कारण क्या है ? कारण यही कि मैं खुद अहिंसामय नहीं हूं मेरी अहिंसा हुई क्या ? यदि वह पराकाष्ठा तक पहुंच गई होती तो जो हिंसा हो रही है न दिखाई देती इस लिये मेरा उपवास प्रायश्चित्त है, तपश्चर्या है। मैं किसी को ऐब लगाना नहीं चाहता। मैं तो अपना ही दोष समझता हूँ। मेरी शक्ति चली गई है। हारने, शक्ति गवांने के बाद ईश्वर के दर्बार में अर्ज करना ही मेरे लिये बाकी रहा है। अब वही सुन सकता है, दूसरा कौन सुनने वाला था ?"

बड़े भाई के साथ

तीसरे दिन शोकतअली आये। मुहम्मदअली उनकी राह ही देख रहे थे। क्यों कि अब भी उन्हें आशा थी कि शायद शौकत अली बापूजी से उपवास छुड़ा सकेंगे। बापूजी ने उन्हें आश्वासन दिया था कि 'अगर शौकत या आप मुझे कायल कर सकें कि उपवास करने में भूल हुई है, उपवास बेजा है तो मैं छोड़ दूँगा।' इस लिये शौकत के आने से मुहम्मदअली में आशा और बल आया। परन्तु शौकत बापूजी के साथ ज्यादा दलील न करते, सुनते ही रहे। और अन्त को 'हां, महाराज, सब ठीक है।' कह कर बाहर निकले। इन बातों का थोड़ा बहुत श्रवण भी यदि करा सकूं तो सारे उपवास के रहस्य पर और भी अधिक प्रकाश पड़ेगा।

दूसरे का विचार करना ठीक नहीं

शौ०—'पर देश के दिल को आपके उपवास से कितनी चोट पहुंचेगी, इसका विचार भी आपका धर्म न करने देगा ?'

गां०—'न, नहीं करने देगा। क्यों कि मनुष्य भोला है। कितनी ही बार वह औरों को खुश करने के लिये अनुचित काम कर लेता है। इस लिये धर्म यही शिक्षा देता है कि तेरे सामने सारी दुनियां खड़ी हो जाय

तो भी तू अपना काम करता रह। तुझे क्यों इतना अभिमान होना चाहिये कि तेरे उपवास से सारी दुनियां को दुःख पहुंचेगा।'

शौ०—'ऐसी तपश्चर्या में दूसरे की सलाह काम दे सकती है।'

गां०—'नहीं, यह तो मेरे और खुदा के बीच की बात है। यदि किसी की सलाह की ज़रूरत हो तो उसे छोड़ ही देना चाहिए।'

शौ०—तपश्चर्या से नुकसान हो जाय और तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुंचाता हो तो भी दूसरा इन्साफ नहीं कर सकता?'

गां०—'नहीं, यदि ऐसी कमजोरी हो तो वह जरूर मर जाय, भले मर जाय। दुनियां और देह कोई चीज नहीं। यदि इस मामले का कुछ निपटारा न हो तो मैं तो हमेशा के लिये अनशन लेने का विचार करता था—परन्तु मौलाना और हकीम जी की बहुतेरी बातें सुनने पर मैंने उस विचार को छोड़ दिया। हकीम जी ने कहा—इस ख्याल को दिल से ही निकाल डालिये। मैंने कहा—दिल से तो कैसे निकल सकता है? क्यों कि जिसे मैं धर्म मानता हूं उसे तो मैं जरूर पूरा करूंगा मैं तो आप से कह सकूंगा कि यदि आपके धर्म में गैर—मुस्लिम कौमों के साथ मुहब्बत रखने की आज्ञा हो और आप मुहब्बत न करें तो हमें फना हो जाना पड़ेगा। और उस समय मुझे जीवित रहने का अधिकार न रहेगा। मैंने तो ख्वाजा हसन निजामी को भी कहा कि रस्ते चलते भिखमङ्गों को, भंगी चमारों को, और अनाथों को मुसलमान क्या बनाते हैं? मुझे बनाइये न? मुझे बना लेने से और भी हो जायेंगे। ये बेचारे इस्लाम को कबूल करके क्या खुदा को पहचानेंगे? इनकी तादाद बढ़ने से इस्लाम की क्या ताकत बढ़ेगी?

बातें बहुत चलती। पर गांधी जी थक गये थे। शौकतअली उठे। उठते २ कहा—हर रोज नमाज पढ़ते वक्त कितनी ही दुआ मांगता हूं—पहिली हिंदु-मुस्लिम एकता की, दूसरी मेरी मां के इस्लाम के आज़ाद होने तक कायम रहने और स्वराज्य को देखने की, आखिरी दुआ वह कि महात्मा गांधी जी की दुआ बर आवे।"

चरखा द्वादशी अनशन अष्टमी

महादेव हरिभाई देशाई

(नवजीवन)

श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी

महोत्सव का प्रोग्राम

(प्रकाशन विभाग द्वारा प्राप्त)

जन्म शताब्दी उत्सव के सम्बन्ध में समय २ पर आवश्यक सूचनाएं आर्य्यजनता को मिलतीं रही हैं। शताब्दी के महोत्सव का क्या प्रोग्राम होगा ? इस विषय में बहुत से लोगों ने पूछा है। इसलिए इस विषय में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

१५ फर्वरी से २१ फर्वरी तक एक सप्ताह

तक शताब्दी का महोत्सव रहेगा। एक सप्ताह के प्रोग्राम को तीन हिस्सों में बांटा गया है :—

(१) प्रथम तीन दिन

(२) द्वितीय तीन दिन

(३) सातवां दिन शिवरात्रि का—शताब्दी का मुख्य दिन। इन में प्रथम तीनों दिनों का प्रोग्राम एकसा रहेगा।

प्रथम तीन दिन १५,१६,१७, फर्वरी

प्रातःकाल

प्रति दिन प्रातः काल ६ $\frac{1}{2}$ बजे ८ बजे तक बृहत् यज्ञ होगा। क्योंकि उपस्थिति बहुत अधिक होगी इस लिए यह बृहत् यज्ञ पांच भिन्न २ स्थानों पर होगा, और पांचों स्थानों पर कार्य्यवाही सर्वथा एक ही प्रकार की होगी, यह यज्ञ सम्पूर्ण यजुर्वेद के मन्त्रों से सात दिनों में पूर्ण किया जायगा, इस यज्ञ के साथ सामवेद का गान भी हुआ करेगा यज्ञ के पश्चात् वहीं यज्ञभूमि में

८ से ८॥ तक वेदोपदेश

होगा। यह भी पांच स्थानों में होगा वेदोपदेश के पश्चात्

८॥ से १॥ तक आर्य्यपरिषद्

होगी, आर्य्य परिषद् के विषय में कुछ कह देना आवश्यक है। शताब्दी महोत्सव की सब से महत्त्वपूर्ण विशेषता एक प्रकार से आर्य्यपरिषद् ही है। जिस प्रकार बुद्ध महाराज के मरने से कई सौ वर्ष पीछे बौद्ध महासभाएं हुईं थीं जिन में बौद्ध धर्म्म के मन्तव्य और कार्य्यप्रणाली स्थिर की गई थीं, इसी प्रकार आर्य्यसमाज की यह परिषद् शताब्दी के अवसर पर होगी, जिस में आर्य्यसमाज के मन्तव्यों और सञ्चालन पर दृष्टिपात किया जायगा। आर्य्यपरिषद में सम्पूर्णआर्य्यसामाजिक जगत् के चुने हुए २५० प्रतिनिधि होंगे, यह प्रतिनिधि अलग बैठ कर मन्तव्यों पर विचार करेंगे।

आर्य्यपरिषद् का निर्माण

२५० प्रतिनिधियों का निम्न प्रकार से निर्वाचन होगा।

(१) पञ्जाब संयुक्त प्रान्त और प्रादेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभाएं प्रत्येक २०, २० सदस्य का निर्वाचन करेंगी =६०

(२) बंबई, बंगाल, राजपूताना प्रत्येक १४ सदस्य =४२

(३) मध्यप्रदेश ब्रह्मा, ईस्ट-अफ्रीका प्रत्येक सदस्य ६ = १८

(४) जहाँ प्रतिनिधि सभाएं नहीं हैं उन सभाजों के प्रतिनिधि = ८

(५) परोपकारिणी सभा के प्रतिनिधि = ४

(६) शताब्दी सभा द्वारा निर्वाचित = ६८

कुल २००

(७) ४० सभासद तक आर्य्यपरिषद् स्वयं आवश्यकता पड़ने पर बढ़ा सकेगी और १० सभासद तक आवश्यक्ता पड़ने पर प्रधान बढ़ा सकेगा कुल २५०

इस प्रकार यह आशा की जाती है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के चुने हुए प्रतिनिधि परिषद् में आ सकेंगे और परिषद् के निश्चय आर्य्य समाज की सामूहिक सम्मति को प्रकट करने वाले होंगे। जन्म शताब्दी सभा ने अपनी दिल्ली की बैठक में

आर्य्यपरिषद् के सभापति

बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पण्डित बालकृष्ण जी शास्त्री को सर्व सम्मति से निर्वाचित किया है। यह गौरव की बात है कि आर्य्य समाज ने यह महत्त्वपूर्ण आदर एक संस्कृतज्ञ विद्वान् को दिया। पंडित जी की समाज की सेवा भी बहुत है।

आर्य्यपरिषद् के विचारणीय विषय

निम्नलिखित हैं। इन पर आर्य्यपरिषद् विचार कर अपना अन्तिम निर्णय करेगी जो आर्य्य समाज को माननीय होंगे।

(क) वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त किस प्रकार कार्य्य रूप में परिणत किया जावे।

(ख) आर्य्य-विद्या सभा, आर्य्य—धर्म्म सभा और आर्य्य-राज्य सभा की स्थापना किस प्रकार इस समय की जावे।

(ग) इस बात पर विचार करके सभाएं स्थिर की जाव कि अछूतों को उपनयन संस्कार आर्य्यसमाज में प्रवेश के साथ ही कर दिया जाया करे अथवा कुछ काल बाद।

(घ) इस बात पर विचार किया जावे कि आर्य्यसमाज के सभासद होने के लिए केवल इन नियमों का मानना आवश्यक हो अथवा किन्हीं और मन्तव्यों का मानना भी ज़रूरी हो? यदि हो तो किन का?

(ङ) संस्कारविधि में वर्णित संस्कारों की पद्धति के संशोधन पर विचार।

(च) सदाचार के नियम की व्याख्या।

(छ) आर्य्यसमाज में प्रवेश होने की विधि प्रत्येक के लिए क्या होनी चाहिये?

पाठक सहज ही में समझ सकते हैं कि ये प्रश्न कितने महत्वपूर्ण हैं जिनके विषय में बहुत कुछ सम्मतिभेद और विवाद हैं। इन सारे विवादास्पद विषयों पर आर्य्यपरिषद् के निर्णय से बहुत प्रकाश पड़ जायगा। आर्य्यपरिषद् की कार्यवाही एक छोटे पण्डाल में अलग हुआ करेगी। इसमें परिषद् के मेम्बरों के अतिरिक्त दूसरे लोग प्रधान की आज्ञा के बिना सम्मिलित न हो सकेंगे। इसी लिए

८॥ से १०॥ तक का दूसरा प्रोग्राम

भी रक्खा जायगा. अर्थात् बड़े पिण्डाल में इसी समय में आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध २ वक्ताओं के व्याख्यान और भजन होंगे। इन का भी निश्चित प्रोग्राम पीछे से प्रकाशित होगा। महोत्सव के कई पण्डाल होंगे, जिन में से एक मुख्य सब से बड़ा पिण्डाल होगा। आर्य्यपरिषद् के लिए एक छोटा सा पिंडाल

अलग बनाया जायगा। यदि बड़े पिण्डाल में सब लोग बहुत अधिक संख्या होने के कारण व्याख्यान आदि न सुन सकेंगे तो उसी समय दूसरी पिण्डालों में व्याख्यानों का प्रबन्ध भी किया जायगा जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ८॥ से १०॥ तक दुहरा प्रोग्राम रहेगा। एक ओर आर्य्यपरिषद् और दूसरी ओर व्याख्यानादि, इस समय प्रातः-काल की कार्य्यवाही समाप्त होगी।

मध्याह्नोत्तर

१ बजे से ३ बजे तक

अखिलधर्म—सम्मेलन

होगा, जिस में निम्न लिखित ५ विषयों पर भिन्न २ मतों के निमन्त्रित विद्वान् अपने २ मतों के अनुसार निबन्ध पढ़ेंगे।

(१) आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विचार
(२) सृष्टि उत्पत्ति
(३) ज्ञान का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ?
(४) मोक्ष और उसके साधन
(५) सुख दुःख के कारण

जिन २ धर्मों के प्रतिनिधि विद्वान निबन्ध पढ़ने के लिये निमन्त्रित किये जायेंगे वे यह हैं:—

(१) बुद्ध
(२) जैन
(३) ईसाई
(४) पार्सी
(५) इस्लाम
(६) थ्योसोफीकल सोसाइटी
(७) यहूदी मत
(८) वैदिक धर्म

३ से ५ बजे तक

आर्य विद्वान् एक पिण्डाल में निबन्ध पढेंगे। यह विद्वत्तापूर्ण निबन्ध होंगे जो कि आर्य समाज के भिन्न २ विद्वानों से लिखाए जायेंगे। इन निबन्धों के ८ विषय निम्न-लिखित होंगे।

(१) त्रैतवाद
(२) ईश्वरीय ज्ञान वेद
(३) वर्णाश्रम व्यवस्था
(४) संस्कार फिलासफ़ी
(५) षट्दर्शन में समन्वय
(६) वैदिक सभ्यता में सदाचार का स्थान
(७) वैदिक कर्म-काण्ड और पशुबध
(८) महर्षि दयानन्द के भाष्य की शैली

३ से ५ बजे तक दुहरा प्रोग्राम

यह सोचकर कि निबन्ध गम्भीर विषयों पर विद्वत्तापूर्ण होंगे और शायद सर्वसाधारण उन में उतनी रुचि न लें इसीलिए उपर्युक्त प्रोग्राम के साथ २ दूसरे पिण्डाल में व्याख्यान और भजन होंगे!

रात्रि

७ से ९ बजे तक आर्यसम्मेलन

होगा जिसमें आर्यजनता को कतिपय विषयों पर जो शताब्दी सभा निश्चय करेगी अपने २ विचार प्रकट करने का अवसर दिया जायगा। इस सम्मेलन का प्रयोजन यह है कि जिससे किन्हीं ख़ास विषयों पर आर्य्य जनता की आवाज़ मालूम पड़ सके। इन सम्मेलनों में अधिक से अधिक आर्य्य पुरुषों को अपने २ विचार प्रकट करने के लिए थोड़ा २ समय दिया जायगा। जो कुछ विचार प्राप्त होंगे वे लेखबद्ध होकर आर्य्यपरिषद के आगे पेश किये जायेंगे और वहां उन पर अन्तिम निर्णय होगा। परन्तु यह आवश्यक

नहीं है कि आर्य्य-परिषद में जिन २ विषयों पर विचार होना है वे सब आर्य्य सम्मेलन के आगे रक्खे जावें। उनमें से कुछ चुने हुए विषय ही आर्य्य-जनता के आगे रक्खे जावेंगे।

९ से १० तक

एक व्याख्यान उपदेश के रूप में होगा जो किसी पूज्य संन्यासी या विद्वान् द्वारा दिया जायगा।

प्रथम तीनों दिनों की कार्य्यवाही उपर्युक्त प्रकार से एक ही प्रकार की होगी.

द्वितीय तीन दिन. १८. १९. २० फर्वरी

प्रातःकाल ६॥ से ८॥ तक

हवन, सामगान और वेदोपदेश पूर्ववत् होगा। इसके पश्चात्—

(१८ और १९ फरवरी को)

८ १/२ से ९ १/२ बजे तक

एक २ व्याख्यान किसी चुने हुए विषय पर विशेष रूप से तैयार किया हुआ होगा.

९ १/२ से १० १/२ बजे तक

उन महानुभावों का परिचय आर्यजनता से कराया जायगा जिन्होंने ऋषि दयानन्द के दर्शन करने और सत्संग से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त किया है और उन्हें विशेष घटनाओं के प्रकट करने का भी अवसर दिया जायगा--जो स्वामी जी महाराज के जीवन से सम्बन्धित और उनकी देखी हुई हैं।

२० फर्वरी को ८ १/२ से १० १/२ तक

आर्यपरिषद् की अन्तिम बैठक होगी. अर्थात् आर्य्य परिषद् की बैठक प्रथम तीन दिन १५, १६, १७ ता० को होंगी और फिर उसके पश्चात् २७ ता० को भी होगी.

मध्याह्नोत्तर

१ से ५ बजे तक

(तीनों दिन १८, १९, २० फर्वरी)

शारीरिक, मानसिक, बलप्रदर्शक व्यायाम खेलादि होंगे। इनमें आर्य्यसमाज के गुरुकुल, कालेज और स्कूलों के विद्यार्थी भाग लेंगे। तथा दूसरे भी इस विषय के विशारद इकट्ठे किये जायेंगे। यह एक बड़ा अपूर्व (Tournament) टूर्नामेण्ट होगा। इस प्रबन्ध के लिए पृथक् एक उप-समिति बना दी गई है जिस के संयोजक प्रो० रमेशचन्द्र जी हैं। इन खेलों का विस्तृत प्रोग्राम पीछे प्रकाशित होगा, जिसमें प्रत्येक दिन के अलग २ कार्य्य निश्चित किये जायेंगे।

रात्रि (१८ फर्वरी)

७ से १० तक भजन और व्याख्यान

रात्रि (१९ फर्वरी)

७ से १० तक व्यायाम सम्बन्धी खेल

नोट—इस रात्रि को व्यायाम सम्बन्धी खेलों में प्रबन्ध की आसानी के लिए टिकट लगाये जावगे जो कि क्रमशः १) ॥) ।) के होंगे। इसी प्रकार कुश्ती के समय में भी जो कि मध्यान्होत्तर ऊपर दिये हुए किसी समय में होगी ॥) ।) और ≤) के टिकिट लगाये जावेंगे।

रात्रि (२० फर्वरी)

इस रात्रि का अभी कोई निश्चित कार्य नहीं रक्खा गया है। सम्भवतः यह दिन —अगले दिन (शिवरात्रि) व्रत ग्रहण करना होगा—इस दृष्टि से कदाचित् आत्मचिन्तन के लिए दिया जावे।

शताब्दी महोत्सव का मुख्य दिन

(शिवरात्रि २१ फर्वरी)

प्रातःकाल

६॥ से ८ तक बृहत् हवन, सन्ध्या और शताब्दी की पूर्णाहुति।

८ से ९ बजे तक एक विशेष वेदोपदेश।

९ से १०॥ तक व्रत-ग्रहण, सम्मिलित प्रार्थना, और सामगान। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सम्मिलित प्रार्थना और व्रत-ग्रहण जो कि सारे भारतीय आर्य नर नारी एक साथ करेंगे शताब्दी महोत्सव का मुख्य कार्य है, जिस का महत्व लेखनी की अपेक्षा कल्पना से अच्छी तरह समझ में आ सकता है।

मध्याह्नोत्तर

१ बजे तक व्याख्यान, भजन के पश्चात् देश देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर में वेद प्रचार करने तथा पुस्तक प्रकाशन के लिए सार्वदेशिक सभा द्वारा अपील।

रात्रि

८ से ११ बजे तक, दीपमालिका, सामगान और संगीत के साथ उत्सव की समाप्ति।

यह उत्सव का केवल संक्षिप्त प्रोग्राम है। शताब्दी महोत्सव के साथ २ जो अन्य कार्य होंगे उनकी सूचना पीछे से दी जायगी। शताब्दी के साथ २ एक बड़ी आर्य प्रदर्शिनी होगी जिसका विवरण भी पुनः प्रकाशित किया जायगा। शताब्दी महोत्सव के प्रोग्राम के विषय में अभी लगातार विचार हो रहा है। जो महानुभाव अन्य कोई विशेष योजना प्रस्तुत करना चाहें वे 'पूज्य पाद श्री नारायण स्वामी जी प्रधान शताब्दी सभा' मथुरा के पास लिख भेजें।

धर्मेंद्रनाथ

ब्रजनाथ मिथिल

मंत्री शताब्दी-प्रकाशन-विभाग

मेरठ-कालेज मेरठ

—:—:※:—:—

विजय दशमी पर भारतवासियों की पुकार

(लेखक--रमेशचन्द्रदत्त बहुखण्डी कन्या गुरुकुल देहली)

भारत के हृदय सम्राट राम! तुम्हारी प्रजा, तुम्हारे भक्त शताब्दियों से तुम्हारा विजय मना रहे हैं। युग युगान्तर बीत गये हमारी सत्ता नष्ट होगई, हमारी शांति वैभव नष्ट भ्रष्ट हो गया, किन्तु अब लग हम आपकी कीर्ति गाकर ही धैर्य्य धर रहे हैं। हमें आशा लगी है कि अन्त में आप अवश्य ही पाप संहार करेंगे और अपनी निराश्रित प्रजा को दुःखों से छुड़ावेंगे।

प्रभो! उस दिन आपने अपने महान् तेज से पाप का ध्वंस किया था, सती का सतीत्व बचाने के लिये अनेकों बलधारी व्यभिचारियों को धूल में मिलाया था! किन्तु आज आपकी २२ करोड़ सन्तान 'हिंदू नामधारी' सिर पकड़ २ कर रो रही हैं। अपनी माता और बहिनों का सतीत्व अपहरण होते हुए देख कर भी हम अपाहिजों की भांति जान बचाने की चिंता कर रहे हैं। दीनदयालु! उस दिन आपने अकेले ही नर, देवों को तंग करने वाले दुष्ट राक्षसों का दमन किया था। किन्तु आज आपकी असंख्य सेना हा! हा! कार मचा रही है। उस दिन एक प्राणी की रक्षा का इतना भारी यत्न किया गया था। आज हजारों, अनाथ विधर्मियों के शिकार हो रहे हैं। मन्दिर

के मंदिर मिट्टी में मिलाये जा रहे हैं। अबोध बच्चों के सिर धड़ से अलग किये जा रहे हैं। अनाथों के नाथ! आपकी पुण्यभूमि इस ऋषिभूमि में सैकडों कुकर्म हो रहे हैं। इस जाति की चवालीस करोड़ आखें सब अनर्थों को देखती चली जा रही हैं किन्तु आधुनिक कमजोरी से चूं तक नहीं करने पाती हैं।

कृपानिधे! इस समय स्वदेश की विचित्र दशा है। प्रजा त्राहिमाम्!त्राहिमाम्!से आकाश को गुंजा रही है। अन्दर और बाहर दोनों ओर से आक्रमण हो रहे हैं। विदेशी नौकरशाही और व्यापारियों का अन्ध स्वार्थ अलग ही हमें परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़ रहा है। भगवन्! अपनी वैधव्य कथा कहाँ तक सुनावें कहते २ जीभ रुक रही है, गला खुश्क हो रहा है,लिखते २ हाथ से लेखनी गिर रही है। आपके भक्त आपकी आराधना कर रहे हैं। आओ और भक्तों का कष्ट दूर करो।

हे राम! जो सहस्रों वर्षों से इस पवित्र भूमि के एक २ रोम २ में रम रहे हो फिर से इस जाति के अन्दर जीवन प्रदान करो, जिससे इस जाति के २२ करोड़ डामाडोल हृदय स्थिर हो जायें और यह आर्यवर्त वही प्राचीन पवित्र भूमि बन जाय जिसके सुपुत्रों के चरणों पर बैठकर सारे भूमण्डल के लोग चरित्र संगठन की शिक्षा लिया करते थे!!

वैज्ञानिक संसार

आंच बुझाने वाला फर्श

ज्योति के पाठकों ने समय २ पर अमरीका के जंगलों में आग लग जाने के समाचार पढ़े होंगे। यह वृक्षों की टहनियों के तेज हवा द्वारा आपस में रगड़ने से लग जाती है, और कभी २ इतनी भयंकर होती है कि कई सप्ताह तक नहीं बुझती और मीलों जंगलों का नाश कर देती है।

अफ्रीका के अलज़ेरिया प्रान्त में वहाँ के कृषि-विद्या-विशारदों ने ऐसी आग को रोकने का एक नया उपाय निकाला है। वह जंगलों में पेड़ों के नीचे ऐसी बेल बो देते हैं जो खूब जल्दी फैलने वाली, रस से भरी हुई और सुदृढ़ होती हैं। इन बेलों में आंच नहीं लगने पाती और इस से पेड़ों में लगी आंच आगे नहीं फैल सकती। इन बेलों का एक और लाभ है कि यह ज़मीन की नर्मी को बनाये रखती हैं जिस से वृक्षों के फैलने और बढ़ने में भारी सहायता मिलती।

दुमदार सितारे का आगमन

पिछला तजरुबा है कि प्रायः दस वर्ष पीछे एक नया दुमदार सितारा आकाश में प्रगट होता है। इसीलिये आजकल ज्योतिषी लोग अपने विशेष प्रकार के दुरवीक्षण यन्त्रों द्वारा—जो कि आकाश के बहुत बड़े भाग को एक दम देख सके हैं–ऊपर की ओर दृष्टि लगाये बैठे हैं।

इस नये सितारे की खोज में वैज्ञानिक मनोरञ्जन के अतिरिक्त जन साधारण के सम्बन्ध की भी बात है। गणित द्वारा हिसाब करके ज्योतिषी इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कभी न कभी हमारी पृथ्वी की दुमदार सि-

तारे के सिर से टक्कर अवश्य लगेगी। वैज्ञानिक इस बात में सहमत हैं कि यदि ऐसा हुआ तो पृथ्वी का सारा वायुमण्डल दुमदार सितारे की गैस से विषमय बन जायगा और इस प्रकार सब प्राणियों का जीवनान्त हो जायगा।

सितारे के सिर पर सदा गैस जलती रहती है। यह सिर अन्य भागों की अपेक्षा अधिक ठोस होता है जिस का व्यास सहस्त्रों मील का होता है। यह सब का सब जलती हुई गैस से आच्छादित रहता है।

यह सम्भव है कि दुमदार सितारे में हमारी पृथिवी की समस्त वायु से अधिक भाग में गैस हो अतः यह सहज में ही अनुमान किया जा सका है कि इतनी अधिक भाग में गैस—जो कि संभवतया असह्य हो—किस प्रकार हमारे वायुमण्डल को विषमय बना सकी है।

कीटसंसार के तोपची

स्कंक नाम का एक चार पैर वाला कीड़ा होता है जो कि बड़ा मुलायम होता है। इसके शरीर के ऊपर जो रोयें होते हैं उन्हें पश्चिम की रमणियां बड़ा पसन्द करती हैं। उनकी इस भोगपिपासा को शान्त करने के लिये डारटमूर में एक स्थान बनाया गया है जहां कि इन कीड़ों की नसल पैदा की जाती है और पाली जाती है।

अपनी जंगली अवस्था में स्कंक समस्त उत्तरीय अमरीका में दिन दिहाड़े अभय फिरता है। और कोई इसको हानि नहीं पहुंचाता। इसका कारण यह है कि यदि इसको बहुत तंग किया जाय तो यह अपने शरीर की एक गिल्टी में से इस प्रकार की तुषार उड़ाता है कि उसके सूंघने पर मनुष्य प्रायः मृतवत् हो जाता है। शिकारी कुत्ता इस को सूंघ कर दिनों तक बेकार हो जाता है।

एक और छोटा सा कीट है जो कि आक्रमण होने पर अपनी रक्षा के लिये अपने शरीर से तेज़ाब का फुव्वारा चला देता है। इस तेज़ाब में एक और गुण है कि जब इसके कण हवा से टकराते हैं तो गोली चलने के सदृश हलका सा शब्द भी निकलता है। यह टोपची एक बार लगातार १२ गोली चला सकता है।

एक और कीट है—जिसका नमूना लन्डन के चिड़िया घर में है—जो कि इसी प्रकार फार्मिक एसिड निकालता है जो कि प्रायः १२ इञ्च तक मार सकता है।

पैरीपेटस नाम का एक और कीड़ा है जोकि बिच्छू से बहुत मिलता है। यह प्रायः तीन इञ्ज लम्बा होता है और इसकी टांगे और जबड़े बड़े मज़बूत होते हैं। अपने शिकार के पास पहुंचकर यह एक ऐसे चिपचिपे द्रव्य की बौछार करता है जिससे कि वह चलने फिरने में नितान्त असमर्थ हो जाता है।

दिनों का खेल

गत जुलाई मास में रसल माघन नामक हवाई जहाज़ के कप्तान ने न्यूयार्क (New York) से सान फ्रान्सिसको (San Francisia) तक उड़कर वेग से उड़ने में सब को मात कर दिया। वह न्यूयार्क से प्रातः ३ बज कर ५१ मिनट पर चले और सायंकाल ९ बज कर ४४ मिनट पर सान फ्रान्सिसको पहुँच गये। यह कुल फासला २, ६७० मील है और पौने १८ घन्टे में तय किया गया। यदि २ $\frac{1}{4}$ घन्टे स्थान २ पर ठहरने के छोड़ दिये जायें तो इसका यह अभिप्राय होगा कि महाशय माघन प्रायः १८० मील प्रति घन्टा के

हिसाब से उड़ रहे थे । परन्तु वास्तव में यह बात नहीं, क्योंकि उनका जहाज़ उसी दिशा की ओर जा रहा था जिस ओर कि सूर्य जा रहा था, अतः उनको धूप और प्रकाश ६ घन्टे अधिक मिल गये अथवा उनका उड़ने का समय पौने १८ घन्टे न था वरन २२ घन्टे से कुछ अधिक । यदि वह इससे विपरीत दिशा में उड़ते—पूर्व से पश्चिम को—तो उनके प्रकाश के ६ घन्टे कम हो जाते अथवा उनका समय १० घन्टे रह जाता ।

सुविधा के लिये भूगोल विशारदों ने पृथिवी के चारों ओर पेन बीचों बीच एक सीधी लकीरका अनुमान किया है, जो कि पृथिवी को बराबर दो भागों में बांट देती है। इसको वह अपनी भाषा में भूकक्षा अथवा Equator कहते हैं । इसके दोनों ओर उत्तरीय दक्षणीय ध्रुव तक इसी प्रकार लकीरों को खींच कर इन्हें अक्ष वा (Latitude) का नाम दिया है । पृथिवी गोलाकार है अतः इन लकीरों का कोई अन्त और आरम्भ नहीं । इस प्रत्येक गोलाकार लकीर को ३६० भागों में बांटा है और प्रत्येक भाग को अक्षांश का नाम दिया है । सुविधा के लिये इंगलैन्ड के ग्रीनविच नामक नगर में जाने वाले अक्षांश को प्रथम अक्षांश कहा जाता है, इसीका १८० वा अक्षांश पृथिवी के दूसरी ओर ग्रीनविच के ठीक सामने होगा । अब यदि कोई जहाज़ प्रशान्त महासागर में पश्चिम से पूर्व की ओर चल रहा हो तो उसे १ दिन का लाभ होगा और यदि उल्टी दिशा में चल रहा हो तो एक की हानि इसका कारण यह है कि पृथिवी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है । यदि हम एक ही स्थान पर स्थित रहें तो हमें पुनः २४ घंटे पीछे सूर्योदय के दर्शन होंगे । परन्तु यदि हम भी पृथिवी के ऊपर चलते रहें तो यह बात न होगी । क्योंकि यदि हम पश्चिम से पूर्व की ओर चलेंगे तो हमें २४ घंटे से पहिले ही सूर्योदय दिखलाई देगा और यदि हम सूर्य के साथ २ पूर्व से पश्चिम की ओर चलें तो हमने वह स्थान छोड़ दिया जहां कि हमने आज सूर्य का निकलना देखा था और उससे आगे चले गये हैं अतः सूर्य को इतना मार्ग और चलना पड़ेगा और हमें उसका उदय २४ घन्टे से पीछे दिखलाई देगा ।

यदि आप बराबर पृथिवी के चारों ओर का चक्कर पूरा करलें तो एक स्थान पर ठहरे हुए व्यक्ति की अपेक्षा आप को एक सूर्योदय कम मिलेगा यदि आप पूर्व से पश्चिम की ओर चल रहे हैं और दूसरी दिशा में चलने पर एक अधिक ।

कुछ वर्ष बीते एक जहाज़ Seattle (अमरीका) से याकोहामा को जा रहा था । उस पर सफ़र करने वाले सोच रहे थे कि हम २५ दिसम्बर को योकोहामा पहुंच कर बड़ा दिन मनायेंगे परन्तु वहां पहुंचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि २५ दिसम्बर बीत गया और आज २६ तारीख है । यदि उनका जहाज़ विपरीत दशा में चलता तो उसे दो बड़े दिन मिलते ।

——

ऊनी कपड़ों का कीड़ों से बचाव

प्रत्येक गृहस्थ को पता है कि बरसात के दिनों में गरम ऊनी कपड़ों को सुरक्षित रखना कितना कठिन काम है । कहीं नीम की पत्ती रखते हैं कहीं 'फिनाइल' की गोली । धूप में सुखाते हैं, अथवा और कई उपाय करते हैं, तिस पर भी कपड़ों को कीड़े खा ही जाते हैं । अब एक वैज्ञानिक ने एक विधि निकाली है जिससे आये वर्ष की यह चिंता सहज में दूर हो जायगी । उनका कथन है कि ऊनी कते सूत को कपड़ा बनाने से पहिले

यदि एक विशेष प्रकार के रसायनिक द्रव्य में भिगो कर सुखा लिया जाय और फिर कपड़ा बुना जाय तो उसमें कीड़ा कदापि नहीं लगेगा। इस प्रकार करने से कपड़े में किसी प्रकार की खराबी नहीं आती। यदि यह खोज वैसी ही सिद्ध हुई। जैसा कि कहा जाता है तो एक बड़ा भारी कष्ट दूर हो जायगा।

वनिता विनोद

स्त्री जगत्

——ट्रावनकोर की महारानी साहिबा ने मिसेज लुकूज को दरबार के डाक्टरी विभाग की अध्यक्षा बना दिया है। उन्हें व्यवस्थापक सभा की मेम्बरी भी मिल गई है। सारे भारतवर्ष में मिसेज लुकूज़ व्यवस्थापक सभा की पहिली महिला-सदस्या हैं।

———

——भारतीय महिला संघ की पूना की शाखा सभा की ओर से २९ सितम्बर को एक सभा की गई, जिस में यह कहा गया कि बड़ी व्यवस्थापक सभा और प्रान्तीय कौंसिलों के लिये उम्मेदवार होने में स्त्रियों के लिए उन का स्त्री होना कोई अयोग्यता न मानी जाय।

———

——१ अक्टूबर को बम्बई में श्रीमती एनी-बेसेण्ट का ७८ वां वर्ष दिन मनाया गया। कोई ३० सार्वजनिक संस्थाओं ने, जिनमें से बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी और स्वराज्य सभा भी थीं, इस उत्सव में योग दिया था। महात्मा गांधी ने एक सन्देशा भेजा था जिसमें अपने उपस्थित न हो सकने पर खेद प्रकट किया था और श्रीमती बेसेण्ट के दीर्घ-जीवन की प्रार्थना की थी।

———

मद्रास प्रान्त ही एक ऐसा प्रान्त है जिस में स्त्रियां म्यूनिसिपल कमेटियों में दिन प्रति दिन अधिक भाग ले रही हैं। गत सप्ताह श्रीमती कृष्णा वैनमा को कोकोनाडा कमेटी की और श्रीमती बाबादम्मा राजभून्द्री कमेटी की सदस्या चुनी गयीं। बम्बई नगर को छोड़कर बम्बई प्रान्त में मदनापल ही ऐसा स्थान है जहां कि एक स्त्री—श्रीमती जयलक्ष्मी अमल को कमेटी की सदस्या बनाया गया है।

———

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि दक्षिण भारत में जल प्रवाह पीड़ितों की सहायतार्थ स्त्रियां बड़े उत्साह से कार्य कर रही ह। कीन मेरी कालेज, लेडी वैलिंगडन कालेज और हाई स्कूल की छात्राओं ने अपने में से १०००) रुपया इस पुण्य कार्य के लिये एकत्र किया है। इस फण्ड के स्त्री विभाग के पास ४५००) पहुंच चुके हैं। मिसेज़ सरला देवी चौधरानी ने लाहौर में काम आरम्भ कर दिया है। दक्षिण की प्रवीण गायकाओं ने मुफ्त इस की सहायतार्थ गाना सुनाया है, इत्यादि।

———

अब जापान में अधिकाधिक स्त्रियां वह काम करने लगी हैं जो पहिले केवल पुरुषों के ही हाथ में थे। अध्यापिका, क्लार्क, टाइ-पिस्ट, सौदा बेचने वाली, दायी तथा टैली-फोन चलाने वाली अब प्रायः स्त्रियां ही हैं।



ऊनी बूट

लेखिका----श्रीमती ओ३म्‌वती जी

यह बड़ा सुन्दर बूट है जो कि बच्चों के प्रायः घुटनों तक आता है और पैरों और टांगो को खूब गरम रखता है।

आवश्यक वस्तुः—

(१) ऊन महीन—आध छटांक

(२) हड्डी का महीन क्रोशिया

बूट के तले से आरम्भ करो। पहिले ५५ चेन बनाओ और इस में ५४ दोहरे बीनो। अब ऊन तोड़ दो। यह स्मरण रक्खो कि आगे की सब बनावट चेन के पिछले धागे में बीननी है।

१ पंक्तिः—आरम्भ के २४ दो० छोड़ कर अगले ६ में ६ दोहरे बीनो। २४ दो० और छोड़ो, लौटो।

२ पंक्तिः—पिछली पंक्ति के प्रत्येक ६ दोहरों में एक एक दोहरा बनाओ। ऊपर के २४ छोड़े हुये घरों में के २ घरों में एक एक दोहरा। इस प्रकार ६ के ८ घर बनते जायेंगे, लौटो।

३ पंक्तिः—पिछली पंक्ति के प्रत्येक ८ दोहरों में एक एक दोहरा बनाओ, फिर दूसरी तरफ छोड़े हुये २४ घरों में के २ घरों में २ दोहरे, इस प्रकार अब १० घर हो गये, लौटो।

४ पंक्तिः—प्रत्येक १० घर में १० दो०, ३ दो० किनारे वाले घरों पर। अब १३ घर हो गये, लौटो।

५ पंक्तिः—ऊपर के १३ घरों में १३ दो०, ३ दो०, किनारे वाले घरों में। अब १६ हो गये, लौटो।

६ पंक्तिः—ऊपर के १६ घरों में १६ दो०, ३ दो० किनारे वाले घरों में। अब १९ घर हो गये, लौटो।

७ पंक्तिः—ऊपर के १९ घरों में १९ दो०, ३ दो० किनारे वाले घरों में। अब २२ घर हो गये, लौटो।

८ पंक्ति:- ऊपर के २२ घरों में २२ दो०, ३ दो० किनारे वाले घरों में। अब २५ घर होगये, लौटो।

६ पंक्ति:—६ दो०, से १ दो०, दो घरों को एक साथ लेकर (यह घर घटाने के लिये है और इस प्रकार छेद का पता नहीं लगता) ६ दो०, १ दो०, घरों को एक साथ लेकर, ६ दो०, ३ दो०, किनारे पर।

१० पंक्ति:—८ दो०, १ दो०, इकट्ठा घरों में ६ दो०, १ इकट्ठा घरों में, ८ दो०, ३ दो० किनारे पर।

११ पंक्ति:—१० दो०, १ इकट्ठा घरों में, ६ दो०, १ इकट्ठा घरों में, ७ दो०, ३ दो० किनारे पर।

१२ पंक्ति:—६ दो०, १ इकट्ठा घरों में, ६ दो०, १ इकट्ठा घरों में, ६ दो०, ३ दो० किनारे पर।

१३ पंक्ति:—११ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, १ इकट्ठा, ८ दो०, ३ दो०, किनारे पर।

१४ पंक्ति:—१० दो०, १ इकट्ठा, ६ दो,० १ इकट्ठा, १० दो०, ३ दो० किनारे पर।

१५ पंक्ति:—१२ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, ३ दो०, किनारे पर।

१६ पंक्ति:-११ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, १ इकट्ठा, ११ दो०, ३ दो० किनारे पर।

१७ पंक्ति:—१३ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, १ इकट्ठा, १० दो०, ३ दो० किनारे पर।

१८ पंक्ति;—३४ दो०, ३ दो० किनारे पर।

१९ पंक्ति:--३७ दो०, ३ दो० किनारे पर।

२० पंक्ति: १५ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, १ इकट्ठा, १५ दो०, ४ दो, किनारे पर।

२१ पंक्ति:-४२ दो०, ४ दो० किनारे पर।

२२ पंक्ति:-१ दो०, १ दो०, उसी घर में और बढ़ाओ १७ दो०, १ इकट्ठा ६ दो० १ इकट्ठा, १७ दो०, १ दो०, बढ़ाओ, (सब घर ४६ होते हैं)

२३ पंक्ति:—१८ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो, १ इकट्ठा, १८ दो०, (सब घर ४४)

२४ पंक्ति:-४४ दो०।

२५ पंक्ति:—१७ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, १ इकट्ठा, १७ दो०। (४२)

२६ पंक्ति:—१६ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो०, १ इकट्ठा १६ दो०। (४०)

२७ पंक्ति:-१५ दो०, १ इकट्ठा, ६ दो, १ इकट्ठा, १५ दो०। (२८)

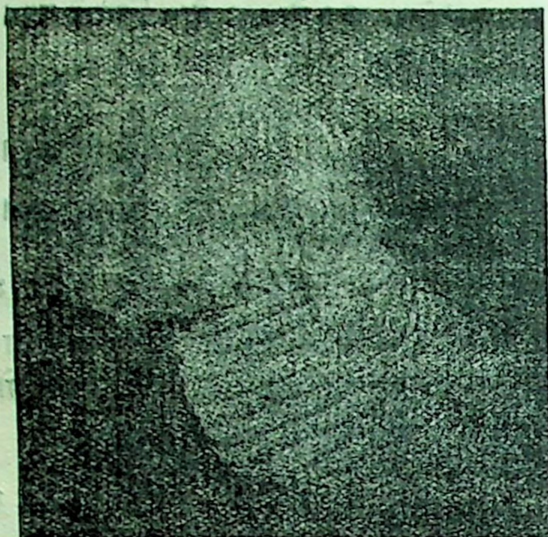
२८ पंक्ति:—१ दो० छोड़ो, १३ दो०, १ इकट्ठा ६ दो०, १ इकट्ठा, १२ दो०, १ दो० छोड़ो, १ दो० (३४)

अगली पांच पंक्तियां

२९ पंक्ति:—३ दो०, १ बढ़ाओ; दोहरे बनाते जाओ अन्त के तीन घर रहने दो, १ बढ़ाओ ३ दो०। (३६)

३० पंक्ति:-३६ दो०।

३१ अगली चार पंक्तियां २६ वीं पंक्ति की तरह बनाओ, प्रत्येक चार पंक्ति



के बीच में १ पंक्ति सादे दोहरों की बनाओ।

६ पंक्ति: ४४ दो०, बचे ऊन तोड़ डालो

बूट के तल्ले के लिये ६ दो०, उन ६ चेनों के दूसरे धागों में बीनना है जहां कि आरम्भ में बीना गया था (पंजे के पास से) दोहरों की इतनी पंक्तियां बीनो जितनी कि एडी के पास तक पहुंचने के लिये आवश्यक हों। पिछली पंक्ति के दोनों सिरों पर एक २ फन्दा घटा दो।

बूट को पैर के पिछली ओर से और तले को चारो ओर सफाई से सीं दो। बूट के ऊपरी भाग के चारों ओर निम्नलिखित प्रकार से बनाओ।

१ घेरा—बूट के पिछली ओर सिलाई की जगह ऊन को जोड़ो। पहला दोहरा छोड़ो, ५ ते. अगले दो०, के घर में, १ दो० छोड़ो, १ दो० अगले दो०, के घर में, १ दो० छोड़ो, ५ ते. अगले दो के घरमें * से इसी प्रकार अन्त तक बार बार बनाते जाओ।

२ घेरा—पिछली पंक्ति के पहिले फूल के तीसरे तेहरे पर एक सादा फन्दा * ऊन को इस फूल के बाकी रहे हुए दो तेहरों में से और दो फूलों के बीच के दोहरों में से और दूसरे फूल के दो दोहरों में से खींचो और इन पांचो फन्दों को क्रोशिया पर रख कर इनमें से ऊन खींच लो, फिर इस झालर को कसने के लिए एक दोहरा बीनो, फिर १ दो तीसरे ते०पर इस चिन्ह*से घेरे के अन्त तक इसी प्रकार बनाते जाओ।

३ घेरा—पिछली पंक्ति के पांच तेहरों के ऊपर के खाने में ५ ते० बनाओ * १ दो०पिछली पंक्ति के दो०पर, ५ ते० ५ तेहरोंके ऊपरकी जगह में इस चिन्ह * से अन्त तक इसीप्रकार बनाते जाओ।

बूट के सामने की झालर के लिये ३ चेन से आरम्भ करो और प्रत्येक चेन में एक एक दोहरा बनाओ

१ पंक्ति:—१ चे०, १ दो० * चोंच को दूसरे फन्दे में डालो और उन के बांये हाथ की पहली उंगली पर ३ फेर डालो और अब ऊन को इन तीन फेरों और चौथे क्रोशिये के ऊपर वाले फेर में से खेंच लो, १ दो०

२ पंक्ति--१ दो, पिछली पंक्ति के पहले दो, में १ घर बढ़ाओ, प्रत्येक पंक्ति में एक एक बढ़ाते जाओ जब तक कि ६ घर न हो जायें। अब इन पिछली दोनों पंक्तियों को बिना बढ़ाने के बार बार बनाते जाओ जबतक कि बूट के सामने के लिये काफी झालर न बन जाय। अब इस झालर को सफाई से बूट पर सीं दो।

बूट के मुंह पर की झालर के लिये ६ चेन से आरम्भ करके सामने वाली झालर की तरह बनालो।

गृह--प्रबन्ध

अमोनियां की गृह में उपयोगिता

अमोनिया एक गैस है जो बड़ी तेज़ और तीक्ष्ण गन्ध रखती है । इसी कारण इसे प्रायः उन रोगियों को-जो कि बेहोश हो जाते हैं-सुंघाया जाता है । इस गैस को पानी में घोल लिया जाता है और इसी जल को सूंघने के काम में लाया जाता है। परन्तु इस के अतिरिक्त यह अनेक प्रकार से हमारे काम में आती है। आज हम अपनी पाठिकाओं को इसी की उपयोगिता के कुछ उदाहरण देंगे।

एक बोतल "बहुत तेज़" अमोनिये को लेकर, उसे बड़ी सावधानी से खोलें नहीं तो यह आंखों और नाक द्वारा बड़ी हानि पहुंचायेगा। एक बोतल अलकोहल या स्पिरिट में एक बोतल पानी मिलकर दोनों को खूब हिलाओ। अब इस में एक बोतल तेज़ अमोनिया को डालकर अच्छी तरह से मिलालो। अब यह अमोनिया तय्यार है और नीचे लिखी क्रियाओं में काम में लाया जा सकता है:-

१-चिकनाई के धब्बे दूर करने के लिये- एक छोटा चमचा भर उपरोक्त अमोनिया को एक बड़ा चमचा अलकोहल में मिला लो। अब इसे स्पंज या किसी गरम कपड़े द्वारा धब्बे पर मलो और उस धब्बे वाले स्थान को इससे भिगो दो। चिकनाहट यदि बहुत पुरानी नहीं है तो शीघ्र दूर हो जायगी, यदि बहुत देर की है तो उपरोक्त क्रिया कई बार करनी पड़ेगी। ऊनी और सूती कपड़े पर चिकनाहट को मल देना चाहिये। यदि काला रेशम है तो उसे भी आहिस्ता २ मल सक्ते हैं। परन्तु हलके अथवा अन्य रंगों के रेशम पर धब्बे को मलना नहीं चाहिये अमोनिया से इसे खूब तर रक्खो, और स्पंज अथवा गरम कपड़े की गद्दी से थप २ करते रहो। रगड़ने अथवा मलने से सफेद धब्बा पड़ जाता है जो कि चिकने धब्बे से कम बुरा नहीं लगता।

२-पतलून, कोट के कालर और गरम कपड़ों को साफ करने के लिये-इसकी जैसी कोई चीज़ नहीं। कालीन पर से धब्बे उतारने के लिये बड़ी ही उत्तम वस्तु है। पीछे से थोड़े से अलकोहल से साफ करलेना और भी अच्छा है।

३-स्याही के धब्बे-जो कि संगमरमर लकड़ी अथवा कागज़ पर पड़ गये हों इस से बड़ी सुगमता से धोये जा सक्ते हैं। स्थान को घड़ी २ भिगोते रहना चाहिये जब तक कि धब्बे साफ न हो जायें।

४-सिर के बाल साफ करने के लिये- यह बड़ा उपयोगी है। जिस पानी से बाल धोने हों उस में इस की थोड़ी सी बूंदें डाल लो। इस से बाल साफ और चमकदार हो जायेंगे पीछे से साफ पानी से धो लेना चाहिये नहीं तो बाल सूखे २ से हो जाते हैं।

५-सिर के बालों का ब्रुश-थोड़े से जल में कुछ बूंद अमोनिया डाल कर ब्रुश भली प्रकार साफ किया जा सकता है और इस से ब्रुश को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती। यदि बहुत मैला हो तो इस पर थोडा सा साबुन मल लो। साफ़ करने के पीछे इसे शुद्ध पानी से धो डालो और हैन्डल से रस्सी बांध कर लटका दो। सूखने के लिये बालों

को जब वह अभी भीगे ही हों किसी कड़े स्थान पर न छूने दो।

६–उंगलियों पर से स्याही के धब्बे– इसी से बड़ी सुगमता से हटाये जा सकते हैं। पीछे से शुद्ध जल से धो लो।

७–रेशमी कपड़े–जिनकी आब जाती रही हो या जिन में कहीं २ दाग पड़ गये हों, थोड़े से अलकोहल में अमोनियां मिला कर स्पंज द्वारा उन के ऊपर फेरने से नये के बराबर हो जाते हैं, विशेष कर काले रेशम के कपड़े।

८–ज़ेवर–साफ करने के लिये इस से बढ़कर कोई चीज़ नहीं। पानी में ज़रा सा अमोनिया मिला कर काम म लाओ। यदि बहुत मैले हों तो पहले ब्रुश द्वारा उन पर थोड़ा सा साबुन लगा लो और फिर अमोनियां से धोलो। धोये पीछे पहिले उन्हें किसी पुराने रेशमी टुकड़े से पोंछ कर सुखा लो। और फिर पहाड़ी बकरी के चमड़े से खूब रगड़ो। ज़ेवर इतने साफ और चमकदार हो जायेंगे कि कोई सुनार भी क्या कर सकेगा।

६–चांदी के बर्तन–साफ करने के लिये पानी में साबुन घोल कर इस में थोड़ा सा अमोनिया डाल दो, पानी खूब गरम हो, शीघ्रता से किसी छोटे से ब्रुश के द्वारा साफ करलो। शुद्ध गरम पानी से धोने पीछे साफ सूती कपड़े से पोंछ लो और फिर बकरी के चमड़े से रगड़ डालो। इस प्रकार चांदी के बर्तन, गहने इत्यादि खूब साफ हो जायेंगे।

१०–खिड़कियों और दरवाजों के शीशे व मुंह देखने के शीशे—इत्यादि इस से भली प्रकार साफ किये जा सकते हैं।

११–तौलिये और मोजे–साफ करने के लिये उत्तम विधि यह है कि पानी में थोड़ा सा अमोनिया डाल कर उस में इन्हें घन्टा भर भीगने दो और फिर धो डालो। साधारण कपड़े बड़ी सुगमता से धुल जाते हैं यदि उन्हें धोने से पहले एक रात पानी के टब में भिगो रक्खो जिस में थोड़ा सा अमोनिया मिला दो। रसोई घर के झाड़न प्रायः बहुत मैले और चिकने हो जाते हैं उन को साफ करने के लिये वह बड़े काम की चीज़ है।

भ्रम

ले०----श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

(१)



द्यार्थी जीवन के प्रारम्भिक काल से ही भुवन मोहन स्वामी विवेकानन्द के अनन्य भक्त हैं। युवकों के गन्दे उपन्यास पढ़ने में, वेश्याओं को धनिकों को मूड़ने में, विलासियों को विला-सिता में, विद्यार्थियों को सिगरेट पीने में जितना आनन्द नहीं मिलता उतना आनन्द भुवन मोहन बाबू को स्वामी जी की रचनाओं के अध्ययन,

मनन तथा पठन पाठन में मिलता है। विरागी संसार-त्याग की इच्छा से भगवद्भजन करता ह, पर भुवन मोहन बाबू सत् पथ-प्रदर्शन के अर्थ स्वामी जी के ग्रन्थों के प्रेमी हैं। अपने इस प्रेम के कारण उनका नाम ही 'विवेकानन्द' पड़ गया था।

क्लास में पढ़ते समय, कालेज के लेक्चर सुनते समय, प्रोफेसर से बात करते समय, साथियों के साथ हंसी मज़ाक़ में तथा एकान्त में घूमते समय, प्रतिक्षण उनकी जिह्वा पर, उनके हृदय में स्वामी जी का ध्यान रहता था।

परिणाम यह हुवा कि क्रमशः उनका चित्त संसार से ऊबने लगा—माता के अनेक अनुरोध पर भी उन्होंने विवाह न किया। उनको संसार में चारों तरफ़ अन्धकार ही दिखायी देता था।

+ + + इधर दो मास से कलकत्ते का वायुमण्डल इतना दूषित होगया है कि भुवन बाबू को कलकत्ता भार मालूम होने लगा। आज इधर खून हुआ, तो कल वहां डांका पड़ा, कल वहां पर व्यभिचार का लोमहर्षण दृश्य दर्शित हुआ, तो परसों एक लड़की ज़बरदस्ती मुसलमान बना डाली गयी—नित्यप्रति पत्रों में ऐसे समाचार पढ़ २ कर भुवन बाबू का हृदय बड़ा दुःखित होने लगा। अन्त में उन्हें विश्वास होगया कि संसार अन्धाकार मय है। चारों तरफ़ अशांति है। वर्षों के प्रभाव ने हृदय के अन्य भावों, उद्गारों तथा उत्तेजनाओं को दबा दिया। माता के अश्रुप्रवाह उसके विरागी पत्थर-हृदय को न पिघला सके। भगिनी तथा वृद्ध और अंधे पिता, छोटे भाई तथा बूढ़े चाचा के हृदय को चुभने वाली सलाई ने उसके विचार को डिगाने में असमर्थता प्रकट की। हृदय के फफ़ोले फूट पड़े—पुरानी संस्कृति नये आवेश से हृदय में गूंज उठी—गेरुआ वस्त्र पहन के घर से निकल पड़े। इस समय उनकी अवस्था १९ वर्ष की है। उनके छोटे भाई की १५ वर्ष की। दोनों इतने सुन्दर हैं कि सम्भवतः ही कलकत्ते में उनके जोड़ का दूसरा कोई होगा।

(२)

भुवन मोहन की मांने सिसक २ कर अपने छोटे लड़के से कहा—'प्रेममोहन! क्या तेरा भइया अब लौटकर न आवेगा'? पास में बैठे वृद्ध नेत्र-विहीन पिता ने एक 'आह' खींची। भगिनी के अरुण कपोलों पर दो बूंद आंसू चू पड़े। चाचा ने अपना मुंह ढाँप लिया!—और यदि इतना दुःख है तो क्या आश्चर्य! वह सुन्दर युवा अपने पिता तथा चाचा की आशा—भविष्य की सुखमय आशा—का घर था। माता का हृदय-रक्षक था। गृह का दीपक था। उसके जाते ही गृह-दीप-निर्वाण होगया। पिता तथा चाचा की सुखमय आशा की रेखायें अनन्त की गोद में विलीन होगयीं—प्यारी मां का हृदय खो गया।

दृढ़ता पूर्वक प्रेम ने कहा—'मां मुझे ११ मास की अवधि दो। देखो भइया को लिवा लाता हूँ या नहीं?'

सभी चौंक पड़े।

(३)

पावनपुरी काशी के दशाश्वमेध घाट पर साधू के बाने में, बने ठने लोगों के बीच में एक युवक साधू विचार निमग्न बैठा रहता है। जिस समय वह वहां आया, उन ठगों ने सोचा कि यह भी एक ठग होगा, पर उस समय उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि अपने ढोंग रचने के लिये वह कुछ करता ही नहीं है। न वह मुख में राम बगल में छूरी का सिद्धांत रखता है।

न भस्म रमाता है; न तो आने वाली कुल कामिनियों की ओर घूरता है तथा न तो उनमें से किसी से कुछ बोलता है । उन धूर्तों ने उसे घृणापूर्वक देखा । किसी ने बैठने का स्थान न दिया । वह विचारा किसी प्रकार अकेले एक कोने में पड़ा रहा । + + +

आज उसे यहां आये तीन दिन हुये हैं । चौथे दिन एक सुन्दरी युवती आकर उनके सामने खड़ी हो गयी । प्रातः काल का समय था । प्रकृति अपने मधुर तथा हलके थपेड़ों से सब में नवीन स्फूर्ति संञ्चार कर रही थी । वसन्त ऋतु की वायु कितनी भली मालूम पड़ रही थी ?

युवक साधु ने साश्चर्य उस युवती की तरफ़ देखा । यद्यपि वह कुछ परिचित सी मालूम पड़ती थी परन्तु उसके लावण्य ने, रूप-आभा ने, सौन्दर्य-ज्योत्स्ना ने उस वैरागी त्यागी के हृदय में एक सनसनी पैदा करदी । परन्तु वह सनसनी क्षणिक थी। त्यागी के हृदय में विवेकानन्द जी की 'चञ्चल' माया की उक्ति का ध्यान आगया। उन्होंने निरसता पूर्वक पूछा-क्या चाहिये मां ?

'केवल आपका दर्शन'—उसने विनम्रता-पूर्वक उत्तर दिया । "इसके लिये तो एक क्षण पर्याप्त था, अब जाओ मां ! "

"पर कुछ प्रसाद तो दीजिये"—उस सुन्दरी ने हंसकर कहा । हम नहीं जानते पर सम्भवतः उस त्यागी के हृदय में वसन्त की वायु के साथ २ वह हंसी भी प्रवेश कर गयी ।

"प्रसाद ! मेरा प्रसाद क्या ! यहाँ मेरे पास क्या है ! मैं हूँ कान ! जाओ मां ! किसी अन्य महात्मा के पास जाओ ।"

"न न ! ऐसा तो न होगा । अन्य महात्मा हैं । महात्माओं का यही तरीका है"—ऐसा कह कर उस सुन्दरी ने युवक साधू का पैर पकड़ लिया । प्रथम तो उन्हें उसकी इस धृष्टता पर बड़ा गुस्सा आया । परन्तु न जाने क्यों वे उसे हटा न सके । घबड़ा कर, तथा अन्य साधुओं को अपनी तरफ़ देखते देखकर वे ज़ोर से बोले—"हैं हैं ! यह क्या मां हटो!" सुन्दरी ने पैर चूम लिया और चल दी । त्यागी ताकता रह गया । दूर के बैठे अन्य साधुओं ने आंखें बदलीं ! ! !

(४)

वह रोज़ आती है और पैर चूम कर चली जाती है । पास के सभी साधू उस विचारे युवक को ताना मारते हैं । गुण्डे बोली छोड़ते हैं । बदमाश लड़के आवाज़ें कसते हैं । वह चुप ! एक चुप हज़ार चुप ! ! पर चाहे वह बोले या न बोले इतना अवश्य है कि वह उसका आना अब बुरा नहीं मानता ! नित्य प्रातः काल उसकी प्रतीक्षा किया करता है । प्रति रात को यह प्रार्थना करके सोता है कि भगवन् जल्द सबेरा हो ! '

वह नहीं जानता कि मैं यह ठीक कर रहा हूं या गलत, पर न जाने क्यों उस विचारे का चित्त डांवाडोल सा हो रहा है। इन १५ दिनों के अन्दर उसमें एक विचित्र परिवर्तन हुआ है । यद्यपि उसे पूर्ण अनुभव नहीं, पर वस्तुतः उसे कुछ चुभता हुआ मालूम पड़ता है । उसकी विचित्र दशा है ! !

आज उस सुन्दरी ने उनसे कहा—"स्वामीजी ! यहां पर आपको बड़ा कष्ट है । चलिये मेरे उद्यान में रहिये । वहां एकान्त है । भगवद्भजन के लिये एकान्त है । यहां सी गन्दगी नहीं है ।" उन्होंने बहुत चाहा कि 'नहीं' कहदें, पर हृदय धड़कने लगा । उन्होंने बहुत चाहा कि 'नहीं' कहदें पर मुंह से न निकला । हृदय में उथल पुथल मच गया । + + +

(५)

युवक साधू आज कल युवती के उद्यान में रहता है। उद्यान में जाने के बाद से ही उस युवती ने उनकी सेवा शुश्रूषा शुरू कर दी। हृदय में इच्छा होने पर भी उन्होंने मना किया पर उसने न माना। यद्यपि भीतर से आनन्द मिलता था पर ऊपर से विरोध करते ही रहे।

\+ + +

संध्यासमीर-पक्षियों का कलरव—पुष्पों की सुगन्धि, सूर्य की अन्तिम लाली—इन सब की शोभा निरखता हुआ वह युवक अपने मानस—मन्दिर की एक प्रतिमा-जिस को अज्ञात अवस्था में उसने स्थापित किया था—के बारे में सोच रहा था। उसी समय किसी ने पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रखा। चिहुंक कर युवक ने मुंह फेर कर देखा कि उसकी सेविका युवती खड़ी हंस रही है। सूर्य की अन्तिम किरणों ने उसके सौन्दर्य को इतना दीप्तमान बना रक्खा है कि उस समय का वह सौन्दर्य अतुलनीय कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। युवक के शरीर में बिजली दौड़ गयी। वे एक टक देखते रहे। सहसा वह बाला घुटने टेक कर बैठ गयी। हाथ जोड़कर उस ने उस युवक साधू से कहा—'महाराज! मैं आपसे एक भिक्षा मांगना चाहती हूँ। क्या आप कृपा करेंगे?" युवक चौंक पड़ा। हृदय की धड़कन को दबा कर उसने कहा—"कहो! क्या"

"कुछ नहीं! प्रथम प्रतिज्ञा करो कि दोगे!" आवेश से आपे से बाहर होकर युवक ने कहा—'संसार में यदि कोई भी वस्तु मनुष्य शक्ति की सीमा के भीतर है तो वह मैं तुमको दूंगा"

"तो! तो! मुझे और कुछ नहीं आपका प्रेम चाहिये!" इतना कह कर वह उनके पैर से लपट गयी।

साधू अपने को न सम्भाल सका—उसका धैर्य छूट गया— !!!

* * * * * *

—और जब कि उन्होंने अपना संन्यास बाना छोड़ना तथा विवाह कराना स्वीकार कर लिया, उसी समय उस युवती ने अपने नकली बाल उखाड़ कर फेंक दिये। आभूषण उतार डाले। कुर्ती उतार दी—साश्चर्य उस युवक साधू ने देखा कि वह और कोई नहीं उसका छोटा भाई (प्रेम मोहन) है। हंसकर उसने कहा—"भइया!"-भइया लाज के कारण अधमरे हो रहे!!

(६)

प्रेम मोहन ने कहा—

"जीवन की सीढ़ियां एक साथ नहीं चढ़ी जा सकतीं! चार सीढ़ी छोड़कर पांचवी सीढ़ी पर चढ़ने वाला जरूर मुंह के बल गिरेगा। चार चोर हों तो चारों से एक साथ लड़ने से धोखा अवश्य होगा। पहले एक २ को हराना होगा। बृद्ध मां, अन्धे बाप, बूढ़े चाचा की सेवा जीवन का प्रथम कर्त्तव्य है।—भइया! मेरी धृष्टता क्षमा करना!!!"

प्रेम मोहन का वादा पूरा होने को अभी २ दिन और हैं। अभी घर में कल एक तार मिला—

"भइया आ रहे हैं! वे "भ्रम" में थे।

"प्रेम"

रेशम के कीड़े का पता पहिले किस ने लगाया ?

ज्योति की पाठिकायें प्रायः कोई ही ऐसी होंगी जिन्होंने रेशम न पहिना होगा, या अब इस खद्दर के युग में भी जिनके ट्रंकों में रेशम की साड़ियां न हों, परन्तु क्या किसी ने कभी सोचा कि रेशम किस प्रकार निकलता है, और सब से पहिले इन कीड़ों की उपयोगिता का पता किस ने लगाया ? यद्यपि भारतवर्ष की वह देवियां जो पवित्रता का वस्त्रों के साथ सम्बन्ध जोड़ती है रेशम को सूती कपड़ों से ज्यादः पवित्र मानती हैं और व्रतों के समय भी उसे पहिनना पसन्द करती हैं तथापि उन्हें मालूम होना चाहिये कि रेशम जो आज कल बर्ता जाता है वह कीड़े मार—एक तरह से हत्या द्वारा—प्राप्त होता है, जब कि रुई खेतों में पैदा होती है। यह रेशम के कीड़े कहां से आते हैं ? बहुत प्राचीन समय से रेशम के कीड़े चीन देश में पाले जाते रहे हैं और युगों तक यही चीन देश संसार को रेशम देता रहा है। इस का एक मात्र कारण यह था कि रेशम के कीड़े के अंडों को चीन से बाहर ले जाने की आज्ञा न थी और रेशम किस प्रकार बनता है यह भी बताना वर्जित था। किन्तु अन्त में दो साधु चीन देश में पधारे और लौटते समय अपने बेंत के खोखले में कुछ अंडे छिपा कर साथ ले आये। उन अंडों को वह कुस्तुन्तुनियां देश में ले गये जहां वह सेये गये और इस प्रकार इन्हीं कीड़ों द्वारा सारा पूर्वीय राज्य एक समय रेशम के कीड़े प्राप्त कर सका। रेशम का व्यवसाय भी भारत में बहुत प्राचीन समय से था, लेकिन ईसा की आठवीं सदी में अरबी लोगों ने इस का प्रचार स्पेन में किया।

चर्खा अकाल के रोकने का एक मात्र उपाय।

हमारी पाठिकायें शायद चर्खे के लाभों की ओर अब उतना ध्यान नहीं देतीं हैं जितना कि दो वर्ष पूर्व महात्मा गांधी के चर्खा और खद्दर के आन्दोलन के समय देती थीं। कारण कि राजनैतिक क्षेत्र में इस ओर शिथिलता होने से जनता में भी इस ओर से शिथिलता होगई थी, और हमारी बहिनों ने चर्खे की ओर से एक प्रकार से मुंह ही फेर लिया है। परन्तु उनको आज हम यह बतलाना चाहते हैं कि भारत का एक बड़ा भारी वैज्ञानिक इस चर्खे के विषय में क्या कह रहा है ? और क्या करके दिखला रहा है ? शायद इसे जान कर हमारी बहिनों को पुनः होश हो जावे और वह नियम पूर्वक चर्खा चलाने का व्रत लेकर देश से दुर्भिक्ष हटाने में सहायता दे सकें। देखिये महाशय राय क्या कहते हैं:—

"जब मैं खद्दर के द्वारा होने वाले लाभों पर बात करता या सोचता हूँ तो मैं बिलकुल मस्त हो जाता हूँ। मैं चर्खे की मिलों के साथ तुलना करते सुन २ कर थक गया हूं और कई अपने को बहुत बुद्धिमान मानने वाले सज्जनों ने इन दोनों की बराबरी को आशा रहित सिद्ध करने में देरी नहीं लगाई है। लेकिन केवल एक सौ वर्ष पहिले बंगाल न केवल चर्खे के सूत के ही कपड़ों से अपनी जरूरत को पूरा करता था वरन् दो करोड़ रुपये की बारीक ढाके के सूत की मलमल विदेशों को भेजता था। और उस जमाने के दो करोड़ आज के १० करोड़ के बराबर थे।

मिस्टर बुचानन हैमिल्टन—जिन्होंने भारत के लोगों की आर्थिक दशा को जानने के लिए सारे भारतवर्ष में खूब भ्रमण किया था लिख कर रख गये हैं कि रंगपुर की उस

कुलों की स्त्रियां भी दिन के कुछ घंटे कातने के लिये रख छोड़ती थीं और कातने में उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। हां लंकाशायर के सस्तेमाल के आ जाने से हमारे इस मुख्य व्यवसाय का नाश हो गया है। अतः आज यह प्रश्न है कि अपने विनष्ट हुये व्यवसाय को फिर कैसे उभारें? अगर कोई कम-मूल्य पर मिलने वाले टिकट लेकर हमारे राजशाही के अटराई और बोगरा के फलोरा के उन स्थलों को जाकर देखे जहां हमने दुर्भिक्ष पीड़ितों के कष्ट निवारणार्थ यत्न कर रक्खा है और अपनी आंखों से देखे कि सौ वर्ष से नष्ट हुये व्यवसाय को कैसे हमने फिर से जारी किया है तो उसे चर्खे के लाभों का निश्चित ज्ञान हो जाय। क्योंकि देख कर विश्वास हो जाता है। तीन से चार हज़ार रुपये का खद्दर वहां पर प्रति सप्ताह तैयार हो जाता है और बेचने के लिये हमारे 'खादी प्रतिष्ठान' में चला जाता है। उनके बेचने से जो आमदनी होती है वह अटराई और फलोरा को वापिस भेज दी जाती है जिस का कुछ भाग वहां के दुखी, गरीब कातने और बुनने वाले जुलाहों को पहुंचता है और वह उससे फिर यही काम करते हैं।

अगर तुम पीड़ितों की सहायतार्थ कुछ धन बांट दो या चावल बांटो तो वह जल्दी खतम हो जाता है, और इस तरीके से लेने वालों की प्रवृत्तियां नीच बन जाती हैं। परन्तु अगर ऊपर कहे के हिसाब से सहायता दी जाय तो सहायता लेने वालों में आत्म-सम्मान रहता है और वह आलसी बनने से छूट जाते हैं, और सहायता हमेशः तक रहती है। हां यह तो हम स्वीकार ही करते हैं कि प्रत्येक घर में चर्खा भी सारे कामों में से एक काम होना चाहिये। चिटागांग, कमीला, आसाम और सिलहट की पहाड़ियों में तो जिस प्रकार शिकार के लिए तरकश में वाण हर दम रहता है उसी प्रकार चर्खा भी हाथों में रहता है। दो वर्ष के करीब हुये जब मैंने जनता में पहिला लेकचर दिया था। तब मैंने बतलाया था कि बारीसाल—जो कि पूर्वी बंगाल का अन्न भण्डार समझा जाता है—की रैयत जब उनकी फसल नष्ट हो जाती थी तो क्या करना चाहिये यह नहीं सोच सक्ते थे। और स्वर्गवासी बाबू अश्विनीकुमारदत्त तथा उनके साथियों ने बड़े परिश्रम से उनकी रक्षा की थी। आज भी हमने 'बंगाली' समाचार पत्र में बारीसाल का नाम 'बंगाल का अन्न भण्डार' पढ़ा है। बंगाल की रैयत की दुर्भिक्ष के समय अपनी आत्म रक्षा न कर सकने की हालत बड़ी दुखदाई बात है क्योंकि वहां पर लगान तो एक सा ही रहता है। परन्तु यहां पर बहुत उपजाऊ जमीन में रहने वाले भी एक फसल के नष्ट होने पर बड़ी बुरी तरह दुर्भिक्ष पीडित हो जाते हैं।

अब अगर प्रत्येक घरों में चर्खा होता जिसे वह दुर्भिक्ष के समय चला सक्ते तो घर का प्रत्येक जन—बुड्ढा या जवान, पुरुष व स्त्री—उस की सहायता से अपने पेट के लिये चावल खरीद सकता था। वह लोग जिन्हें यह बात अच्छी तरह समझनी चाहिये थी मुझे चर्खे की धुनवाला पागल कहते हैं परन्तु अपने इस बुढ़ापे की दशा में बंगाल केमिकल समिति के अतिरिक्त मैं अन्य सात ज्वान्ठ स्टाक कम्पनियों का डाइरेक्टर हूँ। अतः मुझे वर्तमान व्यवसायों की दशा का कुछ ज्ञान तो अवश्य है, यह मानना ही चाहिये। तो यह क्यों है कि मैं चर्खे का इतना पक्षपाती हूँ? पाठकों को चर्खे की माली दशा को समझाने के लिये मैं एक दो उदाहरण पेश करता हूँ। बंगाल की जनसंख्या ५ करोड़ कूती गई

है और प्रत्येक घर में सर्कारी रिपोर्ट द्वारा ही औसत ५ आदमियों की मानी गई है, इस लिये बंगाल में १ करोड़ घर हैं। अब अगर हर घर में एक आदमी २ तोले सूत भी रोज काते तो २ पैसे रोज कमा सकता है, अतः महीने में १ रुपया या कुल मनुष्य १ करोड़ रुपये महीना कमा सकते हैं। इस प्रकार प्रति वर्ष १२ करोड़ रुपये बंगाल कमा सकता है। परन्तु प्रति घर से एक ही मनुष्य क्यों काते? अगर दो भी कातने वाले हों तो २४ करोड़ रुपये की वार्षिक आमदनी हो सकती है। वारीसाल, और मेरी जन्म भूमि खुलना, तथा बंगाल के तराई केभाग में साल में एक ही फसल होती है, अर्थात् 'अमन' के धान की फसल। और मैं जानता हूं कि किसान लोग केवल तीन महीने काम में लगे हुये होते हैं, और साल के ९ महीने प्रायः व्यर्थ आलसी बैठे २ गुज़ार देते हैं।

मिल और मशीनों से स्पर्धा का सवाल तो सामने आता ही नहीं। यह तो उन आदमियोंकेबहुत से खाली समय को—जो दिन में सो करके, या इधर उधर की बातें करके, या ताश खेलकर या इससे भी बुरी बातों में समय बिता देते हैं—काम में लाने के लिये प्रस्ताव है। क्योंकि दिमाग़ खाली बैठे तो शैतानी सोचता रहता है। मैन्चेस्टर के स्कूलों में पढ़े हुए अर्थशास्त्र के पंडितों की बहस से तो थक गया हूं।

मुझे भय है कि मैंने बहुत लम्बा लिखा है, लेकिन, अपने प्रधान मंत्री मिस्टर रैमसे मेकडानल्ड की भारती जागृति नामक पुस्तक से कुछ थोड़े से शब्द बता कर मैं अभी समाप्त कर दूंगा। मिस्टर मैकडानल्ड ने १९१० में जो भारत भ्रमण किया था और भारत की सापत्तिक दशा का पूरा ज्ञान प्राप्त किया था, उसी में से मैं यह उद्धृत करके दिखलाऊंगा कि यह आने जाने के जो बढ़िया साधन आज हमें नसीब हैं, उन्हीं के कारण लोगों की प्रायः भलाई की जगह बुराई हो रही है। मिस्टर मैकडानल्ड कहते हैं कि—"जब अकाल पड़ता है तो लोग झट दुःखी होकर हज़ारों की संख्या में मरने लगते हैं; जब कि लाखों भूख से कमज़ोर हो जाते हैं" फिर—"रेलों ने तकलीफ बढ़ा दी हैं और दूर २ दुर्भिक्ष फैला दिया है...... एक ही कम्पनी भारत के जीवन के रस को ज्येष्ठ वैसाख के सूर्य्य की भांति चूस कर धूल और वंजरपन छोड़ देती है। भारत के गेहूँ और चावल विदेशी व्यापारियों के हाथ चले गये हैं, अतः एक फसल भी खराब होने से यहां भूखों मरना शुरू होजाता है। ....यहां पर पाश्चात्य लोग पूर्व में ग़लती करते हैं"।

परन्तु यह गेहूँ और चावल तक ही नहीं है? रुई के विषय में भी यही बात है। छः महीने हुए होंगे मुझे चिटागांग के दूर २ गावों मे जाना पड़ा, जहां पर चर्खा और खड्डी अभी तक मशीन के साथ जारी रहे हैं क्योंकि उन पहाडी ज़िलों में बहुत रुई पैदा होती है। मुझे आशा थी कि मैं मुझे वहां 'खद्दर' खूब मिलेगा, लेकिन मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और दुःख हुआ जब मुझे पता लगा कि गत वर्ष अमरीका की रुई की फसल खराब हो गई थी, इस कारण रुई के यहां अभाव होने के कारण इन के चर्खे बेकाम रक्खे हुये थे। युरोपियन व्यापारी सारी रुई खरीदकर बाहर भेज चुके थे, और यहां पर धूलि और बन्ध्यापन छोड़ गये। मैंने और मेरे सहयोगी सतीशचन्द्र दास गुप्त बंगाल रसायनिक सामिति ने वहीं के बैंक से रुपये उधार लेकर जो कुछ रुई मिली, वह बड़ी कीमत पर मोल ली

और वहां के कातने वालें को बांटना शुरू किया। थोड़े ही समय में जादू की तरह असर हो गया! जैसे ही चर्खे का सूत बनने लगा तो जुलाहे उछल पड़े, क्योंकि वह सचमुच भूखों मर रहे थे और इस प्रकार वहां खद्दर बनना शुरू हो गया। अतः इससे यह दिखाई देता है कि अगर हर गांव में चर्खे और खड्डियां होतीं तो दुर्भिक्ष का दुःख तो सुगमता से दूर हो सकता था। मुझे विपिन चन्द्र पाल-जो उस समय 'न्यू इन्डिया' के सम्पादक थे—की याद है कि उन्होंने अपने इसी साप्ताहिक पत्र में लंकाशायर के सूती कपड़ों के आगमन से जो तकलीफें और संकट आये हैं, उनका वर्णन किया था और मनमोहन वसु जैसे विख्यात कवि के वचन भी उद्धृत किये थेः—'सूत जात थेले अन्ना मेला भर तती कर्मकार करे हाहाकार' अपने २ घरों में 'चर्खे फिर से सिंहासन पर बैठाओ तो बंगाल के भीतर ही प्रति वर्ष ३० करोड़ रुपये घर में ही रहेंगे।..............."

हमारी मञ्जूषा

शान्ता—लेखक श्रीयुक्त रामकिशोर मालवीय। प्रकाशक चांद कार्य्यालय, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या १२६! मू० ॥1)।

इस छोटी सी कहानी में लेखक महाशय ने बहुत से सुधार एक दम सुगमता से पूर्ण होते हुवे दिखा दिये हैं, यह ध्यान नहीं दिया कि समाजिक, राजनैतिक व मानसिक किहीं भी सुधारों को जिस समय कार्य्य में लाने का प्रयास किया जाता है कितनी कठिनता कितनी भर्त्सना, कितना उत्साह भंग होता है। पग २ पर मनुष्य प्रलोभनों में फंसता है। कितनी सभा, समाजें, व्याख्यान, सब होते हैं। किन्तु परिवर्तन कितना कम होता है? चिकने घड़े पर बूंद की तरह अधिकांश उपदेश व्यर्थ हो जाते हैं। अतः उन्होंने जो एक दम सफलता "शान्ता"को प्रदान कर दी है वह अस्वाभाविक है। भाषा मामूली है, अधिक रोचक नहीं, लेख कमहोदय कहते हैं कि यह उनका पहिला प्रयास है अतः आगे चल कर उन्नत होने की बहुत कुछ आशा की जा सकती है।

उमासुन्दरी—लेखिका श्रीमती शैलकुमारी देवी। प्रकाशक चांद कार्यालय, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या १२०। मूल्य ॥1)।

यह छोटा सा मौलिक उपन्यास मामूली पढ़ी लिखी स्त्रियों के लिये अच्छा है। इसमें आजकल के शिक्षित कहलाने वाले अंग्रेज़ी पढ़े हुवे पुरुषों का कैसा क्षुद्र चरित्र होता है यह चित्रित किया गया है। किस प्रकार वे चरित्र हीन होजाते हैं। और धीरे धीरे भले बुरे का ज्ञान दूर हो जाता है? यह भी दिखाया गया है कि बूढ़े के साथ युवती सुन्दरी के ब्याह की सामाजिक कुरीति के कारण स्त्रियां किस प्रकार अधोगति के कीच में फंसकर कहीं की नहीं रहतीं, और अन्त को उमासुन्दरी की तरह तो कोई २ ही सम्हलती हैं। प्रायः गढ़े में गिर २ कर ठोकरें खाती रहती हैं। सुशीला का चरित्र अत्यन्त भोला चित्रित किया है। होता होगा, संसार विचित्र है। लेखिका महोदय को हम इस उपन्यास प्रयास के लिये हार्दिक बधाई

देते हैं, तथा इसका स्वागत करते हुवे आशा करते हैं वे आगे अपनी इस सफलता से उत्साहित हो और भी नवीन उपन्यास लिख कर मातृ भाषा की भेंट करेंगी।

प्राणनाथ — लेखक श्रीयुक्त जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए० एल. बी. प्रकाशक चांद कार्य्यालय इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या २५०। मूल्य २)

श्रीवास्तव जी को हिंदी संसार में कौन नहीं जानता? यह उन्हीं का किया हुआ श्री रमेशचन्द्रदत्त के The lake of the palms का स्वतन्त्र हिंदी अनुवाद है। पीछे से अनुवादक की संक्षिप्त जीविनी और हाफ़टोन चित्र भी हैं।

महाशय रमेशचन्द्र दत्त जी बाल विधवा विवाह के कट्टर पक्षपाती तथा सामाजिक उपन्यासों के सिद्धहस्त लेखक थे। अतः इस उपन्यास में विधवा विवाह की सामाजिक प्रथा प्रचलन करने के लिये बड़ी मनोरंजक विधि से उसका उपयोग दिखाया है। उपन्यास आरम्भ कर समाप्त करने ही को जी चाहता है। परन्तु पुस्तक में बिलकुल बंगला पना है। सब रीति, रस्म, नाम धाम उसी ढंग के हैं। जिस प्रकार का "सुधा" और "शरद" का विवाह लेखक महोदय ने दर्शाया है, वह विधवा विवाह ही नहीं? चार वर्ष की लड़की को विधवा कहना ही उचित नहीं। किंतु फिर भी, जिस प्रकार अन्त में वे सब लोगों के प्रेम पात्र बन गये, ऐसा दुर्लभ है। प्रायः इस प्रकार के विवाहों में पीछे कठिनता ही होती है और बुराई निकलती है। इसमें साधुओं और तीर्थों की बड़ी कल्पना से चित्र खींचा है और खूब पोल खोली है। प्रत्येक पाठक को पढ़कर अपनी बहू बेटियों को इनके चंगुल से यथाशक्ति बचाने की कोशिश करनी चाहिये। ये संडे मुसन्डे जाति का बड़ा नाश करते हैं। चांद कार्यालय ने उपर्युक्त तीनों पुस्तकों का मूल्य बहुत रक्खा है।

विचार प्रवाह

एकता सम्मेलन

गत सितम्बर मास के अन्त और इस मास के आरम्भ में भारत राजधानी में एकता सम्मेलन हुआ। उसने अपना कार्य बड़ी योग्यता पूर्वक समाप्त किया। सम्मेलन के बुलाने वालों और उसमें सम्मलित होने वालों की जो इच्छायें और आकांक्षायें थीं, वह पूरी हो गयीं। इस भीषण अन्धकार में तिमिराच्छादित रात्रि में, आंधी और तूफान में-जब कि अपने भले बुरे का ज्ञान नष्ट हो गया था और सन्मार्ग की अनुपस्थिति में भाई भाई का गला काट रहा था—सम्मेलन ने एक टिमटिमाते हुये प्रकाश का कार्य किया है। इस प्रकाश को प्राप्त करना और इसको और भी विस्तार देना, अब जनता का काम है। हिंदू-मुसलमानों के आये दिनों के झगड़ों, नित्य की लड़ाइयों ने समस्या को इतना जटिल बना दिया था कि कुछ सूझता न था, कि यह जलती हुई अग्नि किस प्रकार

शान्त की जाय। यह सत्य है कि यह सम्मेलन इस अग्नि को शान्त नहीं कर सका, परन्तु ऐसा करने का मार्ग इसने अवश्य जतला दिया है। कई लोग उपहास से पूछते हैं कि क्या अब हिंदू मुसलमानों के लड़ाई झगड़े न होंगे? क्या अब आपस का बैर भाव मिट गया; क्या इस एकता सम्मेलन की सफलता केवल प्रस्ताव पास करने में ही समझ लें? इस प्रकार के प्रश्न करने वाले केवल प्रस्तावों के वाह्य—रूप पर तो ध्यान देते हैं, परन्तु वह इस बात को भूल जाते हैं कि इनके पीछे कौन से भाव काम कर रहे हैं। सम्मेलन के प्रस्ताव हिंदू और मुसलमान, उदार और अनुदार सब प्रकार के व्यक्तियों के परिश्रम का फल स्वरूप हैं। यह जानने के लिये कि सम्मेलन के सदस्यों के विचारों में कितनी गाढ़ भिन्नता थी, कितना पक्षपात और अन्ध विश्वास था, केवल प्रस्ताव-निर्वाचनी—सम्मिति का पहले दिन का कार्य देखना ही पर्याप्त था। जिन को इस सम्मेलन में सम्मिलित होने का सौभाग्य मिला था, वह जानते हैं कि किस प्रकार अनुदारता, पक्षपात और कट्टरपन के स्थान में शनैः २ न्याय प्रियता; साधुता तथा दूसरों के विचारों, कृत्यों और अधिकारों के निमित्त समवेदना और सहृदयता के भाव प्रवेश करते गये। यह दृश्य देखते हुये वह सम्मेलन को कदापि असफल नहीं कह सक्ते। हमारा विश्वास है कि यदि सम्मेलन के सदस्यों के मनों में इस प्रकार का शुभ परिवर्तन चार पांच दिन के एकत्र बैठने और विचार करने से हो सकता है तो समस्त देश में यह परिवर्तन ६ दिन न सही ६ मास में अवश्य लाया जा सकता है। उदार शील हिंदू और मुसलिम नेताओं ने जो विचार सम्मेलन में प्रगट किये, जो भाषण वहां किये, यदि उन्हीं विचारों को वह जन साधारणमें खुले तौर पर, निर्भीक होकर, प्रगट करें तो जनता की पशुता अवश्य दूर हो सकती है। यह सत्य है कि प्रस्ताव पास करने से कुछ नहीं बना करता इसके पीछे उन प्रस्तावों पर चलने के लिये, उनके अनुसार काम करने के लिये। घोर परिश्रम और आन्दोलन की आवश्यकता है। यदि कान्फ्रेन्स में सम्मिलित हमारे नेता इस कार्य को कर सकें तो सफलता अवश्य होगी। हमारे नेताओं के भावों और विचारों की सत्यता की परीक्षा का यही समय है। यदि दो वर्ष तक समस्त देश में घूम २ कर मा० गान्धी एक आंधी ला सकते थे तो कोई कारण नहीं कि वह और अन्य नेता समस्त प्रान्तों और नगरों और ग्रामों में घूम २ कर अपनी घोर तपस्या और परिश्रम द्वारा शान्तिदायिनी वर्षा का संचार न कर सकें।

एकता--परिषद के प्रस्ताव

दिल्ली में गत मास जो एकता सम्मेलन की बैठक कई दिनों तक होती रही है उसके यह प्रस्ताव हैं:—

१—यह परिषद् हिन्दू-मुसलमानों की अनबन और हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न स्थानों में हुई मार-पीट पर खेद प्रकाशित करती है, जिसके फल स्वरूप जानें ज़ाया हुई हैं, माल की लूट-खसोट हुई है, और मकान वगैरह जलाये गये हैं, तथा मन्दिर तोड़े गये हैं। परिषद इन कामों को जंगली और धर्म के खिलाफ़ समझती है। और उस से जिन लोगों के जानोमाल को नुकसान पहुंचा है उनके प्रति अपनी हमदर्दी ज़ाहिर करती है।

२-इस परिषद् की यह राय है कि किसी भी शख्स का बतौर बदला निकालने के

अपने हाथों में कानून ले लेना कानून और धर्म के खिलाफ है। और इस परिषद् की यह राय है कि हर किस्म के तमाम मत-भेदों और अनबनों का फैसला पंचायत के मारफत किया जाय।

३-भिन्न भिन्न जातियों के तमाम झगड़ों, मत-भेदों की, हाल की दुर्घटनाओं की भी तहकीकात करने और उनका निर्णय करने के लिए, एक 'राष्ट्रीय पंचायत' नामक मध्यवर्ती मंडल की स्थापना की जाती है, जिसमें १५ से अधिक सदस्य न होंगे और उसे अधिकार होगा कि ज़रूरत पड़ने पर उसमें स्थानिक लोगों को भी शामिल कर ले। उसके सदस्य इस प्रकार होंगेः—

गांधी जी (अध्यक्ष), हकीम अज़मल खान, लाला लाजपतराय, श्री० नरीमान (पारसी) श्री० एस. के. दत्त (ईसाई) मास्टर सुन्दरसिंह लायलपुरी (सिक्ख)

४-पहले और दूसरे प्रस्ताव में स्वीकृत सिद्धान्त को अमल में लाने के लिए तथा तमाम धर्मों के मतों, विश्वासों और आचारों के विषय में सहिष्णुता कायम रखने के लिए इस परिषद की यह राय है कि—

(अ) हर एक व्यक्ति अथवा समूह को अपने अपने धर्म-मत कायम करने का पूरा पूरा हक तथा दूसरों के मनोभावों के प्रति आदर रखते हुए, तथा दूसरे के हक़ों में बाधा न डालते हुए अपने आचारों के पालन करने का हक़ होगा। ऐसा करते हुए किसी को दूसरे धर्म के संस्थापकों, साधुपुरुषों तथा सिद्धान्तों की निन्दा न करनी चाहिये।

(आ) हर धम के प्रार्थना स्थानों को पवित्र और अखंड्य मानें और किसी भी तरह के जोशखरोश होने पर भी अथवा ऐसे ही स्थानोंके भ्रष्ट अथवा खण्डित होने पर भी उसका बदला लेने के लिए उनपर हमला न किया जाय अथवा वे भ्रष्ट या खण्डित न किये जायं। ऐसे हमलों अथवा भ्रष्ट करने की क्रिया को रोकने के लिए भरसक प्रयत्न करना और उसकी निन्दा करना हरएक नागरिक का कर्त्तव्य है।

(इ) हिन्दुओं को मुसलमानों के गोकुशी के हक के अमल को जबरदस्ती से, किसी स्थानिक मण्डल के प्रस्ताव से, या धारासभा के प्रस्ताव से, अथवा अदालत के हुक्म से, रोकने की आशा न रखनी चाहिए—एक दूसरे के समझौते से ही ऐसा करने की आशा रखनी चाहिए, और अपने मनोभावों के प्रति मुसलमानों के दिल में अधिक गहरा आदर उत्पन्न करने के लिए मुसलमानों की भलमन्साहत पर तथा दूसरी जातियों में अच्छे सम्बन्ध की स्थापना पर विश्वास रखना चाहिए।

पूर्वोक्त प्रस्ताव के किसी भी मजमून से दोनों जातियों के पहले से प्रचलित रिवाज अथवा इकरार में बाधा नहीं पड़ेगी, अथवा जहां पहले गोकुशी न होती हो वहां करने का हक हासिल न होगा। इस आखिरी बात के बारे में कोई झगड़ा खड़ा हो तो तीसरे प्रस्ताव के अनुसार स्थापित पंचायत उसका निपटारा करेगी। जहां गोकुशी होती हो वहां भी वह इस तरह न की जायगी जिस से हिन्दुओं का जी दुखे।

परिषद् के मुसलमान सभ्य अपने हम-दीन लोगों को सूचित करते हैं कि वे जितना हो सके गोकुशी कम करने की कोशिश करें।

(ई) मुसलमानों को, मसजिद के सामने बाजे बजाने के हिन्दुओं के हक के अमल को

जबरदस्ती से, किसी स्थानिक मण्डल के प्रस्ताव से, या धारासभा के प्रस्ताव से अथवा अदालत का हुक्म हासिल करके रोकने की आशा न रखनी चाहिए। बलिक सिर्फ एक दूसरे की राजी—रजामन्दी से ही ऐसा करने की आशा रखनी चाहिये और अपने मनोभावों के प्रति हिन्दुओं के दिलमें अधिक गहरा आदर उत्पन्न करने के लिए हिन्दुओं की भलमन्सी पर तथा दोनों जातियों के उत्तम सम्बन्ध की स्थापना पर विश्वास रखना चाहिए।

पूर्वोक्त प्रस्ताव के किसी भी मजमून से दोनों जातियों के बीच पहिले से प्रचलित रिवाज तथा इकरार को बाधा नहीं पहुँचेगी, अथवा पहिले जहां बाजे न बजते हों वहां नये सिरे से बाजे बजाने का अधिकार प्राप्त न होगा। इस आखिरी बात के बारे में यदि किसी बात का विवाद खड़ा हो तो तीसरे प्रस्ताव के अनुसार स्थापित पंचायत उसका निपटारा करेगी।

इस परिषद् के हिन्दू सभ्य अपने धर्म—बन्धुओं से आग्रह करते हैं कि वे मसजिदों के सामने इस तरह बाजे बजाना छोड़ दें जिससे कि वहां की समुदायिक प्रार्थना में खलल पहुंचाता हो।

मुसलमानों को घर में, किसी भी मसजिद में, अथवा किसी सार्वजनिक जगह में जो कि किसी जाति की धार्मिक विधि के लिए नियत न हो, बाग पुकारने अथवा नमाज़ पढ़ने का हक़ है।

जहां पशुओं के वध अथवा मांस—विक्रय के ख़िलाफ किसी दूसरे कारण से आपत्ति न हो वहां, 'झटका' या जिबह' की वध—प्रणाली पर आपत्ति न की जाय।

(उ) हर शख्स को अपने मन चाहे धर्म के पालन करने का और स्वेच्छा से उसे बदलने का हक़ है। इस प्रकार धर्म बदलने के कारण कोई भी शख्स सजा के अथवा जिस धर्म को उसने छोड़ा है उसके अनुयायियों की तरफ से परेशान किये जाने का पात्र न होगा।

(ए) कोई भी व्यक्ति अथवा समूह दूसरे को दलील अथवा अनुरोध के द्वारा धर्मान्तर कराने का अथवा किये हुए धर्मान्तर से फिर वापिस लाने का हक रखता है। परन्तु ऐसा करते हुए अथवा उसे रोकते हुए उसे जबरदस्ती या फरेब करने तथा दुनियावी लालचें देने आदि ऐसे ही निन्द्य उपायें का प्रयोग न करना चाहिये। सोलह साल से कम उम्र के स्त्री—पुरुषों का धर्मान्तर न किया जाय। यदि उनके पालक या मां—बाप के साथ हो तो बात दूसरी है। इसके अलावा जो कोई सोलह बरस से कम उम्र का बालक अपने माँ—बाप या पालक से बिछड़ा हुआ और आवारा पाया जाय तो उसे तुरन्त उसके धर्मवालों के हवाले कर देना चाहिए, और किसी भी धर्मान्तर अथवा धर्मान्तर से फिर वापिस लाने की विधि में कोई बात गुप्त न होनी चाहिए।

(ऐ) कोई एक जाति किसी दूसरी जाति के आदमी को उसकी जमीन में नवीन धर्म-मन्दिर बनाने से जबरदस्ती न रोके। परन्तु ऐसा नया धर्म—मन्दिर दूसरी जाति के विद्यमान धर्म—मन्दिर से काफी दूर बनाना चाहिए।

५ इस परिषद् की यह राय है कि अखबारों का एक भाग और खास करके उत्तर भारत का, भिन्न भिन्न जातियों की मौजूदा अनबन बढ़ाने के लिए जिम्मेवार है। तिल का ताल बना कर एक दूसरे के धर्म की निन्दा करके और हर तरह से द्वेष और धर्मान्धता बढा कर उन्होंने यह किया है।

यह परिषद् ऐसे लेखों की निन्दा करती है और सर्व-साधारण से प्रार्थना करती है कि ऐसे अखबारों और पुस्तिकाओं को आश्रय देना वे बन्द करें और यह परिषद् मध्यवर्ती तथा स्थानिक पंचायतों को सलाह देती है कि वे ऐसे लेखों पर देखरेख रक्खें। और समय समय पर सच्चे समाचार प्रकाशित किया करें।

६ इस परिषद् के सामने यह बात पेश हुई है कि कितने ही स्थानों में मस्जिदों के सामने अनुचित काम किये गये हैं। यदि कहीं ऐसा हुआ हो तो इस परिषद् के हिन्दू सभ्य उसकी निन्दा करते हैं। इस के अलावा इस परिषद् के हिन्दू तथा मुसलमान सभ्य अपने धर्मबन्धुओं से प्रार्थना करते हैं कि वे ईसाई, पारसी, सिक्ख, बौद्ध, जैन, यहूदी इत्यादि भारत की छोटी जातियों के प्रति उतना ही सहिष्णुता रक्खें जितनी कि वे दोनों आपस में रखना चाहते हैं और जातीय व्यवहार के तमाम मामलों में न्याय और उदारता की नीति का अनुसरण करें।

७ इस परिषद् की राय है कि एक जाति के लोगों के द्वारा दूसरी जाति के लोगों को बहिष्कृत करने की तथा जातीय या व्यापारिक व्यवहार बंद करने की कोशिशें-जो कि कहीं कहीं हुई पाई जाती हैं, निन्द्य हैं और देश की विविध जातियों के लिए घातक हैं। इसलिए यह परिषद् तमाम जातियों से प्रार्थना करती है कि ऐसे बहिष्कारों तथा दुर्भाव प्रकट करने वाली बातों से मुंह मोड़ें।

८ यह परिषद देश की तमाम जातियों के स्त्री पुरुषों से निवेदन करती है कि वे महात्मा जी के उपवास के आखिरी सप्ताह में रोज ईश्वर से प्रार्थना करें और आगामी ८ अक्तूबर को देश के गांव गांव में सभायें करके सर्वशक्तिमान् परमात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करें और उससे प्रार्थना करें कि देश में सद्भाव और बन्धुभाव फैले, देश की तमाम जातियां एक हों, एवं इस परिषद में स्वीकृत पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता तथा पारस्परिक सद्भाव का सिद्धान्त देश में स्वीकृत हो और भारत की तमाम जातियों के लोग उसके अनुसार आचरण करें।

एकता और राजनैतिक अधिकार

हिंदू और मुसलमानों के आपस के झगड़ों का--धर्म सम्बन्धी अधिकारों और कर्तव्यों के अतिरिक्त--एक बड़ा भारी कारण राजनैतिक अधिकार है। इस विषय में सम्मेलन ने कोई कार्य नहीं किया। पंजाब ही इन सब दंगा, फिसाद, और झगड़ों का मूल स्थान है। यहां पर ही पहले पहल इन का जन्म हुआ और यहां से ही यह महामारी रोग अन्य प्रान्तों में फैला। यदि विचार से देखा जाय तो यहां पर इन झगड़ों के मुख्य कारण राजनैतिक और आर्थिक हैं। न पंजाब सरकार को मियां फज़लहुसैन जैसा वज़ीर मिले और न पंजाब में यह झगड़े उत्पन्न हों और समस्त भारत में फैलें। अतः झगड़ों के राजनैतिक और आर्थिक कारणों पर विचार करना बड़ा आवश्यक है। सम्मेलन की यह बड़ी भारी कमी थी कि इन पर विचार नहीं हुआ। किंचित इतने थोड़े समय में, और इस प्रकार की उपस्थिति में, जैसी कि सम्मेलन में थी-यह सम्भव भी नहीं था, परन्तु आगे के लिये इस पर विचारने की आवश्यकता और भी अधिक हो गयी है। यदि भाई भाई आपस में मिलकर, बैठकर, और विचार कर अपने २ धार्मिक कर्तव्यों और अधिकारों का निर्णय कर सकते हैं तो इसी प्रकार राजनैतिक

और आर्थिक अधिकारों और कर्त्तव्योंका निर्णय भी अवश्य होसकता है। हमें आशाहै कि हमारे नेता इस ओर अवश्य ध्यान देंगे। यह विषय ऐसा नहीं कि इस को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाय। यह कह कर इस को न टालना चाहिए—जैसा कि महात्मा गांधी और अन्य नेता अब तक ऐसा करते रहे हैं—कि इसको स्वराज्य ले लेने के पीछे देखा जायगा। इसके इस समय निर्णय से चाहे कोई लाभ न हो परन्तु इसके निर्णय न होने से हानि अवश्य है-जैसा कि दुर्भाग्य से हम अपनी आंखों आज देख रहे हैं। साधारण जनता के विचार बहुत उच्च और उदार नहीं हुआ करते, अतः वह अपनी वर्तमान स्थिति से ऊपर बड़ी कठिनता से उठती है। इन राजनैतिक और आर्थिक अधिकारों और कर्तव्यों के किसी स्पष्ट निर्णय की अनुपस्थिति में उसे सुगमता से बहकाया जा सकता है-जैसा कि हम देख रहे कि वह आज कल नौकरशाही के हाथों कठपुतली की तरह खेल रही है। अतः यदि किसी और कारण से नहीं तो इस उलझन से बचने ही के लिये-जो कि हमारे ठोस भावी राष्ट्रीय कर्म में बाधा डाल रही है—शीघ्र किसी ऐसी ही कान्फ्रेंस द्वारा इस विषय का निर्णय करना आवश्यक है।

क्या सरकार अपना कर्तव्य कर रही है?

भारत में आजकल जो हिंदुओं और मुसलमानों में लड़ाई दंगे होरहे हैं, इस में निःसन्देह यह दोनों तो उत्तरदायी हैं ही परन्तु क्या भारत और प्रान्तीय सरकार सर्वथा दोष रहित हैं। जितना हम इस विषय पर सोचते हैं उतनी ही हमारी धारणा प्रबल होती जाती है कि यदि सरकार चाहे तो यह आपस की लड़ाइयां, मन्दिरों का टूटना, घरों और दूकानों का लूटना और असहाय अबलाओं पर अत्याचार एक दम बन्द हो सकते हैं नहीं तो वह हमारी रक्षक कैसे? हमारा खयाल है—चाहे ग़लत ही हो कि यदि एक बार सरकार कड़ी घोषणा कर दे कि इन दंगों में जितना आर्थिक नुकसान किसी पक्ष का होगा उस की पूर्ति के लिये दूसरे पक्ष पर दण्ड रूप से उतना ही कर लगाया जायगा। यदि हिंदुओं की हानि हुई है तो मुसलमान भरेंगे और यदि मुसलमानों की तो हिंदू तो यह दंगे फिसाद बन्द हो सक्ते हैं। इसमें यह आक्षेप किया जा सकता है कि इस में वह शान्तिप्रिय सज्जन भी-जिनका इन दंगों में कोई हाथ नहीं है-मारे जाएंगे और सरकार यह अन्याय पसन्द नहीं करती। इस युक्ति को हम मान लेते यदि सरकार सदा से इस पर चलती आई होती। हम देखते हैं कि जहां सरकार के अपने विरुद्ध कोई उपद्रव होता है वहां सरकार झट दण्ड रूप से नवीन टैक्स लगा देती है, नवीन पुलीस बैठा देती है और यह सब व्यय उस ग्राम अथवा नगर से वसूल किया जाता है जहां उपद्रव होते हैं। परन्तु हमें शोक से कहना पड़ता है कि सरकार ऐसा कोई काम हिंदू और मुसलमानोंकी आपसकी लड़ाइयों को मिटाने के लिए करने को तैयार नहीं। इस से विचारशील जो परिणाम निकालते हैं वह स्पष्ट है। उदाहरण के लिए यदि मुलतान में जो हिंदुओं का नुकसान हुआ था उसको पाई २ सरकार की ओर से मुसलमानों से दिलवाया जाता तो हमारा पूर्ण विश्वास है कि सहारनपुर में जो लूट मार की अग्नि दहकी वह कभी इतनी न भड़कती। इसी प्रकार हिंदुओं के विषय में भी कहा जा सकता है।

इससे विचारशील सज्जनसरकार की नीति के सम्बन्ध में जो परिणाम निकालते हैं वह स्पष्ट है। कोहाटमें भीषण दंगा होता है, लूट

मार होती है, आग लगाई जाती है परन्तु कहा जाता है कि पाव मील की दूरी पर पड़ी हुई सेना इस उपद्रव को शान्त करने के लिए उंगली तक नहीं हिलाती। यह सम्भव है कि किसी नियम के अनुसार सेना को हस्ताक्षेप करने का अधिकार न हो, परन्तु क्या हम पूंछ सकते हैं कि यह नियम प्रजा के लिए होते हैं या प्रजा नियमों के लिए। ऐसी ही बातों को देख कर भारत सचिव मिस्टर मान्टेग्यू ने एक बार भारत सरकार को काष्ठवत कठोर; समय पड़ने पर भी न हिलने वाली की उपाधि दी थी।

मजदूर सरकार का अन्त

इंगलैण्ड की मज़दूर दल सरकार का अन्त होगया। कोई ८ मास के लगभग इन्होंने शासन किया। इनके शासन की बागडोर सम्भालने पर इंगलैण्ड के कंज़रविटिव (अनुदार) दल को जो क्लेश और कष्ट हुआ था वह अकथनीय है। क्योंकि दोनों के शासन सम्बन्धी सिद्धान्तों में आकाश पाताल का भेद है। लिवरल (उदार) दल के भी सिद्धांत इनसे भिन्न हैं परन्तु उनमें इतना अन्तर नहीं। यही कारण है कि लिवरल दल अब तक मज़दूर सरकार की शासन-प्रतिनिधि—सभा में सहायता करता आया है और दोनों मिलकर अपरिवर्तन वादियों के प्रस्तावों को रद्द करते आये हैं। अन्त में आपस का यह समझौता टूट गया। मज़दूर सरकार ने एक समाचार पत्र के सम्पादक पर पहिले अभियोग चलाना निश्चय करके पीछे उसे वापिस ले लिया। इस पर अपरिवर्तनवादियों ने निन्दा सूचक प्रस्ताव पेश किया और उदारदल वालों ने इसका यह संशोधन पेश किया कि सारे मामले की जांच के लिए एक कमेटी नियुक्त की जाय। इस संशोधन को अनुदारदल ने स्वीकार कर लिया और यह पार्लियामेण्ट में पास होगया। मज़दूर सरकार ने इस प्रस्ताव को अपने ऊपर अविश्वास का सूचक समझा। इसके लिए अब दो ही मार्ग थे। एक तो यह कि आप त्यागपत्र दे दें-इस अवस्था में अन्य दोनों दलों में कोई एक शासन भार सम्भाल लेता, इस का फल यह होना था कि राज की बागडोर अनुदार-दल के हाथों में चली जाती, क्योंकि उदार दल इतना शक्तिशाली नहीं कि इसके मुकाबले में इस काम को संभालता। दूसरा मार्ग जिसका कि मज़दूर सरकार ने अवलम्बन किया—यह था कि पार्लियामेन्ट को तोड़ दिया जाय और देश से पुनः अपील की जाय कि वह अपना मत प्रगट करे कि वह मज़दूर दल की रीति और नीति से सहमत है कि नहीं? यदि मज़दूर दल के प्रतिनिधि पुनः सब से अधिक संख्या में पार्लियामैन्ट में आयें तो यह स्पष्ट समझा जायगा कि देश को मज़दूर सरकार पर विश्वास है। अस्तु

क्या मज़दूर सरकार सफल हुई? जहां तक अपने देश के अन्तरीय सुधारों का और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का सम्बन्ध है हम इसे निःसंकोच सफल कह सकते हैं। इसके समय में देश भीतर बेकारी के कारण बहुत कम बेचैनी रही। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सुलझाने में भी इसने बड़ा भारी काम किया। जर्मनी के साथ सन्धि इसी के समय में हुई। रूस की बालशेविक सरकार के साथ सन्धि होने का सेहरा भी इसे मिलने ही वाला था कि इस का अन्त हो गया। इन दो संधियों से जो शुभ परिणाम निकलने की आशा थी वह सहज में ही अनुमान में लाई जा सकती है। शासन कार्य करने में अनभिज्ञ होने पर भी इन्होंने उदार या अनुदार किसी भी अन्य दल की अपेक्षा इस काम को कुछ कम दक्षता से नहीं निभाया।

क्या मज़दूर सरकार ने भारत के लिए भी कुछ किया ? क्या इस कसौटी पर रख कर भी हम इसे सफल कह सकते हैं। शोक कि इसका उत्तर हम हां में नहीं दे सकते। मज़दूर सरकार के समय में भी भारत का शासन उसी अनुदार, निःशंक, हृदयहीन रीति पर होता रहा जैसा कि अबतक उदार तथा अनुदार दल के समय में होता आया था। भारत के शासन में कोई नवीन सुधार नहीं हुआ। प्रजाहित के लिए कोई नवीन कानून नहीं बने, हमारी प्रति दिन की बिगड़ती हुई आर्थिक अवस्था को उन्नत करने के लिए कोई नवीन योजना नहीं की गयी। हमारे लिये तीनों दल एक ही जैसे सिद्ध हुए। सम्भव है कि यदि मज़दूर सरकार में--उदार दल की सहायता बिना--अपने निज पैरों पर खड़े रहने की शक्ति होती तो उस की भारत सम्बंधी नीति में कुछ भेद होता। अब तो वह भारत जैसे पराधीन देश के लिये उदार दल से बिगाड़ कर अपने अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहती थी।

जो भी हो, हमें शोक है कि इस समय मज़दूर सरकार के न रहने से संसार में से उदारता और सहृदयता का स्तम्भ टूट गया। सम्भव है और इस की आशा भी है कि मज़दूर दल ही फिर शासन भार सम्भाले, परन्तु यदि ऐसा न हुआ तो यह संसार के हत भाग्य का ही सूचक होगा कि अनुदार और हृदय हीन, धनियों के रक्षक और असहाय निर्बलों के भक्षक दल के हाथ में इंगलैंड जैसे प्रतिभाशाली देश की बागडोर जाय।

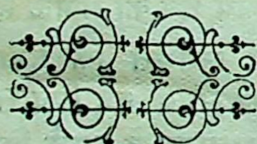
अतिवृष्टि और बाढ़ से आर्य समाज को हानि।

ज्योति के पाठकों को दैनिक और साप्ताहिक पत्रों द्वारा उत्तरीय भारत में बाढ़ और वर्षा से जो दुर्घटनायें हुई हैं, उनका ज्ञान बखूबी हो गया होगा जहां पर जमुना और गंगा की बाढ़ के कारण उन के किनारे पर बसे हुए हजारों गांव विनष्ट हो गये, पशु बह गये, वहां आर्य जाति की प्रिय-संस्था भी मृत प्राय हो गई है मनुष्य बह २ कर दूर २ जा पहुंचे, बहुतों, के प्राण संकट में पड़ गये। यदि किसी का पिता है तो पुत्र इत्यादि सब ला पता हैं। पति है तो स्त्री बच्चों का पता नहीं, डूब गये या बह गये। कइयों को बिना अन्न पानी कई दिन तक वृक्षों की टहनियों के सहारे तथा चट्टानों पर समय काटना पड़ा। यह दशा एक नहीं लाखों मनुष्यों की हो गई है। एक दिल्ली शहर में ही जगह २ ऐसे बचे हुए मनुष्यों और पशुओं का छावनी दिखलाई दे रही हैं। उन्हें देख कर उनकी दशा पर बड़ा दुःख होता है। परन्तु इस से भी बढ़ कर दुःख इस बात का है कि आर्य्यसमाज की दो बड़ी संस्थाएं गुरुकुल कांगड़ी (हरद्वार) और गुरुकुल वृन्दावन नष्ट प्राय हो गये हैं। कहा जाता है कि वृन्दावन गुरुकुल का पुस्तकालय इत्यादि भी नष्ट हो गया है। एक गुरुकुल कांगड़ी का ही ढाई लाख का नुकसान कूता गया है। और वह इस समय जब कि दयानन्द जन्मशताब्दी शीघ्र मनाई जाने वाली है और उस के लिये धन की बड़ी भारी आवश्यकता है। बाढ़ पीड़ितों के लिये धन की अपीलें हो रही हैं।

हम नहीं समझते कि हमारी आर्य्यसमाज पर इस समय यह विपत्ति डालकर न्यायकर्त्ता परमात्मा ने हमारे किस दुष्कर्म का फल दिया है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह हमारे ही पापों का फल है, कि हमारी एकमात्र सब से बड़ी जातीय संस्था जो कि आर्यजाति के रक्त से और २५, ३० वर्षों के अनथक परिश्रम से बनी थी—एक

क्षण में देखते २ ही विनष्ट हो गईं ! अस्तु, परमात्मा का बड़ा धन्यवाद है कि इन दोनों गुरुकुलों में मनुष्यों के प्राण बच गये और ब्रह्मचारियों तथा अध्यक्ष और अन्य उपस्थित सज्जनों को कोई हानि नहीं पहुंची। उन्होंने बड़े संकट से अपनी तथा वहां के रहने वालों की रक्षा की तथा गुरुकुल की सम्पत्ति भी जो बच सकती थी, बचा ली। अब आर्य जनता का कर्त्तव्य है कि अपनी संस्था को पुनः बनाने में यथाशक्ति मदद दें। कांगड़ी गुरुकुल के संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी की तथा मंत्रीसभा की ओर से अपीलें, समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रही हैं। अतः प्रत्येक आर्य्य नर नारी को उचित है कि इनकी झोली में कुछ न कुछ अवश्य डालें। बून्द २ करके तालाब भर जाता है। अतः हमें पूर्ण विश्वास है कि अपने जीवन की आवश्यक वस्तुओं को कम कर के भी, अपना पेट काटकर भी, आर्य्यजाति अपनी संस्था को पुनः बनाने में मदद देगी।

२१ तारीख को कांगड़ी में गुरुकुल की स्वामिनी सभा की बैठक होगी उसमें इसे पुनः निर्माण की शैली निश्चत होगी।



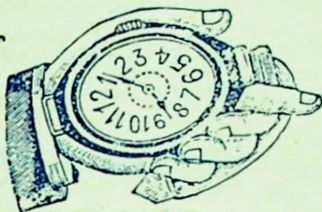
The World's Record Timekeeper

To the intending purchasers of a sound, strong and elegant timekeeper, we would strongly recommend our well known

No. 1001.

ELECTRO GOLD PLATE WRISTLET WATCHES

This is the very newest style wristlet watch. These watches are artistically finished of the best workmanship, and are guaranteed for



3 years. Their average daily variation, when used with proper care, is 1 to 2 second, a result which has never been surpassed by watches of much higher prices.

Price, Rs. 7-8-0, with Strap or Bracelet for Radium Dial, Re. 1-8-0 Extra.

N. B.—*Purchaser of 3 Watches at a time w... ...e: one German-made 4-in. dial Alarm Timepiece free.*

The Most Fascinating Perfume

LILY OF THE VALLEY

Free from Alcohol or Spirits, and hence can be used by all without any restriction. It possesses the most fragrant smell of the different kinds of fine flowers. Notice minutely the delightful-like freshly plucked flowers-smell every now and then. In lasting qualities, it is unsurpassed. ask for,



LILY OF THE VALLEY

1 oz. Bottle Re. 1-8-0
1 Dram Bottle 0-12-0
½ Dram Bottle 0-8-0

Sample Bottles, Doz. Re. 1-4-0
" " Each 0-2-0

Hurry up to

PETER WATCH CO.,
P. B. 27, MADRAS.

भारत सरकारसे रजिस्ट्री किया हुआ

४७००० एजेन्टों द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से अच्छा प्रमाण है



(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिस के सेवन करने से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे पीले दस्त इन्फ्लूएँजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥) डा० ख० १ से २ तक ≡)



दाद की दवा

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे में आराम करने वाली सिर्फ यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।) डा० ख० १ से २ तक ≡) १२ लेने से २) मे घर बैठे देंगे।



दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताजा और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मँगाकर पिलाइये, बच्चे इसे खुशी से पीते हैं। दाम फी शीशी ॥।) डा० ख० ≡)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता—सुखसञ्चारक कम्पनी मथुरा।

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया

Regd. No. L. 1240.
वर्ष ५] कार्तिक १९८१—नवम्बर १९२४ [खण्ड ५, संख्या ७



वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)
सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए०
स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची



ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।

पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता हैं।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

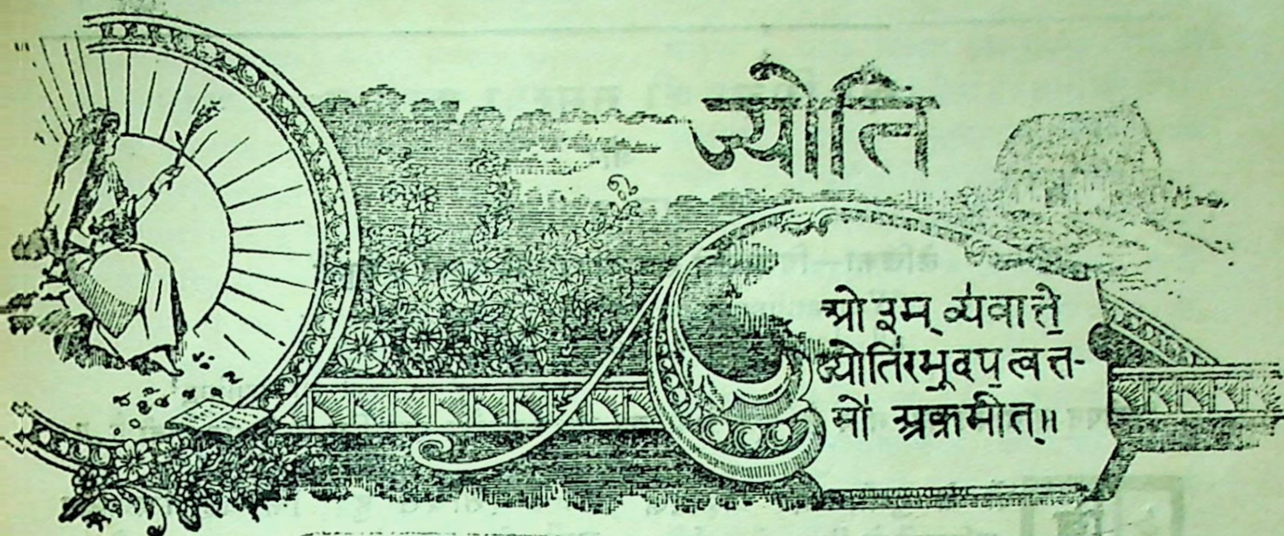
(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये



वर्ष ५ | कार्तिक १९८१—नवम्बर १९२४ ई० | संख्या ७

आह्वान-गीत।

लें० सुकवि "गुलाब"

(१)

आओ, देवि! हृदय मन्दिर में, वीणा मधुर बजाओ।
मुक्त कण्ठ से तुम कविता के, छन्दों में कुछ गाओ॥
गाओ, गेय गीत गाओ।
गाओ तुम अनुराग गीत मां! महिमा तान सुनाओ।
आओ देवि! हृदय मन्दिर में, वीणा मधुर बजाओ॥

(२)

भक्ति भाव मम प्राण निरन्तर, मां! तुम पर ही वारे;
मेरे यश प्रसून की माला, सोहे कण्ठ तुम्हारे॥
गाओ तुम अनन्त स्वर से—
सरि-गम स्वर में दया दृष्टि कर, अमृत बूंद बरसाओ।
आओ देवि! हृदय मन्दिर में, वीणा मधुर बजाओ॥

स्त्री शिक्षा की समस्या का हल
और
भगवान दयानन्द

लेखिका—विद्यावती सेठ आचार्य्या कन्या गुरुकुल

"Womanliness means only motherhood;
all love begins and ends there."
'Robert Browning'

"स्त्रीपन मातापन का नाम है, पूर्ण प्रेम का आरम्भ और समाप्ति वहीं पर होती है।"



स्त्रियों के गुणों, और प्राकृतिक शक्तियों के विषय में वर्तमान में प्रायः सभी स्त्री शिक्षा प्रेमी विचारक कुछ न कुछ लिखते रहते हैं। स्त्री शिक्षा की समस्या को हल करते समय इन गुणों पर विचार करना परम आवश्यक है। कुछ समय पूर्व जब स्त्री शिक्षा का प्रचार भारत में बहुत कम था तब तो यह प्रश्न जनता के सामने नहीं आये थे। क्योंकि हमारी कन्यायें अशिक्षिता रहती हुईं भी अपनी दादी माता, बुआ, चाची, नानी, मासी आदि स्त्रियों के बीच में रहती हुईं उनके शिक्षणालयों में क्रियात्मक रूप से प्रायः उन सभी विषयों की शिक्षा गृहण कर लेती थीं जो उस ज़माने के अनुसार उन देवियों की दृष्टि में कन्याओं को गृहस्थ में जाकर लाभकारी होते थे। इतना ही नहीं। वह लोग साधारण रीति से आचार व्यवहार और शील स्वभाव की भी शिक्षा देती थीं। कई घरों में स्त्रियों के अच्छे बुरे स्वभाव के अनुसार उनके घर की कन्याओं की इस शिक्षा में भी भेद होता था। परन्तु जब से भारत के सामने पाश्चात्य आदर्श आया और कन्याओं के लिये स्कूल, कालिज बनें, तब से लड़कियां भी किताबी विद्या के गृहण करने में इतनी दत्तचित्त हुईं कि वह स्त्रियोचित गुणों की ओर से एक प्रकार से विमुख होगई हैं।

विज्ञान के नये २ आविष्कार, तथा भोग बिलास के साधनों के लिये अत्यन्त लालसा से प्रेरित नर, नारी केवल अपनी इस लालसा की तृप्ति की ओर ही झुके हुये हैं। इस उद्देश्य में जो भी रुकावटें हों उन्हें दूर करना ही एक मात्र ध्येय हो रहा है। लोभ तो परमात्मा बन गया है, और मनुष्य इस परमात्मा का उपासक। जब से स्त्री-स्वाधीनता का प्रश्न उपस्थित हुआ है तब से पाश्चात्य देशोंमें घर के सुख ही नहीं रहे। वहाँ की दशा तो इस एक पैराग्राफ में ही स्पष्ट रूप से वर्णित है। वहां की स्त्रियां अब यह अनुभव करने लगीं हैं किः—

"When already they say the women of to-day want to be 'freed' from the inferior duties of mother and housewife, in order to devote themselves to higher callings, as self-supporting and independent members of society, how much more will that be the case wi h the women of the future! As these "higher callings," however, for the majority consist, and will continue to consist, in monotonous labour in factory,

store, office, and such occupations, it is difficult to conceive how these tasks possibly bring greater freedom and happiness than the broad usefulness in a home, where women is sovereign—yea, under the inspiration of motherhood, Creator in her sphere, & where she is directly working for her own dear ones-"

दूसरे लोगों की तावेदारी, चाहे वह स्कूलटीचर के रूप में हो, चाहे नर्स के रूप में, चाहे फैक्टरी, स्टोर्स, दफ्तर के कार्य इत्यादि भिन्न २ रूप में हो तथापि तावेदारी ही तो है। तो इस से तो स्त्री का घर में साम्राज्ञी बनकर रह कर अपने निजी सम्बन्धियों की टहल सेवा कर लेना कितना उत्तम है? अगर घर में रहकर स्वतन्त्रता नहीं है तो बाहरी जीवन में तो बहुत ही बन्धन है? यह स्वतन्त्रता कैसी? अतः वहां पर गृहस्थ सुखों का आदर्श पुनः सामने आने लग पड़ा है। परन्तु हमारे भारत में अभी उसी स्वाधीनता की लहर है जिसे गृहण कर पाश्चात्य देश अब छोड़ने की ओर हैं। क्या कीचड़ लगाकर धोने की अपेक्षा पहिले ही कीचड़ से दूर रहना अधिक श्रेष्ठ नहीं?

हमारे यहां जो आजकल स्त्री शिक्षा का प्रचार है उस में इन बातों को बिलकुल भुला दिया गया है कि स्त्री और पुरुष की अपनी २ भिन्न शक्तियां हैं, भिन्न २ क्षेत्र हैं और भिन्न २ तरीके से उनकी शक्तियों का विकास होता है। इस भूल का एक मात्र कारण यह है कि आज कल सारे सभ्य संसार का यह मत हो रहा है कि स्त्री पुरुष के समान अधिकार हैं। उन्हें समान शिक्षा मिलनी चाहिये, समान क्षेत्र मिलने चाहिये और उन के समान अधिकार होने चाहिये और समान कर्तव्य! सभ्य संसार इस समय 'समान' के माने 'एक ही' माने बैठा है! अतः स्त्री शिक्षा पक्षपाती वर्तमान सुधारक विशुद्धभाव रखते हुये भी स्त्रीजाति के प्रति बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। क्योंकि उनके इस उल्टी गंगा बहाने से स्त्री जाति के स्वाभाविक गुणों का एक दम लोप होता जा रहा है; और वह एक विचित्र तरह की व्यक्ति विशेष बन रही हैं—जो न तो पुरुषों की संख्या में गिनी जा सकती हैं न स्त्रियों की। उन्हें हम बीसवीं सदी की स्त्रीत्व-विहीन-स्त्री कह सकते हैं।

परमात्मा की सृष्टि में स्त्रियों का जीवन-क्षेत्र बिलकुल स्पष्ट और निर्विवाद है। वह घरकी ही नहीं वरन मानव-समाज की 'श्री', 'सरस्वती', 'लक्ष्मी', 'अन्नपूर्णा' 'देवी' भगवती हैं। इसलिये स्त्रियों को जननी और पत्नी बन कर ही देश और जाति के सन्मुख सेवार्थ उपस्थित होना है। इस उद्देश्य से शिक्षा का ढंग निर्माण करना चाहिये था। परन्तु अफसोस! कि वर्तमान युग में सभ्य संसार का आदर्श बदल गया है। कुछ वर्षों पहिले किसी को स्त्री के जीवनलक्ष्य में शक ही न था। मातृत्वशक्ति का गुण गान करना इतना स्वाभाविक था जितना कि सूर्य का गुण बखान करना, व परमात्मा की महिमा का वर्णन करना, समुद्र के—ऐसे समुद्र के गीत गाना जिस की थाह किसी ने न पाई हो। जिस प्रकार भौतिक संसार में सूर्य और समुद्र महान और बली हैं, इसी प्रकार माता की महिमा थी। हां यह सभी जानते थे कि संसार में ऐसी भी स्त्रियां हैं जिन में मातृत्व शक्ति का अभाव है, क्योंकि संसार में ऐसे भी देश हैं जहां जीवन रक्षा के साधन नहीं हैं। सभी को पता था कि स्त्री जाति में समष्टिरूप

से एक ऐसी शक्ति विद्यमान है जिस की विद्यमानता जीवन के लिये उतनी ही उपयोगी है जितनी कि हवा और रोशनी और जल। वह शक्ति केवल उत्पन्न करना ही नहीं वरन पालन पोषण करना तथा प्रेम सेवा और शिक्षा करना है। हम जानते थे कि स्त्रियों में--जो कि प्रकृति की तरफ से संसार के लिये बड़ी शुभ भेंट हैं—वह विशुद्ध भाव विद्यमान हैं जिन के कारण मानव जीवन जन्म से मरण पर्यन्त 'मानव' बना हुआ है। वह गुण जिसने माता को बच्चे की भाग्य विधाता बनाया है, पत्नी को पुरुष की शोभा और सुख बनाया, तथा नानी व दादी को सारे कुटुम्ब या सारे ग्राम की सेविका बनाया। यह वही प्रेम का भाव है जो कि घर के सारे कुटुम्बियों को तो अच्छादित करता ही है, परन्तु घर के बाहर उन अनाथों और दीनों तक भी पहुंचता है जिन के स्नेही सम्बन्धी नहीं रहे और जिनका अपना घर भी कोई नहीं। इतना ही नहीं पशु और पक्षी के ऊपर भी इस का प्रकाश पड़ता है। यह मातृत्व-शक्ति अथाह थी। इसका स्वभाविक गुण ही यह था कि दूसरों के लिये त्याग करना, दान देना, प्रीति से पालन करना, तथा दया का भाव रखना। अपने सुख और आराम को दूसरों पर न्यौछावर करके ही सुखी होना अथवा यों कहिये कि अपने जीवन को दूसरों के जीवन में देखना; स्वार्थ को परार्थ में बदल देना। अतः इन गुणों की खान स्त्री जाति को पुरुषों के साथ एक ही प्रकार की शिक्षा देना कितना अनुचित और हानि कारक है। अतः जिन जिन देशों में Co-education अर्थात् लड़के लड़कियों को एक साथ पढ़ाने की प्रथा है वहां कितना अनर्थ है।

इस के अतिरिक्त स्त्रियां जातीय आचार शास्त्र की रक्षिका हैं और उन्हीं द्वारा आचार-शास्त्र के नियम प्रगट होते हैं। पीछे से पुरुष अपनी तर्कना से उन्हें नियम बद्ध कर लेते हैं। Ellen key का कथन है कि:—

"In many cases, then, woman has modified the moral code, and again has conserved it, by virtue of her stubborn tenacity, which is one with her best traits-tenderness faithfulness & piety. This conservatism, on the other hand, is the reverse side of what is intellectually the weakest of her characterestics, her aversion to the serious mental labour involved in the examination of new ideas....."

स्त्रियों की दयाशीलता, भक्ति और आचार शुद्धता—जो कि उनके कट्टर पने का दूसरा नाम है-के कारण ही आचार-शास्त्र की रक्षा हुई है। जब यह बात स्पष्ट है तो स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य्य रखना और गन्दी पुस्तकों को न पढ़ना, न पढ़ाना कितना आवश्यक हो जाता है। इस लिये जहां हम स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों के समान नहीं चाहते, जहां स्त्री पुरुषों का सह-पढ़न हानि कर है, वहां पर कन्याओं की पाठविधि भी परिवर्तन करने योग्य है। यद्यपि कुछ शिक्षा सुधारकों ने इधर ध्यान देकर पाठविधि में इतना परिवर्तन किया है कि कन्याओं की पाठ विधि में गृह सम्बन्धी शिक्षा, चिकित्सा, पाकविधि, सिलाई इत्यादि विषय भी रख दिये हैं परन्तु अभी तक किसी भी वर्तमान प्रचलित पाठ प्रणाली में सुधारकों का ध्यान इस ओर नहीं गया है कि कन्याओं को अश्लील ग्रन्थ नहीं पढ़ाना चाहिये। चाहे

आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा की पाठय पुस्तकें उठालें; चाहे शास्त्री, विशारद, मध्यमा, इत्यादि की उठालें, अश्लील ग्रन्थों से शून्य कोई भी नहीं हैं। कारण यह है कि पुस्तक-विवेचन-समिति का लक्ष्य ही दूसरा है। उन्हें इसकी खबर ही नही है कि मनुष्य जो कुछ पढ़ता, सुनता, देखता है उसका चित्र उसके हृदय पटल पर खिंच जाता है, संस्कार जम जाता है, और उपयुक्त उत्तेजना मिलते ही विकसित हो जाता है यदि किसी अंश में संस्कार प्रबल न हुये तो उसका कारण उनका लुप्त होना नहीं वरन परिस्थिति ही है।

जब पाठ्य पुस्तकों के प्रभाव का इतना प्रचण्ड और तीव्र वेग है तो क्या शिक्षा सुधारकों के लिये यह आवश्यक नहीं कि कन्याओं के लिये ऐसे २ ग्रन्थ चुने जो कि शुद्ध पवित्र भावों से भरे हों, अश्लीलता की छाया मात्र भी जिन में न हो और जो उच्च जीवन बनाने में सहायक हों।

हम जानते हैं कि हमारे भारत वर्ष का Culture ज्ञान भण्डार Classical sanskrit उच्च कोटि के संस्कृत ग्रन्थों में भरा हुआ है, और यदि उसकी रक्षा करनी है और उसे पीढ़ी दर पीढ़ी कायम रखना है, तो जाति की भावी माताओं को—अर्थात् वर्तमान समय की कन्याओं को संस्कृत साहित्य और संस्कृत भाषा की शिक्षा देनी ही चाहिये। परन्तु जिस प्रकार वर्तमान में कन्यायें घोटा लगा कर शास्त्री विशारद बनती जा रही हैं, उस से केवल संस्कृत भाषा की हंसी ही होती है। वर्तमान समय के नवीन ढंग से सुशिक्षा प्राप्त सज्जनों की दृष्टि में वह न घरकी रहती हैं न घाट की। न उन्हें गृहस्थ कार्य ही आते हैं न वह पाश्चात्य आदर्श के अनुसार पुरुषों के साथ प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग देने योग्य ही बनती हैं। और नहीं वह उस उच्च आदर्श के भावों से पूरित होती हैं जिन के कारण स्त्री को मानव जीवन का प्राण बताया गया है। अतः मध्य कालीन संस्कृत का पुनः प्रचार करना प्राचीन आर्य्य सभ्यता का पुनरुद्धार करना नहीं है। अतः यदि शिक्षा की समस्या का—खासकर स्त्री शिक्षा की समस्या का वर्तमान नवीन विकास तथा प्राचीन आर्य्य सभ्यता के अनुकूल किसी ने हल बतलाया है तो वह भगवान दयानन्द जी ही हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का वर्णन करते हुए संक्षेप से ऋषि ने सारे आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाल दिया है। आपने जहां अश्लील ग्रन्थों को त्याज्य बताकर उन्हें फेंक देने का उपदेश दिया है वहां पर कुछ ग्रन्थ उदाहरण रूप से ऐसे बता दिये हैं जिन्हें पाठविधि में प्रविष्ट करना चाहिये। और स्त्री शिक्षा का तो वर्णन करते हुये उन्हों ने उन सारे विषयों का उल्लेख एक तरह कर दिया है जो कि स्त्री जाति के लिये उपयोगी हो सकते हैं और जिन के सीख लेने से स्त्रियां न केवल अपना ही कल्याण कर सक्ती हैं वरन जाति, देश और संसार का।

अमरीका और युरोप आदि सभ्य देशों से यह आवाज उठ रही है कि:—

" As guides in the instruction of young women I would choose noble matrons, serene as priestesses who themselves have fulfilled the mission of motherhood--women ripened into sweetness of wisdom, and power to import vividly the fruits of their experiences to the young who, some day standing before the serious task of making a home and bringing up children, may perhaps

by a single word of advice remembered in time save life's happiness for themselves"

ऋषि दयानन्द भी यही कहते हैं कि लड़कियों की शिक्षिका अध्यापिका ही हों। पुरुष नहीं। और वह पूर्ण विद्या युक्त, अनुभवी तथा धार्मिक हों। लड़कियों की शिक्षा पूणाली में पाठ्य विषय जो उन्हों ने रक्खे हैं उन में वह विषय भी हैं जिन से लड़कियों को सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्धन और सुशिक्षा करने का ज्ञान प्राप्त हो सके, घर के कार्य्य ठीक प्रकार कर सकें, सम्बन्धियों से उचित व्यवहार करना सीखें, सुमधुर पुष्टिकारक औषधिवत अन्नपान बनाना सीखें तथा सब से बढ़कर बात यह है कि अपने जीवन को तथा दूसरों के भी जीवन को धार्मिक भावों से भर सकें। इस के लिये ब्रह्मचर्य्य के नियम पालन करते हुये गुरुकुल में रह कर आचार्य्या से शिक्षा ग्रहण करने का आदेश है। इसी आदेश की ओर वर्त्तमान दार्शनिक लोट २ कर आ रहे हैं, और वह समय दूर नहीं जब कि योरूप और अमरीका में इसका प्रचार बड़े प्रबल रूप से होगा क्योंकि वहां के सुधारकों के विचार इसी प्रकार के हो रहे हैं। स्त्री शिक्षा के प्रश्न का हल अगर किसी ने वर्तमान युग में कर पाया है तो वह ऋषि दयानन्द ने ही किया है। पाश्चात्य देशों के अनुभव भी फेल हुये हैं। भारत के अन्य सुधारकों ने तो पाश्चात्य प्रणाली का ही अनुकरण किया अतः उनको तो सफलता क्या ही मिलती थी।

अतः आर्य्य समाज की वर्तमान संस्था कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रचना ऋषि दयानन्द की इसी शिक्षा प्रणाली को कार्य्य में परिणत करने के लिये एक नया तजुरबा है। परमात्मा करे यह अपने इस उद्योग में सफल हो के सभ्य संसार के सन्मुख ऋषि की स्कीम रखकर संसार में पुनः देवियां--घरेलू देवियां उत्पन्न करके संसार की रक्षा करे।*

* नोट—इस विषय में विशेष जानना हो तो ज्योति का कन्या गुरुकुल अंक कन्या-गुरुकुल दिल्ली से मंगाकर देखिये।

चक्रवर्ती गुरु महर्षि दयानन्द जी

लेखिका—श्रीमती सुनीतिदेवी।

"सर्व संसार के सुधारक १०८ श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती जी"



यदि अपने पवित्र हृदयरूपी मन्दिर में बैठ कर विचारिये तो यह प्रश्न अवश्यमेव उत्पन्न होगा कि सर्व-संसार मित्र वा सार्वभौम सन्यासी दयानन्द क्या भारत हितैषी वा भारत--जीवन संचारक नहीं थे? तो हृदय रूपी मंदिर में आवाज़ यही आवेगी कि "हां थे"। आपने समग्र भारतवर्ष में ही क्या सर्व संसार-भर में जागृति प्रदान की है। आपने पौराणिक धर्मियों को भी वेद के आधार से धर्म्म का सच्चा स्वरूप दिखाया है। आप जैसा निर्भय सत्यवक्ता संसार भर में दुर्लभ है।

स्त्री शिक्षण का मार्ग भी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी दर्शा गये हैं। आज हम सब भारतवासी उन्हीं के बतलाये हुवे मार्ग

पर चल रहे हैं। एक समय जब कि आर्यों की पवित्र भूमि भारतवर्ष में प्रायः वास्तविक धर्म्म का लोप हो चुका था, लोग अन्धकार में पड़े पृथक् २ अपने राग अलाप रहे थे, आर्य्य सन्तान टिमटिमाते हुये दीपकों के प्रकाश में अलग २ खिचड़ी पका रही थी वेद का नाम पुकार २ कर "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" जैसे अनार्य वाक्यों का आश्रय लेकर यज्ञा में पशुवध किया जा रहा था, जिस समय विधवायें अपने असहनीय दारूण दुःख से भारतवर्ष को अति दुःख सागर में डुबा रही थीं, जिस समय वर्णाश्रम व्यवस्था भारतवर्ष में लोप हो चली थी और वेद भगवान् का प्रकाश भी प्रायः अस्त हो चुका था, उस समय जगत् पिता की महान् कृपा से पांच सहस्र वर्ष के लगातार धार्मिक विप्लवों के पश्चात् महर्षि दयानन्द जी का आर्विभाव हुवा। अब जो पुराणमतावलम्बियों के मान्यवर पुरुष बालविधवाओं के दुःख भञ्जन के पवित्र व्रत में दीक्षित दृष्टिगोचर होते हैं, अथवा जो आर्य्य जाति में एकमत दीख रहा है, यह सब कुछ स्वामी दयानन्द जी की ही महती कृपा का परिमाण है। आज इतने परिवर्त्तनों के पश्चात् जिस आदर्श पर सभ्य संसार पहुंचा है उस के मूल तत्वों को महर्षि दयानन्द की दीर्घ दृष्टि ने अर्धशताब्दि पूर्व ही देख लिया था।

आज कल का शिक्षा सरणी का प्रथम मूलतत्व गुरुशिष्यों का सतत सम्बन्ध और सार्वकालिक सहवास ही माना जाता है और सम्प्रति साश्रम-विश्वविद्यालयों की पवित्र स्थापना का नाद चारों ओर से सुनाई दे रहा है किन्तु महर्षि स्वशिक्षा विधि में गुरुकुलों की स्थापना पर— जिस में शिष्यों को स्वगुरुवों के साथ सदैव ही रहना अनिवार्य्य है—बहुत समय पूर्व विशेष बल दे चुके थे, और उसको ही शिक्षा का एक मात्र साधन बतला चुके थे। महर्षि की शिक्षा विधि का दूसरा मूल तत्त्व और वस्तुतः शिक्षा का आधार-स्तम्भ जिस पर अभी तक सभ्य संसार में यथेष्ट बल नहीं दिया गया है, परन्तु उसकी उपादेयता यत्र तत्र स्वीकार की जा रही है तथा समय आवेगा कि उस का महत्व पूर्णरूप से माना जायेगा और अब सब भारतनिवासी मुक्त कण्ठ से उच्चारण करते हैं वह यह है कि महर्षि द्वारा स्थापित आर्य्य समाज ने भारतीय जन साधारण ने स्वशक्ति भर नितान्त निशुल्क नहीं तो अत्यल्प मूल्य पर शिक्षा प्रचार का भारी प्रयत्न किया है।

हमारे आर्य्य समाज के मुख्य केन्द्र पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में पचासों शिक्षणालय, बालकों के लिये गुरुकुल, कालिज़, स्कूल तथा पाठशालायें और कन्याओं के लिये कन्या विद्यालय और पाठशालायें आर्य्य-समाज की ओर से संस्थापित हैं और शिक्षा के पवित्र मन्दिर से बहिष्कृत अबला तथा अधम जातियों में शिक्षा प्रचार में आर्य्य समाज ने विशेषतः नामोल्लेख्य प्रयत्न किया है। यह सब महर्षि दयानन्द जी की शिक्षा प्रचारणी विभूति का ही चमत्कार है।

जब कि महर्षि दयानन्द जी के प्रादुर्भाव से पूर्व भारत वर्ष उन अगणित कुरीतियों तथा कुप्रथायों का आखेट स्थल बना हुआ था जिन को अब परम सनातनी भी हेय और त्याज्य समझते हैं–उस समय उनके विरुद्ध शब्द उठाने का बहुत ही कम उदार पुरुषों को साहस होता था। उनके उन्मूलन में सप्रयत्न होने और स्वयं आदर्श बन कर दिखलाने की तो बात ही क्या है? उस निविड़ अन्धकार के समय एक हमारे आदित्य ब्रह्मचारी भी

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ही थे जिन्होंने स्वयं आज हम सब को वेद विद्यारूपी सूर्य्य का दर्शन करा दिया है। आज आर्य्य जाति की जड़ को खोखला करने वाली उन कुप्रथाओं को किसी कंदरा में भी शरण नहीं मिलती।

महर्षि ने जन्म से जाति पांतिके विचार को हिलाकर गुण कर्म्म तथा स्वभावानुसार वैदिक वर्णाश्रम की मर्य्यादा का परिचालन किया। महर्षि के प्रभाव से जिन समुदायों के व्यक्ति परमपिता की कल्याणी वाणी के श्रवण मात्र तक के अधिकार से वंचित थे उन में भी आज कल कई महाशय पण्डित तथा शास्त्री पदवी से विभूषित हैं। यही ऋषि दयानन्द की विजय है, यही उनकी महत्ता की सूचना है। आओ आज दीपावली के दिन हम सब उनके गुण गान करते हुये उनके बताये मार्ग का अनुसरण करके कल्याण के भागी बनें।

शरद ऋतु-वर्णन

ले०—श्री० बलवन्त मिश्र-हिन्दी आनर्स अ० माडर्न स्कूल दिल्ली



ह संसार परिवर्तन शील है। इसमें प्राणीमात्र की दशा सदैव पलटा खाया करती है, एक ही दिन में समृद्धिशाली-व्यक्ति, दीन व्यक्ति, और दीन व्यक्ति समृद्धिशाली व्यक्ति हो जाता है। प्राणीमात्र ही नहीं, समय, प्रकृति सभी में परिवर्तन होता रहता है। प्रकृति प्रभु की प्रतिनिधि है। जो लोग प्रकृति-पूजक हैं वे भी प्रकारान्तर से ईश्वर की पूजा कर रहे हैं क्योंकि ईश्वर हर जगह विराजमान है। क्या बिना ईश्वर की कृपा से रंग बिरंगे फूलों का दर्शन, नरम २ घासों और हरी २ पत्तियों के सौंदर्य्य, प्राप्त हो सकते हैं? समय का परिवर्तन ही ऋतु की संज्ञा कही जाती है। समय जब जब बदलता है उसके अनुसार उसका नाम हो जाता है। बसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त और शिशिर इन्हीं को षटऋतु कहते हैं। बसन्त की छटा कुछ और ही होती है, ग्रीष्म उससे बिलकुल बदला हुआ। पावस तो विलक्षण ही ढंग से संसार में प्रवेश करता है। इनके पश्चात् शान्तरस के रूप में भगवान की प्रतिनिधि स्वरूप शरदऋतु का आगमन होता है।

जिस समय श्री शरद का अनुपम राज्य इस पृथिवी पर होजाता है स्वयं पृथ्वी कीचड़, मिट्टी, कीड़े मकोड़े और नाना प्रकार के विषैले जीव जन्तुओं से रहित होकर इस प्रकार शुद्ध होजाती है जैसे माया मोह, अन्धकार और नाना प्रकार के दुर्विचारों को त्याग कर मति शुद्ध होजाती है। शरद के आते ही बादलों का गर्जना, और बूंदों की विषम झरी मिट गई, नदियां अपने कल कल नाद से चित्त को आनन्दित करने लगीं, उनके किनारे बालुका, और इधर उधर की मिट्टियां बिछी हुई हैं जिसे देख चित्त विश्राम करना चाहता है। वे

अपनी चंचल धारा को छोड़ इस प्रकार शान्त होगई हैं मानों चंचल स्वभाव की स्त्रियां चपलता छोड़, शान्त अवस्था में होकर, देश के सामने अपना निर्मल विचार रख आनन्दित करती हैं। नदियों को देख कर सहसा चित्त में प्रश्न उठने लगता है कि भगवान की लीला कैसी विचित्र है? पावस ऋतु में किस तरह अपनी तीक्ष्ण धारा के घमण्ड से ये किनारे के वृक्ष, गांव और अनेक प्रकार के जीवों को बहा ले जाती थीं और इस समय ऐसी शांत होगई हैं, ठीक है "सब दिन होत न एक समान" हाँ! हां! अब तो मोरों का गर्जन सुनाई नहीं देता, न मालूम उन्हें क्या होगया, जैसे किसी का सर्वस्व नष्ट होजाय ऐसी ही दशा शरदऋतु में मोरों की होजाती है। जैसे वृक्षों पर सदा पुष्प नहीं रहता, सब दिन रुपये पैसे नहीं रहते, वैसे ही मोरों का घमण्ड भी भगवान ने चूर २ कर डाला। हां सारस, शुक और हंसों का भाग्य उदय हुआ है, वे बन ठन कर बिहार करने लगे। पृथ्वी पर जल, फल, और नये २ तृण स्वादयुक्त होने से अनेक पक्षी आनन्द करने लगे। आकाश में इधर से उधर अपनी मधुर वाणी सुनाने लगे। शीतल सुगन्ध वायु से वर्षा काल की सारी थकावट जाती रही। किसान अपने खेत में बैल लिये जोतने, बोने और जल सिंचन करने लगे। तालाब में फूले हुए कमल त्रिविधि वायु के झोकों से इधर उधर इस प्रकार झिलमिला रहे हैं मानो सुविचारी, ब्रह्मचारीगण झूम झूम कर अपना पाठ याद कर रहे हों। अंगूर, सेब, अमरूद, अनार, नाशपाती और मेवे का बाज़ार गर्म है। नीबू, अनार और संतरे के फलों से लदी हुई उनकी डालियां भार से नवित होकर यह शिक्षा दे रही हैं कि धनवान्, विद्वान्, बलवान्, और सन्तानवान सब को नम्र होकर रहना चाहिए। शरद काल की निशा भी परम सुहावनी होती है। नक्षत्र तारागणों से आकाश मंडल इतना रुचिर और रूपवान प्रतीत होता है मानो प्रकृति की सुन्दर वाटिका खिली हो। अनेक शुभ्र बूटियां पर्वतों के शिखर पर इतनी सुन्दर दिखाई देती हैं जैसे अन्धकार समूह में खद्योत समूह चमकते हुए अच्छे लगते हैं। इस प्रकार के गुण, गान, और निरीक्षण से शरद ऋतु की महिमा का वर्णन होना कठिन है। शरद को तो जिस रूप में देखा जाय सभी रूप सुखकारी ही प्रतीत होते हैं। यहां पर अब कवियों की सूझ का भी दिग्दर्शन कराना चाहिये। सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदास जी का शरद-वर्णन -जो उनके सर्वमान्य ग्रन्थ रामायण में है- अत्यन्त शिक्षाप्रद और समय के उपयुक्त है, जिससे पाठकगण अच्छी तरह परिचित हैं। उन्होंने तो शरद ऋतु की प्रतिमा ही खड़ी कर दी है—उसका थोड़ा सा नमूना रख कर उनके और ग्रन्थ का दर्शन पाठकों को कराना उचित है।

वर्षा विगत सरद ऋतु आई,
लक्ष्मण देखहु परम सुहाई।

फूले काँस सकल महि छाई,
जनु वर्षाकृत प्रगट बुढ़ाई।

उदित अगस्त पंथ जल सोखा,
जिमि लोभहिं सोखई संतोषा।

सरिता सर निर्मल जल सोहा,
संत हृदय गत जस मद मोहा।

रस रस सूखि सरित सर पानी,
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।

जानि शरद ऋतु खंजन आए,
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।

पंक न रेनु सोह अस धरनी,
नीति-निपुन नृपकी जस करनी।
जल संकोच विकल भये मीना,
बिबिध कुटुम्बी जिमिधन हीना।
बिनु घन निर्मल सोह, अकासा,
हरिजन इव परिहरि सब आसा।
......इत्यादि.....

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद ऋतु पाइ।
सदगुरू मिले ते जाहिंजिमि, संसय भ्रम समुदाइ॥

इस प्रकार नीतियुक्त शरद ऋतु का वर्णन गोस्वामीजी ने प्रवर्षण गिरि पर महाराजा रामचन्द्र जी के मुख से शिक्षा-रूपेण लक्ष्मण जी को समझाया है। धन्य है गोस्वामी जी! रामायण की रचना करके आपने संसार का बड़ा भारी उपकार किया है। उनकी कवित्तावली, विनयपत्रिका तथा तुलसी सतसई देखने का लाभ हरएक हिंदी-प्रेमी को करना चाहिए। अपनी सतसई में गोस्वामी जी ने शरद ऋतु को कामनी बनाया है और श्री रामचन्द्र की कीर्ति की उपमा दे डाली है। इस प्रकार कामिनी भूषण, बसन, केश, का वर्णन करके शरद ऋतु प्रकाश को कामिनी के चिबुक के सुन्दर तिल से उपमा दी है। सुनिए वह क्या कहते हैं।

प्रभु गुण गण भूषण बसन,
बचन विशेष सुदेश।
राम सुकीरति कामिनी,
तुलसी करतब केश।
रघुवर कीरति तिय बदन,
दूव कहैं तुलसादास।
शरद प्रकाश आकाश छवि,
चारू चिबुक तिल जास।
तुलसी शोभत नखत गण,
शरद सुधाकर साथ।
मुक्ता झालर झलक जनु,
राम सुयश शिशु हाथ।

कविवर केशवदास जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "रामचंद्रिका,, के तेरहवें प्रकाश में शरद सुन्दरी का वर्णन सीता वियोग दुखित रामचन्द्र जी से लक्ष्मण के प्रति कराया है।

बीते वर्षा काल यों,
आई सरद सुजाति।
गये अंध्यारी होति ज्यों,
चारु चांदनी राति।
दन्तावलि कुन्द समान गनो,
चन्द्रानन कुन्तल भौंर घनो।
भौंहैं धनु खंजन नैन मनो,
राजीवनि ज्यों पद पानि भनो।
हारावलि नीरज ही यरमें,
हैं लीन पयोधर अम्बर में।
पाटीर जुन्हाइहिं अंग धरे,
हंसी गति केशव चित्तहरे।
श्री नारद की दरसे मति सी,
लोपे तम ताप आकीरति सी।
मानो पति देवन की रति सी,
सन्मारग की समझौ गति सी।

फिर इतना वर्णन करने के पश्चात् उसी शरद को कुलीन वृद्धा दासी की उपमा दी है। कहते हैं:—

लक्ष्मण दासी वृद्ध सी, आई सरद सुजाति।
मनहु जगावन को हमहिं, बीते बरषा राति।

इस प्रकार "रामचन्द्रिका" ग्रन्थ में केशवदासजी ने शरद वर्णन किया है। लेख विस्तृत होने के भय से अर्थ का स्पष्टी क-

रण नहीं किया जाता है। इनका यह ग्रन्थ बड़ा ही क्लिष्ट और गहन विषय से सम्पादित है।

रसराज के बनाने वाले कविवर मतिराम जी ने अपनी पतिव्रता वियोगिनी नायिका को शरद काल का आगमन होने से परम आनन्द पहुंचाया है। वह कहते हैं:—

शरद चन्द्र की चांदनी, डारि डारि किन मोहिं।
वा मुख की मुसकानि सम, क्यों हूं कहो न तोहिं।

परन्तु शरदागमन और साथ ही प्रीतमागमन से वह अत्यन्त प्रसन्न है।

पिया गमन शरदा गमन, विमल-वाल मुख-इन्दु।
अंग अमल पानिय भयो, फूले दृग अरविन्द।

बुलन्द शहर वासी कवि सेनापति जी शरद वर्णन इस प्रकार करते हैं:—

विविध वरन सुर चाप ते न देखियत,
मानो मनि भूषन उतरि धरे सेष हैं।
उन्नत पयोधर बरसि रसु गिर रहे,
नीके न लगत फीके सोभा के न लेस हैं।
सेनापति आये तें सरद ऋतु फूलि रहे,
आस पास कास खेत २ चहुं देस हैं।
जीवन हरन कुंभ जोनि के उदै ते भये,
बरषा विरिध्रता के सेत मानो केसं हैं।

ग्वाल कवि का वर्णन सुनिए:—

मोरन के सोरन की नैकौ न मरोर रही,
घोर हूं रही न घन घने या फरद की।
अम्बर अमल सर सरिता विमल जल,
पँक को न अँक औ, न उड़नि गरद की।
ग्वाल कवि चित्त में चकोरनके चैन भये,
पँथिन की दूर भई दूखन दरद की।
जल पर, थल पर, महल अचल पर,
चांद सी चमकि रही चांदनी सरद की।

पदमाकर कवि का भी कथन ध्यान से सुन लीजिए। वे अपने कन्हाई के मुकुट पर कैसे मोहित हैं:—

तालन पै, ताल पै, तमालन पै, मालन पै,
बृन्दावन वीथिन बहार बंसीवट पै।
कहै पदमाकर अखण्ड रास मंडल पै,
मन्डित उमड़ि महा कालिन्दी के तट पै।
छिति पर, छान पर, छाजत छतान पर,
ललित लतान पर लाड़िली के लट पै।
आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि,
पाई छवि आजु ही कन्हाई की मुकुट पै।

बिहारीलालजी का सिर्फ एक दोहा सुन लीजिए। उनके शरद रूपी बहादुर राजा का प्रबन्ध बड़ा ही अच्छा है।

घन-घेरो छुटिगो हरखि चली चहूँदिस राह।
कियो सुचैनो आय जग, सरद सूर नर नाह॥

अन्त में सच्चे वैष्णव रीवां के महाराज कवि जयसिंह जी कृत "हरिचरित्र चन्द्रिका" ग्रन्थ कथित शरद वर्णन भी सुनिये। इनकी सूझ कितनी साम्य है।

वर्षा गई शरद ऋतु आई,
नवल बधू सम सुखद सुहाई।
कमल बदन खंजन चख छाजैं,
सुरंग सुमन वर वसन बिराजैं।
कल मराल नव नूपुर बाजत,
सुनि मुनि मानस मान बिभाजत।
फूली कांस सुदुति धरि धाई,
पतिव्रता कीरति जिमि पाई।
वर सर लसहिं सरोरुह फूले,
सुकृता भूप प्रजागम तूले।

महिजल सूखो प्रगटी महिइमि,
नस तप खंड लसत श्रुतिपथ जिमि।
सरि, सर जल इमि निर्मल छाजत,
जिमि तजि विषय विरागी राजत।
कुकुभ कुटज आदिक विना, विकसे कुसुम निकाय
जिमि खल मद मथि नृप नगर, राख्यो सुजन बसाय
जल बिन जलद सेत छवि छाजत,
सब धन दै जिमि दाता राजत।
निर्मल भयो गगन घन फूटे,
जिमि हिय विषय बासना छूटे।
लसत इन्दु उड़गन मिलि ऐसो,
नृप नय निपुन प्रजा जुत जैसो।
परसि चांदनी यौंछित सोही,
सती सो सौति पाइ जिम जोही।
जन मन रंजन खंजन कैसे,
पूरव पुण्य समय फल जैसे।
जल चर नित जल घटत न जानहिं,
आयु कमति जिमि जन नहिं मानहिं।
रवि संताप शरद शित नाशत,
मोह नशत जिमि ज्ञान प्रकाशत।
परसि कमल कुवलय बहत, बायु ताप नसि जाय,
सुनत बात हरि गुननिजुत जिमिजन पाप पराय।
बन वाटिका उपबन मनोहर,
फूल फल तरु मूल सों।
सर सरित कमल कलाप कुवलय,
कुमुद बन विकसे गंसे ।
सुख लहत यों फल चखत मधु,
पीयत मधुप सोनीति सों ।
मनु मगन ब्रह्मानन्द रस,
जोगीस मुनिगन प्रीतिसों।

इस प्रकार महाराजा जयसिंहजी ने और भी शरद वर्णन किया है जो बहुत ही मधुर और सरल शब्दों में लिखा गया है। अन्त में महाकवि देवदत्तजी ने जो माधव और श्री राधिकाजी के प्रेम में लीन होकर शरद वर्णन बृहत रूपेण किया है उसका एक पद्य नमूने के लिए रखता हूं।

नगर निकेत, रेत, खेत, सब सेत-सेत,
ससिके उदेत कछु देत न दिखाई है।
तारका मुकुत माल झिल मिल, झालरनि,
बिमल, बितान नभ आभा अधिकाई है।
सामुद समोद बृज कुमुद विनोद देव,
चहुं कोर चांदनी की चादर बिछाई है।
राधा मधु मालतिहि माधव मधुप मिले,
पालिक पुलिन भीनी परिमल झाई है।

इस प्रकार कवियों ने शरद महिमा गाई है। वास्तव में शरद-काल मनुष्य मात्र के लिये तो परम ही सुखकारी है। यदि कोई विद्यार्थी परीक्षा में सफल होना चाहता है तो नियम पूर्वक अपना पाठ शरद के ऊषा-काल में अध्ययन करे। प्रातः वायु सेवन करने वाला मनुष्य शरद ऋतु के प्रातः कालीन दृश्य में कोई ख़ास बात पावेगा। शरद ऋतु अनेक प्रकार की शिक्षा, सौन्दर्य तथा शान्त रस का पाठ, पाठकों को पढ़ा जाती है। पढ़ने वाला, ग्रहण करने वाला, यह सुन्दर सुंयोग भला कब छोड़ सकता है? यदि यह शरद वर्णन पाठकों को कुछ भी शिक्षाप्रद तथा साथ ही मनोरंजक हुआ तो क्रमशः अन्य ऋतुओं का वर्णन भी उनके सन्मुख उपस्थित करता रहूंगा।

———

॥ मासावतरण ॥

लेखक—श्री पं० सन्तलाल दधिमथ वैद्यराज

※ मार्ग शीर्ष ※

एक टक हम देखते जिसको रहे,
हय हिम—ऋतु मार्ग[1] में वह आगई।
धुल चुके धारा—धरों से पूर्ण तक,
अब उन्हीं पर मञ्जुता छाई नई।

* * * *

वह श्वसन[2] की शीतता, शुचि-स्निग्धता,
औ' उषा की कान्तता, कमनीयता।
म्लान-मन को भी मुदित करती, अहा !
बाल—रवि की वह रुचिर—रमणीयता।

* * * *

शर्वरी के, शस्य पर हिम[3]—पात मे,
वे बना मोती अनोखे से दिये।
बाल—मन कहता जिन्हें लख,-ये बने,
सत्य मोती, तो हमें क्या चाहिये ?

* * * *

चाहते बल के लिए बल हीन थे—
जो समय, वह शीत का अब है यही !
जो प्रवासी हैं, उन्हीं के चित्त में,
देश—दर्शन की विकलता छा रही।

* * * *

१—मार्ग—मार्ग शीर्ष;

२—श्वसन=वायु;

३—हिम—ओस;

मेरी काश्मीर यात्रा

लेखक—श्रीयुत प्रो० लक्ष्मण स्वरूप जी पी० एच० डी०



काश्मीर देखने को नेत्र तरस रहे थे। चिरकाल से अभिलाषा थी, हृदय व्याकुल रहा करता था। जब जब यात्रा की ठानी कोई न कोई विघ्न आन उपस्थित हो गया। सब प्रबन्ध निष्फल हुए। निराशा और उत्कण्ठा से दुगनी वेदना होती थी। Thomas Moor और Shelly के काश्मीर सम्बन्धी काव्य कई बेर पढ़े थे। जब कभी उन के किसी पद्य का स्मरण होता था तो दिल में एक मीठा दर्द उठता था, लम्बी सांस खुद ब खुद निकल जाती थी। आंसुओं के दो चार कतरे भी गिर पड़ते थे। देखें कब काश्मीर देखने का अवसर मिलता है?

इस ग्रीष्म ऋतु की छुट्टियों में फिर निश्चय किया, प्रस्थान की तिथि नियत करदी गई। अकस्मात् एक आवश्यक कार्य्य बस मुझे देहली और शिमले जाना पड़ा। मैं अभी शिमले ही था, कार्य्य समाप्त नहीं हुआ था, कि प्रस्थान की तिथि आन पहुंची। काम को अधूरा छोड़ लाहौर भागा और जब तक रावलपिंडी की गाड़ी में न बैठ गया काश्मीर पहुंचने का विश्वास न हुआ।

गरमी बहुत थी, गाड़ी खचाखच भरी थी, असबाब अधिक था, अतः बड़ा कष्ट हुआ। एक तो गरमी और भीड़ दूसरे कुछ मुसलमान यात्रियों ने हिन्दू-मुसलिम प्रश्न पर विवाद छेड़ दिया। बस फिर क्या था। ऐसा गरमा गरम विवाद हुआ कि विवादी पसीना पसीना हो गए। गरमी और भीड़ से जो कमी रहगई थी विवाद ने पूरी करदी।

प्रातःकाल पिण्डी पहुंचे। सारा दिन मोटर इत्यादि की प्राप्ति में लग गया। २५ जून को प्रातः काल ५ बजे पिंडी से प्रस्थान किया। हमने निश्चय कर लिया था कि सांयकाल तक काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में पहुंचना है, इस लिए प्रातःकाल ५ बजे चले। सड़क पर कुछ दूर निकल जाने पर सम्मुख पर्वत के नितम्ब में अग्नि लगी हुई थी। अन्धकार में प्रज्वलित अग्नि दूर से बहुत ही शोभायमान प्रतीत होती थी।

अग्नि फैली हुई थी। ज्वालाओं ने अनेक वेश धारण किए हुए थे। कहीं कहीं किसी वैद्युत नगर का तोरण प्रतीत होते थे। किसी स्थान पर मण्डपाकार बन गये थे मानो अप्सराओं के नृत्य की तैयारियां हो रही हैं। यह दृश्य बहुत ही मनोहर था, कितने ही मीलों तक दिखाई देता रहा। ७॥ बजे मरी पहुंचे। मार्ग में थोड़ी थोड़ी दूर पर मोटर के इंजन में ठण्डा पानी भरना पड़ता था क्योंकि चढ़ाई के कारण इंजन बहुत जल्दी गरम हो जाता था। मरी बड़ा रमणीक स्थान है लग भग ७००० फुट ऊंचा है। चील और देवदारु के बहुत से जङ्गल हैं। हमें २०० मील की यात्रा एक दिन में करनी थी सो हम मरी में नहीं ठहरे। कुछ मित्र लोग जिन को हमारे आने की सूचना मिल चुकी थी हम से मिलने आए, मार्ग में भोजन निमित्त मिष्टान्न भी लाए। मरी के पश्चात् एक दम उतराई आई, कोहाले १० बजे पहुंच गए। यहां वितस्ता अर्थात् जेहलम नदी के दर्शन हुए। नदी पार कर हम काश्मीर नरेश के राज्य में प्रविष्ट हुए। कोहाले के पश्चात् मार्ग नदी के तट के साथ साथ घूमता हुआ जाता है। कितने स्थानों पर पर्वत काट कर

मार्ग बनाया है। जेहलम नदी की वादी (valley) बहुत रमणीक है। पर्वतों का दृश्य मनोहर है थोड़ी थोड़ी दूर पर दृश्य बदलता रहता है। दोमेल नाम के नगर में बारह बजे पहुंचे। यहां राजकीय वैद्य आगन्तुकों की परीक्षा करता है। हैजा, प्लेग इत्यादि रोगों से ग्रसित रोगियों को आगे जाने नहीं दिया जाता। यहां चुंगी है, बड़ी सावधानी से पड़ताल की जाती है। राज्य की ओर से लगाया हुआ कर कुछ अधिक प्रतीत होता है। इस नगर का नाम दोमेल इस लिये है कि यह जेहलम और कृष्णगंगा का संगम स्थान है। कृष्णगंगा जेहलम में मिलती है। किन्तु दोनों नदियों का जल दूर तक पृथक् २ स्पष्ट दिखाई देता है। जेहलम का जल श्वेत और कृष्णगंगा का जल श्यामवर्ण का है। जिस प्रकार प्रयाग में गंगा और यमुना का दृश्य है उसी प्रकार का दृश्य दो मेल में देखने में आता है। यहां से एबटाबाद (Abbotabad) को पक्की सड़क जाती है। चुंगी और भोजन इत्यादि से निश्चिन्त होकर चले ही थे कि मोटर के अगले पहिए में पंकचर Puncture होगया। खैर, ठीक कर फिर चले। वायु बिल्कुल बन्द थी। धूप तेज थी। प्यास और गरमी से चित्त व्याकुल होगया। इसी दशा में मोटर की रफ्तार तथा हिलोरों से कुछ निद्रा आगई। सिर जो एक ओर झुका तो टोपी गिर गई। मोटर से उतरते समय जब टोपी की खोज हुई तो मालूम हुआ कि श्रीमती टोपी जी मार्ग पर ही रह गई हैंऔर अब उनके पहुंचने की कोई सम्भावना नहीं है।

मुझे मार्ग में एक बात देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। जहां तहां बैलगाड़ियां खड़ी थीं। बैल खुले हुए भूसा खा रहे थे। हांकने वाले सो रहे थे। स्थान स्थान पर यही हाल देखा। मैंने सोचा कि सारा दिन तो यह विश्राम करते हैं फिर यह चलते किस समय हैं? कुछ काल के पश्चात् मालूम हुआ कि मोटरों के मार्ग को खुला रखने के लिए बैलगाड़ियों की दिनयात्रा बन्द कर दी गई है। वह केवल सायंकाल के पश्चात् ही चल सकती हैं और सूर्य उदय होते ही ठहर जाती हैं।

इस सड़क पर प्रत्येक पड़ाव पर डाक-बंगले तथा हिंदू-विश्राम-स्थान बने हैं। रसोई बनाने के लिए कश्मीरी ब्राह्मण राज्य की ओर से हिंदू विश्राम स्थानों में नियत हैं। सब सामग्री मौजूद रहती है। यात्री के कहने की देर होती है झट भोजन तैयार होजाता है। खर्च भी अधिक नहीं होता।

पर्वतों के मध्य घूमती, चक्कर काटती, धीरे धीरे क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई सड़क बहुत सुन्दर लगती है। पर्वतों का दृश्य अद्भुत, आश्चर्य जनक है। कहीं २ किसी दुर्गम दुर्ग के उच्च प्रकार के समान सीधे जेहलम में धंस गये हैं। कहीं भयंकर रूप धारण कर शुष्क बंजर गंजे रुण्ड मुण्ड से खड़े हैं। कहीं चित्ताकर्षक पुष्पों से लदे हैं। कहीं चील के वृक्षों से ढके हैं। कहीं गुल्म लता से आच्छादित हैं। कहीं सुहावनी हरी २ घास के बिछौने बिछे हैं। कहीं ऐसी मनोहर साफ़ सीधी ढलवान हैं कि लुढ़कनेको जी चाहता है। बीच बीच पानी के झरने झरते हैं दूर से ऐसा प्रतीत होता है मानो पिघली हुई चांदी की धारा बह रही है अथवा किसी सूक्ष्म रेशमी वस्त्र की कोई लम्बी पगड़ी पड़ी है। १५ बीस मील की रफ़्तार से दौड़ती हुई मोटर में पर्वतों का दृश्य रम्यतर प्रतीत होता है। नीचे जेहलम नदी पत्थरों पर उछलती कूदती कोलाहल कर रही थी। सड़क पर मोटर २० मील की रफ्तार से शोर कर रही थी।

आक्रमण कर रहा था । मानो प्रकृति देवी ने रजोगुण रूप धारण किया है । ऊड़ी और चुनारी होते हुए हम सायंकाल ६ बजे बारामूले पहुँचे । बारामूले से श्रीनगर तक ३५ मील में सड़क के दोनों किनारे सफ़ैदे के वृक्ष लगे हैं । यह वृक्ष ताल और खजूर से भी अधिक लम्बे हैं । वृक्ष बहुत समीप २ लगे हैं, उनके मध्य अन्तर बहुत थोड़ा है । दूर तक एक ७०, ८० फुट ऊंची हरी दीवार सी प्रतीत होती है । यह संसार भर में सब से अधिक लम्बा Avenue है । श्रीनगर से अनन्तनाग तक भी इसी प्रकार के सफ़ैदे के वृक्ष लगे हैं । बारामूले से एक रास्ता गुलमर्ग को जाता है, दूसरा झील वुलर को तीसरा श्रीनगर को । हमने यहां भी विश्राम, करना उचित न समझा । चले ही गए और ८ बजे तक श्रीनगर में पहुँच गए । अंधेरा होचुका था । रात्रि व्यतीत करने की चिन्ता हुई । अंधेरे में स्थान तलाश करना कठिन था । किंतु एक मित्र हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे । उन्हीं के घर रात गुज़ारी । अगले दिन शिकारे पर बैठ कर जेहलम नदी की सैर करते रहे । लगभग ८० नौकाओं का निरीक्षण कर हमने एक मनभायी घरेलू नौका Houseboat किराए पर कर ली । घरेलू नौका गृह संबंधी सारे सामान से सुसज्जित होती है । बस वहां जाकर रहना ही होता है । सायंकाल से पहले ही मैं नौका में चला आया । चुनारबाग के समीप नौका को लगा दिया ।

श्रीनगर

श्रीनगर जेहलम नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ है । नदी के किनारे ६, ७ मील का विस्तार है । आर पार जाने के लिए सैकड़ों शिकारे स्थान २ पर खड़े रहते हैं । राज्य की ओर से नदी पर ७ पुल बांधे गए हिम से ढके हुए शिखरों पर वायु वेग से हैं । पुल को कश्मीरी भाषा में कदल कहते हैं जैसे मीरांकदल, जैनाकदल इत्यादि । यह पुल लकड़ी के बने हैं । खूब पक्के और मजबूत हैं । कभी २ जब जेहलम नदी में अत्यधिक चढ़ाव होता है तो यह पुल बह भी जाया करते हैं । श्रीनगर के मध्य में जेहलम बहती है । एक ओर डल नाम की बहुत ही सुन्दर झील है, बहुत सी नहरें बनी हैं । प्रत्येक स्थान पर बाजार में, गली में घरों में, जाना होता है तो नौका पर लोग जाते हैं । घोड़ा गाड़ी टांगे इत्यादिकों से नौका का प्रयोग अधिकतर है । श्रीनगर की प्रायः इटली देश के सुप्रसिद्ध नगर वेनिस Venice के साथ तुलना की जाती है । वेनिस पुराना नगर है । सफ़ाई कुछ कम है । श्रीनगर भी बहुत गंदा है । दोनों स्थानों में पक्की सड़कों की अपेक्षा नहरें इत्यादि ही मार्ग का काम देती हैं । इन्हीं दो बातों में समानता है । श्रीनगर की रमणीकता सौंदर्य तथा हरयावल वेनिस से अधिक हृदयङ्गम हैं ।

पर्वत के एक ऊंचे शिखर पर श्रीशंकराचार्य निर्मित शिव मन्दिर है । प्रातः सांय समय बहुत से यात्री इस पर्वतपर चढ़ा करते हैं । पिछले बरस मायसूर नरेश यहां पधारे थे । वह मन्दिर के शिखर पर एक बहुत बड़ा वैद्युत लैम्प लगवा गए हैं । सायकाल के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी अद्वितीय चन्द्रमा का उदय हुआ है । मन्दिर का ज्योतिर्मय शिखर काश्मीर में बहुत दूर से दिखाई देता है । श्रीशंकराचार्य जी की चोटी पर चढ़ कर श्री जेहलम valley वादी का कौतूहल जनक दृश्य दिखाई देता है । नदी एक पतली रेखा बन जाती है । हरे हरे शाली के खेतों में बलखाती हुई बहुत ही मनोहारिणी प्रतीत होती है । यह

दृश्य ऐसा चित्ताकर्षक था कि घण्टों निरीक्षण करने पर भी जी न ऊबे। श्रीशंकराचार्य के सन्मुख एक छोटा सा पर्वत है जिसे हरि पर्वत कहा जाता है। इस पर अकबर ने एक क़िला बनाया था। अब यह क़िला जेलखाने का काम देता है।

निशात बाग़।

रविवार के दिन पुरुष स्त्री निशात बाग़ की सैर में व्यतीत करते हैं। यह बाग़ श्रीनगर से आठ मील एक पर्वत के दामन में बना है। जहांगीर ने नूरजहां के विनोद के लिए बनवाया था। बाग़ के सौन्दर्य का वर्णन करना असंभव है। कृत्रिम जलप्रपात, सहस्रों फहवारे, क्रमशः ऊंचे उठते हुए चबूतरे, नाना रंग के पुष्पों की कतारें मखमल से भी कोमल हरी घास के विस्तृत मैदान, वटवृक्ष से अधिक शीतल और गूढ़ छाया देने वाले चुनार के विशाल वृक्ष. पर्वत का दृश्य, झील का नज़ारा, तथा काश्मीर देश की रूपवती लावण्यमयी युवतियों को देख कर आगन्तुक चकित हो जाता है। संशय उत्पन्न होता है कि यह स्वप्न है अथवा जागृति है? पुराणों में इन्द्र के नन्दनवन का जो चित्र खींचा गया है, मेरे विचार में वह निशात बाग़ के आधार पर लिखा गया है। मैं समझता हूं मुसलमानी बहिश्त की तस्वीर बनाने वाले ने। निशात का नमूना गढ़ने का प्रयत्न किया है रविवार के दिन सब फहवारे तथा जलप्रपात चलते हैं। दृश्य ऐसा मनोहर होता है कि कुछ काल तक तो मृत्युलोक भी स्वर्गलोक बन जाता है। काश्मीर देश की युवतियां क्या हैं? बस अप्सराएं हैं। उन में रूप की राशि बहुत अधिक है।। योरुप की नारियां भी उनके सम्मुख मन्द पड़ जाती हैं। निशात बाग़ क्या है? हृदय का नन्दन है। मैंने सारे योरुप की सैर की है। स्विटज़रलैण्ड भी घूमा है। पर ऐसा रमणीक मनोहर, सुन्दर, और हृदयङ्गम स्थान नहीं देखा।

शालामार बाग़

निशात से लगभग दो मील के फासले पर है। यह भी जहांगीर का बनवाया हुआ है। रविवार को यहां बहुत भीड़ रहती है। मध्य में एक बारादरी बनी हुई है। शिल्पशास्त्र अथवा कारीगरी का अच्छा नमूना है। शालामार के मध्य में एक छोटी सी नहर बहती है, यहां भी बहुत से जल प्रपात हैं। चुनार के वृक्षों की शीतल छाया, कोमल घास का कालीन, प्रपातों से झरता हुआ जल, मित्रों से गोष्ठी, चाय, फल, मिठाई इत्यादि से परस्पर प्रीतिवर्धन बहुत संतुष्ट करते हैं। लाहौर का शालामार बाग़ इसी इसी की नकल है।

शालामार से तीन मील आगे हारवन नाम का महासरोवर है। जल मीठा और स्वादु है। भले प्रकार सुरक्षित किया गया है। इसी सरोवर से श्रीनगर के लिए पीने का पानी लिया जाता है। जब हम सरोवर पर गए तो एक लम्बा सांप पानी में तैर रहा था, इतनी तेज़ी से पानी को चीरता हुआ जा रहा था।कि अचंभा होता था। शायद मोटर नौका भी इतनी रफ़तार से नहीं जाती।

डलझील में दूसरे तट पर नसीम बाग़ है। यहां तम्बू लगाने के लिए विस्तृत खुले मैदान हैं। बहुत से अंग्रेज यात्री श्रीनगर को अच्छा न समझ, यहां तम्बू लगा कर रहते हैं। डल झील के ऊपर बहते हुए खेत हैं। इन खेतों में शाक पात बहुत अच्छा होता है। लकड़ी के तख्तों पर मट्टी डाल कर खाद बना लिया जाता है, फिर बीज

बोया जाता है। यह तख्ते किनारे के साथ खूंटों से बांध दिये जाते हैं। प्रायः चोरी हो जाती है। खूंटे से रस्सी खोली और शाकपात से लदे हुए खेत के खेत को चुरा कर दूसरे दूर स्थान पर ले गए। संसार भर में खेत की चोरी केवल श्रीनगर में ही हो सकती है।

श्रीनगरसे ५ मील चश्मा शाही है। यहां पृथ्वी में से स्वयं जल बाहिर निकलता है। इस जलमें कुछ ऐसे प्राकृतिक पदार्थ मिले हैं कि अजीर्ण के रोग झट हर लेते हैं। स्वास्थ्य के इच्छुक बहुत से वृद्ध स्त्री पुरुष यहां जल सेवन करने आते हैं। काश्मीर की महाराणी जी सांयकाल के समय नित्य यहां आती हैं और जलपान करती हैं।

गान्दरबल

श्रीनगर में गरमी बहुत थी। जल के ऊपर रहने से मच्छर बहुत सताते थे, सो नौका के हांजी के कथनानुसार हमने गांदरबल की ओर प्रस्थान कर दिया। नदी के रस्ते गान्दरबल पहुंचने में दो दिन लगते हैं। हम अपनी house boat के बरामदे में आराम कुरसी पर बैठे हुए थे। हांजी लोग लम्बे २ बांसों से नौका खेह रहे थे। साथ की दूसरी नौका में हमारा रसोइया भोजन बना रहा था और शिकारा रसोई वाली नौका के साथ बंधा था। जब रसोई से कोई वस्तु मंगानी होती थी झट शिकारे पर आजाती थी। नौका चलते २ भोजन बना। नौका चलते २ में हमने खाया। यह हमारे लिए एक नया अनुभव था। हमने दूसरे नगर में जाना था। हम यात्रा कर रहे हैं, लेकिन न हमें असबाब बांधना पड़ा, न सफ़र की कुछ तैय्यारी करनी पड़ी। पलंग पर बिस्तरा बिछा था। हजामत का सामान ताक के ऊपर रखा था। मेज़ पर चाय के प्याले धरे थे। ऐसा प्रतीत होता था। कि हम घर में बैठे हुए हैं और घर का घर ही यात्रा कर रहा है। घरेलू नौका की यात्रा बहुत ही आनन्ददायक होती है। इस यात्रामें तनिक भी कष्ट नहीं होता। पहली रात हम शादीपुर ठहरे। अगले दिन मध्याह्नके पश्चात् दो बजे गांदरबल पहुंचे। गांदरबल एक छोटा ग्राम है, सिन्धु नदीके तटपर बसा है। यहां गरमी कुछ कम है। दृश्य मनोहर है। जलवायु अच्छा है। गांदरबल से ३ मील क्षीरभवानी का मन्दिर है। यहां अष्टमी के दिन मेला लगता है। दूर २ से यात्री लोग जमा होते हैं। मन्दिर के समीप एक छोटा सा चश्मा इसी चश्मे में है क्षीर और मिठाई चढ़ाई जाती है। क्षीर और मिठाई के सड़ने से वहां इतनी दुर्गन्ध आती है कि क्षण भर ठहरना कठिन हो जाता है।

गांदरबल से ५ मील मानसबल नाम का सरोवर है। यह एक बड़ी झील है। ऊंचे २ पर्वतों के मध्य में स्थित है। शिकारे में बैठकर हम एक किनारे से दूसरे किनारे पर गए। स्थान २ पर बहुत गहरी है। किनारे के पास २ जल के भीतर किसी प्रकार का घास उत्पन्न होता है। घोड़े बैल इत्यादि बड़े चाव से इसे खाते हैं, सरोवर का दृश्य भी बहुत हृदयङ्गम है।

गांदरबल से सुनमरग तीन दिन का रास्ता है। हम घोड़ों पर सवार होकर चल दिए। भोजन इत्यादि की सामग्री दो सप्ताह के लिए साथ बांध ली। मार्ग में खाद्य पदार्थ नहीं मिलते, केवल दूध मिलता है। पहले दिन कांगन के डाकबंगले में विश्राम हुआ। डाक बंगला सिन्धु नदी के तट पर बना है। चारों तरफ पर्वतों पर शाली और मक्का के खेत हैं, यह खेत बहुत ही अच्छे लगते हैं। रात चांदनी थी। चन्द्र

देव की श्वेत किरणों ने सिंधु धारा को रजित धारा में प्रवर्तित कर दिया। निर्मल ज्योति में पर्वतों के शिखर और वृक्षों के झुण्ड बहुत ही विचित्र लगते थे।

अगले दिन प्रातःकाल प्रस्थान किया। मार्ग में बहुत से यात्रियों से भेंट हुई। सड़क सिन्धु नदी के साथ साथ चली गई है। अनेकानेक पर्वतों झरनों को देखते हुए हम एक बजे गूण्ड पहुंचे। वहां भोजन इत्यादि से निश्चिन्त हो विश्राम किया। यहां पर हमारी एक अङ्गरेज से भेंट हुई। वह और उसकी मेम सुनमरग जा रहे थे। प्रातःकाल फिर कूच हुआ, आज चढ़ाई बहुत थी। कहीं कहीं घोड़े पर बैठ कर चढ़ना भयानक था। एक पग के फिसलने से मनुष्य सहस्रों फुट नीचे नदी में गिरता और उसकी हड्डी बोटी का भी पता न चलता। सायंकाल को हम सुनमेरग पहुंचे। यह स्थान ऊंचे पर्वत पर बना है। इसका सौन्दर्य इसी बात में है कि इतनी ऊंचाई पर इतना खुला विस्तृत और हमवार मैदान है। यहां वायु बहुत शीतल है। सरदी भी बहुत है। यह स्थान आबादी से बहुत दूर है। केवल चरवाहे लोग भेड़, बकरी, गाय भैंसों को चराने के लिए ग्रीष्म ऋतु में ले आते हैं और सितम्बर में वापिस लौट जाते हैं। सुनमरग में केवल चार पांच मनुष्य रहते हैं। एक तो डाक बंगले का चौकीदार, एक डाकखाने का बाबू, एक तारघर का बाबू, और एक दुकानदार। सरदी में दुकानदार तो नहीं रहता, सरकारी नौकरों को रहना पड़ता है।

सुनमरग से अगला पड़ाव बालथल है। बालथल से तिब्बत, स्करदू, लेह, और चीन देश को सड़क जाती है। हम जोजिलापास Zojila-pass जो १२००० फुट ऊंचा है, और हमेशा हिम से आच्छादित रहता है, तक गये। चार मील तक बीस फुट गहरी बरफ के ऊपर चले। जोजिला के ऊपर दो अंग्रेज महिलाओं से भेंट हुई। यह दोनों युवतियां परिश्रम की परवाह न कर और भय को तिलाञ्जलि दे दुर्गम पर्वत स्थानों पर अकेली भ्रमण कर रही थीं। इन के साहस और धैर्य की प्रशंसा करना उचित है। बालथल में केवल डाक बंगले का चौकीदार रहता है। कोई वस्तु यहां नहीं मिलती। न कोई आबादी है। बालथल के आस पास पर्वत पर जंगल ही जंगल है। यहां भूर्जपत्रों के वृक्ष बहुत होते हैं। इस जंगल में घूमते एक दिन दो तीन मील पर एक तम्बू दिखाई दिया। कौन रहता है यह जानने की प्रबल इच्छा हुई, वहां गया तो क्या देखा कि निर्जन बन में एक अंगरेज युवती अकेली निवास करती है। दो तीन अनुचर साथ हैं। इस प्रकार आबादी से दूर निर्जन और दुर्गम स्थान में भिन्न जाति व भिन्न धर्म के पुरुष अनुचरों के मध्य एक युवती का अकेले रहना कितने साहस का काम है। परन्तु उसे तनिक भी भय न था। न पुरुषों के बलात्कार का डर था, न जंगली जानवरों, रीछ, इत्यादिकों का भय था। मैं कहता हूँ धन्य है वह जाति जिस की स्त्रियों का हृदय इस प्रकार निर्भय और साहस से पूर्ण है, ऐसी माताओं की सन्तान कितनी सबल होगी यह अनुमान किया जा सकता है।

बालथल से अमरनाथ केवल १० मील है। परन्तु मार्ग बहुत कठिन है। कोई सड़क तो है नहीं, केवल एक पानी का नाला है। यह बारह महीने जमा रहता है। इस नाले के ऊपर के भाग की जमी हुई बरफ पर चलना पड़ता है। जब गरमी अधिक होती है तो ऊपर की बरफ कुछ कुछ पिघल

जाती है। जहां तहां बरफ में गढ़े पड़ जाते हैं। यदि मनुष्य किसी गढ़े में गिर जाय तो सीधा यमलोक पहुंचता है। एक तो नाले के ऊपर बरफ पर चलना, दूसरे दस मील पर्यन्त सीधी चढ़ाई। बरफ पर साधारणतया चलते हुए पुरुष पगपग पर फिसलता है, यदि सीधी चढ़ाई हो तो फिसलना बहुत ही सहल हो जाता है। ऐसी दशा में इस मार्ग से अमरनाथ जाना विपत्ति को बुलाना था। सो हम वापस गान्दरबल को चले। मार्ग में मेरा एक साथी घोड़े से गिर गया पत्थर पर गिरने के कारण उसके हाथ में चोट आई। कोई वैद्य नहीं, औषधि नहीं, जंगल या मैदान। सो अपना ही इलाज किया। घोड़े की लीद तेल में गरम कर बांध दी। गान्दरबल तक इसी औषधि का प्रयोग होता रहा। इसी से आराम भी होगया।

अमरनाथ की यात्रा

श्रीनगर से हम पहले ही पहलगाम पहुंच गये थे। मार्ग में अनन्तनाग, वेरीनाग कुक्कुडनाग, अच्छावल इत्यादि अनेक रमणीक स्थान देखे। वेरीनाग से ही जेहलम नदी का निकास होता है। पहलगाम लिदर नदी के तट पर पर्वत स्थान है। लगभग ७००० फुट ऊंचा है। दो तरफ पर्वत हैं। दूर से हिमालय के हिम से आच्छादित शिखर दिखाई देते हैं मध्य में लिदर बहता है। एक ओर अमरगंगा बहती है। दोनों का संगम पहलगाम पर होता है। यह वादी बहुत रमणीक है। मानों प्रकृति ने स्वयं एक सुन्दर उद्यान रचने का प्रयत्न किया है। यहां पक्के मकान नहीं है। सब लोग तम्बू में रहते हैं। तम्बू का जीवन स्वतन्त्र जीवन है, कुछ थोड़ा कष्ट होता है पर आनन्द बहुत आता है। यहां वृष्टि कम है। ग्रीष्म ऋतु में सारी पहाड़ी यात्रियों के तम्बुओं से भर जाती है। बहुत से लोग जल वायु सेवन के लिये महीनों यहां रहते हैं।

अमरनाथ पहलगाम से तीन पड़ाव है। चढ़ाई बहुत होने से और मार्ग कठिन होने से यह यात्रा बहुत ही कठिन यात्रा है। पर धर्ममें श्रद्धा रखने वाली वृद्धा स्त्रियां नंगे पांव बरफ पर चलती हैं और सब कष्ट सह लेती हैं। इस बेर ५ सहस्र के लगभग यात्री लोग थे। ६ महीने के गोदी के बालक से लेकर ७५ बरस की वृद्धा तक सब उमरों के स्त्री पुरुष शामिल थे। यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई। मार्ग में १८००० फुट तक चढ़ना होता है। मार्ग में सरोवर वन उपवन पर्वत शिखर अमरनाथ तथा हिमालय की कन्दराओं के अद्भुत विचित्र और मनोहर दृश्य दिखाई देते हैं। उनका वर्णन फिर कभी करेंगे।

परिवर्त्तन।

(बंगाल की "एकाल सेकाल" के आधार पर)

लेखक—श्रीकृष्ण पाण्डे

(गतांक से आगे)

४

लगभग एक सप्ताह से शोभा एक प्रकार से कैद है। कारण सतीश की बुआ आई हुई हैं और उनका आना विशेष कर शोभा के विवाह के लिये भी हुआ है।

सोलह सत्रह वर्ष की लड़की होगई, अबतक विवाह नहीं हुआ इस बात को वृद्ध बुआ कब देख सकतीं थीं। पहले तो उन्हों ने पत्र द्वारा ही तकाजा किया लेकिन उसका कुछ फल न होता देख लाचार होकर उन्हें स्वयं आना पड़ा। उनको आये प्रायः एक सप्ताह होगया है अतः आजकल शोभा उदास ही रहती है। निर्मल बाबू रोज आते हैं, भाई सतीश उनसे रोज ही घंटों गप्प लड़ाया करते हैं, लेकिन स्वतन्त्र—प्रकृति शोभादेवी उनसे मिल नहीं सकती, दो बातें करके अपने सन्तप्त हृदय को शान्त नहीं कर सकती, इस बात की चिन्ता से वह दिन रात उदास ही रहती है।

संध्या के चार साढ़े चार बजे होंगे। शोभा अपने पलंग पर पेट के नीचे तकिया देकर किसी अंग्रेज़ी पुस्तक का पन्ना उलट रेहीं है, उसका मन पढ़ने में नहीं लगता। पास ही में एक कोच पर सतीश बाबू कोई मासिक पत्रिका पढ़ रहे हैं। दोनों जने अपने ध्यान में मस्त थे, इतने में ही हाथ में सुमिरनी लिये, चौखट के बाहर से ही बुआजी ने कहा-"हां रे सतीश? शोभा के ब्याह का क्या ठीक हुआ? क्या अभी तक ब्याह का समय नहीं हुआ?"

शोभा ने पुस्तक से आंख उठाकर वक्र दृष्टि से बुआ की ओर देख कर कहा "इसमें समय असमय क्या! जब सुविधा होगी तब होजायगा। इतनी जल्दी काहे की है?" सतीश ने नम्रशब्द में कहा "भीतर आओ न बुआ मां?" "नहीं २ यह कैसे हो सकता है। इस घर में आने से उनका धर्म चला जायगा हम लोग तो सब विधर्मी हो गये।" कहते २ शोभा ने बुआ को देख, उपेक्षा पूर्ण हंसी हंसी

"चुप रहो शोभा! तुम क्या कह रही हो, इसका भी कुछ ध्यान है या नहीं? अच्छा बुआ माँ, इस घर में आने में तुमको भी इतना संकोच क्यों है?"

वृद्धा के उत्तर देने पहले ही शोभा ने कहा:—

"यह सब कुशिक्षा का फल है भैया!"

सतीश अनेक चेष्टा करने पर भी यह नहीं समझ सका कि स्नेहमयी बुआ के प्रति शोभा के इतने विराग का क्या कारण है?

"चलो शोभा छत पर बातें करें।" यह कह वह कमरे के बाहर चला गया।

वृद्धा बुआ ने दीर्घ स्वाँस लेकर कहा:— "शोभा यहीं रहे तुम चलो।"

"यह क्या? विवाह की बात तो शोभा के सामने होना ही ठीक है। उसका मत लेकर ही विवाह का प्रबन्ध किया जायगा।" विरक्त होकर शोभा बोली--"मैं यहीं अच्छी हूं। इन सब व्यर्थ की बातों को मैं पसन्द भी नहीं करती।"

शोभा के मुंहसे अपने प्रति ऐसे तिरस्कार पूर्ण वाक्य सुनकर वृद्धा के मन में बड़ा दुःख हुआ। किंतु ममता और भविष्यत् चिन्ता से उसका हृदय कांप गया। उसने स्नेह-पूर्ण शब्दों में कहा "बेटी, मैंने तुझे अपनी लड़की की तरह पाल पोस कर इतना बड़ा किया है। मेरी बात मानो, सतीश जो कुछ करें उसमें आपत्ति न करो"

"पाल पोस कर इतना बड़ा किया है इस के लिये मैं चिर कृतज्ञ हूं, जिस प्रकार होगा मैं इसका बदला दूंगी। लेकिन अपने जीवन को इस प्रकार दुःख के अथाह समुद्र में डाल देना मेरे लिये असम्भव है।"

शोभा की इस बात को सुनकर बुआ और सतीश दोनों चुप रह गये, उनके अप-

मान की सीमा न रही, दुःखपूर्ण स्वर से से सतीश बोला:—"चलो बुआ मां हम लोग छत पर चलें।" दोनें जने छत पर आगये। बुआ ने एक निश्वास छोड़कर पूंछा:—"ये निर्मल बाबू कौन हैं रे?"

सतीश—"वह एक डाक्टर हैं, देश से आकर यहीं डाक्टरी करते हैं"

बुआ०-"उनसे तेरा सम्बन्ध?"

"सम्बन्ध और क्या होगा वह एक शिक्षित पुरुष हैं, उनसे परिचय होना ही बड़े भाग्य की बात है।"

यह कहती हुई शोभा दोनें के बीच आकर खड़ी होगई। शोभा को एकाएक यहां देख दोनें के बड़ा आश्चर्य्य हुआ।

"शोभा! मैं तेरे भले ही के लिये कहती हूं मेरी बात मानले बेटी! और जो तेरे मन म आवे सो कर लेकिन बाहरी लोगों से इस तरह का मिलना छोड़ दे।"

"इसमें तुमको हस्ताक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं बुआ मां!" कह कर शोभा आकाश की ओर देखने लगी। मामला बढ़ जाने के भय से सतीश ने बात का रुख पलट कर कहा" जो सम्पत्ति पिताजी छोड़ गये हैं, उसमें से शोभा के विवाह के लिये दस बीस हज़ार रुपया खर्चने में मुझे कुछ कष्ट न होगा। किन्तु"

बुआ० "किन्तु क्यारे?"

सतीश—"शोभा विवाह के लिये बिलकुल तैयार नहीं है।"

बुआ—"उसके लिये इतनी चिन्ता किस बात की है, मुंह से तो बोले-लेकिन तू बड़ा भाई है, जो करदेगा वह उसे मंजूर करना ही होगा।"

शोभा इतनी देरतक आकाश की ओर देख रही थी, इन लोगों की बात की तरफ उसका ध्यान ही नहीं था, किन्तु बुआ के इस कथन ने उसको चौंका दिया, उसने आवेश के साथ कहा "वह जमाना गया बुआ मां। अब हम भी अपने अधिकारों को समझने लगी हैं और भैया भी बिना मेरी मरजी के कुछ नहीं कर सकते यह मैं कहे देती हूं।"

"मेरा भी यही मत है। पिताजी ने शोभा को अपने मन माफिक शिक्षा दी है, अच्छा बुरा समझने की शक्ति भी उसमें है वह जो चाहे करे।"

"हे भगवान! भाई बहन दोनों की एक मत।" कहकर वे चुप हो गईं, थोड़ी देर बाद फिर बोली। देख, कोई लड़का मिले तो" शोभाने बीच ही में बाधा देकर निशंक होकर कहा-"ये मनका काम है बुआ मां! हां तुम लोगों की चेष्टा से किसी के साथ भी ब्याह हो सकता है, लेकिन उसके लिये मैं तैयार नहीं हूं। इसके अलावा ऐसा कोई नजर भी नहीं आता जिससे मेरा मन मिला हो, लेकिन यह निर्मल बाबू ठीक पढ़े लिखे शिक्षित पुरुष हैं।"

शोभा की निर्लज्जता देख सतीश आश्चर्य्य करने लगा। कोई भी हिन्दू रमणी इस प्रकार कह सकती है यह उसकी समझ में नहीं आया। लेकिन साथ ही बुआ के मन में आशा का संचार हुआ। उसने पूंछा:—"क्यों सतीश इनसे शोभा का ब्याह नहीं हो सकता?"

"उनका विवाह हो गया है।" कहकर सतीश चुप हो गया।

यह सुनकर शोभा के मन में बड़ा दुःख हुआ, वह कठपुतली की तरह वहां खड़ी थी। वहीं खड़ी रह गई, उसके मुख से एक शब्द तक नहीं निकला। बुआजी भी उदास होगई थीं, शोभा के उक्त कथन से उनको कुछ

आशा हुई थी लेकिन सतीश ने निराश कर दिया। सब कोई चुप हैं, थोड़ी देरतक ऐसी ही निस्तब्धता रही। इतने में ही नीचे से निर्मल ने पुकारा "सतीश बाबू।"

आवाज सुन कर शोभा नीचे आने लगी लेकिन बुआने हाथ पकड़ कर कहा:—"शोभा तू मत जा बेटी।"

यह सुनते ही शोभा का मुंह लाल होगया। उसका जी निर्मल से मिलने के लिये छटपटाने लगा। "बुआ जी जब मना कर रहीं हैं तब यहीं रह शोभा, तू न गई न सही।" यह कह कर सतीश चला गया। शोभा थोड़ी देर तक तो चुप रही लेकिन वह अपने मन को रोक नहीं सकी। क्रोध और घृणा से उसका चेहरा लाल होगया, उसके होठ फड़कने लगे, उसने झटके से अपना हाथ छुड़ा कर कहा:—"न गई सही। लेकिन इन कुरुचियों को अपने हृदय में स्थान देते तुम लोगों को लज्जा भी नहीं आती? मैं यह कहे देती हूँ कि इस तरह से मुझे बचा नहीं सकते।" इतना कह कर शोभा वेग से अपने कमरे में चली गई।

नीचे बैठक में सतीश से इधर उधर की बातें करते २ निर्मल ने पूंछा "इधर शोभा नहीं दिखाई देती? उसकी तबीयत तो ठीक है न?"

"हां तबीयत ठीक है। लेकिन देश से बुआ जी आई हैं वे इन सब बातों को अच्छा नहीं समझतीं।"

निर्मल ने आश्चर्य से पूंछा "किन सब बातों को?"

सतीश ने कोई जवाब नहीं दिया। निर्मल ने थोड़ी देर ठहरकर फिर कहा "ओह! समझ गया। ये बुड्ढे ही सब चौपट कर देंगे, उन्हें उच्च कोटि की शिक्षा तो मिली ही नहीं है, जैसे स्वयं पिंजरे में बंध रहना पसन्द करती हैं, वैसे ही दूसरे को भी स्वतन्त्र नहीं रहने देतीं।"

सतीश ने नम्रता से उत्तर दिया—"देखिये निर्मल बाबू! मैं किसी को दोष देना नहीं चाहता, कारण कौन ठीक है, और कौन बेठीक है इसका निर्णय अभीतक मैं नहीं कर पाया हूँ।"

"क्या आप भी अभी तक इन कुसंस्कारों को नहीं छोड़ सके?"

सतीश ने कहा—"मैं नहीं कह सकता कि इनको कौन छोड़ सका है। सम्भव है आप इसमें सफल होगये हों, लेकिन मैं तो आज तक सफल नहीं हो सका।"

निर्मल ने कहा—"लेकिन आप का रहन सहन देख कर कोई सन्देह नहीं कर सकता कि……"

सतीशने बात काटकर जवाब दिया—"आप का यह कहना ठीक है। लेकिन फिर भी मैं अपने बड़ों की निन्दा किस साहस से कर सकता हूं।"

"इसमें साहस की क्या बात है भैया? सत्य को कोई नहीं दबा सकता।" यह कहती हुई शोभा सतीश के पास आकर खड़ी हो गई। शोभा को वहां देखकर सतीश ने कोमलता से कहा-"तुम यहां क्यों बहिन?"

शोभा इसका कुछ उत्तर न देकर सतीश के पास ही एक कुर्सी पर बैठ गई। कुछ देर बाद निर्मल ने एक निश्वास फेंक कर कहा "यदि इसमें आप कुछ दोष समझते हैं तो आपको ऐसी बुरी चाल छोड़ देनी चाहिये। कारण यह कि मनुष्य नाम से परिचय देने के पहिले अपना सिद्धांत ठीक रखना चाहिये।"

"यह तो ठीक ही है। जिसके मत का कुछ ठीक नहीं उसके अस्तित्व के ऊपर विश्वास कैसे किया जायगा।"

यह कहकर शोभा ने निर्मल की बात का समर्थन किया। सतीश के विस्मय की सीमा नहीं रही, उत्तेजना वश मनुष्य इस क़दर वर्बर हो जाता है उसने आज ही देखा। साथ ही साथ शोभा के भविष्य की चिन्ता ने उसे और भी घर दबाया। निर्मल के साथ इतनी घनिष्टता करके उसको पछताना पड़ा लेकिन अपने मनके भावों को दबाकर उसने शोभा से कहाः—'शोभा! पान तो ले आ बहिन। आज तो निर्मल बाबू को चाय भी नहीं पिलाई।"

निर्मल को अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई कि एक मित्र से मिलने आकर कितनी बर्वरता से बातें कर रहा हूँ। लेकिन इतने पर भी अपनी बात को मजबूत करने के लिये उसने कहाः—"सतीश बाबू! आप चाहे जो कहें किन्तु विचार करने पर आपको स्त्री शिक्षा और स्त्री-स्वाधीनता को स्वीकार करना ही होगा, इसके बिना चल नहीं सकता।"

"दुःख है कि शिक्षा और स्वाधीनता को स्वीकार करते हुए भी मैं आपकी तरह यूरोपीय शिक्षा पद्धति का पक्षपाती नहीं हूं, मुझे इससे कुछ भय होता है। और प्राचीन परिपाटी यह तो कभी बन्द होही नहीं सकती।" इतना कहकर सतीश ने घृणा के साथ अपना मुंह घुमा लिया।

निर्मल कुछ न कहना ही चाहता था कि सतीश ने फिर कहा! "क्षमा कीजिये। मुझे एक ज़रूरी काम है। इस फालतू विषय पर तर्क करने का मुझे बिलकुल समय नहीं है। फिर भी मैं कहे देता हूं कि जो काल की दुहाई देते हैं वह कुछ नहीं कर सकते।"

शोभा अभी तक चुप बैठी थी, लेकिन निर्मल के प्रति सतीश के इस बर्ताव को वह न सह सकी उसने कहा-"भैया! अपने घर आये एक भले मनुष्य का इस तरह अपमान करते तुम्हें कुछ भी संकोच नहीं होता। वह तुमसे कुछ भीख मांगने नहीं आये हैं।" सतीश शोभा की बात का उत्तर दिये बिना ही ऊपर चला गया। सतीश के इस व्यवहार से निर्मल ने अपना घोर अपमान समझा, उसके तमाम बदन से पसीना बहने लगा। अपनेको संभाल न सकने के कारण वह शीघ्रता से घर के बाहर चला गया।

दो दिन से निर्मल सतीश के यहां नहीं जाता उस समय वह मैदान में घूमने चला जाता है। आज मैदान से आकर अपनी बैठक में रणधीर को पुस्तक पढ़ते देख उसने आश्चर्य से पूंछा "तुम कब आये रणधीर?"

"आज दोपहर को आया हूं, सारा कलकत्ता ढूंढ़ डाला तब कहीं आपका पता लगा है।" कह कर रणधीर हंसने लगा। निर्मल ने कोट खोलते २ पूछा "घर में मां बाबू जी मजे में हैं न?"

रणधीर ने व्यंग से कहा- "ठीक हैं या नहीं इससे तुमको क्या मतलब?"

निर्मल०—"यह व्यंग किस लिये रणधीर?"

रणधीर०—निर्मल अगर तुम्हारे लड़का होता और वह भी एक ही, तब तुम्हें मालूम पड़ता कि अपने इकलौते बेटे को विदेश भेजने के बाद माता पिता दुःख में रहते हैं या सुखमें। अभी तुम इन सब बातों को क्या समझोगे?" निर्मल ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, उस को निरुत्तर देखकर रणधीर ने फिर कहा—"निर्मल तुम से ऐसी

आशा तो किसी को नहीं थी, यह तुम क्या कर रहे हो भाई!"

रणधीर की यह प्रेम भरी फटकार सुन कर निर्मल के हृदय में उथल पुथल मच गई।

उसने व्यग्रता से पूंछा "भाई रणधीर! अब यह पहेलियां बुझाना तो छोड़ दो और साफ़ २ कहो बाबू जी मजे में हैं न?"

रणधीर०—"किसी तरह अभी तक बचे हुए हैं। निर्मल! जो होगया सो होगया अब भी घर लौट चलो। अपनी माताके दुखित हृदयको शान्ति देना चाहते हो तो मेरे साथ घर चलो।"

निर्मल०—"अच्छी बात है। मैं घर चलने तैयार हूँ।"

रणधीर०—'तो तैयार हो जाओ, आज ही रात की गाड़ी से जाना होगा।"

निर्मल०—"आज ही ? इतनी जल्दी क्यों?" इतना कह कर निर्मल चुप हो गया। उसकी आंखों के सामने शोभा की मूर्ति फिरने लगी। उसके मन में आया कि जाते समय एक बार शोभा से मिल आऊं। लेकिन सतीश बाबू के साथ जो बातें हुईं उस अपमान की बातें याद कर उनके घर जाने का साहस नहीं हुआ। बहुत देर तक सोचते रहने पर भी वह शोभा से मिलने का कोई मार्ग तय नहीं कर पाया। उसको इस तरह चिंता करते देख रणधीर ने पूंछा "क्या सोचते हो निर्मल?"

निर्मल०—"रणधीर मां बहुत कातर हो रही है क्यों? मुझे आज ही चलना चाहिये?"

ठीक इसी समय युरोपीय महिला के वेश से सुसज्जित शोभा ने कमरे में प्रवेश कर के कहा—"निर्मल बाबू! मालूम होता है आप रुष्ट होगये। ऐसी तर्क तो अनेक बार होती हैं। इस पर इतना मान करना होता है छिः।"

निर्मल ने शोभा की बात का उत्तर न देकर पूंछा "आपकी तबियत तो ठीक है न?"

"तबीयत तो ठीक ही है। लेकिन आप बात क्यों उड़ा रहे हैं। पहले मेरी बात का उत्तर दीजिये, आप रुष्ट क्यों होगये।" इतना कह कर शोभा ने तीव्र दृष्टि से निर्मल की ओर देखा। निर्मल ने हंसते २ कहा-"नहीं २ इसमें रुष्टता की कौनसी बात है। कार्य अधिक होने के कारण नहीं आ सका।" इन दोनों की बातें होती देख रणधीर वहां से यह कह कर चला गया कि "मैं थोड़ी देर में लौट कर आता हूँ तुम तैयार रहना।"

रणधीर के वहां से जाते ही निर्मल ने एक लम्बी सांस ली, उस को भय था कि शोभा की बातें सुन कर तेज स्वभाव रणधीर कुछ कह न बैठे। लेकिन उसके चले जाने पर वह भय दूर होगया।

"यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि आप रुष्ट नहीं हैं। कल मैंने एक गार्डन पार्टी की है उसमें आपको शरीक होना पड़ेगा।"

निर्मल—"लेकिन मैं तो आज ही देश जा रहा हूं।"

शोभा—"नहीं २ यह कभी हो सकता है? आप ही के लिये तो यह आयोजन किया गया है। अगर आप मेरी इस प्रार्थना को अस्वीकृत कर देंगे तो मुझे बड़ा दुःख होगा तीन बजे तक जरूर आइयेगा हम लोग आप की अपेक्षा करेंगे।" इतना कह कर शोभा चली गई। निर्मल "हां या ना" कुछ जवाब

नहीं दे पाया, केवल उसे गाड़ी तक पहुंचाकर लौट आया। आकर देखा कि रणधीर बाहर से लौट आया है। उसने निर्मल के आते ही कहा—"सारा इन्तजाम ठीक है एक बार चल कर देखलो और कोई चीज़ तो नहीं लेनी है?"

"देखता हूँ आज मैं नहीं जा सकूंगा। तुम जाकर मां से कह देना कि मैं दो दिन बाद आऊंगा।"

रणधीर ने पूछा "यह सब चालबाजी रहने दे-क्यों आज क्या है?"

निर्मल—"एक सख़्त केस है।"

रणधीर—"इस पर मैं कुछ नहीं कह सकता क्योंकि एक मनुष्य के जीवन मरण की समस्या है।"

इतने में नौकर ने चाय का प्याला सामने लाकर रख दिया। चाय पीते २ निर्मल ने पूछा "क्यों रणधीर मेरे न जाने से मां को बहुत दुःख होगा?"

रणधीर—"मां को तो दुःख होगा ही साथ ही एक मनुष्य जो मर रहा है, उसे बचाना क्या तुम्हारा फर्ज नहीं है?

बिमला को बहुत ज्यादा कष्ट है। निर्मल! उसको बचाओ, हाथ आई लक्ष्मी की अवहेलना मत करो, नहीं तो पछताओगे! वह दिनों दिन सूखी जा रही है, उसकी दशा को देख कर मां ने भी खाना पीना छोड़ दिया है।"

निर्मल—"रणधीर क्या यह सच है?"

रणधीर"नहीं तो क्या मैं झूठ कहता हूं।"

निर्मल ने सोचा—"क्या मैं बिमला को सुख दे सकूंगा? वह मेरे मन लायक होगी? वह गांव की लड़की क्या शोभा की तरह स्वाधीनता पूर्वक मेरे साथ व्यवहार कर सकेगी? नहीं! मेरा उसका मेल कभी नहीं मिल सकता! मैंने उसे अच्छी तरह पहचान लिया है, उसका वह लम्बा घूंघट मुझे पसंद नहीं, वह किसी तरह शोभा की तरह नहीं हो सकती।" इतने में ही रणधीर ने उसका ध्यान भंग करके कहा "क्या सोच रहे हो? अच्छी तरह विचारलो अगर किसी तरह जा सकते हो तो आज ही चलो देखो तुम्हारे लिये दो प्राणी मर रहे हैं उनको और ज्यादा कष्ट मत दो।"

रणधीर की इस बात ने निर्मल के हृदय पर बड़ा असर किया। उसके कानों में रहरह कर कोई कहता था कि उन्हें ज्यादा कष्ट मत दो—वह विचलित हो गया। शोभा को भूल गया, उसके निमंत्रण को भूल गया, शोभा की आरजू मिन्नत पर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं रहा उसने कहा--"अच्छी बात है, तब आज ही चलो। जो होगा सो देखा जायगा" रणधीरने घड़ी देखी, गाड़ी छुटने में अभी आधे घंटे की देर थी, सामान सब पहले से ही तैय्यार था-कम्पाउन्डर को कुछ आवश्यक बातें समझा कर निर्मल जाने को तैय्यार होगया। दोनों जने एक भाड़े की मोटरTaxiपर चढ़ कर हावड़ा स्टेशन पहुंचे।

(६)

दोपहर का समय है। कड़ाके की धूप पड़ रही है, मनुष्य क्या पशु पक्षी तक भी इस समय अपने घोंसले को छोड़ना नहीं चाहते। ऐसे समय हाथ में एक कैन्विस का बेग लिए सूट बूट से सुसज्जित निर्मल बाबू घर के दरवाजे पर आकर खड़े हुए।

निर्मल "मां" को पुकार कर चुपचाप अपराधी की तरह वहीं खड़े रहे, आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं पड़ी। घर के अन्दर आवाज़ सुन कर किसी ने कहा—"शान्ति देख तो ऐसे कड़ाके की धूप में कौन आया है?" शान्ति के आते न आते निर्मल घर के

भीतर घुस पड़ा और हाथ की बेग जमीन पर रख कर फिर पुकारा "मां"! करुणामयी किसी काम में व्यस्त थी, निर्मल की आवाज़ उनके कानों में पड़ी, उन्होंने पुकारा—"शांति" शांति ने हंसते २ वहीं से चिल्ला कर कहा—"मांजी भैया आगये।" "निर्मल आगये बेटा"? कहती हुई करुणामयी अपने हाथ का काम अधूरा छोड़ कर चली आई। मां के चरणों में प्रणाम करते समय निर्मल के मस्तक पर दो एक गरम २ आंसुओं की बूंदें पड़ीं। माता ने पुत्र को गले से लगा कर स्नेहपूर्वक कहा—"बेटा! मुझे एक दम भूल गये। वहां अच्छी तरह थे न? किसी बात की तकलीफ तो नहीं हुई।"

निर्मल ने अपने शरीर की ओर देखा, उसे कुछ भी फर्क मालूम नहीं पड़ा, पर न मालूम क्यों वह नहीं कह सका कि, अच्छी तरह है। मांने अपने अंचल से लिलाट का पसीना पोंछते २ कहा "रेल में किसी बात की तकलीफ तो नहीं हुई?"

"नहीं! तुम लोग सब कोई अच्छी तरह हो न?"

"हम लोग और अच्छी तरह! जिस दिन तेरा लड़का इसी तरह विदेश चला जायगा उस दिन तू समझेगा कि हम लोगों की क्या हालत थी। अच्छा, बातें फिर होंगी पहले जाकर हाथ मुंह धोले" इतना कह कर करुणामयी स्नान के लिये पानी आदि का प्रबन्ध करने गई निर्मल भी अपने कमरे में जा कर कपड़ा खोल कर धोती गमछा ले नहाने चला गया।

रात के करीब ६ बजे होंगे, अभी थोड़ी देर हुई निर्मल बाहर से आकर कपड़े खोल कर पुस्तक पढ़ रहा है। आधे घण्टे तक पुस्तक के पन्ने उलटने के बाद उसने विरक्त होकर पुस्तक रख दी।

चन्द्रमा आकाश के मध्य भागमें आगया, खिड़की द्वारा चन्द्रमा की स्वच्छ चांदनी निर्मल के मुख पर पड़ रही थी, कभी २ हवा का झोंका आकर उसके घुंघुरवाले बालों को उड़ाने की चेष्टा करता था। देखते २ सामने की टेबिल क्लाक में ११ बज गये, लेकिन अभी तक विमला का पता नहीं। अब और ज्यादा देर तक अकेले बैठे रहना निर्मल के लिये असम्भव होगया। अकेले बैठे रहने के कारण उसे फिर शोभा की याद ने दबाया। सोचतेर उसके मुख से एकाएक निकल पड़ा "वास्तव में शोभा को सूचना दिये विना मेरा यहाँ चला आना अनुचित है।"

शोभा का आग्रहपूर्ण निमन्त्रण, कातर प्रार्थना, उस के प्रति अपनी उपेक्षा, विना सूचना दिये चोर की तरह से चले आना आदि २ बातें उस के मन को चंचल करे देती थीं। शोभा के भोले भाले चेहरे की याद, उस के कोमल मुख से निकली हुई प्रार्थना उसे रह रह कर याद आती थी।

इतने में ही किसी के पाजेब की मधुर झंकार ने निर्मल का ध्यान भंग कर दिया उसने पीछे मुड़ कर देखा कि एक कोने में विमला खड़ी २ काँप रही है। आंखें चार हुईं—अपने मनोभावोंको दबाकर, अपनी समस्त शक्ति लगा कर, विमला ने पैरों पड़ कर नमस्कार किया, निर्मलने प्रेम पूर्वक खींचकर अपनी बगल में बैठा लिया, विमला ने निर्मल के इस व्यवहार से लज्जित होकर कहा—"हैं, हैं यह क्या करते हैं।" कह कर विमला दूर जाकर खड़ी होगई। निर्मल को उसके इस व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया, उसने कर्कश स्वर में कहा "मुझ से बातें करने में इतनी नफरत है तो बोलो मैं दूसरे घर में चला जाऊं। विमला निर्मल के इस व्यवहार से

और भी घबरा गई। किवाड़ बन्द करते २ उस ने कहा—"जरा धीरे बोलिये, मां अभी तक जाग रही हैं।"

जैसे आग में घी डालने से वह और भी धधक उठती है, ठीक यही हालत निर्मल की हुई। इस बार उसने और भी कड़े स्वर में कहा "धीरे बोलूं। क्या किसी का डर पड़ा है? छीः कैसे जंगली आदमीसे पाला पड़ा है क्या तुम किसी तरह अपनी इन सब आदतों को नहीं छोड़ सकती?"

विमला ने कुछ जवाब नहीं दिया। निर्मल ने फिर कहा "मैं चाहता हूं तुम भी उस की तरह हो जाओ।"

"मैं तुम्हारे लिये सब कुछ त्याग सकती हूँ, बोलो, तुम क्या चाहते हो?" इतना कह कर विमला निर्मल के मुंह की ओर देखने लगी। निर्मल ने कुछ जवाब नहीं दिया, चुपचाप खड़ा रहा। विमला ने फिर कहा "तुम्हें खुश रखने की चेष्टा करने में मैं कुछ त्रुटि न करूंगी, यदि न भी सकूं कुछ भूल हो तो तुम सुधार देना।"

निर्मल को इस बार भी निरुत्तर देख कर विमला ने फिर कहा "केवल मेरे ही नहीं, तुम घर भर के प्राण हो। तुम को जिस बात से सुख होगा, जिस से तुम आराम से रह सको, वह तो करना ही होगा, नहीं तो मां और बाबूजी कोई भी नहीं बच सकते।" निर्मल ने नरम होकर पूंछा "तुम लोगों के प्रति मैंने बहुत अन्याय किया है। क्यों विमल?"

विमला ने कहा—"न्याय अन्याय का निर्णय मैं किस प्रकार कर सकती हूं पर माँ को बहुत कष्ट होता था।"

निर्मलने आग्रहसे पूंछा "और तुम?" विमला ने कुछ उत्तर नहीं दिया। "तो तुम्हें तो कोई कष्ट नहीं था क्यों?" "कष्ट नहीं था? इससे ज्यादा स्त्री के लिये और क्या कष्ट हो सकता है।" उसने धीमे स्वर से कहा "तुम तो सुख में थे तुम्हारे सुख में ही सुख है।" आगे और कुछ कहने की शक्ति विमला में नहीं थी। उस की बड़ी २ आँखों से आंसुओं की की बूंदें गुलाब जैसे कपोलों पर मोती की तरह चमकने लगीं।

निर्मल ने फिर पूंछा "तो तुम्हें कोई दुःख नहीं था, क्यों विमला?"

हाय! इतनी देर का रोका हुआ श्रोत एक बारगी बांध कर वह निकला। विमला अपने को संभाल न सकी। अपराधी की तरह थर थर कांपने लगी। उसने निर्मल के पावों पर गिर कर रोते २ कहा "ऐसा मत कहो, मेरे देवता! ऐसा मत कहो, तुम्हें मेरे सिर की कसम है अब फिर ऐसी बात मत कहना।"

विमला के इसव्यवहार ने निर्मल को मुग्ध कर लिया। इस समय उसे शोभा का प्रेम, आदर, सब कुछ निस्सार जान पड़ा। वह सोचने लगा "क्या शोभा का प्रेम इस से बढ़ कर है? नहीं! इसमें वास्तविकता है उसमें नकल है, यह पवित्र है, वह कलुषित है, यह अधिकारी है और वह अनाधिकारी है, लेकिन न मालूम क्यों मन बार २ शोभा की ओर खिंचा जाता है। यह सब जानते हुए भी मैं उसे नहीं भूल सकता, भूलने की कोशिश करता हूँ लेकिन लाख चेष्टा करने पर भी मैं उसे नहीं भूल सकता। तब क्या शोभा का दरजा विमला से ऊंचा है? नहीं, नहीं, शोभा इसकी बराबरी नहीं कर सकती।" अपने प्रश्न का कोई उत्तर न पा-कर विमला को और भी ज्यादा कष्ट हुआ वह फूट २ कर रोने लगी, उसका 'आंचल

आंसुओं से तर हो गया। निर्मल ने उसे जमीन से उठा कर छाती से लगा लिया, अपनी चद्दर से उसके आंसू पोछते २ कहा —"विमला मैं नहीं समझता था कि गांव की स्त्रियों में भी इस तरह प्रेमभाव होता है। तुमने मेरा भ्रम दूर कर दिया।"

नित्य के अभ्यास के कारण विमला पांच बजे भोर ही उठ बैठी। स्वामी की नींद न खुल जाय इस ख्याल से बहुत ही धीरे २ पांव उठाकर जाने लगी, किन्तु आखिर किवाड़ खोलते समय निर्मल की नींद खुल गई। विमला को इतनी जल्दी जाते देख, उसके विस्मयकी सीमा न रही।

"यह क्या विमला! इतनी रात को कहां जाती हो?"

"अब रात कहां है, भोर के पांच बज गये। माजी उठ गई होंगी, उनके स्नान के लिए पानी आदि ठीक करना है।"

" क्या घर में कोई दाई नहीं है?"

" दाई क्यों नहीं है! लेकिन दाई क्या २ करेगी? घर में एक दो काम तो नहीं है। अगर मैं देर तक सोती रहूँगी तो माजी अपने मन में क्या समझेंगी।" इतना कह कर विमला जल्दी से कमरे के बाहर जाने लगी। निर्मल ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"क्या मेरे पास बैठने में कुछ बुराई है विमला? थोड़ी देर बैठो तुम से कुछ बातें करनी है।"

"देखो बहुत देर हो गई अभी बातें करने का समय जरा भी नहीं है।"यह कह कर अपना हाथ छुड़ा कर वह शीघ्रता से कमरे के बाहर चली गई। निर्मल यह कहता हुआ "ओह! इस जंगलीपन को मैं जरा भी पसन्द नहीं करता छी छी कितनी असभ्यता है हे ईश्वर! मैं यहां कैसे रहूँगा।" अपने बिछौने पर सो गया। थोड़ी देर तक करवट बदलने के बाद उसे फिर नींद आगयी। खुली हुई खिड़कीसे धूप आकर उसके मुंह पर पड़ रही है तब भी वह अचल भाव से सोया पड़ा है! ऐसा मालूम पड़ता है कि वह कोई स्वप्न देख रहा है, क्योंकि उसके चेहरे पर चंचलता और कभी मुस्कराहट दिखाई पड़ती है। क्या सपना देख रहा है, यह तो मालूम नहीं, पर वह स्वप्न जरूर देख रहा है।

विमला किसी काम से कमरे में आई थी, निर्मल के मुंह पर धूप आती देख वह खिड़की बन्द करने लगी, आवाज सुनकर निर्मल जाग पड़ा। विमला को सामने खड़ी देख, आंखे मलते २ उसने कहा "रोज सवेरे चा पीने का अभ्यास पड़ गया, है, स्टोव जला कर जरा चा तो बना देना।"

विमला—"जरा धीरे बोलो, बाहर सब सुनेंगे तो क्या कहेंगे।"

"सुन लेंगे तो क्या होगा? स्टोव उतारो न।"

विमला ने अपनी आंखों से स्टोव देखा नहीं था, फिर वह उसे जलाना क्या जाने? अतः वह कहीं की चीज कहीं रखने लगी। निर्मल ने विरक्ति से कहा "यह भी नहीं जानती? इधर लाओ, मैं बतादूँ।"

"रहने दो इतनी जल्दी किस बात की है रात को बता देना।" निर्मल जल भुनकर राख हो गया। उसने क्रोध से कहा "रात को बताने से तो काम नहीं चलेगा, चा तो मैं अभी पीऊंगा।"

"अच्छी बात है, मैं रसोई घर से बना लाती हूं।"

"ओहो! मुहा मुही करने में भी तुम कम नहीं हो। जू जू होकर दिन रात अकेले और कोई भले ही रह सके पर मैं नहीं रह सकता।"

"गुस्सा क्यों करते हो सिखादो न।" कह कर विमला स्टोव निर्मल के सामने रखकर खिड़की बन्द करने को उठी। निर्मल ने ताज्जुब से पूंछा, "कहां जाती हो?"

"कहीं नहीं—खिड़कियां बन्द कर रही हूँ।" कह कर विमला ने कमरे की सब खिड़कियां बन्द करदीं। घरमें अन्धकार होगया। निर्मल ने रुष्ट होकर होकर कहा "रहने दो, कोई जरूरत नहीं, तुम जाओ, दिनकी वक्त भी बत्ती जलाकर मैं नहीं रह सकता।"

"अच्छा बगल वाली खिड़की खोल देती हूँ।" कहकर उसने पास वाली एक खिड़की खोलदी, घर में कुछ उजेला हो गया। निर्मल ने स्टोव ठीक करके कहा "सब ठीक कर दिया है। जल चढ़ादो।"

"अच्छा" कहकर विमला ने पतीली में पानी चढ़ा कर उसमें चा छोड़ दी। निर्मल अपने क्रोध को दबा नहीं सका, वह पतीली फैंक कर बाहर चला गया।

निरापराध पीड़ित-हृदया विमला वहीं खड़ी २ आंसुओं की बर्षा करने लगी, थोड़ी देर बाद अपने आंचल से आँखें पोंछ कर कमरे के बाहर आई। बगल के कमरे से करुणमयी ने पुकार कर कहा बहू! "निर्मल को जलपान दे आओ।"

विमला निरउत्तर।

करुणमयी ने फिर कहा—"खड़ी २ क्या सोचती हो, जाओ बिना जलपान किये उस को तकलीफ होगी।"

इस बार विमला ने अपराधी की भांति कांपते हुए स्वर में रोते २ कहा—"वह घर में नहीं है। चले गये।"

"चला गया, तुमने रोका क्यों नहीं? इस तरह उदासीन रहने से मैं उसे किसी तरह नहीं रख सकती वह फिर चला जायगा।"

विमला फिर निरउत्तर!

गांव में आये निर्मल को चार पांच दिन होगये; यह चार पांच दिन पहाड़ के समान होगये। उसका मन रह रह कर कलकत्ते जाने को होता था। यहां आकर उसने विमला के द्वारा शोभा को भूलने की चेष्टा की, लेकिन कृतकार्य नहीं हुआ। २-३ दिन तक किसी प्रकार अपने मनको बहलाये रहा, विमला के प्रेम में अपने को लीन करदेना चाहा, पर सब बिफल हुआ। आखिर लाचार होकर आज वह कलकत्ते जाने की तैयारी करने लगा। वृद्ध सदानन्द ने जब करुणामयी के मुंह से उसके जाने का समाचार सुना तो उन्हें कुछ भी आश्चर्य्य नहीं हुआ, चेहरे पर जरा भी परिवर्तन के लक्षण दिखाई नहीं दिये, अचल स्थिर बैठे २ एक टक करुणा मयी की ओर देख कर मुस्कराने लगे। मानो इस सम्बन्ध की सब बातें वे पहले से जानते हों। उन्हे इस प्रकार चुप बैठे देख कर करुणामयी कुछ रुष्ट होगई। उसने कहा-"सोच क्या रहे हो, जिसतरह हो उसे कलकत्ते मत जाने दो।"

सदानन्द ने पत्नी के इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि एक पुस्तक लेकर पढ़ने लगे। उन्हें निरुत्तर देख कर करुणामयी बड़बड़ाती हुई घरके बाहर चली गई।

निर्मल अपने कमरे में बैठा २ अपनी ट्रंक ठीक कर रहा था, इतने में ही उसे हुक्का पीने की सी आवाज सुनाई पड़ी, उसने सिर उठा कर देखा कि सामने से सदानन्द नारियल का हुक्का पीते २ आ रहे हैं।

पिता को देखकर निर्मल ने खड़े होकर प्रणाम किया। अशीर्वाद दे वृद्ध एक चौकी पर बैठ गये, थोड़ी देर बाद हुक्का पीते २ बोले "निर्मल! अब मैं बुड्ढा होगया हूं।

अब मुझसे यह गृहस्थी का काम नहीं होता तुम अपने पास सब हिसाब किताब रक्खो, मुझे अब ईश्वर भजन करने के लिये छोड़दो।"

"यह कैसे हो सकता है?" कहकर निर्मल ने सिर झुका लिया। सदानन्द ने धुंआं फेंकते हुए कहा-"जिस तरह से हो जब होना ही होगा तब वादविवाद से लाभ?"

निर्मल ने विनीत भाव से कहा-"मैंने जो डिसपेन्सरी खोली है?" "उसे बन्द करदो" कहकर सदानन्द ने फिर हुक्का पीने में अपना ध्यान लगा दिया। निर्मल ने थोड़ी देर बाद फिर कहा "उसमें जो इतना रुपया खर्च कर दिया है। अब……" "……यह कहने से तो काम नहीं चलेगा। रुपया जाता है जाय, उसके लिये मैं तुम्हें घर नहीं छोड़ने दूंगी।" कहते हुए करुणामयी बीच में आकर खड़ी होगई।

निर्मल ने उत्तेजित होकर कहा "मैं यहां किसी तरह भी नहीं रह सकता, इतना लिख पढ़ कर देहात में अपनी सारी पढ़ाई को नष्ट करदूं, क्या आप लोगों की इच्छा है?"

सदानन्द ने मुसकराते हुए कहा "वर्तमान शिक्षा दीक्षा ने तुम लोगों का दिमाग बिगाड़ दिया है। ग्राम्य जीवन का आनन्द तुम लोग क्या जानो? तुम्हारा मन बनावटी चीज़ों पर लट्टू है, प्राकृति का वास्तविक सुख तुम अनुभव नहीं कर सकते। तुम्हारे पढ़े बड़े शहरों की विद्या वहीं रहे तो अच्छा है, हम देहात में उसका नाम भी नहीं चाहते। तुम्हारी शिक्षा का उपदेश है पालसी (Policy) और झूंठ और हमारी यह देहाती विद्या है धर्म और सच्चाई की।"

निर्मल इसका कुछ जवाब देना ही चाहता था कि करुणामयी ने बीच ही में रोक कर कहा "मैं यह सब कुछ नहीं जानती अगर जाना ही है तो मुझे भी अपने साथ ले चलो, मैं यहां नहीं रहूँगी।"

"अच्छी बात है चलो।"

सदानन्द ने हंसते हंसते कहा 'सावधान निर्मल! लोभ के फेर में मत पड़ो वर्ना मुह की खानी पड़ेगी। परमात्मा ने जो कुछ दिया है, उसी को लेकर सन्तोष करो।"

इतना कहकर सदानन्द करुणामयी के साथ घरके बाहर चले गये। निर्मल अकेला रहगया, वह कुछ बात नहीं कर पाया कि इस जंजाल से किस तरह छुटकारा मिलेगा। बहुत देर तक सोचने के बाद ट्रंक को योंही खुली छोड़कर बाहर घूमने चला गया। रात को जब बिमला से मुलाकात हुई तब उसने गम्भीर स्वर में कहा-"बिमला! इस तरह जोर जबर्दस्ती करके पिंजरे के पक्षी की तरह रोक रखने से कोई लाभ नहीं। और इस तरह मैं रह भी नहीं सकता। स्वाधीनता में कितना आनन्द है यह तो तुम जानती नहीं लेकिन जिसने एक बार इसका स्वाद पा लिया है, वह उसे कभी नहीं छोड़ सकता।"

बिमला ने हिम्मत करके कहा-"किसी को जबर्दस्ती रोक रखने की शक्ति मुझ में नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर भी मनुष्य अपनी शक्ति के बाहर काम नहीं कर सकता। फिर अपने मन माफिक शिक्षा देने का धैर्य्य होता तो भी एक बात थी। पर जिसमें इतनी भी धैर्य्य नहीं……"निर्मल ने बीच ही में बात काट कर कहा"……ठीक कहती हो बिमल मुझ में धैर्य्य बिलकुल नहीं है। फिर जब रोक नहीं सकती तो आगे के लिये अमंगल का पथ क्यों तैयार कर रही हो?"

"मैं तुम्हारे लिये अमंगल का रास्ता तैय्यार करूंगी? हाय! क्या यह मैं कर सकती हूं? तुम चाहे मुझे अपने चरणों में

स्थान दो या त्याग दो, चाहे तुम्हारी और कोई भी क्यों न हो, लेकिन तुम मेरे हो, मैं क्या प्राण रहते तुम्हारे अमंगल की कामना कर सकती हूँ ?"

विमला चुप होगई, थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। आखिर निर्मल ने इस सन्नाटे को भंग किया। उसने एक लम्बी सांस लेकर पुकारा—"विमला ?"

"क्या कहते हो ?" कहकर विमला निर्मल की ओर आशा हीन दृष्टि से देखने लगी। निर्मल ने उसका हाथ पकड़ कर कातर स्वर में पूछा "इतनी दृढ़ता है विमल ?"

"है क्यों नही, भले घर की बहू हूं, मगर इतनी दृढ़ता न हो तो कोई घर में जगह नहीं देगा। बाहर घूम कर दूसरे के दरवाजे पर भिक्षा मांगने से गुजारा नहीं चल सकेगा।" निर्मल चौंक पड़ा, विमला के मुंह से "भिक्षा" शब्द सुनकर उसको अपनी अवस्था का ध्यान हुआ। वह भिक्षक है। और उसी भिक्षा को चिरजीवन की संगिनी बनाने के लिये वह आज निरालम्ब भाव से घर छोड़ कर जारहा है। उसने वेदना पूर्ण स्वर में कहा—"विमल ! तभी तुम को इतना सुख है। हाय मैं बड़ा ही अभागा हूँ"

विमला रोने लगी। निर्मल तो अभागा नहीं था, एक दिन उसके समान भाग्यवान गांव में कितने पाये जाते थे ? विमला के साथ ब्याह करने के बाद ही निर्मल में यह परिवर्तन हुआ है। आशाहीन विमला ने रूंधे हुए गले से उत्तर दिया—"तुम तो अभागे नहीं थे, शनिग्रह के पीछे लगने के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है।"

"वह ग्रह कौन सा है विमल ?"

"यह देखो" कह कर विमला निर्मल के पांवों पर गिर पड़ी।

"मैं ही दुष्ट ग्रह बनकर तुम्हारे गले पड़ी थी, मेरा समय पूरा होगया है। केवल दो दिन के लिये और अपेक्षा करो, मैंने भैया को ले जाने के लिए चिट्ठी लिखी है। बस मैं यही चाहती हूँ। देखो, मैंने आजतक तुमसे कुछ नहीं मांगा है, आज मुझे निराश मत करो।"

विमला फूट २ कर रोने लगी।

विमला को अपनी छाती से लगा कर उसके आँसू पोंछते २ निर्मल ने कहा "भूल, एकदम भूल समझ रही हो विमल ! तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। मैं यह जानता हूँ कि अपने ख्याल से आप तंग हूं। और फिर इस घर में तुम्हें छोड़कर भी मैं नहीं रह सकता। मैं पथ भ्रष्ट पागल हूं मुझे अपने हृदय से लगा लो……" कहते २ उसने फिर विमला को गले से लगा लिया। इतने में ही घड़ी में ११ बज गये। निर्मल ने फिर कहा—"मैं इधर उधर दोनों तरफ़ से गया। दोष किया है बोल के दूसरे की तरह त्याग मत करो, उससे मैं और भी पागल होजाऊं गा। जिस से मैं सुखी हो सकूं,-ठीक हो सकूं-उसीके लिए चेष्टा करो, क्यों कर सकोगी ?"

"सकूंगी क्यों नहीं ? सकूंगी। जिस देश की स्वजाति पति के लिये प्राण दे सकती है, स्वामी की आज्ञा से हंसते २ जलती हुई चिता में कूद पड़ती है, उस देश में जन्म लेकर अगर मैं इतना भी नहीं कर सकूं तो उसके नाम में कलंक लगेगा।" कहते २ वह निर्मल की छाती पर सिर रख कर उसके मुंह को एक टक देखने लगी। थोड़ी देर के बाद निर्मल के गले में अपनी बाँहें डालकर कहा—"ऐसा सुख सौभाग्य कोई स्वेच्छा से त्याग सकता है। लज्जा ! लज्जा क्या है ? ऐसे सुख के लिये तुम्हें प्रसन्न करने के लिए उसको बलि देने में

कोई दुःख नहीं।" धीरे २ निर्मल सोगया, विमला भी उसकी छाती पर सिर रख कर उसके मुँह को देखने लगी। अजीब दृश्य था, दोनों जने चुप थे दोनों एक दूसरे को देखते थे। निर्मल ने पुकारा "विमल !"

अस्पष्ट स्वर से विमला बोली "क्या ?",

"क्यों सकोगी न ?"

"हाँ सकूंगी।"

अपूर्ण

वैज्ञानिक संसार

(१) नैसर्गिक जीवन के लाभ

यह देखने के लिए कि सूर्य के प्रकाश में तपेदिक अथवा राजयक्ष्मा रोग को दूर करने की कितनी शक्ति है लण्डन की प्रान्तीय कमेटी में गत गरमियों में एक तजरुबा किया जिसमें कि ३५ लड़के ऐसे स्कूल में पढ़ने के लिये जाते रहे जहां कि स्कूल कमरों के भीतर न लगकर बाहर खुली हवा में ही लगता था। उनके शरीर पर बहुत थोड़े और पतले कपड़े होते थे। इस का अभिप्राय यह था कि सूर्य की किरणें उनके शरीर को भली प्रकार छू सकें और उसको गेहुंआं रंग प्रदान कर सकें। कुछ ही सप्ताह पीछे देखा गया कि लड़के अधिक तेज अधिक चालाक, अधिक प्रसन्न दिखलाई देने लगे।

यह एक छोटा सा तजरुबा है परन्तु आधुनिक सभ्यता के कृत्रिम जीवन की बड़ी कड़ी समालोचना है। इस सभ्यता का यह एक विशेष गुण है कि पहिले उल्टे सीधे मार्ग का अवलम्बन कर रोग उत्पन्न किये जावें और फिर उन को दूर करने के उपाय ढूंढे जाव। इसी में मानव बुद्धि की पराकाष्ठा की उन्नति मानी जाती है। नैसर्गिक जीवन व्यतीत करने वाले; थोड़े और ढीले ढाले वस्त्र पहनने वाले; सादा पुष्टिकारक भोजन करने वाले, व्यक्तियों को जंगली अथवा अर्धसभ्य की उपाधि दी जाती है। परन्तु प्रकृति देवी अपने नियमों की अवहेलना करने वालों से बड़ा कड़ा कर वसूल करती है। क्या हमारे भारतीय भाई बहिन इस ओर ध्यान देंगे ?

(२) इटली में दलदलों का सुधार।

संसार के कितने ही स्थानों में बड़े २ दलदल हैं। जिनमें यदि कोई मनुष्य अथवा पशु भूल से घुसे तो उसका जीवित निकलना असम्भव हो जाता है। भूमि का कितना बड़ा क्षेत्रफल बेकार पड़ा रहता है। केवल इतना ही नहीं बल्कि यह दलदल मच्छर, मक्खी इत्यादि को पैदा करने में बड़ी सहायता देते हैं जिससे कि आस पास के स्थान सदा ही भयंकर मलेरिया ज्वर के प्रकोप से पीड़ित रहते हैं। अब इस ओर वैज्ञानिकों का ध्यान गया है। बड़ी २ नालियां खोद कर इन दलदलों में से पानी निकाल दिया जाता है, या यों कहिये कि निचोड़ लिया जाता है और फिर जो गढ़े इत्यादि रह जाते हैं उन्हें भर दिया जाता है। ऐसा करने से यह भूमि बड़ी उपजाऊ बन जाती है, इटली की राजधानी रोम के दक्षिण की ओर की दलदलों में से अब ७० मन प्रति एकड़ के हिसाब चांवल पैदा होते हैं। इस

सुधरी हुई भूमि पर गेहूं, जौ, चुकन्दर, टमाटर, अलफा अलफा घास तथा सन बोया जाता है। टमाटर तो इतने होते हैं कि ५५०० मन प्रतिदिवस का अचार मुरब्बा डाला जाता है। ६००० एकड़ से ऊपर भूमि को जहां पहिले दलदल थे-सुधार लिया गया है।

(३) बिजली द्वारा सोने के वर्क बनाना।

सोने चांदी के वर्कों का यूनानी हकीम बड़ा प्रयोग करते हैं। हमारे पाठक जानते हैं कि यह वर्क चांदी और सोने के पत्तरों को चमड़े के टुकडों के भीतर रख कर और हथौड़े से घण्टों कूट कर बनाये जाते हैं। सोने का वर्क चांदी के वर्क से कहीं पतला होता है। अन्य सब धातुओं की अपेक्षा सोने में यह गुण है कि इस का वर्क और इसकी तार सब से अधिक पतली बनायी जा सकती है। आज तक सारे संसार में सोने के वर्क बनाने का एक ही तरीका था। परन्तु अब इनके बिजली द्वारा बनाने के एक नये तरीके का आविष्कार किया गया है। हमारे बहुत से पाठक जानते होंगे कि पीतल, तांबा, निकल इत्यादि पर बिजली द्वारा सोने अथवा चांदी का गिल्ट चढ़ाया जाता है। इसे ही सोने का पानी चढाना कहते हैं। एक बड़े बर्तन में सोने के लवण का घोल बनाकर उसमें जिस चीज़ पर मुलम्मा करना हो वह लटका दी जाती है और फिर बिजली की बैटरी द्वारा इस घोल में से विद्युत प्रवाहित की जाती है। इस का फल यह होता है कि घोल में से सोना-विशुद्ध सोना निकल कर उस वस्तु पर बैठन लगता है। जितनी अधिक देर उस वस्तु को घोल में लटका कर विद्युत चलायी जायगी उतनी ही मोटी सोने की तह उस चीज़ पर चढ़ जायगी। इसी नियम को काम में लाकर महाशय लटन और डेमल ने सोने के वर्क बनाने की विधि निकाली है। दो घूमने वाले पहियों पर चांदी का बड़ा लम्बा फ़ीता चढ़ा दिया जाता है। यह फीता सोने के घोल वाले वर्तन में डूबा रहता है। इस चांदी के फ़ीते के एक ओर ऐसा मसाला लगा दिया जाता है कि इस ओर सोना न चढ़ सके। अब बैटरी से बिजली चलाई जाती है और जितना मोटा सोने का वर्क बनाना हो उसके अनुसार तेज़ी से फीते वाले पहिये घुमाये जाते हैं। इस से इस फीते के ऊपर एक ओर सोना चढ़ जाता है। अब फिर इस सोना चढे चांदी के फीते को घूमने वाले पहियों द्वारा, इसके नीचे सैल्योलोज़ का एक और फीता लगा कर शोरे के तेज़ाब में से निकाला जाता है। यह इस तेजाब में इस प्रकार डूबता है कि सैल्योलाज का फीता तेज़ाब के भीतर रहे और उसके ऊपर का सोने चांदी का फीता तेज़ाब के ऊपर इस प्रकार तैरता रहे कि सोना ऊपर की ओर हो और चांदी नीचे की ओर। तेज़ाब चांदी को खा लेता है और अब सोने का फीते जैसा वर्क सैल्योलोज़ के फीते पर बैठ जाता है। अब पहियों को घुमा कर इस सोने और सैल्यलोज के फीते का पानी में से निकाला जाता है जिससे तेज़ाब भी धुल जाता है और सोने का वर्क पानी पर तैरने लगता है, इसके पश्चात् इसे अलकोहल (मदिरा सार) में धोकर कोयले के पहियों के सहारे लपेट लिया जाता है और गरम हवा से उड़ाकर कागज पर रख दिया जाता है।

४—रबड़ की सड़कें

हम ज्योति के किसी पिछले अंक में रबड़ के नवीन उपयोगों के विषय में कुछ लिख चुके हैं। उन में से एक सड़कों पर फर्श लगाना है। जो बात पहिले कल्पना में

ही थी वह अब वास्तविक रूप से कार्य में परिणत हो गयी है। अमरीका के सिन सिनाटी नगर के उत्तर भाग की ओर एक बड़ा भारी खुलने और बन्द होने वाला पुल है। इस पुल पर से समस्त नगर से अधिक गाड़ियां और मोटरें निकलती हैं। अनुमान किया गया है कि प्रति घण्टा एक सहस्र गाड़ी आती और एक सहस्र ही जाती हैं। इस पुल पर रबड़ का फर्श लगाया गया है। रबड़ की "ईंटें" १२ इंच लम्बी, ६ इन्च चौड़ी और १ इन्च मोटी हैं। इनको सड़क के साथ जोड़ना सुगम काम नहीं। रबड़ प्रायः ऊपर को उठ आता है। इन ईंटों का एक सिरा दोहरा बनाया जाता है। इस की दोनों परत में दूसरी ईंट का सिरा डाल कर ऊपर से कीलों से ठोक दिया जाता है। जहां पर नीचे लकड़ी हो वहां तो यह विधि काम में आ सकती है, परन्तु पत्थर अथवा सीमेन्ट की सड़क पर इस प्रकार रबड़ को ठोका नहीं जा सक्ता। ऐसी सड़कोंपर पहिले रबड़ मिला हुआ सीमैन्ट बिछा दिया जाता है और फिर ऊपर से रबड़ की ईंटें बिठा दी जाती हैं। घोड़े के पांव की तेज से तेज नाली अथवा भारी से भारी लोहे के पहिये इस फर्श पर ज़रा सी लकीर का चिन्ह नहीं बना सकते।

यह फर्श लग भी बड़ी जल्दी जाता है। आठ आदमी एक घंटा काम करके ६० वर्ग फुट फर्श लगा सके हैं।

घोड़ों और गाड़ियों के इस फर्श पर चलने से जो बात सब से पहिले ध्यान में आती है वह किसी प्रकार के शब्द का न होना है। यह बात जतलाती है कि हस्पतालों अथवा बड़े २ दफ्तरों और अन्य विशेष २ इमारतों के पास वाली सड़कों पर रबड़ का लगाया जाना कितना लाभ दायक हो सक्ता है।

५—वृद्ध का युवा बनना

दुर्बल, रोगी और वृद्ध कौन है जो पुनः यौवन का आनन्द नहीं लेना चाहता? परन्तु क्या यह सम्भव है? कितने ही वैद्य और डाक्टर कह उठेंगे कि यदि उनका इलाज किया जाय तो शरीर में पुनः बल और फुर्ती का संचार हो सक्ता है। परन्तु बहुधा देखा गया है कि यह इलाज चिर स्थायी नहीं हो सक्ता और फिर एक ७० वर्ष के बूढ़े के लिये, जिसके हाथ पैर ढीले पड़ गये हों, शारीरिक बल लुप्तप्राय हो गया हो और मानसिक शक्तियां क्षीण हो गई हों, ऐसी अवस्था का लाना जिसमें कि वह पुनः यौवन सुख का आनन्द ले सकें, अपने शरीर और दिमाग से बल फुर्ती और उत्साह के काम कर सकें, साधारण वैद्य और डाक्टर की शक्ति से बाहर है। परन्तु पैरिस के प्रसिद्ध डाक्टर वारोनाफ का दावा है कि वह यह सब कुछ कर सकता है।

यह किस प्रकार सम्भव है। आज हम यही रोचक कथा अपने पाठकों को सुनाते हैं। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के शरीर में कुछ गिल्टियां होती हैं। इन में से कितनी का तो नाड़ियों द्वारा शरीर के अन्य भागों से सम्बन्ध होता है और कितनी ही ऐसी होती हैं जिन में कोई भी नस नाड़ी का मेल दिखलाई नहीं देता। यह नाड़ी विहीन गिल्टियां शारीरिक क्रियाओं में एक बड़ा आवश्यक स्थान रखती हैं, यह अब डाक्टरों को शनैः २ पता लग रहा है। इन गिल्टियों में रिस २ कर कई प्रकार के रस निकलते रहते हैं जो कि मनुष्य प्राणियोंके शरीरमें पकत्र हुये विषयुक्त द्रव्य का नाश करते रहते हैं और अन्य प्रकार से भी शारीरिक क्रियाओं के सहायक होते हैं। रोग अथवा वृद्धावस्था के कारण इन गिल्टियों की क्रिया बन्द हो जाती है।

अथवा बहुत कम हो जाती है। यही एक कारण है कि प्राणियों की शक्तियां क्षीण हो जाती हैं। अब तक पूर्वी अथवा पश्चिमी वैद्यक—शास्त्र के ज्ञानियों को यह पता नहीं लगा कि किस प्रकार इस क्रिया को पुनः उत्तेजित किया जा सकता है। औषधि द्वारा यह काम नहीं हो सकता। तब फिर? यदि किसी प्रकार यह गिल्टियां बदली जा सकें और इनके स्थान में नवीन गिल्टियां लग सकें। हमारे पाठकों के मन में यह स्वभाविक प्रश्न उठ सका है कि यह नवीन गिल्टियां कहां से आयेंगी? डाक्टर वारोनाफ उत्तर देते हैं कि बन्दरों से। किंचित् हमारे पाठक इस उत्तर से चौंक उठें। परन्तु इस में चौंकने की कोई बात नहीं। डाक्टर महोदय जी कहते हैं उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया है। आज तीन वर्ष से अधिक हो गये कि गिल्टी जोड़नेके समाचारों ने संसार में हलचल पैदा करदी थी। इस समय में नवजीवन प्रदान सरजरी का निर्माता बराबर अपने काम में लगा रहा और उसे इस में कहां तक सफलता हुई यह उसने अभी २ एक प्रेस के रिपोर्टर से बात चीत क ते समय बतलाया है।

उन्होंने कहा कि मेरी चिकित्सा के के सम्बन्ध में कुछ अशुद्ध बातें फैल गयी हैं जिनका मैं अन्त करना चाहता हूं और मैं उत्सुक हूं कि बन्दर की गिल्टियों को मनुष्य के शरीर में पेवन्द लगाने में मुझे जो सफलता हुई है उसको संसार को बतला सकूं।

यह प्रश्न करने पर कि किस अभिप्राय से पहिले पहल उसने यह विचित्र प्रकार का आप्रेशन आरम्भ किया था। यह उत्तर दिया कि क्षीण स्वास्थ का पुनः सुधार ही एक मात्र मेरा ध्येय था। मेरी इच्छा थी कि शक्ति और स्फूर्ती को पुनः ला सकूं अपने रोगी की चक्षु की कमज़ोरी, पट्ठों की दुर्बलता; स्मरण—शक्ति की कमी और उसकी अन्य सब ही मानसिक निर्बलताओं को दूर कर सकूं।

मुझे अपने कार्य में जो सफलता हुई है उसके भरोसे मैं कह सकता हूं कि मुझे अपने विचारों की सत्यता और अपने ज़र्राही के तरीकों की यथार्थता में किंचित्र मात्र भी सन्देह नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे कभी भी असफलता नहीं हुई; परन्तु इस असफलता का कारण मुझे सदा पता लगता रहा है। मेरा दावा है--और इसको कोई भी झूठा सिद्ध नहीं कर सकता कि मेरे आप्रेशन से पुनः यौवन का संचार हो सक्ता है। केवल एक ही शर्त है कि रोगी के अंगों में रोग के कारण कोई परिवर्तन न होगया हो।"

डाक्टर वारोनाफ ने बतलाया कि उसके पास इतने रोगी आते हैं कि वह सब की प्रार्थनाओं को पूरा करने में असमर्थ है। एक वर्ष हुआ उसने लन्डन में अंग्रेज़ी सरजनों की सभा में अपने तरीकों का परिचय दिया था और उस समय से लेकर आजतक उसने कितने ही अंग्रेजों पर सफलता पूर्वक आप्रेशन किया है। और अब उसकी विधि द्वारा आप्रेशन करने वाले कितने ही उसके अनुयायी हो गये हैं।

यह पूछने पर कि कौन कौन लोग इसके पास इलाज के लिये आते हैं यह उत्तर मिला कि, लेखक नाटककार, कवि, सम्पादक, शिक्षक इत्यादि वह मनुष्य जिन की आजीवका का भार उनके मस्तककी शुद्ध क्रियाओं पर निर्भर है। उन्होंने बतलाया कि इन में से एक की अवस्था इतनी क्षीण हो गई थी कि वह एक पंक्ति भी लिखने में असमर्थ था। डाक्टर

वारोनाफ ने कुछ सन्देह से ही उसका आप्रेशन किया । इसके ६ मास ही पीछे इस मृतप्राय व्यक्ति में इतनी शक्ति आ-गयी कि उसने एक नाटक लिखा जिससे कि उसको आश्चर्यजनक आमदनी हुई ।

उन्होंने एक और विचित्र व्यक्ति का वर्णन किया । वह एक स्कूल मास्टर था और ६९ वर्ष की आयु में वह शिक्षक धर्म पालने में सर्वथा असमर्थ हो गया । यदि वह एक वर्ष और—७० वर्ष की आयु तक—अपना काम करले तो उसे पैन्सन मिल सकती थी अन्यथा नहीं । दो वर्ष हुये कि उसने आप्रे-शन करवाया । इससे न केवल वह अपने कार्य को पैन्सन के समय तक ही करने में समर्थ हो गया, वरन् उसमें इतनी मानसिक शक्ति आ गयी कि वह ७० वर्ष की आयु में पैन्शन लेने के पश्चात एक सफल वकील का काम करने लगा ।

डाक्टर वारोनाफ के आप्रेशन के लिये सब गिल्टियां बन्दरों से आती हैं अतः पशु प्रेमीजन इन के भाग्य के लिये बड़े उत्सुक हैं । उन से पूंछा गया कि क्या गिल्टी निकालने के पश्चात् बन्दर झटपट मर जाते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि कदापि नहीं । यह ठीक है कि इसके पश्चात् वह शीघ्र काबू में आजाते हैं और उनकी चाला-की और स्फुर्ती भी कुछ कम हो जाती है "मेरे पास इस प्रकार के बहुत से बन्दर हैं परन्तु सब का स्वाथ्य खूब बढ़िया है ।"

———

कुसुमोद्यान

वास्तविक विचार्य विषय

लेखक—श्री बर्नर्ड हाऊटन

"प्रजा असन्तुष्ट है अतः उसके ये कोई युद्ध छेड़ देना चाहिये" यह वचन रूसकी महारानी कैथेरायिन ने कहे थे। अंग्रेजी शासकवर्ग की भी यही नीति है । जब असन्तोष गहरा और तीव्र हो जाता है, जब जन साधारण शासन के जूये के नीचे तंग आजायें और शान्त रहें, तब इस शासक-वर्ग की प्रतिनिधि सरकार एक कमेटी को नियुक्त कर देती है । यह अशान्ति को दूर करने के लिये कोई कार्य करना नहीं चाहती, यदि सम्भव हो तो यह अवस्था को वैसी ही छोड़ देना चाहती है जैसी कि वह है । जो सुख भोग रहे हैं उनके लिये संसार आनन्दमय है । परन्तु—और नहीं तो समय टालने के ही लिये—कुछ करना ही पड़ेगा । कमेटी की नियुक्ति से न केवल समय ही टल जाता है वरन् इससे सरकार को प्रजा के क्रोध की सीमा और उसके कारणों का भी ठीक २ ज्ञान हो जाता है और इसके निवारण की विधि—जिसे सर-कार सौजन्यता से 'उपाय' का नाम देती है परन्तु जिसे साधारण भाषा में इस क्रोध के शान्त करने के लिये न्यून से न्यून शक्ति-सुख-त्याग कहना ही उपयुक्त होगा—का

भी निश्चय कर सकती है। प्रजा भी इस कमेटी की नियुक्ति का स्वागत करती है। क्योंकि यह प्रजा को ऐसा स्थान दे देती है जहां जाकर वह अपने कष्टों का बखान कर सके, अपने पक्ष के समर्थन में घटनाओं और दलीलों को पेश कर सकें और बतला सकें कि वह क्या चाहती हैं। इस प्रकार कमेटी के सिर पर शासक और शासित दोनों का आशीर्वाद रहता है। यह दो विपक्षी सेनाओं के बीच संधि प्रसंग की सूचक है।

सब से अधिक पक्षपातयुक्त संस्था

परन्तु वह सज्जन अपने को धोखा देते हैं जिनका यह विश्वास है कि सरकार एक निष्पक्ष न्यायाधीश की भांति उस शहादत पर कार्य्य करेगी जो कि गवाहों ने कमेटी के सामने दी है। कोई भी सरकार निष्पक्ष नहीं होती, वरन इस के विपरीत यह संसार में सब से अधिक पक्षपात में फंसी हुई संस्था होती है। चाहे यह कुछ भी कहे परन्तु यह सदा उनके हित का ही कार्य करती है जिनकी यह प्रतिनिधि होती है अथवा शासक वर्ग गवाहों की गवाही और कमेटी की रिपोर्ट को पढ़ने के पश्चात या तो यह आलमारियों में बन्द कर देती है जैसा कि अंगरेजी सरकार ने कोयले की कानों के विषय में सैंकी कमीशन की रिपोर्ट को किया था, या बड़े आडम्बर युक्त शब्दों में एक तुच्छ से सुधार की घोषणा करती है जैसा कि लार्ड कर्जन ने शिक्षा—सम्बन्धी-भारतीय कमेटी की रिपोर्ट पर किया था।

बहुत से मनुष्यों को जो कमेटियों में विश्वास होता है उसका बड़ा भारी कारण यह है कि उनको शासकवर्ग में सरल शिशु तुल्य विश्वास होता है. वह भूल जाते हैं कि सरकार ने कितनी बार प्रजा को धोखा दिया है, वह लच्छेदार परन्तु सारहीन शब्दों को 'खुलेमुंह से सुनते हैं, वह सरकार के प्रत्येक चालाकी से भरे हुए शब्द से किंकर्तव्यविमूढ़ की भांति हो जाते हैं। उनका "विश्वास इतना प्रबल है कि वह दस सहस्र धोखेबाजों से धोखा खाकर भी एक बालभर नहीं हिलता।"

झूठ का व्यापार।

मनुष्य स्वभाव की इस विश्वासशीलता पर प्रत्येक सरकार अपना वाणज व्यापार करती है। उदाहरण के लिये प्रत्येक सरकारने गत महा युद्ध के समय झूठ बोला और खुले खजाने झूठ बोला। अंगरेज़ी सरकार इस में किसी और से कम नहीं रही। उस समय जब कि जोश बढ़ा हुआ था और भय की आशंका थी प्रजा का इन मिथ्या वाक्यों पर विश्वास कर लेना कुछ समझ में आ जाता है परन्तु आज कल शांति के समय में नहीं। परन्तु अब भी लाखों मनुष्य ऐसी बातों को—जो भली प्रकार मिथ्या सिद्ध हो चुकी हैं—सत्य मानते हैं जैसा कि जर्मनी ने ही लड़ाई की साज़िश की; इंग्लैण्ड युद्ध में इसी लिये सम्मलित हुआ कि बेल्जियम पर धावा किया गया था; अथवा यह अन्ध विश्वास कितना आश्चर्यजनक है—कि मित्रदल ने केवल प्रजा तन्त्र की रक्षा के ही लिये युद्ध किया। मिस्टर ऐस्क्विथ और लायडजार्ज सरीखे मनुष्य-जिनके विषय में यह पता है कि उन्होंने महत्व के समय में जान बूझ कर झूठ बोला—पब्लिक व्याख्यानों में लानतें फटकार बतलाये जाने के स्थान में आज भी अंगरेजी प्रजा की बड़ी भारी अंश के विश्वासपात्र और प्रतिष्ठाप्राप्त व्यक्ति हैं। अतः इस में कोई आश्चर्य नहीं यदि कमेटी के मामले में सरकार जनता में अपना पुराने ढर्रे के सर्वथा विपरीत-यह विश्वास बिठला सके कि इस बार वह न्याय से पक्षपात रहित हो काम करेगी।

प्रश्न हो सकता है कि यदि गवाहियों के बल पर नहीं तो किस प्रकार सरकार किसी विषय का—जिसका उसकी अपनी शक्ति से सम्बन्ध हो--जैसा कि आजकल भारत में है, निर्णय करती है ? हमें इतिहास से इसका उत्तर मिलता है। अपने विपक्षियों की शक्ति को जांच कर ही अपने चलन को ढालती है और निश्चय करती है कि यदि दबना ही पड़े तो कहां तक दबना चाहिये। यदि जनता एकमत और प्रबल है तो सुधार उदार दृष्टि से दिये जाते हैं, यहां तक कि आवश्यकता पड़ने पर शासक वृन्द अपना सिंहासन तक छोड़ने को तय्यार हो जाते हैं। यदि इसके विपरीत प्रजा अथवा उसके नेता सोचविचार में पड़ जायँ और कांपने लगें तो उन्हें अपने स्वामी की थाली के बचे खुचे जूठे टुकड़े ही मिलेंगे। यह न्याय का प्रश्न नहीं है। यह तो समय को टालने का प्रश्न है। यद्यपि सरकार न्यायधीश के वस्त्र पहन कर न्याय की परिभाषा में बात चीत करती है परन्तु इसके कृत्य उस फौजी जनरल के समान होते हैं जिन के सन्मुख शत्रु खड़ा हो। पक्ष और विपक्ष पर विचार करने के बहाने यह बड़ी सावधानी से जनता की शक्ति को नापती रहती है। यह उन की संख्या और उनकी कार्यप्रणाली को जांचती है, उसके नेताओं के स्वभाव को देखती है, आपस में उनमें एकता है अथवा मतभेद। उनकी दलबन्दी और साधन कैसे हैं ? सब से अधिक मत वाली कौनसी पार्टी है ? अथवा उन सब बातों की जांच करती है जो कि एक सुयोग्य सेनापति अपने शत्रु की सेना में देखता है। क्या हिन्दू मुसलमानों में आपस में दंगे होते हैं ? जातीय महासभा में एकता है अथवा फूट ? राजनैतिक भारत किस के पीछे चलता है महात्मा गांधी के अथवा स्वराज्य दल के ? उन की कार्यशैली क्या है ? क्या जनता के विचार प्रतिदिन सरकार के विरुद्ध बढ़ते जा रहे हैं। इस प्रकार के प्रश्न शिमले के शासक देवता अपने से पूंछते हैं और इस पर उस समय तक विचार करते रहते हैं जब तक कमेटी गवाहियों के सुनने और अपनी न्यूनाधिक एकमत रिपोर्ट लिखने में लगाती है। जब प्रजा कमेटी के सन्मुख पेश की गयी घटनाओं और गवाहियों की प्रशंसा करती है सरकार प्रजा की शक्ति का अनुमान करती रहती है और सोचती रहती है कि यदि उसे पीछे हटना ही पड़ा तो कहां तक हटना चाहिये। वास्तविक निर्णायक बात प्रजा की शक्ति है। यही इस समस्त मामले की जड़ है।

२ भारत के लिये चीन का प्रेम

हमारे कवि सम्राट ठाकुर रवीन्द्रनाथजी के चीन देश में पधारने पर वहां के एक प्रसिद्ध तत्ववेत्ता दार्शनिक डा० टियांग ची. चाऊ ने उन्हें एक बड़ा उत्तम मानपत्र प्रदान करते समय कहा कि:—

"हमारे चीनी अनुभव संसार में भारतीय विचारों का इतना घनिष्ट मेल हो गया है कि हम उसे अलग नहीं कर सकते। उसी के सहारे हम लोगों ने अपनी शक्तियों को उन्नत किया है और शुभ फलों की प्राप्ति की है। दुर्भाग्य से हम चीनी और भारतीय लगभग एक सहस्र वर्ष से जुदा किये हुये हैं। और दोनों ने पृथक् २ अपनी उन्नति का मार्ग अनुसरण किया है। इन जुदाई के दिनों में हम पर आपत्तियां भी आई हैं और हमने क्या २ दुःख नहीं सहे ? हमें धमकाया गया, चिढ़ाया गया, पैरों के तले कुचला गया और भी सभी तरह के संकट पहुंचाये गये यहां तक कि न केवल हम लोग नफ़रत की निगाह से देखे गये, वरन् हम ने भी अपने

आप अपना आत्माभिमान खो दिया। लेकिन हमें मनुष्य के पुरुषार्थ के अमृत होने में विश्वास है और जो बीज हमने बोया है वह समय पकने पर फलीभूत होगा ही।...... भारतीय और चीनी दोनों सभ्यतायें प्राचीन गाथाओं से भरी होते २ बुढ़ागई हैं तथापि मैं अनुभव करता हूं कि उनमें हमेशः रहने वाले युवापन का सा बल है जो कि आज भारत में टैगोर और गांधी दो व्यक्तियों के रूप में प्रगट हुआ है।"

आगे चल कर वही महाशय कहते हैं:—

"एक हज़ार वर्ष की जुदाई के बाद—जिस समय भी हम दोनों एक दूसरे के लिये प्रेम के भाव रहते रहे हैं:—यह हमारा बड़ा भाई भारत पुनः हमारे पास भ्रातृभाव से उत्तेजित होकर आया है। हम दोनों के मुखों पर दुःखों की निशानियां हैं। हमारे बाल बुढ़ापे से पक गये हैं, हम अचम्भे में आकर देख रहे हैं। मानों अभी सोते हुए उठे हों! परन्तु जब देखते हैं तो हमारे छोटेपन की क्या बातें और क्या यादगारियां हमारे मनों में उठती हैं? हा! उन दिनों की याद आती है जब कि हम दोनों एक दूसरे के सुख दुख के संगी हुआ करते थे। अब जो हमें पुनः परस्पर आलिंगन करने का मौका हाथ लग गया है तो अब हम एक दूसरे से जुदा नहीं होने देंगे।"

(यंगइंडिया)

३ सूत का मैच

प्रधान का पारितोषक

महात्मा गांधी 'यंगइंडिया' में लिखते हैं:—

"आंध्रदेश, बंगाल और गुजरात में इस पारितोषिक को ले लेने की प्रबल स्पर्धा हो रही है। केवल एक महीना ही इनाम जीतने के लिये रह गया है। हमें आशा है कि एक न एक प्रान्त इनाम ले ही जायगा। मैं अपनी इस आशा को छिपाना नहीं चाहता कि गुजरात बहुत दृढ़ है अतः जल्दी हारने वाली नहीं है। लेकिन हर एक को शर्तें तो समझ लेनी चाहियें। जो सूत अवधि बीतने पर आयेगा वह इस स्पर्धा में नहीं शामिल किया जायगा और न ही कोई पैकेट जिसमें दो हजार गज से कम एकसाँ कते हुए सूत का गट्ठर होगा। मौलाना मुहम्मदअली को बहुत भरोसा है कि गुजरात हार जायगा और आंध्र देश या बंगाल इनाम ले जायगा। उन को गुजरातसे द्वेष नहीं है परन्तु वह चाहते हैं कि उनका इनाम कोई ले। और उनका विचार है कि गुजरातको इस स्पर्धामें हारनेसे हानि नहीं है। गुजरात की हार भी जीत होगी यदि इस स्पर्धा का नतीजा यह हो कि कातने वालों की खूब संख्या बढ़े। वह यह नहीं चाहते कि इत्तफाक से किसी प्रान्त की जीत हो जावे। वरन विजय मेहनत और इमानदारी से प्राप्त करनी चाहिये।



हमारी मंजूषा



गीतानुशीलन--सम्पादक श्री गणेश चन्द्र प्रामाणिक प्रकाशक राष्ट्रीय हिंदी मन्दिर जबलपुर। वार्षिक मूल्य २) एक प्रति के ॥-)

हमें इस त्रैमासिक पत्र का तीसरा खण्ड समालोचना के लिये प्राप्त हुआ है। पहिले दो खण्ड कोई ३॥ वर्ष के लगभग हुआ प्रकाशित हुए थे। हमने वह नहीं देखे।

कई कारणों से इस बीच में यह काम बन्द करना पड़ा। अब दूसरे खण्ड के आगे से यह पुनः आरम्भ होता है। इस खण्ड में ७,८ और ६ (अधूरा) यह तीन परिच्छेद हैं। पहिले ५ परिच्छेदों में क्या था यह हम नहीं जानते। इन परिच्छेदों में भारतीय आर्य जाति में समाज—सेवा के ज्ञान का लोप; समाज-सेवा ज्ञान के लोप से केवल पारलौकिक मंगल ही धर्म का पूर्ण रूप माना गया है, तथा पांच हज़ार वर्ष पूर्व के भारतीय आर्यों के धर्म विचार, इन तीन विषयों पर विवेचनात्मक दृष्टिसे विचार किया गया है। विचार करते समय तत्कालीन इतिहास, शास्त्रों और वेदों का आश्रय लिया गया है। यद्यपि हम लेखक के सब विचारों से सहमत नहीं तो भी यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पुस्तक एक विस्तृत पठन पाठन, मनन और परिश्रम का फल है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी यह गीता की भूमिका मात्र है। विचार की शैली तुलनात्मक और उदार है। गीता प्रेमियों के लिये बड़े काम की पुस्तक है प्रकाशक विश्वास दिलाते हैं कि अब से इसके प्रति वर्ष ४ अंक बराबर निकलते रहेंगे।

१. स्वदेश का विजयांक—गोरखपुर का स्वदेश हिंदी का एक पुराना साप्ताहिक है। अपने स्वामी तथा सम्पादक श्रीयुत दशरथप्रसादजी द्विवेदीकी शुद्ध मनोभावनाओं का ही प्रतिबिम्ब रूप यह पत्र है। अन्यथा आज कल की उपयोगिता की दृष्टि से यह बहुत पीछे है यह हर्षकी बात है कि अबकी बार इस पुराने मातृभाषा सेवक का भी विशेषांक निकला है। इस अंक के सम्पादक हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्री पंडित वेचन शर्मा जी उग्र हैं। इसमें कुल मिला कर ४८ पृष्ठ ३६ लेख और कविता हैं। अंक अच्छा निकला है। कितने ही लेख विचारणीय और पठनीय हैं। श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी का कांग्रेस में श्रीमती बीसेन्ट का पुनः प्रवेश, श्री प्रेमचन्द जी का रामायण काल की सामाजिक अवस्था तथा श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी का हिंदू समाज की स्थिति, शीर्षक तथा अन्य भी कई लेख पढ़ने योग्य हैं। ३ पृष्ठ कार्टून भी हैं जो कि बढ़ियानहीं बन सके।

इस अंक के लिये हम सम्पादक और संचालक महोदय को बधाई देते हैं। क्या हम आशा रखें कि यह स्वदेश की काया पलट का कारण है।

२. कन्या शिक्षा—लेखक पं० चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-भवन, १८१ हरिसनरोड, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या ६३ मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दी पुस्तक माला' का बारहवां पुष्प है। इस में लेखक महोदय ने एक कन्या के जीवन में जिन २ व्यावहारिक बातों की अधिक आवश्यक्ता होती है उन २ उपदेशों को रोचक, सरल और स्वाभाविक रूप से जीवन में घटा कर कहानी रूप में परिणत किया है। यों तो कन्याओं की शिक्षा के मोटे से मोटे पोथे भरे पड़े हैं, किन्तु इतनी सी पुस्तिका में जो सार कूट २ भर दिया गया है वह सच्ची शिक्षा पूति कन्या को अत्यन्त लाभकारी एवं प्रयोजनीय है। गृहाश्रम में प्रवेश कर गृहस्थी को सुचारुरूप से चला सक इस प्रकार की नौ शिक्षाएं चित्ताकर्षक शैली से इस में सन्निविष्ट की हैं। शास्त्री जी को ऐसी उपयोगी पुस्तक रचने के लिये धन्यवाद है। यदि मूल्य सस्ता रखते तो और भी अच्छा होता।

३. दर्पचूर्ण—अनुवादक म० भगवती प्रसाद खेतान प्रकाशक—कुंजलाल कानो-

ड़िया, १० । १ । १ सैयद सालीलेन, कलकत्ता । पृष्ठ संख्या ५६ । मूल्य ।)

यह एक भावपूर्ण कहानी है जिस में स्त्रियों के दो स्वरूप का वर्णन है ?

एक ओर इन्दुमतिकी शिक्षा आधुनिक शिक्षा प्रणालीके दुष्परिणामों को दर्शाती हुई उस पर कुठाराघात करती है । दूसरी ओर सरला विमलाका शान्तमय सादाजीवन उचित शिक्षा का उदाहरण है । जिसमें पति, भ्राता, स्वजन, सभीका उपयुक्त मान, सम्मान, धर्म प्रीति पालन के सजीव उदाहरण हैं । दोनों में ही वाद विवाद रहता है किंतु अन्त में असहिष्णुता पर सन्तोष; अहंकार पर क्षमा, अधिकार पर प्रेम की विजय होती है । इससे स्त्री पुरुष दोनों ही को उचित शिक्षा मिल सकती है । पुस्तक रोचक है ।

४. विधवा — लेखक पं० राजाराम शुक्ल । प्रकाशिका श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा, सम्पादिका—"स्त्री दर्पण" कानपूर पृष्ठ संख्या ८० । मूल्य ॥)

प्रायः २० पृष्ठ तो अवतरणिका, प्रस्तावना इत्यादि के हैं बाकीमें १५ कवितायें अलग २ ।

विधवाओं की करुणाजनक भिन्न दशाओं का वर्णन है 'विधवाओं का वेद', उनका विवेक, व्रत, विजय इत्यादि उत्तम २ पद्य हैं यदि ध्यान पूर्वक पढ़ें तो उन्हें कई अंशों में लाभ पहुंच सकता है ।

५ गुप्त सन्देश दूसरा भाग—लेखक डाक्टर युद्धवीर सिंह । प्रकाशक अपर इन्डिया होमियोपैथिक वर्कस, पीपल महादेव—देहली पृष्ठ संख्या १०८ । मूल्य ॥)

डाक्टर महोदय से हमारे पाठक कौन नहीं परिचित ! गुप्त सन्देश के द्वितीय भाग का हम हृदय से स्वागत करते हैं । पहला भाग दो वर्ष हुए प्रस्तुत हुआ था अब यह भाग सचित्र सन्मुख है । इसमें ११ चित्र हैं ।

हम लोगों में आजकल इस प्रकार का ज्ञान स्त्री पुरुषोंको प्रदान करनेकी प्रथा ही नहीं है । किसी भी गृहाश्रम में प्रवेश करने वाली कन्या को उसके भावी जीवन की सब से आवश्यक शिक्षा से वंचित करना उसको बिना अपराध शूली पर लटकाना है । गर्भ धारण के पूर्व उसका विज्ञान होना कितना उपयोगी है, यह आजकल के सभी धुरंधर विद्वानोंका मत है । अतः माता बननेके पूर्व उसकी परिस्थिति का ज्ञान होना अत्यन्तावश्यक है । आर्य्य भाषा में इस प्रकार की शिक्षा के लिये कोई साधन नहीं है उसी क्षति की पूर्ति के लिये नववधुओं और नवपरिणीता कन्याओं को सजीव करने के लिए भावी सन्तानों को माताओं की अयोग्यता से मृत्यु के ग्राससे बचाने के लिए, इस पुस्तक का जन्म हुआ है । इस में स्थान २ पर उपयोगी चित्र भी हैं । जिससे बीज वपन से आरम्भ कर फलरूप का तक विधान पूर्णतया समझ में आजाय । प्रत्येक कन्या की शिक्षापूर्ति के पहिले उच्चकक्षाओं में इस पुस्तक का अध्ययन कराना अत्यावश्यक है ।

स्त्रियों की ओर से हम डाक्टर जी के इस सत् प्रयास के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं ।

६ श्रीकृष्ण उपदेश—लेखक पं० जगदीशनारायण तिवारी (हिमन्तपुर, बलिया) प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भवन, १८१, हरिसन रोड, कलकत्ता । पृष्ठ संख्या १२० । मूल्य ॥)

प्रस्तुत पुस्तक भगवद्गीता का सरल पद्यों में अनुवाद है । लेखक ने भारत भारती की भाँति सुबोध शब्दों में प्रत्येक श्लोक को उसी स्थान पर रूपान्तर करके रख दिया

है। पद्य अच्छे याद करने वाले हैं। संस्कृत न जानने वाले इसको अच्छी तरह मनन कर सकते हैं। आशा है गीता के पाठी लोग इसका स्वागत करेंगे।

वनिता विनोद

स्त्री जगत्

श्रीमती एलेक्ज़ेन्डरा डेविड नील एक फ्रान्सीसी महिला हैं। आप सब से पहिली स्त्री हैं जिसने कि तिब्बत को पार किया है। आप चीन से लासा और दारजिलिंग होती हुई कलकत्ता पहुंचीं और वहाँ के बौद्धविहार में तिब्बत पर व्याख्यान दिया। आप पाली और संस्कृत में बड़ी योग्यता रखती हैं।

—०—

आजकल ट्रावन्कोर रियासत का शासन का भार बड़ी महारानी के कन्धों पर है। आप के शासन सम्भालने पर रियासत के पोलिटिकल एजेन्ट म० काटन आप से भेंट करने गये। परन्तु अंग्रेज़ी शिष्टाचार के नियमानुसार इसके बदले में महारानी म० काटन के घर इनसे मिलने नहीं गयीं। इस पर एजेन्ट साहब ने महारानी के पास अपनी शिकायत की। महारानी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। इन्होंने कहा कि महाशय काटन अविवाहित हैं अतः वह उनके घर पर उनसे भेंट करने जाना उचित नहीं समझतीं।

—०—

लन्डन के सेन्ट मेरी हस्पताल के अध्यक्षों के सामने वहां के पुरुष विद्यार्थियों ने एक अर्ज़ी भेजी है कि अब से स्त्रियों को इस हस्पताल में पुरुषों के साथ शिक्षा न दी जाय, अन्यथा विश्वविद्यालयों से उपाधि प्राप्त कोई पुरुष वहां शिक्षा ग्रहण करने नहीं आयेंगे। यह उन्होंने इस लिये नहीं नहीं किया कि वह स्त्री पुरुषों के साथ मिल कर पढ़ने की प्रथा को आचार की दृष्टि से चिंताजनक समझते हैं वरन् यह इस लिये किया गया है कि वह स्त्रियों को पुरुषों से न्यून समझते हैं।

—०—

२१ अक्टूबर को पूना में मुसलमान महिलाओं की एक कांग्रेस हुई। इसमें बेगम नफीस दुलहन साहिबा ने प्रधाना का पद ग्रहण किया। आपने अपने भाषण में कहा कि सामाजिक सुधारों की बड़ी आवश्यकता है, इसके लिये स्त्रियों का शिक्षित होना परमावश्यक है। परदा इसलाम धर्म का अंग है अतः उसे छोड़ना अधर्म होगा।

श्रीमती मौलवी बेगम ने कहा कि हमें टर्की और मिश्र की स्त्री समाज से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। वहां वह कितने क्रांतिकारी परिवर्तन कर रहा है। हमें अपनी हिंदू बहिनों और मिश्र की सहधर्मिणियों के पदचिन्हों पर चल कर लाभ उठाना चाहिये।

इससे प्रतीत होता है कि अब भारतीय मुसलिम महिलायें भी परदे से तंग आगई हैं। परन्तु भारत में इसलाम एक बड़ा संकुचित धर्म है

अतः यहां किसी भी सुधार की बहुत कम आशा है।

—०—

मैसूर विश्वविद्यालय के गत कान्वोकेशन के अवसर पर डाक्टर वैसेन्ट ने नवस्नातकों को अभिभाषण दिया। भारत में मैसूर विश्वविद्यालय ही पहिली संस्था है जिसने कि इस सम्भाषण के लिये किसी स्त्री को आमन्त्रित किया हो, और श्रीमती ऐनी वैसेन्ट पहिली महिला हैं जिन्हें यह मान प्राप्त हुआ है। श्रीमती का सम्भाषण भी इस अवसर पर दिये गये भाषणोंसे भिन्न प्रकार का था। आपने पुराने वैदिक समय में बौद्धकाल और मुसलिम राज्यके दिनोंकी शिक्षा के मुख्य अंगों पर प्रकाश डालते हुए तक्षशिला और नालिन्दा का वर्णन किया, फिर आपने बतलाया कि किस प्रकार अंग्रेज़ी राज्यकाल में हमारी देशी शिक्षा प्रणाली का अन्त हुआ, और किस प्रकार अब मातृभाषा द्वारा शिक्षा ही हमें उन्नत कर सकती है। सेवा-प्राणीमात्र की सेवा ही शिक्षा का ध्येय है।

—०—

ग्रीस में स्त्रियों की जातीय सभा ने अपने सदस्यों से स्त्रियों के सार्वजनिक कार्य करने के विषय में सम्मति मांगी थी। ८० प्रति शतक ने यही सम्मति दी है कि अभी स्त्रियों को केवल म्यूनिसिपल कमेटियों की ही सदस्या बनना चाहिये।

—०—

एम० बी०, बी० एस० परीक्षा इंग्लैन्ड की सब से बड़ी डाक्टरी परीक्षा है। इस वर्ष इस में ७९ स्त्रियाँ बैठी थीं जिन में से ३४ पास हुईं। एक स्त्री ने स्वर्ण पदक प्राप्त किया है।

—०—

मैकसिको (अमरीका) में सैन्टाफीक गवर्नर की अनुपस्थिति में उस की मन्त्रिणी श्रीमती सोलिडाड चेकन गवर्नर का काम कर रही हैं। यह अमरीका के इतिहास में पहिला अवसर है कि किसी स्त्री ने ऐसा उच्च पद प्राप्त किया हो।

—०—

सरदार गुरुबख्श सह पंजाब कौंसिल में प्रस्ताव पेश करने वाले हैं कि पंजाब में कौंसिल के चुनाव के लिए स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार दिया जाय।

—०—

इंगलैन्ड की पिछली पार्लियामेंट में ८ स्त्री सदस्या थीं। अब की बार केवल ४ ही चुनी गईं। इनमें से ३ अनुदार दल की हैं और एक मज़दूर दल की।

—०—

कलकत्ते में मिस्टर हारेस स्टीफन और उसकी सगी बहिन मिस ऐथल सैमना पर आपस में विवाह करने का अभियोग चल रहा है। यह कहा जाता है कि जब वह बालक ही थे उनका घर जल गया और सरकार ने उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। उनके नामों से पता नहीं लगता था कि वह भाई और बहिन हैं। यह न जानते हुए वह आपस में प्रेम करने लग पड़े और १५ वर्ष हुए विवाह कर लिया। उनके एक सन्तान भी हुई। परन्तु अब उनकी माता को उनका पता चल गया और उसने उन्हें पहिचान लिया। स्टीफन ने मैजिस्ट्रेट से प्रार्थना की है कि उसे अपनी बहिन को साथ रखने की आज्ञा दी जाय।

—०—



बच्चों की बन्डी

ले०—श्रीमती ओ३म् वती जी

यह बन्डी जितनी महीन, कसी, बीनी जाय उतनी ही अच्छी होती है, और छोटे बच्चों के लिये बहुत उत्तम है।

आवश्यक वस्तुयें:—आधपाव ४ तार का मुलायम ऊन, ८ नं० का हड्डी का क्रोशिया और १० बटन।

पीठ के लिए ३९ चेन से आरम्भ करो लौटो और ३८ दोहरे बीनो, हर पंक्ति में आर फन्दों के पिछल धागे में बीनो जिस में धारियां बन जाँय। ऐसी ७ पंक्ति और बना कर ९ वीं पंक्ति में:—

१४ दोहरे बीनो, और लौट पड़ो उसी पर फिर बीनो।

फिर ८ पंक्ति उसी प्रकार ३८ दोहरों की बीनो।

१९ पंक्तिः—३० दोहरे बीनो, लौटो और फिर उलट कर ४ पंक्तियाँ ३० फन्दों की बीनो। २५ वीं पंक्ति के अन्त में ९ चेन बनाओ और ४ पंक्तियां ३८ दोहरों की हर पंक्ति में बनाओ।

३० पंक्तिः—१४ दोहरे, लौटो और उसी पर फिर बीनो उसी पर

३२ पंक्तिः—२८ दोहरे बीनो

३३ पंक्ति—१४ दोहरे बीनो और लौट कर इसी पर बीनो। फिर ९ पंक्तियां ३८ दोहरों की हर एक में बीनो।

४१ पंक्तिः—१४ दोहरे, लौटो, और इन पर उलट कर बीनो।

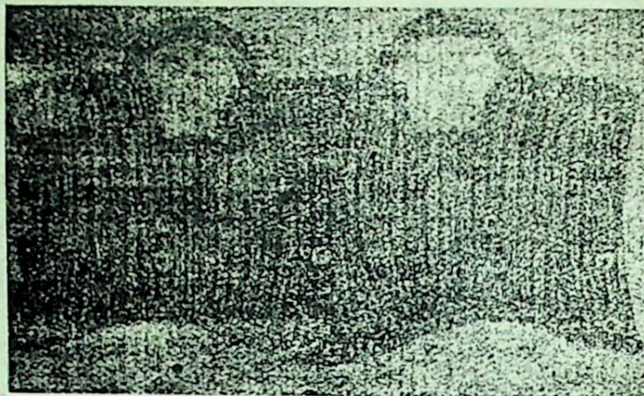
४३ पंक्तिः—३८ दोहरे बीनो।

४४ पंक्तिः—१४ दोहरे और लौट कर उसी पर फिर ५ पंक्ति ३८ दोहरों की बीनो।

५१ पंक्तिः—३० दोहरे, लौटो और उसी पर फिर बीनो। इन्हीं ३० फ़न्दों पर ४ पंक्ति और बीनो।

५७ पंक्तिः—३० दोहरे, ९ चेन, लौटो और ३८ दोहरे उलट कर बीनो, ९ पंक्तियाँ प्रत्येक में ३८ दोहरे की बीनो।

६५ पंक्तिः—१४ दोहरे, लौटो और उसी पर फिर बीनो।



६७ पंक्ति:—३८ दोहरे बीनो और ७ पंक्तियाँ और ३८ दोहरों की बनाओ और फिर ऊन पक्का करके समाप्त करदो। किनारे के लिये बन्डी के नीचे ऊपर सब कहीं पहली नोक में ऊन जोड़ कर १ दोहरा * २ चेन, २ तेहरे उसी में १ दोहरा अगले में * चिन्ह से बार २ बीनो। कन्धों की पट्टी के लिये २० चेन बनाओ और ६ पंक्तियाँ सीधी, उल्टी दोहरों की धारीदार बीनो। फिर कन्धों पर सफाई से सींदो। बाँयी तरफ चार बटन टाँको और उसी के अनुसार मोटी सुई से घर बनादो। बाकी ६ बटन चित्र के अनुसार नीचे जांघियाँ बांधने के वास्ते टाँक दो। यह बन्डी तैयार होगई।

गृह—प्रबन्ध

१. यदि रंगीन वस्त्रों पर फलों के दाग़ लग जायें तो उनको दूर करने की सब से उत्तम विधि यह है कि पहले अमोनिया के साथ स्पंज द्वारा रगड़ा जाय और फिर पैट्रोल के साथ।

२. अलमारियों तथा संदूकों में से गरम कपड़े के कीड़ों को निकालने के लिये कपड़ों पर लौंग के मोटे २ टुकड़े छिड़क देने चाहिये। यह फिनाइल की गोलियों की अपेक्षा अधिक उपयोगी हैं।

३. किसी कमरे में से मक्खियों को दूर करने का उत्तम उपाय यह है, कि प्रति दिन प्रातः काल किसी खूब तपे हुये वर्तन में २० बून्द कारबालिक एसिड की डालकर कमरे में रख दीजायें इस के धुंये से सब मक्खियां निकल जाँयगी।

४. चूहे इत्यादि के मरजाने के कारण अथवा नाली साफ करने पर कई बार घरों में बड़ी दुर्गन्ध हो जाती है जो कि मरे हुये जीव अथवा दुर्गन्ध के अन्य कारण को दूर करने पर भी नहीं हटती। यदि आंच पर एक लोहे का वर्तन रखकर खूब तपा लें और उसमें कहवा (Coffee) के साबुत बीज डालकर मकान में सब स्थानों पर घुमावे तो यह दुर्गन्ध सर्वथा दूर हो जाती है।

५. सरदियों में अधिक पानी में काम करने के कारण प्रायः हाथ फट जाते हैं। यदि हाथों को दिन में एक वार राई को पीस कर उसके चूरण से, अथवा पानी में चोकर को उबाल कर उस जल से धोया जाय तो उनके फटने का भय नहीं रहता। फटने पर इलाज के लिये खांड मिले पानी से धोना अथवा कभी २ खट्टे के रस को ऊपर मलना उपयोगी है।

६. गुलदस्तों को अधिक समय तक हरा रखने की एक विधि यह है कि जिस पानी में उन्हें रखा जाय उसमें एक बड़े चमचे भर पिसा हुआ कोयला डाल दिया जाय। पुनः कोयला अथवा पानी कुछ भी बदलना न पड़ेगा।

७. यदि गुलदस्ता मुर्झा गया हो तो उसको पुनः हरा करने के लिये उसकी डंडियों के निचले तिहाई भाग को उबलते हुये पानी में भिगो दो और जबतक पानी ठंडा न हो जाय भीगने दो। अब भीगे हुये भाग को काट कर पुनः ठण्डे पानी में रख दो इस प्रकार करने से वह पुनः हरे हो जांयगे।

कन्यागुरुकुल समाचार

कन्यायें गत अक्टूबर की १९ ता० को देहरादून से सकुशल वापिस आगई थीं और २० तारीख से विद्यालय खुल गया नियम पूर्वक पठन पाठन का आरम्भ हो गया है। यद्यपि बाढ़ और अति वृष्टि के कारण अधिक दिन ठहरना पड़ा और प्रबन्ध में कुछ कठनाई भी हुई तथापि अधिकांश ब्रह्मचारिणियों का स्वास्थ बहुत बहुत उन्नत हुआ है क्योंकि बहुत से माता पिता जो मिलने आये हैं उनका यह कहना है कि हमारी लड़की का स्वास्थ बहुत अच्छा हो गया है।

जन्मोत्सव

गत वर्ष दीपावली के दिन ही गुरुकुल की स्थापना हुई थी अतः दीपावली का दिवस गुरुकुल का जन्म दिन था उस दिन चूंकि ऋषि उत्सव भी होता है और जनता ने परस्परा गत रीति से रात्रि को दीपावली भी करनी होती है अतः कन्या गुरुकुल का उत्सव हटा दिया गया था। किन्तु गुरुकुल वासियों ने अपनेनिजी तौर पर उसे बड़े हर्ष और समारोह से मनाया।

पहिले वृहद हवन किया, भजन इत्यादि हुए; फिर लड़कियों ने कुछ बड़ी उत्तम शिक्षाप्रद और मनोरंजक खेलें कीं, फिर सहभोज हुआ। दो चार दर्शिकायें भी उपस्थित थीं।

वार्षिक परीक्षायें

दिसम्बर मास के प्रारम्भिक सप्ताह में कन्याओं की वार्षिक परीक्षायें होंगी, जिन में सफल होने से उन्हें ऊंची श्रेणी में चढ़ाया जायगा। लगभग तीन मास की छुट्टी—जो कि दिल्ली की विशेष परिस्थिति के कारण देनी आवश्यक थी—के कारण लड़कियों के पठन में बहुत हानि हुई है। यद्यपि यात्रा पर प्रायः सभी अध्यापिकायें साथ थीं, तथापि नियमानुसार पठन पाठन न रहने से बालिकाओं ने प्रायः बहुत कुछ पढा पढ़ाया भुला दिया था। अतः उन्हें अब बड़े परिश्रम से पुनः परीक्षा में सफलता प्राप्त करने योग्य बनाया जा रहा है। कन्यायें भी पठन पाठन में दत्त चित्त हैं।

उत्सव

परीक्षा के बाद २८, २९, दिसम्बर १९२४ को यहां पर वार्षिक उत्सव होना निश्चय हुआ है, जिसके प्रथम दिन नव प्रविष्ट ब्रह्मचारिणियों का चुनाव होगा और दूसरे दिन उत्सव का समारोह।

कन्याओं के प्रवेशार्थ बहुत से पत्र आ रहे हैं और बहुत से प्रवेश पत्र भी भरे हुए आगये हैं, किंतु कार्य्य को उत्तम रीति से संचालन करने का ख्याल करके और जनता की भी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए

यही निश्चय हुआ है कि इस वर्ष केवल ३० कन्यायें ही ली जावें। अतः कन्याओं के संरक्षकों को चाहिये कि शीघ्र प्रार्थना पत्र भेजें। २५ नवम्बर के बाद आये हुये प्रार्थना पत्रों पर विचार करना कठिन होगा।

आश्रम में स्थानाभाव

पाठकों को याद होगा कि गत वर्ष भी यही सूचना दी गई थी कि यद्यपि वर्तमान कन्या गुरुकुल का भवन दिल्ली की एक बड़ी भारी कोठी में है, और अपनी तरफ से भी चार टीनके कमरे डाले गये थे, तथापि यहां पर जो लड़कियां और अन्य कर्मचारीगण मिलाकर एक सौ से ऊपर जन हैं उनके लिए स्थान पर्य्याप्त नहीं है। संरक्षक भी जो सपरिवार एक दो दिन के लिए आजाते हैं उनके ठहरने का स्थान न होने से उनको भी कष्ट होता है, और प्रबन्धकर्त्ताओं को भी और इस वर्ष कन्याओं की वृद्धि होने पर स्थान की तंगी और भी रहेगी। अतः उस तकलीफ को कुछ कम करने के हेतु कोठी के इर्द गिर्द कुछ छप्पर या टीन के कमरे और डालने का विचार किया जा रहा है। इन के बन जाने पर आशा है स्थान की तकलीफ न रहेगी।

कन्या-गुरुकुल के लिये धन की अपील

एक वर्षसे ऊपर गुरुकुल को खुले होचुके हैं, अभी तक जनता ने यह नहीं सोचा कि यहां पर रुपये की भी आवश्यकता होती होगी या नहीं? जनता को केवल एक ही बात का ख्याल है कि कन्याओं की भरती की जाय और उन्हें उत्तम शिक्षा प्राप्त हो, वह आनन्द से रहें। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। हमें भी इसी में प्रसन्नता है अतः इसी की फिकर है और उसके लिए प्रयत्न भी भरसक बहुत किया जा रहा है, परन्तु हमारे पास एक बात की बड़ी भारी कमी है जिसके कारण हमें महा कष्ट भी होता है। वह है धनाभाव! कई संरक्षक अपनी कन्याओं की आधी फीस कराने के लिए लिखते हैं, कई मुफ्तमें रखने के लिए, कइयों का कहना होता है कि १५) शुल्क बहुत हैं, कई कहते हैं कि जब हम लड़कियों से मिलने आते हैं तो ठहरने का स्थान आराम का नहीं मिलता है। एक दो सज्जनों ने यहां तक भी बाधित किया कि उन्हें ठहरने के लिए कार्य्यलय का कमरा खाली कर देना पड़ा। अस्तु कहनेका मतलब यह है कि सभी की इच्छा यह है कि बालकों के गुरुकुल की भांति कन्या गुरुकुल में भी जनता को सभी सुविधायें हों। परन्तु हों कहां से? बालकों के गुरुकुलों में जनता ने लाखों दिये हैं। बहुत वर्षों से वह कार्य चल रहे हैं। परन्तु यहां तो अभी एक ही वर्ष हुआ है और दान के नाम तो यहां के लिए लोगों की जेब ही खाली हैं। लोग कहते हैं कि कन्यागुरुकुल से डेपुटेशन निकले, दान मांगे, तो धन एकत्र हो जाए। परन्तु डेपुटेशन ले कौन जाय? यहां तो आगे ही कार्यकर्तृ देवियां आवश्यकता से न्यून हैं और यदि यह भी बाहर घूमती रहें तो कन्याओं को शिक्षा कौन दे? ऋषि दयानन्द जी कहते हैं कि बच्चों को कुचेष्टा से बचाने के हेतु आवश्यक है कि उनके शिक्षक सर्वथा उनके साथ रहें? परन्तु यदि वह बाहर बाहर धन माँगती रहें तो वह बच्चों के साथ कैसे रहें और उनका प्रभाव बच्चों पर कैसे पड़े? संगत का प्रभाव तो पड़ता है परन्तु धन लाने से बच्चों को क्या लाभ? दूसरी बात और भी है। वह यह कि जाति को यह भी सोचना चाहिये कि स्त्रियों से भिक्षा मंगाना उचित भी है? मनु महाराजने स्त्रियोंको लक्ष्यमें

रखकर कहा है कि "जहां इन की पूजा होती है वहां देवता रमण करते हैं" अर्थात देवता तुल्य सन्तति होती है "इन स्त्रियों को सत्कार और उत्सव के समय पिता, भ्राता, पति, देवर इत्यादि सदा उपहारों के दान से सत्कार किया करें"। कन्या गुरुकुल स्त्री जाति की संस्था है स्त्रियां ही अन्तरंग प्रबन्ध सम्भाल रहीं हैं अतः उन्हें बाहरी, पुरुषों के करने योग्य कार्य्यों के लिये बाहर २ घूमने का ढर्रा चलाने से जहां उनके प्रबन्ध में गड़बड़ होगी वहां पर स्त्री जाति के स्त्री-सम्बन्धी गुणों की रक्षा—जिस के लिये गुरुकुल खुला है—भी नहीं होगी। देवियों का लक्ष्य स्थिर रूप से लगातार सेवा करने का न होगा। उन्हें घूमना घामना ही पसन्द होगा। उससे फिर अनिष्टकर बातें फैलेंगी और लाभ के स्थान में हानि होगी। अतः हम कन्याओं के संरक्षकों, आर्य्यसमाजों और अन्य भारतीय जनता से याचना करते हैं कि वह कन्या गुरुकुकल से किसी डेपुटेशन जाने का आसरा न देखें, वरन कन्या गुरुकुल को धन सम्पन्न करना अपना ही कर्तव्य समझें। यदि धनाभाव के कारण इस गुरुकुल को कुछ सङ्कट हुआ तो उसके लिये वही उत्तरदाता होंगे।

संरक्षकों और समाजों के लिए धन एकत्र करने के सम्बन्ध में गुरुकुल कार्यालय से पत्र भेजे जारहे हैं। इस समय ८५ कन्यायें हैं अगर इनके संरक्षकों में से ५० संरक्षक भी अपने २ हिस्से का १००) का दान भेज दें तो ५ हज़ार रुपया यों ही आ सकता है। इसी प्रकार सारे भारत में कितनी ही आर्य-समाजें हैं अगर वह भी अपनी वार्षिक आय में से औसत रूप से ५०) भी भेजें तो कितने हज़ार रुपये हो सकते हैं?

अभी तक कन्या गुरुकुल से कोई अपील नहीं निकाली गई। परन्तु अब उत्सव निकट है। एक वर्ष का खर्च करके कोष भी खाली होचला है अतः स्त्रीशिक्षा के प्रेमी और गुरुकुल के हितैषी लोगों तथा अन्य धनाढ्यों से प्रार्थना की जाती है कि शीघ्र ही रुपया एकत्र करके कार्यालय में भेजना प्रारम्भ करदें ताकि उत्सव तक अच्छी धनराशि एकत्र होजावे। आशा है कि सब सज्जन और देवियाँ इस पर ध्यान देंगी।

विचार प्रवाह

भगवान दयानन्द की स्मृति में।

दीपावली का शुभ दिवस है, अमावास्या की घोर अन्धकारमय रात्रि का आगमन! ऐसे समय में भगवान दयानन्द का हृदय अपने प्रीतम के दर्शन के लिये छट पटा रहा है। स्वामी की आज्ञा है कि "संसार में जा और मानव हृदय से अन्धकार का नाश कर।" प्रसन्न चित से, उल्लसित मन से प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य की। पुनः आज्ञा होती है कि "दयानन्द बस"। दयानन्द अपने मनमें समझता है कि अभी मैं और अधिक कार्य कर सकता था। परन्तु स्वामी की आज्ञा है, क्या मजाल जो हृदय में तनिक भी शोक हो, चितवन पर ज़रा भी बल हो "भगवन् तेरी इच्छा पूर्ण हो" और प्रसन्नता, उत्कण्ठा और प्रेम से मृत्युञ्जयी दयानन्द अपने सृजनहार के सन्मुख जा उपस्थित होता है।

आज यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि भगवान दयानन्द क्या थे ? शिक्षित भारत उस महान आत्मा को जानता है; धार्मिक संसार उसके लोहे को मानता है। दयानन्द की दीन-सेवा, अबलाजन-रक्षा, सत्य शोधन, धर्मानुराग सब पर विदित है। परन्तु दयानन्द का कृत्य इससे कहीं महान है। उसने वह काम किया जो विरला ही कर सकता है। दीनों की सहायता करना आसान है; प्रचुर विद्या की प्राप्ति भी कठिन नहीं, अत्याचारी नृप का शासन उलट देना भी इतना दुस्तर नहीं; परन्तु मानव हृदय को विचार-स्वतंत्रता की शिक्षा का दान ऐसा महत्व का कार्य है कि जिसकी कोई उपमा नहीं। भगवान दयानन्द का मनुष्य मात्र पर यदि कोई ऋण है-जिसका कि कोई मूल्य नहीं-तो वह यह अमेय, शुद्ध, स्वतंत्रता का दान है। दयानन्द तुम महान हो; तुम धन्य हो।

प्रिय पाठको ! आओ हम आज दीपावली के दिन भगवान दयानन्द और उनके कृत्यों का चिन्तन करें; श्रद्धा और भक्ति के प्रेम प्रसून से उसकी पुण्य स्मृति की आराधना करें, परमदेव परमात्मा से उस महान आत्मा के पद चिन्हों पर चलने के योग्य बनने की याचना करें और उसके सदुपदेशों के अनुसार इस जीवन को ढालने का व्रत धारण करें।

दीन और असहाय के रक्षक, अबला और पतितों के सहायक दयानन्द तुम्हें हमारा नमस्कार हो ! भारत के उद्धारक और संसार के पथ प्रदर्शक दयानन्द तुम्हें हमारा नमस्कार हो ! शारीरिक बल, तेज और शक्ति के पुंज, निभय, निर्भीक, आत्मिक बल के निधि, दयानन्द तुम्हें हमारा नमस्कार हो ! वर्णाश्रम धर्म के उद्धारक, सत्य धर्म के प्रसारक, दयानन्द तुम्हें हमारा प्रणाम हो ! शुद्ध ज्ञान के प्रकाशक और मिथ्या ज्ञान के विनाशक दयानन्द तुम्हें हमारा प्रणाम हो ! विशाल ज्ञान राशि के प्रभु, विपुल ब्रह्म विद्या के स्वामी दयानन्द तुम्हें हमारा प्रणाम हो। विश्व प्रेम के मूर्तिमान अवतार, श्रद्धा और भक्ति जल के पुञ्ज दयानन्द तुम्हें हमारा नमस्कार हो ! आनन्द कन्द दयानन्द तुम्हें हमारा शतवार प्रणाम हो !

इंग्लैंड का शासन अनुदार दल के हाथ।

गत मास हमने मज़दूरदल सरकार के पराजय के विषय में लिखा था। उसके पश्चात् चुनाव हुआ और उसका फल निकला अनुदार दल की विजय, मज़दूरदल की हार और बहुत बुरी तरह से हार तथा उदार दल का सर्वनाश। भविष्यत में क्या होगा यह कहना कठिन है, परन्तु इस समय अनुदार दल बहुत प्रसन्न है, वह आगामी पांच वर्ष तक अपने शासन को निष्कण्टक समझता है क्योंकि पार्लियामेंट के ६१५ सदस्यों में से ४०० के लगभग अनुदार विचार के हैं और शेष मज़दूर उदार दल, तथा अन्य विचारों के। यह सब मिल कर भी पार्लियामेंट में उदारदल को किसी भी अवसर पर हरा नहीं सकते। सो अब पांच वर्ष तक इंग्लैंड से अनुदार विचारों और अनुदार कृत्यों की धारा बहेगी। हमें मज़दूर सरकार के पराजय पर हार्दिक खेद है।

यह खेद इस लिये नहीं कि हमें भारत के सम्बन्ध में उससे कुछ आशा थी। भारत के किसी भी दल को यदि कोई आशा रही भी हो तो मज़दूर सरकार ने उसे अपने जीवनकाल में ही तोड़ डाला था। भारत के संबन्ध में सब एक जैसे हैं। यह है भी

सृष्टि नियम के अनुकूल। जातियां और राष्ट्र अपने ही पौरुष और बल से बना करते हैं। कोई भी बाह्य मित्र चाहे वह कितना भी शक्तिशाली और सदय हृदय हो-जाति के हृदय में मानसिक बल और शक्ति नहीं भर सकता। फिर मज़दूर सरकार ने तो कोई मित्रता के लक्षण भी नहीं दिखलाये। अतः हमारे लिये यह सब एक से हैं—

कोऊ नृप होय हमें क्या हानी।
चान्दी छोड़ न होउब रानी॥

अतः मज़दूर दल के पराजय पर हमारा शोक स्वार्थमयी आशा पर निर्भर नहीं। मज़दूर दल के विचार उदार हैं, इस में सन्देह नहीं। वह शक्ति शाली होकर इंग्लैन्ड की जनता का-वास्तविक प्रजा का अधिक उपकार करते यह निर्विवाद है! जन-साधारण में से चुने हुये शासक उनकी आवश्यकताओं और कष्टों को भली प्रकार अनुभव कर सकते हैं और समवेदना से उनको दूर कर सकते हैं। इन प्रजाहित सम्बन्धी स्निग्ध कृत्यों का शुभ प्रभाव न केवल इंग्लैन्ड पर ही पड़ता, अपितु संसार के समस्त देशों के पद दलित और धन तथा ऐश्वर्य के मद से मस्त मनुष्यों से पीड़ित जनता के हृदय में उत्साह और साहस का संचार करता। संसार से उदारता और अनुकम्पा की राशि का कम होना यही हमारे लिये शोचनीय है। अतः इस विपत्ति में—जो कि केवल मज़दूर दल की ही विपत्ति नहीं—हमारी हार्दिक सहानुभूति है।

अनुदार सरकार की भारत के सम्बन्धमें क्या नीति होगी यह स्पष्ट है। यह "फ़ौलादी पंजे" का शासन होगा। कठोरता और अत्याचारों के राज्य की पूरी २ सम्भावना है। इंग्लैंड के महामन्त्री लार्ड बैल्डविन चुनाव संबन्धी अपनी वक्तृता में ही इस की पूरी २ घोषणा दे गये हैं। यह निर्जीव, पाषाण हृदय, कठोर शासन, हमारे लिये हितकर ही सिद्ध होगा। भारत में भिन्न २ दलों की एकता का सहायक होगा, दूसरों के मुंह की ओर ताकने की अपेक्षा हम अपने पैरों खड़े होने का अधिक यत्न करेंगे। और हमारे इस उद्यम में उदार संसार की सात्विक सहानुभूति और सहायता साथ होगी।

बंगाल में अनियन्त्रित दमन

गत मास भारत के राजनैतिक क्षेत्र की सब से महत्व पूर्ण घटना बंगाल में दमन नीति का पुनः प्रादुर्भाव है। लार्ड रैडिंग ने बंगाल के गवर्नर को इस समय पूरी २ सहायता दी है। बंगाल सरकार का मत है कि बंगाल में षड्यंत्रकारियों की बड़ी भारी संख्या है जो कि डराकर, धमका कर, लूटकर, और नर हत्या तक करके भारत को स्वतन्त्रता दिलाने में विश्वास रखते हैं। इस लिये शासक वर्ग तथा उनके सहायक और शान्तिमयी जनता सुरक्षित नहीं रह सकती। न जाने वह किस समय और किस को पिस्तौल अथवा बम्ब का निशाना बना डालें देश का साधारण कानून इस दल का नाश करने में असमर्थ है। इसी लिये बंगाल सरकार के कहने से वाइसराय ने अपने अनियन्त्रित अधिकारों से एक नवीन सूत्र अथवा "आर्डिनांस" की घोषणा की है। अर्डिनांस बंगाल मे कानून के बराबर काम करेगी। इसकी तथा १८१८ के रेग्युलेशन की तीसरी धारा के अनुसार सरकार जिस किसी व्यक्ति को भी जब चाहे बिना वारेन्ट पकड़ कर, चाहे बिना मुकदमा चलाये क़ैद कर दे, अथवा एक विशेष अदालत के

जो कि इसी काम के लिये बनाई गयी है—सामने पेश कर उस पर अभियोग चलाये। जिन लोगों पर सरकार को सन्देह होगा वह स्वतन्त्रता पूर्वक कहीं आ जा न सकेंगे, उन्हें पहिले से सरकार को अपने स्थानांतर गमन की सूचना देनी होगी और निश्चित समय पर पुलिस के पास हाज़री देनी होगी।

इस आर्डिनांस के अनुसार बंगाल में बड़े ज़ोर शोर से काम शुरू हो गया है। कितने ही व्यक्ति पकड़ लिये गये हैं। इन में कितने ही प्रजा के मानपात्र, प्रसिद्ध नेता हैं जिन पर षड्यन्त्र—कारी होने की शंका करना अपने साथ ही अन्याय करना है। बंगाल में स्वराज्य पार्टी का जोर है। बंगाल कौन्सिल में स्वराज्य पार्टी ने सरकार को न्याय का ढोंग रचते हुए स्वेच्छाचारिता से काम करने नहीं दिया अतः सरकार उनसे खिज गयी है। हमारा विश्वास है कि किसी भी षडयन्त्रकारी दलको वह साधारण नियमों से कुचल सकती थी परन्तु यह साधारण नियम किसी भी नियमनुसार कार्य करने वाले विरोधी दलको जैसा कि आजकल बँगाल की स्वराज्य पार्टी है—छू नहीं सकी थी, अतः उसे यह विशेष अनियमित नियम गढ़ने पड़े। इनके अनुसार वह निर्भय और निर्भीक होकर जिस स्वराज्य पार्टी के सदस्य को चाहे पकड़ सकती है। जिन महानुभावों और अहिंसाव्रत धारी नेताओं को सरकार ने अबतक पकड़ा है उनका विचार करते हुये सरकार का यह कहना, कि वह प्रजाहित से प्रेरित होकर, शान्तिप्रिय जनता की रक्षा के निमित्त ही ऐसा कर रही है, केवल राजनैतिक ढोंग मात्र ही प्रतीत होता है।

सब से पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या बंगाल में इस प्रकार का कोई विस्तृत षड्यन्त्र है जिसकी उपस्थिति के ज्ञान का सरकार दावा करती है? यह बात ठीक है कि गत दो वर्ष में कुछ एक निरपराध व्यक्तियों की हत्या की गई है परन्तु क्या इससे ही षडयन्त्रके विस्तारको स्वीकार कर लिया जाय? यह कहा जा सकता है कि इस समय जिन सत्तर अस्सी आदमियों को पकड़ा गया है वह बड़ी खोज और विचार के बाद पकड़े गये हैं। सरकार ने पिछले क्रांतिकारियों को पकड़ने में भूल नहीं की अतः अब वह भूल करेगी यह सम्भावना बहुत कम है। (पुलिस कमिश्नर ने ऐसे विचार प्रगट किये हैं।) अतः इन अस्सी क्रांतिकारियों का पकड़ा जाना ही यह सिद्ध करता है कि बंगाल में विस्तृत षडयन्त्र है। परन्तु यह युक्ति घोड़े के आगे गाड़ी जोतने के समान है। प्रजाका विश्वास है कि जो लोग पकड़े गये हैं वह षडयन्त्र के कर्मचारी नहीं। इन के गृहों से, तलाशी लेने पर भी, किसी प्रकार के गोला बारूद का न मिलना ही सिद्ध करता है कि वह षडयन्त्रकारी नहीं हैं। उन में ऐसे व्यक्ति हैं जो कि अहिंसाव्रत धारण किये हुये हैं, जिन के विषय में यह विचार भी नहीं आ सकता कि वह ऐसी जघन्य और निन्दनीय संस्थाओं से सम्बन्ध रखते हैं। यदि सरकार के पास उनके दोषों को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त सामग्री है तो उन्हें चोरों की भांति चुपके से उड़ा लेने की क्या आवश्यकता? उनपर खुली अदालत में अभियोग चलाया जाय और उन कादोष सिद्ध किया जाय, इस अवस्था में प्रजा अवश्य सरकार का साथ देगी। कोई भी न्यायाशील, धर्मभीरु व्यक्ति प्रमाणित अपराधी का साथ देने को तैय्यार नहीं होसकता। यदि सरकार विचारशील भारतीय जनता के इस प्रकार के षडयन्त्र को-यदि

कोई हो-दबाने के लिये सहायता और सहानुभूति चाहती है तो उसका एक मात्र उपाय यह है कि वह जनता को अपना विश्वासपात्र बनाये और इन षड्यन्त्र कारियों के दोष को खुली न्याय सभा में प्रमाणित करे, अन्यथा सरकार के पुराने कृत्य ऐसे नहीं कि सरकार के कहने मात्र पर जनता विश्वास करले।

परन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि सरकार का यह कथन कि बंगाल में एक बड़ा षड्यन्त्रकारी दल विद्यमान है ठीक है तो भी इसको कुचलने का सरकार ने जो मार्ग पकड़ा है वह ठीक नहीं है। प्रत्येक कार्य के लिये कारण हुआ करता है। किसी कार्य को रोकने के लिये कार्य कारण को समझना और उसका दूर करना ही अच्छा हुआ करता है। जो डाक्टर केवल रोग के लक्षणों को दूर करना चाहता है और उसके उत्पादक कारणों की अवहेलना करता है उसे कोई बुद्धिमान नहीं कह सक्ता। समय २ पर इस प्रकार के उत्पातों का हो जाना भारत के सामाजिक जीवन में किसी गहरे रोग का सूचक है और केवलमात्र उन उत्पातों का दबाना रोग का इलाज नहीं। जिस आधार पर षड्यन्त्रकारी अपना काम करते हैं, फलते और फूलते हैं, अबोध युवकों के मन में अपने कृत्यों के लिये साधुभाव पैदा कर लेते हैं उस आधार को ही मिटा देना उस रोग का एक इलाज है। जनता में अपनी और राजनैतिक अवस्था के सम्बन्ध में गहरा असन्तोष है। यदि सरकार को जनता से प्रेम है, यदि सरकार इस प्रकार के उत्पातों को जड़ से नाश करना चाहती है, तो प्रजा के इस असंतोष के कारणों को दूर करे, प्रजा की सामाजिक और आर्थिक अवस्था को सच्चे दिल से उन्नत करे तब वह देखेगी कि इस प्रकार के षडयन्त्र के लिये कोई अवलम्ब ही न रहेगा और वह स्वयं बिना किसी प्रकार के दमन के नष्ट हो जायेंगे। 'न रहे बांस न बजे बांसरी'।

यदि सरकार ने अपनी दमन नीति को न छोड़ा तो हमें भविष्य बड़ा निराशाजनक प्रतीत होता है। इस से पहिले भी बंगालमें इस प्रकारके षडयन्त्रों की एक लहर चली थी और सरकार ने बल पूर्वक उसे दमन करने का भरसक यत्न किया था। आज सरकार का यह कहना कि अब भी बंगालमें षडयन्त्र है स्वयं ही सिद्ध करता है कि सरकार को अपनी दमन नीति में सफलता नहीं हुई। जिस नीति में सरकार पहिले असफल हो चुकी है उसी को पुनः गृहण करना कोई बुद्धिमता नहीं। इतिहास हमारे शिक्षा गृहण करने के लिये होता है, पढ़ने और भूल जाने के लिये नहीं। इस प्रकार की दमन-नीति—जिस का प्रजा वात्सल्य और न्याय आधार न हो—सदा विफल मनोरथ रहती है, उसका प्रभाव सदा उल्टा पड़ता है। जिस रोग का वह इलाज करना चाहती है उसे और चमका देती है। आजकल के कितने ही सभ्यताभिमानी पुराने राज्य रूस के बोलशिविक नाम से डरते हैं, बोलशिविज़िम शब्द से उन्हें कंपकंपी आने लगती है। परन्तु क्या यह सत्य नहीं कि रूस के ज़ार की अत्याचार परायण शासन-नीति और दमन-मार्ग ही इस के वास्तविक जन्म दाता हैं? देश में वास्तविक असंतोष था, प्रजा दुखी; पीड़ित थी, प्रजा की दीन हीन दशा को सुधारने के लिये कोई यत्न न करके उसका रक्त चूसा गया; इसी से षडयन्त्रकारियों की रचना हुई।

इस चेतावनी पर भी रूस सरकार ने ध्यान न दिया और वास्तविक असंतोष और उसके कारणों को दूर करने के स्थान में अपनी उद्दण्ड दमन-नीति को बराबर जारी रखा। षडयन्त्रकारियों को बड़े बलपूर्वक दबाया गया परन्तु इस सब का फल क्या हुआ? बोलशिविज़म का जन्म, जिसके आगे न ज़ार रहा न ज़ार का शासन! भारत सरकार को भी यह सोच लेना चाहिये कि कहीं उसकी दमन-नीति का भी तो ऐसा ही फल न निकलेगा? हम बोलशिविज़म के पक्ष-पाती नहीं, उसके कितने ही मुख्य नियमों से हमें मतभेद है अतः हम नहीं चाहते कि हमारे देश में बोलशिविज़म की लहर चले परन्तु हमें आशंका अवश्य है कि कहीं सरकार की दमन-नीति यह कार्य कर न दिखलाये।

सरकार अपनी दमन नीति में अवश्य असफल रहेगी यह निश्चय है। इस समय षडयन्त्रकारियों के साथ किसी की भी सहानुभूति नहीं है। यदि उन पर साधारण कानून के अनुसार अभियोग चलाये जायें तो इस से उनको कोई महत्व नहीं मिलता, परन्तु यदि विना अपराध बतलाये उनको बन्दी कर लिया जाय, या अधूरे कानून का आश्रय लेकर उनको प्राण दण्ड अथवा अन्य किसी प्रकार का दण्ड दिया गया, तो वह सर्वसाधारण की दृष्टि में वीर और शहीद का स्थान प्राप्त कर लेंगे। उनके कष्टों पर, उनके वास्तविक कारण से अज्ञानता रहने से जनता के मन में दया और अनुकम्पा का भाव उत्पन्न हो जायगा। यह षडयन्त्रकारी भूले और भटके हुये युवक हैं जो कि मातृ-भूमि को रक्त की नदियों में से खेंचकर स्वतंत्रता की वेदी पर बिठलाना चाहते हैं, अथवा उस शासन का अन्त करना चाहते हैं जिसमें माता की सन्तति अन्न और वस्त्र के लिये तड़फ रही है, जिसकी मानमर्यादा की भावनाओं को क्षण क्षण पर ठुकराया और अपमानित किया जाता है। अपने देशवासियों के क्लेशों से पीड़ित होकर, अपने किसी स्वार्थ से नहीं, वह इस उलटे मार्ग का अवलम्बन करते हैं। अतः उनके जैसे मतिमन्द और विवेक शून्य अन्य युवकों के हृदय में उन की शहादत अनुकरण का भाव पैदा कर सकती है। सरकार का जो आशय है कि वह दमन द्वारा इस प्रकार के विचार रखने वालों के हृदय में इतना भय और आतंक पैदा कर देगी कि वह प्राण दण्ड अथवा अन्य प्रकार के कठोर दण्ड के भय से इस काम से बचे रहेंगे वह विफल होगा। एक समय था जबकि लोगों के मन में कायरता थी, वह सरकार की रीति और नीति के विरुद्ध लिखकर या बोलकर अभियोग चलाये जाने पर भयभीत हो अपने बचाव के अनेक प्रकार के मार्ग सोचा करते थे, और कानून को तोड़ मरोड़ और वकीलों के शब्दाडम्बर द्वारा अपने बचाव का मार्ग ढूंढा करते थे। जब इस मानसिक दुर्बलता के समय भी सरकार दमन नीति में सफल न हो सकी तब अब तो उसकी सफलता और भी कठिन है। महात्मा गाँधी के पुण्य प्रताप और निरन्तर उद्योग का फल है कि आज लोगों के हृदय में अपने विचारों के लिये वह भय नहीं जो उन्हें दबा सके। क्या चार वर्ष पहिले यह सम्भव था कि कोई भारत के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता की आवाज़ निकाल सकता? परन्तु आज कितने ही व्यक्ति निर्भय होकर इसकी घोषणा कर रहे हैं। सो यदि सरकार का बल प्रयोग कहीं निर्दोषियों पर भी आ पड़ा—जिसकी बड़ी सम्भावना है—तो उन की निर्दोषता ही उनको अभय कर देगी। फिर इस से निराशा की और भी वृद्धि होगी,

कई युवक यह समझने लगेंगे कि वह रोटी मांगते हैं और उन्हें पत्थर दिये जाते हैं। इस निराशा से उनके और भी उद्दण्ड हो जाने का भय है। जिस बात को रोकना चाहते हैं उसकी और भी वृद्धि की आशङ्का है।

इस दमन नीति का एक परिणाम यह होगा कि सरकार का धार्मिक गौरव (Moral prestige) नष्ट हो जायगा। आज हम यह अपने सामने देख रहे हैं। गोरे शाही समाचार पत्रों को छोड़ कर क्या भारत में कोई नेता, कोई पत्र ऐसा है जो सरकार की नीति का समर्थन करता हो ? चारों ओर से—चाहे वह उदार दल वाले हों अथवा राष्ट्रीय दल वाले, स्वराज्यवादी हों अथवा असहयोगी; सभी सरकार की नीति की घोर निंदा कर रहे हैं। इलाहाबाद का 'लीडर' पत्र उदारदल का एक मात्र मुख्य पत्र है; मदरास का "जस्टिस" अछूत जाति का पत्र होने से सर्व प्रकार के जातीय राजनैतिक आन्दोलन और संस्थाओं का कट्टर विरोधी और सरकार की नीति का अक्षरशः पक्षपाती रहा है। आज यह दोनों पत्र भी इस दमन को देख कर सरकार की निंदा कर रहे हैं। उदारदल के मुख्य नेता श्रीयुत शास्त्री महोदय ने भी इस की बड़ी कड़ी आलोचना की है। श्रीमती ऐनीबिसेन्ट भी स्वराज्य पार्टी पर किये गये इस आक्रमण का विरोध किया ही चाहती हैं। हम पूछते हैं कि आज कौन सरकार के साथ है ? क्या सरकार का यह दावा है कि वह जो कुछ करती है वही ठीक है और बाकी का समस्त भारत मूर्ख है ? यदि उसकी यह धारणा है तो यह दर्प और अहंकार की पराकाष्ठा है और दर्प का नाश अवश्यम्भावि है। ऐसा भी काम क्या जिससे किसी को प्रेम न हो, सहानुभूति न हो, विश्वास न हो। कोई भी प्रजाहित का कार्य प्रजा को साथ लिये बिना नहीं हो सकता।

क्या सरकार और आगे पग उठाने के पूर्व अपनी इस नीति पर पुनः विचार करेगी और अपने गौरव को नष्ट न करने वाले मार्ग का अवलम्बन करेगी ? यदि सरकार के पुराने इतिहास पर दृष्टि डालें तब तो कोई आशा नहीं। प्रभु ही भला करें।

क्या यह प्रजाहित के लिए है ?

सरकार कहती है कि शांति प्रिय जनता की षड़यन्त्र कारियों द्वारा की गई नर हत्या का विरोध करने के लिये ही उसे ऐसे कठोर उपायों का अवलम्बन करना पड़ा है। वह यह सह नहीं सकती कि निर्दोष व्यक्तियों की हत्या हो। उस हत्या को रोकना किसी भी सभ्य सरकार का धर्म है।

भारत में इस प्रकार के षड़यन्त्रों के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि आजतक इन मूर्खों द्वारा अधिक से अधिक बीस पच्चीस आदमियों की हत्या हुई होगी और एक दो लाख का धन हरण किया गया होगा। प्रजा की इतनी आपत्ति भला प्रजावात्सल्य सरकार किस प्रकार सहन कर सकती है। उसको रोकने के लिए भरसक यत्न करना उसका धर्म है। यही लार्ड लिटन और लार्ड रेडिंग का दमन के पक्ष में उत्तर है।

क्या हम पूंछ सकते हैं कि यदि सरकार को प्रजा से इतना प्रेम है तो दूसरी ओर प्रजा के दुःख हरण के लिये क्यों नहीं मड़पड़ता ? गत तीन वर्षों से हिंदु मुसलमानों में आपस में दंगे फिसाद होरहे हैं। सहस्रों आदमी मारे जाचुके हैं और लाखों की धन सम्पत्ति नष्ट हो चुकी है। क्या यह अबलाओं और निरापराधियों की हत्या, प्रजा स्वामों का

अपमान सरकार के दिल पर चोट नहीं लगाता ? क्या इन दंगों में प्राप्त मृत्यु मीठी है ? और षड़यन्त्र कारियों के द्वारा प्राप्त मृत्यु अधिक भयावनी है ? यदि नहीं, तो हम पूंछते हैं कि सरकार ने इन हत्याओं के रोकने के लिये क्या किया ? इस ओर सरकार का प्रजा प्रेम क्यों नहीं झुकता ? क्या इस उपद्रव को रोकने के लिये वायसराय महोदयने आर्डिनांस नहीं निकाल सकते ? फिर क्यों इधर ध्यान नहीं दिया जाता ? क्यों इन आपस के फिसादों को असम्भव नहीं बना दिया जाता ? क्या इस अवहेलना का कारण यह है कि जनता आपस में कटती मरती है और इस से शासकवर्ग की अपनी स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वरन् वह और दृढ़ होरही है। परन्तु फिर सरकार का प्रजाहित और जनता की रक्षा का दावा कहां रहता है ?

पंचदश हिंदी साहित्य सम्मेलन।

८ नवम्बर १९२४ को देहरादून में पंचदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन बड़े समारोह के साथ प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष यद्यपि प्रथम मनो-नीत सभापति श्री राधाचरण जी अस्वस्थ होने के कारण पधार न सके तथापि उनके स्थानापन्न माधवराव सप्रेजी ने यह पद स्वीकार कर सम्मेलन की आभा को कुछ कम नहीं बढ़ाया। इस वर्ष सम्मेलन में कई विशेषतायें थीं उन में से दो चार उल्लेख्य हैं। प्रथम तो गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा वेदगान से सम्मेलन का प्रारम्भ, दूसरा बहुसंख्या में बिना परदे के देवियों का उपस्थित होना, तथा नाभा नरेश का शुभागमन।

सभा मंडप खूब सजा हुआ था। पहिले स्वागताध्यक्ष पं० नरदेव शास्त्री जी ने अपना मुद्रित भाषण पढ़ा जिसे जनता ने बहुत पसन्द किया, फिर सभापति का निर्वाचन हुआ। श्री० पंडित जगन्नाथ चतुर्वेदीजी ने सभापति का निर्वाचन करते हुये अपने चित्तविनोदात्मक भाषण में जो शब्द जाल बनाया था वह भी शब्द रचना की दृष्टि से उल्लेख्य योग्य है। आपने कहा कि-"हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् सप्रेजी इस सभापति के पद के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। पूज्यपाद राधाचरण जी गोस्वामी मनोनीत हुये थे ! पर विधि की विडम्बना से इस सम्मेलन में राधा जी तो पधारे नहीं, माधव जी पधर गये। माधव ने भारतवर्ष में गीता प्रगट की और आपके मनोनीत माधव ने भी हिंदी जगत में गीता प्रगट की। राधा चरण तो आये नहीं पर माधवचरण आये" सभापति के निर्वाचन के पश्चात् हमेशः की कार्य्यवाही हुई। सभापति का मौखिक हिंदी भाषण बहुत प्रभावशाली था। इस के बाद सम्मेलन के मन्त्री ने वार्षिक रिपोर्ट सुनाई, सहानुभूति के तार, पत्र पढ़े गये। और फिर वक्तायें हुईं। श्रीमती पार्वती देवी ने बड़ी ओजस्विनी वक्तृता द्वारा हिंदी प्रचार पर बल दिया। हेमन्त कुमारी चौधरी की भी वक्तृता हुई।

इस वर्ष पास हुये प्रस्तावों की संख्या थोड़ी रही, परन्तु उपयुक्त प्रस्ताव थे जिनकी सूची अगले अंक में दी जा सकेगी। स्थानीय सज्जनों ने सूरदास नाटक खेला। कवि सम्मेलन भी हुआ। आगामी अंक में इस का कुछ विस्तृत वर्णन देने का प्रयास किया जावेगा।

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५]　　मार्गशीर्ष १९८१—दिसम्बर १९२४　　[खण्ड ५, संख्या ८



वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची ।

—:(*):—

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—
१ वर्ष के लिये ४॥) है।
६ मास के लिये २॥) है।
विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।
स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता है।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर ग्राहक नं० न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआडर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये



वर्ष ५ } मार्गशीर्ष १९८१—दिसम्बर १९२४ ई० { संख्या ८

'परिचय'

लेखक—"जीवम"

'कौन हैं ये ?' ये जननि के लाल हैं।
काल अरि के, बन्धुओं के ढाल हैं।
'काम इनका ?' दूसरों का काम है।
'धाम इनका ?' देश सारा धाम है। १।

'स्नेह ?' बस कर्त्तव्य ही से स्नेह है।
'देह ?' उसके सामने क्या देह है।
'लक्ष्य ?' दुनियां दासता से मुक्त हो।
हो सुखी, स्वाधीनता से युक्त हो। २।

'पथ ?' पसंद विचित्र ! कंटकपूर्ण है।
'रथ ?' अनोखा, चक्र चारो चूर्ण है।
'हय ?, हिचकते हैं, हटाते पैर हैं।
'सारथी ? 'अद्भुत ! न लूंगा शस्त्र मैं, । ३।

'अस्त्र ?' इनके हाथ ही हथियार हैं।
प्राण देने के लिए तैयार हैं—
जो; भला फिर अस्त्र ले वे क्या करें ?
'डर ?' बिगाड़ा है नहीं, फिर क्यों डरें ? ४।

'भाव ?' इनका हृदय है भावा-भरा।
'दुःख ?' चसका दुःख का इनको बड़ा।
'सुक्ख ?' इनके वास्ते तो शाप है।
'नीति ?' अरि को दुःख देना पाप है। ५।

'प्रीति ?' तो क्या मारते हैं ये कभी ?
'जीत फिर ?' तो हारते हैं ये कभी ?
'किस तरह ?' इनका अटल विश्वास है ?
नम्रता से शत्रु बनता दास है। ६

लड़का या लड़की

लेखक—प्रोफ़ेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, गुरुकुल काँगड़ी



ईस्ट अफ्रीका की राजधानी नैरोबी शहर में मैं एक सेठ जी की दुकान पर बैठा हुआ था। सेठ जी गुजरात के रहने वाले थे। धर्म से आपको विशेष प्रेम था। मुझे सामने देखकर आपके हृदय में तरह २ के प्रश्नों की भीड़ उठ रही थी। बोलेः—"क्यों पंडित जी! क्या पुरुष मर कर स्त्री भी हो सकता है?" मैंने जो भी उत्तर देना था देकर सोचना शुरू किया। "पुरुष, स्त्री बनने से घबराता है। सारे संसार की सम्पत्ति मिलने पर भी पुरुष स्त्री बनने के लिये तैयार नहीं दीखता। क्या सचमुच स्त्री-योनि पुरुष की अपेक्षा निचले दर्जे का जीवन है?" पहले मेरे सामने ऐसे प्रश्न कभी नहीं आये थे। नैरोबी के सेठ जी के जीवन का तो यह बड़ा भारी प्रश्न मालूम पड़ता था। उनकी दुविधा को देख कर मुझे बहुत हंसी आती और कभी २ तो मज़ाक करने की यहां तक सूझती कि उन्हें जाकर कहूँः—"दूसरा कोई स्त्री बने या न बने, आप तो अगले जन्म में ज़रूर स्त्री बनोगे।"

सर्दियों के दिन थे। मैं बैठा हुआ पुस्तक पढ़ रहा था। पास के कमरे में कुछ बहनें आग ताप रहीं थीं। एक बहिन बोलीः—"न जाने क्या पाप किया था कि परमात्मा ने स्त्री-योनि में डाल दिया। अब तो रोज़ परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूं कि अगले जन्म में किसी भी तरह से पुरुष बनावे। आज़ादी नहीं, चलना फिरना बन्द, हंस नहीं सकतीं, बात नहीं कर सकतीं, मनमाना काम नहीं कर सकतीं। पापों का फल नहीं तो क्या है?"

इस बात चीत ने मुझे सेठ जी की फिर याद करा दी। पुरुष, स्त्री बनने से डरते हैं; स्त्रियां, पुरुष-जीवन के लिये अपना सब कुछ वारने के लिये तैयार हैं। क्या इसका स्पष्ट अभिप्राय नहीं कि पुरुष योनि, स्त्री योनि की अपेक्षा उच्च योनि है? जब से मेरे सामने यह प्रश्न आया है तब मैंने बहुत से भाइयों के सामने इसे रखा है और पूछा हैः "क्या वे अगले जन्म में स्त्री होना पसन्द करेंगे?" प्रश्न करते साथ ही सब के हाथ कानों की तरफ़ गये और वे दीर्घ श्वास लेकर परमात्मा को स्मरण करते हुए बोलेः "भगवान् कभी ऐसा न करे"! इसके प्रतिकूल मैंने माताओं और बहनों के सामने भी यही प्रश्न रख कर पूछाः—"क्या वे अगले जन्म में भी स्त्री होना चाहती हैं?" सर्द आहों से सदा उत्तर निकला—"नहीं!"।

कई दार्शनिक, आत्मा को भी पुमान् तथा स्त्री मानते हैं उन के मत में पुरुष किसी भी जन्म में स्त्री नहीं हो सकता; स्त्री किसी भी जन्म में पुरुष नहीं हो सकती। स्त्रियों से यदि पूंछा जाय कि वे इस सिद्धान्त के विषय में क्या समझती हैं तो मुझे निश्चय है कि वे झुंझला कर उत्तर देंगी कि यह सिद्धान्त किसी पुरुष की गढ़न्त है। यदि किसी स्त्री को दार्शनिक सिद्धान्त निकालने की छुट्टी होती तो वह कहती कि प्रत्येक स्त्री अगले जन्म में पुरुष बन जाती है और पुरुषों को स्त्री जन्म लेकर सड़ना पड़ता है!

यूरुप के पुरुषों तथा स्त्रियों का भी यही हाल है। जिस जहाज़ से मैं भारत को लौट रहा था उस में कई अंग्रेज़ भी थे। नैरोबी के सेठ जी का प्रश्न मेरे दिमाग़ में

ताज़ा ही था। बात चीत में मैंने अपने एक अंग्रेज दोस्त से भी यही प्रश्न कर दिया। वह बड़ी ज़ोर से टेबल पर हाथ पटक कर बोलाः—"छिः ! स्त्री होना परमात्मा के न्याय में सब से बड़ा दण्ड है। उन का जीवन पशुओं से भी अधिक पशुता का होता है।" वह अंग्रेज़ काफ़ी पढ़ा लिया था और पुनर्जन्म के सिद्धान्त में भी विश्वास करता था।

मुझे इस सम्बन्ध में किसी अंग्रेज़ स्त्री के विचारों को सुनने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ परन्तु यदि कल्पना कोई चीज है तो मैं उन के विषय में भी यही कल्पना कर सकता हूँ। युरुप में स्त्रियों को पर्याप्त स्वतंत्रता मिली हुई है परन्तु वहां की देवियां भी उन पर किये गये अत्याचार के लिये परमात्मा को कोसती ही होंगी, यही मेरा विश्वास है।

मुझे निश्चय है कि मेरी इन पंक्तियों को जो भाई बहिन पढ़ेंगे वे सिर हिला २ कर दस बार कहेंगे—"लिखा तो बिल्कुल ठीक है!"

* * *

ठीक या गलत, मेरे हृदय में बार २ यही विचार उठता है कि स्त्री-योनि के प्रति जो घृणा के विश्वव्यापी भाव दिनों दिन प्रबल हो रहे हैं? क्या वे यथार्थ हैं? क्या उन का निवारण नही किया जा सकता? क्या स्त्रियों को जिस योनि में परमात्मा ने उत्पन्न किया है उसी में उन्हें सन्तोष नहीं दिया जा सकता स्त्रियां दिल मार, कर दूसरा कोई चारा न होने के सबब से ही नहीं परन्तु इच्छा पूर्वक स्त्री होना पसन्द करें, क्या ऐसी अवस्था नहीं लायी जा सकती? मैं तो इस से भी एक दम आगे बढ़ कर सोचता हूँः—क्या पुरुषों के हृदय में भी स्त्री जन्म के प्रति ऐसे सन्मान के भाव को उत्पन्न नहीं किया जा सकता जिस से पुरुष भी अगले जन्म में स्त्री होना ही पसन्द करने लगें।

इस में कोई सन्देह नहीं कि समाज के अत्याचारों से पीड़ित बहिनें इन बातों को पढ़ कर उदासी की हसी हंस देंगाः स्त्रियों के दैवीय भाव को न पहिचानने वाले अत्याचारी पुरुष थोड़ा सा खांस कर विषाद के अन्धकारमय आवरण से मस्तिष्क मंडल को ढांप लेंगे, परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि विवेकी भाई बहिन इन प्रश्नों को सुन कर माथा खुजलाएंगे और सोचेंगे—"क्या स्त्रियों के प्रति इस घृणा का अन्त नहीं हो सकता!"

* * *

मैं अपने देश के इतिहास के पन्नों को पलट रहा था। मैंने पढ़ा कि मेरे देश की माताएं मध्य कालीन इतिहास में लड़की को पैदा होते ही श्मशान का तरफ़ ले चलती थीं। मैंने पुस्तक बन्द कर उन बहिनों को स्मरण किया और उनकी स्मृति में उबलते हुए आंसू बहाने लगा। न जाने जिस कन्या को जीते जी लुप्त कर दिया गया, किस घर की रानी बनती किस हृदय-मही का शासन करती और किन नृसिंहों को जनती!

मैंने पढ़ा कि प्राचीन काल में पत्नियां हृदय---सम्राट् पतिदेव के मरते ही उसके साथ सती हो जाती थीं। मैं ढूंढने लगा कि क्या कोई पति भी अपनी प्राणप्रिया पत्नी के संसार को छोड़ते ही उसके साथ कूच कर गया है? मेरे देश का इतिहास इस विषय में मौन साध कर खड़ा हो गया! कुछ काल अनन्तर पत्नी के लिये सती होना बाधित हो गया और पति परमात्मा के पवित्र नियमों का उच्छृङ्खलता से उल्लंघन करने लगा। यदि स्त्रियों पर यह अत्याचार न होता तो न जाने शायद स्त्रियां आज अपने भाग्य से सन्तुष्ट ही दिखाई देतीं!

मेरे मित्र का आठ बरस की एक लड़की थी। लड़की की माता को उसकी छोटी से

छोटी भूल पर भी इतना क्रोध उठता था कि वह ज़रा २ सी बात पर लड़की का गला घोंटने तक लपकती थी। वह लड़की को उसके किसी वैय्यक्तिक दोष के कारण नहीं किन्तु केवल लड़की होने के कारण ही परमात्मा की तरफ़ से अपने कुल पर भयंकर शाप समझती थी। मैं बैठा २ सोचता था—"बेचारी भूल गई कि यह स्वयं किसी समय लड़की थी और अब भी मनुष्य नहीं हो गई!" परन्तु फिर एक दम विचार आता—"इस का भी क्या दोष है? यह लड़की को किसी द्वेष के कारण नहीं परन्तु प्रेम के कारण ही मारना चाहती है। स्वयं स्त्री होने के कारण स्त्री होने के परिणामों से भली भांति परिचित है!"

मुझे एक विवाह में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। पता चला कि लड़की ने लड़के को कभी देखा तक न था। याद आया कि भारत में तो यह रोज़ की कहानी है। यहां की लड़कियों को चाहे कितनी ही शिक्षा दी जाय, उन से आशा की जाती है कि विवाह के विषय में वे मुंह न खोलें। चुप रहें, हृदय के कपाट पर ताला ठोक दें। हमारी बहिनें भी ऐसे वायु मण्डल में पल कर यही समझने लगी हैं। वे समझती हैं कि खाने पीने, चलने, फिरने में वे पुरुषों की तरह जीवित हैं परन्तु विवाह के प्रश्न में वे मट्टी का ढेला हैं। लड़कियां सोचती होंगी कि यदि वे लड़का होतीं तो स्वतंत्र इच्छा से जैसी मर्ज़ी होती किया करतीं। अफ़सोस कि इस जन्म में वे लड़की बन नहीं सकतीं और अत्याचारपूर्ण अवस्थाओं को बदलने के लिये उन की तरफ़ से कोई उद्योग नहीं।

बैंगलौर में मुझे एक अंग्रेज़ी तरीके की शादी में सम्मिलित होना पड़ा। नाटकों में भी जिन बातों को असभ्य समझा जाता है वे बातें यहां सभ्य समाज में दिखाई दीं। स्त्रियों में जो स्वतन्त्रता मैंने वहां देखी उसे देख कर बड़ा हर्ष हुआ परन्तु, खेद से, वहां स्त्रियों में गम्भीरता का सर्वथा अभाव पाया। भारत की छोटी से छोटी लड़की गहरे से गहरा बनने का प्रयत्न करती है—कम से कम दिखावट तो अवश्य कर लेती है—परन्तु वहां तो उथले से उथला बनने का प्रयत्न था। कोई गहराई नहीं, शब्दों का कुछ अर्थ नहीं। जिस जीवन को उथला बनाने में दिन रात की मेहनत ख़र्च की जाय उसे मानवीय स्वभाव कैसे सराह सकता है। इसीलिये तो स्त्रियों को इतनी स्वच्छन्दता होते हुए भी युरुप की विरली ही स्त्रियां फिर से स्त्री बनने के लिये तैयार होंगी!

* * *

क्या स्त्रियों के प्रति घृणा के भाव का अन्त हो सकता है?"—हां, हो सकता है! एक ऐसा वायु मण्डल उत्पन्न करने की आवश्यकता है जिस में हमारी माताएं, बहिनें और देवियां खुली सांस ले सकें। ऐसी प्रबल लहरों को चलाने की जरूरत है जो स्त्री-जन्म की तुच्छता के विचारों को रेतीली चट्टानों से टकरा कर उन्हें चूर २ कर दें। ऐसे भावों को फैलाना ज़रूरी है जो 'देवी' शब्द का उच्चारण होते ही हमारे उन्नत मस्तिष्क को सन्मान के बोझ से नत कर दें। स्त्रियों के प्रति घृणा का भाव स्वयं काफूर हो जायगा।

परन्तु ऐसा वायुमंडल कैसे उत्पन्न किया जाय? ऐसी लहरें कैसे चलायी जांय? ऐसे भाव कैसे फैलाए जांय?

मेरा उत्तर है:-' 'क्रियात्मक जीवन से!"

स्त्रियां प्रत्येक कार्य के लिये पुरुषों की तरफ़ देखा करती हैं। यदि यह कार्य भी पुरुषों के हाथ से ही करवाना है तो इस काम

को हाथ न लगाना ही अच्छा है। पुरुषों से ही यह काम हुआ तो जिस बात का अभी तक रोना रोया है वह पक्की हो जायगी और स्त्रियों की निस्सारता सदा के लिये प्रमाणित हो जायगी। स्त्रियों को स्वयं हिम्मत करनी चाहिये। उन्हें अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिये कि उन्हें कोई मट्टी का ढेला कह कर न ठुकरा सके।

अब तक उल्टी लहरें छोड़ी गई हैं। स्त्रियों को किवाड़ों में बन्द रखा गया है। उन का दम घोंटा गया है। उन्हें प्राण-वायु की बहुत न्यून मात्रा दी गई है। क्या हमारी बहिनें इन बन्धनों को झटका देकर नहीं तोड़ सकतीं? लड़कियों को लड़के बनने की ज़रूरत नहीं, लड़की रहते हुए ही अपने अधिकारों को समझने की ज़रूरत है! पुत्रियों को पिताओं से, बहिनों को भाइयों से और पत्नियों को पतियों से फैसला करना चाहिये। लड़कियां जी कड़ा कर माता पिता से पूंछ लें कि क्या उन्हें सास की कहानियें सुना २ कर ही डराया जायगा या उनके साथ भी लड़कों का सा वर्ताव किया जायगा! बहिनें अपने भाइयों से पूछ लें कि क्या वे स्वयं शिक्षा तथा स्वतन्त्रता पर एकाधिकार रखेंगे या उन्हें भी अपनी इच्छा से हाथ पैर हिलाने का मौका देंगे! पत्नियां अपने पतियों से प्रश्न करें कि क्या उन्हें प्राणधारी जीव समझा जायगा या परमात्मा की फूंक का खेल समझकर उन्हें खिलौना मात्र बनाया जायगा। जब हमारी बहिनों में यह हिम्मत आ जायगी तब उनके प्रति घृणा के भाव का अन्त हो जायगा और उनके क्रियात्मक-जीवन से उन का विजय होगा।

लोग कहेंगे, मैं स्त्रियों में बग़ावत फैला रहा हूं। मैंने एक भाई को यह लेख पढ़ कर सुनाया। वे बोलेः अछूतों को भड़का कर आप लोगों ने सिर पर चढ़ाया अब स्त्रियों को भड़काइये और सिर चढ़ाइये। एक भूत के मारे ही जान आफ़त में थी अब दो भूतों से वास्ता पड़ेगा। मैं हंस पड़ा। मैंने कहाः- पहिले पुरुष सिर चढ़े हुए थे अब स्त्रियां चढ़ जांय तो बैलेन्स पूरा हो जायगा। या दोनों ही चढ़े रहेंगे या दोनों ही उतर जांयगे!

मैं ज्योति का कन्या गुरुकुलांक पढ़ रहा था। उस में 'एक एम० ए०' महोदय के लेख में पढ़ाः- "व्याख्यान जितना लम्बा चाहो दिलवा लो, शेक्सपीयर और टालस्टाय के लेखों में से चुने २ शब्द सुन लो ... उन्हें तो मेम साहब बनने का शौक चर्राया है और वह तो प्रायः अपने साहब बहादुर के साथ और उनकी अनुपस्थिति में कभी २ उनके मित्रों के साथ सिनेमा की सैर करना जानती हैं।"

हां! यदि स्त्रियों को सिर पर चढ़ाने का यही परिणाम होना है तो मैं भी कान पर हाथ लगाता हूँ। इस से तो बेशक बैलेन्स पूरा नहीं होगा लेकिन बग़ावत ही फैलेगी। भारत की सुशील तथा गम्भीर देवियां युरोपियन महिलाओं की तरह उथली होने लगेंगी। प्रश्न फिर भी वैसे का वैसा बना रहेगा। योरुप की बहिनें भी तो स्त्री-जन्म को धिक्कारती हैं। वे भी अपने जीवन से सन्तुष्ट नहीं। शिक्षा, स्वतन्त्रता तथा अधिकारों ने मिलकर भी तो स्त्री योनि को पुरुष योनि के बराबर नहीं बनाया!

स्त्रियां जहां अपने अधिकारों के लिये लड़ें वहां अपने कर्तव्यों का भी ध्यान रखें। शास्त्रों के अनुसार स्त्री का स्त्री होने के कारण महत्व नहीं परन्तु माता होने के कारण ही महत्व है। युरुप की स्त्रियाँ स्त्री भाव में ही रहती हैं और इसीलिये लाख करने पर भी उन में स्त्री जन्म के प्रति सन्मान नहीं उत्पन्न किया जा सकता। वे जब तक इसी भाव में

रहेंगी तब तक उनका जीवन भी उथला ही रहेगा। वे गन्ध हीन किंशुक पुष्प की तरह, सत्वहीन ढोल की तरह तथा चेतनाहीन लोहार की धौंकनी की तरह संसार में जियेंगी। उनकी क़द्र इससे बढ़कर न हो सकेगी। प्रत्येक स्त्री को सब से बड़ा अधिकार माता बनने का दिया गया है और इसी लिये उसका सब से बड़ा कर्तव्य भी यही है। युरुप की महिलाएं यही सोचती हैं कि वे कितने नवयुवकों का मन हरती हैं; भारत की देवियों का आदर्श यह है कि वे कितनों के लिये माता का कार्य कर सकती हैं। युरुप के पुरुष, स्त्री के प्रति उस के स्त्री होने के कारण खिंचते हैं; भारतीय आदर्श में वही पुरुष, स्त्री के प्रति खिंचने का अधिकारी है जो उस में वर्तमान मातृ---शक्ति के सन्मुख सिर झुकाते हों। जब हमारी बहिनें इन आदर्शों को अपने जीवन में क्रियात्मक रूप से घटालेंगी तब वे केसू के फूल की जगह कमल पुष्प बन जांयगी और तब स्त्रियों के प्रति घृणा के स्थान में संसार भर में उनके प्रति सन्मान का भाव उत्पन्न हो जायगा। तब सर्दियों के दिनों में मेरे पास वाले कमरे में आग सेकती हुई मेरी बहिन खुशी के मारे उछल पड़ेगी और कह उठेगी: "आहो मैं लड़की हूँ, लड़का नहीं!"

शुभ सन्देश।

ले०---पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कविपुष्कर'।

(१)

दुखमयी दुर्भावनायें छोड़ के, काम जो आकर पड़ा उसको लखो।
मत अविद्या के निरन्तर दास हो, दीनता-दुर्दैव का कटु फल चखो॥

(२)

जाति जीवन को बचाओ कटि कसो, कूट-वाद विवाद से मित्रो! बचो।
कार्य- साधन के लिये उद्योग से, कुछ नियम सच्चे सुधारक के रचो॥

(३)

धर्म धन का न नाश होने दो, एक होकर गहो भली शिक्षा।
पैर पर हो खड़े बनो स्वासी, मांगने मत चलो उदर-भिक्षा॥

(४)

वर्ण-आश्रम को पुनर्जीवित करो भीरुता की रज्जु को अब तोड़ दो।
संघटन में पूर्ण तुम सब भाग लो, ऊपरी सब ढोंग अपने छोड़ दो॥

(५)

मत अधमता में पड़े दिन दो गंवा, नीच-निन्दा मौन मारे मत सहो।
शीघ्र निज कर्त्तव्य पै आरूढ़ हो, सत्यव्रत को शुद्ध मन होके गहो॥

(६)

हिन्दुओ! अब उठो बहुत सोये, मोह की है निशा बुरी बीती।
तुम समय से न काम क्यों लेते? चाहते जो सुकीर्ति को जीती॥

(७)

प्राण रहते प्रण न जाने दो कभी, देह की ममता वृथा की मत करो।
एक ईश्वर को सभी कुछ मानके, दूसरे नर से न किंचित भी डरो॥

(८)

जो न दोगे ध्यान अपने गर्व में, तो तुम्हारा स्वत्व भी छिन जायगा।
और तुम्हारा नाम जो सर्वोच्च है, तुच्छ श्रेणी में कहा गिन जायगा॥

(९)

संघ की शक्ति है बड़ी कलि में, प्रेम, का भाव ही अनूठा है।
स्वार्थ तज जो इन्हें न अपनाया, चाटता अन्त में अंगूठा है॥

(१०)

पूज्य अपनी मान रक्षा के लिये, तुम सकल संसार को दो यह बता।
'कल्प तरु हम हैं' न भूंठे वृक्ष हैं, यह नहीं अब तक किसी को है पता॥

(११)

मर गई जग में अनेकों जातियाँ, दुष्टता कर और मर मर जायंगी।
पर हमारी जाति के अस्तित्व की, सत्यता. दृढ़ता-ध्वजा फहरायेंगी॥

(१२)

हम किसी से न द्वेष हैं करते, और न दुःख अन्य का कभी लखते।
जो हमें हाथ पर लिये रहता, हम उसे शीश पै सदा रखते॥

मनुष्यों तथा पशु पक्षियों के कार्यों में भेद ।

क्या मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति (FREE WILL) विद्यमान है वा नहीं?

लेखक—श्री० गुरुदत्त सिद्धान्तालंकार

(अक्टूबर से आगे)

गतांक में हमने मनुष्य के स्वतन्त्र कार्य्य करनेकी शक्तिकी विद्यमानताको निरूपण करते हुए बहुत से प्रमाण और युक्तियां अपने पक्ष के समर्थन में दी थीं। उपर्युक्त सारी युक्तियों के अतिरिक्त एक और प्रबल युक्ति हमें मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य्य करने की शक्ति (Free will) को मानने के लिये बाधित करती है । संसार के अन्दर पाप और पुण्य की सत्ता भी हमें मनुष्य में स्वतन्त्र इच्छा (Free will) मानने के लिये बाधित करती है । पाप, पुण्य की सत्ता को दुनियाँ के सभी धर्म तथा सभी तत्वज्ञानी और विचारक मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं । यदि मनुष्य के अन्दर कोई ऐसी चेतनसत्ता विद्यमान नहीं है जोकि कार्य्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र हो तथा अपनी इच्छा के अनुकूल शरीर पर शासन कर सके, जबतक कि मनुष्य के कार्य उस के अपने स्वतन्त्र निर्णय के परिणाम न हों, तबतक मनुष्य को धर्मात्मा अथवा अधर्मात्मा, पुण्यात्मा वा पापी किस प्रकार ठहराया जा सकता है? यदि हमारी सारी क्रियायें तथा कार्य किसी आन्तरिक स्वतन्त्र चेतन सत्ता द्वारा न की गई हों, अपितु वे बाह्य द्रव्य (Matter) से उत्पन्न (Sensation) इन्द्रियानुभवों से उत्पन्न होने वाली मस्तिष्क सम्बन्धीअणुओं (Cerebral atoms की गति का अथवा उनकी विशेष २ अवस्थाओं का परिणाम हों तो फिर मनुष्यों और पशु, पक्षियों के कार्यों में कुछ भी भेद न हुआ । क्योंकि पशु पक्षियों के कार्य भी ठीक इसी प्रकार के होते हैं। बाह्य द्रव्य (Object) पशु पक्षियों में एक नियत (Impulse) को पैदा करता है। उनके सारे कार्य्य बाह्य पदार्थ वा द्रव्य से उत्पन्न होने वाले इन्द्रियानुभवों (Sensations) द्वारा उत्पन्न नर्वस के अणुओं की गति अथवा नर्वस सम्बन्धी अणुओं की विशेष २ अवस्थाओं के परिणाम मात्र होते हैं। यदि पशु पक्षियों और मनुष्यों के कार्यों में कुछ भी भेद न माना जाय, तथा मनुष्यों के कार्य भी पशु, पक्षियों की तरह यान्त्रिक माने जांय तो फिर मनुष्योंको भी पशु पक्षियों की तरह सदाचारशून्य (Non-moral) प्राणियों की श्रेणी में गिना जाना चाहिये। यदि मनुष्य के सारे कार्य यान्त्रिक माने जांय और उसमें स्वतन्त्र इच्छा को न माना जाय, तो फिर पाप पुण्य, कर्त्तव्याकर्त्तव्य तथा आचार, अनाचार में कुछ भी भेद नहीं किया जा सकता । क्योंकि जब पाप और पुण्य दोनों ही मस्तिष्क सम्बन्धी अणुओं (Cerebral atoms) की गति अथवा उनकी विशेष २ अवस्थाओं के ही परिणाम मात्र हैं, तो फिर पाप पुण्य में तथा आचार और अनाचार में कुछ भी भेद नहीं रहता। यदि मनुष्योंके कार्य भी पशु पक्षियोंकी तरह यांत्रिक ही होते हैं, तथा उसमें स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति नहीं है, यदि Sensation द्वारा उत्पन्न मस्तिष्क संबंधी अणुओं की गतियां अथवा इनकी विशेष २ अवस्थायें ही केवल मात्र मनुष्यों के कार्यों की नियामक हैं,

तथा मनुष्यों में स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति को रखने वाली कोई चेतन सत्ता विद्यमान नहीं है, तब फिर पापी और पुण्यात्मा के कार्यों में कुछ भी भेद नहीं रहता। पापी मनुष्य के पाप कर्म उसके मस्तिष्क संबंधी अणुओं की भिन्न २ गतियों और विशेषावस्थाओं के परिणाम हैं, जिन्हें कि वह करने के लिये बाधित है। तब फिर पापी को अपने पाप कर्मों के लिये दंड क्यों दिया जाय? क्योंकि जब वह कार्य करने में स्वतंत्र नहीं है, तथा यंत्र और कला की तरह प्रकृति के आधीन है, ऐसी अवस्था में उसे अपने कार्यों का ज़िम्मेवार ठहराना तथा उनके लिये उसे दंड देना महान् अन्याय है। इसी तरह महात्मा गांधी जैसे पुण्यात्मा मनुष्यों को भी अपने पुण्य कार्यों के लिये किसी प्रकार का भी पुरस्कार, श्रेय तथा साधुवाद न मिलना चाहिये, क्योंकि यह उनके अपने प्रयत्न का परिणाम तो है ही नहीं, तो फिर उनकी प्रशंसा क्यों की जाय? इस तरह मनुष्य में free will को स्वीकार न करने से पाप और पुण्य की सत्ता ही इस दुनियां से नष्ट हो जाती है। जड़वादी वैज्ञानिक यह समझ ही नहीं सकता, कि वह अपने चन्द तुच्छ विश्वासों की रक्षा के लिये सदाचार और पुण्य जैसे अमूल्य रत्नों का नाश कर दुनियां को तबाह करना चाहता है।

यदि मनुष्य में Free will को स्वीकार न किया जाय, तो इस अवस्था में मनुष्य में उत्पन्न होने वाले सदाचार संबंधी संघर्ष (moral struggle) का–जिसे हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में देवासुर संग्राम के नाम से पुकारा गया है—कुछ भी समाधान नहीं दिया जा सकता। क्योंकि मनुष्यों के कार्यों को यांत्रिक समझने वाले शुद्ध जड़वादी वैज्ञानिकों को यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि जैसे बाह्यद्रव्य पशु पक्षियों में एक नियत Impulse को पैदा करते हैं, तथा उनके काय उनमें बाह्य द्रव्यों द्वारा उत्पन्न नियत आँतरिक Impulse के प्रकाशक मात्र ही होते हैं—चूंकि प्रत्येक द्रव्य मस्तिष्क संबंधी अणुओं (cerebral atoms) में अपनी प्रकृति वा स्वभाव के अनुकूल एक नियत गति को ही पैदा कर सकता है- इस अवस्था में हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि बाह्यद्रव्य द्वारा मस्तिष्क संबंधी अणुओं में दो परस्पर विरोधिनी गतियां किस तरह उत्पन्न हो सकती हैं? शुद्ध जड़वादी वैज्ञानिक न तो इसका कोई संतोष जनक समाधान ही कर सकते हैं और न ही वे इसका कोई भौतिक कारण ही बता सकते हैं। जिस प्रकार चूहे को देखते ही बिल्ली के नर्वस में एक विशेष प्रकार की गति उत्पन्न होती है, जिसकी प्रतिक्रिया अथवा जवाब के रूप में बिल्ली चूहेको देखते ही ज्ञानरहित मैशीन की तरह अंधाधुन्ध उसे पकड़ने के लिये दौड़ती है उस में किसी प्रकार का संघर्ष वा तर्कवितर्क पैदा नहीं होता। इसी प्रकार पशु, पक्षियों का प्रत्येक कार्य यन्त्रकी तरह नियत, अन्धाधुन्ध (Blind) तथा बिचार और संघर्ष रहित होता है। परन्तु मनुष्यों के कार्य पशु पक्षियों से बिल्कुल विरुद्ध होते हैं। मनुष्यों में एक विशेष प्रकार का सदाचार संबंधी संघर्ष समय २ पर उत्पन्न होता है यह एक अनुभूत सच्चाई (fact) है। पापी से पापी पुरुष से लेकर ऊंचे से ऊंचे धर्मात्मा पुरुष तक प्रत्येक से इस उपर्युक्त सचाई की साक्षी ली जा सकती है। एक द्रव्य मनुष्य के मस्तिष्क संबंधी अणुओं में किस प्रकार इस तरह गति को पैदा कर सकता है, जो कि उस द्रव्य की स्वभाविक

प्रकृति (Inherent nature) के विरोधी भाव या भावसमूहों को उत्पन्न करे ? एक महात्मा वा साधु स्वभाव पुरुष के मन में अपने कट्टर दुश्मन को देख कर एक दम बदले और क्रोध के भावों के साथ २ इनके विरोधी करुणा और क्षमा के भाव उत्पन्न होते हैं। उस समय इन दोनों प्रकार के परस्पर विरोधी भावों में संघर्ष उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य में (Free will) को न मान कर उसके सभी कार्यों को यांत्रिक ही समझा जाय, तो इस अवस्था में किसी प्रकार का भी सदाचार संबंधी संघर्ष मनुष्यों में उत्पन्न न होना चाहिये। परन्तु यह संघर्ष जीवन में समय २ पर प्रत्येक मनुष्य में उत्पन्न होता है। यह एक अनुभूत सचाई है, इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। यदि मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति को स्वीकार न किया जाय, तथा उसके प्रत्येक काय को यान्त्रिक ही माना जाय तो ऐसी अवस्था में मनुष्य में उत्पन्न होने वाले सदाचार संबंधी संघर्ष वा देवासुर संग्राम का जड़वादी वैज्ञानिकों तथा डार्विन और हैकल के अनुयायियों की तरफ से कोई भी सतोषजनक भौतिक कारण नहीं बताया जा सकता।

मैकेनिज़्म (यंत्रविद्या) का यह सिद्धान्त है, कि भौतिक और यान्त्रिक गतियां सीधी रेखा में चलती हैं, तथा जबतक उनकी दिशा न बदली जाय, तबतक वे सीधी एक ही दिशा में चलती हैं। कोई भी यांत्रिक वा भौतिक गति एक क्षण वा एक ही समय में दो भिन्न २ वा विरोधी दिशाओं में कभी नहीं चलतीं। यंत्रविद्या (मैकेनिज़्म) के इस उपर्युक्त नियम के अनुकूल एक बाह्य पदार्थ (Object) एक ही समय में एक दिमाग़ के अणुओं में किस प्रकार से दो या दो से अधिक परस्पर विरोधिनी गतियों को उत्पन्न कर सकता है? यान्त्रिकता के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर यह हमारी समझ में आ ही नहीं सकता, कि काम के भावों को पैदा करने वाले पदार्थ को देख कर एक महात्मा के मस्तिष्क संबन्धी अणुओं (Cerebral atoms) में इस प्रकार की गति कैसे उत्पन्न होती है, कि महात्मा को उस पदार्थ से घृणा पैदा होती है, तथा उस पदार्थ के स्वाभाविक गुण (Inherent nature) के विरोधी ब्रह्मचर्य्य संबन्धी भाव तत्काल ही उसके मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। कारण के विरोधी गुण भी परिणाम व कार्य में उत्पन्न हो सकते हैं, यह विचार तर्क और विज्ञान दोनों के ही विरुद्ध है। इसके स्वीकार करने पर हमें असत् से सत् की, तथा शून्य से भावमय पदार्थों की उत्पत्ति मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है। यह सिद्धान्त केवल विज्ञान विरोधी ही नहीं अपितु बिलकुल मूर्खतापूर्ण (Absurd and Nonsense) है। अतः जड़वादी वैज्ञानिक तथा डार्विन और हैकल के अनुयायी मैकेनिज़्म के सिद्धान्त के अनुसार भी मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले सदाचारसंबन्धी संघर्ष (Moral struggle) का कोई भौतिक कारण नहीं बता सकते। मनुष्य के कार्यों को यान्त्रिक मानने पर मन में देवासुर संग्राम का छिड़ना मैकेनिज़्म के गति संबधी सिद्धान्तके विरुद्ध है। परन्तु यह एक अनुभूत सचाई (fact) है, इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। अतः जबतक मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति को स्वीकार न किया जाय, तबतक मनुष्य में उत्पन्न होने वाले इस सदाचारसंबन्धी संघर्ष का भी कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं दिया जा सकता।

यदि मनुष्यों के कार्य को पशु, पक्षियों के कार्यों का तरह यांत्रिक माना जाय तथा मनुष्यों में एक ऐसी स्वतन्त्र चेतन अधिष्ठातृ सत्ता को स्वीकार न किया जाय, जो कि शरीर तथा मस्तिष्क की हरकतों और क्रियाओं का निरीक्षण करे, तथा इन्द्रियों,मन,तथा मस्तिष्कादि साधनों द्वारा अपने अनुकूल क्रियाओं को तो करवाये, परन्तु प्रतिकूल अथवा विरोधी कार्यों का विरोध करे तो इस अवस्था में मनुष्यों के कार्य भी पशु पक्षियों के कार्यों की तरह नियत और विकल्प रहित होने चाहियें।

कहा जा सकता है, कि मस्तिष्क की भिन्नता के कारण मनुष्यों के कार्यों में भिन्नता संभव है। क्योंकि संतति में मस्तिष्क पूर्व वंशजों अथवा माता पिता द्वारा संक्रान्त होता है, अतः संतति का मस्तिष्क पिता वा वंश के अनुकूल होता है। मस्तिष्क के भिन्न होने के कारण बाह्य द्रव्य या बाह्य परिस्थितियां भी प्रत्येक मनुष्य पर भिन्न २ प्रभाव डालती हैं, अतएव मनुष्यों की क्रियायें भी भिन्न होती हैं। वंशानुगत और पैतृक संस्कारों के अतिरिक्त शिक्षा भी मनुष्य के मस्तिष्क और उनकी क्रियाओं पर बड़ा भारी प्रभाव डालती है। भिन्न २ शिक्षा तथा समाज और राष्ट्र के भिन्न २ रीति रिवाज भी क्रिया भेद के प्रधान कारण माने जा सकते हैं। परन्तु परिस्थति, पैतृक और वंशानुगत संस्कारों तथा शिक्षा के एक जैसा होने पर भी हम पिता पुत्र तथा भाई२ के संस्कारों तथा क्रियाओं में आकाश और पाताल का भेद पाते हैं। शुद्ध जड़वादी तथा भौतिक विकासवाद के अनुयायी इसका कोई संतोषजनक भौतिक कारण नहीं बता सकते। बालक मूलशंकर (स्वामी दयानन्द) में अपने वंश वा माता पिता द्वारा ही मस्तिष्क संक्रान्त हुआ था, माता पिताने उसे अपने अनुकूल ही शिक्षा दिलवाई थी। बालक मूलशंकर के बन्धु बांधव लोग,गुरुजन तथा उसके चारों ओर की सामाजिक परिस्थिति और सामाजिक रीति रिवाज उसके अनुकूल न थी। परन्तु बालक मूलशंकर और उसके माता पिता की प्रवृत्तियों और क्रियायों में आकाश पाताल का भेद दिखाई देता है। बालक मूलशंकर की बाल्य अवस्था से ही वैराग्य की ओर प्रबल प्रवृत्ति दिखाई देती है। बहिन की मृत्यु हो जाने पर माता पिता तो सर्वधारण पुरुषों की तरह रोने धोने में प्रवृत्त होते हैं, सारा घर तथा सारे बन्धुबांधव लोग शोकमें निमग्न हैं, परन्तु बालक मूलशंकर की आंखों से एक भी शोक का अश्रु नहीं टपका, वह तो उस दृश्य को देखकर एक तरफ निष्चेष्ट खड़ा हुआ किसी और ही गहरी विचारधारा में मग्न है। उस समय उसके हृदय और दिमाग़ वैराग्य की लहरों से आक्रान्त हो रहे हैं। ज्यों २ माता पिता उसे संसार के कड़े बन्धनों में जकड़ना चाहते हैं, त्यों २ मूलशङ्कर के हृदय में वैराग्य का अंकुर धीरे जड़ जमाता जाता है तथा वैराग्य की तरंगें प्रबल होती जाती हैं। ज्योंही माता पिता ने मूलशङ्कर को विवाह और गृहस्थ के कड़े बन्धनों में जकड़ने का पूरा उपक्रम बांध लिया, उसी समय मूलशङ्कर ने घर को त्याग कर जंगल की राह पकड़ ली। इसी प्रकार महात्मा बुद्ध भी राजवंश में उत्पन्न हुए थे, उनमें राजवंश का मस्तिष्क उसके माता पिता तथा वंश द्वारा संक्रान्त हुआ था। परन्तु बुद्ध की प्रवृत्तियां बाल्यावस्था से ही अपने माता पिता वा अन्य पूर्व वंशजों के विरुद्ध थीं।

उसमें बाल्यावस्था से ही ब्राह्मणों और सन्यासियों की वैराग्यमयी सात्विक वृत्ति की प्रधानता थी। माता पिता तथा गुरुओं की तरफ से महात्मा बुद्ध की इस प्रवृत्ति को दवाने का यत्न किया गया। महात्मा बुद्ध को राजकीय ठाठ बाठ से वैराग्य की विरोधिनी राजसिक शिक्षा दी गई। महात्मा बुद्ध को राजसी ठाठ में पाला पोसा गया, उसपर चारों ओर से कड़ी निगरानी रखी गयी। भोग ऐश्वर्य और शृङ्गारमयी परिस्थिति में उसे रखा गया कि उसमें वैराग्य के भाव उत्पन्न ही न होने पायें, यहां तक कि माता पिता ने उसे विवाह और गृहस्थ के बन्धनों में भी फांस लिया, परन्तु अन्तिम परिणाम इन सब के विरुद्ध हुआ। वैराग्य की प्रबल लहर ने महात्मा बुद्ध के हृदय को आक्रान्त कर लिया, इससे प्रभावित होकर बुद्ध ने सारे राजकीय ठाठबाठ, ऐश्वर्य, भोग विलास और राजमहल को लात मार तथा साधुओं का वेश धारण करके जंगल की राह पकड़ ली। उपर्युक्त उदाहरणों में बालक मूलशंकर तथा महात्मा बुद्ध के कार्य उनके पैतृक और वंशानुगत संस्कारों, शिक्षा, रीति रिवाजों तथा उनके चारों ओर की बाह्य परिस्थितियों के विरोधी हैं। यदि मनुष्य के कार्य भी केवल मात्र मस्तिष्क सम्बन्धी अणुओं की गति या विशेष २ अवस्थाओं के ही परिणाम समझे जांय, तथा पशु पक्षियों के कार्यों की तरह यांत्रिक माने जांय, तथा आत्मा में कृतत्व-शक्ति वा कृतत्वके गुण (Causal efficacy) को न माना जाय, तो इस प्रकार का विरोध तथा कार्य वैलक्षण कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है।

जड़वादी तथा भौतिक विकास सिद्धांत के अनुयायी लोग इस उपर्युक्त Fact का न तो सन्तोषजनक समाधान ही कर सकते हैं और न ही वे इसके लिये कोई भौतिक कारण ही दे सकते हैं। यदि मनुष्य के काया को केवल मात्र उनके मस्तिष्क संबन्धी अणुओं की गति का ही परिणाम माना जाय तथा पशु, पक्षियों के कार्यों की तरह यान्त्रिक माना जाय, तो ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उठता है, कि मनुष्यों के कार्य भी पशु पक्षियों की तरह नियत, अटल और विकल्पशून्य क्यों नहीं हैं? मनुष्यों में हर-क्षण नाना प्रकार के संकल्प क्यों उठते रहते हैं? मनुष्यों के कार्यों को यान्त्रिक मानने की अवस्था में एक यह भी शंका उठती है कि जैसे पशु, पक्षियों के कार्यों, क्रियाओं और हरकतों की पूर्व कल्पना (Prediction) हम भली भांति कर सकते हैं, कि अमुक २ पदार्थ के प्रत्यक्ष या दृष्टिगोचर होने पर तथा अमुक २ अवस्थाओं में अमुक २ पशु पक्षी निम्न २ क्रियायें अथवा निम्न २ हरकतें करेंगे, वैसे मनुष्यों के कार्यों के विषय में इस प्रकार की पूर्व कल्पना करना एक प्रकार से असम्भव है। जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है, कि मनुष्यों के कार्य और मार्ग परस्पर एक दूसरे से इतने ज़्यादा भिन्न हैं, कि उनके विषय में पूर्वकल्पना करना बिलकुल असम्भव है। इन उपर्युक्त आक्षेपों के अतिरिक्त यान्त्रिकता के पक्ष पर अन्य भी बड़ी २ आपत्तियां उठाई जा सकती हैं। यदि मनुष्यों के कार्यों को नियत और यान्त्रिक मान लिया जाय, तो फिर आचार अनाचार, पाप पुण्य कर्त्तव्याकर्त्तव्य में कुछ भी भेद नहीं रहता। मनुष्यों के कार्यों को यान्त्रिक मानने पर इनकी सत्ता ही बिलकुल नष्ट होजाती है। इस अवस्था में सारा का

सारा सदाचार शास्त्र तथा सदाचार की निर्णायक भिन्न २ कसौटियां बिलकुल ही व्यर्थ हो जाती हैं। अतः उपरि वर्णित दोषों के कारण यान्त्रिकता का पक्ष केवल गलत ही नहीं, अपितु संसार और मनुष्यमात्र (Humanity) के वास्ते परम घातक सिद्ध होता है अतः हमें मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति को अवश्य ही स्वीकार करना चाहिये।

परिवर्तन

(बंगाल के एकाल सेकाल के आधार पर)

(गतांक से आगे)

लेο—श्रीकृष्ण पांडे

फिर दोनों चुप होगये। स्वामी के कंधेपर कंधा रख कर विमला सो रही थी, दुःख, दुर्भाग्य के प्रलय का गाढ़ अंधकार थोड़ी देर के लिये सुख सौभाग्य की उज्वलता से ढक गया। वर्षा बीत गई, तरंग का भी भय नहीं रहा। अपने दुर्लभ प्रेम से चुम्बन दान देकर निर्मल कहने लगा "शोभा! वह कौन है? उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध? केवल दो दिन की मुलाकात मात्र। और तुम, तुम चिरजीवन की—जीवन मरण की संगिनी हो।"

शोभा चाहे कोई क्यों न हो, उसके साथ स्वामी का चाहे जो सम्बन्ध हो, एक आर्य रमणी को, हिंदू गृहस्थ की बहू को, इसके विचारने की कोई आवश्यता नहीं। तबभी विमला का हृदय एक वार कांप उठा। उसने अस्पष्ट स्वर में कहा—"शोभा कौन? वह चाहै कोई हो, लेकिन तुम-तुम मेरे हो।"

इलाहाबाद के एक बड़े जमींदार बा. पूलिन बिहारी के एक मात्र पुत्र बा० नन्दकिशोर के साथ सतीश ने शोभा का विवाह कर दिया यद्यपि शोभा इस ब्याह के बिलकुल विरुद्ध थी, लाख चेष्टा करने पर भी वह निर्मल की योद को अपने दिल से दूर नहीं कर सकी, परन्तु भाई सतीश के अनुरोध की रक्षा न करने से उसे दुःख होगा, यह समझ और सतीश के विशेष आग्रह करने पर वह राजी होगई। दोनों ओर से बड़े २ आयोजन होने लगे। सतीश ने मन खोलकर खर्च किया, अगर उसे कोई खर्च कम करने के लिये कहता तो वह नम्र शब्दों मे यही उत्तर देता कि-"मेरे एक ही बहिन है और वह भी दुर्भाग्य से मातृ पितृ हीन, अगर आज पिता जी या मां होतीं तो न मालूम और क्या २ होता, मैं तो कुछ भी नहीं करता हूँ।" बस इसके आगे किसी को कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती।

शोभा को ससुराल गये कई दिन हो गये, सतीश का अकेले घर में मन नहीं लगता। उसका कोई ऐसा मित्र भी नहीं जिसके यहां जाकर घंटा आध घंटा दिल बहला आवे, केवल एक निर्मल बाबू से ही उसका इतना परिचय था सो वह भी यहां नहीं हैं। इसीलिये वह मैदान में घूमने की गरज से घर से बाहर निकला, वह हरिसन रोड़ के चौहराहे पर पहुंचा होगा कि उसने निर्मल को ट्राम पर जाते देखा। दूरसे ही सतीश ने पुकारा "निर्मल बाबू! घर से कब आये?" निर्मल ट्राम से उतर पड़ा, उसने

सतीश के नमस्कार का उत्तर देते हुए कहा "आज सबेरे, कहिये आप सब मजे में हैं न?"

"परमात्मा किसी तरह दिन काट देता है। कहिये घर से सब कोई को ले आये न ?"

"नहीं अकेला मैं ही आया हूं।"

सतीश ने आग्रह से पूछा "कहां जारहे हैं, चलिये घर चलें। आजकल शोभा भी नहीं हैं सो……"निर्मल ने बीच ही में बात काट कर पूंछा "क्या शोभा यहां नहीं है, उसके तो बाहर जाने की कोई बात नहीं थी ?"

सतीश—"नहीं बाहर जाने की तो कोई बात नहीं थी, लेकिन मन माफ़िक वर मिलने से विवाह में देर करने का साहस नहीं हुआ।"

निर्मल पूरी बात नहीं सुनने पाया, न मालूम किसने उसके कानों को बन्द कर दिया, उसके पैरों तले की मिट्टी निकल गई, सारा शरीर अवसन्न हो गया, और उस में अधिक देरतक खड़े रहने की शक्ति नहीं रही। अतः वह टेलीफोन के खम्भे का सहारा लेकर खड़ा २ कांपने लगा। उसकी यह हालत देख कर सतीश के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वह मन ही मन कहने लगा "यह देश का कितना गहरा अधःपतन है, जो शिक्षा के अभिमान से अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं वही इतने भ्रांत, इतने चरित्र हीन हैं, हाय अफ़सोस!" सचमुच ही उसके मन में बड़ा दुःख हुआ। उसने सहानुभूति पूर्ण शब्दों में कहा "हैं, हैं, यह क्या ? आपतो रास्ते में ही बैठ गये, मेरे उधर चलिये न ?"

निर्मल ने अपने आपको सम्भालते हुए बड़े कष्ट से उत्तर दिया "सतीश बाबू ! माफ कीजियेगा। एकाएक मेरा शरीर कुछ गड़-बड़ होगया है अब मैं नहीं जा सकूंगा, क्षमा करें। कृपा करके एक गाड़ी मुझे भाड़े करदें ताकि मैं घर जा सकूं"। "अच्छी बात है।" कहकर उसने एक गाड़ी किराये पर कर निर्मल को उसमें बैठा, नमस्कार कर बोला "अच्छा, अभी आप जायं, किन्तु ऐसी अवस्था में आपका अकेले यहां आना अच्छा नहीं हुआ। अच्छा, स्वस्थ होने पर एक बार मुलाकात कीजियेगा।" यह कहकर सतीश चला गया। थोड़ी देर बाद ही गाड़ी निर्मल के दरवाजे पर पहुंच गई। गाड़ी वाले को भाड़ा चुका निर्मल अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके सोगया। लेकिन चेष्टा करने पर भी उसे नींद नहीं आई, वह पड़े २ जमीन आसमान के कुलावे मिलाने लगा। सोचते २ उसने अस्पष्ट स्वर में कहा "विमल ! मेरे जीवन को इस प्रकार विफल करना क्या ठीक था ? तब भी तो तेरी स्मृति को नहीं भूल सकता, तुम अगर किसी तरह मुझे रोक सकती तो आज मेरी यह दशा नहीं होती।" इतने में ही किवाड़ खोलकर बहरा ने प्रवेश किया, निर्मल ने पूंछा "क्या है ?" बहरा ने डरते २ कहा "एक बाबू……" निर्मल ने कड़े स्वर में कहा "कह नहीं सका, तबीयत खराब है इतनी रात को नहीं जायेंगे।"

'इसका कुछ दोष नहीं जो कुछ भी कसूर है, सो मेरा है। सन्तान की माया के कारण असमय में ही आपको कष्ट दिया,,इस को क्षमा करें।"

आगन्तुक वृद्ध का कातरभाव देख निर्मल पलंग से उठकर खड़ा हो गया और नमस्कार कर सहानुभूति से पूंछा "कहिये २ आपका क्या काम है ?"

वृद्ध ने करुणस्वर से कहा 'डाक्टर बाबू ! दया कीजिये। आपको कष्ट तो अवश्य होगा पर क्या करूं मेरी मातृहीना कन्या इस वक्त बड़े कष्ट में है।"

निर्मल ने बीच ही में बाधा देकर कहा "इतनी आजीजी की कोई जरूरत नहीं, मेरा तो यही काम है। कहिये कहां चलना होगा?"

वृद्ध ने कहा "यहीं पास में। इसी लिये तो यह सोच कर चला आया कि इतनी रात को किसे ढूंढने जाऊंगा, आप तो बगल ही में रहते हैं।"

निर्मल ने वृद्ध की बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया, जल्दी से एक कमीज पहन और अपनी डाक्टरी कीबेग लेकर वृद्ध के साथ कमरे के बाहर चला आया। रास्ते में उसने रोगी की हालत जानने के लिये वृद्ध से कई प्रश्न किये लेकिन उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई। लगभग १०-१५ मकानके बाद वृद्ध का मकान आगया, दोनों जने रोगी की शय्या के पास आकर खड़े हो गये। एक साफ़ सुथरे बिछौने पर एक युवती उत्सुक नेत्रों से बाहर की ओर देख रही थी,जैसे किसी की प्रतीक्षा कर कर रही हो। युवती से आंखे,मिलते ही क्षीण हंसी के साथ निर्मल ने सिर झुका लिया। युवती ने बृद्ध की ओर लक्ष करके कहा "बाबूजी आप आगये।" वृद्ध ने कन्या की बात पर कुछ ध्यान न देकर निर्मल से कहा "डाक्टर बाबू। यही मेरी एक मात्र कन्या है। आज सबेरे से ही माथे की वेदना से ही छटपटा रही है अभी आध घण्टे से तो दर्द और प्यास के कारण चिल्ला रही थी।"

युवती ने अपनी रसीली आंखों से कटाक्ष छोड़ मुस्कराते हुए कहा "ऐसी कोई बात नहीं है डाक्टर बाबू! किसी ने कहा है कि अधिक स्नेह होने से अनिष्ट की आशंका होती है, यह भी वही बात है?",

तरुण रमणी के कोमल कण्ठ से निकली हुई मधुर बाणी निर्मल के हृदय में बीणा की तार की तरह झंकारने लगी। वह अपने आपको भूल गया,शोभा और बिमला की बातों का उसे ध्यान तक नहीं रहा,थोड़ी देर के लिये उसका दग्ध हृदय शीतल होगया। लेकिन क्षण भर बाद ही उसने अपने को भाल लिया। वृद्धने सस्नेह कहा "इस तरह रोग को मत छिपाओ नीलिमा?"

"रोग तो और कुछ नहीं, माथा दर्द करता था सो ओड़ी कालन दिया, थोड़ी देर में मिट जायगा" निर्मल इतनी देर तक अपने विचारों में मस्त था, रोगी के मुख से रोग सुनकर उसने वृद्ध से कहा—

"अब केवल दो तीन घण्टा रात और बाकी है, सुबह तक ओड़ी कोलन देकर काम चलावें सुबह खबर दीजियेगा। अगर आवश्यकता होगी तो प्रेसक्रीप्सन लिख दूंगा।" "यही ठीक है" कह कर नीलिमा ने भी निर्मल का समर्थन किया। वृद्ध ने फिर कहा "जरा नाड़ी देख लेते तो ....।" "नाड़ी क्या देखूंगा, केवल माथे का दरद तो है, और तो कुछ नहीं? अच्छा अब मैं जाता हूँ।" कह कर वह चेयर से उठ गया, वृद्ध एक दस रुपये का नोट देने लगे, निर्मल ने नम्र शब्दों में कहा—"इसकी कोई आवश्यकता न थी, मुझे तो कुछ करना नहीं पड़ा।"

वृद्ध ने संकोच के साथ कन्या की ओर देखा, नीलिमा ने पिता के हाथ से नोट लेकर कहा "नहीं ऐसा मत कीजिये। विजिट न लेने से पिता जी के मन में कुछ खुटका होगा। सम्भव है वह समझने लगें कि कोई सख़्त बिमारी है।"इतना कहते २ नीलिमा ने निर्मल की पाकिट में नोट डाल दिया। निर्मल भी इसका विरोध न कर सका, अतः शीघ्रता से सीढ़ी उतर कर बाहर रास्ते पर आगया।

रोगी को देख कर जिस वक़्त निर्मल घर लौट कर आया, उस समय आकाश का पूर्व भाग स्वच्छ हो गया था। शिशु की तरह सरल हंसी के साथ प्रकृति प्रभात को वरण करने के लिये प्रतीक्षा कर रही थी। शीतल

हवा के लगने से निर्मल का शरीर पुलकायमान हो गया, भोर होने में थोड़ी देर जान कर वह बाहर ही गाड़ी बारन्डे में ईज़ी चेयर पर लेट गया और प्रातः काल की प्रतीक्षा करने लगा। सारी सारी रात बिना खाये पिये, जाग कर अपनी वर्त्तमान अवस्था से युद्ध करते २ वह शिथिल हो गया था, इस से इस समय की ठंढी हवा के लगते ही उसे नींद आगई, वह सारी चिन्ताओं को त्याग कर शान्तिदायिनी निद्रा देवी की गोद में आराम करने लगा।

प्रातःकाल के सूर्य की प्रथम किरण के निकलते ही किसी ने पुकारा 'निर्मल बाबू।"

निर्मल की नींद खुल गई दोनों हाथों से आंखें पोंछते २ उसने सतीश को सामने खड़े देखा। इतने सबेरे सतीश के आने का क्या कारण है यह उसकी समझ में नहीं आया, उसने आश्चर्य से पूंछाः "इतने सबेरे आप कैसे आये ?"

सतीश ने धीरता से कहा " मालूम होता है कि आप इस से ताज्जुब करते हैं। आप तो जानते ही हैं कि मुझे घूमने का रोग है, मेरे लिये सुबह शाम क्या ? सोचा कल आप को ऐसी अवस्था में अकेले छोड़ कर चले जाना मुझे उचित नहीं था, इसी से इस वक्त आगया।"

"बैठिये मैं हाथ मुंह धो आऊं" कह कर निर्मल जाने के लिये तय्यार हुआ, लेकिन सतीश ने रोक कर कहा "कोई जरूरी काम है क्या ? नहीं तो ८ बजे के पहले आपकी नींद ही नहीं खुलती ?"

"एक केस है।"

सतीश ने कहा 'इसी बीच में हाथ में केस भी ले लिया। दो दिन ठहर कर शरीर को कुछ स्वस्थ कर लेते।" निर्मल इसका कुछ उत्तर न देकर हाथ मुंह धोने चला गया। नीलिमा के यहां से आने के बाद से ही वह इस समय की प्रतीक्षा कर रहा था अतएव ऐसे समय सतीश की इतनी घनिष्टता दिखाना उसे पसंद नहीं आया। हाथ मुंह धोकर जब उसने सतीश के उठने का कोई लक्षण नहीं देखा और नौकर ने भी चा की टेबिल सजा दी, तब लाचार होकर शिष्टाचार की खातिर उस ने कहा-"लीजिये चा पीजिये। चा पीजिये।"

सतीश ने मुस्करा कर कहाः "क्षमा करें मैं नहीं पीता।" निर्मल ने आश्चर्य से पूछा, "कितने दिन से त्याग दिया ?" "जिसको कभी ग्रहण ही नहीं किया, उसका त्याग क्या ?" निर्मल ने कहा "इतने दिन मुझे आपके यहां आते आते जाते हुए मैंने कभी ऐसा नहीं सुना ?" सतीशः "इसके लिये आप कुपित क्यों होते हैं ? न मालूम क्यों मेरी यह धारणा है यह चाल हमारे में बड़े भारी रोग की तरह फैल रही है।"

निर्मल—"किंतु आप इस से सर्वथा अलग हैं, यह तो मैं स्वीकार नहीं कर सकता ?"

सतीश—"आपका तो यहना ठीक है। अपनी इस कमज़ोरी से मैं स्वीकार करता हूँ। शोभा के लिये अनेक काम मुझे अपने मत के विरूद्ध करने पड़ते हैं, आप यह भली प्रकार से जानते हैं. कि उसके मन को कष्ट पहुंचाने में मैं असमर्थ हूं।" उत्तर कर बात बढ़ाने की अवस्था इस समय निर्मल की नहीं थी। चा पीते २ उसने बेहरा से कपड़े लाने के लिये कहा।

सतीश उठकर खड़ा हो गया और बोला "अच्छा अभी मैं जाता हूँ। विचारा था आप से दो चार बातें कहूँगा, लेकिन आप अभी बाहर जाते हैं, तब व्यर्थ समय नष्ट करना उचित नहीं और आप भी इस से विरक्त

होंगे।" निर्मल इस बार भी चुप रहा। सतीश ने बाहर की तरफ़ पांव बढ़ाकर निर्मल को लक्ष्य करके कहा "मुझे मित्र कह कर पुकारेंगे ऐसी आशा मैं नहीं करता, और मेरी बातें आप को अच्छी लगेंगी इस का भी मुझे विश्वास नहीं। तब भी दो दिन का परिचय होने पर भी बाध्य होकर कहना पड़ता है कि आपका अकेले कलकत्ते में रहना ठीक नहीं......।"

"निर्मल ने बीच ही में बाधा देकर कहा क्षमा करें इस वक्त मुझे समय बहुत ही कम है, जो उपदेश देना चाहें वह फिर कभी फ़ुरसत के समय दीजियेगा। उस समय आप भी अपने मन की बातें कह कर हलके होंगे और मैं भी उस का उत्तर देने में समर्थ होऊंगा।"

सतीश ने जाते २ कहा "चाहे आप मुझ पर क्रोध करें चाहे गाली दें, लेकिन ज़रा अपने शरीर की ओर ध्यान दें। रास्ता चलते २ जो व्यक्ति गिर सकता है, उसका रोगी के मकान से सकुशल लौटकर आना विडम्बना मात्र है। और फिर आप को तो कोई ऐसा अभाव नहीं है।" सतीश की बात का कोई उत्तर न देकर निर्मल घर के बाहर चला गया। सतीश भी उसके पीछे २ घर के बाहर निकला, रास्ते पर नीलिमा के पिता के साथ निर्मल को जाते देख कर वह मुस्करा कर मन ही मन कहने लगा--

"इस बार जोड़ा ठीक मिला है, इन को न तो धर्माधर्म का भय है, न समाज की परवाह। जब एक बार घर में घुस पड़े हैं तब वहाँ से जल्दी भाग निकलना मुश्किल है। यही तो सोचता था कि डाक्टर बाबू को एकाएक इतना कर्तव्य ज्ञान कैसे हो गया? जो निर्मल बाबू दस बार बुलाने पर भी नहीं जा सकते थे, वह इस तरह बिना बुलाये ही रोगी देखने कैसे जाने लगे? असली बात का पता तो अब लगा है।" यह कहते २ वह दूसरी तरफ चला गया।

भानु भुवन या मोहनमाया

अनु०—कुमारी सुमित्रा देवी जलविद

(सितम्बर के अंक से आगे)

नरोत्तम—इसके लिए मैं कब निषेध करता हूँ। पहिले दो दिन यह मोहक अवश्य प्रतीत होगी। जब कभी कहीं से उस से व्यवहृत कोई वस्तु, नोट बुक्स, कोरे कागज़, नामांकित कार्डादि मिलें तो नूतन और वर्णनातीत आनन्द होता है। मोदी के यहां से कुछ मंगाने के लिए, चिट्ठी लिखने के लिए उस लेख सामग्री का उपयोग करने में आह्लाद भी बहुत होगा, हानि कुछ भी न होगी, लाभ ही होगा क्योंकि रवि बाबू की कही जाने वाली लेखनी से यह फ़रमाइश लिखी गई है अतः मंगाई गयी वस्तु के मूल्य में वृद्धि नहीं होगी। अच्छा, देखो! मैं भी दूरदर्शी बन सकता हूं कि नहीं?

मधुरी—(कटाक्ष से) हां अति दूरदर्शी (नरोत्तम कटाक्ष को नहीं देखता, अपने में

ही मस्त रहता है और चलता है)

नरोत्तम—परन्तु पुराने स्लीपर ! ओह ! इन में कविता कैसे और कहां से समा गई !

मधुरी—आवश्यकता हो तो मैं इन्हें आपकी भेंट कर दूं ।

नरोत्तम—कवि पर यथेच्छ मोह रखो, लेखक के लिए जी खोलकर अभिमान करो, इसके लिए मैं तुम्हें नहीं रोकता । परन्तु इस मनुष्य का चिन्तन मत करो, यही मेरी याचना है ।

मधुरी—सीधी तरह से क्यों नहीं कह देते कि तुम उस के प्रति द्वन्दी हो ?

नरोत्तम—परन्तु मैं तो कब से यही गीत गा रहा हूँ कि वह मनुष्य—जिसे तुमने अपनी आँखों देखा भी नहीं है—तुम्हारे सर्वस्व का स्वामी बन चुका है, यह देख मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।

मधुरी—तब क्या तुम मुझे अपनी निजी सम्पत्ति समझते हो ? यदि ऐसे ही है ? तो एक बोर्ड (तख्ता) पर यह लिखकर कि "यह मेरी निजी सम्पत्ति है,इस पर अधिकार करने वाले व्यक्ति पर मुकद्दमा दायर किया जायेगा" उसे मेरे गले का हार क्यों नहीं बना देते ?

नरोत्तम—निजी सम्पत्ति नहीं तो न सही । परन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि दिन भर एक ही मनुष्य की आराधना करना उचित नहीं है । कल रात सोते हुए भी······(ज़रा हिचकिचाते हैं)

मधुरी—(अधीरता से) हां हां कह डालो ।

नरोत्तम—आधी रात के समय तुम्हारे मुख से अपने नाम के सिवाय अन्य व्यक्ति का नाम सुनने की आशा भी न रखता था । तो भी रवि बाबू का नामोच्चारण ··········

मधुरी—तब इसका अभिप्राय यह कि स्वप्नावस्था में भी जिह्वा पर काबू रखा जाय—

नरोत्तम—अहर्निश एक ही व्यक्ति का चिन्तन न करो तो स्वप्न में भी ऐसा न हो ।

मधुरी—(क्रोध से) मेरे आदर्श के अनुकूल यदि एक लेखक की कृति में मुझे साधन मिलें और मैं उनका अभ्यास करती हूं तब उस में भी तुम अपराध बताते हो । और स्वयं इसकी पूर्ति नहीं कर सकते । तुम्हें तो रसायन शास्त्र के नीरस नियमों तथा मुरली नाद के सिवाय किसी में भी रसास्वादन नहीं होता, इसलिए क्या औरों को भी अन्य विषयों में रस न लेना चाहिये ? मेरी चाही हुई वस्तु का तुम प्रतीकार करो इस में मुझे कुछ उज्र नहीं । बस मैं इतना ही चाहती हूँ कि जिन पुस्तकों द्वारा मेरी आत्मा तुष्ट हो, जिन सूर्य्य रूपी काव्य ग्रन्थों द्वारा मेरी मुरझाई हुई हृदय-कलि विकसित होती है उन्हें प्रेम दृष्टि से देखने की आज्ञा प्रदान करो । मैं आपको स्पष्ट कह देती हूँ मैं रवि बाबू की पुस्तकों पर दीवानी बनी हूं । क्योंकि वह एक ऐसी आत्मा है जिस ने स्वयं बहुत कुछ सहन किया है, और अनुभव प्राप्त किया है, जो तुम्हारे लिए स्वप्न तुल्य है ।

नरोत्तम—(व्यंग से) और जो मेरे लिए असम्भव है ?

मधुरी—, जीवन की उपयोगिता, प्रेम की वास्तविकता, का ज्ञाता केवल वही है ।

नरोत्तम—निःसन्देह।

मधुरी—स्त्री-हृदय का सच्चा परीक्षक, प्रेमियों का महारथी, विश्वासी और नायक है। हमारा शोक, हमारा हर्ष, हमारा आदर्श, हमारी अपूर्णता कुछ भी इस से अज्ञात नहीं है। दुखी दिल शान्ति का आश्रय ले निद्रावश-वर्ती हो यह मंत्र वही जानता है। वही केवल..........

नरोत्तम—और मैं तो इस में से अंश मात्र भी नहीं जानता, क्यों?

मधुरी—(अपनी ही धुन में) इस महानुभाव को मैं कभी मिली नहीं हूं, कदाचित मिल भी न सकूंगी। परन्तु देखे बिना, बोले बिना, मैं उन्हें हज़ारों में से पहिचान लूंगी यह मेरा पूर्ण विश्वास है। इस के सदृश आकृति, आत्मा, हृदय कहां होगा?

नरोत्तम—(सिर पर हाथ धर कर) ओ! ओ!

पुष्पा—(बाहर जाने के लिए तैय्यार होकर आती है)। मधु भगिनी! तैय्यार हो क्या?

मधुरी—हां पुसी! (जाते जाते नरोत्तम से) इस आन्तरिक व्यथा को फिर से ताजा करने में कुछ सार नहीं है। तुम मेरे हृदय की परीक्षा न कर सकोगे। और हम पूर्ववत सुखी अब कभी न हो सकेंगे।

("प्रियतम! प्रीत के दिन वे गये व्यतीत" यह गाती जाती है)।

प्रस्थान

नरोत्तम—(अकेले ही)-जाओ जाओ, सदा के लिए जाओ। यह अपमान की पराकाष्ठा है। जीवन नीरस होगया है। इस से तो भागना या मरना भला है।

(मोहनदास उद्यान की ओर से आता है। यह सुन्दर नाटा युवक है, प्रवासी होने से विदेशीय वेश में है, परन्तु आकृति पर सरलता, मृदुता, सज्जनता का आभास वर्त्तमान है। देखने में आर्य्यसन्तान है यह सहजही प्रतीत होता है)।

मोहन—यह रहे भाई साहिब!

नरोत्तम—(नवागन्तुक को नहीं देखता, पूर्व-स्थिति में ही बोलता चला जाता है)

इसके हृदय में मेरे प्रति तनिक भी भावना नहीं है। यदि होती तो क्या इस प्रकार अवहेलना करके चली जाती? बस अब तो किसी न किसी तरह से भाग ही जाऊंगा। (समीपस्थ मंच पर वेग से हाथ पटकता है, दांयी ओर से जाना चाहता है, इतने में मोहन मिलता है, बाहर से मोटर के जाने का शब्द सुनाई पड़ता है)

मोहन—क्यों भाई! कहां प्रयाण करोगे?

नरोत्तम—कौन? तुम हो मोहन? अहो मेरे बाल सखा मोहन! (दोनों हाथ मिलाते हैं)

मोहन—हां परन्तु कहो तो अकेले में क्या प्रलाप कर रहे थे?

नरोत्तम—वह फिर कहूंगा। तुम कब आये, कहां से आये यह तो बतलाओ?

मोहन—कल आया हूं। अदन से। मुसलमान के वेश में मक्का मदीने पैदल यात्रा कर आया हूं। फिर पैदल ही अदन होता हुआ मेल से बम्बई पहुंचा, वहां तुम्हारी खोज की, तब तुम्हारा निवास स्थान अहमदाबाद सुन यहीं भागा आया हूं।

नरोत्तम—(सन्तुष्ट होकर) बहुत अच्छा किया भाई ! हम कितने काल में मिले ?

मोहन—पांच वर्ष हुए होंगे। तुम और मैं विलायत से दोनों साथ ही चले थे, फिर सिकंदरिया से तुम भारत के लिए चल पड़े। तुम्हें यहां आने की जल्दी थी और मुझे मिश्र की महा कबरें देखनी थीं। और फिर तुर्कों का नव ! वीर मुस्तफा कमाल देखना था, ईरान की सैर करनी थी, और मक्का मदीने हज्ज के लिए जाना था। इस में सहज ही पांच वर्ष व्यतीत होगये।

नरोत्तम—(हंसता है) मक्के जाकर हज्ज भी कर आये ! मुसलमान बने बिना ही ?

मोहन—तब क्या तुम अभी तक यही समझते हो कि अकेला बर्टन ही अरविस्तान की यात्रा कर सकता है ? मैंने तो अपने पड़दादा के समय में अरबी सीखी थी, फिर कलमा पढ़ने में भय ही क्या था ? और बाकी कोई सु····· तो देखता ही नहीं। मुसलमान होने में फिर क्या कमी थी ? अब तो यहां भी हिन्दू मुसलमानों में भ्रातृभाव समझा जाने लगा है क्यों ?

नरोत्तम—अब तुम्हें मोहनदास हाज की उपाधि देनी होगी (दोनों हंसते हैं)

मोहन—हां यदि तुम एक सप्ताह भर यहां रहने दो तभी स्वीकार करूंगा।

नरोत्तम—अरे सप्ताह क्या ? वर्ष, पांच वर्ष, आमरण यहीं रहो।

मोहन—तुम तो जैसे के तैसे स्नेही बने रहे। नरोत्तम ! मैंने तुम्हें बहुत पत्र लिख कर तुम्हारी आंखें नहीं पकाईं, परन्तु इस से मैं तुम्हें विस्मरण नहीं कर बैठा था। (केस खोलकर) देखो यह प्रत्येक देश के स्मारक फोटो हैं। (दोनों चित्र देखते हैं)

नरोत्तम—(एक फोटो हाथ में लेकर) यह शेख कौन हैं ? मानो खुद उपमुहम्मद पैग़म्बर ही हों।

मोहन—नहीं पहचानते ? यह तो दमास्कस में लिया गया इस सेवक का अन्तिम चित्र है। छः मास तक वहां शेख मोमीन के रूप में रहा। मिश्र में तीन मास तक मुर की मूर्ति बनकर रहा। तुर्क में पारसी बनकर, ईरान में हिन्दवासी के रूप में और फिर अरब में दमास्कस में शेख मोमीन ज़िराफ़ बादी बन कर रहा। (दोनों हंसते हैं) यात्रा का बहुत सा हाल तुम्हारे लिये सुनने के योग्य है।

नरोत्तम—मैं जिन्दगी पर्य्यन्त सुनूंगा परन्तु यहां नहीं।

मोहन—(साश्चर्य्य) जिन्दगी भर। परन्तु यहां क्यों नहीं ? तुम्हारा विवाह तो हो ·····क्यों ?

नरोत्तम—विवाह कर के पछताया। अब तो मुझे तुम्हारे साथ तुम्हारे ही समान यात्रा करनी है। जहाँ स्त्रियों का नाम न होगा ऐसे प्रदेश में जाकर तम्बू गाड़ेंगे। चलो जल्दी चलें पहली ही ट्रेन से बाम्बे चलें।

मोहन—बम्बई से तो मैं यहां आया हूं। क्यों जाना है ? और अभी अभी ?

नरोत्तम—हां-हां-हां इसी क्षण। गाड़ी के आने में आध घण्टे की देर है।

मोहन—परन्तु इतनी शीघ्रता की क्या आवश्यकता है ?

नरोत्तम—मैं तो जब तुम आये थे उसी समय Luggage Pack करने जा राह था।

मोहन—हां मैं ने भी देखा था कि भाई साहिब हवा में लैक्चर दे रहे थे। समझा कौलिज में विद्यार्थी न आते होंगे अतः अकेले ही बोलने की टेव पड़ गई होगी! तनिक क्रोधाभास भी हुआ था। क्यों क्या यह दुनियां नहीं भाती?

नरोत्तम—बिलकुल नहीं। मैं तो इसे देखते ही विषमय हो जाता हूँ। चलो, जल्दी मेरे साथ Packing में सहायता करो। यह ज़हरीला घर मुझ से जितनी जल्दी छूटे उतना अच्छा है।

मोहन—ज़हरीला, मैंने तो स्टेशन पर सुना था कि यह घर, यह बंगला अमरलोक है। यहां टैगोर, एवं गांधी जी भी बस चुके हैं।

नरोत्तम—तभी तो कहता हूं न कि मुझे यहाँ नहीं रहना है।

मोहन—[आश्चर्य में डूब कर] यहां टैगोर और महात्मा जी रहे हैं इस लिए तुम्हें नहीं रहना है?

नरोत्तम—[ज़रा चिढ़कर] हां, हां तुम्हें कहा तो इस घर में भूत है जो मेरे श्वसुर को लग गया है, और उसकी बहिन को नचाता है तथा मेरी स्त्री को बहकाता है।

मोहन—सचमुच?

नरोत्तम—मेरे श्वसुर को गांधी जी का भूत लग गया है, फूफी को न्हानालाल का प्रेत लगा है और मेरी स्त्री को टैगोर के स्वप्न दिलाता है वह उसके लिए पागल हो गई है।

मोहन—पागल? वह उसे जानती है क्या? मैं तो कई वर्ष व्यतीत हुए टैगोर को अमेरिका में मिला था और तब भी सचमुच बहुत......बहुत सी अमेरिकन लड़कियां उस के लिए पागल बन गई थीं।

नरोत्तम—परन्तु मेरी मधुरी ने तो अपनी आंखों देखा ही नहीं और भाग्य से उसका चित्र भी शायद ही देखा होगा।

मोहन—तब फिर?

नरोत्तम—परन्तु उस की प्रत्येक रचना नाटक उपन्यास, काव्य उसने देखीं और पढ़ी हैं तथा पढ़कर उन का मनन करती है। पहले तो उस पर पागल बनती थी अब तो अपने आप को उस पर बलिदान करती है। दिन भर उसी का चिन्तन करती है और रात को उसी के स्वप्न देखती है। पहले तो टैगोर ने उस की बुद्धि जीती थी, अब तो उस का मन भी जीत लिया हो ऐसा जान पड़ता है। मधुरी ने उसे कभी नहीं देखा है, परन्तु वह उसे मनुष्य रूप में देवता, एवं परम ज्योतिस्वरूप ईश के तुल्य समझती है। उस की दृष्टि में टैगोर के सामने मैं क्या चीज हूं? इस से पहले वह मेरी अवहेलना मात्र करती थी, परन्तु अब तो दुत्कारने भी लगी। कोई आश्चर्य नहीं कि उसे मेरा ख्याल भी न हो। और यदि होगा भी तो यही कि किस तरह मैं इस का सामना करूं।

मोहन—[गम्भीर बन कर] तुम राई का पर्वत, या बात का बतंगड़ तो नहीं बना रहे?

नरोत्तम—तुम्हें क्या जान पड़ता है?

मोहन—मुझे तो तुम्हारी बातों से यही लगता है कि तुम्हारी पत्नी को क्षणिक

मोह उत्पन्न हुआ है जो स्वयं ही नष्ट हो जावेगा। यह एक तरह की बालिशता है। और कुछ नहीं।

नरोत्तम—तुम भी मेरे श्वसुर की न्याई मुझे जलाया चाहते हो।

मोहन—(तनिक हंसकर) अज्ञान में भी महा पुरुषों के विचार एक ही रहते हैं-उस में निम्न प्रमाण है--"सतां ही संदेह पदेषु वस्तुष्वन्तः करणमेव प्रमाणम्"।

नरोत्तम—मुझे तो मधुरी में बालिशता तथा मूर्खता का अंश भी नहीं दीखता। मैं अपनी स्त्री को जितना चाहता हूँ, उतना और कोई अपनी को न चाहता होगा, तिस पर भी उसके द्वारा इतना त्रास पाकर रहना पड़ता है। हम में शृंखला की एक एक शृंका भिन्न भिन्न हो, हमारे हृदय की तार भिन्न भिन्न हों, हमारे विचार में, आशा में, उम्मेद में, आदर्श में, कुछ भी समता न हो; भाषा भिन्न हो, बुद्धि भिन्न हो, और उद्देश भी भिन्न हो, वहां सुख कैसे हो सकता है? फिर भी तुम उसे नादानी ही कहते हो? अफ़सोस! मुझे तो यह भ्रममय वचन शूल के समान अखरते हैं।

मोहन–यह मामला मेरी धारणा से कहीं अधिक टेढ़ा दिखाई देता है, और अब तो मुझे तुम्हारे साथ दिलसोजी होती है। परन्तु इस प्रकार निराश मत बनो। दुनियां में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो असम्भव हो। टैगोर कोई उसकी..............

नरोत्तम—यदि हों तब तो बात ही क्या है? मैं नहीं मान सकता कि टैगोर इस प्रकार के उन्माद को उत्तेजना देने के पक्षपाती हों। (मोहन का हंसना) तुम हंसो, भले हंसो, परन्तु मैं तो उसे पर स्त्री के हृदय का चोर नहीं मानता।

मोहन–आजकल की यह लोक भक्ति ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को प्यारी लगती है। अज्ञान में या ज्ञान में इस प्रकार की आस्था को उत्तेजना दिलाने से ही वे पूजापात्र बनते हैं। और टैगोर को तो मैंने अमेरिका में इंग्लैण्ड में और फ्रांस में देखा है। उसे ऐसी भक्ति अप्रिय नहीं है।

नरोत्तम-अस्तु! यदि वे सामने होवें तभी उन पर ठीक आलोचना हो सकती है। इस में यदि मैं नीचा देखूं तब भी अच्छा हो। उससे मेरी आधीरता का तो अन्त अवश्य हो सकेगा। परन्तु यह तो प्रेत के साथ लड़ाई है। भला मायावी मूर्ति का छेदन किस प्रकार हो सकता है? तलाक न होगा तो न सही, भाग तो अवश्य सकूंगा।

मोहन---यह तो मूर्खता कहलावेगी, भागता कौन है? मैं तो तुम्हें कहता हूँ कि तुम्हारी स्त्री के हृदय में क्षणिक मोह पैदा हुआ है, यह चिरस्थायी नहीं है। अमेरिका में मैंने एक ऐसी स्त्री देखी थी जिसे पहिले टालस्टाय का मोह लगा था, तब उसे सारा संसार टालस्टय का ही स्वरूप प्रतीत होता था। फिर इब्सन का प्रेम लगा तब सर्वत्र इब्सन ही इब्सन दीखता था। भाषा में, भाव में, वेश में, सभी स्थल में, इब्सन की ही मूर्ति उसे दीखती थी। यहां तक की रीति-रिवाज में भी इब्सन का ही रूप देखती थी। तत्पश्चात उसे बरनार्ड शा की लगन लगी। तब क्या

था परमाणु अणु-त्रिसरेणु सब में शाँ ही शाँ नज़र आने लगा। और शाँ की धुन में मस्त रहने लगी। ये तो सब गृहपति सूर्य्यदेव गिनाये। इनमें छोटे छोटे तारे तो अनेक आगये होंगे। मैं जब वहां से निकला तब उस लड़की को आँ हेत्री की भक्त सुना था। उस समय टालस्टाय, इब्सन, शाँ आदि २ सब पांव ठण्ढे समझ रहे थे। सो ठीक तुम भी ऐसा ही समझो। (नरोत्तम सिर हिलाता है) आज टैगोर, कल न्हानालाल। परसों न मर्द, तो तरसों मुन्शी की…। ये सब उठेंगे और अस्त होंगे। परन्तु तुम्हें कुछ आ जावे तो तुम्हारा प्रकाश सदा आलोकित रहेगा।

नरोत्तम—मुझे क्या नहीं आता।

मोहन—तुम अपनी स्त्री का दर्द नहीं समझ सकते हो। वह पापी नहीं केवल बीमार है, इसे खरीखोटी मत सुनाओ परन्तु उपचार करो, इस का ध्यान रखो, फिर स्वयं सुधर जावेगी।

नरोत्तम—उपचार नहीं हो सकता। मैंने जितने पत्थर हैं उतने देवताओं को मनाया, परन्तु इसका भूत न टला।

मोहन—तुम्हारी चिकित्सा ही ठीक न हो तो फिर परिणाम क्यों कर ठीक हो?

नरोत्तम—अच्छा यह कहते हो? परमेश्वर करे तुम मेरे स्थान पर हो जावो तब पता लगे।

मोहन—देखो! सुनो। इस समय तुम्हें टैगोर मिलें तो शायद तुम उसे जी जान से मारने को तत्पर हो जाओ?

नरोत्तम—अवश्य।

मोहन—परन्तु यह है तो असम्भव।

नरोत्तम—तब फिर?

मोहन—तब फिर उसकी स्थूल देह को त्याग कर उसकी सूक्ष्म देह का ध्यान करो।

नरोत्तम—सूक्ष्म देह?

मोहन—हां! अर्थात् वह देह जिसकी प्रतिमा तुम्हारी स्त्री ने अपने हृदय में अंकित की है उसे तोड़ दो, उसका अन्त ला दो।

नरोत्तम—किन्तु यह हो कैसे सकता है?

मोहन—मिसिस नरोत्तम को यह विश्वास दिला दो कि उसका मान्य महापुरुष वास्तव में साधारण मनुष्य श्रेणी में से ही एक हैं। बल्कि सामान्य से भी क्षुद्र और निकृष्ट है। और तो विचारे दुनियां अच्छी बुरी देख कर बिना किसी प्रकार ननुनच के उसमें स्थित होकर चुपचाप जीवन यात्रा करते हैं, परन्तु विरंचि ने इसे अन्य मनुष्यों से २ अणु बड़ा बनाया अतः इसे तनिक सा दुख हो अथवा लेशमात्र क्लेश हो तो सारी दुनियां इसके विलाप से भड़क उठती है। प्रिन्स आफ वेल्स घोड़े पर से गिर जांय और उनके चोट पहुंचे तो राईटर लोग स्थान २ पर तार भिजवाते हैं, उसी प्रकार टैगोर की ऊंगली दुखती हो तो ऐसी बीसियों मुग्धाएं इसे प्रलय काल आया समझती होंगी। जिसे सुख सामग्री की कमी न रही हो, और जो जीवन पथ पर पद २ पुष्प वृष्टि द्वारा सत्कृत किया गया हो, उसे जनता की और खासकर क्षुद्र स्त्री वर्ग की आस्था को उत्तेजित करने की आदत पड़ जाती है। टैगोर में इस दुर्गुण का प्रवेश हुआ है कि नहीं, मुझे इसका ठीक ज्ञान

नहीं है। परन्तु तुम अपनी स्त्री में यह विश्वास बिठा दो। इससे उसकी मानसिक पूजा आप ही नष्ट हो जावेगी।

नरोत्तम—यह सब कहना जितना सरल है उतना ही करना कठिन है।

मोहन—कठिन क्योंकर?

नरोत्तम—मधु इसके विरुद्ध एक भी वचन न मानेगी।

मोहन—नहीं कैसे मानेगी? यदि मैं मनवा दूँ तब?

नरोत्तम—तुम?

मोहन—हां! और सो भी एक ही दिन में। मैं टैगोर को देख चुका हूँ, उसके सहवास में आ चुका हूँ, जहां मैं उसकी रचनाओंकी प्रशंसा करूंगा वहां उसकी मनुष्यता अर्थात् नीचता को भी साथ ही सिद्ध कर दूँगा।

नरोत्तम—शाबास!

मोहन—उस हीरा वास्तव में कोयले का टुकड़ा है तुरन्त बता दूंगा। अपनी स्त्री को कभी मेरा परिचय दिया है कि नहीं?

नरोत्तम—अनेकवार-यहाँ सब तुम्हें मेरे सर्वोत्तम मित्र की हैसियत से जानते हैं। (दरवाज़े खड़खड़ाने का शब्द सुन पड़ता है। पास जाकर) कौन है? (चिट्ठीरसा बहुत से समाचार पत्र और चिट्ठियां देता है, वह ले आता है) देखो यदि तुम्हें इस प्रकार का कोई ढोंग रचना हो तो शीघ्र करो। फिर तो एक दो दिन में स्वयं रवीन्द्र यहां आने वाले हैं।

मोहन—पहिले पत्र पढ़ लो पुनः हम द्रोणाचार्य्य बनकर अभिमन्यु को मारने के लिए व्यूह रचना करेंगे।

नरोत्तम—पत्र तो केवल एक ही है (पत्र खोलता है, एक चित्र गिरता है) आ हो! यह क्या? (साथ एक नामाँकित कार्ड भी निकलता है) यह कार्ड कैसा? (पढ़ता है) बहिन।

(पत्र पर पता देखता है)

तुमने मांगा अतः चित्र (प्रतिकृति) भेजता हूँ परन्तु तुम्हारे लिए इस का क्या उपयोग होगा यह नहीं समझ सका।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर
का अभिवादन

(क्रोधावेश में) यह देखा? अब क्या कहते हो?

मोहन—पहिले तो यह कि तुम्हारी स्त्री को यह फ़ोटो नहीं मिलनी चाहिये। (फ़ोटो देखता है) है तो वस्तुतः मोहक मनुष्य! भारतवर्ष को कविराज मनुष्य कांति में भी कमी नहीं है। (मंच पर फेंकता है, वह उसके अपने फ़ोटो के पास जा गिरता है)

नरोत्तम—यह इसे न मिलेगी तो फिर लिखेगी।

मोहन—(यकायक) हां यह भी ठीक है।

नरोत्तम—अतः इस से तो दे देना ही भला है। फिर जो होगा सहन कर लेंगे। मैं स्वयं ही दूँगा और फिर देखूंगा कि वह⋯⋯(धुन में दोनों फोटो उठा कर लिफाफे में डालता है)

मोहन—यह नहीं, यह नहीं, यह तो मेरा है (हंसता है) कहीं तुम्हारी स्त्री मुझे ही (बीच में ही वाक्य छोड़ता है)

और से नया विचार सूझता है, उसी समय वही विचार नरोत्तम को भी होता है, दोनों एक दूसरे के विचार को इंगति से समझते हैं और हाथ मिलाप से सम्मति स्वीकार करते हैं) यहीं क्यों ठीक है न ?

नरोत्तम—हां यही युक्ति ठीक है।

मोहन—अब विजय अवश्यम्भावी है (पुनः हस्त मिलाप (Shake hand) करते हैं,) इसे दैवी प्रेरणा समझो। (रवीन्द्र की फ़ोटो उठाकर अपने केस में रखता है) यह मैं तुम्हें पीछे से दूँगा, जब मिसिस नरोत्तम को इसका ठीक ठीक परिचय मिल जावेगा तब ही दूंगा।

रामलीला के राम

लेखक—श्रीयुत पं० सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज,

"पण्डित जी ! मुझे क्षमा करें; कहूँगा सच, कि—'आर्य-समाजियों को यह सिड़ उन के आर्यत्व के जन्म-काल के साथ ही हो जाती है, कि वे हिन्दुओं की बात बात पर व्यङ्ग-वर्षा करें ! उनके किसी भी कृत्य को गौरव न दें वरना कई बातें हिन्दुओं की गूढ़ आशय वाली होती हैं।'"

मैं—'जो ऐसी हैं, उनको सभी आर्य अच्छी समझते हैं। किंतु बुराई की बातों को बुरी कहना ही उन का आर्यत्व है।"

विश्वनाथ—"नहीं, किसी किसी को बिना समझे भी 'दूषित' कह डालते हैं। देखिए, यह राम-लीला ही है। आर्य-जन कोई भी अच्छाई इस में नहीं देखते। किन्तु देखा जाय तो पूर्वजों के गौरव-गुम्फित पवित्र-चरित्र, सरल हृदय बालकों के मृदु-मानस-पटों पर इससे उत्तमतया अङ्कित होते हैं। 'श्रव्य' के साथ यदि 'दृश्य' भी हो, तो बहुत पूरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ किसी विज्ञापन को ही देखलें—उसमें "शिर के लिए" किसी "तैल" का सुन्दरसा नाम और उसका प्रगुण गुण-गान-गुञ्जार सत्य और कितना भी सुन्दर क्यों न हो, वह लोगों को उतना विश्वास नहीं दिलाता। उसके लिये वैसी श्रद्धा नहीं जमाता, जैसे कि उसके गुणों का अभिव्यंजक हाफ़टोन कोई चारु-चित्र श्रद्धा समुत्पादक होता है। लम्बे और गहरे, कोमल और काले बाल करने वाले तैल के विज्ञापन में, लम्बे, गहरे-कोमल-काले केशों वाली ललित-ललना का एक चारु चित्र दर्शकों के हृदयों पर बड़ा असर डालता है। उस तैल के गुणों में विश्वास स्थिर कर देता है। ऐसे ही प्राचीन गाथा के किसी भी 'श्रव्य' के साथ, उसके भावों का दृश्य हो, तो वह पूर्ण-प्रभाव डालता है।"

मैं—"आर्य-जन इस सिद्धान्त के विरोधी तो नहीं। वे यह नहीं चाहते, कि 'श्रव्य' के

साथ दृश्य हो ही नहीं !' हो, परन्तु उस श्रव्य की यथार्थता का बाधक नहो !; क्यों—?"

विश्व—"मेरा भी तो यह अभिप्राय नहीं कि बाधक रहे।"

मैं—"तो बस; आपका आशय इन रामलीलाओं से सिद्ध नहीं हो सकता ! ; आधुनिक लीलाओं के पात्रों में पात्रत्व नहीं। उन से रामायणी गाथा का लाघव ही फैलता है। वे राम आदि महापुरुषों के पवित्र-चरित्र को दृढ़-मूल नहीं करते ! "

विश्व—"कैसे-?"

मैं—" स्पष्ट है। लीला के दर्शकों में से बालकों को तो क्या—किसी वयोवृद्ध से ही पूंछ देखिए, कि—भरत-मिलाप के दिन राम की कितनी आयु थी ?; एक सही नहीं बता सकेगा ! हर वर्ष (निमूछिए) पाउडर से धवल-मुख किए, बालकों को राम बनाया देखते हैं ! फिर सही कैसे बता सकें ? बताएं तब, जब भरत-मिलाप के दिन कम से कम बावन (५२) वर्ष की आयु का पुरुष राम बनाया जाता हो। और ऐसे ही भरत-लक्ष्मण आदिक। श्मश्रुहीन छोटे छोटे बालकों के मुख पर मुरदा-संख आदि का पाउडर लगा कर रामलीला क्या करते हैं—केवल ग़लत फ़ैमी और लोगों में दुर्वृत्तियां बढ़ा रहे हैं "!

विश्व—" हैं, बावन वर्ष का राम—? "

मैं—" हां बावन वर्ष का ! : देखिए मैं समझाता हूँ:—

राम विवाह-काल में न्यून से न्यून पच्चीस वर्ष के थे। "

विश्व—" वाह, साहिब ! यहां तो आपने बाल्मीकि की बात भी ठुकरा दी। वे "राम-लक्ष्मण को मांगने पर, महर्षि विश्वामित्र को श्री दशरथ के उत्तर द्वारा" स्पष्ट लिखते हैः—

ऊनषोडषवर्षो मे रामो राजीव-लोचनः।
न युद्ध-योग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥
(बाल कां०स० २०)

अर्थात्—मेरा कमल-लोचन राम पन्द्रह (१५) ही वर्ष का है। राक्षसों के साथ लड़ने की इस में योग्यता नहीं। इस से सिद्ध होगया कि पन्द्रहवें वर्ष में राम तारकादि से लड़ने आए। ब्रह्मर्षि का काम ५-६ ही दिनों का था। जाने-आने के दिन लगा कर, जनक के यहां पहुंचने में एक-डेढ़ मास समझ लीजिए ! बस, तभी विवाह हुआ ! "

मैं—" इस समय रामायण की आलोचना तो करता नहीं हूँ। किन्तु यह अवश्य कहना पड़ेगा कि रामायण को अक्षरशः सत्य (वेदवत्) मानना बड़ी भूल है। इस के हर प्रसंग में थोड़ी-बहुत असंगत, असम्भव, तथा सामञ्जस्य-शून्य बातें पड़ी हुई हैं। उन्हें 'धूर्तों द्वारा प्रक्षिप्त' कहें, तो ठीक होगा। और इस का पारायण करने वाले साहसिकों को सहज ही में यह भी पता लग जाता है, कि इसके आद्यन्त के 'बाल' और 'उत्तर' दोनों काण्ड अनार्ष हैं, ऋषि बालमीकि-कृत नहीं। इसी से यह "ऊन षोड़ष वर्षो में···" उनके विवाह-काल के निश्चय में प्रमाण नहीं।

—दूसरे श्री दशरथ महाराज की अन्त्येष्टि होने के पश्चात्, पुरोहित श्रीवशिष्ठ जी ने "राज्य सम्हालने के लिए" श्री भरत जी से कहा, तब उत्तर में श्री भरत जी ने सब से प्रथम यह कहा हैः—

"चरित-ब्रह्मचर्यस्य विद्या-स्नातस्य धीमतः।
धर्म्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत्॥
(अयोध्या कां० स० ८२)

अर्थात्—"विद्या व्रत-स्नातक; बुद्धिमान, धर्मात्मा, राम के राज्य को मुझ जैसा कौन हर सकता है (अर्थात् किसी की शक्ति नहीं!) "

तो सोचिए, विद्या-व्रत-स्नातक कहीं पन्द्रह वर्ष का बालक होसकता है? सूत्र-ग्रन्थ अड़ताலीस वर्ष के ब्रह्मचारी ही को "विद्या-व्रत स्नातक" राम के काल में भी कहते थे, और अब भी कहते हैं! भरत जैसे धर्मात्मा पुरुष-पुगंव पन्द्रह वर्ष ही के गृही को कैसे "विद्या-व्रत-स्नातक पुकार सकते हैं? जो पन्द्रह वर्ष का बालक ही विद्या-व्रत स्नातक होसकता है, तो देश के स्कूलों-पाठशालाओं के पिलंजू पिलपिले-से पन्द्रह वर्ष के सभी बालक (आजकल के) विद्या-व्रत-स्नातक हुए, और सत्रह अट्ठारह वर्ष की अवस्था के कुमार तो उनसे भी अच्छे हुए! इतना अंधेर!! फिर गुरुकुलों-ऋषिकुलों की जनता भूल ही से आवश्यकता समझती है! अनेक प्रसंगों में, राम के विशेषणों में, उन्हें "चारों वेद के ज्ञाता" कहा गया है, रामायण ही में। फिर चारों वेदों के—धनुर्वेदादि वेदाङ्गों के—पूर्ण ज्ञान के लिए "पन्द्रह वर्ष की अवस्था" कैसे फल सकती है?—हृदय से तो पूंछिए!

—राम विद्या-व्रत-स्नातक सिद्ध हुए हैं। मानना तो योग्य है कि उनका विवाह अड़तालीस वर्ष की अवस्था में हुआ; परन्तु न सही, तब भी कम से कम पच्चीस वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हुआ मानना होगा। क्योंकि पच्चीस वर्ष की आयु "ब्रह्मचर्य" के लिए न्यून से न्यून नियत है। क्यों—?"

विश्व—"बात तो ठीक है!"

मैं—'तो विवाह में राम थे पच्चीस वर्ष के। तत्पश्चात् बारह वर्ष तक श्री राम सीता सहित राजाधिराज रघुराज श्री दशरथ की छत्र-छाया में-उनकी कृपा क्रोड़ में आनन्द करते रहे। विविध गार्हस्थ्योचित-भोग भोगते रहे। श्री दशरथ महाराज ने विवाह से १३ वें वर्ष में "राम के युवराज बनाने की चर्चा" चलाई। यह बात परिव्राजक-वेषा-धारी रावण को उसके प्रश्न के उत्तर में, पन्चवटी देश में, सीता अपनी अतीत-जीवनी सुनाती कह रही हैं:—

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणाँ निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान्, सर्वकाम समृद्धिनी
ततस्त्रयोदशे वर्षे राज मन्त्रयत प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राज मन्त्रिभिः॥

(अरण्य का० स० ४७)

अर्थात्—"ऐक्ष्वाकु महात्मा दशरथ के भवनों में १२ वर्ष तक रहकर, मानुषी-भोग भोगे। फिर तेरवें वर्ष में रामाभिषेकार्थ मंत्रियों सहित महाराज ने मन्त्रणा की।" तो विवाह के बारह वर्ष पश्चात् अयोध्या में सुख से रहे। अब गिनिए—२५ और १२=३७ हुए।

—अब चौदह वर्षों की वन-निवास की समाप्ति। तो हिसाब करलें कि-३७+१४=५१ हुए। यों इक्यावन वर्ष अयोध्या लौट आने से भरत के मिलने से-पूर्व ही राम की आयु के गत हो लिए। अब अयोध्या-राज्य सिंहासन पर आसीन हुए तो कम से कम ५२ वर्ष की अवस्था में हुए!

—सो न्यून से न्यून बावन वर्ष का पुरुष 'राम' बना कर, यदि लीला में दिखाए जाएं तो लोगों को राम की जीवनी का कुछ पता लगे। नहीं तो दुर्भाव भरे मूर्ख-गुण्डे-दुश्चरित्र यवनों तथा 'हिंदू' कहलाने वाले दुश्चरित्री राक्षसों के राम-सीता के इर्द-गिर्द लगे रहने और घूमने के अतिरिक्त और क्या फल होसकता है?"

विश्व—"ओः! बावन वर्ष का बुड्ढ़ा राम बने? सब आनन्द मिट्टी में मिल जाए, और सारा खेल बिगड़ जाए!!

———:०:———

नवयुग

लेखक—'श्री हरि'

क्या कहिये रहिये चुप हो, अब अनुपम युग यह आया रे।
निगमागम की आन गई है, करत सभी मन भाया रे॥ ध्रुव॥

दया, धर्म, सत्कर्म मर्म की, रही न जगमें छाया रे।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ने, सब को नाच नचाया रे॥ १॥

प्रचुर प्रपञ्च प्रवञ्चित अञ्चित, अनुपम जग की काया रे।
स्वार्थ सिन्धु की तरल तरंगें, प्रिय परमार्थ डुबाया रे॥ २॥

विमल विवेक, विराग, राग सव, दम्भ समूह समाया रे।
पावन प्रेम नेम के वदले, छल वल चाल चलाया रे॥ ३॥

उर कम्पत झम्पत युग लोचन, सोचत मन अकुलाया रे।
"श्रीहरि" अशरण शरण चरण में, आर्त भक्त यह आया रे॥ ४॥

* * *

वैज्ञानिक संसार

१. सूर्यताप से भोजन पकाना

सूर्य से हमें प्रकाश और ताप प्राप्त होते हैं, परन्तु मनुष्य को इतने पर ही शांति नहीं। वह सूर्य भगवान से और भी सेवा लेना चाहता है। इस उद्देश से कितने ही प्रयास किये जा चुके हैं जिन में से कुछ तो सफल हुये हैं और कुछ विफल।

एक सूर्य के ताप से तपने वाला भाजी पकाने का यन्त्र तय्यार किया गया है जिस में कि रोटी पक सकेगी और मांस उबल सकेगा।

इस चूल्हे के भीतर थरमामीटर द्वारा माप कर देखा गया है कि ३०० दर्जे का ताप था और यह बहुत सम्भव है कि कोयला,

लकड़ी, गैस, तेल अथवा इसी प्रकार के अन्य साधारण ईन्धन जलाये बिना भोजन पकाया जा सकेगा।

२. लकड़ी जलने पर कड़कड़ शब्द क्यों करती है ?

जब लकड़ी जलती है तो उस में से प्रायः चिड़ २ की आवाज़ आती है। इस का क्या कारण है? लकड़ी में कितने ही नन्हें २ सूराख अथवा कोष होते हैं जिन में से कि कितनों ही में जल रहता है। जब लकड़ी गरम हो जाती है तो यह जल वाष्प बन जाता है और कोषों को तोड़ देता है। यह एक छोटे से धड़ाके का शब्द उत्पन्न करता है। ऐसे ही कितने ही धड़ाके मिल कर लकड़ी का चिड़ २ शब्द पैदा करते हैं।

३. एक मिनट में ३३ मील उड़ना

महाशय लिन्डी किस्टर स्वीडन के एक प्रसिद्ध वायुमान और हवाई जहाज़ बनाने वाले हैं। आपने अनुमान लगाया है कि भविष्यत में योरोप और अमरीका के बीच हवाई जहाज़ द्वारा भूमि से दस मील ऊंचा उड़कर दो घन्टे में सफर किया जा सकेगा। इन दो महाद्वीपों में २००० मील का अन्तर है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ज्यों २ हम ऊपर उठते जाते हैं कम होती जाती है अतः वह जहाज़ जोकि पृथ्वी के निकट १०० मील प्रति घन्टा के वेग से चलता है इस से १० मील ऊंचा उठकर १२०० मील प्रति घन्टा उड़ सकेगा। परन्तु इतनी ऊंचाई पर वायु बड़ी ही सूक्ष्म अवस्था में होगी और इस सूक्ष्म वायु में इन्जन और मशीन का चलना बड़ा कठिन हो जायगा। परन्तु महाशय लिन्डी किस्टर का कथन है कि यह कठिनाई धकेलने वाले इंजन में ऐसे पंखे लगा कर दूर की जा सकती है जो कि हलके और भारी वायु की सूक्ष्मता के अनुसार बदले जा सकें और मोटर गैस को दबाने के लिये विशेष प्रकार की मशीन लगाने से अधिक दबाव पैदा किया जा सकता है। इस प्रकार की मोटर की शक्ति संभवतया २००० घोड़ों के बराबर होगी?

४. शारीरिक लम्बाई और बुद्धि

मनोविज्ञान के एक अमरीका निवासी पण्डित डाक्टर हैनरी कैरट का कथन है कि सबसे अधिक तीक्ष्ण बुद्धि वाला मनुष्य वह है जिस की भुजा और टांगे लम्बी हों और बाकी शरीर छोटा। उन का मत है कि छोटी भुजा और टांगों वाले मनुष्य किसी तीक्ष्ण बुद्धि वाले कार्य की अपेक्षा किसी ऐसे कार्य के लिये जिस में कि दुरुस्ती और स्थिरता की आवश्यकता हो अधिक उपयुक्त हैं।

डाक्टर कैरट और डाक्टर सैन्ट नै करादि ने इस मत का कोलम्बिया विश्व विद्यालय के ३०० विद्यार्थियों पर मानसिक रोगों के सम्बन्ध में परीक्षण किया। परीक्षा-फल से यही प्रतीत होता था कि शारीरिक गढन और बुद्धि में बड़ा भारी सम्बन्ध है।

जिन व्यक्तियों पर परीक्षा की गयी उन में से ७६ प्रति शतक छोटे शरीर और लम्बी टांगों वाले, ४० प्रति शतक मध्यम आकार वाले और १५ प्रति शतक बड़े शरीर और छोटी टांगों वाले पुरुषों में बुद्धि की प्रबलता पाई गई।

अमरीका के कितने ही प्रसिद्ध विद्वान कार्य कर्ता जैसा कि हैनरी फोर्ड, राकफैलर, जरनैल परशिंग, बूथ टर्किंगटन, डेविड वार्थ ग्रिफिथ, जार्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन और प्रधान विलसन लम्बी टांगों और छोटे शरीर वाले आदमी थे।

५ आकाश का रहस्य

वैज्ञानिकों ने सूर्यलोक और चन्द्रलोक को तोल लिया है; हमें उन सितारों के अन्तर का ज्ञान है जिनका प्रकाश हमारे तक पहुंचने में कितनी ही शताब्दी चाहियें; हम बहुत दूर व्यापी सितारों पर बहुत ही थोड़े परिमाण में बढ़े हुये ताप को माप सकते हैं। इतना होने पर भी आकाश पहेलियों से भरा पड़ा है जिनको बूझने के लिये ज्योतिषी अपनी सारी विद्या का ज़ोर लगा रहे हैं।

उदाहरण के लिये प्रकाश रहित सितारों को ही लीजिये। किंचित पाठकों के मन में यह कभी विचार भी न आया होगा कि ऐसे भी सितारे हैं, परन्तु वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक प्रकाशवान सितारे के साथ २ जो कि हमें किसी साफ शुद्ध रात्रि में दिखलायी देता है हज़ारों ऐसे सितारे हैं जो ठंढे पड़ गये हैं और इसी कारण हमें दिखलाई नहीं देते। परन्तु मृत अवस्था में होने पर भी यह आकाश में एक भयानक गति से दौड़ रहे हैं।

२ फरवरी १६०१ को परसियस नाम के तारा समूह में एक अद्वितीय प्रकाश वाला सितारा चमका। यह कोई नवीन सितारा नहीं था। वास्तविक बात यह थी कि एक प्रकाश रहित सितारा या तो किसी इसी प्रकार के दूसरे सितारे से अथवा गैस के बड़े भारी बादल से—जो कि आकाश में लटके रहते हैं टकरा गया था। इसका फल यह हुआ कि एक इतना बड़ा धड़ाका हुआ कि हम उसका अनुमान भी नहीं कर सकते।

यह प्रकाश रहित सितारे और गैस के बादल अकाश की सब से बड़ी पहेली हैं। तीन वर्ष हुये कि एक हालैन्ड के वैज्ञानिक ने ऐसे रहस्यमय बादल का पता लगाया जो कि १४०००००००००००० मील लम्बा और हमारे सूर्य मण्डल से इससे दुगना परे था। चाहे यह गैस हो चाहे रेणु कण—यह हमें पता नहीं और सम्भवतया हमें इसका कभी पता भी नहीं लगेगा।

६ घड़ी के जवाहिर

प्रत्येक घड़ी में- जिसको हम घड़ी का नाम दे सकते हैं-मणि अथवा जवाहिर जड़े रहते हैं जिन के आश्रय उस के गतिमान भाग घूमते रहते हैं अथवा यूं कहिये कि इन भागों की धुरी नन्हें २ जवाहिरों पर टिकी रहती है। इसका कारण यह है कि यह जवाहिर चिरस्थायी होते हैं और शीघ्र नहीं घिसते। बढ़िया घड़ियों में प्रत्येक धुरी के ठहरने के स्थान पर जवाहिर जड़े रहते हैं। सो घड़ी बेचने वालों का यह कहना कि अमुक घड़ी में इतने जवाहिर हैं और अमुक में इतने असत्य नहीं होता हां उत्तम घड़ियों में बढ़िया प्रकार के जवाहिर होते हैं और साधारण में घटिया। बढ़िया जवाहिर नीलम और माणिक होते हैं, मध्यम श्रेणी के याक़ूत और सब से निचले दर्जे के साधारण पथरी (Rock crystal)।

जैसा हमने ऊपर कहा यह जवाहिर चूल के स्थान पर जड़े जाते हैं। घड़ी में सात से लेकर २३ तक इस प्रकार की चूल रहती हैं जब तक यह जवाहिर बढ़िया न हों और पहियों की धुरी इन से बनी चूल में ठीक २ न बैठे, घड़ी कदापि ठीक समय न देगी। आज कल घड़ियों की यह जवाहिर की चूलें छोटे २ धातु के टुकड़ों में का जवाहिर जड़ कर बनी बनाई बिकती हैं और प्रत्येक घड़ी साज के पास रहती हैं। इन टुकड़ों की कारीगरी घटिया बढ़िया सब प्रकार की होती है और घड़ी साज़ को किसी भी घड़ी की

मरम्मत करने के लिये सावधानी से बढ़िया टुकड़ा ढूंढ़ना पड़ता है। कोई ऐसा टुकड़ा जिसके जवाहिर बिल्कुल मध्य में न हों घड़ी के एक भाग की गति को ख़राब करके सारी घड़ी का सत्यानाश कर देता है। यही कारण है कि प्रसिद्ध और नामी घड़ी साज़ एक साधारण घड़ी साज़ की अपेक्षा मरम्मत के अधिक दाम मांगते हैं।

कई बार छलांग मारने अथवा कूदने से चूल ज़रा सी टेढ़ी हो जाती है; घड़ी चलती रहती है और घड़ी का मालिक उस छलांग को सर्वथा भूल जाता है। एक या दो सप्ताह पीछे घड़ी बन्द हो जाती है। छलांग या धक्के से कोई छोटी सी चूल एक ओर को झुक गयी परन्तु इतना नहीं कि घड़ी एक दम बन्द होजाती। अब यह चूल धातु के टुकड़े में घूमने लगती है और घिस जाती है अब जब तक नई चूल न डाली जायगी घड़ी न चलेगी। इस प्रकार के धक्के कलाई पर बांधने की घड़ियों को बहुत लगते हैं। यदि हम घड़ी के लिए शरीर को कोई ऐसा स्थान ढूंढे जहाँ पर कि उसे अधिक से अधिक धक्के लग सकें तो वह कलाई के अतिरिक्त और कोई न होगा क्योंकि यह बड़ी शीघ्रता से हिलाई जाती है और एक दम बन्द करदी जाती है।

कई बार छलांग से जवाहिर में तरेड़ आजाती है, परन्तु तो भी घड़ी चलती रहती है। जब कोई जवाहिर इस प्रकार टूट जाता है तो इस का सिरा खुरदरा होजाता है और चूल इस खुरदरे सिरे के साथ घड़ी २ रगड़ खाकर शीघ्र ही कट जाती है। अब एक नये जवाहिर से ही काम न चलेगा वरन चूल भी नई लगानी पड़ेगी।

हमारी मंजूषा

सरल शरीर विज्ञान अनुवादक शरीर विज्ञान के एक विद्यार्थी। प्रकाशक-साहित्य सम्वर्द्धिनी समिति ११७, हरिसन रोड कलकत्ता, पृष्ठ संख्या १५८, सचित्र सुन्दर रेशमी जिल्द मूल्य केवल ॥।)

यह पुस्तक श्री विष्णु-सस्ती-पुस्तक-माला की एक मणि है। प्रकाशक ने यह निश्चय किया हैं कि विज्ञान के भिन्न २ विषयों पर सरल भाषा और सरलशैली में सर्व-साधारण के समझने योग्य दस पुस्तकें निकाली जावें जिनको केवल छपाई और कागज़ की लागत मात्र पर ही बेचा जावे। यह उद्देश्य कितना उच्च है इसकी उचित प्रशंसा नहीं की जा सकती। श्री नारायण-दास जी बाजोरिया का यह संकल्प मातृ-भाषा की विशुद्ध सेवा हेतु है और इसके लिए वह प्रत्येक हिंदी प्रेमी के धन्यवाद के पात्र हैं।

यह पुस्तक क्या है यह इसके नाम से ही पता लग जाता है। हमारे शरीर की रचना, उसके भिन्न २ अवयव और उनकी क्रियाओं का ज्ञान जन-समाज के लिये कितना आवश्यक है यह सब ही मानते हैं। इस ज्ञान के न होने से हमारे वैयक्तिक और जातीय स्वास्थ को कितनी हानि हो रही है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस

पुस्तक के पाठ से जनता को अपने शरीर सम्बन्धी अनेक बातों का ज्ञान होगा जो कि निज स्वास्थ रक्षा के लिये बड़ा सहायक होगा। २८ सुन्दर स्पष्ट चित्र देकर शरीर सम्बन्धी अनेक क्रियाओं तथा अवयवों का स्पष्टीकरण किया गया। पुस्तक सर्वथा उपयोगी है।

सुभाषित मंजूषा लेखक तथा प्रकाशक चौ० रामसिंह मेम्बर पञ्जाब लेजिस्लेटिव कौन्सिल पृष्ठ ३१२ मूल्य १॥), पुस्तक मिलने का पता मैनेजर वैदिक पुस्तकालय धण्डरां पोस्ट इन्दौरा ज़िला कांगड़ा तथा म० राजपाल मैनेजर आर्य पुस्तकालय अनारकली लाहौर।

इस पुस्तक में लेखक ने मानव-हृदय को शुद्ध तथा उच्च बनाने वाले तथा उसकी पवित्रता के द्योतक वेद शास्त्र, उर्दू हिंदी तथा फार्सी के कवियों के अनेक वचन एकत्र किये हैं। एक विषय विशेष पर इन शास्त्रों तथा तुलसी, कबीर, वृन्द, भर्तृहरि, सादी हाफ़िज़, हाली, अकबर इत्यादि अनेक भक्तों तथा कवियों के वचनों का एक स्थान पर संग्रह कर दिया है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है और आत्मिक उन्नति के इच्छुकों, साहित्य सेवियों, व्याख्यान दाताओं तथा विद्यार्थियों के बड़े काम की है। चौधरी जी का उद्योग सर्वथा प्रशंसनीय है।

३. ४. ५. महाशय राजपाल मैनेजर आर्य पुस्तकालय अनारकली लाहौर से हमें समालोचना के लिये तीन पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। पहिली का नाम है—

हमारे ऋषि की प्यारी बातें—पृष्ठ ९६ मूल्य।≈) इसके लेखक हैं हिंदी तथा उर्दू उर्दू के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत सुदर्शन जी। इसमें ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी मुख्य २ घटनाओं का सरल मनोहर तथा शिक्षाप्रद शैली में वर्णन किया गया है। पुस्तक बालकों के लिये लिखी गई है और उनका जहां इसके प्रत्येक पाठ से मनोरञ्जन होगा वहां अनायास ही उन्हें उत्तम शिक्षा भी मिलेगी। दूसरी पुस्तक है **उपदेश** मंजरी पृष्ठ १७६ मूल्य ॥≈)। इस का सम्बन्ध भी स्वामी दयानन्द से है। श्री स्वामी जी ने जुलाई और अगस्त १८७५ में १५ व्याख्यान दिये थे जो कि संस्कृत में थे। इन्हें एक सज्जन ने पहिले पहल गुजराती भाषा में छपवाया फिर इन का हिंदी अनुवाद हुआ और उसी हिंदी अनुवाद का श्री मुन्शीराम जी जिज्ञासु (स्वामी श्रद्धानन्द जी ने) उर्दू भाषा में अनुवाद कर १८८८ में प्रकाशित किया। यही इसी उर्दू पुस्तक का दूसरा संस्करण है। स्वामी जी के व्याख्यानों का विषय है ईश्वर सिद्धि, धर्मा--धर्म, वेद, जन्म, यज्ञ और संस्कार इतिहास, नित्य कर्म और मुक्ति, स्ववर्णित जीवन चरित्र। ऐसे गूढ़ और भाव पूर्ण विषयों पर ऐसे महानात्मा के विचार क्या महत्व रखते हैं यह कहने की आवश्यक्ता नहीं। इन व्याख्यानों द्वारा स्वामी जी कृत सत्यार्थप्रकाश में वर्णन किये गये अनेक विषयों और सिद्धान्तों पर विशेष प्रकाश पड़ता है। इसका दूसरा संस्करण निकाल कर प्रकाशक ने आर्यसमाजियों और ऋषि भक्तों का उपकार किया है। तीसरी पुस्तक का नाम है **अमृत** पृष्ठ ११२ मूल्य ॥)। यह बच्चों के लिये छोटे २ मनोहर कहानियों का संग्रह है। इस के लेखक भी उपरोक्त श्रीसुदर्शन हैं। इस में १२ कहानियां हैं और प्रत्येक के द्वारा बड़ी सरल रीति से उत्तम शिक्षा का पाठ दिया गया है। जहां बच्चों के दिल बहलाव का सामान है

वहां उनके आचार और विचारों को उच्च और शुद्ध बनाने का, उनकी अनजान मेंही, यह कहानियां बड़ी उत्तम साधन हैं। हम श्री राजपाल जी को इस प्रकार का बालोपयोगी साहित्य प्रकाशित करने के लिये बधाई देते हैं। इन तीनों पुस्तकों की भाषा उर्दू है हमें आशा है कि हिंदी में भी इनका शीघ्र प्रकाशन होगा।

सनातन धर्म में शुद्धि—लेखक तथा प्रकाशक पं० शिवकुमार शास्त्री, मन्त्री हिन्दू शुद्धि सभा गोरखपुर। मूल्य ~)

इस छोटी सी पुस्तक में यह दिखलाया गया है कि हिंदू धर्म में शुद्धि कोई नवीन आन्दोलन नहीं है। लेखक ने शास्त्रों तथा इतिहास के आश्रय से यह सिद्ध किया है कि हिंदू धर्म पतितों को उभारने तथा विधर्मिओं को स्वधर्म में मिलाने का कार्य प्राचीन समय से करता रहा है।

महात्मा गांधी को चैलेंज—लेखक व प्रकाशक श्री मंगलानन्दपुरी आर्यसमाज कानपुर, मूल्य ~)

इस छोटे से पेम्फलेट में महात्मा गांधी जी के हिंदू मुसलिम एकता सम्बन्धी विचारों की आलोचना की गयी है। हमें शोक है कि पुस्तक की शैली ऐसी नहीं जिस से आर्य समाज का गौरव बढ़ सके। अपनी विपक्षी को उत्तर देते समय हमें सौजन्यता और सहिष्णुता को भूल न जाना चाहिये।

शान्ति-वाणी—माता मैत्रेयी कृत बंगला पुस्तक का अनुवाद, प्रकाशक अध्यापक जी यदुनाथसिंह मेरठ कालेज मेरठ। पृष्ठ ५८ मूल्य ॥)

१५ वर्ष बीते ठाकुर दयानन्द ने आसाम में आरुणाचल आश्रम की स्थापना की थी, उद्देश्य था संसार-शांति। इसमें आप अपने अनुयायी स्त्री पुरुषों को शांति का उपदेश देते रहे हैं। आप के भक्त आपको भगवान का अवतार मानते हैं। जैसा कि कई मत मानते हैं कि संसार की अवस्था बहुत बिगड़ जाने पर भगवान स्वयं देह धारण कर इसे ठीक करने आवेंगे, वही इन आश्रम वासियों का मत है। पुस्तक में दिखलाया गया है कि समस्त जगत में ईर्षा, द्वेष, लड़ाई, झगड़ा इत्यादि पापमय विकारों से घृणा और प्रेम और शान्ति से प्रीति का प्रादुर्भाव हो चुका है, अतः भगवान के आने के लिये समय सर्वथा अनुकूल है। इसीलिये ठाकुर दयानन्द के रूप में भगवान ने जन्म लिया है। हमें पुस्तक पढ़कर पंजाब के मिरज़ा गुलाम अहमद क़ादयानी का स्मरण होता है। हमें संदेह है कि संसार 'दयानन्द' जी को भगवान एवं अपना गुरु, मानने को तय्यार होगा।

६० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ॥) रखना विश्वप्रेम का परिचय नहीं देता।

कुसुमोद्यान

क्या स्त्रियां पुरुषों के तुल्य चतुर होती हैं ?

महाशय जेम्स डी. विनलैन्ड ने "पापुलर साइन्स मन्थली" में इस उपरोक्त विषय की आलोचना की है जिसमें से बहुत आवश्यक भाग हम नीचे उध्दृत करते हैं। वह कहते हैं कि:-

"बहुत से लोग-चाहे वह अपनी माता, पत्नी या बहिन का मान और आदर कितना ही अधिक क्यों न करते हों--यह निश्चय मानते हैं कि स्त्रियों में दिमाग़ी शक्ति नहीं होती। और यह इतिहास में मैडेम क्यूरी, हेटी ग्रीन, जार्ज इलियट, और क्लेरा वार्टन सरीखी स्त्रियों के विद्यमान रहते हुये भी। मालूम होता है कि मानसिक शक्ति में पुरुषों की उत्तमता का भाव प्रत्येक पुरुष में जन्म से ही होता है। विल स्मिथ महाशय तो अपने को इतना विज्ञ समझते हैं कि वह अपनी धर्मपत्नी को अपनी 'Expert' सम्मति प्रायः सभी विषयों पर देते रहते हैं यहां तक कि गृह-प्रबन्ध और बच्चों की देख रेख में भी सलाह देते संकोच नहीं करते। और प्रायः यदि उन की धर्मपत्नी कहीं यह कहदे कि 'आप समझते भी हैं कि आप क्या बोल रहे हैं' तो दाम्पत्य कलह उत्पन्न हो जाती है।

क्योंकि विल स्मिथ की मानसिक शक्ति उसकी पत्नी या-किसी भी स्त्री से हमेशः बढ़ चढ़ कर ही रहती है ! इस पर तुर्रा यह कि यह इसे सिद्ध भी कर सक्ते हैं। वह अपने पक्ष की पुष्टि में उदाहरणों की भरमार पेश कर सक्ते हैं। परन्तु खेद यही है कि दश में से नव उदाहरण अशुद्ध ही होते हैं। वास्तव में विल स्मिथ बिल्कुल ग़लती पर हैं। उनकी धर्मपत्नी की मानसिक शक्तियां हैं—और शायद उतनी ही जितनी कि स्मिथ साहब की या उनसे बढ़ कर भी। मनोविज्ञान का यही सिद्धांत है और मनोविज्ञान--शास्त्र अनुमान, औसत या साधारण नियमों पर नहीं चलता।

अभी हाल में ही मनोविज्ञान--शास्त्र ने ऐसे तजुर्बे किये हैं और स्त्री पुरुषों को वैज्ञानिक रीति से एक ही गज़ से नाप कर यह फैसला किया है कि विल स्मिथ और उनकी पत्नी मेरी चतुराई में लगभग बराबर हैं।

कोलोराडो कालेज में ११५ पुरुषों और १११ स्त्रियों के दिमाग़ों की बड़ी सूक्ष्म परीक्षा की गई थी। और दोनों स्त्रियों और पुरुषों की औसत गणना एक ही थी अर्थात १४२ पाइन्ट। इडाहो युनीवर्सिटी, मिनीसोटा युनीवर्सिटी, सदर्न मेथोडिस्ट युनीवर्सिटी तथा कोलोराडो कालेज के विद्यार्थियों को मिलाकर परीक्षण किया गया जिसमें ३१७५ 'पुरुष और १५७५ स्त्रियां थीं' तो पता चला कि अपनी पढ़ाई में अव्वल और दोयम वर्ग प्राप्त करने में स्त्रियों की औसत ७५.२ और पुरुषों की ७५.४ है।

कुछ महीने हुये हार्डवर्ड युनीवर्सिटी के पुरुष विद्यार्थियों तथा रेडक्लिफ कालेज की स्त्री विद्यार्थिनियों को मिलाकर मनोविज्ञान-शास्त्र के अनुसार परीक्षा ली गई थी जिसमें एक स्त्री और पुरुष ८६ प्रति शतक औसत नम्बर लेकर प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुये थे। हार्डवर्ड के एक विद्यार्थी ने कम से कम जो नम्बर प्राप्त किये वह आठ थे, जबकि स्त्रियों

के कम से कम नम्बर २८ प्रति शतक थे। पुरुषों के लिये औसत नम्बर ५०.५ थे जब कि स्त्रियों के लिये ५५.।

यदि हम किंडरगार्टन से लेकर कालेज तक की पढ़ाई की जांच करें तो पता चलता है पुरुष और स्त्री विद्यार्थियों में बहुत कम फ़र्क रहता है। और एक ही प्रकार की योग्यता रखने वाले स्त्री पुरुषों के कार्यों के फल में भी कोई विशेष उत्तम या मध्यम का फ़र्क नहीं निकलेगा।

मैं अमरीका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों की सूची बताने वाली पुस्तक को लेता हूं। अगर स्त्री पुरुषों की करीब एक सी ही योग्यता हो तो इस पुस्तक में विख्यात स्त्रियों के बहुत से नाम होने चाहियें यद्यपि उतने नहीं जितने कि पुरुषों के हैं। परन्तु यह इस लिये है कि अभी थोड़े ही समय से स्त्रियां उन कार्यों को करने लगी हैं जिनके कारण वह जनता की दृष्टि में पड़ती हैं। इस पुस्तक को कहीं से खोलें तो हमें मेरा या हार्नर-लैन्सडेल पुस्तक रचयित्री, मेराथा फ्लोरेन्स लैंसिंग लेखिका, मार्किस क्लेरा लान्ज़ा लेखिका, लिन्डा हल लार्नड गृह की अर्थशास्त्र वेत्ता, मेरी, आगस्ट लेसली लेखिका, हल्डा लशान्का गानशास्त्रज्ञ, लैाला डेविस लास्कर समाज सेविका,—इत्यादि दो चार पृष्ठों पर एक दर्जन के लगभग नाम 'विख्यात व्यक्ति' शीर्षक में मिलेंगे।

परन्तु स्त्री पुरुषों की इस बराबरी का यह मतलब कदापि नहीं कि उन में एक समानता है। स्त्री पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं एक दूसरे की नकल नहीं। इन दोनों जातियों में सामाजिक नियम तथा प्राणि-शास्त्र के अनुसार बड़े आवश्यकीय भेद हैं।

प्रोफेसर एडवर्ड ली थार्न डाइक, जो कि कोलम्बिया विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान-शास्त्रज्ञ विख्यात हैं उन्होंने दोनों जातियों की मानसिक वृत्तियों के ख़ास २ भेदों को पृथक् पृथक् किया है। उनका कहना है कि स्त्रियां वर्णन विन्यास, अंग्रेजी, विदेशीय भाषाओं, तत्क्षण की यादगारी तथा स्मर्ण शक्ति में पुरुषों से बढ़कर रहती हैं और उनका कहना है कि पुरुष इतिहास, युक्ति, भौतिकी, रसायन-शास्त्र और चेष्टा की सूक्ष्मता में बढ़े हुए हैं।

एक वैज्ञानिक एक निबन्ध लिख रहे थे मैं भी उस समय पास था। वह प्रायः लिखते २ ऊपर मुंह उठाकर पूंछते रहते थे कि "Receivership" "Stupefy" "battalion" या अन्य "Sticker" शब्दों के हिज्जे क्या हैं। उसकी १३ वर्ष की लड़की जो कि हाई स्कूल की पहिली श्रेणी में थी बिना संकोच के बता देती थी परन्तु उसे यह आश्चर्य होता कि एक आदमी जो कि इतना पढ़ा लिखा गिना जाता है हिज्जे कराना भी नहीं जानता।

विल स्मिथ को शायद ही कभी जन्म दिन, विवाह की वर्ष-गांठ या परिवार की अन्य आवश्यकीय घटनाओं की तिथियां याद रहती हों। नाहीं उसे यह याद आता है कि पिछली वर्षा के बाद उसने अपना छाता घर के किस कोने में रक्खा था। किन्तु क्या उस की स्त्री भूल सकती है? कदापि नहीं।

चूंकि स्वभावतः स्त्रियों की रुचि भाषा की ओर है इसलिये यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं कि समग्र संसार की विख्यात स्त्रियों में से ३६ प्रति शतक ऐसी हैं जो कि साहित्य के कारण ख्यात हैं। इंगलैंड की प्रायः सभी ख्यात देवियां लेखिकायें हैं। फ्रांस ने ऐसी देवियां तैय्यार की हैं जिन में लेखिकायें, नाटक करने वालियां और राजनीतिज्ञ

भी हैं। इटली और जर्मनी ने गानवाद्य-वेत्तायें पैदा की हैं और अमरीका के संयुक्त प्रांत ने सुधारकायें। बेशक इनके अतिरिक्त और भी पेशेवाली मशहूर देवियां हैं परन्तु इनकी सब से अधिक संख्या है। संयुक्त प्रांत में राजनीतिक क्षेत्र में जो कुछ स्त्रियां कर रही हैं उसे हम जानते ही हैं।

अभी हाल ही में स्त्रियों ने विज्ञान के क्षेत्र को भी सँभालने का यत्न किया है और संयुक्त प्रान्त की मनुष्य गणना विभाग से मुझे पता लगा है कि इन १० वर्षों में रसायन शास्त्र तथा धातु शोधन में स्त्रियों की संख्या तिगुनी हो गई है। इतने ही अरसे में कालिज की प्रिंसिपल और प्रोफेसर के कार्य्य में स्त्रियों की संख्या जो कि ३००० से कम थी अब १०००० से ऊपर हो चुकी है। १८००० वकील और जज्ज के रहते हुये आज हमारे पास १० वर्ष पहिले की अपेक्षा तिगुने वकील और जज्ज स्त्रियां हैं। ४००० बंक की अफसर हैं, और इतनी ही वस्तु तैयार करने के धंधों की अफसर हैं, और स्त्रियां डाक्टर, दांत बनाने वाली और पुरोहित तो असंख्य हैं। १० वर्ष पहिले जहां केवल ३३ मोटर चलाने वाली स्त्रियां भी वहां पर आज १००० हैं।

यह सूचना बड़ी मार्के की है। क्या इससे पता चलता है कि मनोविज्ञान ने प्राचीन देवियों की इन क्षेत्रों में शक्ति केवल इसी लिये व्यर्थ पाई थी कि उनकी पहिली शिक्षा और परिस्थितियां इस प्रकार की थीं कि उनकी इधर रुचि नहीं थी?

एक समय स्त्रियां पुरुषों से कम इस लिये गिनी गईं थीं कि उनके दिमाग़ पुरुषों की अपेक्षा छोटे हैं। उस के बाद मनोविज्ञान-वेत्ताओं को पता लगा कि दिमाग़ के आकार पर उसकी शक्ति निर्भर नहीं है, वरन् उस दिमाग़ के अन्दर जितने छिद्र हों और प्रायः करके छोटे दिमाग़ में बड़े की अपेक्षा अधिक छिद्र होते हैं।

जब विल स्मिथ यह कहता है कि उसकी धर्मपत्नी के दिमाग़ नहीं है तो उस का मतलब यह होता है कि उसकी मनोभाव तथा स्वभाव की शक्तियां उससे भिन्न हैं। यह शक्तियां नापी नहीं जा सकतीं और इनका पता भी नहीं लगता। प्रोफेसर थोर्न्डाइक कहते हैं कि स्त्रियां मनोभावों, स्वभाव की मृदुता, जल्दबाजी, धार्मिकता, सहानुभूति, धैर्य्य, झूठा अभिमान, और लज्जा में अधिक वेगवाली हैं। दूसरी ओर पुरुष गुस्सा करने, स्वगुणज्ञान, हसी ठट्ठा, स्वाधीनता और तेजपन में तीव्र होते हैं, उनका मतलब औसत स्त्री और औसत पुरुष से है क्योंकि तुम्हें शायद ऐसा भी कोई पुरुष मिलेगा जो कि स्त्रियों की अपेक्षा बच्चों में अधिक रुचि रखता हो और कुछ स्त्रियां ऐसी भी मिलें जो कुछ पुरुषों की अपेक्षा अधिक आत्माभिमानी और आत्मश्लाघा प्रिय हों।

स्त्रियां व्यक्तियों में रुचि रखती हैं पुरुष वस्तुओं और घटनाओं में। पुरुषों की रुचि यह जानने की ओर होती है कि लोगों ने क्या २ किया? एक पुरुष वोटर के लिये किसी स्टेट या संयुक्त प्रान्त के गवर्नर की हैसियत में अमुक मनुष्य जो प्रधानी के लिये तैयार है उसके विषय में व्यवस्था पत्र कैसे हैं यह जानना लाभकारी है, बनिस्वत उसके कि वह अपने कुटुम्ब से प्रेम करता है या नहीं, गिरजे जाता है नहीं।

परन्तु यदि व्यक्ति-स्वभाव का परिचय पाना हो तो विल स्मिथ को अपनी स्त्री से हार माननी चाहिये। चूंकि स्त्रियां बच्चों का पालन पोषण करती हैं अतः उन्हें मनुष्य के विशुद्ध स्वभाव का—जब कि उस पर अभी

झूंठ, दग़ाबाजी और चालाकी का असर नहीं हुआ है—अधिक ज्ञान होता है। चूंकि मिसेज़ स्मिथ में स्वभावतः मनुष्य-मात्र के ख़ास गुणों का शुद्ध ज्ञान होता है अतः वह बिल स्मिथ के स्वभाव को उस से बहुत बढ़कर जानती है जितना कि बिल स्वयं जानता है।

यथार्थ में मनोविज्ञान यह बात बतलाने में कि पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान नहीं हैं चाहे कुछ प्रमाण दें तथापि बिल स्मिथ का यह भाव कि वह अपनी स्त्री से ही नहीं बल्कि सब स्त्रियों से बढ़कर बुद्धिमान है—और इस भाव को बहुत से अन्य पुरुष भी रखते हैं—हमेशा स्थायी रहेगा। इसका कारण जानना सहल है। स्त्रियों का स्वभाव दबने वाला है, पुरुषों का उद्धत है। और जब स्मिथ साहब की धर्मपत्नी गृह कलह मिटाने के लिये चुप साध लेती है तो बिल महाशय धूर्तता से समझने लगते हैं कि उनकी शक्ति बड़ी है।

और भी चूंकि हमारी सामाजिक अवस्था के अनुसार पुरुष धनोपार्जन करता है अतः उसके पक्ष में पलड़ा झुका रहता है। यह एक मनुष्य मात्र की कमज़ोरी है कि जब वह शक्तिशाली होता है तो अपने को सब से अधिक बुद्धिमान समझने लगता है।

पुरुष जाति स्त्रियों की अपेक्षा अधिक चंचल स्वभाव की है। पुरुषों में प्रतिभाशाली भी होते हैं, तो आशातीत मूढ भी होते हैं। मनोविज्ञान-शास्त्र बतलाता है कि सौ में से एक आदमी प्रायः किसी स्त्री की अपेक्षा अधिक चतुर होगा। सीज़र नैपोलियन, लायडजार्ज, एडिसन जैसे लोग प्रायः हमेशः पुरुष ही होंगे—परन्तु इसी प्रकार सब से बढ़कर मूढ़ भी पुरुष ही होंगे। यह औसत दर्जे के आदमियों के लिये—जो कि महापुरुषों की कीर्ति में अपनी कीर्ति समझते हैं—गौरव की बात नहीं है, परन्तु विज्ञान द्वारा यही सिद्ध होता है।

पुरुष और स्त्रियां समान हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। उनका सृष्टि के अन्त तक, ढूंढने, छिपाने, प्रेम करने और नफ़रत करने में समय जायगा और वह इन्हीं ऊपरोक्त सिद्धान्तों के अनुकूल जीवन व्यतीत करेंगे। (मार्डन रिव्यू)

दाढ़ी–चुटिया–सम्मेलन।

"मिला दो चुटिया-दाढ़ी को। पाट दो गहरी खाड़ी को॥
फूंक दो प्रीति-रीति का शंख। काट दो वैर-भाव का पंख"॥
यही उपदेश लीडरों का। मान, दल चला गीदड़ों का॥
साधकर असहयोगका योग। हुआ हिन्दू-मुस्लिम संयोग॥
नाम को रहा नहीं कुछ भेद। मुसल्मां लगे मानने वेद॥
लगे हिंदू कुरान पढ़ने। मियां साहब पुराण पढ़ने॥
खिलाफ़तकी आफ़त निज मान। किया हिंदू ने चन्दा-दान॥
कमेटी लगी ज़ोर चलने। शत्रु सब लगे हाथ मलने॥

मियांने गो-रक्षा का बाज़। सुनाया, खोला दिल का राज़॥
बुरी गो-हत्या बतलायी ! बात हिंदू के मन भायी।
मगर यह सब थी पोलमपोल। खोखली थी भीतर से ढोल॥
बड़े हत्यारे वे निकले। कृतघ्नी घोर नीच निकले॥
इसीसे भूल सकल उपकार। हमींपर करते हैं वे वार॥
मान-धन सतियों का हरते। प्राणका नाश किया करते॥
अभी तो कलकी ही है बात। किया दिल्लीमें जैसा घात॥
लखनऊ की बारी आयी। तबाही हिंदू पर आयी॥
लगे हाथों देखा कोहाट। जहां का बिगड़ा सारा ठाट॥
वहां के लूटे सभी हिंदू। जान ले भगे सभी हिंदू॥
कभी महलों में जिनका वास। भरी दौलत थी खासी पास॥
चने उनको मुहाल हुये अब हैं। बने वे आज दिगम्बर हैं॥
दे रहे मूँछों पर हैं ताव। मियां जी का पूरा है दांव॥
दिखायी फिर नादिरशाही। मचा कर यों गुण्डेशाही॥
शिखा-दाढ़ी का नक़ली मेल। मिट गया, निकला पूरा खेल॥
साफ़ अब ख़ाका उतरा है। नक़ली चौतरा है॥
लगाई आग, मूर्ति दी तोड़। मियां ने हिंदूका सिर फोड़॥
मनाते हैं अब खुशियाली। दे रहे हिंदू को गाली।
छोड़कर लीडर-गण की आश। छिन्न कर दुर्बलता का पाश॥
सभी हिंदू बलवान बनो। भीमअर्जुन सन्तान बनो॥
बनो हे हिन्दू गण बलवान्। इसी से राजी हो भगवान॥
तुम्हें हिंदू रहने देंगे। किसी विधि से जीने देंगे॥
दिखा दो फिर प्रताप सा ताप। शिवाजी का सा पुनः प्रताप॥
मिट गयी जब नौरंगशाही। रहे कब तक गुण्डेशाही ?

—ईश्वरी प्रसाद शर्मा।

(मतवाला)

वनिता विनोद

स्त्री – जगत्

गत मास की १३ तारीख़ को अली बान्धवों की वयो वृद्ध माता पूजनीया-बी अम्मां का देहली में देहान्त होगया। आपका निस्वार्थ और उत्साह पूर्ण और धैर्यमय जीवन स्त्री संसार के लिये सर्वथा अनुकरणीय रहेगा।

———

हमारे राजे और रानियां कितने स्वतन्त्र हैं यह बस्तर की राजकुमारी के विवाह की चर्चा से पता चलता है। बस्तर की पटरानी वर्त्तमान नाबालिग राजकुमारी प्रफुल कुमारी देवी का विवाह मयुरभंज के राजकुमार से करना नहीं चाहती। राजकुमारी स्वयं भी अपनी माता से सहमत है, परन्तु अंग्रेज़ी राजकर्मचारी चाहते थे कि विवाह मयुरभंज में ही हो। अब वाइसराय महोदय ने भी इन्हीं का समर्थन किया है। क्या यह दुःख का विषय नहीं कि राजकुमार और राजकुमारियों को अपना विवाह करने की इतनी भी आज़ादी प्राप्त नहीं जितनी कि साधारण आदमियों को है?

———

बीबी राजेन्द्र कौर अकाली महिला को जालन्धर में एक व्याख्यान के सम्बन्ध में ६ मास का कारागार दण्ड मिला था। उनके ६ मास पूरे कर जेल से छुटने पर अमृतसर की अकाली देवियों ने उनका स्वागत किया।

———

लन्डन में अभी २ एक श्रमजीवी स्त्रियों की परिषद् हुई थी। उसने प्रस्ताव पास किया है कि परिषद आशा करती है कि गवर्मैन्ट ऐसे क़ानून का समर्थन करेगी जो कि भारत को कैनेडा, आस्ट्रेलिया इत्यादि अन्य उपनिवेशों जैसा राज्य देने का प्रतिपोषक हो।

———

रूस की वर्तमान वोलशविक सरकार ने कितनी ही धनी महिलाओं के हीरों के गहने ज़ब्त कर लिये थे। अब सोवियट, सरकार इनका एक भाग जिसके तोल का अन्दाज़ा ४ मन ८ सेर का है बेचना चाहती है। अन्तर्जातीय हीरे के व्यापारियों की समिति इस से बड़ी भयभीत है। वह कहती है कि रूस सरकार जितने हीरे बेचना चाहती है वह साधारणतया १० वर्ष में बिकते, इसका फल यह होगा कि हीरों का व्यापार मलियामेट हो जायगा।

———

मिस कारनीलिया सोराब जी को कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत करने की आज्ञा मिल गयी है। आप बंगाल में पहिली वकील महिला हैं।

———

कैथोलिक स्त्री सेवा संघ बम्बई ने प्रान्त के भिन्न २ स्थानों पर ऐसी श्रेणियाँ खोलने का प्रबन्ध किया है जहाँ कि स्त्रियों को अपने तथा बच्चों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में शिक्षा दी जा सके। शिक्षिका एक डाक्टरनी होंगी और शिक्षा के विषय शरीररचना, गर्भवती माता की रक्षा; बच्चों की रक्षा; उनका आहार तथा साधारण रोग। इन विषयों पर एक छोटी सी पुस्तक भी तैयार की जा रही है।

———

राजमाता महारानी अलैक्षेन्डरा ने गत ४ दिसम्बर को अपनी ८० वीं सालगिरह मनाई। इस अवसर पर सैन्डरिंगहम में एक सहभोज हुआ जिसमें इंग्लैन्ड के राज परिवार के अतिरिक्त नारवे देश की राज महिषी तथा राजकुमार भी सम्मलित थे।

———

मिस सुधांशुवाला हाज़रा पटना हाईकोर्ट की वकील हैं। अभी आप अपने प्रति पक्षी मा० प्राण कृष्ण पारिज प्रोफेसर कटक कालिज को बहुत बुरी तरह से हरा कर पटना विश्वविद्यालय की सैनट की सदस्य चुनी गयीं हैं। आप विश्वविद्यालय की (Syndicate) (कार्यकर्तृ सभा) की मैम्बरी के लिये भी खड़ा होना चाहती हैं। यह समस्त भारत में एक अद्वतीय मान है।

———

इस वर्ष सोनपुर में दो विचित्र लड़कियां आई थीं। दोनों एक में सटीं हुई थीं। उनके कमर का हिस्सा तो एक था, परन्तु पैर चार थे। कमर के ऊपर दो सुन्दर मूर्तियां अलग हो गई थीं। उनकी अवस्था १४-१५ वर्ष की कही जाती है। दोनों को भूख प्यास निद्रा एक ही साथ लगती है। यह आपस में बातें भी करती हैं इनके नाम गंगा और गौरा है।

गत २३ सितम्बर को मा० जोशी ने लैजिसलेटिक एसैम्बली में इस आशय का एक बिल पेश किया कि कारखानों में काम करने वाली गर्भवती स्त्रियों को प्रसव से कुछ पहिले और सन्तान होने के कुछ समय बाद तक कारखानों में काम करने की आज्ञा न मिलनी चाहिये और इस समय के लिये कारखानों के मालिक उनको घर बैठे एक चौथाई वेतन दें।

———

श्रीमती बसन्ती देवी ने कांग्रेस के ध्येय को स्वीकार कर उस पर हस्ताक्षर कर दिये हैं और आपने श्री देवदास गांन्धी से चरखा कातना सीखना आरम्भ कर दिया है।

———

लाहौर में स्त्रियों को दस्तकारी सिखाने के लिये दो स्कूल हैं। एक सरकारी ज़नाना दस्तकारी स्कूल है। जो ५४०००) के ख़र्च पर चल रहा है। इस में से ११०००) छात्र वृति के रूप में दिया गया है। इस में २० के लगभग दैनिक उपस्थिति रहती है। दूसरा सर गंगाराम का हिंदू और सिक्ख स्त्रियों के लिये दस्तकारी स्कूल है। यह गत वर्ष आरम्भ किया गया था। इस पर १ लाख से अधिक खर्च हो चुका है और इस में ७० स्त्रियाँ और लड़कियां शिक्षा पाती हैं।

———

गृह--प्रबन्ध

रंगने के पीछे किसी भी वस्त्र को मरोड़ देकर न निचोड़ो। इसे नरमी से दवाकर निचोड़ लो और पानी को टपक जाने दो।

*　*　*

रंगने से पहिले सब कपड़ों के वटन, हुक इत्यादि उतार लो। एक वार रंग में उवालने के पीछे उस में थोड़ा सा नमक डाल दो और १५ मिनट तक फिर उबालो। इससे रंग पक्का हो जायगा।

*　*　*

अचार के वर्तन के नीचे जो सिरका रह जाता है उसे सब्ज़ी भाजी में थोड़ा २ डालने से यह बहुत स्वादिष्ट बन जाती है।

*　*　*

कई घरों में डबल रोटी खाने का रिवाज़ पड़ता जाता है। बासी होने पर यह कभी २ बू देने लग पड़ती है। इसकी बदबू दूर करने का सुगम उपाय यह है कि इसे दूध में भिगोदो और फिर भट्टी अथवा चूल्हे की आंच में सेंक कर उसे करारा तथा भुरभुरा करलो।

* * *

कितने ही घरों में दीवारों पर काग़ज़ लगा रहता है। मैला होने पर इसको साफ़ करने की उत्तम विधि यह है कि कम से कम तीन दिन की बासी डबल रोटी लेकर उसके टुकड़े से दीवार को आहिस्ता २ नीचे की ओर रगड़ो।

* * *

पीतल के बर्तनों पर कलई चढ़ाने अथवा अन्य किसी प्रकार का पालिश चढ़ाने से पहिले उन्हें साबुन और पानी से भली प्रकार धो डालो और फिर मट्टी का तेल और ठंढी राख को मिलाकर इस से खूब मांजो।

* * *

तांबे की चीज़ों को खट्टे के रस अथवा सिरके और नमक से रगड़ कर साफ़ करो, फिर साबुन के पानी से धो डालो। जलने के अथवा अन्य काले २ धब्बे राख से रगड़ कर उतार दो और फिर पालिश करो। सब से पीछे मशीन के तेल में भीगे कपड़े से पोंछ दो।

* * *

नौकर प्रायः आंच जलाने में मिट्टी के तेल से काम लेते हैं परन्तु जिसप्रकार लकड़ी अथवा कोयलों पर उड़ेल कर वह काम करते हैं उस से तेल भी अधिक लगता है और बू भी फैलती है। यदि किसी पुराने टीन के बर्तन में कुछ कोयले अथवा लकड़ी के टुकड़े मट्टी के तेल में भिगो दिये जांय और इन्हें आवश्यकता पड़ने पर काम में लाया जाये तो ऊपर बतलाये दोष दूर हो जाते हैं।

* * *

कलाकौशल।

पंच पतिया लेस और कोना।

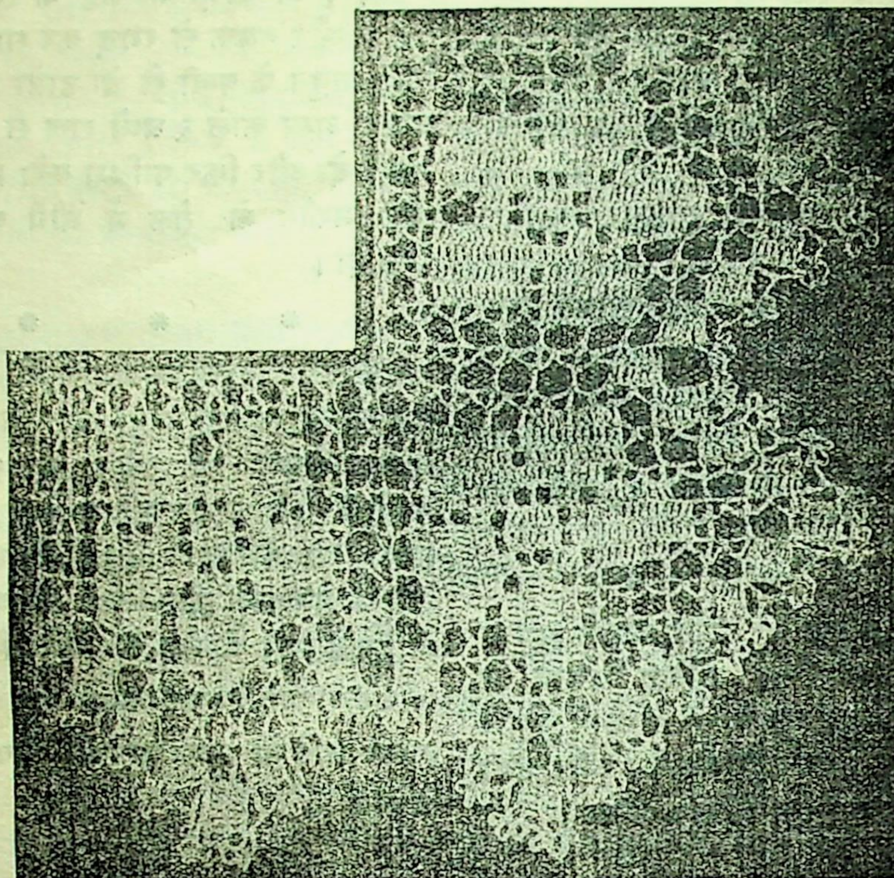
लें०—श्रीमती ओ३मवती जी

संकेत: — चेन के लिये "चे"; तेहरा क्रोशिया = "ते"; दोहरा क्रोशिया = दोहरा "दो"; लम्बा तेहरा = "ल. ते"; ।

लैस्यट = (३ चेन, २ छोड़ कर, १ दोहरा अगले फन्दे में, ३ चेन दो फन्दे छोड़ कर १ तेहरा अगले फन्दे में)। "लै" एक बार वा बन्द लैस्यट = "ब" (यह लैस्यट के ऊपर बनाया जाता है,) ५ चेन, १ तेहरा लैस्यट के तेहरे पर।

ख़ाना = २ चेन, दो फन्दे छोड़ो १ ते, अगले फन्दे में। यदि ३६ नं० का काटन हो, ५॥ नं० का क्रोशिया हो तो ३॥ इंच चौड़ी लेस होगी।

आरम्भ में ५० चेन करो।



१ पंक्तिः—१ तेहरा क्रोशिये से ७वीं चेन में ६ ते. अगली ६ चेन में, ६ लैस्यट, १ ते. अन्त वाले घर में।

२ पंक्तिः—३ चेन तेहरे की जगह, १ ते दूसरे तेहरे पर, ६ बन्द लैस्यट, ६ ते. पिछले ६ तेहरों पर।

३ पंक्तिः—१३ चेन, १ ते, क्रोशिये से ८वीं चेन में, ५ ते. अगली ५ चेनों में, १ ते. झुंड के पहिले ते. पर, ७ लै. १ ते. पिछले ते पर।

४ पंक्तिः—३ चे. तेहरे के लिये १ ते अगले ते. पर, ४ ब. लै. १२ ते. अगले दो लैस्यटों पर, १ ब. लै ६ते, ६ ते. पर।

५ पंक्तिः—१३ चे, १ ते. ८ वीं चेन में, ५ ते. अगली ५ चेनों में, १ ते. पहिले तेहरे पर, २ लै. १२ ते. अगले १२ ते. पर, २ चे. ३ ते. पहिले बार पर १ ते. अगले ते. पर, ५ ते. बार पर, १ ते. अगले ते. पर, ३ ते. अगले बार पर, २ चे. १ ते. अगले ते. पर, १ लैस्यट, १ ते. पिछले ते पर।

६ पंक्तिः—३ चे १ ते अगले ते पर, १ ब. लै., २ चे. १३ ते. तेहरों पर, २ चे. १३ ते. २ बार, ६ ते. ते. पर।

७ पंक्तिः—१३ चे. १ ते. ८वीं चे, में, ५ ते. ५ चे पर, १ ते. पहिले ते. पर, ३

लैस्यट, २ चे. २ ते. छोड़कर २५ ते. बराबर, २ चे. १ ते. अगले ते. पर, १ लै. १ ते. पिछले ते. पर।

८ पंक्तिः—३ चे. १ ते. अगले ते. पर, १ बार, २ चे. १३ ते. २ ख़ा. ३ ते. अगलों पर, २ चे. २ ते. छोड़ो, १० ते. (१ ख़ा और १ लैस्यट पर) २चे ६ ते।

९ पंक्तिः—१३ चे १ ते ८वीं चे. पर, ५ते. ५ चे. पर, १ ते. ते. पर, २ लैस्यट, २ चे. ३ते. बार पर, १० ते. अगले १० ते. पर, २ ते. खाने पर, १ ते. ४ ते. में के पहिले ते. पर, १ खा. २ ते. अगले ख़ा. पर, १ ते. ते. पर, २ ते. ख़ा. पर, १ ते. अगले ते. पर, १ ख़ा. ३ ते. १ लै. ३ चे. १ ते. ते. पर, लै. १ ते. ते. पर।

१० पंक्तिः—३ चे ते. के लिये, १ ते. ते. पर १ बार, १ ख़ा. १ बार, ३ ते, १ ख़ा. ६ ते. १ ख़ा. १५ ते. १ खा. २ बार ६ ते. अन्त वालों पर।

११ पंक्तिः ७ चे. सादे फन्दे तेहरों के झुंड के पिछले तेहरे पर तक, ३ चे. ते. की जगह, ५ते. बार पर १ते ते. पर, २ लै ६ ते. ते पर, १ ख़ा. २ ते. ख़ा. पर, १ ते ते. पर, २ख़ा २ते. ख़ा पर, ४ ते. तेहरों पर, ५ ते बार पर, १ ते. ते. पर, १ ख़ा. २ लै १ ते. अन्त वाले पर,

१२ पंक्तिः—३चे. १ते. १ बार, १ख़ा १२ते. ते. पर, २ते. ख़ा. पर, १ते. ते. पर, २ते. ख़ा. पर, ४ ते. ते. २ ते. ते. खा. पर, १ ते. ते. पर, १ ख़ा, ३ बार, ६ ते.।

१३ पंक्तिः— ७ चे. सादे फन्दे तेहरों के झुंड पर, ३ चे. ते. की जगह ६ ते. २ लै. १२ ते. १ ख़ा. १२ ते. १ ख़ा. १ लै. १ ते.।

१४ पंक्तिः—३चे. ते के लिये, १ ते. १ बार १२ ते. १ ख़ा. १२ ते. २ बार, ६ ते.

१५ पंक्तिः—७ चे, सादे फन्दे तेहरों के झुंड पर, ३ चे. ६ ते. १ लैस्यट, १२ ते. ४ लैस्यट १ ते.।

१६ पंक्तिः—३चे. १ ते. ७ बार ६ ते.।

१७ पंक्तिः—७ चे सादे फन्दे सब तेहरों पर ३चे ते. के लिये, ६ ते. ६लैस्यट, १ ते.

१८ पंक्तिः—३चे १ते. ६ते ६बार, अन्त पर, यह लेस हो गई।

अब कोना शुरु होगा।

१ पंक्तिः—१३ चे १ ते. ८वीं चे. में, ५ ते. चेनों में, १ते. पहिले ते पर, ७ लैस्यट।

२ पंक्तिः—८ चे. १ ते. लैस्यट के ते. पर, ३ बार, १२ ते. २ लैस्यटों पर, १ बार ६ ते.।

३ पंक्तिः—१३चे. ६ते. ८वींचेन से लेकर, १ते. ते. पर, २ लै. १२ ते. २ चे. १२ ते. अन्त तक।

४ पंक्तिः—३ चे. १२ते. २चे १२ ते.पर, २ बार, ६ ते.।

५ पंक्तिः—१३ चे. १ ते. ८वीं चे पर, ५ ते चे. पर १ ते. ते. पर, ३ लैस्यट, २ चे. २ छोड़ो, १६ ते. बराबर।

६ पंक्तिः—३ चे. ६ ते. २ ख़ा. ३ ते. ते. पर, २ चे. २ छोड़ो, १० ते. २ बार, ६ ते. पिछले ते. पर।

७ पंक्तिः—१३ चे १ ते. ८ वीं चेन में, ५ ते. चेनों में, १ ते.ते. पर, २लैस्यट २ चे १६ ते. २ चेन, २ ते. छोड़ो ७ ते. अगले २ खानों पर।

८ पंक्तिः—३ चे., ६ ते., २ चे., १६ ते, २चे., १ ते., २ बार, ६ ते., तेहरों पर।

९ पंक्तिः—७ चे., सादे फ़न्दे तेहरों के झुंड पर, ३चे., ते. के लिये ६ ते., २ लै, ६ ते.,२ चे., २ छोड़ो, १ ते, ते, पर, २ ते, ख़ा. पर, १ ते, अगले झुंड के पहिले ते. पर,।

१० पंक्तिः-६चे, २ते., छोड़कर, १ ते, २चे., २ चे., छोड़कर, १ ते, ३ चे., ३ ते, छोड़ो, १ ते., ३ बार, ६ ते., ते, पर

११ पंक्तिः-७ चे., सादे फ़न्दे सब तेहरों पर, ३ चे., ६ ते., ३ लैस्यट।

१२ पंक्तिः-८ चेन, १ ते, लैस्यट पर के पहिले ते., पर, २ बार, ६ ते., पिछले ते, पर।

१३ पंक्तिः-७ चे, सादे फ़न्दे तेहरों पर, ३ चेन, ६ ते, १ लैस्यट।

१४ पंक्तिः-६ चे., १ ते., लैस्यट के पहिले ते., पर, ६ ते., पिछलों पर।

१५ पंक्तिः-७ चे., सादा फ़न्दा सारे तेहरों पर, १३ चे,।

१६ पंक्तिः-१ ते., ८ वीं चेन में, ५ ते., अगली ५ चेनों में, सादा फ़न्दा ३सरी चेन में बार की, बाकी दो चेनों में भी ६ ते., तेहरों पर।

१७ पंक्तिः-१३ चेन, १ ते., ८ वीं चेन मे ६ते. २ लैस्यट १ तेहरों पर और दूसरा लैस्यट के किनारे पर, सादे फ़न्दे तीसरी चेन से लेकर अन्त तक।

१८ पंक्तिः-२ बार., ६ ते, अन्त वालों पर।

१९ पंक्तिः-१३ चे., १ ते., ८ वीं चेनमें, ६ ते. और ३ लैस्यट, १ ख़ा. २ चेन, सादा फ़न्दा तेहरों में के पहिले ते, पर, २ सादे अगली २ चेनों पर।

२० पंक्तिः-१० ते, खाने और लैस्यट पर, २ बार ६ ते.,।

२१ पंक्तिः-१३ चे, १ ते., ८वीं चेन में ६ ते और, २ लैस्यट, २ चेन ३ ते, बार पर, १० ते., तेहरों पर, ३ ते खान पर, २ चेन, सादे फ़न्दे ४ थे तेहरे पर से अन्त तक।

२२ पंक्तिः-२ चे., १६ ते, १ ख़ा., २ बार, ६ ते. तेहरों पर।

२३ पंक्तिः-७ चे, सादे फ़न्दे सारे तेहरों पर, ३ चे, ६ तेहरे, २ लैस्यट, ६ ते, २ चे, २ छोड़ो, ४ ते, खाने पर, २ चे, १ ते. किनारे वाले ७ तेहरों के झुन्ड पर, २ चेन, सादे फ़न्दे ४थे तेहरे से लेकर ७वें तेहरे पर तक।

२४ पंक्तिः-१३ ते., बराबर, १ ख़ा. ३ बार, ६ ते., तेहरों पर।

२५ पंक्तिः-७ चे., सादे फ़न्दे तेहरों पर, ३ चे. ६ ते. २ लैस्यट १३ ते. २ चेन ३ ते. तेहरों की पहिली पंक्ति के किनारे ३ ते, दूसरे तेहरों के झुन्ड के ऊपर, सादे फन्दे १०वें तेहरे पर से १३वें तेहरे के ऊपर तक।

२६ पंक्तिः-६ ते, ६ तेहरों पर, २चेन, १३ते २ बार, ६ ते., तेहरों पर॥

२७ पंक्तिः ७ चे,सादे फन्दे तेहरों पर, ३ चे, ६ते, १ लैस्यट, १३ते. २ लैस्यट, ३चे, १ दोहरा, अगले १३ तेहरों में के १

पिछले तेहरे पर, ३चे., सादे फन्दे बार के तेहरे पर, और पिछली बार की चनों पर।

२८ पंक्ति -६ बार, ६ ते, तेहरों पर।

२९ पंक्तिः-७ चे., सादे फन्दे तेहरों पर, ३चे ६ ते. ६ लैस्यट, १ ते. सिरे की लकीर पर। यह कोना समाप्त हुआ।

अब दूसरी पंक्ति से १८ वीं पंक्ति के अन्त तक लैस की अगले फूल के लिये बीनो बार२ जितनी लम्बी चाहिये।

किनारे के लियेः—पहिले तेहरों के झुन्ड के किनारे के छेद में सूत को बांधलो, ३ चेन, * १ दोहरा, अगले छेद में ५ चेन, १ दोहरा, ६ चेन, १ दोहरा ५ चेन, १ दोहरा सब उसी छेद मे, ३ चे, एक लम्बा तेहरा दो नोंकों के बीच कीजगह पर, ३ चे, फिर उसी तरह ५ चेन १ दोहरा…इत्यादि इस* निशान से सारे फूलों पर॥

संगीत विद्या। ❀

[ले० श्रीमती सुशीलादेवी जी धर्म पत्नी रायबहादुर ला० सुल्तान सिंह जी दिल्ली।]

प्यारी बहनों!

जिस आसन को आपने मुझे प्रदान किया है मैं सर्वथा उसके अयोग्य हूं। यह आसन बड़ा ही उच्च है इसकी रक्षा तो वही व्यक्ति कर सकता है जो संगीत शास्त्र का पारंगत हो, मेरी तो संगीत-सागर तट तक भी पहुंच नहीं है। आपकी सहायता से सम्भव है किनारे तक पहुँच जाऊं। ऐसी अवस्था में आप संगीत पर यदि मुझ से सुनने की आशा रखने पर निराश हों तो आश्चर्य ही क्या है। अपनी योग्यता के अनुसार जो कुछ इस विषय में मुझे ज्ञात है मैं मैं आपके सामने रखती हूँ।

मनुष्य का जितना काम है, सब का उद्देश्य सुख है। बुरा या भला जो भी काम मनुष्य करता है, उसमें उसका ध्येय यही होता है कि इस काम के करने से हमको सुख मिलेगा। सुख मिले या दुःख यह तो उस काम पर निर्भर है, पर मनुष्य की आकांक्षा सुख ही प्राप्त करने की होती है। सचमुच सुख क्या है इसके समझाने की विशेषतः आवश्यकता नहीं। सभी लोग जानते हैं कि सच्चा सुख तन-धन में नहीं है। सच्चा सुख यदि कहीं है तो अन्तःकरण में। बाहरी ठाठ बाट, लम्बी चौड़ी बातों से भले ही कुछ मिनटों या घंटों के लिए सुख मिल जावे पर अन्तःकरण का सुख स्थायी होता है, वह अमिट और अचल होता है। जो बात, जो शिक्षा अन्तःकरण स्वीकार कर लेता है क्या वह उपदेश कभी भूलने की चीज़ हो जाता है? कभी नहीं। अन्तःकरण जिस

❀ हरि कीर्तन मंडल के द्वितीयाधिवेशन में सभानेत्री की हैसियत से श्रीमती सुशीला देवी ने इस को पढ़ा था। संपादिका

बात को स्पर्श न करेगा उस बात को हज़ार उपाय से समझाइये सफलता कदापि न होगी। अन्तःकरण को खींचने की शक्ति किस विद्या में है। विचार कर देखिए तो वह विद्या "संगीत" है। यदि इतना प्रभुत्व संगीत को प्राप्त न होता तो कदापि भर्तृहरि जी इस श्लोकार्ध को न कहते कि "संगीत साहित्य कला विहीनः साक्षात्पशु पुच्छ विषाण हीनः।" इसका मतलब यह हुआ कि जो संगीत और साहित्य कला से हीन होता है वह सींग-पूंछ रहित पशु है। इस प्रकार के वाक्यके सहन करने का आसाधारण कार्य मनुष्य के सिर पर है। हमको इस स्थान पर विशेष चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम जानते हैं कि हम लोग संगीत और साहित्य से शून्य नहीं। हम यह भी जानते हैं कि हमारा हृदय 'कला' प्रिय है। यदि यह बात न हो तब तो बेशक हमारी मनुष्य नहीं पशु संज्ञा हो सकती है। इस बात को यों समझिए। देखिए! चक्की चलाने वाली ग्रामीण बहनें गीत के द्वारा अपने श्रम को भुला देती हैं। खेत में काम करने वाला किसान अपने पसीने को गा कर पोंछ डालता है। राजगीर बड़े से बड़ा पत्थर तिमंज़िले मकान पर चढ़ा देता है। इसी तरह चरवाहा-हलवाहा-बड़ा छोटा सब की ओर निगाह फेर कर देखिए तब स्पष्ट हो जायगा कि गाने और रोने से कोई वंचित नहीं-रेवड़ी बेचनेवाला, चूरन, दिया सिलाई, और पान बेचने वाले भी गाने का आधार लेते हैं कोई गुन गुनाता है, कोई अलग गाता है। कोई चार आदमियों में बैठ कर अपने गुण से लोगों को मुग्ध करता है। एक राहगीर से लेकर बड़े बड़े महर्षि तक संगीत का आश्रय लेकर मोक्ष अधिकारी हो जाते हैं। भगवान का आराधन करने के जो पद हैं-वे गाने के लिये हैं। ऋषि महर्षि भक्त उपासक सभी उसका आश्रय लेते हैं। उन पदों को गा-कर भगवानकी पूजा करते हैं। अब तो भगवान के भजने वाले जिन पदों को गाकर भगवान का आराधन करते हैं उनका नाम ही 'भजन' होगया। इस समय भी भारतवर्ष में कोई भी ऐसा संप्रदाय न होगा जिस में भजन का आदर न हो। इस प्रकार से संगीत का प्रचार किसी न किसी रूप में सर्वत्र है पर हां यहां हमें प्रौढ़ संगीत की ओर भी कुछ ध्यान देना चाहिए।

हमारे प्रौढ़ साहित्य के प्रचारकों और पुष्टिकारकों में श्री स्वामी हरिदास और मियां तानसेन का नाम बड़े गौरव से लिया जा सकता है। बड़े बड़े राजा और बादशाह संगीत प्रेमी होगये। सभी राज दरबार कार-बार में संगीत का जो इतना प्रचार हो गया, इसका यही तो कारण है! आज तो मसजिद के सामने बाजा बजाना चाहिए या नहीं इस बात का झगड़ा होता है पर उस समय स्वयं अकबर बादशाह बगल में वीणा दवा कर स्वामी हरिदास के दर्शनों को गया था ऐसी ही कथाएँ संगीतज्ञ जनों के आदर के सबन्ध में सुनने में आती हैं। उस प्रौढ़ संगीत का बीच में खूब ह्रास हुआ। यह ह्रासता यहां तक बढ़ी कि गंदे गाने होने लगे और उन गन्दे और भ्रष्ट गीतों का आदर संसार करने लगा। भारत की प्राचीन संपत्ति को नष्ट करने में भ्रष्ट संगति ने भी पूरा भाग लिया)-कहां तो शुद्ध और सुन्दर संगीत का हर जगह प्रचार था कहां अशुद्ध और भ्रष्ट गीतों ने अपना क़ब्ज़ा जमा लिया! मेघ-दीपक इत्यादि रागों का गुण लोप होने लगा। सर्प, और हिरण जिस संगीत से मुग्ध हुआ करते थे वे बातें स्वप्न होगईं। भैरवी और आसावरी का

रोगनाशक प्रभाव लोगों की दृष्टि में घटगया। सितार के स्वर पर चिड़ियों का नाच अब बंद हो गया। इसके साथ ही साथ साहित्य और समाज का भी उच्चादर्श कम होगया। चरित्रत्व में शीलता आने लगी, स्वर-ताल-राग-नृत्य इत्यादि बातें लुप्त हो गईं इनका स्थान अशुद्ध गीतों ने ले लिया। शान्त रस को दूर हो जाने की नौबत आगई। भद्दे शृंगार का साम्राज्य हो गया। ध्रुपद और भीम पलासी को लोग समझते ही नहीं थे। संयम-नियम का जो उच्च उपदेश था उसका लोप हो गया और अश्लीलता का राज्य! संगीत के साथ ही संस्कृत और हिंदी का भी आसन डिग गया था क्योंकि संगीत की माता तो संगीत ही है। सूर तुलसी हित हरिवंश के हृदय हिलाने वाले उपदेशात्मक भजन मीरा नरसी और कबीर के हृदयोद्-गार कौन सुनाने लगा। सभी बातें स्वप्न हो गईं। पर भगवान की कृपा से भारत का दिन फिर फिरा और पं० विष्णुदिगम्बर ने अवतार लिया। आपने संगीत का पुनरुद्धार किया। आपके शिष्य प्रशिष्य देश देशान्तर में विचर कर शुद्ध संगीत का प्रचार कर रहे हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम इसमें तन मन और धन से हाथ बटावें।

प्रेम

—o—

लेखक—मुकुन्द

प्रेम पर स्थित सारा-संसार।
हम में, तुम में, इस मन्दिर में, प्रेम का ही तो है संचार॥
प्रेम पर स्थित सारा-संसार॥ १॥
सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, पताल को, प्रेम का है केवल आधार।
क्योंकि जल-स्थल,व्योम-वायु में, प्रेम की ही बहती है धार॥
प्रेम पर स्थित सारा-संसार॥ २॥
वन, उपवन में, जग-कण-कण में, प्रेम का ही छाया है सार।
तन में, धन में, सब सुमनों में, प्रेम-मधुकर करता गुंजार॥
प्रेम पर स्थित सारा-संसार ॥ ३॥
कहें कहां तक दृष्टि, बुद्धि, मन, जहां तक जाते इस का कार।
प्रेम ईश का रूप-दूसरा, प्रेम पर है त्रिभुवन का भार॥
प्रेम पर स्थित सारा- संसार॥ ४॥
निश्छलता, अकुटिलता, सतता, और इसका उदारता सार।
आदर, भक्ति, विरक्ति करुणता, मुद, ममता का है आकार॥
प्रेम पर स्थित सारा-संसार॥ ५॥
शोक-हर्ष, आशा निराश, भय- निर्भयता, अदुलार- प्यार।
इन विरुद्ध-भावों का स्थल, है, प्रेम की महिमा अपरम्पार॥
प्रेम पर स्थित सारा-संसार॥ ६॥

फैक्टरी के काम से स्त्रियों को हटाने की आवश्यकता

स्त्रियों के लिये घर में जितना काम है उसे अगर वह पूरी जिम्मेवारी के साथ करें तो उन्हें घर के बाहर धन्धे ढूढ़ने के लिये न तो समय ही रहता है और न आवश्यकता ही होगी। क्योंकि जितना समय वह बाहर बिता कर धनोपार्जन करती हैं उतना ही उनके परिवार को कष्ट होता है, उनका घर ख़राब होता है और बच्चे रुलते हैं। पाश्चात्य सभ्यता ने हमारे भारत के सामने यह आदर्श रक्खा है कि घरके काम दूसरों को दो, दूसरों के काम आप करो। विलायत में ही क्या सारे पश्चिमी देशों में स्त्रियां बाहर२ घूमती तथा जीवन के काम करने के घन्टे फैक्टरी या दफ्तरों में बिता देती हैं और फिर उनके बच्चों को सम्भालने के लिये आश्रम, स्कूल, स्पताल बनते हैं, घरकी रोटी की जगह होटल, तन्दूर! तथा और सैंकड़ों प्रकार से घरेलू धन्धे टके देकर दूसरों से करवाते हैं। अगर सोचा जाय तो जितना स्त्रियां नगद कमाकर लाती हैं उस से कहीं ज्यादः धन के रूप में न सही परन्तु लाभ के रूप में उन के बाहर रहने से नुक़सान हो जाता है। अब तो पाश्चात्य लोग भी इसको स्वीकार करते हैं, परन्तु एक चला हुआ ढर्रा जल्दी बन्द होना मुश्किल होता है।

भारत में भी यही चलन शुरू हो चुका है परन्तु इसके विरुद्ध आवाज़ें बहुत जल्दी उठने लगपड़ी हैं। अतः मज़दूर श्रेणी के लोगों तक ही यह परिमित हैं। या यों कहिये कि यह भाव विद्यमान तो सभी श्रेणी में है, इसका प्रकाश यहां पर अभी दो स्वरूप में है: एक तो वही मज़दूर श्रेणी जिसकी बाबत हम आज लिखना चाहते हैं, दूसरी है ब्राह्मण-वृत्ति नाम की मज़दूर श्रेणी। अथवा यों कहिये कि अध्यापिका उपदेशिका, प्रचारिका का काम कमाई करने की दृष्टि से करने वाली श्रेणी। दूसरी श्रेणी ने अभी वह विकटरूप धारण नहीं किया है जो कि पाश्चात्य देशों में है, तथापि आर्य सभ्यता की जड़ में कुठारा घात शुरू होगया है। अस्तु इस विषय पर हम फिर कभी लिखेंगे। आज हम ज्योति की पाठिकाओं को यह बतलाना चाहते हैं कि हमारे पढ़े लिखे भाई इस विषय में क्या विचार करते हैं।

महाशय यस. पी. नादकर्णी एक मासिक पत्र में उद्योग धंधेके विषय में लिखते हुये कहते हैं कि "सब से अधिक आवश्यक्ता यह है कि स्त्रियों को फैक्टरी के काम से सर्वथा मुक्त कर दिया जाय। क्योंकि उनके ऊपर रसोई और बच्चों के पालन पोषण का भार तो होता ही है इससे इन विचारियों पर और भी अधिक कष्ट पड़ता है। ख़ास कर भारतवर्ष में जहाँ पर मज़दूर सस्ते और बहुत मिलते हैं- स्त्रियों को विशेषरूप से फैक्टरीके स्वास्थ्य के नष्ट करने वाले श्रम से अलग रखना चाहिये। स्त्रीही गृहस्थ जीवन की प्राण है। जब तक वह उचित देख रेख न करे तो घर में कोई अच्छाई नज़र नहीं आती। यह स्त्री के ही हाथ में है कि वह चाहे गृहस्थ सुख को बनावे या मिटावे। पहिले तो बच्चों का पालन पोषण और शिक्षा में ही समय का बहुत हिस्सा बीत जाता है जो कि अगर वह दिन के दस घंटे फैक्टरी में काम करे तो बचाही नहीं सकतीं। इसका नतीजा यह होता है कि हमारी सन्तान-जाति की भावी धरोहर माता की देख रेख और रक्षा न प्राप्त कर कमज़ोर और बुरी बन रही है। स्त्री के बहुत समय तक घर से बाहर रहने के कारण

तथा सारा ध्यान फैक्टरी के कार्यों में बिताने से उनका घर एक प्रकार का स्तवल बन जाता है जहाँ पुरूष, स्त्री और बच्चे अन्न खाकर आराम कर लेते हैं। यदि स्त्री फैक्टरी में काम न करे तो जो मज़दूरी की हानि होगी वह एक तो पुरुषों की मज़दूरी कुछ अधिक बढ़ जाने से पूरी हो जायगी और शेष घर में रहती हुई जो काम स्त्रियां कर सकती हैं जैसे कि चर्खा कातना, चक्की पीसना या कुछ घंटे किसी के बच्चे खिलाने का काम ले लेना या मिल के लिये रद्दी बटोरना और भी बहुत प्रकार के धंधे हैं जिन से आमदनी बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार मजदूर लोगों के परिवारों में कहीं अधिक सुख और शान्ति होगी।"

भारतीय महिला विश्व-विद्यालय

'स्त्री धर्म' लिखता है कि भारतीय-महिला विश्व विद्यालय का दीक्षान्त संस्कार बड़ी धूम धाम से मनाया गया। यद्यपि यह संस्था एक आना भी दान या ग्रान्ट के रूप प्राप्त न होने पर ही शुरू की गई थी, किन्तु इसने लोगों का ध्यान और सन्मान इतना आकृष्ट किया कि इसके छठे वर्ष में ही इसे १८ लाख रुपयों का दान प्राप्त हो गया और इस नये वर्ष में इसके पास नवीन कालिज का मन्दिर है एक आश्रम है। और उपाध्याओं तथा विद्यार्थियों के घर भी हैं। इन नवीन इमारतों पर २,५०,००० रुपया लगा है। यह बड़े हर्ष और गर्व की बात है कि इस विश्व-विद्यालय ने गत तीन वर्षों में ८६००० रुपयों का कर्ज भी धन एकत्र करके पाट दिया है। अब कालेज निश्चित उन्नति पथ पर है। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने अब बम्बई में एक नया स्कूल भी खोला है! और ६ अन्य स्कूल और २ कालेज भी इस विश्वविद्यालय की सहायता करते हैं और इसी के अधिकार में हैं। २० से ऊपर महिलायें इसमें स्नातिका बन कर निकल चुकी हैं। ६ देवियों और ५० पुरुषों ने गत वार्षिक सिनेट की मीटिंग में भाग लिया था। जिस से यह बखूबी पता लगता है कि इस शिक्षा के केन्द्र में कितने विख्यात शिक्षा प्रश्न पर विचार करने वाले सज्जन आकृष्ट हुए हैं।

विचार प्रवाह

वेद का वैज्ञानिक अनुशीलन

अगस्त मास के अन्त में आक्सफोर्ड में धर्म प्रचारकों की एक सभा हुई थी जिसका मुख्य उद्देश्य धर्म और विज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करना था। सभापति का आसन मान्यस्पद पादरी ईंगे साहब ने ग्रहण किया था। आप अपने उदार विचारों तथा विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रति सहानुभूति के लिये प्रसिद्ध हैं। आप का भाषण बड़े महत्व का था। आपका कथन है कि यदि धार्मिक विश्वास मनुष्य स्वभाव के अमिट तत्व पर आश्रित है तब इस से बढ़ कर और कौन सी विपदा हो सक्ती है कि इन विश्वासों और विज्ञान की शिक्षा में एक न मिटने वाला भेद भाव बना रहे। यह भेद भाव एक बड़े भयावने फोड़े के समान है जिस पर कोई पट्टी नहीं बांधी

जा सकती। इस घाव को यथा शक्ति भरने का यत्न करना इस कान्फ्रेंस का मुख्य उद्देश्य है, परन्तु धार्मिक सचाई उस समय ज्ञान पर निर्भर होती है जब कि उसका प्रकाश हुआ हो। यह ज्ञान उस समय का विज्ञान है और ज्यों २ यह बदलता जाता है धार्मिक सचाई नगीने की भांति पुराने विचारों के ढांचे में जड़ी रह जाती है। अतः धर्म और विज्ञान में सन्धि करवाने वालों का उद्देश्य देश और काल से भी ऊपर रहने वाले धार्मिक सत्य को इस पुराने ढांचे से निकाल कर विशुद्ध और वास्तविक रूप में प्रकट करना है। यह विशुद्ध सत्य, पादरी इंगे के मत में नेकी, सचाई और सुन्दरता है। संसार में यही सब से बढकर अस्तित्व रखने वाली वस्तु हैं। यह अनादि हैं। अतः परमात्मा का—जिसमें कि इनकी पराकाष्ठा है-अस्तित्व अवश्य है।

क्या पादरी साहब के कथन का यह अभिप्राय नहीं कि सत्य, निर्मल शुद्ध सत्य सदा एक रस रहता है। मनुष्य अपने बदलने वाले अथवा बढ़ने वाले ज्ञान से इसके रूप में-बाह्य रूप में परिवर्तन करता रहता है। जो अनादि और अनन्त सत्य है, वह सदा एक सा बना रहता है और उसके पहिचानने के लिये विज्ञान और धर्म में कोई झगड़ा नहीं।

मनुष्य अल्पज्ञ है, बिना सिखाये वह कुछ नहीं सीख सक्ता। अतः यदि उसको इस सदा एक रस रहने वाले सत्य का ज्ञान कुछ लाभ दे सकता है तो उसी अवस्था में जब वह आरम्भ से ही उसे प्राप्त हो। अतः ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में ही होना चाहिये। और यह ईश्वरीय ज्ञान सदा एक रस बना रहेगा। विज्ञान को इसके परिवर्तन करने की कोई शक्ति न होगी।

कौन सा ऐसा ज्ञान है जो सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को प्राप्त हुआ? इस का निर्णय संसार में बहुत कुछ कलह और क्लेश को दूर कर देगा। क्या विचारशील इस ओर ध्यान देंगे? आज कल की खोज के अनुसार "वेद संसार के पुस्तकालय में सब से प्राचीन पुस्तक हैं" और संसार में एक बड़ी भारी जन संख्या इस को ईश्वरीय ज्ञान मानती है। अतः एक रस रहने वाली सचाई, प्रेम और सुन्दरता के दृष्टि कोण से वेद का अनुशीलन और मनन, प्रत्येक वैदिक धर्मी का, प्रत्येक सत्याभिलाषी विधर्मी का और प्रत्येक सत्य प्रेमी वैज्ञानिक का कर्तव्य बन जाता है।

अध्यात्मवाद और प्रकृतिवाद

प्राणियों में जिस को जीवन नाम से पुकारा जाता है यह क्या वस्तु है? क्या यह इस जड़ प्रकृति के भिन्न २ अवयवों को विशेष प्रकार से आपस में रसायनिक संयोग का परिणाम है--जैसा कि कुछ वैज्ञानिक मानते हैं—अथवा यह जड़ प्रकृति से कोई सर्वथा भिन्न वस्तु है जैसा कि अन्य विद्वानों का मत है। फिर विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार क्या प्राकृतिक मूल परमाणुओं से आरम्भ कर प्राकृतिक वस्तुओं का प्रादुर्भाव और फिर इन से "जीवनमय" अति सूक्ष्म जीवों की रचना नहीं होती? उपरोक्त कान्फ्रेंस में प्रोफैसर हाल्डेन और मैकब्राईड को इन दो प्रश्नों पर प्रकाश डालने के लिये निमन्त्रित किया गया। यह दोनों सज्जन प्रचारक न होते हुये भी सत्य की खोज के लिये धर्म के प्रति साधु भाव रखने वाले हैं और साथ ही अपने २ विषय में बड़े प्रवीण और धुरन्धर विद्वान हैं।

प्रोफेसर हाल्डेन ने बड़े बल पूर्वक कहा कि प्राणियों की क्रियायों की व्याख्या भी हम जड़ प्रकृति के नियमों के आधार पर कदापि नहीं कर सकते। कल्पना में हम ऐसी मशीनों को-केवल प्राकृत तत्वों और प्राकृत नियमों द्वारा-गढ़ सके हैं जो कि थोड़ा बहुत जीवों की क्रियाओं के सदृश काम करती हैं, परन्तु ज्यों २ इन क्रियाओं के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों २ हमारी यह कृत्रिम मशीनें अधिक पेचीदा और संकीर्ण बनती जाती हैं—और हमारे इस सारे प्रयास की अनुपयोगिता उस समय सिद्ध होती है जब कि हम यह बतलाने में सर्वथा असमर्थ रहते हैं कि स्वयं वह क्या "यन्त्र" है जिस के द्वारा इन मशीनों की उत्पत्ति होती है अथवा यह इतनी संकीर्ण और दुर्गाह्य रचना अन्डे से बाहर आती है।

प्रोफेसर हाल्डेन के उपरोक्त विचार इस भाव की पुष्टि करते हैं कि विज्ञान अब प्रकृति-वाद और केवल प्रकृतिवादको छोड़कर आत्म-वादकी ओर आरहा है। प्रकृति से भिन्न आत्मा का भी कोई अस्तित्व है यही अब वैज्ञानिक लक्ष बन रहा है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सले का कथन है कि मैं प्रकृति की कोई ऐसी कल्पना नहीं कर सकता जो कि उस मन के बाहर हो जिस में कि उस का चित्र खेंचा गया है अब दिन प्रति दिन एक वैज्ञानिक सत्य का रूप धारण कर रहे हैं।

प्रोफेसर मैक ब्राईड ने कहा कि विकास वाद के सिद्धान्त को मान कर हमें बाइबिल के मूसा के उस सिद्धान्त को जो कि सात दिन में सृष्टि की उत्पत्ति मानता है और सैण्ट पाल का पाप पुण्य का सिद्धान्त और आदम का अदन के बाग़ से पाप के कारण निकाले जाने के सिद्धान्त को तिलाञ्जली देनी होगी। उन्होंने एक और बात की ओर ध्यान दिलाया कि विकास वाद के सिद्धान्त के अनुसार अयोग्य जीवों का सृष्टि से नाश हो जाता है, अधिक योग्य और बलवान जीव अपने से छोटों को या तो मार भगाते हैं या खा जाते हैं। इस में कितना अत्याचार और रक्तपात होता है यह सहज में कल्पना की जा सकती है। क्या कोई परमात्मा जिसकी सृष्टि में इतना अत्याचार और रक्तपात होता हो दयावान् कहला सकता है? प्रोफेसर मैकब्राईड ने आगे चलकर यह बतलाया विकास वाद का यह सिद्धान्त कि "जो योग्य हैं वह स्वयं बच रहते हैं और अयोग्य नष्ट हो जाते हैं" जीवों के विकास की उतनी ही व्याख्या करता है जितना कि यह कहना कि गन्दे पत्तों को काटने वाले चक्र पौदों और वृक्षों की बढ़ने की शक्ति का कारण हैं, विकास को आगे ढकेलनी वाली शक्ति प्राणियों में वह बल है जो कि उन्हें आप-दाओं का मुकाबला करना और उन पर विजय पाना बतलाती है और जो शक्तियां माता पिता प्राप्त कर लेते हैं वह उन की सन्तान में पहुंच जाती हैं। इस प्रकार विकास केवल जीवन संबन्धी घटना है जो कि केवल जीवित प्राणियों द्वारा ही घटी जाती है और इस का, उदाहरण के लिये जैसा कि हर्बर्ट स्पैन्सर ने किया था-पृथिवी के गरम गोले के ठंढा होने में जिन भौतिक और रासायनिक क्रियाओं का प्रादुर्भाव हुआ-पर घटाना इसके मूल अर्थ को नष्ट कर देना है।

हमारे पाठक देखेंगे कि इस प्रकार विज्ञान धर्म के निकट तट आ रहा है। एक समय था जब कि आत्मा के अस्तित्व से

सर्वथा इन्कार था और प्रकृति से ही 'आत्मा' नाम के 'गुण समूह' की उत्पत्ति मानी जाती थी। हमारा विश्वास है कि यदि ईसाई मत के स्थान में आधुनिक वैज्ञानिकों के सम्मुख शुद्ध सनातन वैदिक धर्म उपस्थित होता तो योरोप में जो धर्म और विज्ञान का प्रबल झगड़ा चलता रहा है कदापि न चलता। आज कल भी विज्ञान का जो धर्म से मेल दिखलाई दे रहा है उसका बड़ा भारी कारण ईसाई मत का अपने कितने ही सिद्धान्तों को छोड़ देना है। अभी तक प्रोफेसर मेकब्राईड की समझ में नहीं आता कि दयालु प्रभु की सृष्टि में इतना अत्याचार और रक्तपात क्यों ? ईसाई मत के पास इसका कोई उत्तर नहीं। परन्तु यदि वह इन घटनाओं को वैदिक धर्म की कर्म फिलासफी और आवागमन के सिद्धांत के प्रकाश में देखें तो दयामय भगवान् की अनन्त दया के समुद्र में आनन्द के हिलोरे लेने लगें।

क्या यही उत्तरदायी शासन है ?

हमें प्रति दिन सांझ सवेरे यह जतलाया जाता है कि पढ़े लिखे हिंदुस्तानी एक कृतघ्न श्रेणी के व्यक्ति हैं। सरकार उनके लिये इतना करती है, और वह फिर किसी प्रकार का अहसान नहीं मानते। हमने इन्हें उन के योग्य न जानते हुए भी उन्हें शासन-सुधार दिये कि यह उन को लेकर अपनी शासन सम्बन्धी योग्यता को बढ़ाकर राज्य काज चलाने की जांच सीखें परन्तु यह उन से सन्तुष्ट नहीं। सरकार और भी अधिकार देने को तैयार है किन्तु तब जबवह यह सिद्ध कर देंगे कि वह इन पहिले दिये हुये अधिकारों का सदुपयोग करने के योग्य हो गये हैं। वैसे यह अधिकार भी कुछ कम नहीं हैं इत्यादि·········

किसी भी जाति का यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह अपनी रक्षा और उन्नति का स्वयं प्रबन्ध करे। इसमें किसी प्रकार की बाधा का पड़ना या तो उस जाति की अपनी अयोग्यता अथवा बाधा डालने वालों की क्रूर निरंकुशता का प्रमाण है। हम इस कार्य के अयोग्य बतलाये जाते हैं। यह ठीक हो सकता है। परन्तु क्या हमारी अयोग्यता ही इस अधःपतन का एक मात्र कारण है ? क्या वर्तमान नौकरशाही की निरंकुशता इस के लिये जिम्मेवार नहीं ? क्या हमें अपनी इच्छा पूर्वक शांति से अपनी उन्नति करने की आज्ञा दी जाती है ? क्या हम जो कुछ अपने देश और देशवासियों के लिये करना चाहते हैं उस के मार्ग में रोड़े नहीं अटकाये जाते ? हमें कहा जाता है कि हम वर्तमान सुधारों के द्वारा ही अपने देश की बड़ी उन्नति कर सके हैं। परन्तु क्या यह सत्य है ? किंचित् इसकी पड़ताल तो करें। वाइसराय की कौन्सल में नमक पर कर लगाया जाता है परन्तु क्या यह हमारे प्रतिनिधियों की अनुमति से? इङ्लैण्ड की प्रदर्शनी पर खर्च मंजूर किया किया जाता है इसमें किसकी आज्ञा है ? कर बढ़ाने के लिये कमेटी बनाई जाती है इसमें क्या हमारे प्रतिनिधि सहमत हैं? ली कमीशन की रिपोर्ट क्या हमारे घोर विरोध के रहते हुये भी पास नहीं करदी जाती, सार्वजनिक मांग होते हुए भी क्या गोल मेज़ कान्फ्रेन्स के पास हुए प्रस्ताव को रद्दी की टोकरी में नहीं फेंक दिया जाता ? क्या यही लैजिस्लेटिव ऐसेम्बली है जिसके विषय में कहा जाता है कि हमें बड़े अधिकार प्राप्त हैं ? हम पूछते हैं कि वह कौन सा काम है जिसे नौकर-

शाही करना चाहती है और वह इतनी ही स्वतन्त्रता से नहीं कर लेती जितनी कि "सुधारों" से पहिले किया करती थी ? अब प्रजा प्रतिनिधियों के कौन से प्रस्ताव को वह अपनी इच्छा के विरुद्ध स्वीकार करती है ? कहने को तो सब काम कौन्सिलों और ऐसेम्बली की आज्ञा से किये जाते हैं, इनकी अनुमति का ढोंग तो अवश्य रचा जाता है परन्तु होता वही है जो नौकरशाही के मन में हो। यहां पंजाबी की कहावत भली प्रकार चरितार्थ होती है-"पंचों का कहना सिर माथे पर। परन्तु परनाला वहीं रहेगा"। यही सुधार है जिनका ढिंढोरा पीटा जाता है और कहा जाता है कि यदि शांति पूर्वक हमारा कहना मानते रहोगे तो १० वर्ष पूरे होने पर तुम्हें ऐसे ही और सुधार न दिये जांयगे। भारतवासी बच्चो! रोना और मचलना छोड़ दो और प्रजा वत्सल् सरकार का कहना मानों तुम्हें समय आने पर ऐसे ही और भी खिलौने दिये जायंगे। और यदि तुम कहना नहीं मानोगे और व्यर्थ की ज़िद करोगे तो तुम्हें आगे भी कुछ नहीं मिलेगा; तुम्हारा यह भी खिलौना खोस लिया जायगा और साथ ही मार भी पड़ेगी। धन्य है सरकार का प्रजा प्रेम !

भारत सरकार और कोहाट की पीड़ित हिन्दू प्रजा

कोहाट की दुर्घटना इतनी भीषण और रोमाञ्चकारी थी कि इस को अद्वितीय कहा जा सकता है। किसी भी सुरक्षित और सुव्यवस्थित राज्य में ऐसी घटना का होना राज्य के मुख पर कालिमा का अमिट टीका लगाने के लिये काफी है। सैकड़ों व्यक्तियों का मारा जाना और आहित होना, विशाल भवनों का अग्निदाह, बाल और अबलाओं का निरादर और असीम कष्ट से पीड़ित होना, करोड़ों के धन और माल का लूटा जाना तथा सहस्रों बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुषों का अपने नगर, अपनी जन्म भूमि को विदीर्ण हृदय और अश्रुपूर्ण नेत्रों से छोड़ने पर बाधित होना, कोई साधारण घटना नहीं। इस की क्रूरता और भीषणता इतनी प्रखर थी कि इसने महात्मा गान्धी सरीखे धीर वीर के हृदय को भी हिला दिया। महात्मा गांधी का २१ दिन का अनशन व्रत इसी पीड़ा और अनुताप का फल था कि जिसने उनके हृदय को आत्म संताप और क्षोभ से भर दिया था।

एसैम्बली में प्रश्न किये जाने पर सरकार ने वचन दिया था कि इस मामले की तुरन्त और पूरी खोज की जायगी। आज प्रायः ३ मास पीछे भारत सरकार ने अपनी खोज को एक विज्ञप्ति रूप में प्रकाशित किया है। यदि सरकार ने एक व्यक्ति की, चाहे वह मैजिस्ट्रेट ही क्यों न हो--रिपोर्ट के आधार पर ही अपना मत बनाना था तो हमें समझ में नहीं आता कि इतनी देर लगाने की क्या आवश्यकता थी। यह तो 'खोदा पहाड़ और निकला चूहा' वाली बात है।

सरकार ने अपने वक्तव्य में इस दुर्घटना को घटा कर दिखलाने का यत्न किया है परन्तु वह सर्वथा विफल रही है। ध्यान से पढ़ने से सहज में ही पता लगता है कि सरकार अपने मुंह से स्वयं अपराधी ठहरती है। इस घटना के सम्बन्ध में कुछ दिन हुये ला० लाजपतराय जी ने लिखा था:—

"मैं ब्रिटिश शासन या किसी भी विदेशी शासन का भक्त नहीं हूँ, तथापि मैं यह मानता रहा हूं कि इस देश में ब्रिटिश शासन

के रहने का एकमात्र औचित्य यही है कि यह शासन अल्प संख्यक लोगों की रक्षा करने में समर्थ है। पर जब यह देखा जाता है कि एक नगर की सारी जाति के मनुष्य जिनकी संख्या ३५०० थी उस नगर को छोड़ कर सरकारी सहायता से इस लिए भाग रहे हैं कि अगर नहीं भागते तो बहु संख्यक समाज के खूंखार लोगों के हाथों जान से मारे जाते हैं, तो ब्रिटिश शासन के अस्तित्व के इस औचित्य पर से भी विश्वास हट जाता है, क्योंकि इस हालत से तो यही मालूम होता है कि अंग्रेज़ हाकिम, कम से कम पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश के अंग्रेज़ हाकिम नालायक हैं या प्रामाणिक (सच्चे) नहीं हैं। 'लिश-ला' का नाम हम लोगों ने प्रायः सुना है। यह लिश-ला क्या है? न्याय के सीधे मार्ग को उलट देना और क़ानून के अनुसार हाकिमों को काम न करने देना। कोहाट में जो कुछ हुआ क्या वह इस प्रवृत्ति का उदाहरण नहीं है? कोहाट के इस काण्ड से साम्प्रदायिक झगड़े को एक नया रूप प्राप्त हुआ है, जिसको खास कर उन लोगों को ध्यान में रखना होगा जो झगड़े की बुनियाद को विना सोचे वहां झगड़े को दाब रखने और एकता का दृश्य निर्माण करने गये थे।"

इस प्रकार के विचार किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति के हृदय में आये बिना नहीं रह सकते। क्या सरकार के पास इन आक्षेपों का उत्तर है? जिस Law और Order कानून और सुव्यवस्थाकी डींग मारी जाती थी वह कोहाट के समय कहां चली गयी। यदि यह मान भी लिया जाय कि हिन्दुओंने ही मुसलमानों को उत्तेजित किया जैसा कि सरकार का मत है तो क्या यह इतना बड़ा कसूर था जिसके बदले उन के घरों को आग लगा दी जाय, उनकी धन सम्पत्ति को लूटा जाय, उनकी स्त्रियों और बच्चों पर अत्याचार किये जांय और उन्हें नगर छोड़ने पर विवश किया जाय? यदि यह कसूर इतना भीषण नहीं था तो फिर सरकार ने यह सब उत्पात क्यों होने दिया? इस मार पीट लूट खसोट को रोका क्यू नहीं? सरकार कहती है कि डिप्टी कमिश्नर को तलाक़ की कसम का ज्ञान नहीं था अन्यथा १० तारीख को दुर्घटना का इतना तीव्र रूप न होता। डिप्टी कमिश्नर की इस अज्ञानता के लिये कौन जिम्मेवार है? क्या सरकार ने अपना यह अपाहिज और निकम्मापन स्वीकार कर अपनी अनावश्यक्ता सिद्ध नहीं कर दी? हमें हर समय यह बतलाया जाता है कि यदि वर्तमान सरकार न हो तो हिन्दू मुसलमान आपस में लड़ कर एक दूसरे का सर्व नाश कर दें। परन्तु क्या यह सर्वनाश इसी सरकार के सामने नहा हुआ? यदि इस सरकार के रहते हुये भी यह घटना हो सकती है तो इस का होना न होना एक बराबर।

सरकार ने अपना प्रस्ताव प्रकाशित करके पीडित हिन्दू-हृदय का किसी प्रकार शान्त नहीं किया। बैठे बैठाये कोई अपने ऊपर आपत्ति नहीं लेता। हिन्दुओं ने अपनी इच्छा से अपना नाश नहीं किया। यह माना कि उन का कसूर था, परन्तु क्या दूसरा पक्ष सर्वथा निर्दोष है। यदि अंग्रेजी सरकार के स्थान में आज कोहाट में मुसलमानों का राज्य होता और ऐसी दुर्घटना होती तो हम नहीं समझ सकते कि मुसलमान शासक कोई इस से भिन्न प्रकार की विज्ञप्ति निकालते जो कि अंग्रेजी सरकार ने आज निकाली है। खोज करने वाला मैजिस्ट्रेट कहता है कि रावलपिंडी मेरी हद से बाहर है अतः मैं यहां पर आश्रित हिन्दुओं को मिल कर उन का पक्ष नहीं जान सका। क्या

यह खोज भारत सरकार की ओर से नहीं हुई, क्या रावलपिंडी भारत सरकार के आधीन नहीं? फिर क्या हिन्दू पक्ष को न सुनने का यह उचित बहाना है? यदि वह मर्माहत हिन्दू इस से यह नतीजा निकालें कि सरकार-किसी भी कारण से हो-हमारे साथ न्याय करना नहीं चाहती, हमारी पीड़ा को सुनना आवश्यक नहीं समझती तो क्या यह अनुचित होगा?

हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पंजाब के हिन्दुओं के मन में यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि अंग्रेज़ी शासन में हमारी वह रक्षा नहीं होती जो होनी चाहिये। हिन्दू-हृदय में इस भाव का उदय होना सरकार के लिये भी श्रेयस्कर नहीं है। अब तक तो हम यह सुनते थे कि अंग्रेज़ी राज्य में शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं परन्तु आज हमें पता लगा कि बकरी के लिये इस राज्य में कोई स्थान नहीं। हिन्दुओ तुम्हें दूसरों की ओर-चाहे वह प्रतापी ब्रिटिश सरकार ही क्यों न हो-ताकना छोड़ देना चाहिये। अपने पैरों आप खड़ा होना सीखो। अपनी दुर्बलता और कायरता को दूर करो। जाने की अपेक्षा मृत्यु से अधिक प्यार करो तभी तुम जी सकते हो अन्यथा जो आज हुआ है वह कल फिर हो सकता है। ब्रिटिश सरकार फिर भी तुम्हें बचाने में असमर्थ रह सकती है।

क्या हिन्दुओं को कोहाट लौट जाना चाहिए?

वाइसराय की इस विज्ञप्ति को महात्मा गान्धी ने 'खुला चैलन्ज' का नाम दिया है। आपने हिन्दुओं को सलाह दी है कि उन्हें सरकार के कहने मात्र पर कभी कोहाट लौट कर न जाना चाहिए वरन् जब तक कोहाट के मुसलमान उन्हें स्वयं न बुलायें तब तक उधर ताकने का भी नाम न लेना चाहिये। क्या हम विनय पूर्वक महात्मा जी से पूछ सकते हैं कि क्या वह कोहाट के मुसलमानों को देश के अन्य मुसलमानों से भिन्न समझते हैं? क्या उनके हृदय में वही लालसा और उनके मस्तक में वही विचार काम नहीं रहे जो कि बाहर के मुसलमानों को हिला रहे हैं। फिर महात्मा जी किस आधार पर यह समझ रहे हैं कि बाहर के वायु मण्डल में रहने वाले मुसलमानों की आकांक्षाओं और विचारों से वह कोहाट के मुसलमान प्रभावित न होंगे। पंजाब ही इस फूट की विषधारा का स्रोत है। यहां के मुसलमान जो आज सोचते हैं वही कल को भारत वर्ष के मुसलमान स्वीकार कर लेते हैं। एक ही उदाहरण पर्याप्त है। मिस्टर जिन्हा पक्के नैशनलिष्ट हैं, कभी आप भिन्न २ धर्मों के आधार पर प्रतिनिधि चुनने के विरुद्ध थे। गत वर्ष वह पंजाब में आये और अपने विचारों को एक दम उलट गये। अतः हम बाहर न जाकर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि पञ्जाब के मुसलमानों के हृदय में आज हिंदुओं के प्रति विश्वास नहीं, उनके लिये दया नहीं और उन पर किसी प्रकार का प्रेम नहीं। आज वह उन के लिये पूरे 'काफिर' हैं। कोई ऐसा तरीका नहीं जिसे मुसलमान आज इन 'काफरों' के कुचलने के लिये उचित न समझते हों। पञ्जाब की कौन्सिल में हिन्दू कर्ज़ा देने वालों के विरुद्ध मुसलमान सदस्य का बिल पेश करना इनका ताज़ा उदाहरण है। पंजाब विश्वविद्यालय जैसी शिक्षा सम्बन्धी संस्था में भी मुसलमानों का अपना अलग चुनाव मांगना उनके हिन्दुओं के प्रति अविश्वास

और प्रतिहिंसा के भाव का द्योतक है। जब हिंदुओं के प्रति पंजाब के मुसलमानों के इस प्रकार के भाव हैं तो यह आशा करना कि कोहाट के मुसलमान इन नीच भावों से ऊपर उठ सकते हैं महात्मा गांधी जैसे आशा-पूर्ण हृदय का ही काम है। हमारी सम्मति में तो वह दिन अभी बहुत दूर है जब कि कोहाट के मुसलमान अपने हिंदू भाइयों से निष्पक्षता और सहृदयता से वापिस बुलाने का आग्रह करेंगे और इस शुभ दिन की-इस से पहिले कि देश की हिंदू मुसलिम समस्या का हल न हो जाय-आशा रखना दुराशा मात्र है। जो हृदय इतना क्रूर और भयंकर अत्याचार कर सक्ता है वह आज एक दम मल रहित हो जायगा यह महात्मा जी के साधु स्वभाव और सरलता का ही सूचक है। हम तो समझते हैं कि सरकार और मुसलमानों की वर्तमान अवस्था को विचार में रखते हुए हिंदुओं को कोहाट लौटने का विचार सर्वथा मन से निकाल देना चाहिये और पंजाब के हिंदुओं को अपने इन भाइयों को कोहाट से बाहर पुनः अपना जीवन आरम्भ करने योग्य बनाना अपना धर्म समझना चाहिये।

पञ्जाब पोलिटिकल कान्फरैन्स

इस मास की ६ और ७ तारीख को महात्मा गांधी के सभापतित्व में लाहौर में पंजाब प्रान्तीय- राजनैतिक- कान्फ्रैंस की बैठक हुई। महात्मा गांधी ने अपनी वक्तृता में हिन्दू मुसलिम एकता, अछूतोद्धार और खद्दर पर ही बल दिया। उनके लिये हिन्दू मुसलमानों के झगड़ों के गढ़ में पहुंच कर हिन्दू मुसलिम एकता पर बल देना स्वभाविक और परमावश्यक था। इस के अतिरिक्त कान्फ्रैंस में साधारण श्रेणी के अनेक प्रस्ताव पास हुये। महात्मा जी के मत में कान्फरैंस से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। लाला लाजपतराय जी इसको आशा से बढ़कर सफल बतलाते हैं। उन का कथन है कि मुसलमानों के घोर असहयोग के रहते हुए भी जनता का उसमें भाग लेना सूचित करता है कि अब भी जन समाज के हृदय पर कान्फ्रैंस का कितना प्रभाव है। हमारी तुच्छ सम्मति में तो यदि उस कान्फरैंस का कुछ लाभ हुआ है तो केवल इतना ही कि इसने मुसलमानों के हृदयगत विचारों पर से परदा उठा लिया है। आज निष्पक्ष भारतीय देख सकते हैं कि मुसलमानों के दिल में न्याय, एकता, जातीयसेवा और देशानुराग का कितना विचार है। कान्फ्रैंस की तिथियां निश्चित होने के पीछे उन्हीं दिनों में मुसलमान खिलाफत कान्फरस करने का निश्चय करते हैं और फिर वह भी लाहौर में नहीं वरन् अमृतसर में जिस से कि मुसलमान भूलकर भी राजनैतिक कान्फ्रैंस में भाग न ले सकें। राजनैतिक कान्फरैंस के कार्यकर्त्ताओं का अनुनय विनय कि दोनों कान्फ्रैंस एक ही दिनों में न की जांय सब बहरे कानों पर पड़ता है। प्रसिद्ध राजनैतिक नेता डाक्टर किचलू, जो अभी अक वर्ष भी नहीं बीता, हिन्दू मुसलिम एकता के लिये मर मिटने को तय्यार थे आज कान्फरैंस के पंडाल में पग रखना भी पाप समझते हैं। वरन सैयद हबीब के कथनानुसार भरसक यत्न करते हैं कि कोई भी मुसलमान सज्जन इसमें शरीक न हो सके। महात्मा गांधी को इन सरीखे एकता के मुसलमान पुजारियों के कृत्यों पर ध्यान देना चाहिये।

महा भारत

भाषा भाष्य समेत सरल और सुबोध अनुवाद प्रतिमास १०० पृष्ठ दिये जाते हैं। मूल श्लोक और उसका सरल अर्थ मुद्रित हो रहा है।

१०० पृष्ठों का एक अंक, इस प्रकार के १२ अंकों का अर्थात् १२०० पृष्ठों का मूल्य मा० आ० से ६) और वी० पी० से ७) रु० है।

अति शीघ्र ग्राहक बन जाइये। नमूने का पृष्ठ मंगवाइये। और अपने मित्रों को बताकर ग्राहक बढ़ाने की सहायता कीजिये।

कागज और छपाई अति सुंदर है। चित्र भी दिये जांयगे।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल,
औंध (जि० सातारा)



☞ BE REST ASSURED—
THAT OUR
WALL CLOCK
'TIC-TAK' (Regd.)
GIVE YOU PERFECT TIME.

OUR WALL CLOCK "TIC-TAK" HAS EARNED A NAME THAT **CANNOT BE BEATEN.**

PRICE Rs.
THREE only.

Order now if you have not already orderd.

Peter Watch Co.,
Post Box No. 27,
MADRAS.

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दरियागंज दिल्ली में पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५] पौष १९८१—जनवरी १९२५ [खण्ड ५, संख्या ६]



वार्षिक मूल्य ४।।) सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए० स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)

प्रति संख्या ।।) विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची ।



ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है ।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है ।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता । नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता हैं ।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है । बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं ।

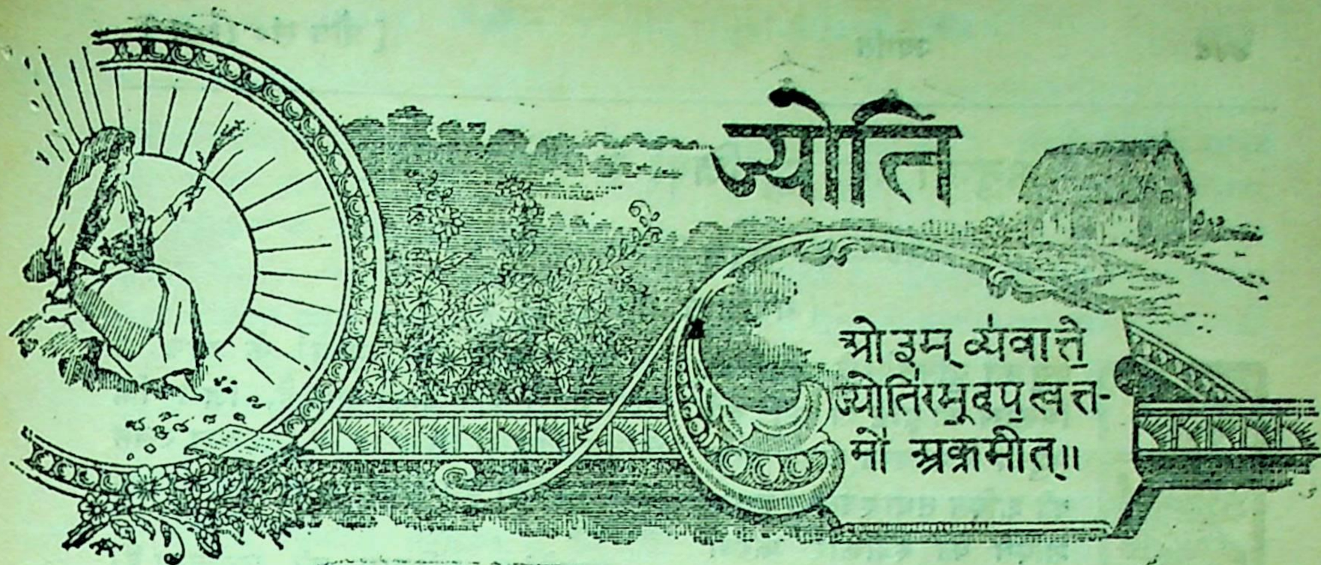
(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे । पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये ।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें । वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है । पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है । आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे ।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये ।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये । यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये । परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी ।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये



वर्ष ५ | पौष १९८१—जनवरी १९२५ ई० | संख्या ६

त्राहि !

ले०—श्री पं० जगन्नारायण देव शर्मा, कविपुष्कर

(१)
असुरता की बढ़ती है शक्ति, घट रही गो-ब्राह्मण की भक्ति ।
सह रहे प्रभो ! क्लेश पर क्लेश, व्यथित है दुख से सारा देश ॥

(२)
धर्म का होता जाता ह्रास, पतन देता है अविरल त्रास ।
बने हैं दुर्बलता के दास, जाति जीने से हुई हताश ॥

(३)
कर्म तज बने हुये हैं दीन, मनुज अधिकारों से हैं हीन ।
गला है घोंट रही दुर्नीति, न अपने बल पर हमें प्रतीति ॥

(४)
कर रहा कलि है भारी कोप, हो रहा वैदिकता का लोप ।
दुर्दशा होती हा ! बहु बार, अघों से गये सभी हैं हार ॥

(५)
प्रकट हो गई विचार-क्रान्ति, किन्तु हम भर सक रखते शांति ।
हृदय का सूख चला है रक्त, अधमता करें कहां तक व्यक्त ॥

(६)
बिलखते रोते शिर धर हाथ, उबारो करुणा-सागर नाथ !
तुम्ही पर है अन्तिम विश्वास, शरण दे करिये सफल प्रयास ॥

मनुष्यों तथा पशुपक्षियों के कार्यों में भेद

ले०—श्री० गुरुदत्त सिद्धान्तालंकार।

(गतांक से आगे)



उपर्युक्त युक्तियों के अतिरिक्त विकास की दृष्टि से भी हमें मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति तथा स्वतन्त्र इच्छा शक्ति को स्वीकार करना चाहिये। विकास के सार्वभौम सिद्धान्त की शृङ्खला को सुदृढ़ करने के लिये मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति के सिद्धान्त को अवश्य स्वीकार करना चाहिये। आध्यात्मिक विकास सिद्धान्त के अनुयायी तो मनुष्य में Free will को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं, उनके सम्बन्ध में हमें कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु भौतिक विकासवाद के प्रवर्त्तक डार्विन तथा हैकल के अनुयायियों को अपने विकास सिद्धान्त को चरम सीमा तक पहुंचाने तथा उसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिये मनुष्य में Free will को अवश्य ही स्वीकार करना चाहिये। भौतिक विकास सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य केवल शरीर और अंगरचना में ही अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक उन्नत नहीं है, अपितु वह अन्य शक्तियों में भी अन्य सब प्राणियों की अपेक्षा अधिक उन्नत है। भौतिक विकास सिद्धान्त के अनुसार भी मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों में आकाश पाताल का भेद है। डार्विन का भौतिक विकासवाद अबतक सिरतोड़ प्रयत्न करके भी मनुष्यों तथा पशु, पक्षियों के बीच की गहरी खाई को पार नहीं कर सका, और न ही वह उनके भेदों को किसी सुदृढ़ शृंखला द्वारा दूर ही कर सका।

पशु, पक्षियों तथा मनुष्यों के बीच में इतनी गहरी और चौड़ी खाई है, जिसे कि भौतिक विकास सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले जड़वादी वैज्ञानिक अबतक पार नहीं कर सके।

मनुष्यों में मस्तिष्क की प्रधानता है। मनुष्यों को प्रकृति ने सोचने विचारने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये मस्तिष्क दिया है। पर पशु पक्षियों में मस्तिष्क नहीं पाया जाता। पशु पक्षियों में मस्तिष्क का सारा कार्य Instinct द्वारा होता है। मस्तिष्क और Instinct के बीच के गहरे भेद को अभी तक डार्विन का भौतिक विकासवाद पार नहीं कर सका और न ही वह अबतक इन दोनों को जोड़ने वाली किसी मध्यस्थ (Intermediate) योनि का ही पता लगा सका है, जो कि इन के बीच में शृङ्खला का कार्य कर सके। इसी प्रकार मनुष्यों और पशु, पक्षियों में और भी बहुत सारे अन्तर पाये जाते हैं, जिनका संतोष जनक समाधान डार्विन के अनुयायी तबतक नहीं कर सकते जबतक कि वे मनुष्य में स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति को स्वीकार नहीं करते। मनुष्य आचारवान (Moral) प्राणी है, तथा पशु पक्षी आचारशून्य (Non-moral) प्राणी हैं। मनुष्य अपने कार्यों के लिये उत्तर दायी हैं, उनके कार्य प्रायः सोद्देश्यक होते हैं, परन्तु पशु पक्षी इसके प्रतिकूल न तो अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी ही हैं और न ही उनके कार्य किसी द्वारा प्रेरित और सोद्देश्यक ही होते हैं। उपर्युक्त भेदों की व्याख्या तबतक नहीं

की जा सकती, जबतक कि मनुष्य में स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति (free will) को स्वीकार न किया जाय। यांत्रिक शक्ति (Automatic or Mechanical force) तथा स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति (free will) में आकाश पाताल का भेद है और इन दोनों को जोड़ने वाली मध्यस्थ शृंखला का पता लगाना विकासवाद के लिये असंभव है, यदि केवल मात्र इस भय के कारण ही भौतिक विकास सिद्धान्त के अनुयायी तथा शुद्ध जड़वादी freewill के सिद्धान्तको अवैज्ञानिक मान कर इसे स्वीकार करने के लिये तय्यार नहीं हैं, तो इस का कोई इलाज नहीं है। उनका यह भय तुच्छ और निराधार है। स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति के सिद्धान्त को मानने वालों से प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है, कि मनुष्य में (free will) का आकस्मिक उद्भव कैसे हो गया, जब कि अन्य प्राणियों में इस का लेश मात्र भी मौजूद नहीं है। स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति तथा यांत्रिक शक्ति को परस्पर जोड़ने वाली मध्यस्थ शृङ्खला का पता लगाये बिना (free will) को स्वीकार करना विज्ञान विरुद्ध है। परन्तु स्वतन्त्र कार्य्य करने की शक्ति को स्वीकार करने वाले आत्मवादियों को इस प्रकार से प्रश्नों से घबड़ाने की ज़रूरत नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही स्पष्ट है। इस बात को तो जड़वादी वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं, कि मनुष्यों की आत्मा (Consciousness) पशु पक्षियों की आत्मा की अपेक्षा अधिक उन्नत और शक्तिशाली है। यह एक स्वयं सिद्ध सचाई है, जिस से कोई भी इन्कार नहीं करसकता। मनुष्योंकी उन्नत और विकसित आत्मा मस्तिष्क रूपी उन्नत साधन को प्राप्त करके स्वतंत्रता पूर्वक अपने मार्गों तथा कार्यों का चुनाव करने में पूर्ण समर्थ हो जाती है। आत्मा, शरीर अथवा, इन्द्रिय, मस्तिष्कादि अपने साधनों के आधीन तब तक रहते हैं, जबतक कि वह उन्नत होकर अपनी पूर्ण विकासावस्था को प्राप्त नहीं होते, तथा अपनी महती शक्तियों का साक्षात् ज्ञान और अनुभव नहीं करते, परन्तु जब आत्मा ज्ञान तथा योगादि साधनों द्वारा अपनी पूर्ण विकासावस्था तथा अपनी शक्तियों की चरमसीमाओं का अनुभव कर लेता है, उस अवस्था में वह शरीर तथा अपने साधनों की पराधीनता से मुक्त होजाता है। उस अवस्थामें प्रबुद्ध आत्मा (Consciousness) शरीर द्वारा शासित नहीं होता, अपितु वह उस समय अपनी इच्छा के अनुकूल शरीर पर पूर्ण शासन करता है। यह स्वतन्त्र कार्य करने (free will) की चरम सीमा है। इस चरमसीमा तथा इसे सिद्ध करने वाली युक्तियों, प्रमाणों तथा facts का वर्णन हम किसी अगले लेख में करेंगे। शुद्ध जड़वादी वैज्ञानिकों तथा भौतिक विकासवादियोंके उपर्युक्त आक्षेप में कुछ भी बल और सार नहीं है। इस तरह भौतिक विकासवादियों की ओर से किये गये आक्षेप का समाधान अच्छी प्रकार से किया जा सकता है, परन्तु जो आक्षेप मि० डार्विन के अनुयायियों की तरफ़ से आत्मवादियों पर किया जाता है, स्वयं डार्विन के अनुयायी भी इस प्रकार के आक्षेप से नहीं बच सकते। हम डार्विन तथा हैकल के अनुयायियों से यह प्रश्न करते हैं, कि मनुष्यों में मस्तिष्क का आकस्मिक उद्भव किस प्रकार हुआ, जब कि पशु, पक्षी, तथा वृक्षादि विश्व के किसी भी अन्य प्राणी में इस का लेशमात्र भी मौजूद नहीं है। विकासवादी पशु पक्षियों और मनुष्यों के परस्पर जोड़ने वाली किसी मध्यस्थ (Intermediate) शृङ्खला का

अब तक पता नहीं लगा सके। यदि मध्यस्थ शृङ्खला का पता लगाये बिना दिमाग़ का आकस्मिक उद्भव मानना विज्ञान विरुद्ध नहीं है, तो स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति (free will) का आकस्मिक उदभव भी विज्ञानविरुद्ध नहीं है। यदि मस्तिष्क की विद्यमानता है तो free will की विद्यमानता भी अनुभूत और निरीक्षित सच्चाई है। यदि वन-मानुष आदि कुछ एक प्राणियों में मस्तिष्क और Instinct दोनों पाई जाती हैं तथा ये प्राणी मस्तिष्क और Instinct को जोड़ने में मध्यस्थ शृङ्खला का कार्य करते हैं, इसी प्रकार वनमानुष आदि प्राणियों में मस्तिष्क की तरह स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति (free will) का भी अङ्कुर पाया जाता है। इस प्रकार के नीचे दर्जे के प्राणी free will और Instinct के बीच में मध्यस्थ शृङ्खला का कार्य करते हैं। इस प्रकार विकास के सिद्धान्त को चरम सीमा तक पहुंचाने तथा उसे सर्वाङ्ग पूर्ण बनाने के लिये, तथा सदाचार की रक्षा और निरीक्षित सच्चाइयों (observed fact) जिनका कि ज़िक्र हम पहिले कर चुके हैं—का संतोष जनक समाधान करने के लिये भौतिक विकास-वादियों को भी मनुष्य में स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति के सिद्धान्त को अवश्य स्वीकार करना चाहिये। जिस प्रकार डार्विन के अनुयायी मनुष्यों तथा पशु, पक्षियों में अन्य भेदों को स्वीकारकरते हैं,इसी प्रकारयदि वे मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्तिके भेद को भी स्वीकार कर लें, तो न केवल उन का विकास सिद्धान्त ही सर्वाङ्ग पूर्ण बन जावेगा अपितु free will को मानने वालों की तरफ़ से विकास के सिद्धान्त में जो कमजोरियां और त्रुटियाँ दिखाई जाती हैं कि जिनका भौतिक विकास-सिद्धान्त को मानने वाले विद्वान कोई संतोष-जनक उत्तर नहीं दे सकते-वे भी दूर हो जावेंगी। अतः विकास वादियों को भी निश्शङ्क होकर बिना किसी सङ्कोच भाव से स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि डार्विन और हैकल के अनुयायियों को यह भय हो, कि मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति के सिद्धांत को स्वीकार करने पर उन्हें आत्मा की पृथक् सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी तो उन का यह भय निराधार है, क्योंकि free will के सिद्धान्त स्वीकार किये बिना भी चेतनता और जीवन शक्ति की सिद्धि के लिये उन्हें चेतन आत्मा की पृथक और अनादि सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। अतः विकास के सिद्धान्त को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाने की दृष्टि से भी हमें मनुष्य में स्वतन्त्र कार्य करने की शक्ति को अवश्य ही स्वीकार करना चाहिये।

यदि चेतन शक्ति (आत्मा) की जड़ द्रव्य matter से पृथक् और स्वतन्त्र सत्ता न होती, तथा चेतनता और concsiousness की उत्पत्ति जड़ द्रव्यसे हुई होती, यदि हैकलका Spontaneous generation का सिद्धान्त स्थापित होगया होता तो यान्त्रिकता (Automatism) के सिद्धान्त के सर्वव्यापी होने की सच्चाई में कुछ भी सन्देह न होता। परन्तु वैज्ञानिकों के सदियों के प्रयत्न से यह बात अच्छी प्रकार से सिद्ध हो चुकी है कि जीवन और चेतनता के स्रोत जड़ द्रव्य वा जड़ प्रकृति नहीं है। पर जीवन के आधारभूत चेतन आत्मा की सत्ता जड़ प्रकृति और जड़ द्रव्य से पृथक् और अनादि है। अबतक वैज्ञानिक सिरतोड़ प्रयत्न करके भी प्रोटोप्लाज़म नामक द्रव्य-जो कि हैकल के spontaneous generaion के सिद्धान्त के अनुसार जीवन और चेतनता का आधार है, तथा जिसके

मुख्य घटक तत्व कर्बन, ओषजन, उदजन और नत्रजन हैं)—से चेतनता और जीवन की उत्पत्ति नहीं कर सके। शुद्ध जड़वादी वैज्ञानिकों तक ने जड़ द्रव्य से जीवन और चेतनता को उत्पन्न करने के प्रयत्न की असफलता को मुक्त कंठ से स्वीकार कर लिया है। अब इस बात की घोषणा विज्ञान की वेदी से की जा चुकी है, कि जीवन के आधारभूत चेतन आत्मा की सत्ता जड़ द्रव्य से पृथक्, स्वतन्त्र और अनादि है, तथा हैकल का Spontaneous generation का सिद्धान्त अब पुराना और अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुका है। आत्मा की सत्ता जड़ द्रव्य से पृथक्, स्वतन्त्र और अनादि है इस को अनेक प्रबल युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु विषय से असंबद्ध होने का कारण इन युक्तियों तथा प्रमाणों ज़िक्र इस लेख में न करेंगे। तथापि पाठकों को आत्मा की पृथक् स्वतंत्र और अनादि सत्ता में जरा भी संदेह न करना चाहिये। आत्मा के अनादि और स्वतंत्र सत्ता के होते हुए तथा मनुष्यों में प्रबुद्ध आत्मा (Consciousness) के सब से अधिक उन्नत और विकसित होने के कारण और मस्तिष्क जैसे उन्नत साधन से संपन्न होने के साथ २ उसमें सदाचार के नियमों की पूर्णता को अनुभव करने, पूर्ण सचाई का साक्षात्कार करने, तथा अनन्त सुख को प्राप्त करने की प्रबल और स्वाभाविक आकांक्षा के विद्यमान होतेहुए मनुष्यमें यांत्रिकता (Automatism) के सिद्धांतका पैर जमाना कठिन ही नहीं अपितु अत्यन्त असंभव है। यदि मनुष्यों में भी पशु पक्षियों की तरह यान्त्रिकता को स्वीकार कर लिया जाय तो मनुष्यों में पाई जाने वाली उपर्युक्त आकांक्षाओं का समाधान किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता।

अब हम यान्त्रिकता के पक्षपाती शुद्ध जड़वादियों (Matterialists) से कुछ एक प्रश्न पूंछ कर इस लेख को समाप्त कर देगें। जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है, कि शुद्ध जड़वादी तथा अनात्मवादी वैज्ञानिकों को भी जीवन और चेतनता की सिद्धि के लिये किसी चेतन सत्ता की—(जिसे कि आत्मा soul, mind, consciousness आदि भिन्न २ नामें से पुकारा जाता है)—पृथक् और अनादि सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। परन्तु चेतन आत्मा की पृथक् सत्ता को स्वीकार करते हुए भी कई जड़वादी वैज्ञानिक आत्मा में विद्यमान कर्तृत्व के गुण (Causal efficacy) को स्वीकार न करके उसे सांख्य और योग के पुरुष की तरह निरीह, क्रियाशून्य, निश्चल और दर्शक तथा साक्षीमात्र समझ कर पुरुष को पशु पक्षियों की तरह यन्त्रमात्र सिद्ध करना चाहते हैं। उपर्युक्त कथन की सिद्धि के लिये तथा उसे स्पष्ट करने के लिये हम पाठकों के सामने प्रो० टिंडल का मत ठीक उन्हीं के शब्दों ही में रखते हैं। प्रो० टिंडल का मत निम्न है—"Consciousness is an accidental 'by product'—something-over and above the full and fair physical result, which by an accident, fortunate or otherwise, appeared to watch over and register the whole series of physical process though these would have gone on just as well in its absence. In this case thought or Consciousness would not consume any of the stock of energy. The law of conservation of energy would not be threatened in its generality, and man would be

a true automator, with consciousness added as a spectator, but not as a director of the machinery."

प्रोफ़ेसर महोदय के शब्द बहुत ही स्पष्ट हैं, अतः इनकी व्याख्या करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यदि जड़वादी वैज्ञानिक लोग आत्मा (consciousness) की पृथक् सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उस में विद्यमान कर्तृत्व शक्ति (Causal efficacy) का निराकरण करने में समर्थ हो सकें, तो यान्त्रिकता (Automatism) के सिद्धान्त के सार्वभौम होने में कुछ भी सन्देह नहीं रहता। आत्मा वा चेतन शक्ति में कर्तृत्व का गुण वा शक्ति विद्यमान है वा नहीं, लेख के लम्बा होने के भय से इस विवादास्पद विषय का ज़िक्र हम इस लेख में न करेंगे। यद्यपि हम स्वयं इस विषय में उन आत्मावादी विचारकों से पूर्ण सहमत हैं, जो कि आत्मा में कर्तृत्व के गुण वा शक्ति को स्वीकार करते हैं, तथापि इस विवादास्पद विषय को वर्तमान लेखमाला के किसी अगले लेख केलिये छोड़ कर हम इस लेखमें उन जड़वादियों से,—जो कि ज्ञान, विचार, भाव तथा इच्छा को जड़ द्रव्य (matter) अथवा मस्तिष्क संबंधी अणुओं की गति का परिणाम मात्र समझते हैं—, केवल मात्र कुछ एक प्रश्न ही पूछना चाहते हैं, जो कि उनके पक्ष की निर्बलता को भली भांति स्पष्ट कर देंगे। हम यांत्रिकता के पक्षपाती वैज्ञानिकों से यह पूछते हैं, कि आत्मा में कर्तृत्व शक्ति को माने बिना केवल मस्तिष्क द्वारा ensation (बाह्यइन्द्रियानुभव) या मस्तिष्क संबन्धी अणुओं की गतियां किस प्रकार से ज्ञान(Perception or knowledge) के रूप में परिवर्तित हो सकती हैं इस प्रश्न का जड़वादी वैज्ञानिक कोई भी संतोष जनक उत्तर नहीं दे सकते। ज्ञान जड़ द्रव्य (matter) का गुण नहीं है, और न ही यह उदजन, ओषजन, कर्बन नत्रजन आदि जड़ तत्वों से उत्पन्न ही हो सकता है, क्योंकि उदजन, ओषजन आदि जड़ तत्वों और ज्ञान में कुछ भी साम्य नहीं है। दोनों परस्पर एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न और विरोधी हैं। जब ज्ञान उदजन आदि जड़ तत्वों का न तो गुण ही है, और न ही यह इनमें विद्यमान ही है, तब फिर यह इन जड़ तत्वों से बने हुए मस्तिष्क के अणुओं की गति का परिणाम किस प्रकार हो सकता है? क्योंकि विज्ञान और दर्शन दोनों का ही यह असूल है, कि जो गुण कारण में विद्यमान नहीं है, वह उसके कार्य में भी नहीं आसकता। कार्य में उसके कारणों की अपेक्षा कुछ भी नवीनता नहीं आसकती। यदि कार्य को कारण की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न, नवीन और उसका विरोधी मान लिया जाय, तो फिर इस अवस्था में शून्यवाद और असत्कार्यवाद की स्थापना हो जाती है तथा कार्य कारण (Cause and effect) का पारस्पारिक संबन्ध बिल्कुल नष्ट होजाता है, जो कि विज्ञान विरुद्ध तथा मूर्खता पूर्ण (Absurd and nonsense) है। अतः उपर्युक्त युक्तिक्रम से यह सिद्ध होता है, कि ज्ञान जड़ द्रव्य तथा मस्तिक संबन्धी अणुओं की गति का परिणाम नहीं है। यदि एक मात्र मस्तिष्क को ही शरीर रूपी मैशीनरी का संचालक मान लिया जाय, तो इस अवस्था में Sensations का ज्ञान रूप में परिणत होना तथा ज्ञान का पैदा होना दोनों ही कार्य बिल्कुल असंभव हैं।

ज्ञान की तरह केवल मात्र जड़ द्रव्य से या मस्तिष्क संबन्धी अणुओं की गतियों से विचारों (Thoughts) का उत्पन्न होना भी असंभव है। विचार जड़ द्रव्य या भौतिक श-

क्तियों (Physical energies) का गुण नहीं है और न ही ये इनमें विद्यमान् ही है। आजतक वैज्ञानिक लोग सिर तोड़ प्रयत्न करके भी विचार (Throught) को जड़ द्रव्य या इससे संबन्ध ताप, विद्युत चुम्बक प्रकाश, शब्द आदि भौतिक शक्तियाँ, रासायनिक आकर्षण (Chemical affinity) आदि रासायनिक शक्तियों तथा नर्वफ़ोर्स अथवा मस्तिष्क संबन्धी आण्विक गति आदि याँत्रिक गतियों में परिणत नहीं कर सके। अतः विचार जड़ द्रव्य या इससे सँबद्ध भौतिक शक्तियों से उत्पन्न नहीं हो सकता। एक मात्र मस्तिष्क को ही शरीर रूपी मैशीनरी का सञ्चालक मानने वाले जड़ वादी वैज्ञानिक इस बात का कोई भी सन्तोष जनक उत्तर नहीं दे सकते, कि जड़ तत्वों से बने मस्तिष्क के अणुओं की गतियाँ किस प्रकार से विचार (Thought) के रूप में परिणत होजाती हैं।

जिस प्रकार ज्ञान और विचार मस्तिष्क संबन्धी अणुओं की गति के परिणाम सिद्ध नहीं किये जा सकते, इसी प्रकार सत्य, दया अहिंसा आदि धार्मिक और सदाचार संबन्धी भावों को भी जड़ द्रव्य (matter) और मस्तिष्क संबन्धी अणुओं की गति का परिणाम किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। सत्य, अहिंसा, दया, आदि धार्मिक और सदाचार संबन्धी भावों में तथा उदजन नत्रजन और ओषजन आदि जड़तत्वों में परस्पर किसी प्रकार का भी संबन्ध नहीं नहीं है। सत्य दयादि धार्मिक और सदाचार संबन्धी भाव न तो किसी जड़ द्रव्य के गुण ही हो सकते हैं और न ही ये जड़ में रह ही सकते हैं। अतः सत्य, दया धार्मिक आदि धार्मिक और सदाचार संबन्धी भावों को किसी प्रकार भी द्रव्य तथा मस्तिष्क के अणुओं की गति का परिणाम सिद्ध नहीं किया जा सकता। आत्मा तथा उसमें विद्यमान कर्तृत्व के गुण को माने बिना जड़वादी वैज्ञानिक इस बात का कोई भी सन्तोष जनक उत्तर नहीं दे सकते, कि मनुष्य में सदाचार और धर्म का मूल (जन्म) किस तरह उत्पन्न होता है तथा किस प्रकार मनुष्यों के हृदयों में ईश्वर भक्ति, सत्य दयादि धार्मिक और सदाचार संबन्धी भावों की उत्पत्ति पुष्टि तथा दृढ़ होता है।

जड़वादी वैज्ञानिकों के कथनानुसार आत्मा को क्रिया शून्य और साक्षीमात्र मान कर केवल मात्र मस्तिष्क को ही सारी शरीर रूपी मैशीनरी का सञ्चालक मान लिया जाय तो यह कभी हमारी समझ में नहीं आसकता कि विचार, भाव Emotions or Feelings, तथा इच्छा की पारस्परिक एकता किस प्रकार होसकती है। ये सब परस्पर भिन्न होते हुए भी किस प्रकार परस्पर एक दूसरे में परिणत होजाते हैं। ज्ञान वा विचार, भाव तथा इच्छा को पैदा करने वाली मस्तिष्क के अणुओं की भिन्न २ गतियों में स्वयं परस्पर एक दूसरे परिणत होने की शक्ति नहीं है।

जड़ और ज्ञानशून्य मस्तिष्क भी इन भिन्न २ गतियों की लहरों को मिलाकर परस्पर एक दूसरे में परिणत नहीं करा सकता। परन्तु ज्ञान, भाव तथा इच्छा की पारस्परिक एकता एक अनुभूत सचाई (Fact) है। इन की यह एकता जड़ और ज्ञानशून्य मस्तिष्क के लिये नहीं है। अपितु यह एकता एक चेतन द्रष्टा के लिये है। जिस की सत्ता जड़ शरीर और मस्तिष्क से पृथक् है, तथा जो कि इन सब का निरीक्षक और संचालक है। ज्ञान, विचार, भाव तथा इच्छा पैदा करने वाली मस्तिष्क के अणुओं की भिन्न २ गतियां चेतन सत्ता (आत्मा) पर प्रभाव डालती हैं, तथा यही चेतन सत्ता इन दिमाग़

के अणुओं की भिन्न २ गतियों की लहरों को परस्पर मिला कर एक दूसरे में परिणत करने का कार्य करती हैं। उपर्युक्त बातें इस बात को साबित करती हैं, कि केवल मस्तिष्क ही सारी शरीररूपी मैशीनरी को चलाने के लिये समर्थ नहीं है, एक मात्र मस्तिष्क को ही शरीररूपी मैशीनरी का संचालक तथा प्रेरक मानने पर उपर्युक्त दोषों का कोई समाधान नहीं किया जा सकता।

केवल मस्तिष्क को ही शरीररूपी मैशीनरी का संचालक मानने वाले जड़वादी वैज्ञानिकों से हम यह पूछते हैं, कि एक वाक्य का इकट्ठा ज्ञान तथा भिन्न २ ज्ञानों का मिलकर एक साधारण ज्ञान किस प्रकार हो सकता है, यदि आत्मा में कर्तृत्व के गुण वा शक्ति (causal efficacy) को स्वीकार न किया जाय। केवल मात्र (Sensations) द्वारा दिमाग़ में उत्पन्न गतियों द्वारा भिन्न २ शब्दों तथा भिन्न २ ज्ञानों को परस्पर मिला कर एक वाक्य और साधारण ज्ञान का ज्ञान करना किसका कार्य है। यह कार्य मस्तिष्क नहीं कर सकता। दिमाग़ के अणुओं में उत्पन्न गतियों की लहरें परस्पर स्वयं मिल कर एक साधारण ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकतीं, जब तक कि उन को मिलाने वाला उनसे कोई पृथक् चेतन ज्ञाता न हो। केवल मात्र दिमाग़ से एक वाक्य का ज्ञान तो क्या एक शब्द का भी इकट्ठा ज्ञान नहीं हो सकता। यह कार्य चेतन ज्ञाता (आत्मा) का ही कार्य है। दिमाग़ के अणुओं की भिन्न २ गतियां, भिन्न २ कंपन, शब्द तथा ज्ञान उस चेतन आत्मा पर प्रभाव डालते हैं, आत्मा ही इन को परस्पर एक शब्द वाक्य और साधारण ज्ञान के रूप में ग्रहण करता है। यांत्रिकता के पक्षपाती जड़वादी वैज्ञानिक उपर्युक्त दोष का कोई संतोषजनक समाधान नहीं कर सकते। इस लेखमाला के अन्तिम लेख में यांत्रिकता के सिद्धान्त के पक्षपाती जड़वादी वैज्ञानिकों के पक्ष का तथा उनके द्वारा किये गये आक्षेपों का निराकरण करते हुए हम अनेक युक्तियों और प्रमाणों से आत्मा में कर्तृत्व के गुण causal efficacy को सिद्ध करेंगे। इस प्रकरण में हमने उदाहरण के तौर पर कुछ एक आक्षेप उन जड़वादियों पर किये हैं, जो कि केवलमात्र मस्तिष्क को ही शरीररूपी मैशीनरी का एकमात्र संचालक सिद्ध करके मनुष्य के कार्यों को पशु, पक्षियों के कार्यों की तरह यान्त्रिक सिद्ध करना चाहते हैं। उपर्युक्त आक्षेपों से यह स्पष्ट तौर से सिद्ध हो चुका है, कि यान्त्रिकता के पक्षपाती जड़वादी वैज्ञानिकों का यह सिद्धांत बिल्कुल दोषपूर्ण और ग़लत है, कि केवलमात्र मस्तिष्क ही शरीररूपी मैशीनरी का एकमात्र संचालक है, तथा ज्ञान, विचार, भाव (Emotions) और क्रिया का संपादक है।

हमने इस लेख में मनुष्यों के और पशु, पक्षियों के कार्यों में भेद दिखाते हुए स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति (free will) और यान्त्रिकता (Automatism) के स्वरूप का संक्षेप से वर्णन करने का यत्न किया है। इसके साथ २ मनुष्यों में (free will) की विद्यमानता की सिद्धि में दी जाने वाली कुछ एक युक्तियों की व्याख्या की गई है। स्वतंत्र कार्य करने की शक्ति (free will) के सिद्धांत की पुष्टि में अन्य भी अनेक प्रबल युक्तियां और प्रबल प्रमाण दिये जा सकते हैं। इस प्रकार की अकाट्य और अखंडनीय युक्तियों और प्रमाणों का ज़िक्र हम इस वर्तमान लेखमाला के किसी अगले लेख में करेंगे। इससे अगले लेख में हम पाठकों के सामने निष्पक्षपात भाव से डार्विन तथा हैकल

आदि भौतिक विकासवादियों और टिंडल प्रो. हक्सले आदि शुद्ध जड़वादियों के मत को रखने का यत्न करेंगे यान्त्रिकता का सिद्धांत भी बहुत प्रबल है। इसके पक्ष में भी अनेक युक्तियां और प्रमाण दिये जा सकते हैं। इन प्रबल युक्तियों और प्रमाणों की विस्तार पूर्वक व्याख्या कर के हम उन आक्षेपों का निराकरण करेंगे, जो कि (free will) के मानने वालों की ओर से विपक्षियों पर किये जाते हैं। इसके बाद यान्त्रिकता (Automatism) के पक्ष में दी जाने वाली प्रो० मिल और प्रो. बेन की मनोवैज्ञानिक युक्तियों का ज़िक्र करके हम यान्त्रिकता के पक्षपाती सांख्य, वेदान्त और भारतीय बौद्धदर्शनों की सम्मति, उनकी अपनी पुस्तकों के उदाहरण देकर पाठकों के सामने रखेंगे। सब से पीछे हम विपक्षियों के पक्ष की समालोचना पूर्वक अपने पक्ष (free will) की स्थापना करेंगे। आशा है. कि पाठकगण पक्षपात के भाव को दूर करके इस लेखमाला को विचार पूर्वक पढ़ने की कृपा करेंगे।

(समाप्त)

दिल्ली

ले०—कविवर 'निर्मल'—प्रयाग

(साखी)

रे दिल्ली! सुन अब लौं तेरी दुखदा चाल कठोर।
देती आती है भारत को कितना संकट घोर॥
मेल कहां? हा! गये अनेकों नर नारी के प्राण।
रे हतभागी! बचे हुओं को कुछ तो दे अब त्राण॥

(कविता—घनाक्षरी)

द्वापर में बन्धुओं ने बन्धुओं को मार मार,
यही युद्ध घोषणा की दुन्दुभी बजाई है॥
हिन्दुओं के हीरा पृथ्वीराज के पछाड़ने को,
कूट नीति काल की कुचाल ने चलाई है॥
मुग़ल गुलाम गोर-गोरी गज़नी ने हाय,
लूट लूट सम्पदा को धूलि में मिलाई है॥
'निर्मल' निहारो आज सैकड़ों बरस बीते।
दिल्ली ने कहो न कब दुर्दशा दिखाई है!

उपसंहार

दोहा

अवसर आवेगा भला, प्रकटेगा शुभ काम।
उमगेंगी उन्नति कला, तब होगा आराम॥

गीतोक्त वर्णव्यवस्था

ले०—श्री० कृष्णानन्द जी

लाखों हिन्दू नित्य गीता का पाठ करते हैं परन्तु लोग गीता की वर्णव्यवस्था पर ज़रा भी ध्यान नहीं देते। श्रीकृष्ण भगवान ने वर्ण का निर्णय करने में बड़ी ही निष्पक्षता और न्यायपरता दिखलाई है। आप कृपा करके १८ वां अध्याय देखिए—

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ४२
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्मस्वभावजम् ४३
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ४४

अर्थात् शम, दम, तप, शौच, शांति, ऋजुता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं। शूरता, तेजस्विता, धैर्य, चातुर्य, युद्धमें निर्भयता, दानपरता और ईश्वर भाव (शासन प्रबन्ध में कौशल) यह क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य वैश्यों के और टहल मजदूरी शूद्रों के स्वाभाविक कर्म हैं।

जैसे कोई कहे कि सत्यता, न्यायपरता और उदारता सज्जनों के स्वभाविक कर्म और झुठाई, अन्यायपरता और कृतघ्नता दुर्जनों के स्वाभाविक कर्म हैं; तो जिन २ मनुष्योंमें दया सत्यता और न्यायादि हों, वे सज्जन कहलायंगे और जिन २ मनुष्यों में झुठाई, अन्याय, क्रूरता आदि हो, वे दुर्जन कहलायंगे। इसी तरह जिन जिन मनुष्यों में स्वभाव से ही शम, दम, तप, शौच आदि हो तथा विद्या वा ज्ञान विज्ञान की ओर विशेष प्रवृत्ति हो, वे श्रीकृष्णजी के कथनानुसार ब्राह्मण हैं। और जो स्वभावतः वीर, धीर, युद्ध में या शासन प्रबन्ध में या राजनीति में निपुण हों, वे श्रीकृष्णजी के मन्तव्यानुसार क्षत्रिय हैं। इसी तरह जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति कृषि वाणिज्यादि में हो वे वैश्य और जो स्वभावतः टहल वा मज़दूरी करें वे शूद्र हैं। इन तीनों श्लोकों में "स्वभावज" शब्द बड़े ही महत्व का है। "स्वभावज" शब्द के द्वारा श्रीकृष्ण भगवान ने स्पष्ट कर दिया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह विशेषण या पदवीमात्र हैं, किसी जाति (Caste) की संज्ञा नहीं। वर्णों की उपर्युक्त परिभाषा दार्शनिक और सार्वदेशिक है। भगवान की दृष्टि किसी एक देशवासी पर नहीं थी प्रत्युत उन्होंने संसार भर के मनुष्यों को लक्ष्य करके अपने सिद्धांतों को स्थिर किया है। आश्चर्य की बात है कि श्रीकृष्ण भगवान के भक्त और गीता का मनन करने वाले महाशय गीता कथित गुण कर्मानुसार वर्ण विभाग को न मानकर जाति वा जन्म से ही वर्ण मानने के पक्षपाती हैं। परन्तु श्रीकृष्ण भगवान का वर्ण सम्बन्धी सिद्धान्त वेद, मनुस्मृति और महाभारत के अनुकूल तथा युक्तियों से अकाट्य होने से मानने योग्य है।

कदाचित् कोई सज्जन शंका करें कि श्रीकृष्ण जी ने एक जगह "चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुणकर्मविभागशः" गुणकर्मानुसार वर्णविभाग कहा है और यहां पर सिर्फ कर्मों को ही गिनाया, गुणों को गिनाना भूल गये। उत्तर में निवेदन है कि यहां पर कर्म में गुण का समावेश मान करके ही ऐसा कहा है अर्थात् गुण=कर्म व गुण के और कर्म=गुण व

कर्म के। फिलासफीके आसमान पर विराजमान श्रीकृष्ण भगवान से ऐसी गलती नहीं हो सकती। देखिए हम लोग भी किसी के कार्य से प्रसन्न या अप्रसन्न होकर कभी २ पूंछ बैठते हैं कि ' यह किस के गुन हैं" इसी तरह श्रीकृष्ण जी ने भी एक ही शब्द से अपना आशय व्यक्त किया है। ४२ वें श्लोक के ६ कर्मों को महात्मा तुलसीदास ने " गुण " शब्द से ग्रहण किया है-नवगुण परम पुनीत तुम्हारे। और ४२ वें श्लोक के पहले ही ४१ वें श्लोक में भगवान ने कह दिया है कि चारों वर्णों के कर्म उनके स्वाभाविक गुणों के अनुसार बंटे हुए हैं। अस्तु श्रीकृष्ण भगवान के असली आशय को देखिए, ऊपरी तर्क न कीजिए, आपको पता लगेगा कि श्रीकृष्ण भगवान ने गुण कर्म से ही वर्णविभाग माना है जाति वा जन्म से नहीं।

यदि श्रीकृष्ण जी जाति वा जन्म से वर्णविभाग मानते तो जिस तरह उन्होंने श्रद्धा यज्ञ, दान, तप, आदि को सात्विक, राजस, तामस ३ भागों में विभक्त किया है उसी तरह यह भी कहते कि हे अर्जुन ब्राह्मण तीन प्रकार के होते हैं सात्विक राजस तामस, क्षत्रिय तीन तरह के होते हैं सात्विक, राजस और तामस, वैश्य और शूद्र भी सात्विक राजस,तामस भेद से ३--३ प्रकार के होते हैं। और भी विचार कीजिए कि यदि श्रीकृष्ण जी जन्म से ही वर्णविभाग मानते तो स्वाभाविक कर्मों का कथन न करके इस तरह कहते कि हे अर्जुन ब्राह्मण नामधारी पुरुष और ब्राह्मणी नामधारिणी स्त्री के संयोग से जो सन्तान उत्पन्न हों वे ब्राह्मण हैं और क्षत्रिय संज्ञक पुरुष व स्त्री के संयोग से जो सन्तान उत्पन्न हों वे क्षत्रिय हैं। परन्तु श्रीकृष्ण भगवान जिन २ कर्मों के अनुसार वर्णव्यवस्था मानते हैं उनका स्पष्ट वर्णन कर दिया है। किसी तरह का सन्देह नहीं रह जाता। इतने पर भी कतिपय महाशय कह बैठते हैं कि गीता में जन्म से वर्ण व्यवस्था है, गुण कर्म से नहीं। यह उनका दुराग्रह मात्र है और कुछ नहीं। गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था मानने से क्या क्या लाभ होते हैं और न मानने से क्या २ हानियां होती हैं इसे विद्वद्वर भगवानदास ने "समाज सगठन" पुस्तक में बड़ी उत्तमता से लिखा है। कृपया उक्त पुस्तक अवश्य पढ़कर लाभ उठाइए।

हिन्दू जाति श्रीकृष्ण भगवान के वर्ण सम्बन्धी सिद्धान्त को भूलकर जन्म व जाति से वर्णव्यवस्था मानने लगी। उसी का परिणाम है कि हिंदू समाज कई सहस्र उपजातियों में विभक्त होगया और हमारी सामूहिक शक्ति छिन्न भिन्न होने से जगह २ हम हिंदुओं को अपमानित और पददलित होना पड़ता है। हिंदूसंगठन तब तक दृढ़ और पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि हिंदू समाजान्तर्गत जातिबन्धन शिथिल न कर दिया जाय। वर्तमान उपजाति बन्धन और अनुचित छूत छात की रीति को तोड़े बिना हिंदूओं का संगठन हो नहीं सकता। और हिन्दू संगठन के बिना हिंदुओं की उन्नति और सुखवृद्धि असंभव है। प्रिय पाठको ! यदि आप हिन्दी हिंदू और हिंद के हितैषी हैं तो उपजाति सम्बन्धी पक्षपात और संकीर्ण विचार को त्यागकर श्रीकृष्ण भगवान के उदारता पूर्ण उपदेशों को ग्रहण कीजिए।

दयानन्द-विजय

ले० —ब्रह्मचारी नरेन्द्रनाथ जी

(१)

घन घोर महा तम दूर किया, जिन वेदन की जग ज्योति जगाई ॥
द्विज वेद पढ़ें, न कुकर्म करें, जग में इस भांति सुनीति चलाई ॥
अबला न बढ़ें सतियां न घटें, सब धर्म धरें यह नीति रचाई ।
उपकार किया जग का ऋषि ने; सब भांति यहां की कुनीति नशाई ॥

(२)

खलता खल की, नटता नट की, शठता शठ की सब काट दई ।
ठगता ठग की विटता विट की, हठता हठ की सब पाट दई ॥
पटुता पटु की, गुरुता गुरु की, लघुता लघु की सब छाँट दई ।
इस भांति दया करके ऋषि ने, यह भारत भूमि उधार दई ॥

(३)

वेद विरुद्ध सभी मतकार, सपार किया जग को ऋषि ने ।
इक वैदिक-धर्म-ध्वजा के सिवा, सब नष्ट किये जग में ऋषि ने ॥
नाश कुरीति करीं जग से, अरु धर्म-प्रचार किया ऋषि ने ।
जीवन की जग में कर आहुति, प्राण दिये इस में ऋषि ने ॥

(४)

चन्द्र बिना रजनी ज्यों नहीं, अरु नीर बिना जिमि मीन नहीं है ।
मानस के बिन हंस नहीं, अरु मित्र बिना जिमि प्राण नहीं हैं ॥
कानन केहरि के न बिना, रवि के बिन वासर होत नहीं है ।
आज दयानन्द के न रहे, तिमि भारत भूमि ये भात नहीं है ॥

गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों की मृत्यु

लें०—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी



यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि गुरु गोविंदसिंह जी के चार पुत्र थे और यह चारों ही धर्म पर अपने जीवन न्यौछावर कर गए। इसका संक्षिप्त वृतान्त इस प्रकार है:—

जिस समय गुरु गोविंदसिंह जी आनन्दपुर दुर्ग से निकले और सरसा नामक नाले पास आए उस समय उक्त नाले में जल प्रवाह अत्यन्त वेग से बह रहा था, अतः उसे पार करना दुःसाध्य हो गया। कुछ सिख और गुरू जी अपने दो बड़े पुत्रों सहित पार होगए और गुरू जी की पत्नियां उनसे पृथक् होकर सिखों के साथ देहली पहुंच गईं, तथा गुरू जी की माता दो छोटे पुत्रों सहित गंगाराम के साथ सहेडी ग्राम में गईं, वहां से पकड़ी जाकर सरहिंद में लाई गईं।

गुरू जी के दोनों बड़े पुत्र उनके सामने चमकौर के युद्ध में रणक्षेत्र में वीर गति को प्राप्त हो गए और लघु बालक सरहिंद में अधिकारियों द्वारा बध किये गए। यह बालक किस भांति मारे गए इस प्रश्न का उत्तर यदि वर्तमान प्रचलित कथाओं से दिया जाय तो इस प्रकार है किः—

इन दोनों बालकोंको कहा गया कि आप आर्य धर्म छोड़कर मुसलमान बन जायं। इन वीरों ने उत्तर न में दिया, तब अंतिम निर्णय यह हुआ कि यदि यह बालक मुसलमान न हों तो उन्हें मार दिया जाय और इन बालकों को अंत में दीवार में चुन कर मार दिया गया।

यह संक्षेप से चारों कुमारों के सद्गति प्राप्त करने का वृतांत है। इस लेख में मैंने ज्येष्ठ कुमारों के विषय में कुछ नहीं लिखा है; केवल लघु बालकों के विषय में—जिनका जीवन रूपी दीपक सरहिंद में बुझाया गया था—कुछ लिखना चाहता हूँ और पाठकों से नम्र निवेदन भी करता हूँ कि वह इस लेख को इतिहास की दृष्टि से देखें, किसी अन्य भाव से न पढ़ें, क्योंकि मैं इस समय केवल इतिहास की दृष्टि से लिखने लगा हूं। इस युग में अनेक घटनाएं अपना रूप बदल चुकी हैं। जो विचार जनता के पूर्व थे उनके निराधार होने से जनता उन्हें छोड़ रही है और नूतन विचार यदि सप्रमाण हों तो लोग मानते जाते हैं। जैसे पूर्व विचार यह था कि छत्रपति शिवाजी लिखना पढ़ना न जानते थे परंतु इस समय महाराष्ट्र इतिहास लेखकों ने यहां तक पता लगा लिया है कि शिवाजी के लिखित पत्र भी मिल गए हैं। इसलिये इस समय के छत्रपति शिवाजी निरक्षर भट्टाचार्य नहीं हैं। उन्हें लिखना पढ़ना आता है।

सिखों के इतिहास को इस प्रकरण में जो मैं उद्धृत करना चाहता हूं उसमें अन्य लेखकोंके लेखों को छोड़कर उन पुस्तकों के पाठ लिखूंगा जो सिखों ने ही लिखे हैं।

सिखों के लेखक अति प्रसिद्ध दो हैं (१) भाई संतोषसिंह जी, जिन्होंने गुरू नानक जी से लेकर गुरू गोविन्दसिंह जी तक दसों गुरुओं का इतिहास नानक प्रकाश, सूर्य प्रकाश नामक पुस्तकोंमें लिखा है। (२) ज्ञानी

ज्ञानसिंह जी हैं। जिन्होंने पथप्रकाश में गुरुओं की जीवनी और खालसा तवारीख़ में गुरुओं से लेकर सरदारों तक का हाल लिखा है। इनके अतिरिक्त भंगू रत्नसिंह जी हैं जिन्होंने सबसे प्रथम पंथप्रकाश लिखा था। इनके अतिरिक्त जन्म साखियाँ और गुरू विलासादि के लेखक भी हैं किंतु मेरे इस विषय के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

जैसा मैंने ऊपर लिखा है कि यह दोनों बालक भित्ति में चुनकर मारे गए यह कथा आबालवृद्ध जानते हैं, कहते हैं। उसी घटना को जिस भांति सिख इतिहास के पूर्व लेखकों ने लिखा है मैं उन्हीं के शब्दों में लिखना उचित समझ कर उसी पाठ को पाठकों की भेंट करता हूं:—

"तो सुन नबाव यों सुखन उचारे
हैं इह लरके जिवह करने वारे॥
जौ इह होय न मुसलमान।
करो जिवह इन मारो जान॥

॥ दोहा ॥

इतक कही जब दुष्ट बड,सुन तुरक भए प्रसन्न।
फड़े घसीटे रोवते नहिं आयो उन तरस मन॥

चौपाई

हुतो वहां थो छुरा इकबारो।
दै गोडे हेठ कर जिवह डारो॥
तड़फ तड़फ गई जिन्द उड़ाय।
हमशीर खोरे दुइ दए कतलाय॥
यही बात बड़ मात सुन लई।
गिर बुरजों दए प्राण उड़ई॥
एसो भयो तहां बड कारा।
हाहाकार सुन जगत उचारा॥"

पंथप्रकाश पृष्ठ ६७ कृत भंगू रत्नसिंह

भंगू रत्नसिंहजी साफ २ लिख रहे हैं कि इस स्थान पर एक छुरे (छोटी खड्ग) वाला था, उसने घुटने के नीचे सिर दबाकर जिबह (बध) किया! इस लेख को आद्योपांत पढ़ जाइये किसी स्थान में दीवार में चुनने की गन्ध भी नहीं है और अन्त में क्षीरप बालकों का कतल ही लिखा है। इस लिये अब भाई संतोषसिंह जी को सुन लेना चाहिये वह लिखते हैं:—

" लिह बालक इत दिस महि होय।
धरते जुदे करेहु सिर दोय॥ ७॥
राखन की लायक इह नाहीं।
पाइ फतूर देस के माहीं॥
सुन गिलजे तब लेकर गए।
ओट सभा के होवत भए॥ ८॥
पापी निरदयालू मति मंद।
गह खैंची समशेर बुलन्द॥
धीर्य धरे गुरु सुत खरे।
नहीं दीन मन कैसेहु करे॥ ९॥
धर्म हेतु सिर चाहत दीयो।
तुरकन जरा विनासी कीयो॥
सिमरहिं बात पिता यें केरी।
लाज वंश की चाहे वडेरी॥ १०॥
अधम तबे तरवार चलाई।
सिर जुझार सिंह दियो गिराई॥
बहुर दूसरी बार प्रहारा।
फते सिंह को सीस उतारा॥ ११॥
हाहा कार जहां तहां भयो।
जय जय कार शब्द सुर कियो॥
धन्य गुरु सुत धीर्य धारी।
धर्म हेतु सिर दियो उतारी॥ १२॥
अलप आरवल पकरे होए।
द्रढ़ता अपर करे इम कोइ॥
तुरक जरा विनासी करके।
गए गुरु पुर आनन्द धरके॥ १३॥"

सूर्यप्रकाश ऋतु ६ अंश ५२ ॥

भाई संतोष सिंह जी भी भंगू रत्नसिंह की भांति खड्ग से सिर उतारना लिखते हैं। भेद केवल इतना है कि वह सिर को दबा कर बध करना मानते हैं और सिर दबाना नहीं लिखते और इन्होंने खड्ग के दो प्रहार भिन्न माने हैं और उभय कुमारों के नाम देकर सिर का गिरना लिखते हैं और इस लेख में पूर्ववत दीवार में चुन कर मारने का लेश मात्र भी वर्णन नहीं है। इस ज्ञानी ज्ञानसिंह जी ने जो पंथप्रकाश लिखा है उस के आरंभ में भंगू रत्नसिंह से इतना मतभेद प्रगट किया है कि गुरु सुत खड्ग से क़तल करके जलाए न गए थे किंतु दबाए गए थे और आगे चल कर वह भी खड्ग से सिर कटाना लिखते हैं।

इन लेखों से पाठक यह तो भली भांति जान गए होंगे कि इन कुमारों को खड्ग से ही मारा गया है दीवार में चुन कर नहीं मारा था। उस समय के अधिकारी उभय अवस्थाओं में दोषी हैं उन्हें कोई भी निर्दोष नहीं कह सकता। यदि उनका झगड़ा गुरू गोविन्दसिंह के साथ था तो वह गुरू जी के साथ लड़ झगड़ सकते थे, न कि उन के निरपराध बालकों का बध करते और दोनों अवस्थाओं में बालकों की धर्मपरायणता सूर्यवत देदीप्यमान है, इस में कोई सन्देह नहीं है।

अब प्रश्न हो सकता है जब सिखों के पूर्व लेखकों ने ऐसा नहीं लिखा है तो यह बात इतनी प्रसिद्ध कैसे होगई? और इसका जन्म दाता कौन है? मेरी अपनी सम्मित में दीवार में चुनने की कथा उसी भांति झूंठी है जिस भांति ब्लैक होल Black hole का किस्सा झूंठा है और उसके जन्मदाता कोई पश्चिमी साहिब थे, उसी प्रकार इसके जन्म दाता आर्य्य समाजी महाशय हैं। मैंने जिन पुस्तकों को इस विषय में पढ़ा है उन से यही पता लगता है, जो पुस्तक आर्य्य समाज के प्रचार से पूर्व लिखी हुई हैं उनमें उभय वीर कुमारों का जीवन निर्वाण खड़ग से ही किया गया लिखा है और जो पीछे लिखी हैं इन में दीवार में चुनने की रीति पर ही बल दिया गया है और अनेक भजन गाये गये, लिखे गए और उपदेशकों ने व्याख्यानों में इस दीवार का प्रचार किया और सिख ग्रंथकारों ने भी उसे अपना लिया। इस भांति इस अनृत का प्रचार हो गया। यदि यह सत्य होता तो कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि भंगू रत्नसिंह और भाई सन्तोषसिंह उस का उल्लेख क्यों न करते? जब उन्हों ने नहीं लिखा और इस समय के लेखक और प्रमाण नहीं देते हैं जिस से यह सिद्ध हो जाये कि जो खड़ग से मारना लिखा है वह ठीक नहीं है किन्तु जो यह लिखते हैं वही ठीक है तो प्रमाण शून्य बात का मानना बुद्धिमानों का काम नहीं है। इस लिये जिस समय तक कोई सज्जन प्रमाण से उत्तर पक्ष को सिद्ध न करे उस समय तक यही ठीक है कि गुरु गोबिन्द सिंह जी के दोनों लघु कुमार दोवार में चुन कर नहीं मारे गये थे। किंतु खड़ग से उनके सिर उतारे गये थे।

नारी नैर्मल्य

रचयिता-श्री पं० टीकाराम भट्ट विशारद

दरसन परसन सुनन सुसुमिरन आनन्द दाता ।
रमणी गण सम और, रत्न नहिं रचे विधाता ॥ १ ॥
उनके हित ही धर्म, अर्थ संचय जन करते ।
रति सुख कर सुत प्राप्त, पितर ऋण से हैं तरते ॥ २ ॥
महिलाओं की बात सुपुरुषो ! सुनना सादर ।
अगर चाहते सौख्य, करो गृह लक्ष्मी आदर ॥ ३ ॥
जो लेकर वैराग्य, भूलि अबला गुण गण को ।
देते दारा दोष, कहूं क्या उन दुर्जुन को ॥ ४ ॥
सद्भावों से भरे, बचन नहिं उनके होते ।
मेरे मन में सदा, बहैं अस तर्कनि के सोते ॥ ५ ॥
बनिताओं में दोष, कौन हैं हमें बताओ ।
जिनको नित आचरित, नहीं पुरुषों में पाओ ॥ ६ ॥
ढीठपने में पुरुष, नारियों से चढ़कर हैं ।
कहते मनु नहिं दोष, नारि में गुण बढ़कर हैं ॥ ७ ॥
द्विज पग गौ की पीठ, अजा घोटक मुख भाये ।
अबला गण के सर्व अंग शुचि सुजन बताये ॥ ८ ॥
अबला देवें शाप निरादर पा जिस घर में ।
कृत्याहत के सरिस नाश हो उसका पल में ॥ ९ ॥
माता होकर नारि, सभी पुरुषों की जननी ।
उनकी निन्दा करो, चहो सुख अहो कृतघ्नी ! ॥ १० ॥
कहता शास्त्र पुकार, पाप दम्पति को भारी ।
परै पुरुष पर प्रिया प्रेम, पर पति रति नारी ॥ ११ ॥
कर मर्यादा भग पाप में नर बहु फंसते ।
गहैं गैल मर्याद, नारि गण हैं शुभ जंचते ॥ १२ ॥
पर तिय गामी नरन हेत जो शुद्धि बताई ।
सुनो शास्त्र का कथन ज़रा चित देकर भाई ॥ १३ ॥
जिसके वहि दिशि रोम, चर्म रासभ का ओढ़े ।
मांगे भिक्षा अर्ध वर्ष, तब शुद्धि निपोढ़े ॥ १४ ॥
नारिन से नर सभी होय एकान्त अधारे ।
मधुर मधुर मृदु वचन बना जस कहते प्यारे ॥ १५ ॥
किन्तु पीठ जब फिरी हुई सब नीम मिठाई ।
धन्य धन्य दें नारि, चिता में देह जलाई ॥ १६ ॥
टीका सुयश सुभाल चहो, करु बनिता आदर ।
राम शिष्य सम नशो करो, यदि नारी निरादर ॥ १७ ॥

भानुभुवन या मोहनमाया

अनु०—कुमारी सुमित्रादेवी जलविद

(गतांक से आगे)

नरोत्तम—शाबास मित्र ! तुम टैगोर बन जाओ फिर कोई चिन्ता नहीं हैं।

मोहन—चिन्ता कैसी ? मैंने कालिज और क्लबों में बहुत से नाटक खेले हैं, बहुत से पार्ट किये हैं, परन्तु जीवित मनुष्य का रूप धारण करने का यह पहिला ही प्रसंग है (हंसी में) तुम देखना तो सही कि चार ही घड़ी में मैं तुम्हारे हरीफ़ को अर्थात् अपने आप को यानी रवीन्द्रनाथ टैगोर को तुम्हारी पत्नी के हृदय से बाहर किस प्रकार निकाल फेंकता हूं। चार घंटे में ही वह मुझ से ऊब कर भाग न जावे तो मेरा नाम मोहन नहीं।

नरोत्तम—तब तो तुम्हारा मुझ पर अपार उपकार होगा। परन्तु यदि ऐसे ही करना हो तो तुम अभी जाओ। वे लोग बाहर गए हैं, अभी आते ही होंगे। तुम जब आये थे तब तुम्हें भीतर कौन ले आया था ?

मोहन—कोई नहीं। द्वार खुले थे और यह सेवक सीधा यहां आगया।

नरोत्तम—तब तो तुम्हें किसी ने नहीं देखा है ?

मोहन—नहीं किसी ने नहा।

नरोत्तम—यह भी बहुत अच्छा हुआ। लेकिन अब तुम यह बेढंगा वेश त्याग दो और अपना शेख जी वाला जामा धारण कर लो, आर ऊपर टर्की टोपी रख लो। टैगोर बस इसी वेश में घूमते हैं, और फिर यहां आवो। यह देखो फोटो के साथ यह टैगोर का कार्ड है इसे भेजना, बस इतना पर्याप्त है। मेरे श्वसुर ने टैगोर को आमंत्रण तो भेजा ही है और ऊपर से तुम यह कह देना कि मैं लोक-परीक्षा के लिए दो दिन पहिले ही चला आया हूं।

मोहन—बहुत ठीक। और तुम इस बात का ध्यान रखना कि उस समय ऐसा कोई व्यवहार न करना जिससे मेरा तुम्हारा पूर्व परिचय प्रतीत हो।

नरोत्तम—इस विषय में निश्चिन्त रहो (मोटर की आवाज़ मार्ग में सुनाई देती है) देखो वे लोग आन पहुंचे हैं। चलो तुम्हें कोई न देखे इस भांति से किसी दूसरे रास्ते से विदा कर दूँ।

(दोनों का प्रस्थान—पुनः कुछ काल के बाद अकेले नरोत्तम का प्रवेश)

आह ! यह ठीक अवसर लगा है, एक घड़ी पूर्व यह विचार था कि आत्म हत्या कर डालूं किस प्रकार बच गया यही आश्चर्य है। परन्तु हे प्रभु परिणाम क्या होगा ? मामला गंभीर और टेढ़ा है और उत्तरदायित्व पूर्ण है। अब भी उत्तरदायित्व की कमी नहीं है। अच्छा जो होना होगा सो होगा।

(एक समाचार पत्र लेकर कौच पर बैठता है)

चलो पढ़ने का दम्भ करूं (एक पल पढ़कर) बेहतर हो मैं पढ़ता पढ़ता सोने का प्रयत्न करूं। (समाचार पत्र मुख पर फैंककर कौच पर लेट जाता है मानो पढ़ते पढ़ते नींद आगई हो)

(बाग़ में से अम्बालाल, मायावती मधुरी, पुष्पा सब आते हैं। एक नौकर हाथ में से छाता पगड़ी, छड़ी ले जाता है)

अम्बालाल—चलो यह क्रिया भी होगई।

पुष्पा—(मन्द मुस्क्यान से) धीरे पिता जी! नरोत्तम सो रहे हैं।

अम्बालाल—रसायन शास्त्रियों में भारत स्वराज्याकांक्षी वीर विरले ही हैं।

मधुरी—(व्यंग से) इन्हें और कौन सी महत्वाकांक्षा है (मञ्च के पास जा कर डाक देखती है) डाक आगई दीखती है।

पुष्पा—(दूसरी ओर साराभाई का पत्र खोजते हुए मधुरी का पत्र ढूंढकर उसे देतो है) मधुभगिनी यह आपका पत्र है।

मधुरी—(पत्र लेकर) किसी ने मुझ से पहिले खोला है। ऐसा लगता है मेरे पति की ही यह धृष्टता है। मुझे ये पत्र लिखने की और लेने की स्वतन्त्रता नहीं देते। (पत्र पढ़कर) ओ हो!

माया—क्यों क्या है मधु?

मधुरी—कविराज की तस्वीर!

सब--(मधुरी को घेर लेते हैं चित्र देखते हैं) कैसा सुन्दर है!

पुष्पा – कैसा सौम्य स्वभाव मनुष्य है!

माया—अहा कैसी भव्यता, गौरव, सौन्दर्य्य! आंख में कैसा जादू भरा है!

अम्बालाल—परन्तु हम लोगों ने गत रविवार को Cronical में फोटो देखी थी उस में और इसमें तो अन्तर जान पड़ता है।

मधुरी—(तिरस्कृत आवाज़ से) क्रोनिकल में फोटो देने वाली सामग्री पर विश्वास ही किसे है?

अम्बालाल—(अभी चित्र हो देखता है) है तो सचमुच महापुरुष।

मधुरी—मेरी धारणा के अनुकूल ही इनका अंगप्रत्यंग है। साक्षात रतिपति की प्रतिकृति है।

अम्बालाल—(नवीन चिन्ता में) तुमने यह तस्वीर मंगाई है इसे देख कर तुम्हारे पति क्या कहेंगे?

मधुरी—ओ! अपने पति की कोई परवाह नहीं। एक तो यह कि इन्होंने सब से पहिले फोटो देखी लगती है क्योंकि इनके अतिरिक्त अन्य कोई मेरा पत्र नहीं खोल सकता।

अम्बालाल—मुझे तो इस में किसी झगड़े का अंकुर भासता है।

(नरोत्तम अर्द्ध जागृत अवस्था का ज्ञान कराता है।)

पुष्पा—रहने दीजिए पिता! नरोत्तम जाग गये हैं?

नरोत्तम—(सोते से जगे हुए की सी दशा में जम्भाई लेते हुए बैठ जाते हैं) ओहो? आप सब वहां से हो आये क्या? कितने बजे हैं?

अम्बालाल—सांयकाल होने आया है।

पुष्पा—हम गये इतने में आप खूब सो लिये क्यों ठीक है न?

नरोत्तम—हां सब ठीक है। (खड़े होते हैं और प्रस्थान की तैय्यारी करते हैं)

मधुरी—(क्रूरता से) मेरा यह पत्र आपने खोला है ?

नरोत्तम—हां भूल से खोला गया। मैंने पता न देखा था, माफ़ फरमाइये यह अपराध पहिली वार है और कदाचित् अन्तिम वार ही होगा।

(नौकर हाथ में एक नाम पत्र लेकर आता है शेठ के पास धरता है)

अम्बालाल—दामा ! कौन है ?

दामा—यह गृहस्थ आप के दर्शन किया चाहते हैं भगवन् !

अम्बालाल—नाम पढ़ कर (आश्चर्य से) अरे यह क्या ?

माया--मधुरी—क्यों क्या है ?

मधुरी—क्यों क्या है।

अम्बालाल—(उन्हें नाम पत्र दिखाते हैं) डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर !

मधुरी-माया (आश्चर्य की पराकाष्ठा) अहो प्रभो ! रवि बाबू यहां !

अम्बालाल—(नौकर से) दामा ! क्या तुम जानते हो कि वे स्वयं रवि बाबू ही हैं ?

दामा—भगवन् म क्या जानू। दिखता तो कोई तेजस्वी पुरुष है पर वेश फकीर सन्यासी का सा लगता है। स्नानागार में से निकले हों ऐसा जामा धारण किये हैं।

माया—हैं तो वही।

मधुरी·—परन्तु उन्हें अन्दर तो बुलाइये, फ़ोटो से निश्चय कर लिया जावेगा।

अम्बालाल—अच्छा ऐसे ही करो। परन्तु प्रोग्राम के अनुसार उनके यहां आने का समय कल सायंकाल है, अभी २४ घंटे की देर है। और फिर हमारे यहां तो परसों भी आजायं वह भी बड़े भाग्य से।

(नरोत्तम—बातों में भाग लेता है) तब कोई वेशधारी धूर्त तो नहीं होगा ? कहदो कि सेठ घर नहीं है।

माया—(हिचकिचा कर) टैगोर से कहदें कि सेठ घर नहीं हैं !

अम्बालाल--नहीं भाई यह तो असभ्यता की अवधि होगी।

मधुरी—(झगड़े का अन्त लाती है) दामा ! तुम साहिब को भीतर ले आओ।

दामा—अच्छा बहिन जी ! (नौकर जाता है, तीनों स्त्रियां अपने वेशाभरण पर तीव्र नज़र दौड़ा कर स्वस्थ बनने का प्रयत्न करती हैं)।

नरोत्तम—(स्वगत) अरे ! मैं वैद्यराज को तो भूल ही गया वे आयेंगे तो कहां मंत्रणा करेंगे ? चल जीव ! उन्हें जाकर चेतावनी दूं। (प्रकट किंचित कठोरता से) तब यह सेवक छुट्टी चाहता है इस प्रकार की महात्मीय परिषद में मेरे जैसे मूढ़ के लिए स्थान नहीं हो सकता। (किसी के कुछ कहने से पहिले वह चला जाता है)।

अम्बालाल—देखा मधु ! तुम्हारे पति को इसी में अभी से बुरा लगा।

मधुरी—तब लगने दो।

(बाग की ओर से टैगोर वेशधारी मोहन का प्रवेश)

मोहन टैगोर }—(प्रविष्ट होकर सभ्यता से अपने

मधुरस्वर से) सज्जनों क्षमा करें यदि मेरे आगमन से आपके कार्य में कुछ विघ्न हुआ हो तो ।

अम्बालाल—(आगे बढ़कर प्रणाम करके यथा योग्य सत्कार करते हैं, तीनों स्त्रियां भी प्रणाम करती हैं) कविराज ! यह क्या कहते हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहां कि आप से अतिथि अकस्मात् ही पधारें । हमारे लिए आपके आगमन से बाधा कैसी ? उल्टा हम तो अपना अहोभाग्य समझते हैं ।

मोहन—इस समय तो मैं अक्षरशः अतिथि ही बना हूं । आपकी सुविदित सभ्यता पर बिना वायदे की हुंडी लिखी गई समझिये । मुझे आपका पत्र मिला था (ठहरता है) ।

अम्बलाल—हां जी हमें एन्ड्रयूज़ साहिब ने प्रत्युत्तर भी दिया था कि आप अहमदाबाद पधारेंगे, तब आप इस कुटिया को भी अपनी पावन रज से पुनीत करेंगे । इस लाभ की आशा थी ही परन्तु दो दिन पूर्व ही फलित हो गई, अच्छा ही हुआ ।

मोहन—(स्वगत) यह एन्ड्रयूज़ कौन है ? (प्रकट में) यह ऐसा हुआ कि कई वर्षों के बाद अहमदाबाद आने का अवसर हाथ लगा अतः पुनः बाल्य-अवस्था के परिचित स्थानों को शांति से देखने की अभिलाषा हुई ।

मायावती—(आगे बढ़कर) आज हमारे अहोभाग्य उदय हुए कविराज ! लीजिए कविराज बैठिये (कुर्सी देती है, मोहन नहीं बैठता) आप इतनी सुन्दर सुस्पष्ट भाषा बोल सकते हैं, इस का मान मुझे स्वप्न में भी न हुआ था ।

मोहन—क्यों बहिन ! यह क्यों भूलती हो कि मैं बाल्यावस्था में बहु काल पर्य्यन्त यहां रहा था । और बंगाली तथा गुजराती एक ही मां की पुत्रियां हैं दोनों सहोदरा हैं अर्थात—

माया—तब तो आप श्री ने गुर्जरगिरा को भी अमर करने का प्रयास किया होगा ?

मोहन—(स्वगत) अरे खुदा ! यह एक और आफत । टैगोर ने गुजराती में कुछ लिखा है कि नहीं? यह मेरी जाने बला । (प्रगट) अब तो परिचय नहीं है क्योंकि अन्तिम कई वर्षों में मैंने कुछ नहीं किया, हां जब यहां था तब कदाचित् किया होगा । (यहां से गुजराती बंगाली बन्द करते हैं) मिसिस अम्बालाल ?

माया—नहीं जी मिस मायावती सेठ

मोहन—ओफ़ माफ कीजिए मिस सेठ, मुझ से भूल हुई ।

अम्बालाल—(धीरे से माया से) अब मेरा परिचय दो ।

माया—यह मेरे ज्येष्ठ भ्राता अम्बालाल सेठ हैं, गांधी जी के परम भक्त हैं ।

मोहन—(नमस्कार करते हैं) मिस्टर सेठ आपके दर्शनों से कृतार्थ हुआ हूं (वे सब इसको व्यंग नहीं समझते, अभिधा ही समझते हैं) आपकी गांधी भक्ति की चर्चा मैंने आपके ही जन-समाज द्वारा सुनी थी ।

अम्बालाल—महाशय ! मुझ सा पामर प्राणी क्या भक्ति भाव रख सकता है, फिर भी मेरी स्वल्प ख्याति आप जैसे नर

रत्न के कर्णगोचर हुई, इसे मेरा छोटा मोटा महाभाग्य ही कहना चाहिए।

मधुरी-(अकस्मात् पुकारती है) ओ! (कोच के पास खड़ी थी वहीं धम्म से लुढ़क जाती है)

पुष्पा--माया--क्या हुआ बहिन!

मधुरी-(क्षण भर ठहर संज्ञा लाभ कर) कुछ नहीं, अकस्मात् छाती में दर्द उठ खड़ा हुआ था।

माया—(मोहन से) कविराज! मेरी यह भ्रातृ पुत्री आपकी अनन्य रचनाओं पर ऐसी मुग्ध हो गई है कि आज आप का आगमन सुन इतनी संतुष्ट हुई है कि अपने आनन्द का भार भी स्वयं न उठा सकी।

मोहन—(अकृत्रिम सभ्यता में ढोंग कहां से हो) अज्ञावस्था में भी यदि मिसि··· (अपना रूप याद कर) मधुरी कुमारी का दुःखदायक हुआ हूं तो मैं अपने आप को सदा के लिए हताभागी समझता हूँ।

मधुरी—नहीं कवीश्वर ऐसा न समझिये। फूफी के कथनानुसार आपकी चरण-रज की इस अभ्यासिका के हृदय में आनन्द-उर्मियां ही व्याप्त हो रही हैं (अविरल दृष्टि से उस की ओर निहारती है)

मोहन—[पुष्पा का परिचय न पाकर] मेरे भी सद्भाग्य कि,

अम्बालोल- (उसके मनोगत भाव अवगत कर) यह मेरी छोटी पुत्री पुष्पा कुमारी है। मधुरी मिसिस नरोत्तम बड़ी हैं। (मोहन पुष्पा को नमस्कार करता हैं पुष्पा भी सविनय नमस्कार करती है)

पुष्पा—महाशय! आप आसन लीजिये। [मोहन पुष्पा के पास ही कौच पर बैठता है, पुष्पा भी उसी पर चुप चाप बैठ जाती। है मधुरी मोहन की दाईं ओर कुर्सी खेंच बैठ जाती है। माया पुष्पा के बायीं ओर बैठ जाती है। अम्बालाल सामने बैठ जाते हैं]

मोहन-[पल भर स्तब्ध रहकर फिर विचार कर कि तनिक सुलझाने की जरूरत है स्तब्धता भंग करता है] अपने जल्दी आने का कारण मैंने आप से निवेदन किया कि अपने पुराने मित्र, परिचित स्थानादि देखने की लालसा हुई, यही। परन्तु मैं आपके लिए किसी प्रकार से बाधक बनना नहीं चाहता। आपको जाने देखे बिना ही आपकी सभ्यता के आधार पर यहाँ आया हूं। हम कवि लोग निसर्गतः अहंभाव से भरपूर होते हैं फिर भी मैंने इस प्रकार के स्वागत की आशा नहीं की थी।

मधुरी—[पुष्पा से धीरे से] कैसा मधुर बोलते हैं।

अम्बालाल—कविवर! जैसा कि मैंने अभी आपको कहा उसके अनुसार आप यदि इसे अपना ही घर समझें तो हम आप के अत्यन्त कृतज्ञ होंगे।

मोहन—आपकी ऐसी सभ्यता का अनादर भला मैं क्यों करूंगा? यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं कई वर्कों पर लिखी हुई अपनी बाल नोट बुक की खोज कर लूं। उसमें एक उपन्यास की वस्तु संकलना है और उस के लिए मेरी पुस्तकों के प्रकाशक बहुत

दबाव डाल रहे हैं। उसे ढूंढ कर मैं फिर होटल में जा रहूँगा।

अम्बालाल—इस घर के होते ही यदि आप होटल में जा रहे तो हमारी अधोगति का कहां ठौर ठिकाना होगा भगवन्! आप जबतक चाहें गुप्त रीति से रहियेगा हम आपका नाम भी बाहर न लेंगे।

मोहन—सेठ जी! आपका अथाह स्नेह है परन्तु ....

माया—रहिये रहिये कविराज! हमें आपके दर्शन की लालसा थी सो तो पूरी हुई परन्तु आपके मुख श्री से अमर वाक्य श्रवण करने की अभिलाषा अभी बाकी ही है सो यदि आप होटल में जा रहेंगे तो कैसे पूरी होगी भला?

मोहन—अच्छा फिर! परन्तु आप में से कभी किसी के दृष्टिगोचर एक पत्रों का बंडल हुआ है तो कहिये।

मधुरी—हां! आप कहते हैं ठीक वैसा ही एक बंडल मेरे देखने में आया है और मैंने उसे बहुत सम्भाल से रख छोड़ा है, परन्तु आपकी ही हस्त लिखित नोटबुक होगी। इसका मुझे ख्याल न था।

अम्बालाल—मेरी पुत्री ने आपकी सब वस्तु को एकत्र कर एक अमूल्य संग्रह-स्थान स्थापित कर दिया है।

मोहन—मेरी उस संग्रह में विग्रह करने की भावाना नहीं है। यदि सिसिस नरोत्तम की आज्ञा होगी तो मैं उस नोटबुक में से कुछ एक नोट्स लेकर पुनः वापिस कर दूंगा।

(उद्यान की ओर से वैद्यराज जीवराज का प्रवेश)

जीवराज—अम्बालाल सेठ! आज तो आप की महती कृपा हुई है। प्रयोग भी ठीक सिद्ध होगया। अब तो छुट्टी लूंगा। (मनमे मोहन-टैगोर को पहिली ही बार देखा हो इसी दृष्टि से देखता है) अहो! यह कौन? महाशय रविबाबू हैं क्या?

मोहन—(स्वगत) यह तीसरी बला! यह कौन है? (प्रकट में) हां जी यह सेवक वही है।

जीवराज—(मोहन के साथ हाथ मिलाता है) कविराज! मुझ सरीखे रंक की स्वल्प सेवा आपके मस्तिष्क में इतना स्थान रखती होगी ऐसी आशा किस प्रकार रखी जा सकती है?

सामान्यतः बड़े आदमियों की स्मृति शक्ति अति शुद्ध होती है। मेरे मित्र नरोत्तम ने मुझे कहा तभी से मेरा मन काम से भी उठ गया था।

मोहन—(अब समझता है) आप को बिसारूं डाक्टर साहिब यह किस प्रकार हो सकता है?

(इसी मार्ग से नरोत्तम का प्रवेश)

मायावती—(धीरे से मधुरी से) मधुरी! तुम्हारे स्वामी आ रहे हैं। देखना कुछ कच्चा न काट डालें।

मधुरी—(हताश होकर) ओह प्रभु!

मयावती—यदि कुछ टेढ़ी तिरछी करके खेल न बिगाड़े तब भी संतोष रहेगा! (मधुरी इशारे से नरोत्तम को अपने पास बुलाती है। और उसे धीरे से सिफ़ारिश के लिए कहती है। ये तीनों व्यक्ति बात करते हैं इसी बीच में जीवराज और मोहन भी आपस में समझौता कर लेते हैं)

जीवराज – मुझे नरोत्तम ने आपकी तदबीर बतलाई है ।

मोहन—समझ गया ।

जीवराज—मैं जी जान से आपकी विजय चाहता हूं । नरोत्तम की सुख सिद्धि के लिए यथेष्ट सहायता के लिए भी तत्पर हूँ ।

नरोत्तम—(सिफ़ारिश का उत्तर देते हुए की भांति) इतना भी विश्वास नहीं है ? साधारण सभ्यता भी भूल जाऊंगा ? कट्टर शत्रु भी यदि अतिथि बनकर आजाय तब भी अतिथि सत्कार में कमी न रखूंगा ।

अम्बालाल—(मोहन से) यह मेरे दामाद प्रोफेसर नरोत्तमदास यहां कि गुज़रात कालिज में रसायन शास्त्र के अध्यापक हैं ?

मोहन—नरोत्तम सेठ ! आप का परिचय पाकर अति प्रसन्न हुआ हूं । (हाथ मिलाते हैं और इशारे से समझाते हैं)

नरोत्तम— (क्रूरता से) कविराज ! आपकी बड़ी मेहरबानी है ।

मोहन—आप और मुझ दोनों में सहज ही मानव सृष्टि संविभक्त होजाती है।आप का शारीरिक विचार और मेरा आध्यात्मिक । क्यों ठीक है न ?

मधुरी— (पुष्पा के प्रति मन्द स्वर से) इस प्रकार की सुधारस सम्भावित वाणी तुम्हारे बहनोई में कब आवेगी ?

मोहन—परन्तु अब मुझे आज्ञा दीजिए ,देर हो रही है होटल बहुत दूर है ।

मधुरी-पुष्पा-अरे !

अम्बालाल—मैंने कहा तो कवीश्वर ! कि आप होटल में न जा सकेंगे ।

जीवराज—नहीं जी पहिले मेरा हक़ है । मेरा घर छोड़ कर...

मधुरी – (मन्द स्वर से नरोत्तम के प्रति) तुम ही इन्हें रहने के लिए कुछ कहो ।

नरोत्तम— (क्रोध परन्तु मन्द स्वर से) किस लिए ? अपना हृदय जलाने के लिए ?

पुष्पा—नहीं मधुरी को प्रसन्न करने के लिए ।

नरोत्तम—नहीं बाबू जी ! आप यह घर छोड़ कर न जा सकेंगे) वैद्यराज के यहां भी नहीं और होटल में भी नहीं कविराज आज तो आप को हमारा अतिथि बनना होगा ।

जीवराज—यहां त्रिया राज्य है । और कविराज स्त्रियों की अविज्ञा न करें । अतः मैं अपनी पराजय स्वीकार किये लेता हूं ।

मोहन– इतने गाढ़ स्नेह युक्त आमन्त्रण हो और फिर भी मैं अस्वीकार करूं तो मुझ सरीखा कर्म चांडाल कौन होगा !

नरोत्तम—आइये कविराज, आपको आप का वासस्थान बतलाऊं ।

मायावती—(मन्द स्वर से नरोत्तम के प्रति) वाह, यह विवेक बुद्धि नरोत्तम में कहां से आगई ?

मोहन—(जीवराज के साथ हाथ मिलाता हुआ) अच्छा तो वैद्यराज । फिर कल ही सही ।

जीवराज—नमस्कार महाशय ! (सब को नमस्कार करता है)

पुष्पा—(इशारे से नरोत्तम को ठहराती है) भोजन के लिए किस स्टाइल में बैठाना होगा । देशी या अंग्रेजी ? कहिए जिस से व्यवस्था करूं ।

अम्बालाल—देशी ही तो।

नरोत्तम—नहीं टैगोर गांधी नहीं हैं। इनके लिए अंग्रेज़ी ही अधिक उपयुक्त होगी। और हमारा तो धर्म ही है कि ऐसे पवित्र अतिथियों की इच्छानुकूल ही उनका स्वागत करें।

अम्बालाल—(सखेद) बहुत अच्छा तब ऐसे ही करो।

(नरोत्तम का प्रस्थान)

मायावती—तब तो वस्त्राभरण भी विधिवत बदलने होंगे।

मधुरी—मैं कौन सी साड़ी पहिनूं।

अम्बालाल—सब की जैसी इच्छा हो करो। मैं तो खद्दर वेश में ही रहूँगा।

मायावती—आज भी खद्दर?

(प्रथमांक समाप्त)

सेवा धर्म।

[ले०--ग्रामीण।]



यह बड़ा कठिन प्रश्न है कि सेवा धर्म--क्या है? यद्यपि अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार सभी सेवा करते हैं, पर सेवा के साथ जो धम का संबन्ध हो गया है वही विचारणीय बात है। यदि सेवा धर्म का तात्पर्य हमारी समझ में अच्छी तरह आजाय तो हमारे सामने खड़े हुए कठिनाई के पहाड़ को भी हम साधारण सी बात समझने लग। बात यह बिलकुल ठीक है, इस में अगर मगर करने की गुंजाइश नहीं है। सेवक तो सभी हैं-गवर्नमेंट के सभी आज्ञाकारी सेवक हैं अंग्रेज़ी में पत्र व्यवहार करने वाले सभी एक दूसरे के 'अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक' हैं। पर अणुमात्र भी सेवक हैं इस का पता काम करने पर लगता है। सेवक ज़बान से होने और कहने का काम नहीं है। सेवक सेवा यह तो बनने और करने की बातें हैं। इनका तो आनन्द करने ही में है और इन की सार्थकता भी स्वयं करने से ज्ञात होती है। हमारे शास्त्रों का पड़ताल कीजिए। एक एक के जीवन पर दृष्टि डालिए..कोई ऋषियों की सेवा में अपनी हड्डी दे देता है, कोई अपना राज पाट सर्वस्य बलि कर देता है। किसी को अपनी संतान देने में हिचक नहीं और कोई जंगल जंगल भटकने और दूसरों की सेवा करने में ही अपने को धन्य धन्य मानता है। पर वह अब सब बातें स्वप्न हैं। अब तो सभी सेवक हैं और सभी का धर्म सेवा है। पर ऐसा रहते हुए भी दुःखी भी हैं यही आश्चर्य है। सेवा धर्म का प्रतिपालन करने वाला दुःखी हो? यही एक आश्चर्य की बात है। लक्ष्मण जी क्या एक मिनट के लिए दुःखी हुए थे? हनुमान, अंगद, विभीषण जामवन्त को एक क्षण के लिए भी कष्ट मिला था। समुद्र लांघने में आनन्द! पहाड़ उठा लानेमें सुख! निर्भयता पूर्वक रावण को उत्तर देने में प्रसन्न! यह काम सेवकों का रहा है। दुर्बल हृदय-कपट

छल से पूर्ण-अज्ञानान्धकार से अच्छादित व्यक्ति क्या सेवा धर्म करेगा-और क्या अपना तथा देश का उद्धार करेगा? पर हां एक बात है और वही भरोसा ऐसा है कि हम आगे बढ़ने से नहीं रुकते। वह है प्रभु की भक्ति! जब जब हमारे हृदय में आत्मकार्पण्य आये हम प्रभु की शरण में—करुणार्द्रचित्त से अश्रुजल द्वारा उनका चरण धोयें और बड़े प्रेम भक्ति और श्रद्धा से प्रभु से निवेदन करें—हे नाथ!

कार्पण्य दोषोपहत स्वभावः,
पृच्छामित्वां धर्म सम्मूढ चेतः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे,
शिष्यस्तेऽहं शाधि मांत्वां प्रपन्नम्॥

भगवान्--हमारी सुनेंगे—हमें अपने भक्ति रस का पान--सेवा धर्म करायेंगे, उस समय हम सेवक बनें, और समझेंगे कि सेवा क्या वस्तु है, और सेवा धर्म कैसे किया जाता है? लोगों की प्रवृत्ति को देखते हुए यह निःसंकोच कहना पड़ता है कि ऐसे विकट समय में सेवा कहाँ! पर पृथ्वी शून्य नहीं है। सज्जन और दुर्जन हमेशा रहेंगे। हां कमी और वेशी ज़रूर होगी। भारत-माता के सुपुत्रों को जिस दिन उसके कष्ट का सच्चा ध्यान हो जायगा उसी दिन भारत में सज्जनों की संख्या अधिक हो जायगी और कोई भी बात तब कठिन न होगी।

आज तो एक समझता है कि हमारा काम है सेवा लेना, दूसरा समझता है हमारा काम है सेवा न करना। इसी भ्रम के कारण सम्पूर्ण अनर्थ हो रहा है। सेव्य-सेवक भाव तो प्रभु के साथ ही हो सकता है, संसारी जीवों में यह रिश्ता नहीं। सभी प्राणी एक दूसरे के आश्रित हैं। सभी लोगों में तरक्की, तनज्जुली, बढ़ती घटती का रोग लगा है। यही कारण है कि जो आज सेवक है, सम्भव है वही कल स्वामी बन जाय। इस बात के सिद्ध करने के लिए प्रमाण की ज़रूरत नहीं। इस लिए तुलसीदास ने कहा है:—

तुलसी यहि जग आइके सबसों मिलए धाय।
को जाने केहि रूप में नारायण मिल जाय॥

अपनी स्थिति का अहंकार और अभिमान मूर्ख लोग करते हैं।

अहंकार विमूढात्मा, मिथ्याचारः स उच्यते।

बुद्धिमान्—समझदार और योग्य जन अपने को सब का सेवक समझते हैं। इसीलिए शास्त्रकारों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब को एक दूसरे का सेवक बतलाया है। यदि एक वर्ण इस बात का अभिमान करे कि मैं ऊंचा हूँ--दूसरा कहे मैं ऊंचा हूँ तो यह बात निश्चय है कि वर्णाश्रम धर्म का लोप होजाय और संसार में वर्ण संकरता फैल जाय। पर ऐसा सम्भव नहीं। हां तो हम कह रहे थे कि परिवर्तन शीलता तो संसार में है भगवान् में नहीं। इसीलिए भगवान ही से सच्चा नाता जोड़ना ठीक है। 'ज़ौक" क्या फर्माते हैं?

कोई शै जो पहुंचे वहद्दे कमाल।
तो उसका ज़रूरी है आख़िर ज़वाल॥
यह नुक़सा लगा है हर एक सूद में।
यही फ़र्क़ है अब्दो माबूद में॥

यही कारण है कि भगवान कृष्ण ने गीता में स्थान २ पर अर्जुन को यह उपदेश दिया है कि "मामेकं शरणं व्रज" मेरे एक शरण में आओ। 'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'। इत्यादि

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जो प्राणी अभिमान अहंकार छोड़कर सेवा करता है-औरों के दुःख को अपना दुःख समझता है उसको दुःख तो कभी होता ही नहीं-किन्तु उसके संसर्ग से औरों को आनन्द मिलता

है। यही सेवा धर्म का रहस्य है। यही भक्ति का रहस्य है। भक्ति का अर्थ ही यह है कि भगवान में या भगवान के परम प्रिय मनुष्यों में अन्तर न देखे। अन्तर रखने वाला भगवान का दर्शन कब पा सकता है? आइये पाप को धोकर पुण्य कमायें और उसको परोपकार में लगायें और प्रेम पूर्वक मिलकर कहें कि—" सेवा हि परमोधर्मः "।

परिवर्तन।

(बंगाल के एकाल सेकाल के आधार पर)

ले०—श्रीकृष्ण पांडे।

(गतांक से आगे)



लगभग एक सप्ताह हुआ सदानन्द बीमार हैं। इलाज कराने में किसी बात की कमी नहीं की जाती, किन्तु रोग दिन दिन बढ़ता ही जाता है। कविराज नीलकंठ आज निराश होकर कह गये कि जहां तक हो सका मैंने चेष्टा की, किन्तु अब और आशा नहीं है। निर्मल को बुलाने के लिये चिट्ठी दी लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला, कल तार भी दिया गया है पर न तो उस का कोई उत्तर ही मिला और न वह आया। दुःखित हृदया विमला सदानन्द की चारपाई के पास बैठी हुई आखें से आंसुओं की वर्षा कर रही है, और बीच २ में सदानन्द के प्रश्नों का उत्तर भी देती जाती है। दवाई देने का समय जान कर विमला ने दवा तैयार करके कहा- "दवा पी लीजिये" सदानन्द ने बड़े ही कष्ट से सांस लेकर कहा—"अब इन दवाइयों में क्या रक्खा है। निर्मल आया?"

विमला ने आंसू पोंछते २ कहा—"नहीं" "कुछ चिन्ता मत करो बेटी! मैंने तुम को कह दिया है कि भ्रमवश वह चाहे जो करे लेकिन कालान्तर में उसे अपनी भूल मालूम हो आयगी" कह कर सदानन्द चुप हो गये।

बाहर बड़े जोर से पानी बरस रहा था, और हवा चल रही थी, कमरे की सभी खिड़कियां बन्द थीं लेकिन हवा का इतना अधिक जोर था कि घर के भीतर का दीपक रह रह कर बुझनेके लिये तैयार होता था। बाहर आंधी पानी के कारण उथल पुथल मच रही थी और भीतर बिमला के हृदय में उथल पुथल मच रही थी, हज़ार चेष्टा करने पर भी वह अपने आंसुओं को नहीं रोक सकी, उस के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला, वह पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रही। सदानन्द ने फिर कहा—"जब उसे होश होगा तब सुख की मिथ्या आशा से ढका हुआ दुःख का पहाड़ दिखाई देगा। इस समय भूल कर भी जिस बात का विचार नहीं करता है, देखेगी, तब रो रो कर भी पार नहीं पावेगा। बेटी! मुझे केवल इसी बात की चिन्ता है कि उस समय इस भयानक अवस्था से उसकी रक्षा कौन करेगा? यह कहते २ सदानन्द ने लम्बी सांस ली। पुत्रके इस अधःपतन ने उनके स्थिर चित्तको भी विकल कर दिया। उनको अपने लिये कुछ चिन्ता नहीं किन्तु निर्मल के विवेकहीन कार्य का भविष्यत् सोच कर व्याकुल हो रहे थे। उन्होने फिर करुणा भरे शब्दों

में कहा "बहू! मेरी आशा भरोसा तुम ही हो, उस को इस पापपथ से और कोई नहीं उबार सकता. यदि तुम ...."

विमला ने धीरे से कहा—"मैं"?

"हां तुम! इतने बड़े पाप से उस की रक्षा कर सके ऐसा पृथ्वी में तुम्हारे सिवा कोई नहीं है। तुम्हारे स्पर्श से लोहा भी सोना हो सकता है।"

विमला इस का कुछ उत्तर नहीं दे सकी। उसके मन की विचित्र अवस्था थी, थोड़ी देर बाद उस ने रोते २ व्याकुलता से कहा—"मैं क्या कर सकूंगी? मेरे लिये ही तो वह घर द्वार सबछोड़ गये हैं मैं पापिष्ठा हूं, मैं ही अगर कुछ कर सकती तो आज यह दशा नहीं होती"

सदानन्द ने धैर्य देते हुए कहा—"वह जिस समय अपनी भूल समझ कर रोता हुआ आवेगा, उस समय न तो मैं ही रहूँगा और न उसकी मा ही रहेगी जो आदर करके उसे गोद में बिठाले। इतनी जल्दी वह लौट कर नहीं आवेगा, उस ज्वाला से छुटकारा दिलाने के लिये स्नेह भिन्न और तो कोई उपाय नहीं है। इस लिये मेरा तुम से अनुरोध है कि तुम भूल न करना, रूठ कर उसे कुपथ में मत छोड़ना। लौट आकर फिर आघात पाने से उस का हृदय टुकड़े २ हो जायगा"।

विमला कांप गई। धारा प्रवाह की नाईं आसूं झरकर उसकी छाती को भिगोने लगे। उसने मन ही मन कहा "मेरा अब और रूठना? मैं क्या उनको छोड़ सकती हूँ? वे मेरे देवता हैं; देवता के दोष गुण के विचार करने का मुझे क्या अधिकार है? एक इसी आशा से तो मैं बची हुई हूं। आना चाहें तो आवें नहीं तो जहाँ हैं वहीं सुख से रहें, उन का कुछ भी अनिष्ट न हो।"

सदानन्द उठने की चेष्टा करने लगे, लेकिन कमज़ोरी के कारण उठ नहीं सके। फिर बिछौने पर पड़ गये। विमला ने पंखा करते २ पूंछा 'क्या ज्यादह तकलीफ़ है?"

सदानन्द ने रूंधे स्वर में कहा—"मुझे और कुछ कष्ट नहीं है, जीवन में जिस बात को कभी नहीं सोचा, आज अन्तिम काल में उसी के लिये इतना व्याकुल हो रहा हूं, अब यदि तुम विश्वास दिलाओ तो ... "

"मैं क्या आशा दिलाऊंगी। लड़की क्या बाप माँ की आज्ञा टाल सकती है? आप मुझे आशीर्वाद दीजिये जिस से मैं अपने कर्तव्य का पालन कर सकूं।"

दीपक जिस प्रकार बुझने के पहिले ज़ोर से प्रज्वलित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार उच्छ्वासित आवेग को रोक कर सदानन्द बोले—"तुम कर सकोगी, मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारे किसी काम में बाधा नहीं पड़ेगी" इतना कह कर सदानन्द चुप हो गये। म्लान शरीर को स्वस्थ करके फिर बोले—"अब मुझे किसी बात का दुःख नहीं है; तुम्हारी बातों से मेरे हृदय में शान्ति हुई। ऐसी लक्ष्मी जिस के घर में है उसे फिर किस बात की चिंता? जो मैं रख जाता हूँ देख उन के खर्च करने से जीवन में कभी भी अभाव नहीं होगा। मैं तो अब जाता हूं निर्मल नहीं है—उसकी जगह तुम हो-इसी से यह बातें कहता हूं। देखो पूर्व पुरुषों की चलाई हुई परिपाटी को बन्द मत करना, देवी देवताओं पर भक्ति करना, मैंने जो कुछ कियाहै सब उन्हीं के प्रसाद से। भूलना मत" यह कहते २ उन्होंने आंखें बन्द कर लीं। हाथ पांव भी ठंढे होने लगे, विमला ने घबरा कर करुणामयी को बुलाया। वह आते ही रोने लगी। विचारी विमला ने दाई को भेजकर कविराज जी को खबर दी। उन्होंने नाड़ी देखी

पता नहीं था, सांस भी धीरे २ चल रही थी, लक्षण अच्छे नहीं दिखाई दिये। उन्होंने एक ठंढी सांस लेकर कहा—"अब ज्यादा देर नहीं है, जो कुछ धर्म पुण्य करना हो, करवा दो" घर में हाहाकार मच गया। रोना धोना सुन के पड़ोस के और लोग भी आ गए, सदानन्द के सद्व्यवहार के कारण सभी गांव वाले उन्हें श्रद्धाभक्ति से देखते थे। दो चार बड़े बूढ़ों ने विमला और करुणामयी को शान्त करने की चेष्टा की, लेकिन सब निष्फल। एक पण्डित द्वारा भगवद्गीता सुनाई जाने लगी और तुलसी चबूतरे के पास देह को लाकर रक्खा। दो घंटे तक गीता सुनकर उस देव मूर्ति ने इस लोक की यात्रा खतम की। लोग शव को स्मशान ले जाने की तैयारी करने लगे।

नव युवक दल जरूरी सामान लाकर अर्थी आदि बना रहे हैं, कुछ लोग कुटुम्बियों को शांत करने की चेष्टा कर रहे हैं, कोई सदानन्द के स्वभाव की प्रशंसा कर रहे थे, और कोई निर्मल की बुराई। ठीक इसी समय सामने से दो व्यक्ति आकर तुलसी मंच के पास खड़े होगए, लोगों में हल्ला हो गया—निर्मल आया! निर्मल आया!

+ + +

स्मशान का कर्तव्य पूरा करके जिस समय निर्मल घर लौट कर आया उस समय आकाश स्वच्छ हो गया था। समस्त रात्रि वर्षा के बाद बादलों के हाथ से छुटकारा पाकर नील शोभा से प्रकृति मानो हंस रही थी। घर पर आकर निर्मल ने देखा कि विमला करुणामयी को शांत करने की चेष्टा कर रही है। आज सचमुच निर्मल का हृदय फटा जा रहा था, हृदय विदारक रोदन ध्वनि रह रह कर उसको अस्थिर कर देती है, इस समय निर्मल की बुद्धि कुछ काम नहीं करती थी। रणधीर साथ ही में था, उसने निर्मल की यह हालत देखकर उसका हाथ पकड़ कर दूसरी ओर ले गया और कहा—"अब इस तरह अस्थिर होने से तो काम नहीं चलेगा, इतने दिन जिस गाछ की छाया में थे वह वर्षा और आंधी के झोकों से गिर गया, अब जितना तूफान, अंधड़ आवेगा, वह तुम पर ही आवेगा। मन पक्का किये बिना तो इससे छुटकारा नहीं पा सकते।" निर्मल चुप था, वह कुछ कहना चाहता था लेकिन चेष्टा करने पर भी उसके मुंह से शब्द नहीं निकल सका। उसके लिये यह पृथ्वी नई थी, नवीनत्व के इतने बड़े दायित्व भार में वह मुहूर्तमात्र में आत्म विस्मृत हो गया।

रणधीर ने उसके साथ घर में प्रवेश करके कहा—"तुम यहीं बैठो, तब तक मैं उन लोगों के नहाने धोने का प्रबन्ध कर दूँ" यह कह कर वह चला गया।

इसी तरह देखते २ दो दिन बीत गये। करुणामयी की अवस्था देखकर निर्मल क्रमशः विचलित हो रहा था, उसको स्थिरता बिलकुल नहीं थी, खाना, पीना, सोना, बैठना, छोड़कर वह साध्वी स्वामी का अनुकरण करने को तैयार थी।

कुछ पूछने से वह अर्ध दीन दृष्टि से पुत्र को देखती रहती या कभी २ निर्मल को कलेजे से लगा कर रोने लगती। निर्मल के जीवन में ऐसा संकट काल यह पहला ही था, भरोसा था तो केवल एकमात्र रणधीर का। लेकिन दुर्भाग्य! उस दिन उसने आकर कहा—"निर्मल एक बार तो घर गए बिना काम नहीं चलने का, देखो आज फिर चिट्ठी आई है।" यह कह कर उसने चिट्ठी निर्मल को देने के लिए हाथ बढ़ाया, लेकिन निर्मल ने बीच ही में रोककर कहा—"मुझे

मालूम है, रमा की तबीयत ठीक नहीं है, लेकिन जल्दी आना । तुम्हारे आए बिना काम नहीं चलेगा ।" "अच्छा" कहकर रणधीर चला गया ।

इन दो दिनों में निर्मल की विमला से मुलाकात नहीं हुई । विमला के मन में भय था कि जितना अपराध है वह सब उसी का है इसलिए पद २ पर भयभीत होती थी । क्या मालूम क्या करते क्या हो जाय, यही सोच कर वह दूर २ रहती थी । उसने मन ही मन कहा, यदि दाई नौकर की तरह उसके जीवन के दिन व्यतीत हो जायं और मालिक अपना घर संभाल करके रहे तो वह क्यों उस सुख में बाधा देने जायगी । उसका हृदय फटा जाता है, जब कभी उसका ध्यान उस ओर जाता तो वह दूसरे कामों में अपना मन लगा लेती । सास को नहलाती, खिलाती अपने अंचल से उसके आंसू पोंछकर शांत बना देती, उसकी सेवा सुश्रूषा करती, कभी २ महाभारत वा रामायण पढ़कर सुनाती, इसी तरह अपने दुःख के दिनों को किसी तरह व्यतीत करती । लेकिन आज तो रणधीर नहीं है, अब इस तरह उदासीन रहने से तो काम नहीं चलने का । निर्मल को जब कोई खाने के लिए कहेगा तब वह खायेगा, नहीं तो भूखा ही रहेगा, दो दिन के उपवास और परिश्रम से उसकी आंखें बैठ गई, हाड़ निकल आया था, दूर से यह हालत देखकर विमला का प्राण कांप उठता था ।

हाय ! ऐसे समय में ही तो स्वामी के हृदय की कालिमा धोकर स्त्री अपना कर्तव्य पालन करती है, विपद ही में तो बन्धु की आवश्यकता है, संसार में स्त्री के बराबर मित्र और दूसरा कौन है ? कवि शिरोमणि भक्तराज गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है--

"आपतकाल परखिये चारी ।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी ॥"

लेकिन कहां है उसका वह बन्धुत्व ? कहां है उसका सुख, सुविधा का उपाय ? कहां है शांति करने की चेष्टा ?

सवेरे से मुहल्ले के लोगों के आने जाने के कारण अभी तक निर्मल नहाया तक नहीं है, क्या करना होगा यह वह बिलकुल ही नहीं जानता । वह इसी सोच में बैठा था कि इतने में ही शान्ति ने आकर कहा "भैया ! दिन चढ़ आया नहा धो लो ।"

निर्मल अभी तक चुप था लेकिन अब और चुप्पी साधना उसके लिये असम्भव हो गया, उसने कातरता से कहा—

"शान्ति उसे एक बार भेज नहीं सकती ?"

करुणामयी बगल के घर में बैठी थी, लड़के की बात सुनकर वह चीतकार करके रोने लगी । निर्मल अपने चारों तरफ अंधकार देखने लगा, जैसे पृथ्वी पर कोई अपना नहीं, मातृ-हृदय श्मशान की तरह हो रहा था, एक मात्र विमला—इतनी अशान्ति, इतने दुःख के पड़ने पर भी वह मुहूर्त भर के लिये भी नहीं आई ? निर्मल ने मन ही मन कहा "वह क्यों आवेगी ? मैंने उसे कष्ट पहुंचाने में कुछ बाकी नहीं रक्खा । वह भी तो मनुष्य है, इतने बड़े पापिष्ठ के लिये क्या वह कातर हो सकती है ? नहीं, नहीं" शब्द निर्मल के हृदय में गुञ्जार करने लगा । पिता नहीं है, माता है किंतु उसका हृदय नहीं है, बन्धु बान्धव नहीं, स्त्री है, लेकिन उसकी कोमलता, दया, माया, अनुराग सब कुछ अपने आचारण से ही खो दिया है । शांति ने फिर कहा "नहा धोलो भैया ! " निर्मल चुप रहा--निरुत्तर देखकर शांति चली गई ।

देखते देखते १२ बज गये। घूंघट निकाले धीरे २ विमला ने कमरे में प्रवेश किया। उसके पांव कांप रहे थे, मुंह सूखा जारहा था, बड़े ही कष्ट से वह किवाड़ का सहारा लेकर खड़ी हुई किन्तु कोशिश करने पर भी कुछ बोल नहीं सकी। निर्मल की हालत भी विचित्र हो रही थी, उसके मनमें रह रह कर आता था कि विमला के पावों पर गिरकर क्षमा याचना करे। वह निराश्रय है, यदि किसी प्रकार थोड़ी जगह मिल जाय तो वह आत्मरक्षा करने में समर्थ हो सकता है, किंतु वह तो स्वयं अपराधी है, लम्पट की तरह जो हृदय लेकर वह दूसरे के दरवाजे पर सुख के लिये घूमता फिरा है, वही हृदय लेकर वह विमला के पास किस तरह जा सकता है? पवित्र वस्तु को अपवित्र और कलुषित करने में जो पाप उसने किया है- इच्छा करने पर विमला उसे क्षमा कर सकती है— किन्तु यदि वह न करे तो उसका विमला पर कुछ जोर नहीं। इस तरह सोचते २, १० मिनिट बीत गये। निर्मल ने गरदन उठाकर विमला की तरफ़ देखा- उसने देखा- विमला की दोनों आंखों से आंसू बह कर उसकी छाती के आंचल को भिगो रहे हैं, वह और धैर्य न धर सका, उठकर विमला का हाथ पकड़ना ही चाहता था, लेकिन विमला को पीछे हटते देखकर कहा—"खड़ी २ क्यों रो रही हो विमल! जानती तो हो मैं पापी हूं। यद्यपि भोग मेरे नसीब में नहीं था तब भी उसके पीछे चेष्टा करने में मैंने कोई कसर नहीं रक्खी। चोरी नहीं कर सका हूँ, यह सच है किन्तु चोर की वृत्ति अवलम्बन करने में मैंने पाप किया है।"

"ऊः" करके विमला धड़ से गिर पड़ी। उसके मुंह की बात मुंह में ही रही। इससे निर्मल घबराया नहीं, इतने दुःख में भी इस आकस्मिक घटना से उसे कुछ आशा हुई वह विमला का माथा अपनी गोद में रखकर कपड़े से हवा करने लगा।

थोड़ी देर में विमला ने आँख खोली और अस्पष्ट स्वर में कहा —"मैं कहां हूं?"

"क्यों विमला?" कहते २ निर्मल चुप होगया उसके मुंह से शब्द नहीं निकला। विमला उठने की चेष्टा करने लगी लेकिन सकी नहीं इस सुख ने आज उसको कर्तव्य च्युत कर दिया। उसने धीरे २ कहा--"आः छू लिया, अभी तो छूना नहीं चाहिये।"

"नहीं छूना चाहिये?' कह निर्मल ने जल्दी से विमला का माथा गोदीसे हटा दिया और बोला--"तुम्हें छूने का अधिकार मुझे किसी जन्म में नहीं है। इस शरीर के स्पर्श से ही तुमको पाप होगा।" विमला बड़े कष्ट से उठकर बैठी और अस्फुट स्वर में बोली-- "और जो चाहे कहो, लेकिन ऐसी बात कहकर मेरे पाप को और मत बढ़ाओ। इस जन्म में मैं तुम्हें सुखी नहीं कर सकी, पर--जन्म की आशा से क्यों वंचित् करते हो, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूं ऐसा मत कहो।"

कहते २ विमला फिर बेहोश होगई।

बाहरी आदमी की तरह निर्मल ने किसी प्रकार श्राद्ध कार्य सम्पन्न कर दिया। रमा और रणधीर श्राद्ध के पहिले ही आगये थे, इससे उसको कुछ असुविधा नहीं हुई। यदि रणधीर किसी बात के लिये उससे पूछता तो वह उसका भार उसी पर छोड़ देता या कभी पूछने का अवकाश न देकर बाहर चला जाता। एक दिन रमा ने निराले में आकर कहा 'निर्मल बाबू! अब तो इधर उधर घूमने से काम नहीं चलेगा। अब जो कुछ है उसे समझ बूझ कर काम करो।" निर्मल ने एक लम्बी सांस लेकर उत्तर दिया "मैं क्या कर सकूंगा?"

"जिस काम को करना ही होगा, उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है।" निर्मल ने कुछ उत्तर नहीं दिया। रमाने फिर कहा "जहां तक लड़कपन हो सकता है उस में कुछ बाकी नहीं रक्खा, लेकिन उसकी भी कुछ सीमा है। ज़रा सोचकर देखें इस समय घरका मानापमान सब आप पर निर्भर करता है। आप यदि ......।"

निर्मल ने बीच ही में बात काट कर कहा "मुझे क्या कहती हैं, मुझमें जब मनुष्यत्व ही नहीं है तो फिर कहनेसे फायदा ?"

इतने ही में रणधीर ने आकर कहा--"यह सब मैं कुछ नहीं जानता और जानना भी नहीं चाहता—मेरे पास इन सब बातों को सोचने के लिये बिलकुल समय नहीं है। मैं तो केवल यही जानता हूं ५-१० दिन में तुम्हें सब समझा बुझा कर मैं छुट्टी पाऊंगा।" निर्मल ने एक निश्वास छोड़ कर कहा-"जब कि इस सबन्धमें मैं कुछ नहीं जानता तो मुझे सिखाने में बहुत दिन लगेंगे। इससे तो यही अच्छा है कि पिता जी के सामने से जो सब करता आया है उसे ही समझा दो, वह बहुत जल्दी समझ जायगा।"

असली बात समझने में रमा तथा रणधीर को देरी नहीं लगी। दोनों जने एक दूसरे को देख रहे थे और यही सोच रहे थे कि किस अपराध के कारण उस निर्दोष अबला पर यह क्रोध है।

इन लोगों को सोचते देखकर निर्मल ने फिर कहा "इसमें सोचने की तो कोई बात नहीं है। कारण मछली जितनी जल्दी जल को पहिचानती है उतनी जल्दी दूसरा नहीं पहिचानेगा। इसके अलावा न्यायतः जिसका जो अधिकार है वह उसको मिलना चाहिये। पुत्र पुत्र की तरह अपना कर्तव्य पालन करे तभी उसका अधिकार है, नहीं तो जिसने उसकी एवज में काम किया है-वही उस अधिकार का अधिकारी है।"

रणधीर को निर्मल की बातों से बहुत ही आश्चर्य और दुःख हो रहा था, मनुष्य इस तरह पतित होसकता है यह वह नहीं समझता था, उसे रह रह कर निर्मल की शिक्षा दीक्षा पर क्रोध आया, लेकिन करता तो क्या करता। उसका सम्बन्ध निर्मल के साथ ऐसा था कि ऐसी अवस्था में उसे निस्सहाय छोड़ कर जाना उसके लिये असम्भव था। उसने सोचा देखें चेष्टा करने से कुछ फल निकले, इसी लिये उसने हिम्मत करके निर्मल का हाथ पकड़ कर कहा "अच्छा अपना लेक्चर रहने दो, जो कुछ मैं कहता हूं वही समझ कर करो।" इतना कहकर वह निर्मल को अपने साथ लेकर चला गया।

कुसुमोद्यान

बेलगांव-कांग्रेस के अध्यक्ष

महात्मा गांधी जी का भाषण।

मित्रो,

आप लोगों ने मुझे जो सम्मान दिया है, उसकी जिम्मेवारी का मैंने बहुत आगा पीछा करने के बाद स्वीकार किया है। यह असाधारण मान इस बार श्रीमती सरोजनी नायडू को दिया जाना चाहिये था। लेकिन ईश्वर को ऐसा मंजूर न था। देश के भीतरी और बाहरी घटनाक्रम ने मेरे लिए इस बोझ को उठाना जरूरी कर दिया। मुझे विश्वास है कि जिस ऊंचे पद पर आपने मुझे बैठाया

है, उसकी जिम्मेवारियों को ठीक २ पूरा करने के प्रयत्न में आप मेरी पूरी २ मदद करेंगे।

सिंहावलोकन।

सितम्बर १९२० ई० से महासभा ने खासकर देश की भीतरी शक्ति को बढ़ाना अपना उद्देश बनाया। फलतः प्रार्थना पत्रों एवं अर्जियों के द्वारा अपने दुःख दर्द दूर करने का मार्ग यह अब छोड़ चुकी है। इस का कारण यह था कि महासभा का यह विश्वास बिलकुल उड़ गया था कि वर्तमान शासन प्रणाली किसी भी दरजे तक लाभदायक है। इस लिए ऐसी शासन प्रणाली को सुधारने या मिटाने के उद्देश से यह तय किया गया कि जिस हद तक लोग अपनी इच्छा से सहयोग कर रहे हैं, उसको हटाने की कोशिश की जाय। यद्यपि शांतिमय असहयोग हमें स्वराज्य नहीं दिला सका, तो भी मेरी तुच्छ सम्मति में शांतिमय असहयोग ने अब राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के एक साधन के तौर पर जड़ पकड़ ली है और उस पर अधूरे तौर पर पालन होते हुए भी वह हमें स्वराज्य के निकट ले आया है। और यह बात सूर्य-प्रकाश की तरह प्रकट है कि किसी ध्येय के लिए कष्ट सहन की क्षमता पैदा करने से उसका मिलना अवश्य आसान होता है।

कदम थामने की ज़रूरत।

लेकिन आज हमारे सामने एक ऐसी हालत खड़ी हो गई है जो हमें मजबूर करती है कि हम कदम थामें। क्योंकि यद्यपि अब भी कई ऐसे लोग हैं जिन का विश्वास व्यक्तिशः असहयोग पर अटल है, फिर भी उन लोगों की बड़ी संख्या का, जिनका कि इस आन्दोलन से संबंध है, सिवाय विदेशी कपड़े के बहिष्कार के, इस आन्दोलन पर से विश्वास हट गया है। इस हालत में सब बहिष्कारों का पालन एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में नहीं किया जा सकता, जब तक कि महासभा उन लोगों के बिना अपना काम न चला सके, जिनका कि सम्बन्ध उससे है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि आज उन लोगों को महासभा के बाहर रखना उतना ही असह्य बहार्य है, जितना कि असहयोगियों को। यह जरूरी है कि दोनों दल, बिना एक दूसरे के काम में दखल दिए और एक दूसरे के विरुद्ध टीका टिप्पणी किये, महासभा के अंदर रहें। मैं समझता हूँ कि अब आप समझ गये होंगे कि क्यों मैंने स्वराजियों के साथ समझौता किया।

विदेशी कपड़े का बहिष्कार।

आप लोगों ने देखा होगा कि विदेशी कपड़े का बहिष्कार कायम रक्खा गया है। बहिष्कार अंग्रेजी कपड़े का नहीं, बल्कि विदेशी कपड़े का है। इस भाव में बहिष्कार केवल अधिकार ही नहीं वरन कर्तव्य भी है। लेकिन जो बात मैं आपसे कहना चाहता था वह तो यह है कि मेरे और स्वराजियों के समझौते ने विदेशी कपड़े के बहिष्कार को सिर्फ कायम ही नहीं रक्खा उस पर और भी जोर डाला है। मेरे नजदीक तो यह तमाम हिंसात्मक तरीकोंके स्थान पर एक कारगर हथियार है। हमारे देश में अधिकांश विदेशी कपड़ा लंकाशायर से ही आता है और आता भी है अन्य सब चीजों से ज्यादा परिणाम में। ब्रिटेन का सब से बड़ा स्वार्थ भारत के साथ होने वाली लंकाशायर के कपड़े की तिजारत परही केन्द्रित है। सिर्फ यही एक चीज है जो कि बाकी सब चीजों से ज्यादा हिन्दुस्थान के किसानों की तबाही का कारण हुई है, और जिसने उनको अपने सहायक धंधे से

दक्षित करके उनके सिर बेकारी मढ़दी है। इसलिए अगर हिन्दुस्थान के कृषि-जीवियों को जिन्दा रखना है तो विदेशी कपड़े का बहिष्कार एक आवश्यक बात है। और इस के लिए जो योजना निकाली गई है, वह यह है कि किसानों को इस बात पर आमादा किया जाय कि वे न केवल कम-दाम और रंग बिरंगे चमकदार विदेशी कपड़ों से मुंह मोड़े, बल्कि उन्हें यह भी सिखाया जाय कि अपने फुरसत के समय का उपयोग धुनकने कातने और गांव के जुलाहों से बुनवाने में लगावें ऐसी ही बुनी खादी को पहनें और इस तरह विदेशी तथा मिल के बने कपड़े की खरीदी में लगने वाला रुपया बचावें। इस तरह हाथ-कताई और बुनाई यानी खादी के द्वारा किया गया विदेशी कपड़े का बहिष्कार न सिर्फ किसान के रुपये की बचत ही करता है, बल्कि कार्यकर्ताओं को प्रथम दरजे की समाज सेवा करने का मौका देता है। यह देहात के लोगों के साथ हमारा सीधा संबंध जोड़ता है। इस के द्वारा हम उन्हें सच्ची राजनैतिक शिक्षा दे सकते हैं और उन्हें अपने पांव पर खड़े होने का और अपनी आवश्यकताएं स्वयं पूरी करने का सबक सिखा सकते हैं। इस प्रकार खादी का संगठन सहयोग-समितियों से अथवा दूसरे किसी तरह के प्रशस्त--संगठन से कितने ही दरजे श्रेष्ठ हैं। इसके अन्दर भारी से भारी राजनैतिक परिणाम छिपे हुए हैं; क्योंकि ऐसा करके हम ब्रिटिन के रास्ते सब से बड़ा अनीतिमूलक प्रलोभन दूर करते हैं। लंकाशायर के कपड़े के व्यापार को मैं इस लिये अनीतिमूलक कहता हूँ कि उसकी नींव हिंदुस्थान के करोड़ों खेतिहरों (किसानों के) नाश पर कायम की गई है और अब भी वह उसी के बल पर जिंदा है।

विदेशी बनाम अंग्रेज़ी

अब यहां इस बात की शायद ही जरूरत हो कि अंग्रेज़ी कपड़े के या जैसे कि कुछ देश-सेवक कहते हैं, अंग्रेज़ी माल के बहिष्कारकी हिंसामय प्रवृत्ति का ही नहीं किंतु उसके निकम्मेपन का भी स्पष्टीकरण किया जाय। मैं तो बहिष्कार की बात सिर्फ हिंदुस्थान के हित को ही ध्यान में रखकर कह रहा हूँ।

आक्षेपों पर विचार

कुछ लोगों का कहना है कि चरखे के कार्यक्रम ने लोगों के दिलों में घर नहीं किया, उस में जोश पैदा करने की ताक़त नहीं है आदि। किन्तु इसके जवाब में मेरा कहना यह है कि अभी तक हमने चरखे की पूरी अजमायश नहीं की है।

मैं यह भी आप से कहना चाहता हूँ कि यन्त्र-कला (मेशनिरी) के बारे में मेरे जो विचार बताये जाते हैं, उनको आप अपने दिमाग़ से निकाल डालें। पहली बात तो यह है कि आज मैं यन्त्र-सामग्री विषयक अपने तमाम विचार देश के सामने पेश करने की कोशिश नहीं कर रहा हूं, जिस तरह कि अपने अहिंसा संबन्धी संपूर्ण विश्वासों को भी नहीं पेश कर रहा हूँ। फिर चरखा खुद भी तो यन्त्र-कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। मेरा सिर सदैव उसके अज्ञात अविष्कर्त्ता के प्रति आदर से झुक जाता है। मुझे सन्ताप तो इस बात पर होता है कि भारत का यह एकमात्र घरेलू धन्धा अकारण ही नष्ट कर दिया गया, जो कि १६०० मील लम्बे और १५०० मील चौड़े देश के तख्ते पर फैले हुए हज़ारों घरों को भूख की बला से रक्षा करता था।

लाहौर में

अब आप इस बात पर ताज्जुब न करेंगे कि मैं क्यों चरखे के पीछे पागल होगया हूं और न इसी बात पर हैरान होंगे कि मैंने इसे मताधिकार की शर्त में शामिल क्यों किया और क्यों स्वराज्य-दल की तरफ़ से देशबन्धु दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इसे मंजूर किया। अगर आज मेरा बस चले तो मैं एक भी शख्स का नाम बतौर सभासद महासभा के रजिस्टर में दर्ज न होने दूँ जो चरखा कातने पर रजामन्द न हो या जो हर मौके पर खादी का लिबास न पहने। फिर भी मैं स्वराज्य--दल का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस दरजे तक भी इस बात को कबूल किया। बातों का ढीला कर दिया जाना हमारी कमज़ोरी या विश्वास के आभाव के खातिर एक रिआयत ही है। लेकिन इस रिआयत को उन लोगों के लिए जिनका कि पूरा विश्वास चरखे और खादी में है-अपनी कोशिश को और तेज़ करने का प्रेरक कारण होना चाहिए।

हिन्दू-मुस्लिम एकता।

हिन्दू-मुस्लिम एकता चरखे से कम महत्व नहीं रखती है। इसे तो हमारा जीवन-प्राण ही समझिये। मौलाना शौकतअली की तरह मैं भी दृढ़ आशावादी हूं कि वर्तमान वैमनस्य कुछ रोज की दिमागी बीमारी हैं। स्वार्थी लोग झगड़ा पैदा करने के लिए धार्मिक अन्धता से लाभ उठाने के अतिरिक्त आर्थिक और राजनैतिक कारणों का भी दुरुपयोग करने लगे हैं। कोहाट में तो ये हरकतें चरमसीमा तक पहुंच गईं थीं। स्थानीय अधिकारियों की निष्ठुर लापरवाही ने उस दुर्घटना को और भी दुःखदायी बना दिया। कोहाट के मुसलमानों को तब तक चैन न लेना चाहिये जब तक कि एक एक निराश्रित हिन्दू को कोहाट में वापिस न ला सकें। यदि हिन्दू और मुसलमान स्वराज्य चाहते हों तो उन्हें आपस में मिल जुल कर अपने भेद भाव को मिटाने पर मजबूर होना ही पड़ेगा।

अस्पृश्यता।

एक और रुकावट जो कि स्वराज्य के रास्ते में खड़ी है, अस्पृश्यता है। हमारे धर्माचार्य कहते हैं कि अस्पृश्यता तो ईश्वर निर्मित है। मेरा दावा है कि मैं भी हिंदू-धर्म का कुछ ज्ञान रखता हूँ। मैं निश्चय के साथ कहता हूँ कि धर्माचार्य इस बात में लगती पर हैं। महासभा के हिन्दू-सदस्यों का यह काम है कि वे जितनी जल्दी हो सके इन अस्पृश्यता की दीवारों को ढहा दें। वाइकोम के सत्याग्रही हमें इसका रास्ता दिखा रहे हैं।

स्वराज्य की रूप-रेखा।

किन्तु चरखा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और छुआछूत का निवारण हमारी ध्येय-प्राप्ति के भिन्न २ साधन हैं। मेरे जीवन-सिद्धान्त में तो साध्य और साधन में कोई अंतर नहीं है। किन्तु सर्व साधारण को स्वराज्य की पूरी व्याख्या जाननी चाहिए। सर्व-दल परिषद की कमिटी के सुपुर्द यह काम भी कर दिया है और हमें आशा करनी चाहिए कि कमिटी ऐसी योजना तैयार कर सकेगी जो कि सब दलों को स्वीकृत हो। अपनी ओर से मैं निम्न लिखित कुछ बातें आपके विचार के लिए पेश करता हूं—

१. मताधिकार की पात्रता न तो संपत्ति हो, और न पद हो, बल्कि शारीरिक श्रम (मजदूरी) हो जैसा कि सूत कताई जिसे मैंने महासभा के मताधिकार के लिए झुकाया है।

२. मौजूदा घातक फौजी खर्च उस हद तक कम करना चाहिए जिस हद तक कि वह देश की मामूली हालत में जानो माल की हिफाजत के लिए जरूरी हो।

३. न्याय के साधन सस्ते होने चाहिए और इस बात को मद्देनजर रख कर अपील की आखिरी अदालत लंदन में नहीं बल्कि देहली में होनी चाहिए। दीवानी मामलात में ज़्यादातर भिन्न २ मतवालों को अपना मामला पंचायत में ले जाने पर मजबूर करना चाहिए।

४. शराब और नशीली चीजों की आमदनी उठा दी जाय।

५. मुल्की और फौजी जगहों की तनख्वाहें इतनी कम होनी चाहिए जिससे वे देश की सामान्य स्थिति के अनुकूल हो जायं।

६. भाषाओं के लिहाज से प्रांतों की पुनर्रचना (हदबन्दी) की जायं और हर प्रांत को अपने भीतरी शासन और तरक्की के लिए जहां तक मुमकिन हो पूरी स्वाधीनता दी जाय।

७. एक कमीशन बैठाया जाय जो कि विदेशी लोगों को दिए गए ठेकों की जांच पड़ताल करे और उसकी सिफारिश पर उन लोगों के तमाम न्याय पूर्वक प्राप्त हकों को सुरक्षित रखने की पूरी गारंटी दी जाय।

८. देशी राज्यों को गारंटी मिलनी चाहिए कि उनका दर्जा बदस्तूर कायम रहेगा और मध्यवर्ती सरकार की तरफ से किसी किस्म की रोक टोक न होगी। अगर देशी रियासत की कोई रियाया, जिसने वहां की फ़ौजदारी कानून के खिलाफ़ कोई काम न किया हो, सरकारी इलाके में पनाह लेना चाहे, तो उसके हकों की हिफाजत करना सरकार का हक़ होगा।

९ हर तरह के मनमाने अख्तयार एक बारगी मन्सूख किए जाएं।

१०. ऊंचे से ऊंचा पद ऐसे हर शख्स के लिए खुला होना चाहिए जोकि उसके काबिल हो। मुल्की और फ़ौजी ओहदों के लिए परीक्षा हिंदुस्थान में होनी चाहिए।

११. हर एक पन्थ के लोगों की पूरी मजहबी आजादी का हक़ पारस्परिक सहिष्णुता के न्याय को मद्देनजर रखते हुए स्वीकार किया जाय।

१२. हर प्रांत की आदालतों व धारा-सभाओं का काम काज अपनी प्रांतीय भाषा में हो। अपील की आख़िरी अदालत, मध्यवर्ती सरकार और बड़ी धारा-सभाओं की भाषा हिन्दुस्तानी हो—लिपि चाहे देवनागरी हो या फ़ारसी! अन्तर्राष्ट्रीय राज्यव्यवहार की भाषा अंग्रेज़ी रहे।

पूर्णस्वतन्त्रता

महासभा के अन्दर एक ऐसा दल भी है जो चाहता है कि हर हालत में हम ब्रिटेन से पूर्ण स्वाधीन हो जांय। वे बतौर एक बराबरी के हिस्सेदार के भी उसके साथ नहीं रहना चाहते। किंतु मेरे विचार में अंग्रेज़ी सरकार जो कुछ कहती है वह यदि ईमानदारी के साथ कहती है और हमें सचाई के साथ पूरी समानता प्राप्त करने में मदद करे तो ब्रिटेन से बिलकुल संबन्ध-विच्छेद करने की अपेक्षा साम्राज्य के भीतर सम्मान-पूर्ण व्यवहार और बराबरी के नाते पर रहने में हमारी ज्यादा विजय होगी। इसलिए मैं तो अपनी तरफ़ से साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य के लिए ही कोशिश करूंगा। लेकिन हां यदि स्वयं ब्रिटेन के अपराध से संबन्ध तोड़ लेना आवश्यक हो जाय तो मैं ऐसा करने में जरा

भी आगा पीछा न करूंगा । इस तरह मैं संबन्ध विच्छेद का भार अंग्रेज़ों पर ही छोड़ दूंगा।

बेकार असहयोगी

इसके बाद महात्मा जी ने राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ने वाले असहयोगी विद्यार्थियों के अपूर्व स्वार्थ त्याग तथा कार्य की प्रशंसा कर राष्ट्रीय विद्यालयों की रक्षा की आवश्यकता बतलाते हुए बेकार असहयोगियों के सम्बन्ध में कहा-"मैं जानता हूं कि बहुत से असहयोगी ऐसे हैं जिन्हें अपनी गुजर करना मुश्किल होरहा है। वे हर तरह से राष्ट्रीय सहायता पाने की योग्य हैं। राष्ट्रीय विद्यालयों तथा खादी मण्डलों में उनके लिए कुछ व्यवस्था होनी चाहिए!"

बंगाल का दमन।

अफीम शराब आदि नशीले पदार्थों के प्रचार बढ़ जाने पर खेद प्रकट करते हुए महात्मा जी ने स्वराजियों से आशा प्रकट की कि वे कौंसिलों द्वारा इनके प्रचार को रोक देंगे। इसके बाद बंगाल के दमन पर चर्चा करते हुए उन्हों ने कहा—'यह मेरा निश्चित मत है कि बंगाल में दमन का जो तूफान उठाया गया है, वह स्वराज्य दलके विरुद्ध ही है। पर उस से हमें न तो झुंझला उठना चाहिए, न धीरज ही छोड़ बैठना चाहिए। एक सच्चे आदमी और राष्ट्र के लिए दमन वही काम करता है, जो आग सोने के लिए। १९२१ के दमन का जवाब हमने कानून भंग से दिया था और सरकार से कहा था कि जो तुम से हो सके सो कर लो। पर आज हमें इस अपमान को सिर नीचा कर सहन करना पड़ता है । क्योंकि इस समय हम सविनय भंग के लिए तैयार नहीं है। हमें उसकी तैयारी करना चाहिए।"

हिंसावादियों से

किन्तु मैं उन लोगों से जो हिंसा-पथ के पथिक हैं कहता हूँ आप भारतवर्ष की प्रकृति को पीछे हटा रहे हैं। यदि आप के हृदयों में देश के करोड़ों नंगे भूखे लोगों पर कुछ दया आती हो तो जान रखिए अपने हिंसात्मक साधनों से आप उनकी कुछ भी सेवा न कर सकेंगे ।

मेरी श्रद्धा

अब मैं अपनी श्रद्धा आप पर प्रकट कर दूं! एक महासभावादी की हैसियत से मैं महासभा के काम को ठीक २ चलाने के लिए असहयोग को मुल्तवी रखने की सलाह देता हूँ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि देश इसके लिए तैयार नहीं है। लेकिन एक व्यक्ति की हैसियत से मैं तबतक ऐसा नहीं कर सकता न करूंगा जबतक कि यह सरकार जैसी की तैसी बनी रहेगी। यह बात मेरे नज़दीक महज एक कार्यनीति (पालिसी) नहीं है, बल्कि अटल सिद्धान्त है। असहयोग और सविनय भंग एक ही सत्याग्रह की जुदी २ दो शाखें हैं। यह मेरा कल्पवृक्ष है। दक्षिण आफ्रिका, खेडा, चम्पारन तथा और कितनी ही जगह इस सत्याग्रह ने अपना काम बराबर बजाया। मैं मरते दम तक उस नापाक कोशिश का मुकाबिला किए बिना हरगिज न रहूँगा, जोकि हिन्दुस्थान के सिर पर अंग्रेज़ी तौरातरीक (विधियां) लादने के लिए की जा रही है । लेकिन मैं अहिंसा के हथियारों से मौजूदा अंग्रेज हाकिमों का मुक़ाबिला कर सकता हूँ।

अगर मेरा बनाया हुआ कार्यक्रम न चला तो शांतिमय असहयोग किसी न किसी शकल में,चाहे महासभा के द्वारा चाहे उससे अलग,फिर जारी किया जायगा। मैंने बार २

कहा है कि सत्याग्रह कभी खाली नहीं जाता और इस सचाई के प्रतिपालन के लिए सिर्फ एक ही पूरा सत्याग्रह काफी है। इस लिए आइए, हम सब मिलकर सच्चे सत्याग्रही बनने का यत्न करें। इस यत्न, के लिए ऐसे किसी भी गुण या योग्यता की जरूरत नहीं जो हम अदना से अदना भी हासिल न कर सकें। सत्याग्रह हमारे अन्तस्थ (भीतरी) आत्म तेज़ का एक धर्म है वह हम सबके अन्दर छुपा हुआ है! स्वराज्य की तरह ही वह जन्म सिद्ध अधिकार (हक़) है। आइये, हम उसको पहिचाने। (वन्देमातरम्)

एक बालविधवा का प्रशंसनीय पत्र।

इस मास की गृहलक्ष्मी में एक बहिन का पत्र छपा है जिस का भाव इतना प्रशंसनीय है कि हम उसे ज्योति के पाठकों की भेंट करते हैं:—

"मैं सिर्फ इतना ही जानती हूँ कि मैं विधवा हूँ। कब से हूं, इस की खबर नहीं जब तक लड़कपन था खेलने खाने में लगी रही। अब मेरी समझ में नहीं आता कि मैं कौन हूं और मुझे क्या करना चाहिये। मेरे पिता कट्टर सनातन-धर्मी पंडित हैं और मुझे भी ऐसे पिता की पुत्री होने का अभिमान है। जब मैं विधवा-विवाह की चर्चा सुनती हूं तो मुझे बहुत कष्ट होता है। मैं इस बात से इन्कार नहीं कर सकती कि जवानी की उमंगे मेरे भी दिल में कभी-कभी लहरा उठती हैं, मगर मैं अपने मन को दबाती हूं। जब मैं कोई प्रेम की कहानी पढ़ लेती हूं तो मेरा मन मेरे वश में नहीं रहता। वह कह उठता है:—

सैर कर दुनियाँ की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ?
जिन्दगानी गर रही तो नौ जवानी फिर कहाँ?

किन्तु ईश्वर का भय, लोक की लाज दोनों मुझे सावधान करते हैं। मैं इस का अर्थ निकालती हूं – दुनिया में जो सर्व श्रेष्ठ और पवित्र काम है। उसके लिये जवानी. ही की उमर अच्छी है आगे ईश्वर मालिक है।

मैं ऊपर ही कह चुकी हूं कि मेरा मन हमेशा साफ नहीं रहता। कभी कभी बड़े ही गंदे विचार उठते हैं। मगर देश की गरीबी और गुलामी देख कर मेरी समझ में गन्दे बिचारों का दबाना ही ठीक है। क्षणिक सुख के लिये आदर्श बिगाड़ लेना बुद्धिमानी नहीं है।

मैं यह चिट्ठी लिख कर सधवा और विधवा दोनों प्रकार की बहिनों से प्रार्थना करती हूं कि यह सुख भोग का समय नहीं है; यह तपस्या का समय है! यह बलिदान को बेला हैं! मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि यदि हमारे देश की समस्त स्त्रियां आमोद प्रमोद छोड़ कर विधवा का वेश बना कर एक सफ़ेद (खद्दरकी) धोती पहिन कर, देशकी स्वतन्त्रता के युद्ध में शामिल हो जायं तो बूढ़ गांधी बाबा में वही शक्ति आजाय जो राम और कृष्ण में थी।

जो लोग विधवा-विवाह, विधवा-विवाह चिल्लाते हैं,वे उन आदमियों में से हैं जो कष्ट नहीं सहन कर सकते और जिन के दिलों में देश की बिलकुल इज़्ज़त नहीं है। आज कल का तो वह ज़माना है जब कुमारिओं का भी विवाह बन्द कर देना चाहिए। मैं बहुत पढ़ी नहीं हूँ इसी लिये जो मेरे दिल में है वह ठीक-ठीक नहीं लिखा जा रहा है। यदि कोई बुरा न माने तो मैं यही कहूंगी कि

जो देश गुलामी की जंजीर से जकड़ा है उसमें स्त्री के सौभाग्यवती कहलाने का अभिमान दम्भ और ढोंग है।

यदि मैं विधवा न होती तो शायद देश के दुःख का अनुभव न कर पाती मीरा बाई का कथन—

घायल की गति घायल जानै।

ठीक ही है। ईश्वर ने मुझे विधवा कर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है और मेरी समझ में सभी विधवा बहिनों को ईश्वर को धन्यवाद देने और देश की सेवा करने का अच्छा अवसर है इति

आपकी—नन्दरानी देवी, झांसी।"

वैज्ञानिक संसार

१. रंगों द्वारा रोग कीटाणुओं का नाश

गत महायुद्ध के दिनों में रंगों को रोगों के कीटाणु नाश करने के काम में लाया गया था। अब इस ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। रंग बनाने के एक बड़े भारी अंग्रेज़ी कारखाने ने इस विषय के अनुसंधान के लिये एक विशेष विभाग खोल दिया है। इस अनुसंधान से पता लगा है कि कुछ रंग इस प्रकार के हैं कि बहुत थोड़ी मात्रा में भी उनको पानी में घोल कर काम में लाने से कई प्रकार के रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिये एक ऐसे रंग का पता लगा है जो कि ५००० भाग पानी में घोलने पर भी एनथ्रेक्स (Anthrax) के कीटाणुओं को मार डालता है। दूसरा डिपथीरिया (Diptheria) के और तीसरा मियादी बुखार (Typhoid) के। गत वैद्यक प्रदर्शिनी में जो कि लन्डन में हुई थी इस अनुसंधान का एक क्रियात्मक उदादरण—जिसने कि डाक्टरों के विचार को इस ओर बड़ा खींचा—गलारेमीन नामक रंग के रूप में दिखलाया गया। यह रंग रोग कीटाणुओं के नाश में बड़ा उपयोगी है, नाक और कान के चीड़ फाड़ संबन्धी आप्रेशन में बड़ा काम आता है, और विशेष कर दाद के इलाज में बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है।

२. पृथिवी साबुन बनाती है।

हमारी पृथिवी स्वयं एक रस-क्रिया-भवन है जिस में शनैः होने वाली रसायनिक क्रियाओं द्वारा के मनुष्य जाति के लिए उपयोगी नाना प्रकार के द्रव्य तैयार किए जाते हैं।

पृथिवी के बहुत से कच्चे पदार्थ काम में आने योग्य बनने से पहिले कई प्रकार के तरीकों द्वारा शोधे जाते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनका हम सीधा प्रयोग कर सक्ते हैं। इसके दो सर्व परिचित उदाहरण कोयला और नमक हैं जो कि इसी रूप में कानों से निकाले जाते हैं।

बना बनाया तैयार साबुन भी कितने ही भिन्न २ स्थानों पर पाया जाता है। एक तो यह बृटिश कोलम्बिया के पेशकाफ

स्थान पर मिलता है, दूसरे नेवाड़ा में और तीसरे कैलिफोरनिया की ओवन्स झील पर। इस पिछले स्थान का साबुन कई वर्षों से काम मे लाया जा रहा है।

न्यूज़ीलैन्ड में गन्धक के तेज़ाब की झील के रूप में एक आश्चर्य है। यह "गंधक टापू" पर स्थित है, इसका वर्ग ५० मील और गहराई १२ फुट है। इस का जल बहुत गरम है और उसमे नमक और गंधक के तेज़ाब की बड़ी भारी मात्रा घुली हुई है। इस तेज़ाब का धुआं घने बादलों के रूप में सदा ऊपर को उठता रहता है।

३. नमक से ईंधन।

आजकल मशीनों का युग है। इन मशीनों को चलाने के लिये ईंधन की आवश्यका है। आजकल कोयले और मिट्टी के तेल को काम में लाया जाता है। परन्तु वैज्ञानिकों को बड़ी देर से यह शंका हो रही है कि जिस मात्रा में कोयले का व्यय हो रहा है उस से शीघ्र ही हम संसार का सब कोयला समाप्त कर लेंगे। यही अनुमान तेल के विषय में है। इस के पश्चात् क्या होगा यह एक चिन्तनीय विषय है। इस आने वाली आपत्ति से बचने के लिये नानाप्रकार के उपाय सोचे जाते हैं। लन्डन के प्रोफेसर डानन का कहना है कि भविष्य में ईंधन का काम नमक—साधारण खाने वाले नमक-से लिया जायगा। किंचित् हमारे पाठक यह सुन कर चौंक पड़ेंगे। नमक और ईंधन ? यह बहुतों को पता होगा कि नमक क्लोरीन और सोडियम दो तत्वों के मेल से बना है जिन में से क्लोरीन एक गैस है। बस इसी गैस को ईंधन के काम में लाया जा सक्ता है। जहां नमक की कानों के पास जल विद्यमान हो जिस को कि शक्ति उत्पन्न करने के काम में लाया जा सकता है वहां इस जल की शक्ति को बिजली के रूप में परिणत करके नमक में से विश्लेषण द्वारा क्लोरीन निकालने के काम में लाया जा सकता है और फिर जल की तरह ही बड़े २ नलकों द्वारा यह गैस बड़े २ कारखानों वाले नगरों में पहुंचाई जा सकती है। श्री अलक्षेन्डर महाशय की सम्मति में जल को स्वयं ओशजन और अमलजन तत्वों में विश्लेषण करके इन दोनों गैसों को गरम करने और ईंधन की तरह जलाने के काम में लाया जा सकता है। इन अनुसन्धानों में विचारणीय विषय यही है कि इतनी दूर से नल के द्वारा गैस का लाना मंहगा तो न पड़ेगा Coal Age की सम्मति में यह अवश्य मंहगा होगा। बिजली ही एक 'वस्तु' है जो कि सस्ते से सस्ते रूप में एक स्थान से दूसरे में लाई जा सकी है।

४. कारबानिक ऐसिड गैस का पौदों और वृक्षों पर लाभदायक प्रभाव।

आजकल हमारे बहुत से कल और कारखानों में पत्थर का कोयला जिस को कानों से खोद कर निकाला जाता है ईन्धन का काम देता है। हम यदि अपनी पृथिवी को कहीं से भी खोदें तो एक स्थान ऐसा आता है कि जहां कोयले के पर्त पर पर्त निकलने आरम्भ हो जाते हैं और यह बड़ी गहराई तक इसी तरह चलता रहता है। भूगर्भविशारदों का मत है कि पृथ्वी के पुराने इतिहास में एक समय था जब कि वह अभी मनुष्य के रहने योग्य नहीं हुई थी, और जिसमें कि बनस्पति की इतनी प्रधानता थी कि अब तक वैसी मनुष्य ने अपने होश में संसार के किसी भाग में नहीं

देखी। यही सब बूटे और बृक्ष शनैः २ गिरते गये और अपने अथवा पीछेसे मिट्टीइत्यादिके बोझ से दबते गये। अन्त को इन्हीं को भूगर्भ के ताप ने अन्दर ही अन्दर जलाकर कोयला कर दिया। इसकी हमारे घरों में लकड़ियों से बने कोयले से भिन्नता है। यह अधिक भारी, पक्का और अधिक ताप देने वाला होता है, इसका कारण यह है कि हमारे चूल्हों में लकड़ी से जो कोयला बनता है उसमें से कई प्रकार की गैस जो कि ईंधन के विचार से बड़ी उपयोगी होती हैं निकल जाती हैं परन्तु भूगर्भ के भीतर बने कोयले के ऊपर इतना मिट्टी का भार होता है कि वह गैस को निकलने नहीं देता अतः यह सब कोयले के बीच में ही रहती है।

जिस समय हमारी पृथ्वी निरी पूरी शस्य श्यामला और उद्यानमयी थी वह देर की बात है। उस प्राचीन काल में वायुमण्डल में एक बड़ी गहरी धुन्ध छाई हुई थी जोकि सूर्य्य के ताप और प्रकाश को पृथ्वी तक नहीं पहुंचने देती थी। उस समय सूर्य्य एक सुर्ख तपे हुये गोले की तरह ही आकाश में स्थित था। फिर धुन्ध कुछ कम हुई परन्तु सूर्य की सुनहरी किरणें अभी भी पृथ्वी पर नहीं पहुंच सकती थीं। आहिस्ता आहिस्ता यह सब धुन्ध दूर होगई और सूर्य्य देवता अब पूरे तेज और बलसे पृथ्वीको प्रकाशमयी करने लगे। सूर्य्य की किरणें बड़े उत्साह से पृथ्वी पर के छोटे २ पौदों के हरे २ कोशों (Cells) पर काम करने लगीं और उस कार्बन डायकसाईड को जो कि उस समय वायुमण्डल में फैली हुई थी और आज हमारे कानोंके कोयलों में बन्द है—बनस्पति, पेड़ और पौदों को देने लगीं।

हरे पौदे दिन के समय कार्बन डायकसाईड ग्रहण करते हैं, और ओषजन निकालते हैं रात को इसके बिलकुल विपरीत करते हैं अथवा सांस द्वारा ओषजन ग्रहण करते हैं और कार्बन डायकसाईड बाहर निकालते हैं। यही कारण है कि हमारे बड़े बुड्ढे छोटे बच्चों को सायंकाल और रात्रि के समय पेड़ों के नीचे ले जाने का निषेध करते हैं क्योंकि वायु में एक विशेष मात्रा से अधिक होजाने पर कार्बन डायकसाईड हानिकारक है। पौदों के लिये दोनों प्रकार से सांस लेना आवश्यक है।

पौदों को अपने बढ़ने के लिए ताप और भोजन दो वस्तुओं की आवश्यकता है। भोजन के लिये यह जल (और उसमें बहुत थोड़ी मात्रा में घुले हुये कुछ अन्य पदार्थ) और हवा में से कार्बन डायकसाईड लेता है। यह पदार्थ उसके लिये बिना पकी भोजन सामग्री का ही काम देते हैं। इन से फिर वह अपने "खाने" योग्य अन्य पदार्थों को बना लेता है। उसको भोजन के अतिरिक्त ताप भी चाहिये। दिन में तो यह उसे सूर्य से मिल जाता है परन्तु रात को क्या करे? हम अपने घरों में क्या करते हैं, लकड़ी कोयला अथवा अन्य पदार्थ जलाकर ही उनसे ताप प्राप्त करते हैं। पौदे भी उन्हीं पदार्थों को जिन्हें उन्होंने दिन में अपने भोजन के लिए पकाया था रात्रि को जलाकर उन से ताप प्राप्त करते हैं। ताप के लिये खाद्य पदार्थों को जलाना एक प्रकार की फ़जूल खर्ची है और अभी तक पता नहीं लगा कि पौदे ऐसा क्यों करते हैं? इस से यह स्पष्ट है कि उन को इतने खाद्य पदार्थ बनाने चाहियें जो कि ताप के लिये जलाकर भी 'खाने' के लिये बच सकें। यह तभी हो सकता है जब कि जल और कार्बन डायकसाईड रूप कच्चे पदार्थ उन्हें पर्याप्त मात्रा में मिलते रहें।

पौदों में उनकी जड़ें और पत्ते भोज्य पदार्थों को भीतर ले जाने का काम देते हैं। जड़ों से वह जल और जल में घुले हुये लवणों को भीतर खैंचता है और पत्तों के निचली ओर छोटे २ सूराखों द्वारा हवा में से कार्बन डायकसाईड को लेता है। जिन दिनों में पौदा बहुत तेज़ी से बढ़ रहा होता है तब वह हवा में से कहीं अधिक मात्रा में कार्बन डायकसाईड खैंचता है।

हमारे वायुमण्डल में अधिकांश नेत्रजन और ओषजन दो ही गैसें हैं और इनकी मात्रा प्रायः सब संसार में एक सा है।

यह इस प्रकार है:—

नेत्रजन	७८ प्रति शतक
ओषजन	२१ "
आंगन	०.९४ "
कार्बन डायकसाईड	०.०३ से .०४ तक
जल वाष्प	भिन्न २ मात्रा में

हवा में यद्यपि कार्बन डायकसाईड (अथवा कार्बानिक एसिड गैस) बहुत थोड़ी मात्रा में विद्यमान है परन्तु यह है बड़े महत्व की। इसकी और जल की सहायता से ही हवा, अन्धेरी, ताप मय सूर्य किरणों को ताप में बदल सकती है।

उपरोक्त बातोंसे पता चला कि पौदोंके लिये कारबानिक एसिड गैस आवश्यक है। एक विशेष हद तक जितना अधिक उसे यह गैस मिलेगी उतना ही अधिक वह अपने खाने और जलाने योग्य पदार्थ बना सकेगा और जितना अधिक उसे भोजन मिलेगा उतना ही अधिक वह बढ़ेगा। यदि हम कोई ऐसा तरीक़ा निकाल लें जिस से कि पौदों को यह गैस बड़ी सुगमता से पर्याप्त मात्रा में मिल सके तो हम इस के पत्तों द्वारा इसे सीधा भोजन करवा सकेंगे।

श्रीयुत रेडल ने दो पौदों के गृह निर्माण किये हैं उनमें से एक घर क पौदों को तो वह वैसा ही रहने देते हैं और दूसरे घर वालोंको अधिक गैस देते हैं। पांच सप्ताह के पश्चात् कृत्रिम विधि से गैस दिये हुये पौदे दूसरों की अपेक्षा कई गुणा-५ से १०-तक अधिक बढ़े और फैले हुये हो जाते हैं। महाशय रेडल कारखानों की चिमनियों द्वारा निकल कर हवा में नष्ट हो जाने वाली गैस को शुद्ध करके, पौदों के गृहों में पहुंचाते हैं। क्या इस से पौदों के लिये कोई अधिक सुगम और जन साधारण के काम में लाये जाने योग्य तरीका नहीं हो सक्ता? किंचित् विस्तृत दैनिक अग्निहोत्र इस की अधिक सरल विधि हो!

विचार प्रवाह

कन्यागुरुकुल इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) का प्रथम वार्षिकोत्सव।

कन्यागुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का प्रथम वार्षिकोत्सव २८, २९, ३० दिसम्बर १९२४ को निर्विघ्न समाप्त हुआ। यद्यपि अन्य उत्सवों की भांति इस उत्सव की तैयारी बहुत पहिले से न की जा सकी और दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के निकट होने के कारण उसके आगे संरक्षकों ने भी इस अवसर पर बहु संख्या में पधारने का कष्ट न उठाया इसलिये इस में वह जगमगाहट और वह सफलता नहीं दीख पड़ती थी जो कि साधारणतया ऐसे अवसरों पर होनी चाहिए तथापि एक दो बातें बड़ी प्रभावशाली थीं।

प्रथम २८ की प्रातः को नयी प्रविष्ट होने वाली कन्याओं का चुनाव हुआ। उस के बाद १२ बजे से ५ तक आर्य्य नारी सम्मेलन हुआ जिसमें कई प्रस्ताव बड़े महत्व के पास हुये जिनका वर्णन इसी अंक में अन्यत्र हो चुका है।

२६ की प्रातः को नवप्रविष्ट कन्याओं का यज्ञोपवीत तथा वेदारम्भ संस्कार हुआ। इस संस्कार का महत्व इस में है कि इसे केवल देवियों ने ही कराया और पुरुष लोग केवल दर्शक मात्र थे। अन्त में एक संरक्षक महोदय ने पिता के प्रतिनिधि रूप से ब्रह्मचारिणियों को उपदेश दिया। उस के बाद स्त्रियों को भी यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है, इस विषय पर श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी का व्याख्यान हुआ।

दोपहर से श्री देवेश्वर जी सिद्धान्तालङ्कार डाक्टर केशवदेव जी शास्त्री, श्री प्रोफेसर सत्यव्रत जी के शिक्षाप्रद व्याख्यान हुए। श्री सत्यव्रत जी ने बतलाया कि देवियों को चर्खा, चक्की, चूल्हा और गौ की सेवा की ओर ध्यान देना चाहिए, इसी में उनका और आर्य्य जाति का कल्याण है।

३० की प्रातः पहिले कन्याओंने अपनी आचार्य्या के साथ वृहद् हवन किया। तत्पश्चात् पंडित देवशर्मा जी का यज्ञ के अर्थों पर व्याख्यान हुआ। उस के बाद श्रीमती चन्द्रवती जी अवैतनिक अध्यापिका कन्या गुरुकुल का 'गृहस्थ जीवन' पर बड़ा सुन्दर मनोहर भाषण हुआ। दो पहर को श्री पंडित चमूपति एम. ए. आर्य्य सेवक का एक बड़ा उत्तम सुनने योग्य, शिक्षाप्रद व्याख्यान हुआ जिस में उन्होंने वेद-मंत्रों के प्रमाण और इतिहास की साक्षी देकर यह बतलाया कि आर्य्य जाति न केवल अपनी ही वरन् अपने शत्रु की स्त्रियों का भी कितना मान्य करती रही है।

इस के बाद महाशय कृष्ण जी मन्त्री आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब (कन्या गुरुकुल की स्वामिनी सभा) ने कन्या गुरुकुल के लिए धन की अपील की जिस पर लगभग ३ हज़ार रुपये का दान सुनाया गया। मुख्यतया यह दान दो चार दिल्ली निवासी आर्य्य सज्जनों द्वारा ही हुआ।

श्री सेठ रघूमल जी-जिन्होंने इस गुरुकुल को एक लाख रुपये का दान देकर गत वर्ष स्थापित कराया था-वह भी सौभाग्य से इन दिनों दिल्ली में ही थे। अतः उत्सव पर पधारते भी रहे। उन्होंने आगामी वर्ष के लिए भी ५००) रु मासिक देने का वायदा किया तथा श्री ला० दीवानचन्द जी ठेकेदार दिल्ली ने ५०) रु० मासिक एक वर्ष के लिए स्वीकार किया। श्री लाला ज्ञानचन्द जी ठेकेदार की धर्मपत्नी जी ने ५००) रु० दान दिया, तथा ला० नारायनदत्त, हंसराज जी ठेकेदार और ला० गिरधारीलाल, बाबा मिलखासिंह जी ने दो दो सौ रुपये दिये। कुछ रकमें रक्षकों और समाजों द्वारा भी प्राप्त हुई हैं।

इस प्रकार यह उत्सव समाप्त हुआ। परन्तु इस में संदेह नहीं कि आर्य्य जनता ने इस बड़े भारी यज्ञ को वह मान नहीं दिया जो उससे आशा थी। कन्या गुरुकुल खुले यह अभिलाषा उस की बड़े दिनों से थी, परमात्मा ने उसे पूरी भी की, परन्तु फिर भी आर्य्य जनता की इसके प्रति इतनी उदासीनता दो बात की सूचक है। एक तो यह कि कन्याओं की शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों को पुत्र और पुत्रियों के प्रति समदृष्टि रखने वाले आर्य्य जन भी उतना महत्व नहीं देते जितना कि उन्हें देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि आर्य्य जनता कन्या गुरुकुल का सारे भारत की

संस्था नहीं समझ वरना इने गिने दो चार दश पंजाब निवासियों के दान तथा पंजाब की ही समाजों से दान प्राप्त क्यों होता? आशा है कि आर्य्य जाति अपनी इन दोनों भूलों का शीघ्र ही संशोधन कर लेगी और यह कन्या गुरुकुल उनकी सहानुभूति और प्रेममय गोद में पल कर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता हुआ आगामी उत्सव पर इस उत्सव की सारी कसर निकाल देगा।

राष्ट्रीय-सप्ताह

बड़े दिनों की छुट्टियों का सप्ताह भारतीयों के लिये राष्ट्रीय-सप्ताह है। न केवल कांग्रेस ही के अधिवेशन इसके साथ होते हैं, बल्कि जहां तहां सारे देश में सभा, सम्मेलनों और परिषदों की धूम मच जाती है। बेलगांव में ही कांग्रेस के साथ कोई २५ के लग भग सभा समितियों के अधिवेशन हुये होंगे। बम्बई में मुसलिम लीग, मुसलिम शिक्षा परिषद् और हिंदुस्तानी ईसाइयों की सभाओं के अधिवेशन हुये। संयुक्त प्रांत के लखनऊ शहर में मोडरेट लोगों की मजलिस जमा हुई और, बरेली, इलाहाबाद आदि कई स्थानों में समाजिक-परिषदों के अधिवेशन हुये। कलकत्ते में मुसलिम कान्फ्रेन्स का नाटक हुआ। इस सप्ताह में भारत के कोने कोने में सभा समितियों की बहार आजाती है। कांग्रेस राष्ट्र का मुख है। देशवासियों की सब से बड़ी राजनीतिक और प्रातिनिधिक संस्था वही है। इसी लिये जहां उसका अधिवेशन होता है, वही स्थान इस सप्ताह की धूमधाम का केन्द्र बन जाता है।

शासक और शासितों के पारस्परिक सुख और दुख, आराम और व्यथा एवं दोनों की मनोवृत्तियों की तुलना इस सप्ताह में बहुत अच्छी तरह होजाती है। एक ओर ऐश आराम और भोग विलास की बहार रहती है, दूसरी ओर निरंकुश शासन से तंग आई हुई प्रजा अपने पिछले यत्नों की परीक्षा कर अगले कदमों को नापती है। एक ओर भोग-विलास और आनन्द का समारोह रचा जाता है, दूसरी ओर भारत माता के प्रीत्यर्थ बड़े राष्ट्रीय यज्ञ की रचना होती है। एक ओर मौजें लूटने में यह दिन बीतते हैं, दूसरी ओर मातृ वेदि पर बलिदान होने के संकल्प और निश्चय किये जाते हैं। प्रजा का यह राष्ट्रीय सप्ताह है, शासकों का यह बड़े दिनों का भोग विलास करने व मौजें लूटने का क्रिसमस-सप्ताह होता है।

कांग्रेस

राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का अधिवेशन उतना ही छोटा हुआ, जितना कि छोटा महात्मा जी का भाषण था। इस वर्ष की कांग्रेस महात्मा गांधी की विजय है। उनके पूरे प्रभाव की छाप इस वर्ष कांग्रेस पर लग गई है। वह जो चाहते थे और जितना चाहते थे वही और उतना ही कांग्रेस ने किया है। कांग्रेस का इस वर्ष का अधिवेशन इसी दृष्टि से चामत्कारिक है कि उसने महात्मा जी की बातों को अक्षर प्रत्यक्षर स्वीकार किया है। दो हज़ार सूत प्रतिमास कांग्रेस की फ़ीस की शर्त इस समय भी बड़ी अद्भुत मालूम होती है। और भारत के भविष्य इतिहास में बड़े आश्चर्य से लिखी और पढ़ी जायगी। कांग्रेस के भावी कार्यक्रम की मुख्य बातें हैं—१. चरखा और खादी २. प्रतिमास दो हज़ार गज़ सूत कांग्रेस की भेट ३. अस्पृश्यता निवारण ४. हिन्दू मुसलिम ऐक्य और सब राजनीतिक दलों-विशेषतः परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादियों में

सहयोगिता का भाव। बातें कुछ नयी नहीं हैं। महात्मा जी देर से इन्हीं बातों को डंके की चोट कह रहे हैं। यह कार्यक्रम सबका सब ही व्यावहारिक है और इसकी सफलता या असफलता भी व्यवहार ही का विषय है। इसके सम्बन्ध में कुछ भी भविष्यवाणी करनी अनावश्यक है, किन्तु यह स्पष्ट है कि यदि मुर्दे देश में यह कार्यक्रम रुह नहीं फूंक सकेगा, तो दूसरा कोई ऐसा कार्यक्रम भी नहीं है जो राष्ट्र को बलवान्, उद्योगी, संगठित और आज से अच्छा बना सकेगा। चर्खा और खद्दर सचमुच अद्भुत चमत्कार दिखा सकते हैं यदि इनको ही सचाई और ईमानदारी से हाथों हाथ उठा लिया जाय। प० मोतीलाल जी नेहरु के शब्दों में हमें अपने कार्यक्रम की परीक्षा इसी बात से करनी चाहिये कि उससे हमें कितना लाभ होगा, न कि इससे कि उससे सरकार की क्या हानि होगी? मौलाना मुहम्मदअली के शब्दों में कहना चाहिये कि भारत का यही घरेलू व्यवसाय है, जिसका पुनरुद्धार सैकड़ों आवारागिरदों को काम देगा, भूखों को रोटी और नंगों को कपड़ा देगा। भारत के लिये इससे अच्छा कोई और घरेलू उद्योग धन्धा नहीं है। निश्चय ही स्वदेशी का कार्यक्रम भारत में भी वह चमत्कार दिखा सकता है, जो कि चमत्कार उसने आयर्लण्ड, और अमेरिका आदि में दिखाये हैं। पर, कार्यक्रम ही क्या कर सकता है यदि श्रद्धा, विश्वास के साथ उसके लिये कुछ उद्योग नहीं किया गया है? यदि देशवासी इस एक वर्ष इस कामको ही सचाईसे उठालेंगे तो वे देखेंगे कि वे कानपुर में निश्चय ही उस समय से बहुत आगे बढ़े हुए होंगे, जिस समय उन्होंने सूत कताई का यह निश्चय किया है।

इसी के साथ यह निश्चय भी बहुत सन्तोष जनक है कि कांग्रेस का प्रतिनिधि शुल्क दस रुपये से एक रुपया कर दिया गया है। इससे कांग्रेस का द्वार बहुत कुछ गरीबों के लिये खुल गया है। महात्मा जी के यह प्रयत्न अत्यन्त श्लाघनीय है कि वे कांग्रेस को गरीबों की पहुंच के भीतर ला रहे हैं। बेलगांव से लौटकर उन्होंने कांग्रेस के प्रबन्ध कर्त्ताओं का ध्यान गुरुकुल-कांगड़ी के उत्सव की ओर आकर्षित करते हुये वैसा ही प्रबन्ध भविष्य में करने की सलाह दी है। सचमुच, जिस दिन कांग्रेस गरीबों की बनेगी या गरीब कांग्रेस में पहुंचने लगेंगे, उसी दिन से देश के भाग्यों का तारा चमकने लगेगा।

हिन्दू-महासभा।

बेलगांव के हिंदू महासभा के अधिवेशन में नये जीवन का संचार हुआ है। कई राष्ट्रवादी हिन्दुओं ने भी महासभा को अपनाया है। यह समझना चाहिये कि इस अधिवेशन से दक्षिणी भारत में भी महासभा के कार्य की छाप लग गई। अबतक महासभा एक सामाजिक सभा सरीखी थी। बेलगांव में इस पर राजनीतिक रंग भी चढ़ गया है। अच्छा हो यदि मुसलमानों की लीग, खिलाफत और उलमा परिषदों की तरह हिंदुओं की अलग अलग सभायें न बना कर एक ही सभा बनाई जाय और उसी से सब काम लिये जांय। इस से शक्ति का अपव्यय नहीं होगा और सब शक्ति एक ही ओर केन्द्रित होने से कार्य बहुत जोर पकड़ेगा।

महासभा के अध्यक्ष माननीय मालवीय जी का भाषण उनकी स्वाभाविक ओजस्विता लिये हुये था। उन्हों ने अन्य बातों में एक मार्के की बात यह कही है कि हिन्दू समाज

की विवाह पद्धति का सुधार होना चाहिये और ब्रह्मचर्य प्रणाली का पुनरुद्धार होना चाहिए। शुद्धि के कार्य में आर्यसमाज की प्रशंसा करते हुये दूसरों से उनका अनुकरण करने के लिये कहा है। प्राचीन सभ्यता के नाम पर अपील करते हुये अपने ब्राह्मण-अब्राह्मण और शूद्र एवं सिख, बौद्ध आदि को एक ही सभ्यता का उत्तराधिकारी बनाकर महासभा की एक ही वेदी पर इकट्ठे होने की सलाह दी है। लाला लाजपत राय ने कोहाट के प्रस्ताव पर बोलते हुये महात्मा जी से कहा है कि संसार की पहली और विशाल सभ्यता की संरक्षक इस हिन्दू जाति को बचाइये। निस्सन्देह, एक सभ्यता के नाम पर ही सब हिंदू सम्प्रदाय एक हो सकते हैं और हिंदुओं का स्थिर संगठन हो सकता है। इस लिये हमें आशा है कि सभ्यता की इस आवाज को और भी अधिक बुलन्द किया जायगा और इसी पर हिंदू संगठन की आधार शिला रखी जायगी।

खिलाफत कान्फ्रेन्स।

खिलाफत कानफरेन्स इस वर्ष कुछ फीकी रही। सफेद पोशाक में लाल टोपियां बहुत कम दीखतीं थीं। सभापति डाक्टर किचलू का भाषण राष्ट्रीय भावना से अधिक मुसलिम रंगत लिये हुये था पंजाब की गंदी हवा को ही डाक्टर साहब अपने भाषण में बन्द करके बेलगांव ले गये थे। कोहाट की दुर्घटना का दोष आपने हिन्दुओं के माथे डाला। अपनी तबलीग को आपने हिन्दू संगठन की प्रतिक्रिया कहा। पंजाब के राष्ट्रीय कार्य कर्ताओं पर आक्षेप करते हुये आप बहुत कुछ लिख गये हैं। आपका यह भाषण अमृतसर की प्रान्तीय खिलाफत कान्फरेंस के सभापति मौ० जाफर अली के भाषण की ही पुनरावृत्ति थी। अस्तु, इतने पर भी खिलाफत परिषद् में कोई ऐसा प्रस्ताव पास नहीं हुआ जो कि विरोधाग्नि को अधिक प्रज्वलित करता। तबलीग का प्रस्ताव अवश्य ही पास हुआ।

सामाजिक परिषद्।

सामाजिक परिषद् के सभापति श्रीयुत शङ्करन नायर का भाषण भारत की स्त्रीजाति की वर्तमान दुःख पूर्ण परिस्थिति का एक अत्यन्त आकर्षकचित्र था। स्त्रियों की प्राचीन वर्तमान स्थिति के विषय में आपने कहा कि:-

"हाल में प्राच्य विषयों पर जो खोज की गयी है उस से पता लगता है कि स्त्रियों को केवल शरीर-सम्बन्ध (Sexual Relation) की ही स्वतंत्रता नहीं थी, वे सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से भी पुरुषों के बराबर थीं। सम्बन्ध का निश्चय पुरुषों को देख कर होता था, परन्तु उत्तराधिकार स्त्रियों के वंश में चलता था। स्त्रियों की वर्तमान स्थिति उन युद्धों के कारण हुई जिन में पकड़ी गयी स्त्रियां पकड़ने वालों की सम्पत्ति समझी जाने लगीं। हिन्दुओं और मुसलमानों में स्त्रियां जिस तरह पुरुषों पर आश्रित रहने लगीं, ईसाइयों में भी ऐसे ही कई पादरी इस प्रकार के थे जो स्त्रियों को 'आवश्यक आपत्ति, घरेलू कष्ट, अथवा घातक प्रलोभन" समझते थे (हंसी)। परन्तु युरोपियन समाज इन धार्मिक आज्ञाओं से पार पा गया।

महायुद्ध से सारे संसार की स्थिति बदल गयी है। नीचे दबे हुए और पराधीन शास्त्रों, कुरानों और बाइबिलों की परवाह न करके अपने मालिकों की बराबरी का दावा कर रहे हैं। इंगलेण्ड में स्त्रियों को १९१८ में मताधिकार मिला था और अब वे पार्लमेंट की मेंबर तथा मंत्री तक बनती हैं

अमरीका में एक स्त्री प्रांत की गवर्नर है। अंगोरा में—जो एक मुसलमान देश है वहां एक स्त्री मन्त्री है। मुस्तफा कमाल ने केवल खिलाफत की ही जड़ नहीं काट दी, स्कूलों से कुरान आदि धर्म पुस्तकों की पढ़ाई ही उठा दी है। ईजिप्ट में श्रीमती जगलुल पाशा के नेतृत्व में स्त्रियां पुरुषों से भी बढ़कर होमरूल पाने का यत्न कर रही हैं। वे सड़कों पर लेट गई थीं, जिस से ब्रिटिश सिपाही उन सड़कों से न गुजर सकें। चीन में स्त्रियों ने बराबरी के अधिकार का प्रार्थना पत्र दिया है और वे यह अधिकार पाने वाली हैं।"

फिर आपने कहा आर्थिक दृष्टि से भारतीय स्त्रियों की स्थिति ब्रिटिश स्त्रियों से अच्छी है। शास्त्रों में स्त्रियों के पालन पोषण का भार सम्बन्धियों पर डाला गया है और उसके अभाव में राजा को आज्ञा दी गई है कि वह उनका पालन करे तथा उस धन को सम्बन्धियों से वसूल कर ले। स्त्रियों को अदालत में जाने की जरूरत नहीं। क्योंकि हमें मालूम है कि अदालतें कैसी हैं। १५) रुपये वसूल करने को इन अदालतों में १००) रुपये खर्चने पड़ते हैं। बालविवाह, बाधित वैधव्य, और बड़ी स्त्रियों को पति के चुनाव में परतंत्रता, ये सब बातें दूर होनी चाहिएं। स्त्री-पुरुष को सम्बन्ध की आयु भी बढ़ानी चाहिए। इसी के कारण से लेजिस्लेटिव असेम्बली में एक अंग्रेज को यह कह कर हमें बदनाम करने का मौका मिल गया था कि एक पीढ़ी में बाल-विवाह के कारण हिन्दुस्थान में ३२,००,००० मातायें मर गयीं। बहुविवाह दूर होना चाहिए। पुनर्विवाह की आज्ञा केवल उनको होनी चाहिए जिन की पत्नी को भी बराबर सम्पत्ति लेकर तलाक करने का अधिकार हो।

अन्य परिषदें

इनके अतिरिक्त भी बेलगांव में दसों परिषदें हुईं। देशी राज्य परिषद्, विद्यार्थी परिषद, पुस्तकालय परिषद्, गोपरिषद् आत्मवादी परिषद्, अछूतोद्धार-परिषद्, जैन परिषद्, रेलवे यात्री परिषद्, प्रान्तीय आयुर्वैदिक सम्मेलन इत्यादि अनेक परिषदें भी सफलता से हुईं।

मुसलिम लीग

मुसलिम लीग का अधिवेशन बम्बई में हुआ। इसके भाषणों, प्रस्तावों आदि पर यह स्पष्ट ही दीखता है कि इसका पुनर्जन्म हिन्दू महासभा के मुकाबिलेमें किया गया है। हिंदू महा सभा ने जैसी एक कमेटी हिन्दू अधिकारों की रक्षा के लिये बनाई है, ठीक वैसी ही कमेटी लीग ने बनाई है। श्रीयुत जिन्हा का भाषण माननीय मालवीय जी के या श्री० सत्यमूर्ति के भाषण का उत्तर है। दोनों के अधिवेशनों की कार्यवाही को तटस्थ रूप में देखने से दुःख और आश्चर्य के भाव एक साथ पैदा होते हैं। मुसलमान भाइयों की छोटी बुद्धि पर दया आती है। सबसे अधिक मुसलिम लीग के कोहाट सम्बन्धी प्रस्ताव पर होता है। प्रस्ताव की रचना किसी ऐसे विचित्र दिमाग़ से की गई है कि उस का समझना ही कठिन है। पहिले हिस्से में हिंदुओं पर मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं पर आघात पहुंचाने और वार में भी पहल करने का दोष लगा दिया गया है, अन्त में भी हिंदुओं से आशा की गई है कि वे भविष्य में कभी ऐसा न करेंगे। फिर बीच में कहा गया है कि दोनों जातियों की प्रतिनिधि कमेटी द्वारा जांच हुये बिना कोई सम्मति स्थिर न की जाय। साफ़ सम्मति प्रगट करके हिन्दुओं पर दोष मढ़ते हुये भी

सम्मति स्थिर न करने का अर्थ हम नहीं समझ सकते और नहीं हम यह ही समझे हैं कि कोहाट के सम्बंध में ऐसा प्रस्ताव पास किए बिना क्या लीग का काम न चल सकता था ?

कोहाट चर्चा ।

पिछले सप्ताह चार मुख्य परिषदों में कोहाट की चर्चा हुई है। काँग्रेस, हिंदू महासभा, लिबरल परिषद् और मुसलिम लीग। लीग के प्रस्ताव में मुस्लिम रंग रहते हुये भी चारों के प्रस्तावों में सरकार के स्थानीय अधिकारियों पर लानत डाली गई है, सरकारी रिपोर्ट पर अविश्वास प्रगट किया गया है और बहुत स्पष्ट कहा गया है कि सरकार ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है। सरकार इस पर भी अपनी टेक रखे हुए है। अब उसने जले पर नमक छिड़कना शुरू किया हुआ है। मन माने तौर पर सुलह कराने में असफल हो जाने पर सब दोष हिंदुओं के माथे मढ़कर जो अक्षम्य निरंकुशता सरकार ने दिखाई है, उसे देखते हुए भी यदि हिंदू चुप बैठे रह सकते हैं तो क्या यह स्पष्ट नहीं कि हिंदू संगठन की सफलता अभी बहुत दूर है ?



हमारी मञ्जूषा



१. अमीरी व गरीबी--ले०-प्राफेसर सुधाकर जी एम. ए. प्रकाशक, इण्डियन प्रिन्टिंग वर्कस ग्वाल मंडी लाहार, पृष्ठ संख्या ६० मूल्य ॥)

भारत एक निर्धन देश है, अतः भारत-वासी कई प्रकार की आपदाओं से घिरे रहते हैं। चाहे कोई स्वयं धनवान न बनना चाहे परन्तु अपनी तथा अपने पड़ौसियों और देश निवासियों की गरीबी को दूर करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि यह भली प्रकार जान लिया जाय कि गरीबी क्या है ? केवल धन का न होना ही न तो गरीबी है आर न गरीबी कारण। श्री सुधाकर जी की यह छोटी सी पुस्तक इसी दृष्टि कोण से लिखी गई है। यद्यपि इसमें सरमाया अथवा पूंजी, पूंजीदारों तथा श्रमियों की कठिनाइयां, मालथस के सिद्धान्त इत्यादि अनेक विषयों पर अर्थ शास्त्र की दृष्टि से विचार किया गया है। परन्तु विचार दृष्टि कोण में एक आनन्ददायक विशेषता और विचित्रता है कि उसका दृष्टिकोण निरा स्वार्थमय आर्थिक न रह कर परमार्थमय अध्यात्मिक बनाया गया है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति न तो अर्थ शास्त्री ही बनता है और न पूंजीपति तथा वैश्य, तो भी अपना जीवन निर्वाह करने के लिये उसे इन विषयों का साधारण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। अतः हम स्कूलों और पाठशालाओं के प्रवन्ध कर्ताओं से बल-पूर्वक सिफारिश करते हैं कि वह इस सरल मनोहर तथा परमोपयोगी पुस्तक को अपनी संस्थाओं का उच्च कक्षा में अवश्य स्थान दें।

२. देश-भक्त मैकिस्विनी-अनुवादक श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा, प्रकाशक श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रताप प्रेस कानपुर, पृष्ठ ६० मूल्य ।)

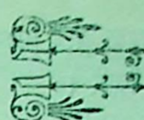
यह प्रसिद्ध आयरिश देशभक्त मैकिस्विनी के एक मित्र द्वारा लिखी हुई अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। आज शिक्षित तथा राजनैतिक भारत में इस वीर श्रेष्ठ के नाम को कौन नहीं जानता जिसने अपनी मान और मर्यादा के निमित्त ७९ दिन तक भूखे रह कर अंग्रेज़ी सरकार के जेलखाने में प्राण विसर्जन किए। पुस्तक की भाषा सरल और ओजस्विनी है, वर्णन मनोहर, रोमांचकारी और शिक्षाप्रद है। इस पुस्तक का पाठ हमारे नवयुवकों के हृदय में अवश्य साहस, उत्साह, देश प्रेम और आत्म-त्याग के भाव उत्पन्न करेगा, अतः उनके आचार के ढालने के लिए अवश्य उपयोगी सिद्ध होगा।

३. ग़ुलामी का नशा- लेखक ठा० लक्ष्मण सिंह जी बी. ए. एल. एल. बी.। मुद्रक तथा प्रकाशक-श्री सुरेन्द्र वर्मा, प्रताप प्रेस कानपुर। पृष्ठ संख्या ६२, मूल्य ।=)

हिन्दी साहित्य में मौलिक नाटकों का अभाव सा है। ठाकुर जी ने असहयोग आन्दोलन पर यह पुस्तक लिख कर हिन्दी साहित्य पर बड़ा उपकार किया है। लेखक ने जहां एक ओर सफलता पूर्वक आन्दोलन के रहस्य को दर्शाने का यत्न किया है वहां दूसरी ओर यह आन्दोलन क्यों सफल न हुआ इस पर भी खूब प्रकाश डाला है। ठाकुर जी का यह लिखना कि हम लोग जातीय भले पर वैय्यक्तिक स्वार्थको न्यौछावर न कर सकने के कारण ही ऐसे शुभ कार्यों में कामियाव नहीं होते सर्वथा ठीक है। भाषा सरल और भाव पूर्ण है। हिंदी भाषा के पाठकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए।

४. महाराणा सांगा—लेखक श्री हरविलास सारडा। मुद्रक वैदिक यन्त्रालय अजमेर। पृष्ठ संख्या १४७। मूल्य ॥।)

हिंदी भाषा के प्रेमियों में बहुत कम सज्जन ऐसे होंगे जो श्री० सारदा जी की विद्वत्ता और साहित्य सेवा से परिचित न होंगे। इन के प्रत्येक ग्रन्थ में मौलिकता अवश्य रहती है। इस पुस्तक में आप ने महाराणा सांगा के तत्कालीन इतिहास का प्रामाणिक रूप से निचोड़ रख दिया है। पुस्तक के अवलोकन से भली प्रकार समझ में आ जाता है कि हिन्दुओं ने परस्पर एकता और राजनैतिक दूरदृष्टि के न होने से ही हर जगह हार खाई है। उस समय के राजपूत अपने समकालीन मुसलमानों की अपेक्षा अधिक वीर, दयालु, साहसी तथा आचारवान् थे। तब भी मुसलमानों से बहुत जगह पराजित ही होते रहे इस का एक मात्र कारण उनका राजनीति निपुण न होना ही था। इसके साथ ही जब हम राजघरों के राजकुमारों, तथा महाराजाओं में भारी प्रतिद्वन्द्विता के भाव देखते हैं तो इस जाति पर बड़ी करुणा आती है। भाई भाई से लड़ता है, भाई चाचा से लड़ता है। चाचा अन्य सरदार की सहायता से भतीजे को नीचा दिखाने का यत्न करता है। जिस जाति में ऐसे २ अवगुण हों परमात्मा ही उसका रक्षक है। जब राजाओं का यह हाल है तो प्रजा का क्या हो। आज कल के हिंदू समाज को इस पुस्तक का भली भांति मनन करना चाहिए ताकि उन्हें अपनी अवनति के कारणों का पता लगे। पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ी उपयोगी है।


वनिता विनोद


स्त्री – जगत् ।

मद्रास में बच्चों की अनिवार्य शिक्षा के विषय पर विचार करते हुए वहां की म्यूनिसिपल कमेटी ने मुसलमानों में परदे के कारण निश्चय किया कि मुसलमान लड़कियों के सम्बन्ध में इस नियम को लागू न किया जाय। इसके विरुद्ध एक मुसलमान महिला ने समाचार पत्रों में एक पत्र लिखा जिसका फल यह हुआ कि मुसलमानों में एक बड़ा भारी आन्दोलन आरम्भ हो गया है। कितने ही जलसे इस के विरुद्ध और पक्ष में हो चुके हैं। मुसलिम-शिक्षा-समिति की अध्यक्षता में अभी एक जलसा हुआ जिसके प्रधान डाकृर सैयद अब्दुल कादर साहब जीलानी थे। इसमें यह प्रस्ताव पास हुआ कि म्यूनिसिपल कमेटी और सरकार को लिखा जाय कि वह मुसलमान लड़कियों के लिए भी प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करार दें।

———

लंका में स्त्री-शिक्षा का बड़ा प्रचार है। वहां बालकों की अनिवार्य शिक्षा बहुत दिनों से प्रचलित है, इसका फल यह है कि वहां किञ्चित ही कोई लड़की होगी जो कि पढ़ना लिखना न जानती हो। इस पर भी वहां स्त्रियों को कौंसिलों और कमेटियों के लिये वोट देने का अधिकार नहीं।

———

बंगाल की तरह मद्रास में भी पतित स्त्रियों को भविष्य में कुमार्ग से बचाने और अबोध अबला युवतियों की रक्षा के लिए समितियां बनाने की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। बहुत सी बहिनें तो अपनी अज्ञानता के कारण ही पाप मार्ग में फँस जाती हैं। अतः बड़ी आवश्यक्ता है कि उनमें शुद्ध ज्ञान का प्रचार किया जाय।

———

श्रीयुत सी० आर० दास ने जो अपनी ८ लाख की समस्त सम्पति दान दी है। उसमें स्त्रियों के लिए एक कालिज बनाने का भी आदेश है। इसी प्रकार मदूरा के एक युवक ने २५०००) का दान दिया है जिसमें १५०००) मध्यम श्रेणी की लड़कियों के लिए व्यावहारिक शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोलने के लिए है।

———

कुमारी सत्यवती स्नातिका कन्या महा विद्यालय जालन्धर को प्रान्तिक ब्राह्मण सभा के उत्सव में -जो कि गत बड़े दिनों में रंगून में हुआ। सब से उत्तम वक्तृता देने के लिए स्वर्ण पदक दिया गया।

———

रियासत अलवर ने अपने एक नागरिक को विधवा विवाह करने के दण्ड में सपत्नीक देश निकाले का दण्ड दिया है।

———

नृसिंहपुर जिले के छिंदवाड़ा नामक ग्राम में रामबाई नाम की एक स्त्री अपने पति के वियोग से दुखित होकर सती हो गई। देवी की अवस्था ३० वर्ष की थी और वह पढ़ी लिखी न थी। पति पत्नी का प्रेम उच्च श्रेणी का था। पति के स्वर्ग वास होने पर देवी ने अपने शरीर तथा कपड़ों पर

मिट्टी का तेल डाल कर आग लगा पति-वियोग में प्राण दे दिए।

———

जापान में राजकुमारी यमशीना ने बौद्ध भिक्षुणी बनने का व्रत लिया है। आप पहली राजकुमारी हैं जो कि भिक्षुणी बनी है।

———

लन्डन में स्त्रियों के लिये मैडिकल स्कूल के लिए ७॥ लाख रुपया एकत्र हुआ है।

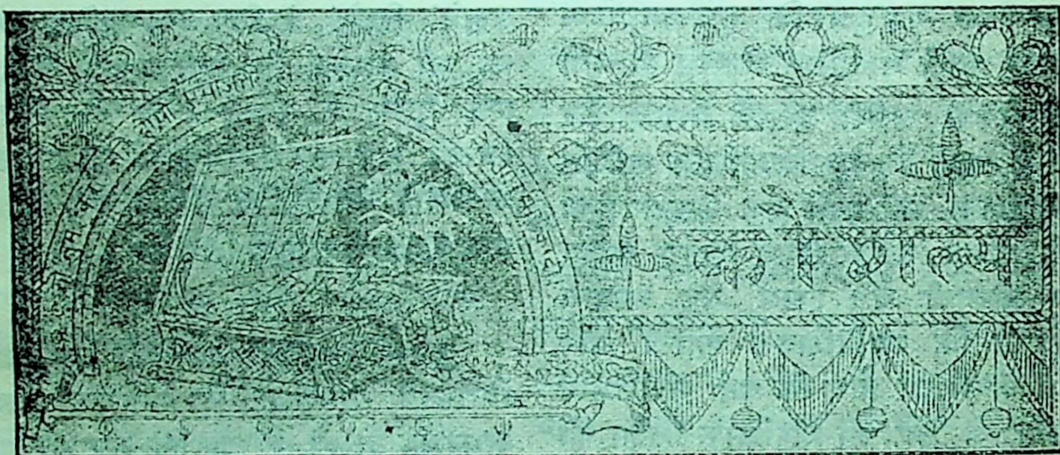
———

अपने पति की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती नैली रोस अमरीका की वायोमिंग रियासत की १६२७ तक के लिये गवर्नर बनायी गयी।

———

श्रीमती फरगुसन टैक्सिस रियासत की गवर्नर बनायी गयी।

———



दिलबहार लेस

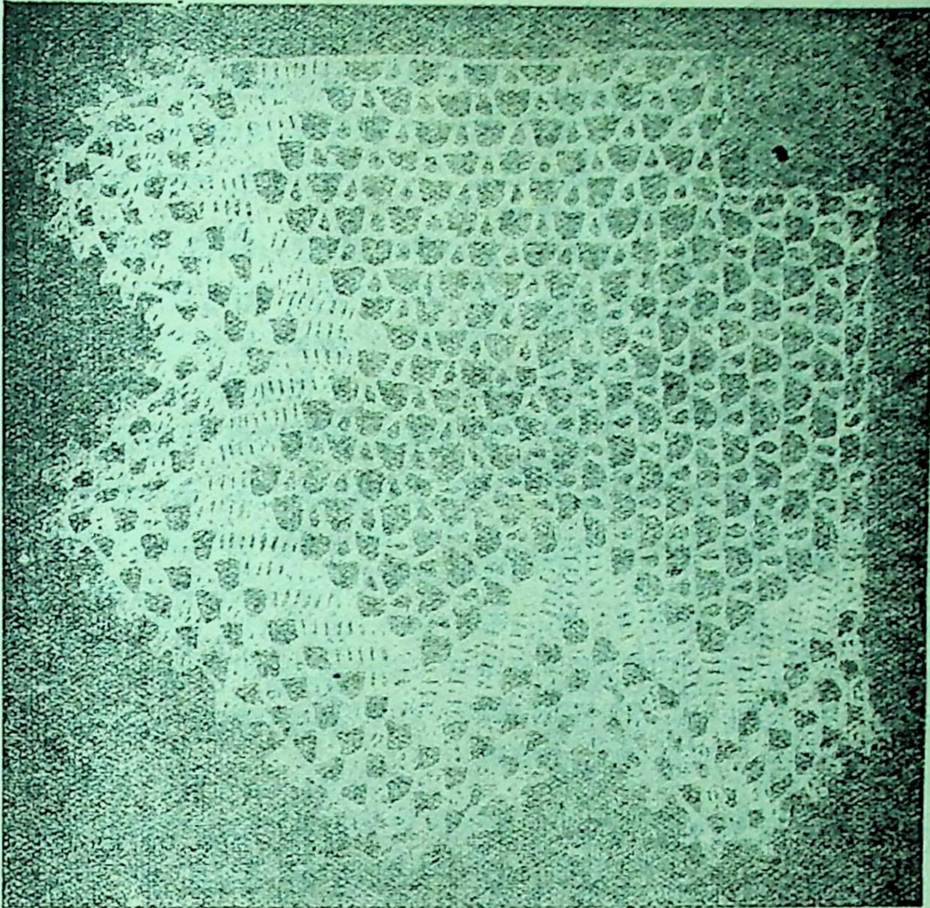
ले०—श्री० ओ३म् वती देवी

आरम्भ में ५४ चेन करो।

१ पंक्तिः—१ ते. १० वीं चेन में, ३ चे., १ ते. उसी में जिस में पहिले बीना था, *३ चे., ४ छोड़ो, १ ते., ३ चे, १ ते. उसी में *इससे ४ दफ़ा और ६ ते. अगली ६ चे में, २ चे, ३ छोड़ो, ३ ते. अगली चे. में, ३ चे, ३ ते. अगले में। लैाटो

२ पंक्तिः—५ चे., ३ ते., तेहरों के बीच की चेनों में, ३ चे, ३ ते., उसी में, ३ चे., ३ ते. अगले छेद में ६ ते., ६ ते पर, * ३ चे, १ ते., अगले छेद म, ३ चे., १ ते. उसी में*इससे ६ दफ़ा और लैाटो।

३ पंक्तिः—५ चे., १ ते., पहिले छेद में, ३ चे., १ ते. उसी में, * ३ चे., १ ते., अगले में, ३ चे, १ ते उसी में, ५ दफ़ा और, ३ ते. छोड़ो, ६ ते; ३ ते; अगले छेद में, ३ चे, ३ ते., तेहरों के बीच की चन में, ३ च., ३ ते., उसी में। लैाटो



४ पंक्तिः— ५ चे, ३ ते., छेद में ३ चे., ३ ते., उसी में, ३ चे, ३ ते, अगले छेद में ६ ते., * ३ चे., १ ते. छेद में, ३ चे., १ ते., उसी में, * इससे ७ दफ़ा।

५ पंक्तिः— लौटो ५ चेन. १ ते. पहिले छेद में, ३ चे, १ ते., उसी में, * ३ चे, १ ते, छेद में, ३ चे., १ ते., उसी में, * इस से ६ दफ़ा और ३ चे; ३ छोड़ो ६ ते, ३ ते, छेद में, २ चे, ३ ते, छेद में, ३ चे, ३ ते, उसी में।

६ पंक्तिः— ५ चे., ३ ते, पहिले छेद में, २ चे, ३ ते, उसी में, २ चे., ३ छोड़ो ६ ते., ३ ते, अगले छेद में, * ३ चे, १ ते, ३ चे, १ ते, अगले में; * **इससे** ७ दफ़ा और।

७ पंक्तिः— ५ चे., १ ते, ३ चे, १ **ते. उसी** में, * ३ चे. १ ते., ३ चे, १ ते., **अगले** छेद में, * निशान से ५ दफ़ा **और;** ३ चे. ३ ते; ६ ते; २; चे; ३ ते; **२ चे,** ३ ते;।

८ पंक्तिः— ५ चे, ३ ते, २ चे, ३ ते., **२ चे,** ३ ते. छोड़ो, ६ ते, ३ ते, छेद **में * ३** चे, १ ते, ३ चे, १ ते, **अगले में, *** निशान से ६ दफ़ा और।

९ पंक्तिः— ५ चे, १ ते, ३ चे, १ ते, **पहिले** छेद में * ३ चे., १ ते, **३ चे., १ ते.**

अगले में, * से ४ दफ़ा और, ३ चे; ३ ते, ६ ते, २ चे, ३ ते, २ चे, ३ ते. अगले में।

१० पंक्तिः - ५ चे., ३ ते, पहिले छेद में, २ चे, ३ ते., अगले छेद में २ चे, ३ ते, छोड़ो, ६ ते, ३ ते., छेद में * ३ चे, १ ते., ३ चे, १ ते, अगले में * निशान से ५ दफ़ा। यह लेस का फूल हुवा।

अब पहिली पंक्ति से १० तक बार बार बीनते जाओ। कोने के लिये,-१ से ५वीं पंक्ति के अन्त तक तो पहिले की तरह बीनो। छठी से कोना शुरू होता है।

६ पंक्तिः- ५ चे.,३ ते ,३ चे ,३ ते पहिले छेद में, २ चे., ३ ते, अगले में २ चे., ३ते. छोड़ो, ६ ते., ३ ते ,अगले छेद में * ३ चे., १ ते., ३ चे; १ ते ,सब अगले छेद में * इससे ६ दफ़ा और, पिछला छेद छोड़ के।

७ पंक्तिः- ५ चे. लौटो, १ ते., ३ चे, १ ते., छेद में, * ३ चे, १ ते, ३ चे, १ ते, अगले छेद में, * निशान से ४ दफा और; ३ चे, ३ ते., ६ ते., २ चे, ३ ते, अगले में, २ चे; ३ ते; छेद में।

८ पंक्तिः- ५ चेन करके लौटो, ३ ते., छेद में, २ चे, ३ ते., अगले छेद में, २ चे., ३ छोड़ो, ६ ते, ३ ते. छेद में, * ३ चे., १ ते, ३ चे., १ ते. सब एक छेद में, * निशान से ४ दफ़ा।

९ पंक्तिः- ५ चेन लौटो, १ ते, ३ चे, १ ते, एक छेद में, * ३ चे, १ ते, ३ चे; १ ते., एक ही में; * इससे २ दफ़ा, ३ चे, ३ ते., ६ ते, २ चे,, ३ ते, छेद में, २ चे, ३ ते, अगले छेद में।

१० पंक्तिः- लौटो, ४ चे; ३ ते; पहिले छेद में, २ चे; ३ ते; अगले में २ चे; ३ ते. छोड़ो, ६ ते; ३ ते. छेद में, * ३ चे; १ ते; ३ चे; १ ते, एक ही में; * निशान से दो दफ़ा।

११ पंक्तिः—५ चे लौटो, १ ते, ३ चे. १ ते एक ही छेद में ३ चे, १ ते., ३ चे., १ ते, अगले में, ३ चे १ ते., ३चे, १ ते; छेद में., ३ चे., ३ छोड़ो, ६ ते., ३ ते, छेद में, २ चे, ३ ते., अगले में, ३ चे., ३ ते., उसी में।

१२ पंक्तिः—५ चे., लौटो, ३ ते. ३ चे., ३ ते., सब पहिले छेद में, २ चे, ३ ते., अगले में, ६ ते., * ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते, सब अगले में * इस तरह दो दफ़ा और।

१३ पंक्तिः—५ चे., लौटो, १ ते., ३ चे, १ ते पहिले छेद में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते, अगले छेद में, ३ चे, १ ते. ३चे., १ ते अगले में, ३ चे., ३ छोड़ो, ६ ते., ३ ते., छेद में, २ चे., ३ ते., ३ चे, ३ ते, सब अगले छेद में।

(शेष फिर)

आर्य नारी सम्मेलन के प्रस्ताव।

कन्या गुरुकुल के उत्सव पर जो स्त्रियों का सम्मेलन हुआ था उसमें निम्न प्रस्ताव पास किये थे। सब बहिनों के हितार्थ उन्हें यहां दिया जाता है:—

१. यह सम्मेलन सब आर्य्य बहिनों से अनुरोध करता है कि वह जब कभी भी किसी सभा समाज में जावें तो शांति पूर्वक बैठा करें और अपने बच्चों को या तो घर

छोड़ सकें तो छोड़ दिया करें अथवा अगर उनका और कुछ प्रबन्ध न हो सके तो उनके साथ पीछे के स्थान में बैठा करें ताकि बच्चों के शोर से दूसरों के कार्य्य में बाधा न पड़ा करें।

और यह भी अनुरोध है कि अपने २ बच्चों को भी ऐसी शिक्षा दें कि वह भी अंग्रेज़ बच्चों की तरह ऐसे स्थानों में चुप चाप शन्ति पूर्वक बैठ सकें।

२. यह सम्मेलन सब आर्य्य बहिनों से आग्रह करता है कि वह भी अपनी अन्य मतावलम्बी बहिनों की भांति अपने धर्म में दृढ़ बनने और अपने परिवार में धार्मिक भाव फैलाने के हेतु- चाहे पढ़ी हों या अनपढ़ हों संध्या और हवन बलिवैश्वदेव अवश्य किया करें अथवा किसी से करवा लिया करें तब भोजन किया करें।

३ यह सम्मेलन अपनी बहिनों से प्रार्थना करता है कि वह विदेशी वस्त्र न धारण कर के शुद्ध स्वदेशी वस्त्रों को ही धारण किया करें।

४. यह सम्मेलन सब गृहस्थ स्त्रियों से आग्रह करता है कि वह जहां तक उनकी शक्ति में हो जिन बातों से आप दुःख उठा रहीं हैं उनसे अपने सन्तान को बचाने के हेतु उद्योग में सहायक बनें

५. यह सम्मेलन सब गृहस्थ स्त्रियों से प्रार्थना करता है कि चूंकि वर्तमान समय में विषय वासना बहुत फैलने से और धर्म-भाव तथा ब्रह्मचर्य के लोप होजाने के कारण स्त्री पुरुषों के रोग बहुत होते हैं, अकाल-मृत्यु होती है और सन्तान भी प्रायःदुराचारी होती है अतः अपने गृहस्थ जीवन को शुद्ध बनाने का प्रयत्न करें।

६. यह सम्मेलन सब स्त्री जाति से प्रार्थना रखता है कि वह अपने सुधार के कामों में बड़ी दिलचस्पी से भाग लिया करें और अपनी ज़िन्दगी के और इतने धन्धों में से एक समझ कर उस पर विशेष ध्यान रक्खा करें।

आत्मसमर्पण

लेखक—श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री



माकान्त अपने कमरे में बैठे कुछ सोच रहे थे। उनकी आकृति में चिन्ताव्यञ्जक चिह्न सूर्य के वियोग में कमल की तरह उन की आत्मा को मुकलित करते थे। इतने में ही उन के मित्र बनवारी ने प्रवेश किया तथा उदास देख पूछने लगा—"भाई रमा! आज उदास क्यों हो?" उसने कहा—"क्या बताऊं प्रिय भाई बिहारी का पत्र आया है जिसको मैं तुम्हें सुना देता हूं"।

"प्रिय भाई रमा! सप्रेम नमस्ते। मेरी अन्तिम नमस्ते पढ़ शोक न करना। अपनी आत्मा को मेरे कारण क्लेशित न करना। मैं बीमार हूँ, अब संसार से बिदाई चाहता हूं। यद्यपि चिकित्सादि में पिता जी किसी प्रकार न्यूनता नहीं छोड़ते फिर भी दर्शनेच्छा विह्वल करती है। तुह्मारे दर्शन से हृदय को

शान्ति दे सदा के लिये तुम से बिदा चाहता हूँ, तथा आशा करता हूं कि पुनरपि अग्रिम जन्म में साथी बनेंगे। अन्तिम निवेदन यह है कि यदि कष्ट न होवे तो बनवारी सहित एक बार दर्शन दे जाओ" ।

तुम्हारा-बिहारी"

पत्र पढ़ते ही बनवारी के शरीर में बिजली दौड़ गई कहने लगा- "चलो भाई ! रमा जल्दी चलो" । बनवारी ने जाकर पिता से आज्ञा ली तथा तैयार हो रमाकान्त के गृह पर आ पहुंचे। इधर रमाकान्त भी मित्र के पास जाने को उत्सुक थे। तांगे पर चढ़ स्टेशन पहुंचे, तथा ८ बजे की मेल से रवाना हुए। मार्ग में सोचते थे कि कहीं बिहारी सदा के लिये हमारी इच्छा बिना ही हम से बिदा न होजाय अतएव नाना विचार प्रवाह में प्रवाहित हुये भी ईश्वर पर भरोसा कर दोनों प्रातःकाल लाहौर पहुंचे। बिहारी को देखते ही दोनों को जो अपूर्व आनन्द हुआ वह अनुभव साध्य है, पुनः ज्ञान शून्य जड़ लेखनी किस प्रकार वर्णन कर सकती है। अनाशा में आशा का संचार क्या न्यूनानन्द सूचक होता है ?

उस समय बिहारी की अवस्था पूर्वापेक्षा अच्छी थी तथा डाक्टरों की निराशा भी आशा रुप में परिणत होगई थी । मित्रों से मिलने के लिये बिहारी रोगशय्या से उठ कर गाढालिङ्गन करना ही चाहता था कि रमाकान्त ने लेटे रहने के लिये ही उसे बाधित किया। तीनों ने प्रेमाश्रुओं को बहा अपने अगाध प्रेम का परिचय दिया। यद्यपि बिहारी इच्छानुसार वार्तालाप नहीं कर सकता था क्योंकि उसकी अवस्था अधिक अच्छी नहीं थी किंतु प्रेमरस भरी मधुरवाणी से उच्चारित एक दो शब्द ही मित्रों के आमोद प्रमोद के लिये स्वागतभाषण का कार्य कर रहे थे। यह तीनों दो वर्ष पूर्व लाहौर डी० ए० वी कालिज में पढ़ा करते थे। यद्यपि बनवारी निर्धन था किंतु तीनों की मित्रता विद्यालय में प्रसिद्ध थी। तीनों एक ही कमरे में रहते थे तथा सुख, दुःख; सम्पत्ति, विपद आदि अवस्थाओं में एक दूसरे का साथ तन, मन, धन लगाकर देते थे। उनकी मित्रता का परिणाम यह था कि वह तीनों असमान बुद्धि होते हुए भी पढ़ने में प्रथम, द्वितीय ही रहा करते थे। अन्य छात्र उनकी इस उन्नति से सदा ईर्ष्या द्वेष करते थे।

बिहारी का गृह लाहौर में था, अतएव रमा उस के घर जाया आया करते थे। बिहारी की छोटी बहिन बिमला की आयु ११ वर्ष की थी। वह भाई तथा रमा की बात सुन सुन कर आदरणीय दृष्टि से रमा को निहारा करती। उनकी बातों में सुना हुआ देश तथा जाति सेवा का उच्चभाव उसके कोमल हृदय पर आधिपत्य जमा रहा था। अब उसकी अवस्था १७ वर्ष की है। विमला के शरीर को लावण्य ज्योति ने सर्वांगसुन्दर बना दिया है। पुष्पों के श्रीवर्द्धक पराग की तरह लावण्य ने उसके अंगों को विकसित तथा ज्योतिर्मय बना दिया है। वयोवृद्धि के साथ लज्जा देवी भी क्रमशः बाला पर आधिपत्य जमा लेती है। अतएव विमला भी रमाकान्त के साथ वार्तालाप करने में सकुचाती है।

यद्यपि वह कभी २ कुछ बोलती है परन्तु लज्जादेवी कुछ कहने की आज्ञा नहीं देती, मानो हाथ पकड़ कर रोक लेती है। बिहारी युवा है अतएव बाल्यकाल से सुपरिचित होने पर भी स्वभाव वशीभूत हो कुछ कहने का साहस नहीं करता, तथापि दोनों कटाक्ष दृष्टि से हृदयोद्गारों को प्रकट करते हुए प्रेम दीक्षा चाहते हैं।

बिहारी के पास ३ दिन रहते होगये थे, बिहारी आरोग्य भी होगया है। आज दोनों का विचार बिहारी से बिदा होने का है। घर में बिहारी के कथनानुसार उत्तम २ भोजन बनवाये गये हैं। विमला भी रसोई घर में ही बैठी हुई चिन्तित सी प्रतीत होती है वह किसी आशा पंक में फंसी निकलने के लिये आधार ढूंढती जान पड़ती है। भोजन तैयार है। बिहारी की माता यशोदा ने थाली लगाकर परोसने केलिये विमला से कहा है। दोनों मित्रों ने साथ भोजन के लिए बिहारी से आग्रह किया किंतु डाक्टरों की आज्ञा न होने से वह विवश था, अतः दोनों मित्रों ने भोजन किया। रमाकान्त को भोजन सौष्ठव में ध्यान न था, उनको तो विमला के हाथ के परोसने से ही अमृता स्वाद आरहा था।

सामान बांधकर रमाकान्त तथा बनवारी जाने को तैयार हैं, बिहारी की भी स्टेशन तक जाने की प्रबल इच्छा है। तांगे पर तीनों सवार हुए। दोनों सब से जाने की आज्ञा ले रहे थे, विमला भी प्रेममयी आदरणीय दृष्टि से रमा को देख मानो भार-रूप हृदय को उसके वशीभूत कर स्वयं स्वतन्त्र होना चाहती है। रमा का गमन काल में आंखों को फेर कर देखना विमला की दी हुई वस्तु को स्वीकार करने की सूचना प्रतीत होती थी। जब से दोनों को गाड़ी में बैठा बिहारी घर लौट आया है। उस दिन से विमला चिन्तित रहा करती थी, कारण का पता उसकी माता को छोड़ किसी को न था। उसकी माता भी सच्चरित्र, देश भक्त रमा पर मुग्ध थी। तथा आर्थिक अवस्था भी अच्छी थी, क्योंकि उसके पिता व्यापारी थे। अतएव बिहारी के सामने उसकी माताने विमला का चिन्तित प्रस्ताव रक्खा। विमला का स्वयं ही योग्य पुरुष की कामना बिहारी की आत्मा को प्रसन्न करती थी। उसने रमाकान्त को पत्र लिखा तथा सारा समाचार लिख दिया। रमाकान्त ने 'धन्यवाद' शब्द से सब कुछ स्वीकार कर लिया।

क्रमशः विवाह कीशुभ घड़ी भी आगई और पाणिग्रहण संस्कार निर्विघ्न समाप्त होगया। जैसे कृषक कीप्यास वर्षा से, पपीहा की स्वाति बूंद से याचक की प्यास दाता से बुझ जाती है। वैसे एक दूसरे की प्राप्ति से विमला और रमा दोनों की प्यास बुझ गई। विमला प्यारी माता तथा भाई को सुखी तथा दुःखी करती हुई रमा की साथिनी बन गई। उसका ध्येय स्वजाति सेवा करते हुए गार्हस्थ जीवन का पालन करना था। उसका दिनार्ध स्त्री शिक्षा के कार्य में लगा करता था। जहां वह स्वयं धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय करती थी वहां अन्य बालिकाओं को भी भोग विलास के जीवन से हटा पश्चिमीय शिक्षा खड्ग के प्रहार से बचाती थी। तथैव रमाकान्त भी शिक्षा कार्य में बहुत समय देते थे। विमला मनोवाञ्छित मनोरथ को पूर्ण होते देख रमाकान्त की प्रशंसा किया करती तथा उनकी धर्मपत्नी होने को गौरव को स्मरण करती हुई उसने आजन्म रमा के प्रदर्शित मार्ग का अवलम्बन कर सुख पूर्वक अपने जीवन को समाप्त किया।

कन्या गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य।

गत दो मास से कन्याओं का स्वास्थ्य साधारणतया अच्छा ही रहा है। परमात्मा की दया से मामूली साधारण ज्वर जो

किसी २ को दो चार दिन के लिए आता रहा था उसके अतिरिक्त दीर्घ रोगी कोई भी नहीं हुई। अब ऋतु परिवर्तन के साथ २ स्वास्थ्य भी उत्तम हो रहा है।

वार्षिक परीक्षा।

वार्षिक परीक्षायें हो गईं। परिणाम बहुत उत्तम रहा है। सारे विद्यालय में केवल ५, ६ कन्याएँही अनुत्तीर्ण रही हैं। कई कन्याओं ने एक वर्ष में ही अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

उत्सव।

उत्सव का वृत्तान्त अन्यत्र छप चुका है। यह गुरुकुल वासियों की आशा के अनुकूल न हुआ कन्याओं के प्रवेश कराने की तिथियों की सूचना जनता को बहुत दिनों से दी जा रही थी फिर भी समय पर संरक्षक लोग नहीं लाये और अब शताब्दि पर प्रविष्ट कराने के लिए आज्ञा मांग रहे हैं।

हमारी समझ में इस वर्ष यह श्री मद्दयानन्द जन्म शताब्दि के उत्सव का इतना निकट होना ही हमारे उत्सव की असफलता का कारण हुआ है। आशा है कि आगामी वर्ष में इस की कसर निकल जायगी।

अध्यापिका वर्ग।

गत दो मास में हमारे अध्यापिका वर्ग में बहुत परिवर्तन हो गया है। श्रीमती राजदेवी जी चली गईं, हमारी संस्कृत की अध्यापिका श्रीमती हरिकुमारी बाई जी का देहान्त हो गया। जिसका हमें बहुत दुःख हुआ। उनके स्थान की पूर्ति अभी नहीं हो सकी है। अध्यापिका राजकुमारी देवी जी भी स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण एक मास की अवैतनिक अवकाश पर गई हुईहैं।

परन्तु इन स्थानों की पूर्ति इस समय बड़ी उत्तम रीति से हो गई है। आश्रम में कई एक देवियां मेट्रन का काम करने के लिये आगई हैं अतः कुमारी चन्द्रवती जी, कुमारी सीता देवी तथा कुमारी सरस्वती देवी (जिन्हों ने पिछले दिनों हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा की थी) बड़ी उत्तमता से श्रेणियों की पढ़ाई करा रही हैं। श्रीमती न्यादरी देवी भी अपनी श्रेणी की पढ़ाई अच्छी तरह करा रही हैं और स्वयं भी अपनी विद्या की उन्नति के हेत पढ़ा करती हैं। इनके अतिरिक्त ज्वालापुर महाविद्यालय के स्नातक पं० राम अवतार शर्मा शास्त्री जी की धर्म पत्नी तथा हमारे कांगडी गुरुकुल के प्रो० देवशर्मा जीकी भगिनी बुद्धिमती जी भी लगभग दो मास से गुरुकुल की सेवार्थ समय दे रही हैं। पढ़ाई कराने के अतिरिक्त सिलाई इत्यादि की शिक्षा भी इन्हों ने बड़ी उत्तमता से दी है।

अच्छा सूत कातने पर पारितोषिक।

इस मास में हमारे डाक्टर तुलसीराम जी से ५) रु० इस लिये मिले हैं कि जो ब्रह्मचारिणी सब से अच्छा सूत काते उसे इनाम दिये जांय। बहुतेरी कन्यायें सूत कातना सीख रही हैं।

श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दि महोत्सव।

जिन कन्याओं के संरक्षक मार्ग व्यय भेज देंगे वह सब कन्यायें इस महोत्सव पर गुरुकुल की ओर से जावेंगी। उन के ठहरने आदि का प्रबन्ध हो रहा है। उस अवसर पर १० दिन के लिये गुरुकुल में अवकाश रहेगा।

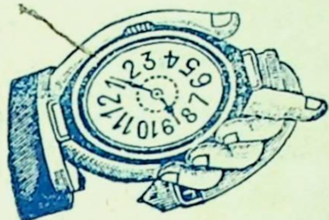
The World's Record Timekeeper

To the intending purchasers of a sound, strong and elegant timekeeper, we would strongly recommend our well known

No. 1001.

ELECTRO GOLD PLATE WRISTLET WATCHES

This is the very newest style wristlet watch. These watches are artistically finished of the best workmanship, and are guaranteed for



3 years. Their average daily variation, when used with proper care, is 1 to 2 second, a result which has never been surpassed by watchcs of much higher prices.

Price, Rs. 7-8-0, with Strap or Bracelet for Radium Dial, Re. 1-8-0 Extra.

N. B.—*Purchaser of 3 Watches at a time. will get one German-made 4-in. dial Alarm Timepiece free.*

The Most Fascinating Perfume

LILY OF THE VALLEY

Free from Alcohol or Spirits, and hence can be used by all without any restriction. It possesses the most fragrant smell of the different kinds of fine flowers. Notice minutely the delightful-like freshly plucked flowers-smell every now and then. In lasting qualities, it is unsurpassed. ask for,



LILY OF THE VALLEY

1 oz. Bottle Re.1-8-0
1 Dram Bottle 0-12-0
½ Dram Bottle 0-8-0

Sample Bottles, Doz. Re. 1-4-0
" " Each 0-2-0

Hurry up to

PETER WATCH CO.,
P. B. 27, MADRAS

भारत सरकारसे रजिस्ट्री किया हुआ

४७००० एजेन्टों द्वारा विकना दवा की सफलता का सब से अच्छा प्रमाण है



(विना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिस सेवन करने से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द बालकों के हरे पीले दस्त इन्फ्लूएँजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है। मूल्य ॥) डा० ख० १ से २ तक =)



दाद की दवा

विना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घण्टे में आराम करने वाली सिर्फ यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।) डा० ख० १ से २ तक =) १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।



दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताजा और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मँगाकर पिलाइये, बच्चे इस खुशी से पीते हैं। दाम फी शीशी ॥।) डा० ख० ।=)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता—सुखसञ्चारक कम्पनी मथुरा।

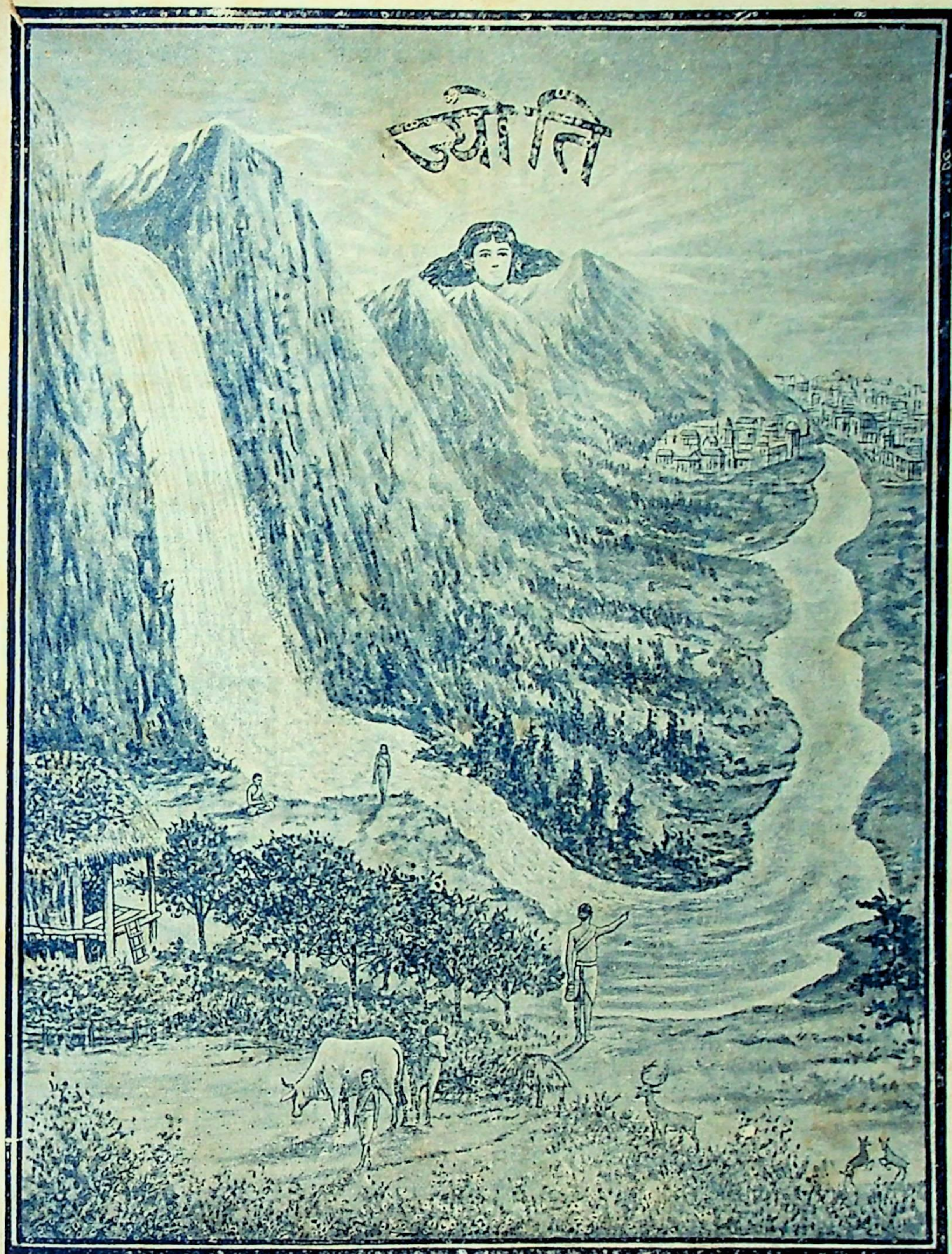
अलङ्कार का शताब्दि अङ्क

श्री दयानन्द जन्म शताब्दी के समय 'अलङ्कार' का शताब्दी अङ्क बड़ा सजधज के साथ निकलेगा। उसमें १०० पृष्ठ रहेंगे। गङ्गा की बाढ़ से गुरुकुल के जो मकान टूट गये हैं उनके चित्र दिये जायँगे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के चार चित्र रहेंगे—एक बाल्यावस्था का, एक वकालत के समय का, एक गुरुकुल के आचार्य्य होने की अवस्था का और एक अब का। विदेश में गये स्नातकों के भी दिये जायँगे। बड़े योग्यतापूर्ण लेखों का संग्रह रहेगा। गुरुकुल कांगड़ी के सायंस के प्रोफेसर महोदय ने हवन पर नये २ तजुर्बे किये हैं, वे सब भी एक लेख में दिये जायेंगे। इस अङ्क के लिये ऐसे २ लेख लिखवाये गये हैं जो आर्य्यसमाज के सिद्धान्त के गौरव को बढ़ाने वाले हैं। इस अङ्क के लिये जिस प्रकार मांग आ रही हैं उस से पता चलता है कि आर्य्य भाइयों में कितनी श्रद्धा भक्ति तथा समाज से प्रेम है। यदि आपका आर्डर देर में आया तो सम्भवतः आप को निराश होना पड़े अतः इस पत्र के मिलते ही हमें सूचना दीजिये कि आप की समाज के नाम कितने अङ्क वी० पी० द्वारा भेजे जायें। आप वी० पी० द्वारा न मगवाना चाहें तो रुपया अभी से पेशगी भेज देने की कृपा करें एक प्रति का दाम आठ आना रखा गया है, आप देर न करेंगे।

अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दिल्ली में छपा।
और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५]   माघ १९८१—फरवरी १९२५   [खण्ड ५, संख्या १०]



वार्षिक मूल्य ४।।)
प्रति संख्या ।।)

सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूचो

—:(*):—

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता हैं।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्वर से अक्टूवर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

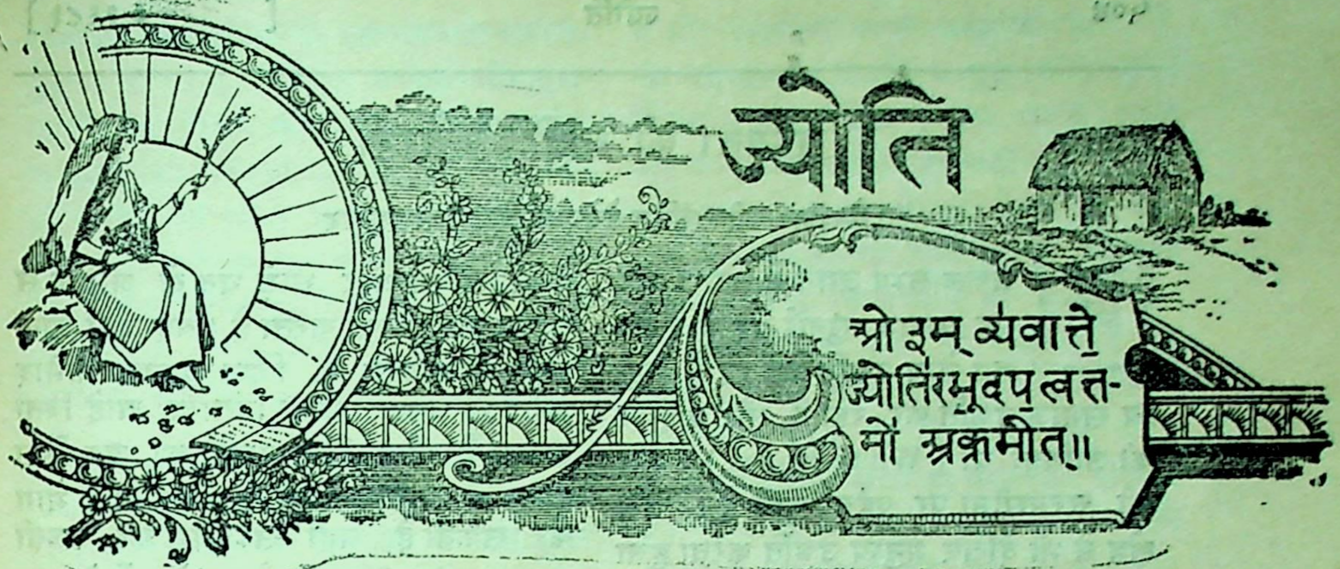
(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआडर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, **'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये**



वर्ष ५ | माघ १९८१—फरवरी १९२५ ई० | संख्या १०

हे गायक ?

ले०— श्रीयुत रामपरीक्षण त्रिपाठी "प्रमुख"

हे गायक ? मेरी बीणा के सभी तार उच्छिन्न हुये ।
नहीं सुनाई पड़ता कल-रव, नीरव में आसन्न हुये ॥
टूट गईं सब तातें आतें, एक एक कर व्यर्थ हुईं ।
गृह की केवल मैली कोनें, बस उन की रक्षार्थ हुईं ॥

(२)

कुशल वाद्यकारों के घर २, द्वार द्वार मैं भटक रही ।
सुलझाने के लिये गई मैं, और उधर ही अटक रही ॥
कहूँ ? करूं क्या ? इस निर्धन का, धन ही सब बेकार हुआ ।
मुझ अबला की कातर बाणी, निर्जन-थल आधार हुआ ॥

(३)

घूम घूम प्रतिद्वार नाथ ? मैं, आई हूँ अब तेरे द्वार !
ठीक ठाक करके 'कर ले लो' ! हे बीणाधर जगदाधार !
'हृदय' घोर निद्रा निद्रित है, सत्वर इसे जगा दो हे !
अपने उस सुप्रभात राग में, बीणा मधुर बजादो हे !

सभ्यता की सच्ची कसौटी

लेखक—श्री० पंडित देवेश्वर सिद्धान्तालङ्कार

आजकल सभ्य जगत में चारों ओर यह आवाज़ सुनाई पड़ती है कि हम लोग उन्नति कर रहे हैं, मनुष्य समाज उन्नति कर रहा है, और पश्चिम की जातियां या (White Races) उन्नति की चरमसीमा पर पहुंच चुकी हैं। जिस क्षेत्र में भी देखिए मनुष्य उन्नति करता हुआ दीखता है, देश और काल की कठिनाइयों और दूरियों को मनुष्य ने जीत लिया है। हज़ारों मीलों का सफ़र दिनों में और सैकड़ों का घण्टों में तै कर लिया जाता है। आकाश के विस्तीर्ण वायुमण्डल और गंभीर सागर के कोनों को मनुष्य ने खोज डाला है। भूमि के गहरे पेट के अन्दर हज़ारों फ़ीट की नीचाई पर दबे सोना, चांदी और हीरा मोती आदि बहुमूल्य पदार्थों को खोद निकाला है। बढ़ती हुई जन संख्या और उस की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भूमि की उपजाऊ शक्ति को नाना प्रकार के कृषि के यन्त्रों और वनस्पति तथा कृषि शास्त्र के साधनों से कई गुणा कर दिया गया है।

सभ्यता का वर्णन करते हुए कहा जाता है कि सभ्य मनुष्यों की संख्या में जहां वृद्धि होती है वहां उन की आवश्यकताओं में भी वृद्धि होती है, और उस जाति वा देश में सभ्यता अपनी चरमसीमा को पहुंची हुई समझनी चाहिए जहां इन आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रबन्ध भी हो और मनुष्य की सम्पत्ति और भोगसामग्री उस की इच्छाओं के अनुपात में पाई जावे। सभ्य मनुष्य प्रकृति की शक्तियों को खोज कर उन पर अधिकार वा प्रभुत्व प्राप्त करता है। नाना प्रकार के कला-कौशल का अधिकार कर के थोड़ी शक्ति और थोड़े धन से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करता है। वह जहाँ जाना चाहे जा सकता है, जिस प्रकार आमोद प्रमोद से अपना जीवन बिताना चाहे बिता सकता है और जिस पदार्थ का जब जिस प्रकार से उपयोग वा भोग करना चाहे भोग कर सकता है, यही सभ्यता की सच्ची व्याख्या समझी जाती है। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि मनुष्य इन्द्रियों के विषयों पर पूरा प्रभुत्व प्राप्त करले और इन्द्रियार्थों को इच्छानुसार भोग सके यह सभ्यता का आधुनिक लक्षण है।

मनुष्य भोग करता है और उससे नए २ रोग उत्पन्न होते हैं, पर साथ ही साथ इन रोगों का इलाज और औषधि भी आविष्कृत हो रही हैं। मनुष्य जाति रोगों और बीमारियों से दुःखी है, पर साथ ही साथ डाक्टरों की संख्या भी बढ़ रही है, इस का नाम सभ्यता कहा जाता है। मनुष्य का चित्त अकेले एकांत में नहीं लगता, इस से थियेटर, सिनेमा और खेल तमाशे राग रंग और तत्सम्बन्धी समूहों, सोसाइटियों संगठनों की वृद्धि होती है। बिजली, भाफशक्ति और गैस शक्ति इन आमोद प्रमोदों को सुगम और सुन्दर बनाने में मनुष्य की दासता स्वीकार करती है, इस प्रकार मनुष्य अपने मानसिक थकान और मानसिक उदासी रूपी क्लेश पर अधिकार प्राप्त करता है, इसे सभ्यता का नाम दिया जाता है। ब्रह्मचर्य के अभाव, स्त्री पुरुषों के लैङ्गिक संबन्धों के बिगड़ने, भोगवाद की प्रवृत्ति बढ़ने और विषय सेवन से गनोरिया, सिफ़लस, पागलपन के रोग बढ़ते हैं और साथ २ नई औषधियां और पागलख़ाने वा Public

Houses बनाए जाते हैं, इस का नाम सभ्यता पुकारा जाता है। निर्बल अयोग्य और दुराचारी लोग विषय की गुलामी करके मर्यादा से च्युत हो सन्तान उत्पन्न करते हैं और उन बच्चों को सीधे मार्ग पर लाने के लिए शिक्षा देने के लिए, सदाचारी बनाने और उन को सच्चे नागरिक सभ्य बनाने के लिए सुधार पाठशालायें राज और जाति की तरफ से खोली जाती हैं इसका नाम सभ्यता है।

देश की जन संख्या बढ़ती है। अपने देश में रहने को स्थान नहीं, खाने पीने की पर्याप्त सामग्री नहीं। जाति के लोग दूसरे मुल्कों में जाकर बसते हैं उन्हें Colonise करते हैं, उस देश के आदि लोगों को गोलियों का शिकार बनाते हैं उन्हें असभ्य, जंगली और पशु बताकर उन का संहार करते हैं, उन के देश पर अपना राज्य जमाते हैं। उन को अपने घरों से बाहर निकाल देते हैं। यदि वह लोग भी कुछ दृढ़ हों, मुकाबिला करने के योग्य हों, तो उन्हें अपनी शरण में Protection में लेकर उन्हें भी अपने सदृश सभ्य बनाने के उदेश्य Mission की दुहाई देकर उन के देश को अपना Protectorate बना लेते हैं। उनके देश की प्राकृतिक सम्पत्ति खनिज दौलत और भूमिजन्य अनाज को अपनी मलकीयत बनाकर उनको अपने आधीन कर लेते हैं। आधीन जाति को बात २ में अपने इन सभ्य स्वामियों की आज्ञा, सहायता और सलाह लेनी पड़ती है। इसको सभ्यता, Progress वा Extension, उन्नति और वृद्धि कहा जाता है। यह वृद्धि अवश्य है, उन्नति ज़रूर है, पर एक तरफ़ी है, एक जाति मरती और उसकी हड्डियों, मांस, लहू और प्राण पर दूसरी मनुष्य जाति जीती है। एकके प्राण, संपत्ति, बल का क्षय, नाश और हनन किया जाता है और दूसरे का उदय अभ्युदय होता है, सो यह सभ्यता, उन्नति, अभ्युदय Onesided है यह मानना पड़ेगा। इस पर ये सभ्य मनुष्य यों कहते हैं कि हां कहीं उन्नति और कहीं अवनति अवश्य हो रही है पर On the whole संपूर्ण तौर पर विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि उन्नति ही हो रही है।

ठीक है, यह बात तो सच ही है कि अपना पेट भर जाने पर तो सारा संसार सुखी और तृप्त ही दीखता है और अपने मरने पर दुनियां सारी ही मरती हुई दीखती है। "आप मरे तो जग परलो"। जब योरप में १९१४ में महाभारत का युद्ध छिड़ा और फ्रांस और इंग्लैण्ड को जर्मनी ने बुरी तरह दबाया और परेशान कर दिया तब इन देशों ने सभ्यता के उज्ज्वल नाम पर मनुष्य जाति के संहार, संसार के सत्यानाश, स्वतन्त्रता के समूलोच्छेदन हो जाने की दुहाई देकर उन देशों से सहायता मांगी थी जो इनके आधीन हैं। क्या आश्चर्य है, वाह री सभ्यता! तू कैसी विचित्र रूपा नटी है, जिन देशों की स्वतन्तत्रता का हरण इन देशों ने आप किया उसी स्वतन्त्रता की दुहाई देकर इन देशों से अपरिमित जनबल और धनबल भी लिया, इस खेल का, इस जादू भरी पुस्तक का Tit'e सभ्यता Civilization है।

कहा जाता है कि हमारी इच्छा का कोई जाति, देश वा प्राणी प्रतिघात नहीं कर सकता, हमारे Citizens नागरिक सब स्थानों में सब कालों में ज़मीन के ऊपर नीचे पानी के तलपर और समुद्रों की तहों में आसमान के कोनों और Mount Everestकी चोटियों पर धावा कर सकते हैं, इसलिए हम सभ्य हैं। प्राचीन काल में जब लोग जंगलों में रहना शहरों म रहने से उत्तम समझते थे, जब लोग शरीर को आंतरिक शक्तियों की

वृद्धि, उन्नति और संयम को बाह्य प्राकृतिक शक्तियों पर विजय से श्रेष्ठ गिनते थे, उस समय राजाओं को जो सुख बड़े प्रयत्न और पुरुषार्थ से मिलते थे वह सुख आज यूरोप वा अमरीका के एक सभ्य आदमी के घर में मौजूद हैं। वह जब चाहता है आग जल जाती है, बटन दबाते ही रोशनी होजती है, भोजन पक जाता है, आप ही प्लेट्स मेज़ पर आजाती और भोजन कर चुकने पर धुल जाती हैं। इशारा करने पर कमरा साफ़ होजाता है। जिस से चाहो फ़ोन पर झट बात चीत करलो, जिस से चाहो मिल लो, जिस स्थान को चाहो जाकर देख लो, घर बैठे २ सुन्दर राग और वक्तृतायें सुन लो— घर बैठे चाहो तो पुस्तकों, Records, Cinema से दुनियां की सैर करलो—इसका नाम सभ्यता है। संक्षेप यह कि इच्छायें करो, फिर करो और फिर करो और उन्हें पूरा करते चले जाओ।

पर शोक कि मनुष्य के अन्दर की शक्ति वृद्धि पर इन सभ्यताभिमानियों को अभी विजय प्राप्त नहीं हुई, और इस एक पराजय ने सब विजय फीकी कर रक्खी है—भोग करते २ बुढ़ापा और मौत आजाती है और इच्छायें अभी अन्दर ही शेष रह जाती हैं, इसका इलाज क्या हो? लोग योग की सिद्धियों से जो करिश्मे तथा चमत्कार करते वा शक्तियाँ प्राप्त करते थे वह आधुनिक सभ्य आदमी ने प्रकृति विजय से प्राप्त कर ली हैं—पर पुराने योगियों ने जीवनी शक्ति की वृद्धि और संयम वा Energy its control and Conservation का जो मूल मंत्र खोज निकाला था, वह आजकल के सभ्य आदमी से छिपा हुआ है। सभ्य मनुष्य ने इस बात का यत्न किया कि जीवनी शक्ति (Human life) की बनावट का पता लगाया जावे, यह मालूम किया जावे कि किन २ तत्वों (Elements) के किस अनुपात (proportion) में संयोग से यह जीवन-शक्ति बनी है और कैसे (Laboratory) वा भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में इसे बनाया जा सकता है। परीक्षण किये गये और फिर परीक्षण किये गये, आशा भरी निगाहों से टकटकी बांधकर सभ्य-मनुष्य इन परीक्षणों की तरफ देखता रहा, उसने विश्वास किया कि उसके वैज्ञानिक ऋषि जब इस मूल मन्त्र का दर्शन कर लेंगे तब ईश्वर की इस संसार में कोई भी आवश्यक्ता न रहेगी और ईश्वर के स्थान पर मनुष्यों को बिठा दिया जावेगा, उस समय सभ्यता अपनी चरम सीमा पर पहुंच जावेगी। पर संयोग वश उसकी आंखें खोलने के लिये इस यत्न में उसको निराशा उठानी पड़ी।

यह ठीक है कि प्राकृतिक शक्ति प्राप्त करना विजय है, सामर्थ्य है, पर प्राकृतिक संपत्ति और भोग के साधनों के प्राप्त हो जाने पर उसी अनुपात में भोग लालसा का बढ़ते जाना और भोग भोगने में आन्तरिक शक्ति का क्षय होते जाना, पर भोगवासना और लालसा न हटना यह पराजय का चिन्ह है। पाठक गण! यहीं पर पश्चिमी सभ्यता पराजित हुई है। मनुष्य की इच्छाएं बढ़ रही हैं, भोग साधन, संपत्ति बढ़ रही है, भोग भोगे जा रहे हैं, पर लालसा की आग बुझने की जगह दमक रही है "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" यह मनु वाक्य स्मरण हो आता है और भर्तृहरि जी का बचन—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।
आशा न जीर्णा वयमेव जीर्णा॥

याद आता है।

मनुष्य, जीवनयात्रा की इस मंज़िल पर पहुंच कर सच्चे दिल से जिज्ञासा करता है कि यदि जीवन की, सफलता की, यह

कसौटी नहीं तो और क्या है ? मनु भगवान् उत्तर देते हैं —

यमान् सेवेत् सततं न नियमान् केवलान्बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान्भजन् ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य तथा अपरिग्रह ये यम हैं। मनु कहते हैं कि यमों का सेवन करने वाला मनुष्य वा जाति पतित नहीं होती, उन्नति ही करती रहती है। पर केवल नियम अर्थात् बाहर की शुद्धि सफ़ाई, परिश्रमी जीवन से प्रकृति पर विजय भोग सामग्री के संग्रह, (Nature Study) और तज्जन्य विजय से अपने ऐश्वर्य्य पर भरोसा वा विश्वास से ही कोई जाति सदा उन्नति की तरफ नहीं जा सकती। मनु की राय में सभ्यता की कसौटी सब प्राणियों से आत्मवत् व्यवहार, अन्दर की शक्तियों पर विजय, आंतरिक शक्ति का सञ्चय और बाह्य भोग सामग्री की लालसा का नाश और संग्रहहीनता वा त्याग है।

पहिला यम अहिंसा है, जिसका अर्थ किसी देश, किसी भी काल और किसी भी निमित्त किसी प्राणी को दुःख वा क्लेश न देना, किसी का नुकसान वा हनन न करना है। और मनु के यहां मानवी सफलता वा सभ्यता की कसौटी अर्थात् जांच इस बात से होती है कि कौन मनुष्य कितना अहिंसक है-- इसको सार्वभौम धर्म कहा गया है और इसकी प्रतिष्ठा तब होती है जब कोई मनुष्य किसी भी अवस्था में किसी प्राणी की हिंसा न करे -- यह है सभ्यता की कसौटी। पर आजकल सभ्यता की कसौटी किसे समझा जाता है ? आज जो जाति, जो देश वा जो मनुष्य समुदाय, सब देशों, सब कालों और पृथ्वी के आठों कोनों पर अपना ऐसा प्रभुत्व जमा ले कि जब चाहे जिसे रोक ले, घेर ले, कैद कर ले, मार डाले और जहां और जब चाहे अपनी तोपें, हवाई जहाज़, स्टीमर क्रूज़र, सेनायें भेज दे; जिसका और जितनों का चाहे खून बहा दे उसे उतना ही सभ्य गिना जाता है। जापान जब तक रक्तवाहिनी विद्या में अकुशल रहा, असभ्य था, पर जब उसने रूस जापान युद्ध में सहस्रों और लक्षों का कामयाबी से रक्तपात करके दिखा दिया उसकी गिनती सभ्य देशों में होने लगी। एक पाश्चात्य विद्वान् ने ही लिखा है कि आजकल दूसरों को हानि पहुंचाने (Harm) करने की शक्ति से (civilization) की परख की जाती है।

मनु ने सत्य को सभ्यता की दूसरी कसौटी गिना है। सत्य के अर्थ यथार्थ बात के यथार्थ रूप में यथार्थ भाव से प्रचार वा कथन के हैं। किसी स्वार्थवश किसी बात को कमोबेश वा दूसरा रंग देकर कहना, प्रचार करना, सभ्यता नहीं अपितु मनु के अनुसार असभ्यता में शामिल है। किन्तु आजकल भाषा का, पांडित्य और उन्नति इस बात में समझी जाती है कि असली भाव को इस तरह छिपा लिया जावे कि दूसरा प्रसन्न भी हो जावे, उसे वस्तुतः प्राप्त भी कुछ न हो और अपना काम भी निकल जावे। दूसरे को केवल सूखी आशाओं आगामी पूरी न होने वाली उम्मीदों पर ही जिला २ कर वक्त गुज़ार दिया जावे। ऐसे लेखों को Deplomatic dispatches या Political Speeches नाम से पुकारा जाता है। और जो मनुष्य इस कला Arts में प्रवीण हो उसे सभ्य States man कहा जाता है और वह अन्य सरल मनुष्यों की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय और पूजनीय समझा जाता है। शान्ति के समय सामान्यतः और युद्ध के समय विशेषतः खबरों को ऐसा रंग देकर छापा जाता है जिस से

अपनी स्वार्थ सिद्धि हो जावे और शत्रु का नुकसान दिखाया जावे । इस प्रकार के हुनर को सभ्य जातियों में ख़ास Art समझा जाता है । इस प्रकार के पत्र संपादकों Editor की ख़ास कदर है । सभ्य लोग इस प्रकार के पत्रों के मालिक बनने, उन को सहायता देकर Patronise करने और इस तरह Public Opinion वा जनता की सम्मति को अपने वश करने तथा उसका अपनी इच्छानुसार परिवर्तन तथा Mould करने में विशेष गौरव समझते हैं। योरप वा अमरीका में इस काम के लिए बहुत सा धन व्यय किया जाता है। बड़े भारी २ संस्थायें Organisation हैं । धनी लोग और सरकारें अधिक से अधिक समाचारपत्र अपने हाथ में रखने का सब प्रकार से यत्न करते हैं और इस प्रकार Public Opinion को अपने हाथों में रखते हैं। भिन्न २ देशों के राज प्रबन्ध Governments इसके लिए जुदा २ Departments रखते हैं, Publicity Board or Bureau खोलते हैं । युद्ध के दिनों में यह Art ख़ास उन्नति पर था ।

हनन शक्ति को बढ़ाने के लिए सभ्य जातियों में जहां सेनायें बढ़ाई जाती हैं, वहां तोपें, बन्दूकें, मेशीनगनें, हवाई जहाज़, क्रूज़र्स सबमेरीन्स और डिस्ट्रोयर आदि अधिक संख्या में तैय्यार किये जाते हैं । असत्य समाचारों के प्रचार के लिए अपने समाचारपत्र और प्रकाशन कार्यालय खोले जाते हैं। अपने स्वार्थ के उपयुक्त इतिहास ग्रंथ और राजनीति के ग्रंथ विद्वानों से तैय्यार कराए जाते हैं और सभ्य जातियां अपने आधीन देशों के शिक्षणालय, स्कूलों और कालिजों के अंदर उन पुस्तकों को पढ़ाती हैं । स्वजाति तथा स्वदेश के स्वार्थ के लिए दूसरे देशों के इतिहास, धर्म तथा सभ्यता को हीन दशा में दिखलाया जाता है । यह विचित्र दिमाग़ी यत्न भी सभ्यता प्रचार में शामिल है । इस प्रकार पुरातन आर्यों की सभ्यता की कसौटी जो मनु ने गिनाई है और आजकल के सभ्यजगत् की उन्नति की परख़ में भारी भेद है । आइए दो तीन और कसौटियों की जांच पड़ताल करें ।

मनु ने उन्नति वा उन्नत तथा सभ्य अवस्था की तीसरी परख़ व्यक्ति के जीवन में अस्तेय "चोरी के अभाव" को बतलाया है । दूसरे के धन, माल, संपत्ति को छीनना वा वा दूसरे के घर, नगर, ग्राम वा देश पर जाकर प्रभुत्व जमा बैठना यह सब चोरी के अंदर शामिल है । किसी मनुष्य वा जाति के यत्न, काम वा मज़दूरी से पैदा किए अनाज, रुई, वा खनिज संपत्ति सोना, चांदी, लोहा, कोला आदि धातुयें वा किसी देश की खानों पर किसी नीति वा ढंग से कब्ज़ा कर लेना वा अन्याय और धोखे के व्यापार से दूसरे का माल वा संपत्ति अपनालेना वा दूसरे को गाफ़िल सुप्त तथा प्रमत्त देख कर उसकी चीज़ पर कब्ज़ा कर लेना यह सब चोरी के अन्दर शामिल है । और विचार पूर्वक ऐसी चोरी से परे रहना, बाज़ रहना यह मनु के यहां सभ्यता की परख़ है । महाराजा रामचन्द्र लङ्का को विजय करते हैं-पापी रावण का हनन करते है पर लंका नगरी का राज्य उसके भाई विभीषण को उसी समय बगैर किसी शर्त के वापिस कर देते हैं। पर आज लंका को जीता है और उसे भारत साम्राज्य से निकाल कर Crown colony बना लिया जाता है। जो जाति जितने अधिक देश अपने काबू में कर सके और अधिक मुल्कों को हज़म करले वह उतनी ही अधिक सभ्य है। आज सभ्यता दूसरों को स्वतन्त्र कराने में नहीं अपितु,

परतन्त्र करने और कर सकने की शक्ति में मानी जाती है।

मनु के अनुसार सभ्यताका चौथालक्षण ब्रह्मचर्य यानी Sexual Restraint and purity of sexual Relation है। अपनी विषयवासना और ध्यान को रोक कर आत्मिक उन्नति तथा दूसरों की सेवा वा परमार्थ में समय तथा शक्ति लगाना ब्रह्मचारी का काम है। विवाह करके उत्तम सन्तान उत्पन्न करना, ऋतुगामी होना, विषय के लिये विषय का सेवन करना, पतिव्रत धर्म और एक पत्नीव्रत धर्म का पालन करना ब्रह्मचर्य के अर्थ हैं। पर आजकल के सभ्य संसार में जिस समाज में जितनी ही स्वच्छन्दता और स्वतंत्रता, स्त्री पुरुष के सम्बन्ध विषयक, पाई जावे उतना ही उस देश को उन्नत समझा जाता है। जो जिस से चाहे विवाह और Sexual सम्बन्ध पैदा कर ले और जब चाहे फिर उसे छोड़ दें। स्वच्छन्द जो जिस के साथ चाहे फिरता रहे इसे सभ्यता की एक अवस्था समझा जाता है। यहां तक किकई तो विवाह संबन्ध को भी बंधन और मानवी स्वतन्त्रता पर एक नाजायज़ हस्ताक्षेप समझते हैं। सन्तान उत्पन्न करने का कौन अधिकारी है? और समाज तथा राज्य का यह अधिकार है कि दुराचारी, रोगी और कुकर्मी तथा पापियों को सन्तान उत्पन्न करने से रोका जावे, इस पर आज आवाज़ उठाना व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में दस्तन्दाज़ी करना समझा जाता है।

मनु के यहां सभ्यता की पांचवी कसौटी अपरिग्रह को कहा है। अपरिग्रह के अर्थ जीवन की आवश्यकताओं को कम करना और भोग सामग्री का यथाशक्ति न्यून ग्रहण वा त्याग है। प्राचीन आर्यों में जो जितना त्याग करता था उसकी महिमा उतनी ही अधिक होती थी, उसको उतना ही अधिक मान दिया जाता था। मनुष्य की उन्नति उसके स्वार्थ त्याग आत्मसंयम, आत्म विश्वास, और स्वात्मनिर्भरता से की जाती थी· पर आज समय कुछ बदल गया है। आज पाश्चात्य अर्थ शास्त्रज्ञों का यह सिद्धान्त है कि जिस मनुष्य वा जाति की आवश्यकतायें अधिक हैं और वह मनुष्य वा जाति उन आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है वह सभ्य है- आवश्यकतायें बढ़ाने से उन की पूर्ति के लिए उद्योग, धन्धों और कला कौशल की उन्नति होती है-इस लिए बढ़ी हुई आवश्यकतायें तथा भोग सामग्री की अधिकता सभ्यता की अवस्था समझी जाती है। आजकल की सभ्यता का वर्णन एक लेखक ने इन शब्दों में किया है कि "प्रत्येक सभ्य मनुष्य जिस स्थान पर वह रहता है, वहां से दूसरी जगह चला जाना चाहता है और जो कुछ उसके पास है उस से अधिक सामग्री के संग्रह करने में व्याकुल है"। कोई भी अपनी वर्तमान अवस्था तथा स्थिति से सन्तुष्ट नहीं। न लखपति अपने धन से सन्तुष्ट है और न करोड़पति अपने भाग्य को सराहता हुआ दीखता है। हज़ारपति लखपति को ध्यान में रख कर जैसा व्याकुल है, लखपति करोड़पति को देख देख के वैसे ही तरस रहा है।

आजकल की अवस्था इस लिये शोचनीय कि संग्रह अंदर की Plane अर्थात् अतरात्मा में नहीं किया जाता बल्कि वाह्य जगत में प्राकृतिक पदार्थों का किया जाता है और वह बाहर ही टिका रहता है, तज्जन्य आनंद मन में निवास नहीं करता। पुराने लोग आनंद, सुख तथा शान्ति का संग्रह अंतरात्मा में करते थे और उनका आनंद तथा शान्ति निरपेक्ष होती थी, उसके लिए वाह्य भोग

सामग्री की आवश्यकता नहीं होती थी इसी शुद्ध उच्च भाव को श्रीकृष्ण महाराज ने यों प्रकट किया है :—

यं सन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ।
न ह्यसंन्यस्त सङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥

प्राचीन आर्यों के यहां सन्यास भिखारीपने का नाम न था । निर्धनता वा दरिद्रता को त्याग नहीं कहते थे, अपितु, अन्दर बल के संचय और शक्ति की प्राप्ति पूर्वक वाह्य जगत की भोग सामग्री से निरपेक्ष हो जाने का नाम ही सच्चा सन्यास वा त्याग था। पाश्चात्य अर्थ-शास्त्रज्ञों से यह बात छिपी हुई नहीं कि जिस के जीवन की आवश्यकतायें बढ़ी हुई हैं उसी की दृष्टि में भोग सामग्री की कीमत भी रहती है । भरे पेट के आगे भोजन और तृप्त के आगे पेय पदार्थों का कुछ भी मूल्य नहीं होता । कवियों ने कहा है :—

"निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः"
"मनसि च परितुष्टे कोर्थवान् को दरिद्रः"

संसार की सब चीज़ और यत्न मन के संतोष, भटकते हुये मन के निरोध और एकाग्रता के लिये हैं जिस का मन निरुद्ध है उसके लिये इन की कुछ भी आवश्यकता नहीं । भोग सामग्री की अधिकता तथा आवश्यकताओं की बहुलता सभ्यता का लक्षण है, यह थ्योरी भी भोगवादी जातियों ने अपने जीवन को संगत बनाने के लिये गढ ली है । इसमें एक और बात विचारणीय है । यह कुछ आवश्यक नहीं कि मनुष्य की आवश्यकताओं के साथ २ उसकी आंतरिक योग्यता और आनन्द भी बढ़ जावे । बहुत हालतों में प्रायः उलटा ही होता है । मनुष्य ज्यों २ संसार में अधिक फँसता हैं, भोग सामग्री के संचय के लिये अधिक व्याकुल होता है, त्यों २ उसकी आंतरिक योग्यता और उसके आनन्द में कमी आ जाती है, और "भोगा न भुक्तावयमेव भुक्ताः" यह अनुभव पीछे से होने लगता है । अब पाठक ने जान लिया होगा कि मनु ने अपरिग्रह को क्यों सभ्यता की कसैाटी गिना है ? पुराने भारत में त्यागी ब्राह्मण राजसभाओं और न्यायालयों के नियन्ता होते थे, पर आज कल धनी Lords Upper Chambar parliament के मैंबर होते हैं ।

इस प्रकार सभ्यता की सभी कसैाटियां उलट गई हैं । पाठकगण अगर बिचारेंगे तो पता चलेगा कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह जिन को मनु ने मनुष्य के आवश्यक धर्मों में गिनाया है यह सब विशेषतः सामाजिक धर्म हैं । इसी कारण इन पर इतना अधिक वल दिया गया है । बिचार करने से यह भी प्रतीत होगा कि जातीय स्वार्थ Nationalism के सिद्धान्त ने बहुत कुछ उपद्रव मचाया है । इन बड़े २ युद्धों का कारण, इस महती हत्या के आधार में यह National love ही है । जिन बातों को एक व्यक्ति के जीवन में पाप समझा जाता है उन्हीं दुर्गुणों को- यथा धोखा, चालाकी, मनुष्य हत्या, स्त्री तथा बाल वृद्धों का हनन आदि तक को युद्ध के समय - जब एक जाति वा देश दूसरे से भिड़ जाता है- धर्म में गिना जाता है यह आश्चर्य्य की बात है । सच्ची सभ्यता का आदर्श Nationalism नहीं अपितु Internationalism अन्तर्जातीय प्रेम होना चाहिये । भारतीय कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है:—

"उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्"

इस प्रकार हम अन्त में इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि सभ्यता की सच्ची कसैाटी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यही पांच हैं जिन को योग दर्शन

कार मुनि पतञ्जलि जी ने देश काल और निमित्त की हद्दबन्दी से बाहर होने पर सार्वभौम धर्म कह कर पुकारा जाता है। हम अपनी जाति के अन्दर या अपने धर्म वालों के साथ न्याय, दया और प्रेम से बर्त्तेंगे पर अन्यों से धोखा, द्वेष और उनकी हिंसा भी करेंगे. यह बात पातञ्जलि ने धर्म रूप से स्वीकार नहीं की और यही सभ्य व्यवहार की सच्ची कसौटी है। * पांच नियम जो कि वैयाक्तित धर्म हैं, उनका वर्णन किसी दूसरे लेख में किया जावेगा।

चञ्चल चित्र

लेखक—"श्रीहरि"

चिन्ताचय चञ्चल चित तू कित, नित्य चकित हो फिरता है।
किन भावों से चूर चूर हो, मोह गर्त में गिरता है॥
चित्र विचित्र चातुरी तेरी, चतुरों को चकराती है।
चतुर शिरोमणि! तव चेटक की, गति मति कही न जाती है॥ १॥
मोह मन्त्र परतन्त्र हुआ नित, तन्त्र अनेक रचाता है।
सुख सम्पत्ति से अपने सम तू, अपने ही को पाता है॥
हो उन्मत्त विचरता जग में, प्रेम गीत नित गाता है।
अपने भाग्य विभव के बल पर, फूला नहीं समाता है॥ २॥
राजराज-सुरराज-सौख्य से, तुलना अपनी करता है।
अवनि गगन जल थल में प्रति पल, तू स्वच्छन्द विचरता है॥
ममता की मदिरा को पीकर, चलता और मचलता है।
छली! भली छलना से अपनी, सकल भुवन को छलता है॥ ३॥
किया जहां अनुराग नहीं तू, फिर विराग को करता है।
जिसे लगाया कण्ठ कभी फिर, अहो, उसी से डरता है॥
निज प्रेमाश्रु हार पहना कर, पूजा जिस की करता है।
कभी उसी प्राणेश द्वेष वश, कुटिल चाल में परता है॥ ४॥
जिसके चारु चन्द्र मुख का तू, समुद्र कुमुद शुभ बनता है।
कभी उसी से विषम द्वेष वश, तव विवाद भी ठनता है॥
जिसे देख तू आज हंस रहा, उसे देख कल रोता है।
जिस पथ पर तू सुमन बिछाता, उस पर कंटक बोता है॥ ५॥

*अपने घर, कुन्बे और जाति की स्त्रियों का मान और अन्यों को कुदृष्टि से देखना भी सभ्यता के अन्दर नहीं गिना जा सकता। दूसरे मज़हब के लोगों के साथ सद्‌ स्त्रियों के सत्कार के विषय में मुसलमान भाई इस से शिक्षा ले सकते हैं।

अपनी जाति के मनुष्यों के अधिकारों की रक्षा करना, संपत्ति की हिफ़ाज़त करना, पर दूसरी जाति के मनुष्यों के अधिकार छीन लेना और उनकी संपत्ति को अपनालेना भी धर्म में शामिल नहीं किया जा सक्ता। सभ्य वा पंडित मनुष्य का लक्षण एक ही श्लोक में यों किया जा सकता है:—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः॥

स्वार्थ की गहरी तह ।

ले०—ब्र० वेदव्रत गुरूकुल वृन्दावन



सारा संसार वेदनायुक्त, विह्वल और उदास क्यों ? विश्व की शान्ति क्यों भंग है ? क्या इन प्रश्नों का कोई हल नहीं ? यह वेदना असीम, सादि और अनन्त है ?

सम्पूर्ण विश्व का मानवी-समाज आज प्रकृति के सुरीले बाजे के साथ अपना तार मिलाना चाहता है । उस सुरम्य और सुन्दर उद्यान की खोज में बेतहाशा दौड़ा जा रहा है, जहां सिवा मन्द २ ध्वनि के एक भी कर्ण-कटु शब्द कर्ण गोचर न हो, जिससे वह भी अपनी तन्त्री—अपनी मुरली को उस के साथ जोड़ दूनी झंकार पैदा कर दे । वादक-गण तारों पर हाथ फेरते हैं—परन्तु प्रकृति के स्वर में स्वर मिलता नहीं दीखता, किन्तु एक भयंकर, कर्ण कटु बेसुरा आलाप सहसा फूट पड़ता है—सोचते और हैरान होते हैं । तारों को देखते और सुधारते हैं पर सूझता कुछ नहीं, कारण— कारण है स्वार्थ की गहरी तह ! हम सुधारते हैं स्वार्थ को मन में रखकर, वीणा के बेचारे तार भी स्वार्थी हैं । वे भी चाहते हैं हम पर कोई आघात न हो, हम बिना हिले डुले चुप चाप आराम और चैन से पड़े रहें, इसीलिये, वे वीणा को छोड़ पास की खूंटी के सहारे हो जाते और भयंकर बुरी आवाज़ देते हैं ।

संसाररूप मानव-समाज की वीणा जातियों के तारों से बनी है । समाज के नेता वादकगण आदेश देते हैं "स्वार्थपरता को त्यागो" इससे सारा समाज बिगड़ रहा है"—ओह ! नेता भी बेहोश हैं, शिक्षा देते साथ ही उसका खण्डन करते हैं । व्यक्ति-गत स्वार्थ त्यागने को गला फाड़ते और धुआं धार लेख लिखते हैं परन्तु—जाति गत स्वार्थ परता सिखलाते हैं । जाति को आदेश करते हैं छल, बल से अन्य जातियों को गिराने का, साथ ही घोर अत्याचार यह कि अपने को, गिराने के बाद विजयी बताने का—कुछ समझ में नहीं आता । एक सीधा सादा व्यक्ति इस विरोध, इस वैपरीत्य को किस मस्तिष्क से ग्रहण करे । बस यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति अलग २ दिखाई देता है । उन को शिक्षा दी जाती है सामा-जिक दृष्टि से स्वार्थ करने की साथ ही व्य-क्तिगत त्यागने की । अधर्म की ओर प्रवृत्ति तो पहले होती है ही बस सारे व्यक्ति स्वार्थी हो जाते हैं । तब सर्वत्र घोर अशान्ति की घोर भयावह तमिस्रा दिखाई देती है, कहीं सुख और चैन नहीं मिलता । वीणा के तारों की भांति सारे व्यक्तिसमाज का साथ छोड़ स्वार्थ की खूंटी पर आश्रित हो एक दूसरे से अलग २ हो जाते हैं । अब कहीं भी मधुर तान नहीं । सर्वत्र कटु शब्दों की वेदनामयी वाणी सुनाई देती है । जो आज श्रमजीवी और गरीब है कल यदि उसके पास कुछ धन होना प्रारम्भ होता है कि वह गरीबों और दुखियों की दुःख गाथा गाता फिरता है यत्न करता है उन बेचारों के दुःख मोचन का; परन्तु धन बढ़ा नहीं कि वह स्वयं ही उन्हीं के ऊपर अत्याचार करने लगता है जिन का कि कल प्रभात समय में वकील बना था । आज वह क्यों बदल गया? एक मात्र स्वार्थ समुद्र में गोते लगाने के कारण, क्यों ? आज वह धनी हो गया है ।

यह धन, धन ही सारे स्वार्थों का नेता है, स्वार्थ का उग्र साम्राज्य धन की ही सीढ़ी पर चढ़ कर जगत को अपना दास बनाता और अपना व्यापी शासन फैलाता है। तभी तो महात्मा दयानन्द, नहीं नहीं, महर्षि दयानन्द ने उदयपुर की मिलती गद्दी का परित्याग किया था, महात्मा बुद्ध गद्दी और राज पाट को छोड़ बन चले गये थे। यदि वे उस समय गद्दी के स्वामी बन बैठते तो उनके विशाल हृदय में स्वार्थ का स्थान हो जाता और वे आज साधारण व्यक्ति की भांति जगत् से प्रयाण कर जाते। आज उनकी मृत्यु का क्षण नास्तिक से आस्तिक किसी को न बना सक्ता। यह है स्वार्थ की गहरी और व्यापी तह जो रोम २ में व्याप रही है, जिस से प्रेम और सच्चरित्रता का सुन्दर राग नहीं सुनाई पड़ता।

स्वार्थ का प्रारम्भिक स्थान धन है, इसी से बचो। अन्यथा जगत् नियन्ता और प्रकृति की मोहमयी गोद का आनन्द न मिलेगा। अशान्ति और भी घोररूप धारण करेगी, परिणाम होगा कि देश २ में खून की नदियां बहेंगीं, भूमण्डल रक्त रंजित हो भयंकर आग बरसाने लगेगा फिर बेचारे आँसू भी उस दीर्घ दावानल को न बुझा सकेंगे। बेचारी समाज-वीणा टूटी की टूटी रह जायगी और एक भी मधुर स्वर न सुन पड़ेगा।

चिन्ता

ले०—श्रीयुत मुकन्द

आशा के पुल गये टूट, तूने जब अपना वेग दिखाया।
चिन्ते! चञ्चल-चित्त चलाया॥
बार बार मैं विह्वल होता। देख निराशा को हूँ रोता॥
दुख-सागर में खाता गोता। गात[1] बन रहा भ्रम का सोता[2]॥
हृदय-भूमि को जोता, बोता—तोष-बीज भी काम न आया।
चिन्ते! चञ्चल चित्त चलाया॥ १॥
खाना-पीना छोड़ चुका हूँ। तुझ से ही मन जोड़ चुका हूं॥
प्रेम-सूत्र भी तोड़ चुका हूँ। मित्रों से मुख मोड़ चुका हूं।
ज्ञान-घड़ा निज फोड़ चुका हूँ—सीधी-बात सुना, झुंझलाया।
चिन्ते! चञ्चल-चित्त चलाया॥ २॥
पीत-रंग तन में छाया है। चले न मुझ पर जग माया है॥
विस्मृत[3], अपनत्व—पराया है। मैंने यों धोखा खाया है॥
तूने तो खूब सताया है, निज-कृत-कर्मों का फल पाया।
चिन्ते! चञ्चल-चित्त चलाया॥ ३॥
चलने में झाईं आती है। गढ्ढे में आंख दिखाती है।
मन-कृति[4] टूटी सी जाती है। क्या भली-बात भी भाती है॥
तू बनी घोर मम-घाती[5] है, हट जा अब तू-बहुत खिजाया।
चिन्ते! चञ्चल-चित्त चलाया॥ ४॥

१-शरीर। २-स्रोत। ३-भूला। ४ कमर। ५-मारने वाली।

सुख प्राप्ति का मार्ग

ले०—श्री प्रोफेसर हरिशरण सिद्धान्तालंकार

इस संसारमें जहां सुख है वहां उसके साथ दुःख भी अवश्य है। यहां पूर्ण सुख अनुपलभ्य है। यदि सामाजिक सिद्धान्त के अनुसार यह स्वीकार कर भी लिया जाय कि स्वर्ग और नरक इसी पृथ्वी पर हैं ये कोई भिन्न लोक नहीं, तथा स्वर्ग में सुख ही होता है दुःख नहीं तो भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि स्वर्गस्थ देवों के भी 'सुख का तारतम्यमात्र' तथा सुख की सान्तता का विचार दुःखी अवश्य करता ही होगा। इसी भाव को सांख्यकारिकाकार ने द्वितीयकारिका के पूर्वार्द्ध में "दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः" इन शब्दों से स्पष्ट किया है। इस पर भाष्य करते हुए वाचस्पतिमिश्र ने लिखा है कि "ज्योतिष्टोमादयः स्वर्गमात्रस्य साधनम् वाजपेयादयस्तु स्वाराज्यस्येत्यतिशययुक्तत्वम्। परसम्पदुत्कर्षो हि हीन सम्पदं पुरुषं दुःखी करोति" अर्थात् स्वर्ग में भी एकान्तिक सुख अनुपलभ्य है।

संक्षेपतः, कहने का अभिप्राय यह है कि सुख और दुःख प्रकृति और पुरुष के मेल से उत्पन्न हुए २ औरस पुत्र हैं, ये सगे भाई हैं इनका सर्वदा सर्वत्र सहदर्शन होता है, होता रहा है और होता रहेगा। कई दार्शनिकों को तो इस संसार में दुःख का ही बाहुल्य प्रतीत हुआ है उनकी सम्मति में यहां दुःखही दुःख है सुख नहीं तथा दुःख से बचने के उपायान्तर को न देख कर उन्होंने 'आत्मघात' का ही प्रचार किया है। भारत में भी "संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित" के सिद्धांन्त को मानने वाले कवि विद्यमान हैं।

इसके विपरीत कोई ऐसा दार्शनिक नहीं हुवा जिसने संसार में सुख की अधिकता का प्रतिपादन किया हो। हां, केवल प्रत्यक्षवादी चार्वाकादि सम्प्रदायों ने इस विचार का अवश्य प्रचार किया है कि पुनर्जन्म कोई वस्तु नहीं अतः इसी जन्म में जितने संसारिक सुख भोग सकते हो भोग लो, फिर तो तुम्हारा जन्म होना ही नहीं, परन्तु इस सम्प्रदाय ने भी दुःख की सत्ता को अनङ्गीकार नहीं किया। बालक जब गर्भ में होता है उस समय भी वह अत्यन्त कष्ट में होता है। गर्भावस्था में माता के पेट में उलटा लटका हुवा वह विलाप करता है कि "यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फल भोगिनः। महो दुःखो दधौ मग्नो न पश्यामि प्रति क्रियाम्। यदि योन्याः प्रमुच्येहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्। अशुभ क्षय कर्तार फलमुक्तिप्रदायकम्।" (गर्भोपनिषत्)।

अर्थात् मैंने जो अपने परिवार के लिये शुभाशुभ कर्म किये, इस समय उन अशुभ कर्मों का फल मैं अकेला भोग रहा हूं। वे मेरे साथी इस विपत्ति के समय मेरा साथ छोड़ गये हैं। मैं दुःख के समुद्र में गोते खाता हुवा किसी उपाय को नहीं देखता जिससे कि मैं इस कष्ट से बच सकूं। यदि अब मैं योनि से मुक्त हुवा तो अशुभों के नाश करने वाले परमेश्वर का चिन्तन करूंगा। इस प्रकार गर्भावस्था के कष्ट से पीड़ित हुवा २ वह बालक संसार में आकर भी नाना विध कष्टों से दुःखी होता रहता है। संक्षेपतः, दुःख की सत्ता का अपलाप करना असम्भव है।

यह दुःख संसार में कहां से आया ? इसकी उत्पत्ति का कारण क्या है ? यह एक प्रश्न है जोकि मानवीय प्राणी के हृदय में अवश्यमेव उत्पन्न होता है तथा धर्म के प्रचारक यथाशक्ति इसका उत्तर देने का प्रयत्न करते रहते हैं । यहां उन सब व्याख्याओं को जोकि दुःख की उत्पत्ति के विषय में Theologians के द्वारा की गई हैं देना अभिप्रेत नहीं । उन सब व्याख्याओं में जो सब से उत्तम तथा युक्ति युक्त मुझे प्रतीत हुई है वह यह है कि परमेश्वर ने इस सृष्टि को पूर्ण बनाया है, इसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं वस्तुतः एक पूर्ण कारीगर से रची हुई वस्तु पूर्ण होनी ही चाहिये । जीवात्मा को अपनी उन्नति के लिये जितने साधन अभिप्रेत हैं उन सब साधनों से सम्पन्न यह सृष्टि है, तथा इसी दृष्टि से यह पूर्ण भी है । इसमें जो नाना विध कष्ट तथा विपत्तियां मनुष्य पर आती हैं, वे उसके किये हुए कर्मों के फल हैं । मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह सातों अंगों से सुसज्जित इस संसार रूपी नाट्यशाला की वेदि पर Act करता हुआ १६ मुखों के द्वारा स्थूल पदार्थों का भोग करने में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है (माण्डूक्योपनिषत्) परन्तु कर्म करने के अनन्तर उसे उस नियम रचयिता के नियमों के आधीन होकर स्वीय कर्मों का फल विवश होकर भोगना पड़ता है ।

प्रत्येक प्राणी की हृदयस्थली पर दैवासुर संग्राम (War between Gods and Satan) जारी है । देवताओं की विजय होने पर मनुष्य का वास स्वर्ग में होता है उसे सुख की प्राप्ति होती है । तथा इसके विपरीत जब मनुष्य Satan के बहकावे में आकर परमात्मा के उपदेश का पालन नहीं करता है तथा मर्यादा को लांघता है तब वह अपने पूर्व पुरुष 'आदिम' की तरह अधःपात को प्राप्त होकर नरकाग्नि के कष्टों से दग्ध होता है । कहने का अभिप्राय यह कि सुख और दुःख मनुष्य के अपने शुभाशुभ कर्मों के परिणाम हैं शुभकर्मों का फल सुख तथा अशुभ कर्मों का फल दुःख है । Predestination का सिद्धान्त जहां तर्क का सहन नहीं करता वहां दुःख की व्याख्या भी अच्छी प्रकार करने में असमर्थ होने से त्याज्य है । वैदिक सिद्धान्त यही है कि धर्म के कारण सुख होता है तथा अधर्म के कारण दुःख । बौद्धों में तो यह कर्म सिद्धान्त इतने Concrete रूप में दर्शाया गया है कि उसमें आत्मा का स्थान ही कर्म ने ले लिया है । वैदिक साहित्य में भी मनुष्य को (कर्मासि) तू कर्म है ऐसा कहा गया है । Bible का सिद्धान्त भी यही प्रतीत होता है। उसमें कहा गया है कि God अर्थात् दैवी प्रवृत्ति सुख के देने वाली है, तथा इसके विपरीत Satan अर्थात् आसुरी प्रवृत्ति दुःख के जाल में फंसाने के लिये प्रतिक्षण कटिबद्ध है ।पारसी धर्म में यही युद्ध Ormhed (God) तथा Ahrinon (Satan) में होता रहता है । इस लाभ में इसी युद्ध को War between Rahwan (good will) and Malik (the ruler) यह नाम दिया गया है । रामायण में यही दैवासुर संग्राम ' राम रावण ' (राम- आराम, आनन्द को देने वाली दैवी प्रवृत्ति तथा रावण रुलाने वाली परिणामतः कष्ट को देने वाली आसुरी प्रवृत्ति) के युद्ध के रूप में दिखलाया गया है । महाभारत में धर्मराज तथा दुर्योधन के संग्राम के रूप में इसी युद्ध का उल्लेख है ।

धर्मराज युधिष्ठिर है उसका अयोध्या नगरी में वास है । इसके विपरीत दुर्योधन सर्प-वत् कुटिल मार्ग से जाने वाला है । इस प्रकार सर्वत्र व्यष्टि तथा समष्टि में प्रजापति

के दो पुत्रों देव और असुरों में संग्राम हो रहा है। देवों की विजय से शुभ तथा सुख होता है तथा, असुरों की विजय से अशुभ तथा दुःख होता है। सारांश यह है कि 'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः" अर्थात् मनुष्य को बन्धन तथा मुक्ति स्वीय कर्मों के कारण ही होती है।

३ अस्तु, मनुष्य को अपने कर्मों के कारण सुख दुःख होता है इतना समझ लेने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि 'हम दुःख से बच किस प्रकार सकते हैं'। जब चारों ओर से दुःखों के प्रहार हों तो उस समय उन से बचने के उपाय की जिज्ञासा का उत्पन्न न होना अस्वाभाविक ही नहीं अपितु असम्भव है। यही भाव सांख्यदर्शन में 'दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदुपघातके हेतौ" इन शब्दों से स्पष्ट किया गया है। 'योगदर्शन में व्यास जी महाराज कर्मफल विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि 'अदृष्ट- जन्म वेदनीय नियत विपाक्' कर्मों के कारण मनुष्य को जन्म ग्रहण करना पड़ता है तथा जन्म के होने पर सुख दुःख का भोग मनुष्य को होता है"। एक विचारक इस प्रकार सोचता हुवा अपने मन में तर्क करता है कि जब यह जन्म कर्मों के कारण प्राप्त होता है तथा जन्म के होने पर ही कष्ट भोगने पड़ते हैं, तो क्यों न मैं सब कर्मों को ही छोड़ दूं जिससे कि जड़ के कट जाने पर यह देह रूपी वृक्ष जिसके कारण दुःखरूपी तिक्त फल खाना पड़ता है स्वयं ही शुष्क होजाय चूंकि सिद्धांत यही है कि "छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्"। वस्तुतः उपरली दृष्टि से यह विचार ठीक ही प्रतीत होता है और सम्भवतः यही विचार नवीन वेदान्ती को नैष्कर्म्यवाद के प्रचार के लिये उत्तेजना भी देता है। परन्तु थोड़ा सा गम्भीर विचार करने पर उपरोक्त सिद्धांत की अदृढ़ता तथा तुच्छता दृष्टिगोचर होने लगती है। यह स्पष्ट होजाता है कि "नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः" अर्थात् कोई भी प्राणी किसी क्षण भी, प्राकृतिक गुणों से बाध्य होकर, बिना कर्म किये नहीं रह सकता। बड़े से बड़ा नैष्कर्म्यवादी भी जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक कर्मों का परित्याग कभी नहीं करेगा। वास्तव में,

"१ एवं त्वयि, २ नान्यथेतोऽस्ति" (यजु-४०।२) इन शब्दों द्वारा वेद में यह स्पष्ट उपदेश दिया गया है कि 'हे मनुष्य तू नेता बनकर उत्तम कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष पर्यन्त जीने का प्रयत्न कर। इस से भिन्न अन्य कोई मार्ग नहीं है। निष्क्रिय होकर बैठे जाना असम्भव है; यह कोई मार्ग नहीं जो तुझे दुःखों से छुड़ा कर परमानन्द की प्राप्ति करवा सके।

४ अब इतना स्पष्ट हो जाने पर कि कर्मों का सर्वथा त्याग असम्भव है' मनुष्य की बुद्धि चकरा जाती है। वह व्याकुल हुवा २ जब एक साधु महात्मा के पास पहुंचता है तो वे उसे उपदेश देते हैं कि "व्याकुल होने की कोई बात नहीं। तू इस संसार में निःशङ्क होकर रह; कर्तव्य कर्मों को कर परन्तु इस संसार में फंस न जाना। जिस प्रकार कमल का पत्ता पानी में रहता हुवा भी, पानी के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता; उसी प्रकार तू कर्मों को करता हुआ उन कर्मों के फलों में आसक्त न होना। इस प्रकार निष्काम भाव से कर्मों के करने पर तेरे में कर्मों का लेप न होगा। 'न कर्म लिप्यते नरे" नर होकर कर्मों को कर। जिस प्रकार एक सच्चा नेता स्वार्थ को तिलाञ्जलि देकर लोकोपकार के लिये कर्मों को

करता है उसी प्रकार तू भी, 'ये कर्तव्य कर्म हैं, केवल मात्र इसी भावसे प्रेरित होकर कर्मों को कर। फलके उद्देश्य से किये गये कर्म बन्धन कारक होते हैं; परन्तु निष्काम-भाव से किये गये कर्म संसार जाल में बांधते नहीं।" गीता में यही उपदेश युद्ध रूपी कर्म के फल से भयभीत हुए २ अर्जुन को कृष्ण महाराज निम्न शब्दों में देते हैं:—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोयं कर्म बन्धनः
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥ ३। ६
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्त श्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्
॥ ३। १६.
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः
॥ ३। १६

अर्थात् यज्ञ (लोकोपकार) के लिये किये गये कर्म बन्धन कारक नहीं होते। इसलिये जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य फल की प्राप्ति के लोभ से उसी प्रकार तू स्वार्थ का त्याग करके लोकोपकार के लिये कर्मों को कर। इस प्रकार फलों में आसक्त न होकर कर्मों को करता हुवा मनुष्य परम गति को प्राप्त करता है।

सकाम भाव तथा निष्काम भाव से किये गये कर्मों में इतना महान् अन्तर है। इसको स्पष्ट करने के लिये यहां एक सरल लौकिक उदाहरण अनुपयुक्त न होगा—

"किसी एक मनुष्य ने जाने आने के मार्ग पर एक आम का वृक्ष लगाया। इस वृक्ष से प्रवासियों को सुख पहुंचे यह परोपकारी भावना लगाने वाले के मन में लगाने के समय थी। कुछ काल के पश्चात् वह वृक्ष बड़ा होकर उत्तम फल देने लगा। जाने आने वाले मुसाफिर उस वृक्ष के नीचे आकर बैठने लगे। और उसके फल तोड़ कर खाने लगे। यह देख कर वृक्ष लगाने वाले का मन आनन्दित हो गया। उसने समझा अच्छा हुआ मेरा श्रम सार्थक हो गया।

एक दूसरा मनुष्य अपने बाग में आम का वृक्ष लगाता है। इच्छा करता है कि इसके फल मैं खाऊं। वृक्ष बड़ा होने पर फल देने लगता है। किसी समय एक प्रवासी उस के बाग में जाकर उस आम के फल तोड़ कर खाने लगता है। यह देख कर उद्यान के स्वामी को गुस्सा चढ़ता है और उस प्रवासी को पीटने लगता है।

इन दोनों स्थानों पर कर्म एक जैसा ही है परन्तु परिणाम भिन्न है। कर्म करने वाले की भावना भिन्न होने से एक के मन में समाधान और दूसरे के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार यह स्पष्ट ही हो गया कि एक प्रकार के कर्म भाव की भिन्नता के कारण भिन्न २ फलों को उत्पन्न कर देते हैं। गीता में कर्म बन्धन-शील न हों इसके लिये ३ मार्ग बताये गये हैं। ये मार्ग क्रमशः-

१ कर्म योग, (२) ज्ञानयोग (३) भक्ति योग के नाम से प्रतिपादित किये जाते हैं। तीनों मार्गों में कर्तव्य कर्मों का करना आवश्यक है। उनमें भेद केवल मात्र निष्काम भावना की उत्पत्ति भिन्न २ प्रकार से करने मात्र में हैं।

(१) कर्मयोगी यज्ञ के लिये ही कर्मों को करता है वह स्वार्थ से प्रेरित होकर कर्मों को नहीं करता, तथा इस प्रकार ये यज्ञ के लिये किये गये कर्म बन्धन कारक नहीं होते।

(२) एक सांख्ययोगी अपने मन से मैं कर्ता हूँ इस अहंकार को ही दूर कर देता है तथा इस प्रकार अपने अंदर निष्काम भावना को उत्पन्न कर लेता है।

(३) एक भक्त सब कर्मों को परमेश्वरार्पण बुद्धि से करता हुआ सकामभाव का त्याग करता है। वस्तुतः ये तीनों मार्ग भिन्न २ नहीं हैं; यह एक ही मार्ग है। इस समुचित मार्ग का स्वरूप इस प्रकार है "मनुष्य यज्ञ के लिये कर्म करे; वह अपने हृदय से कर्तृत्व (मैंने यह और ये किया) के अहंकार को निकाल दे; तथा यज्ञ दान तथा तप रूप कर्मों को भी सङ्ग तथा फलेच्छा का त्याग करके परमेश्वरार्पण बुद्धि से करे" इसी अन्तिम सिद्धान्त को श्रीकृष्ण महाराज गीता में निम्न शब्दों में प्रकट करते हैं:—

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरत सत्तम
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्य मेवतत्
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
"एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्"
१८। ३। ५।

मुहम्मद ने भी इसी सिद्धान्त का प्रचार किया कि हमें अपने को परमात्मा के प्रति पूर्णतया समर्पण कर देना चाहिये। इस्लाम' शब्द का अर्थ ही

"Resignation to the will of God"

यह है। कुरान में सूरा ६ आयत १६३ में इस प्रकार उपदेश है कि Say Verily my prayers and my devotion and my life and my death belong to God the Lord of the worlds" अर्थात् एक भक्त को चाहिये कि वह इस प्रकार विचारे कि 'मेरी प्रार्थना उपासना, जीवन तथा मृत्यु सब कुछ परमेश्वर के प्रति अर्पित हैं ये मेरे नहीं (इदन्न मम)। इसी प्रकार अन्य धर्मों में भी 'ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण का उपदेश है। यही दुःख से बचने का तथा परम सुख की प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। 'नान्यथे तोऽस्ति' इस से भिन्न कोई मार्ग नहीं।

इस प्रकार एक सच्चा मुसलमान, एक सच्चा ईसाई, एक सच्चा बौद्ध, एक सच्चा पारसी तथा एक सच्चा वैदिक धर्मी ये सब के सब दुःख से बचने के समान मार्ग का अवलम्बन करते हैं और वह मार्ग है:—

"परमेश्वर के प्रति आत्मसमर्पण, इस-लाम; Resignation to the will of God।"

भानु भुवन या मोहनमाया

अनु-कुमारी सुमित्रादेवी जलवित्

द्वितीय अंक

स्थान-अम्बालाल का बंगला

(दिवानखाने में मोहन तथा नरोत्तम बातें कर रहे हैं)

पास के आरोग्य-भवन नाम के कमरे में टेबल आदि पर भोजन के लिये प्रबन्ध किया गया है।

नरोत्तम—(यूरोपियन वेश में) देखो! संभल कर रहना। ढोल का पोल न खुलने पाये। इन लोगों को तनिक भी संदेह नहीं है अतः पासपोर्ट की आवश्यक्ता नहीं होगी।

मोहन—परन्तु मुझे अपना पार्ट भली भांति सीखना होगा, यह भी तुम जानते हो? मैं तो आया और तुम चले गये...................

नरोत्तम—(गांधी के वस्ट पर कोहनी धर कर) मैं जीवराज को चेतावनी देने गया था, उसे सूचना न दी जाती तो आरम्भ में ही खेल बिगड़ जाता।

मोहन—हां, यह तो हुआ परन्तु मैं तो भला बचा। पहिले तुम यह तो बताओ कि यह पन्ड्य ज़ू कौन बला है?

नरोत्तम—जाति अर्थात् Genus अंग्रेज़ी या स्कोच, कुल अर्थात् Species गोत्र अर्थात् Family. कवीश्वर के मन्त्रीश्वर उर्फ़ प्राईवेट सेक्रेटरी यह गम्भीर स्वभाव के हैं।

(मोहन का हंसना)

मोहन—मैंने तो पीयर्सन को इस पद पर देखा था।

नरोत्तम—वह सतयुग में होगा। अब तो कलियुग है। ध्यान रखो कि समय बदल गया है। इन टैगोर में मस्त प्राणियों की यही एक अमोघ निशानी है कि जहां तहां कवि, कवि, कवि ही कूकते हैं।

मोहन—मुझे उसके प्रति कैसे भाव प्रदर्शित करने होंगे?

नरोत्तम—तुम उसका नाम ही न लेना, मानो ऐसी व्यक्ति किसी हस्ती में ही नहीं है। टैगोर जैसे कविराज को इस प्रकार के पामर प्राणी की चिन्तना का अवसर कहां? (दोनों का हंसना) इस के अतिरिक्त मैंने उन्हें कह दिया है कि आप पन्ड्य ज़ू से भी छिपकर रहना चाहते हैं। बहुत सम्भवतः यह आफत आपके सामने नहीं आवेगी।

मोहन—बहुत अच्छा, यह तो हुआ। परन्तु यदि टैगोर के कुटुम्ब की चर्चा चल गई तब क्या होगा? उस के कुछ कच्चे बच्चे भी हैं क्या?

नरोत्तम—मेरी जाने बला! पहिले किसी ज़माने में मैं आंगुली अथवा गांगुली नामी टैगोर के किसी सम्बन्धी को मिला होऊँगा, परन्तु ठीक याद नहीं पड़ता, तुम्हारी जितनी इच्छा हो

बोल देना। जितने अधिक होंगे उतने हमारे कार्य में सहायक होंगे।

(अलंकृत वेश में पुष्पा का प्रवेश)

पुष्पा—(नरोत्तम के समीप आकर) नरोत्तम भैय्या! तनिक आरोग्य-भवन को देख लीजिये, कुछ न्यूनता तो नहीं है? तैयारी के लिये समय बहुत कम था।

नरोत्तम—(सहास्य) कोई कार्य पुष्पा करे फिर उसमें कुछ कमी हो यह भला हो सकता है? (मोहन से) देखिये कविराज ये देवी आपके स्वागतार्थ उत्सुक हैं, अतः तनिक सी न्यूनता के लिये भी डरती है।

मोहन—मुझे तो इनके स्वागत में कुछ
रवि—न्यूनता नहीं दिखाई देती।

नरोत्तम—और यदि दिखाई भी दे तब क्या उदारचरित महानुभाव उन्हें प्रकट करते हैं?

पुष्पा—(सलज्ज) हास्य क्या करते हो नरोत्तम भाई कुछ कमी होगी तो तुम्हारे ही शिर मढ़ूंगी।

नरोत्तम—नहीं, यह न होगा। दोष तुम्हारा और दण्ड मुझे। यदि ऐसे ही है तो लो देख आता हूँ। (प्रस्थान)

मोहन—सीखने वाले की अपेक्षा शिक्षक
रवि तथा परीक्षक को अधिक योग्य होना चाहिये। क्यों ठीक है न?

पुष्पा—हाँ क्यों नहीं।

मोहन—इसीलिये मैं यह सोच रहा हूँ कि बिचारे नरोत्तम सेठ तुम्हारी रचना में किस प्रकार दोष निकालेंगे।

पुष्पा—(समझकर और लज्जित होकर) क्यों कविराज! क्या ऐसे असत्य अभिनन्दनों से ही कविता की जाती होगी?

मोहन—मेरे अभी हाल के वाक्यों को
रवि तुम कविता कहती हो?

पुष्पा—(अधिक लज्जित होकर) मेरे लिये अतिथिसत्कार का यह पहिला ही प्रसंग है अतः तनिक सन्देह हुआ।

मोहन—(मधुर हास्य से) और नरोत्तम
रवीन्द्र भाई उसे दूर करेंगे। सौंदर्य्य शृङ्गार की ओर स्त्रियों की स्वभावतः रुचि होती है।

पुष्पा—(तनिक ठहर कर) सौन्दर्य किसे कहते हैं और कहां रहता है?

मोहन—सौन्दर्य तुम्हें खोजना न पड़ेगा।
रवीन्द्र (पुष्पा कटु मुख कर लेती है) देवि! सौन्दर्य तो सर्वत्र है। केवल हमें देखना आना चाहिये

पुष्पा—कई बार ऐसा होता है कि देखने पर भी नहीं पहिचान सकते सौन्दर्य का भी कुछ परिमाण 'प्रमाण' आधार होता ही होगा।

मोहन—नहीं नहीं उसमें तो उसकी बदनक्षी होगी। हमें मर्य्यादा भंग न करनी चाहिये 'वस्तु' स्थिति का कुछ ख्याल तो करना ही चाहिए।

नरोत्तम—नाटक में मर्य्यादा कैसी? वस्तु-स्थिति का विचार करने वाला यह वेष नहीं धारण कर सकता। बदनक्षी या अबदनक्षी, फौजी कानून में कृत्रिम वेष धारी के लिए अति सरल सजा है।

मोहन—हैं ! सचमुच ! (खिन्न होता है)

नरोत्तम—'गतं न शोचयेत' जो होगया सो होगया अब तो तुम्हें यह खेल खेलना ही पड़ेगा, परन्तु बहुत देर तक न चलेगा, यह देख कर संतोष करलो।

मोहन—ठीक परन्तु यदि हंसी होगी……

नरोत्तम—मेरी स्त्री को ठीक मार्ग पर लादोगे तो मैं अदालत में जाकर तुम पर फौज़ी मुकद्दमा दायर न करूंगा यह निश्चय समझना (हास्य। मोहन गंभीर बनता है)

मोहन—मामला गंभीर है।

नरोत्तम—हमें घबराना न चाहिए, सावधान रहना चाहिये नहीं तो बाजी बिगड़ जायगी (अति गाम्भीर्य धारण करके) देखो और सुनो अब हम व्यूह रचना करें। हमारे यहां के सेनाध्यक्ष मेरे श्वसुर हैं। तुम उन्हीं पर वार करो और इन्हें हटादो मैं तुम्हारा पक्ष लेकर फूफी को भड़काता हूं। कदाचित् बिचारी पुष्पा को भी विरोध पक्ष लेना पड़ेगा। सम्भवतः भोजन से पूर्व विजय का शंख बज जायेगा।

मोहन—इस प्रकार धैर्य-मत त्यागो शीघ्रता से कार्य न सधेगा। मुझे ठीक २ समझाओ, तुम्हारे श्वसुर सेनापति पर किस प्रकार वार करूंगा!

नरोत्तम—वह तो गांधी का धुना है, तुम टैगोर हो, अर्थात हिंदुस्तान के महावीर हो फिर मोहनदास जी भले पार्श्वनाथ ही क्यों न हों। भारत स्वराज्य के लिये तुम भी कम उत्सुक नहीं हो। परन्तु श्वसुर ज़ी से कह दो कि गांधी विधि से गुलामी विदा न होगी, बस इतना पर्य्याप्त है।

मोहन—गांधी विधि क्या है मैं तो सो भी नहीं जानता।

नरोत्तम—सर्वोत्तम और अति सरल असहयोग। मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि यदि भारतीय इस मोहनमंत्र के रहस्य को जानलें तो तीन दिन में ही स्वराज्य प्राप्त करलें।

मोहन—फिर भला मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि गांधी विधि नाश बुद्धि है।

नरोत्तम—क्यों नहीं। तुम्हें तो केवल मुख से कहना ही होगा। उस पर विचार करने की तथा उसे सिद्ध करने की आवश्यक्ता नहीं। (द्वार पर खड़ खड़ का शब्द होता है) तो अब सचेत हो जाओ जान पड़ता है सेठ जी आरहे हैं।

मोहन / रवीन्द्र—अवश्य परन्तु इस में व्यक्तिगत प्रमाण स्वीकार करने पड़ेंगे ही सामान्य तो बहुत नहीं हो सकते, दृष्टि दृष्टि का भेद होता है।

पुष्पा—परन्तु संस्कारी और असंस्कारी दृष्टि में तो भेद न होता होगा।

मोहन / रवीन्द्र—पड़ता है। और उतने अंश में सामान्य संस्कारी को सम्भवतः सामान्य प्रमाण दृष्टि गोचर होते हैं।

पुष्पा—तब तो सौन्दर्य्य की पहिचान मनुष्य में अन्तर्गत आत्मज नहीं, परन्तु बाह्य संयोग से उत्पन्न किया गया गुण है।

मोहन / रवीन्द्र—यह कैसे कहा जा सकता है। मैंने अपनी भूमण्डल यात्रा में

उन मनुष्यों के (जिन्हें लोग जंगली कहते हैं) आचार विचार में, रीत रिवाज़ में वेश भूषा में ऐसा सौन्दर्य्य देखा है जिसे देख कर हमारी दृष्टि दंग रह जाती है। एक समय में दक्षिण अमेरिका के पहाड़ी प्रान्त में जा पहुँचा वहां की स्त्रियों ने अपने सादे अलंकार में रंग मिश्रण द्वारा असाधारण सौन्दर्य दिखाया था। उस का पुनराविर्भाव आज ही कई वर्षों के पश्चात् हुआ, Blue and white and Pearl with red and white roses (अन्तिम शब्द पुष्पा की ओर अनिमेष दृष्टि से देखता हुआ अति मंद स्वर से कहता है)

पुष्पा--(मज़ाक में) माफ़ कीजिए कवीन्द्र मुझ से चूक हुई। आपको इतना कष्ट दिया तभी आत्मश्लाघा सुनने का अवसर मिला। मैं इसके सुनने की आशा न रखती थी। और यदि मधुभगिनी अथवा फूफी यहां होतीं तो मेरी तो गिनती ही न होती। परन्तु सच कहती हूँ कि आपका यह मिथ्या अभिनन्दन भी मेरे लिए आह्लाद जनक है।

मोहन—इस में मिथ्या स्तुति कुछ भी रवीन्द्र नहीं। आपने मुझ से सौन्दर्य्य की व्याख्या पूछी, प्रमाण माँगे अतः मैंने प्रत्यक्ष प्रमाण दे दिया। भला इसमें मिथ्या स्तुति कहां से आई।

पुष्पा—सो मेरी फूफी से पूछ देखिये।

(अपूर्ण)

"चन्द्र"

लेखक—"श्याम" मधुवन

(१)

हीरक-हार गले में डाले; नीलाम्बर पट कर परिधान,
सुधा-गेह में बैठ, विहंस, रहे करते किसका अपमान ?
उसी प्रकृति की जिसने तुमको, रंगमञ्च पर लाया था,
कवि के कोमल सरस-हृदय में, अद्भुत भाव बनाया था॥ १॥

(२)

ऐसा अद्भुत रूप देख मन मेरा नाच रहा—न सहा,
किसी प्रकार गया है चन्द्र ! तुम्हीं ने हम से स्पष्ट कहा ।
"हूं स्वभाव का नीच मरे को भले मारता हूं जानो,
विरहिणि के मन में करता हूँ दाह कहा मेरा मानो ॥

(३)

जिनका है सुख—राज्य महा विस्तार उन्हें देता उपहार,
तन मन धन से परिवर्द्धित करता—हूं उनका सुखआगार ।
नैसर्गिक जीवन की सदा प्रथा यह होती आई है,
" सुख में सुख देते दुख में दुख " सुकवि जनों ने गाई है ॥ ३ ॥

(४)

मेरा इस में दोष नहीं-शीतलता में होती है दाह,
भोले भाले लोगों का, संसृति में मिलता कभी न थाह ।
बस रखलो सिद्धान्त यही-विश्वास किसी का मत करना,
नहीं जानते भी पतंग की तरह दीप पर मत मरना ॥ ४ ॥

स्वप्न--लीला

ले०—श्रीयुत पंडित चन्द्रप्रकाश चौबे बी. यस. सी. यम. बी. यस



निश्चय पूर्वक यह कहना कि स्वप्न क्यों आते हैं, बहुत ही कठिन है। स्वप्न तो स्वप्न, यह भी कह देना कि हम क्यों सोते हैं आसान नहीं है। स्वप्न होता है; नींद आती है इससे किसी को इन्कार न होगा। किस लिये और क्यों कर के उत्तर में विभिन्न विचारों को ही सामने रक्खा जा सकता है। किसी एक वर्णन पर पूर्ण सहमत होजाना दुष्कर है किन्तु इस बात के मानने में सन्देह नहीं कि उच्च विचारकों के विचारों में सत्य का अंश अधिक होता है। 'स्वप्न लीला'—पर विचार करने पर जो मुख्य कारण समझ में आते हैं, नीचे दर्ज हैं।

स्वप्न का सम्बन्ध बहुत करके ऐसी चीज़ों से निकाला गया है जिनका प्रभाव हमारे शरीर पर निद्रा काल में होता है। अनुभवी और वैज्ञानिक दोनों में यह भेद है कि अनुभवी केवल घटना का उल्लेख कर देता है, और इस से बढ़कर फल भी बताता है पर वैज्ञानिक कारण की खोज करता है।

१ अधिक खाने या भारी पेट के कारण जब स्वप्न आयेगा तो मालूम होगा कि हमारे छाती पर लुटेरों का बोझा है।

२ तंग कपड़े पहिनने के कारण—रात में रस्सों से जकड़े जाने के स्वप्न आयेंगे।

३ पास में लेटे हुए बच्चेका छुटना कभी २ स्वप्न में भैंस के टक्कर समान मालूम होता है।

४ कभी २ पास पड़ोस का रोना स्वप्न में स्यापा और गाना कृष्ण की बंशी प्रतीत होता है।

५ पलंग पर काफ़ी बिस्तर न होना-घोड़ों पर खरेरा होने का दृश्य दिखलाता है।

६ वक्त बेवक्त छत से मिट्टी का झरना, स्वप्न में हर्षोत्पादक होता है और विदित होता है कि मानो वैरी की चांद पर ओले टपक रहे हैं।

७ सुलगते हुए कोयले, धुआं वाली लालटेन के मध्य में सोने से ज्यों २ दम घुटता है करोड़ों हाथ गिरते हुए नज़र आते हैं। दम आता है और चट आंख भी खुल जाती है।

८ हवा गर्म होतो भड़भूजे के भट्ठे-बीकानेर के रेतीले मैदान में ऊंटों की सवारी का दृश्य और यदि हवा ठंडी हो तो बर्फ़स्थान या मेह का चित्र दीखता है।

९ बीमारी के कारण स्वप्न बहुत आते हैं बुद्धिमानों ने स्वप्न विचार के द्वारा बीमारी का भी विचार कर लेते हैं। जब बदन में दर्द होता है तो बड़े बुरे स्वप्न आते हैं। ऐसे स्वप्न आते हैं—जैसे मुसलमानी राज्य में सिक्खों का कष्ट—हिंदुओं पर मुसलमानों का अत्याचार, मुर्दों का निकलना, अपने सम्बन्धियों अत्याचार होना—आपरेशन का दृश्य इत्यादि।

१० दिमाग़ी कारण से भी स्वप्न आते हैं ऊपर कही बातों का प्रभाव भी दिमाग़ पर बहुत पड़ता है क्योंकि बिना दिमाग़ी हरकत के कोई काम नहीं हो सकता यहांतक कि ख्याल भी पैदा नहीं हो सकता। साइनटिस्टों ने दिमाग़ को दो हिस्सों में बाँटा है-एक तो जिसमें ज़ाहिरी काम होता है और दूसरा जिसके द्वारा ऐसा काम होता हो जो बिना इरादे हो जाय, मसलन किसी से बात करते समय मक्खी का हटाना। दिमाग़ के इस हिस्से में याददाश्त भी रहती है। लोगों का कहना है कि जब हमारे कर्त्तव्य, करने वाले दिमाग़ी हिस्से पर शारीरिक आबोहवा या रोग का प्रभाव पड़ता है तब हम उपर्युक्त स्वप्नों को देखा करते हैं। इन सब स्वप्नों में हमारी नींद हलकी रहती है पर जब हम बहुत गहरी नींदमें भी सोते हैं तो भी बाज़ वक्त हमारे ऊपर ऐसे भाव अपना असर प्रकाशित करते हैं जिनके प्रभाव की याद हमारे दिमाग़के दूसरे हिस्सेमें बहुत दिनों से सो रही है और 'कर्त्तव्य' दिमाग़ को ठंढा पाकर अपने निकलने के लिये मौका पाती है।

यदि पाठकों को यह छोटा लेख पसंद आया तो इस प्रकार के विषयों पर विचार करेंगे।

(शेष मैटर फा० नं० ७ पृष्ठ ५५८ की पूर्ति) प्राप्ति के लिये क्या करेंगे? अब तक तो यही कहा जाता रहा है कि या तो हमारी अमुक २ शर्तें को मानो अन्यथा अंग्रेज़ी शासकों से जा मिलेंगे। यदि इस कान्फ्रैंस का भी यही फल निकला तो मुसलमानों का देश प्रेम सिद्ध हो जायगा। श्रीमती बैसेन्ट का यह कथन कि जब तक स्वराज्य

नहीं मिलता हिंदू मुसलिम एकता सरकार की इच्छा पर निर्भर है एक कड़वी सचाई है　　देखें सर्वदल भारतीय नेताओं की इस प्रसव वेदना फल स्वरूप क्या उत्पन्न होता है?

--×=--

मासावतरण।

* माघ *

उस सुमाऽऽकर[1] के अहो! आतिथ्य की—
　　क्या रहे कर माघ! तुम तय्यारियां?
स्नेह से सिद्धार्थ[2]-सुमना[3]ऽञ्जिलि लिए—
　　क्या समाहित हैं सुमन[4] की क्यारियाँ?

*　　*

वे वसन्ती वेष्टनों[5] से, वास[6] से,
　　हैं सुसज्जित सैंकड़ों नर-नारियां
फूल जिन की प्रेम-पुष्पों से रही—
　　रम्य मानस-देश की फुलवारियां!

*　　*

तुम वसन्त-वियोग पाकर, पाण्डु-सी—
　　पांण्डु पत्र लिये लताओ। हो खड़ी;
पत्र पर दे पत्र या ऋतु राज को—
हो दिखाती—चाह दर्शन की बड़ी!'

*　　*

पीत-परिणित पत्र लेले डाल में—
　　तुम अगम[7]! अनुराग में क्या आ-गये?
भेंट क्या निष्काम यह ऋतुराज की?
　　दम्भ कर या चाहते पत्ते नये?

१—सुमाकर-पुष्पाकर (बसंत);　　४—सुमन-गोधूम (गेहूं)?
२—सिद्धार्थ-सरसों;　　५—वेष्टन-शिरोवेष्टन (दुपट्टा);
३—सुमन-पुष्प;　　६—वास (सू)-उत्तरीय (दुपट्टा);
७—आगम—वृक्ष;

मुफ्त ! मुफ्त !! मुफ्त !!!

ज्योति के प्रेमियों को कला कौमुदी मुफ्त,

कला कौमुदी

बढ़िया आर्ट पेपर पर छपी सचित्र शिल्प संबन्धी पुस्तकें।

(शीघ्र प्रकाशित होंगी)

कला कामुदी—वक्र सूची (क्रोशिया) भाग,
कला कौमुदी—बक्र सूची (क्रोशिया) भाग,
कला कौमुदी—दीर्घ सूची (सिलाई) भाग,

ज्योति में जो प्रतिमास कला कौशल सम्बन्धी लेख निकलते रहे हैं उन्हें स्त्री जगत में बड़ा पसन्द किया गया है। उनकी उपयोगिता और नारी संसार में इस चाह को देखकर हमने इन्हें पुस्तक रूपमें छपवानेका निश्चय किया है। प्रति मास संकेत देकर अथवा प्रारम्भिक सरल सरल नमूने देकर समझाना सम्भव नहीं, अतः अपरिचित बनाने वालों को उत्तम उत्तम नमूने बनाने में कष्ट होता है। इसी लिये इस कौमुदी में पचास से ऊपर प्रारम्भिक सचित्र नमूने देकर क्रोशिये तथा सलाई के काम को अति सरल और सब के समझने योग्य बना दिया है। ज्योति में प्रकाशित तथा और कितने ही नवीन नवीन पचास के लग भग सुन्दर, मनोहर और नमूने दिये गये हैं।

यूं तो कई बार शिल्प सम्बन्धी पुस्तकें लिखने का प्रयास किया गया है परन्तु नारी जगत में इसको विशेष सफलता नहीं हुई। इस का कारण यही है कि इन में क्रमानुगत रीति द्वारा सरल से कठिन तक पहुंचने के लिये कोई सुबिधा न थी। इस पुस्तक में इस कमी की ओर पूरा २ ध्यान दिया गया हैं। इसके अतिरिक्त जो नमून दिये गये हैं वह इतने सुन्दर मनोहर, अद्भुत और आवश्यक हैं कि जिन्हें देख कर प्रत्येक कन्या व स्त्री का बनाने को चित्त चाहेगा। गर्मी सरदी बरसात हर ऋतु के काम की चीजें दी गयी हैं, बच्चों के बिब, बनियान, वास्कट, मोजे इत्यादि, बड़े पुरुषों के लिये स्वेटर, बड़े तथा छोटे मोजे, कोट इत्यादि और स्त्रियों के लिये जाकट, बनयान, चौड़ी पतली लेसें, महीन २ कालर इत्यादि इत्यादि घर बैठे बिना किसी की सहायता के बनाना सुगम हो गया है।

पुस्तक शीघ्र छप कर प्रकाशित होगी। मूल्य प्रत्येक भाग का १) या १।) क लग भग होगा। तीनों भाग इकट्ठे मंगवाने वालों तथा पेशगी आर्डर भेजने वालों को विशेष रियायत होगी।

प्रकाशक—कला कौमुदी,
ज्योति कार्यालय दिल्ली।

हम प्रकाशक कला कौमुदी के कृतज्ञ हैं जिन्हों ने प्रेमवश हमें उपरोक्त रियायत देने में सहायता का बचन दिया है। आर्डर शीघ्र भेजिये। मैनेजर ज्योति, दिल्ली।

ज्योति के पांच ग्राहक बनाने वाले सज्जनों को कला कौमुदी (तीनों भाग) मुफ्त मिलेंगी ॥ मैनेजर ज्योति, दिल्ली।

ज्योति के दस ग्राहक बनाने वाले सज्जनों को कला कौमुदी तीनों भाग मुफ्त तथा ज्योति ४॥) के स्थान में ३) मिलेगी ॥ मैनेजर ज्योति।

परिवर्तन

(बंगाल की एकाल से काल के आधार पर)

लें० श्रीकृष्ण पांडे

(गताङ्क से आगे)

रात के नौ बजे हैं। भोजनोपरान्त कमरे में लालटेन को तेज कर निर्मल नीलिमा के पत्र को बार २ पढ़ रहा था। नीलिमा ने लिखा था कि उस के माथे का दरद बहुत बढ़ गया है, ऐसे समय निर्मल बाबू के बिना वह बड़ी ही विपत्ति अवस्था में पड़ी हुई है। विशेष कर उस की वेदना को देखकर उसके वृद्ध पिता बड़े ही कातर हैं, उन की कातरता देख कर उस की पीड़ा बढ़ रही है। निर्मल बाबू के बिना उन्हें कोई भी सान्त्वना नहीं दे सकता। निर्मल अब नहीं रह सक्ता जिस तरह हो उसे कलकत्ते जाना ही होगा। जिस तरह विमला की कार्यवाही से वह दिन २ विरक्त हो रहा था ठीक उसी तरह नीलिमा की बार २ की बुलाहट से उस का मन कलकत्ते जाने के लिये खिचा जाता था। वह पत्र पढ़ने और अपने विचारों में इतना तन्मय था कि उसे पान खाने तक की याद नहीं रही। कमरे में कौन कितनी देर से खड़ा है इस का उसे ज़रा भी पता नहीं। किसी ने मधुर और डरी हुई आवाज में कहा—"पान नहीं खाया ?"

आवाज सुनते ही निर्मल चौंक पड़ा। उस ने विमला ! को हाथ में पान का डब्बा लिये खड़ी देखकर कहा—"विमला मुझे अब यहां और ज़्यादा दिन रोक रखने से तो काम नहीं चलेगा, बोलो, तुम लोगों के लिये क्या प्रबन्ध कर दूं ?"

किसी का अहसान सहना विमला की प्रकृति के विरुद्ध था लेकिन इस समय वह निरूपाय थी। स्वामी चाहे उसे त्याग दें या अपने चरणों में स्थान दें यह उन की इच्छा ! लेकिन वह तो स्वामी को नहीं त्याग सक्ती। उसने नतमस्तक हो कहा—'मां की तबीयत ठीक नहीं है, दिन २ उन की बीमारी बढ़ रही है ?"

"उस के लिये मैं यहां रहकर क्या करूंगा ? डाक्टर कविराज हैं ही, रुपये पैसे की भी तुम्हें कमी नहीं तुम खुद देख सुनकर करना।"

विमला की छाती फटी जाती थी आंसुओं का बांध टूटा ही चाहता था, लेकिन बड़े कष्ट से आंसुओं को रोककर उसने कहा—"हम स्त्रियां हैं. बिना किसी मर्द की सहायता के क्या कर सकती हैं ?"

"एक नौकर रखने से भी काम चल सकता है।"

विमला को उस दिन बुखार हुआ था, उस पर इस आघात को न सह सकने के कारण उस का शरीर कांपने लगा। उसने कुर्सी के सहारे खड़े हो आगे बढ़कर कहा—'क्यों ? तुम्हें ही इतनी जल्दी किस लिये है ? हाथ में यह किसी की चिट्ठी है ?"

विमला के इस प्रश्न से निर्मल के सारे शरीर में आग लग गई। विमला मुझ पर सन्देह करती है यह समझ कर उसने रूखे स्वर से कहा—"सन्देह करती हो ? करो ! लेकिन इस सन्देह का क्या कारण ? मैंने तो

कई बार तुम से स्पष्ट कह दिया है कि मेरा स्वभाव ठीक नहीं है। यह चिट्ठी नीलिमा की है, उसने मुझे बार २ कलकत्ते आने के लिये अनुरोध किया है।"

निर्मल की बात पूरी होते न होते विमला के हाथ का पनडब्बा झनझनाता हुआ निर्मल के पैरों के पास गिर पड़ा। कुर्सी के सहारे खड़ी २ विमला कांप रही थी। उस की ओर देखकर निर्मल ने फिर कहा "उसकी तबीयत ख़राब है, उसको वहां देखने सुनने वाला कोई नहीं।"

विमला के कानों के पास जैसे कोई शों शों कर रहा था—मां बीमार है उसकी कोई चिन्ता नहीं, लेकिन न मालूम कौन नीलिमा है इसके लिये इतनी बेचैनी ?

"हा भगवन्! यह सुनने के पहिले मेरे सिर पर बिजली क्यों नहीं गिर पड़ी।" कह कर वह मूर्छित होकर गिर पड़ी—

आज कई दिनों के बाद निर्मल को चा की टेबल के पास देखकर नीलिमा की खुशी का ठिकाना नहीं। चा पीते २ देश में कैसे रहे, तबीयत कैसी थी, इतने दुबले क्यों हो गए आदि २ यही बातें हो रही थीं, साथ ही हिंदुओं के आचार विचार पर भी बहस चल रही थी।

चा पीकर दोनों जने ताश खेलने के अड्डे पर जाने के लिये तैयार हो गए, इतने में ही नीलिमा ने पूछा "आप को देश से आये दो दिन हो गए, लेकिन अभी तक आपने सतीश बाबू से मुलाकात क्यों नहीं की ?"

इस अप्रासांगिक बात को सुनकर निर्मल विस्मित हो गया। इसने देश से चलते वक्त निश्चित कर लिया था कि अब उस ओर कभी नहीं जायेगा। इस बात पर उसे कभी भी विश्वास नहीं किया कि नीलिमा उसे सुखी नहीं कर सकती। विशेष करके शोभा विवाहिता है, उसके साथ संसर्ग रखना नितान्त अनुचित है यह वह जानता था। यही सब सोचकर निर्मल अभी तक सतीश से मिलने नहीं गया। अस्तु इस अप्रिय बात को यहीं दबाने की ग़रज़ से उसने कहा—"नहीं।"

"सतीश बाबू आये थे, आपके पिता जी की मृत्यु का समाचार उन्हें मालूम है; इतने बड़े दुःख पड़ने पर भी आप उनसे मिलने नहीं गए; इसका उन्हें बड़ा दुःख है। इस लिये और भी उन्होंने आपको याद किया है"

निर्मल ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह सोचता था कि सतीश क्या जादू जानता है ? नहीं तो इन सब बातों का उसे कैसे पता लगा ? निर्मल को चुप देखकर नीलिमा ने फिर कहा " उस दिन उनके बहनोई नन्द किशोर बाबू भी साथ थे, वह भी आपसे मुलाकात करने के लिये जोर दे गये हैं।"

"क्या नन्द बाबू भी यहीं है ?"

"वह तो बहुत दिनों से यहीं है। आपको नहीं मालूम ? शोभा वहां से एकाएक चली आई, उसके दूसरे ही दिन नन्द बाबू भी आ गये, उसके बाद अभी तक नहीं गये। इस बीच में इन लोगों में क्या हुआ सो मुझे मालूम नहीं।" घड़ी में ८ बज गये। नीलिमा ने चौंक कर कहा— "वहां पर वह लोग हमारा आसरा देखते होंगे, चलिये।"

निर्मल अन्यमनस्क भाव से प्रातःकाल के सूर्य की ओर देखकर किसी बात की गहरी चिन्ता कर रहा था। नीलिमा का आखिरी शब्द "चलिये" उसने सुना, अतः उसी भाव से उसने भी "चलिये" कहकर ज्यों ही नज़र घुमाई तो सामने शोभा को खड़ी पाया।

शोभा को देखते ही उसने अपना सिर झुका लिया। क्षण भर के लिये किसी के मुंह से कुछ बात नहीं निकली। नीलिमा को इस नीरवता का कारण कुछ समझ नहीं पड़ा--उसने इस सन्नाटे को भंग करते हुए कहा--"तुम्हारी बड़ी उमर है बहिन! अभी हम लोग तुम्हारी ही बातें कर रहे थे।"

"मेरा बड़ा भाग्य है। लेकिन तुम लोग कौन?"

"क्यों? मैं और निर्मल बाबू।"

"निर्मल बाबू के मुंह से मेरी बात? आश्चर्य्य है!" शोभा की बात का किसी ने जवाब नहीं दिया। उसने फिर कहा—

"इस समय मैंने यहां आकर बहुत ही अन्याय किया है; जब कि निर्मल बाबू हम लोगों की छाया से भी डरते हैं तब उनके पीछे पड़कर उन्हें तग करना हमें उचित नहीं।"

निर्मल चुप चाप अपने ऊपर किये हुये इन आक्षेपों को सुन रहा था। उसको कुछ जवाब देते न देखकर नीलिमा ने उसकी ओर से उत्तर दिया "दो दिन नहीं जा सके, इस पर इतना आक्षेप करना तुम्हें उचित नहीं।"

"जो हो इन सब बातों का जाने दो। असल बात यह है कि आगामी रविवार को मुझे एक गार्डन पार्टी देनी होगी। उसी का निमंत्रण देनेके लिये, इस समय मैं तुम लोगों के सुख में बाधा पहुंचाने आई हूं।" निर्मल बाबू को लक्ष्य करके फिर कहा-"इन्हें कह कर व्यर्थ तंग करने की ताक़त मुझ में नहीं है। हां तुम यदि दया करके आओ तो ....."

"छीः छीः इतनी आजीजी की क्या जरूरत है? मुझे तो जाना ही होगा, और मैं समझती हूं कि निर्मल बाबू भी ऐसे मौके को नहीं छोड़ेंगे। और फिर यदि ये छोड़ना चाहें तो भी हम लोग कैसे छोडने देंगे।"

इन सब बातों से शोभा के मन मे एक प्रकार की उथल पुथल मच गई। वह इतनी अन्यमनस्क हो गई कि निर्मल कब उठ कर चला गया इसका उसको कुछ पता नहीं। सहसा शून्य कुर्सी पर नज़र पड़ते ही उस की आंखे लाल हो गईं "तब मैं जाती हूं।" कह कर वह शीघ्रता से कमरे के बाहर चली गई।

नीलिमा इसके भीतरी कारण से बिल्कुल अनभिज्ञ थी, इसलिये निर्मल और शोभा का यह व्यवहार उस की समझ में कुछ भी नहीं आया। नीचे आकर शोभा ने देखा कि कि निर्मल उसकी मोटर पर बैठा हुआ है। ड्राइवर को बारिकपुर जाने का आदेश देकर वह निर्मल के बगल ही में बैठ गई। मोटर तेज़ी से जा रही थी। निर्मल शोभा के इस समय के सौन्दर्य्य को देख रहा था। हवा का झोंका लगने से उसके सुगन्धित वस्त्र फरफराते हुए निर्मल के मुंह लग रहे थे, मानों अपने मालिक की ओर से प्रेम करने आये हों। बारिकपुर जाने के आदेश ने उसे चौंका दिया, वह क्या करते क्या कर बैठा, थोड़ी देर तक गाड़ी में बिल्कुल सन्नाटा रहा। दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला। आखिर शोभा ने इस सन्नाटे को भंग करते हुए कहा—

"उसके बाद निर्मल बाबू?"

किस के बाद यह निर्मल की समझ में नहीं आया, किंतु उसने कहा-"यह अन्याय

मैंने अपनी इच्छा से नहीं किया है इस समय आप पर स्त्री हैं।"

शोभा निर्मल से और सटकर और बाधा देकर बोली—

"यह तुम लोगों की मिथ्या धारणा है। जो कुछ हो मुझे इन सब बातों से कुछ मतलब नहीं। मैं आज यह पूछना चाहती हूँ कि मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है जिस के कारण.................... ।"

'आपने किस का अपराध किया है ?'

शोभा ने निर्मल के इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने झट से निर्मल का हाथ पकड़ने की चेष्टा की; लेकिन निर्मल दूर हट गया।

"लौट चलिये न !"

शोभा ने हंसते २ कहा 'इस समय लौटने के लिये कहते हैं तो फिर गाड़ी पर आकर क्यों बैठे थे ? "

इस उत्तर को सुनकर निर्मल कांप गया। छः महीने पहिले शोभा के साथ इस तरह मोटर पर घूमने में उसको कुछ भय नहीं था। किन्तु आज आज वह पर स्त्री है, उसके साथ आकर उसने बड़ी मूर्खता की है। शोभा उसका अंग स्पर्श किये बैठी है, यह देखकर उसे और भी भय हुआ। इसलिये उसने डरते २ कम्पित स्वर में कहा—

"चलिये न घर लौट चलें।" इतना कह कर वह ड्राईवर के पास जाने के लिये तैयार हुआ, लेकिन शोभा ने उसका हाथ पकड़ कर अपने पास बैठा लिया और ड्राइवर से कहा- "घर चलो।"

इसके बाद निर्मल से उसने कहा-किंतु एक प्रार्थना आपको स्वीकार करनी होगी, मेरी गार्डन पार्टी में आपको अवश्य आना होगा।"

निर्मल ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, उसे इस समय नानाप्रकार की चिन्ताओं ने आ घेरा था। वह यही सोचने लगा कि इस निमन्त्रण को स्वीकार करना चाहिये या नहीं। निर्मल को निरुत्तर देखकर शोभा ने कहा—"क्या नहीं जाइयेगा ? यदि आपके हृदय में इतनी भी दया नहीं थी तो मुझे ऐसी अवस्था में लाकर खड़ा क्यों किया ?"

क्या सचमुच इसके लिये निर्मल उत्तरदायी है ? क्या यह सच है कि उसी के दोष से शोभा उसके लिये लालायित है। जो कुछ भी हो, जब वह अपने लिये कोई पथ ठीक नहीं कर सका तब बाध्य होकर उसे यही कहना पड़ा कि "अच्छा आने की चेष्टा करूंगा।"

गाड़ी घर के दरवाजे पर आकर खड़ी होगई। निर्मल झट से उतर कर अपने कमरे में जाकर अवसन्न हो शैया पर पड़ गया। जल्दी में वह शोभा को नमस्कार करना तथा उससे विदा मांगना भी भूल गया—! "हाय प्रेम !"

हमारी मञ्जूषा

१ अन्तर्राष्ट्रीय विधान—लेखक-श्रीयुत सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक ज्ञान मण्डल काशी, पृष्ठ ५२६ मूल्य २॥) खद्दर की पक्की जिल्द।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में ज्ञान मण्डल काशी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। इस संस्था ने हमारी भाषा में ठोस, मौलिक और

चिरस्थायी साहित्य उत्पन्न करने में जो सराहनीय उद्योग किया है वह हिन्दी प्रेमियों से छुपा नहीं ज्ञान मण्डल ग्रन्थ माला का तेइसवां ग्रन्थ अन्तर्राष्ट्रीय विधान भी इसी कोटि का है। इस श्रेणी के ग्रन्थ सर्वप्रिय, नहीं हो सकते परन्तु जातीय निर्माण और जातीय ज्ञान की उन्नति में यही साहित्य लाभकारी हो सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय विधान एक बड़ा महत्व पूर्ण विषय है; प्राचीन समय में किंचित् यह सम्भव हो कि कोई राज्य अन्य राज्यों से सम्बन्ध न रखकर केवल अपने ही में मगन रहे परन्तु आज कल यह हो नहीं सकता। अतः भिन्न २ राज्यों का आपस में क्या सम्बन्ध हो और यह कैसे स्थिर रह सकता है यही अन्तर् राष्ट्रीय विधान का विषय है। राज्य सम्बन्धी संस्थायें भी नियमों पर ही निर्धारित हैं अतः युद्ध में और शांति के समय भिन्न २ राज्यों का एक दूसरे से सम्बन्ध क्या है, किस प्रकार स्थिर रह सकता है इसके लिये भिन्न२ राज्यों ने मिलकर कुछ नियम बनाये हुये हैं। वह नियम क्या हैं उन पर किस प्रकार पालन होता है, किसी राज्य के स्वीकृत नियम तोड़ने पर क्या कार्य और किस रूप में किया जाता है यह इस पुस्तक में बतलाया गया है। विषय जटिल होते हुये भी लेखक ने यथा साध्य इसे रोचक बनाने का यत्न किया है। पुस्तक की एक और खूबी है कि यह Up-to-date है। इस में उन सब नियमों का जो आज तक बनाये गये हैं समावेश किया गया है। इस पुस्तक का ठीक २ महत्व उस समय समझ में आयगा जब कि स्वराज्य मिलने पर हिंदी हमारी राज्य स्वीकृत राष्ट्रीय भाषा बनेगी। यह कहना न होगा कि अपने विषय की हिन्दी भाषा में यह एक ही पुस्तक है।

२. मनोविज्ञान-लेखक प्रोफेसर सुधाकर एम० ए०। प्रकाशक इण्डियन प्रिंटिंग वर्क्स ग्वाल मण्डी लाहौर, कपड़े की सुन्दर मज़बूत सुनहरे अक्षरों वाली जिल्द। पृष्ठ २७२ मूल्य २) बिना जिल्द का मूल्य १॥।)

मनोविज्ञान एक ऐसा विषय है जिसका सम्बन्ध मनुष्य मात्र की प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक विचार से है। मनुष्य का अपने को और अन्य मनुष्यों को ठीक २ समझना यही उसकी सफलता की कुंजी है। कौन माता पिता है जो कि अपने बच्चों के मन और आत्मा को उन्नत और विशाल नहीं बनाना चाहता? कौन शिक्षक है जो अपने शिष्यों के मन और मस्तिष्क को सुविकसित होते नहीं देखना चाहता, और कौन धर्म-प्रचारक और उपदेशक अपने श्रोताओं को सदुपदेशों से लाभ उठाते हुये अपने जीवन शुद्ध और महान बनाते हुये देखने का उत्सुक नहीं? परन्तु यह सब सफल नहीं हो सकते यदि माता पिता अपनी सन्तान की, शिक्षक अपने छात्रों की, और धर्म्मोपदेशक अपने श्रोताओं की मनोवृतियों को भली प्रकार समझने का यत्न न करें। संसार में जितनी भी असफलता है, जितने भी अनर्थ होते हैं वह सब विचार अस्खलता के कारण होते हैं। अतः यदि प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों को नियम और शृंखला बद्ध करने का और दूसरे व्यक्ति की विचार तरंगों को समझने का पूरा २ यत्न करें तो संसार से कलह और क्लेश बहुत कुछ कम हो सकते हैं। इस कार्य में मनोविज्ञान के अध्ययन से ही बड़ी सहायता मिल सकती है क्योंकि यह क्षेत्र है ही इस विषय का। इस दृष्टि से हम प्रोफेसर सुधाकर जी की पुस्तक का स्वागत करते हैं। आप इस विषय की पुस्तक लिखने के लिये सर्वथा योग्य है क्योंकि आपने अपने जीवन का

बड़ा भारी भाग इसी विषय के अध्ययन और अध्यापन में व्यय किया है। ८ वर्ष तक आप गुरुकुल में मनोविज्ञान के प्रोफैसर रह चुके हैं। ऐसी अवस्था में यह कहना न होगा कि पुस्तक विशेष योग्यता का परिचय देती है। यह अपने विषय की हिन्दी भाषा में दूसरी पुस्तक है। परन्तु पहली पुस्तक 'सरल मनोविज्ञान" की अपेक्षा इसमें एक विशेषता है। वह पुस्तक जहां केवल बुअल साहब की पुस्तक Principals of Psychology का स्वतन्त्र अनुवाद-परन्तु फिर भी अनुवाद-थी वहां यह पुस्तक मनोविज्ञान पर लिखी गयी, अनेक पुस्तकों के अनुपर्त्री विज्ञान की अपनी मौलिक रचना है, जिसमें कि उन्होंने अपने क्रियात्मक अनुभवों का पूरा २ प्रयोग किया है। पुस्तक १५ अध्यायों में विभक्त है, जिन में इस विषय के प्रत्येक अङ्ग पर वैज्ञानिक रीति से बहस की गयी है। मनोविज्ञान का मनुष्य शरीर की रचना से जो सम्बन्ध है उसे चित्रों द्वारा सरल रीति से समझाया गया है। यह अध्याय पुस्तक के मनोरञ्जक और उपयोगी अध्यायों में से एक है। स्मृति पर जो अध्याय है वह बड़ा रोचक और शिक्षाप्रद है। इसी प्रकार अन्य भी कई अध्यायों के विषय में कहा जा सका है।

पुस्तक बड़ी खोज और श्रम से लिखी गयी है और उनके लिये विशेष उपयोगी है जिनको कि जन समूह से वास्ता पड़ता है। आशा है हमारे माता, पिता. शिक्षक, प्रचारक दुकानदार इत्यादि इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।

अंत में हम कहना चाहते हैं कि परिभाषिक शब्दों की तालिका और विषय अनुक्रमणिका का अभाव हमें ऐसी सुन्दर पुस्तक में खटकता है। आशा है लेखक दूसरे संस्करण में इस की पूर्ति कर देंगे।

३ आदर्शपत्नी—लेखक श्रीयुत सन्तराम जी बी० ए० प्रकाशक श्री राजपाल। सरस्वती आश्रम लाहौर, पृष्ठ १०० मूल्य ॥।)

इस छोटी सी पुस्तक में आर्यभाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत सन्तराम जी ने हमारे गृह किस प्रकार स्वर्गधाम बन सकते हैं यही बतलाने का यत्न किया है और हमारी सम्मति में वह अपने यत्न में सफल हुये हैं। पुस्तक विवाहिता स्त्रियों को सम्बोधन कर के ही लिखी गयी है। इसमें वह सब विधियां बतलाई गई हैं जिन पर चल कर स्त्री गृहस्थी के प्रत्येक कार्य को सुगमता, आनन्द और प्रेम पूर्वक कर सकती है। हमने ऐसी कितनी ही पुस्तकें देखीं हैं जिसमें स्त्रियों को उपदेश दिया है कि वह पति के साथ कैसा व्यवहार करें सास के साथ क्या वर्ताव रक्खें। गृह का प्रबन्ध कैसे किया जाय इत्यादि बातों का उपदेश दिया रहता है, परन्तु इस पुस्तक की यह विशेषता है, कि इसकी शैली शुष्क और चुभने वाली - जैसे कि उपदेश प्रायः हुआ करते हैं—नहीं। किसी स्त्री के मन में इसके पाठ से यह भाव न आवेगा कि इसमें मेरी त्रुटियां दिखलाई गई हैं, बस वह यही समझेंगी कि मुझे वह बातें बतलाई गई हैं जिसका कि पहिले ज्ञान न था। हम प्रसन्न हैं कि हिंदी भाषा में ऐसी उपयोगी पुस्तक प्रकाशित हुई। बहुत दिनों से हमें ऐसी उत्तम पुस्तक देखने का सौभाग्य नहीं मिला था। पुस्तक नव विवाहिता और चिरकाल से गृहस्थ में प्रवेश की हुई स्त्रियां दोनों के लिए उपयोगी है। विवाह के समय कन्याओं के लिये एक अमूल्य उपहार है। यदि पाठशालाओं में यह उच्च श्रेणी की सब

विवाह योग्य कन्याओं को पाठशाला छोड़ने से पहिले अनुभवी सहृदया अध्यापिकाओं द्वारा पढ़ाई जाये तो बड़ा लाभ हो। पुस्तिका सचित्र है, इसकी बाह्य आकृति अति ललित और मनोहर है। साधारण दृष्टि से यद्यपि मूल्य अधिक है परन्तु उन अनमोल रत्नों के मुकाबले में जो इस में भरे पड़े हैं कुछ भी नहीं। हमें आशा है कि इस पुस्तक का नारी जगत में खूब आदर और प्रचार होगा।

४. आर्यसमाज क्या है—लेखक श्री० युत नारायण स्वामी, प्रकाशक उपरोक्त सरस्वती आश्रम। पृष्ठ ६२ मूल्य ।)

प्रसिद्ध आर्यसंन्यासी स्वामी नारायण जी ने इस पुस्तक में आर्यसमाज के सम्बन्ध में जानने योग्य सभी बातों का उल्लेख किया है। पहले अध्याय में संक्षेप से स्वामी दयानन्द जी के जीवन की मुख्य २ घटनाओं का वर्णन है और दूसरे में आर्यसमाज के नियम, उसके मन्तव्य और सिद्धान्त, उस की आचार और विचारशैली; स्त्रियों शूद्रों और अछूतों के प्रति समाज के विचार इत्यादि सब ही विषयों पर संक्षेप आलोचनात्मक प्रकाश डाला है। एक अनजान आदमी इस पुस्तक को पढ़कर भली प्रकार जान सकता है कि आर्यसमाज क्या है, धार्मिक संसार में इसका क्या स्थान है; संसार के सन्मुख उपस्थित मुख्य २ प्रश्नों के हल में इसका क्या दृष्टि कोण है। दयानन्द शताब्दी के उपलक्ष में छपी हुई पुस्तकों में से यह एक बड़ी उपयोगी पुस्तक है, और आर्यसमाज से बाहर इसका जितना भी प्रचार किया जाय थोड़ा है। हम चाहते हैं कि यह या ऐसी ही अन्य पुस्तकें भारत और संसार की सब भाषाओं में प्रकाशित होवें।

५. वृक्ष में जीव— लेखक स्वामी मंगलानन्द पुरी, प्रकाशक एल० एस० वर्मा ऐन्ड कम्पनी पृष्ठ ४८६ मूल्य १॥।)

पुस्तक ४ खण्डों में विभक्त है, प्रत्येक खण्ड में कितने ही अध्याय हैं। पहिले खण्ड में आधुनिक विज्ञान ने जो वृक्षों के सम्बन्ध में खोज की है उस का वर्णन है। तथा इस खोज के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि वृक्षों में जीव है। दूसरे खण्ड में इसी सिद्धान्त की पुष्टि में, वेद, पुराण, दर्शन, ब्राह्मण, इतिहास इत्यादि ग्रन्थों के प्रमाण तथा स्वामी दयानन्द प्रभृति विद्वानों की सम्मतियां दी गई हैं। तीसरे खण्ड में उन आक्षेपों का उत्तर दिया गया है जो कि विपक्षियों द्वारा इस सिद्धान्त के विरुद्ध किये जाते हैं। चौथे खण्ड में जीव मान कर शाकाहारियों के सन्मुख जो हिंसा का प्रश्न उठता है उस पर विचार किया गया है।

यह हिन्दी भाषा के लिये गर्व की बात है कि इस में इस प्रकार की विज्ञानमूलक पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं। लेखक की शैली वैज्ञानिक है। उन्होंने अपने पक्षके प्रत्येक अंग को स्पष्टता से पेश कर उसका भिन्न २ दृष्टिकोण से समाधान करने का यत्न किया है। हमारी भाषा में यह इस विषय की अपूर्व पुस्तक है। विषय यद्यपि वैज्ञानिक है तथापि इस का धार्मिक सिद्धान्तों पर बड़ा भारी प्रभाव है अतः पुस्तक न केवल विद्या प्रेमी, विज्ञान में रुचि रखनेवाले पाठकों के काम की है वरन धर्म प्रचारकों के लिये भी उपयोगी है। हिंसा धर्म के अनुयायियों को अपने सिद्धान्त और विचारों को स्पष्ट तथा साधारण निर्णय करने के लिये इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिलेगी। पुस्तक गूढ़ अनुसन्धान तथा श्रम का परि-

चय देती है। इस गूढ़ विषय को इतनी सरल रीति से सुलझाने के प्रयास के लिये लेखक हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं। धार्मिक संस्थायें अपने सिद्धान्तों के निर्णय करने में, इस प्रकार की पुस्तकों से बड़ा लाभ उठा सकतीं हैं।

वैज्ञानिक संसार

पाकशाला में भोजन।

हमारे देश में हिन्दुओं में भोजन प्रायः रसोई में करने का रिवाज है। इससे और कोई लाभ हो चाहे न हो, इतना अवश्य है कि यह ताज़ा, गरम और स्वच्छ भोजन सस्ते में दे सकता है। आजकल 'अंग्रेज़ी' रिवाज यह है कि पाकशाला और भोजन-शाला अलग २ होनी चाहियें। अब इस प्रथा को एक धक्का सा, लगता प्रतीत होता है। बड़े २ नगरों में स्थानाभाव के कारण लोगोंको रहने के लिये उत्तम और सस्ते मकान नहीं मिलते। साधारण मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों को तो यदि एक या दो कमरे और रसोई मिल जाय तो बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये। अब इन में से अलग २ रसोई बनाने, प्रातःकाल की हज़ारी खाने अथवा दोपहर का भर पेट खाने के लिये अलग २ कमरे हों यह बड़ा कठिन है इस कठिनता को दूर करने के लिये भिन्न २ उपाय सोचे जा रहे हैं। भोजनशाला के लिये अब पाकशाला की ओर ही दृष्टि डाली जाती है। अमरीका में अब जो मकान बनते हैं उन में रसोई के एक कोने में ही हाजरी खाने का प्रबन्ध किया जाता है। कहते हैं कि पाकशाला में भोजन करना—विशेष कर प्रातःकाल–अधिक रुचिकर है। यहां पर भोजन के विशेष कपड़े पहन कर आने की भी आवश्यकता नहीं।

परन्तु पाकशाला भी बहुत बड़ी नहीं होती। यदि इन में दिन रात कुर्सी मेज़ लगी रहे तो काम नहीं चल सकता। नार्फोक, वर्जी-निया के फेन नामक सज्जन ने इस क[illegible] को बन्द हो जाने वाली मेज़ कुर्सी बन[illegible] दूर किया है। रसोई में एक ओर बड़े [illegible] सुथरे किवाड़ दिखलाई पड़ते हैं। यदि आ[illegible] उन्हें खोलें तो उनके पीछे आप को मे[illegible] कुर्सी-जिन पर बैठकर चार आदमी भोजन कर सकें—इकट्ठे हुए २ दिखलाई देंगे। इन को नीचे गिराकर जोड़लो और भोजनशाला तय्यार। इस सब सामान को दृष्टि से ओझल रखने के लिये दीवार में केवल ८ इञ्च गहरा स्थान चाहियें। या यूं कहिये कि यह सब आठ इञ्च चौड़ी अलमारी में बन्द हो जाता है।

"दिव्य-दृष्टि"

इतिहास के पन्नों में कई स्थान पर यह पढ़ने में आता है कि अमुक व्यक्तिमें कई मील दूर पर होने वाली घटना को देखने की शक्ति थी, अथवा वह बक्सों में बन्द वस्तुओं को देख सकता था या उन घटनाओं को देख लेता था जोकि साधारण व्यक्तियों को दिखलाई नहीं पड़ती थीं। इस प्रकार के सब वर्तनों में एक प्रकार का सादृश्य दिखलाई पड़ता है। व्यक्ति विशेष आंखों के अति-

रिक्त किसी और अंग विशेष से देखता प्रतीत होता है और जो वस्तु दिखलाई पड़ती है वह साधारणतया बहुत स्पष्ट और बड़े गहरे रंग की होती है। पहिले पहल, धुन्धला और असपष्ट दिखलाई पड़ता है परन्तु शनैः २ देखने की शक्ति बढ़ती जाती है और अन्त में बड़ी तीव्र हो जाती है।

इस प्रकार की घटनाओं के वर्णन का अब तक विश्वास नहीं किया जाता था इस का एक कारण तो यह हो सकता है कि मनुष्य स्वभाव से ही अविश्वासी है और दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि इन घटनाओं का वैज्ञानिक आलोचनात्मक दृष्टि से देखकर उल्लेख नहीं किया गया। अब फ्रांस के एक वैज्ञानिक ज्यूल्ज़ रोमेन्ज़ ने इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले कितने ही तजरुवे करके सब घटना को वैज्ञानिक आधार दे दिया है। इसका नाम उसने दिव्य दृष्टि न रखकर पारचक्षु दृष्टि रखा है।

इस पारचक्षु दृष्टि को कार्य करने के लिये यह आवश्यक है कि साधारण दृष्टि और कुछ सीमा तक साधरण चेतना अथवा ज्ञान शक्ति दूर करदी जांय और इसके स्थान में एक विशेष चेतना लाई जाय। उसने यह बतलाने के पीछे कि उस व्यक्ति में जिस पर यह तजरुबा किया जा रहा था-किस प्रकार यह अवस्था लाई गयी रोमेन्ज़ लिखता है:—

"मैंने उसकी आंख बान्ध दीं और उसे कहा कि वह एक ऐसी इन्द्रिय शक्ति से काम लेगा जोकि उसके शरीर में विद्यमान अवश्य है परन्तु जिसका अब तक उसको ज्ञान न था। मैंने उसे संक्षेप में बतला दिया कि मैं उसके हाथ में एक समाचार पत्र देने लगा हूँ और उसे कम से कम इस पर छपे और मोटे अक्षरों को देखने और पढ़ने का यत्न अवश्य करना चाहिये। मैंने उसे यह स्पष्ट कर दिया कि उसे केवल त्वचा द्वारा स्पर्श से ही काम न लेना चाहिये वरन उसे 'देखना' चाहिये और मुझे विश्वास है कि वह ऐसा कर सकता है।

"उसे कुछ थोड़ी सी घबराहट हुई, कुछ दो तीन मिनट के लिये सन्देह हुआ और वह कुछ न बोल सका परन्तु अन्त में अटक अटक कर परन्तु शुद्ध शब्दों में उस समाचार पत्र का एक इंच मोटे अक्षरों में छपा हुआ नाम पढ़ दिया"

यदि पढ़ने वाले व्यक्ति और समाचार पत्र के बीच आपारदर्शी परदे लगा दिये जायें अथवा समाचारपत्र को अन्धेरे में रखा जाय तो वह उसे नहीं पढ़ सकता। इससे सन्देह होता है कि कहीं वह किसी प्रकार अपनी साधारण दृष्टि को ही तो काम में नहीं ला रहा। अतः पहले इसका निर्णय होना अत्यन्त आवश्यक है।

यह ठीक है कि आंखें बड़ी सावधानी से कस कर बांधी गई थीं; परन्तु यह सर्वथा असम्भव है कि उन्हें ऐसे बांधा जा सके कि देखने की शक्ति सर्वथा लोप हो जाय। क्या इसीलिये तो यह तजुर्बा वाले व्यक्ति कुछ थोड़ा बहुत अपनी साधारण दृष्टि से नहीं देख लेते? यदि हम रोमेन्ज़ की दयानतदारी पर विश्वास करें तो हमें ऐसा सन्देह करने के लिये कोई स्थान नहीं रहता। उसने स्वयम् अपने ऊपर और उन सिपाहियों पर जो कि युद्ध में अन्धे हो जाते थे तजुर्बे किये और उसे इनमें बड़ी भारी सफलता हुई। अतः इस में कोई भी युक्ति युक्त सन्देह नहीं रहता कि मनुष्य में यह पारचक्षु दृष्टि विद्यमान है और यह मनोविज्ञानिक शरीर रचना का ही गुण है।

महाशय रोमेन्ज़ा का कथन है कि कोई भी व्यक्ति अपने ऊपर लगातार तजुर्बे करके कुछ न कुछ सफलता अवश्य प्राप्त कर सकता है।

ऐसा प्रतीत होता हैं कि बिना आंख के देखने की इस शक्ति को शरीर के बहुत से भाग सम्भव बनाते हैं। वह भाग यह हैं:—

हाथ की अंगुलियों के सिरे के पपोटे, मस्तक, गरदन का पिछला भाग और विशेष कर हृदय के ऊपर की छाती की त्वचा। किसी प्रकार देखने की शक्ति इन भागों में आ जाती है। कई बार जब कि गरदन की पीठ से देखा जाय तो इतनी दूर की वस्तु दिखलाई देती हैं कि उन्हें साधारण आंखों से नहीं देखा जा सकता था, कभी २ वस्तु बिल्कुल सामने कोई एक गज की दूरी पर आकाश में स्थित दिखलाई पड़ती हैं।

यह पारचक्षु दृष्टि दो प्रकार की होती है। पहिले में तजुर्बा करने वाला यह अनुभव करता है कि वह सदा की भांति अपने मस्तिष्क की सहायता से देख रहा है। इस को रोमन्ज "एक केन्द्रीय दृष्टि" कहता है। दूसरे को वह छाती से देखता प्रतीत होता है। इसको "बहु केन्द्रीय दृष्टि" का नाम दिया गया है। इस बहु केन्द्रीय दृष्टि के अनुगामी अनुभवों का इस प्रकार वर्णन किया गया है:-

"............किसी दिन एक दम उसे जबकि उसकी गरदन ऊपर को उठी हुई हो यह भान होने लगता है कि वह अपने सामने की दूरी पर रखी हुई वस्तु को अपनी छाती से देख रहा है। इस अनुमान से बढ़ कर आश्चर्यजनक और कोई चीज नहीं, परन्तु इस का ठीक २ वर्णन करना कठिन है।......... वह व्यक्ति जो कि अपनी छाती से देख रहा है यह अनुभव करता है कि किसी प्रकार उस की ध्यान शक्ति अपने साधारण स्थान पर, सिर को छोड़ कर छाती में जाकर स्थित हो जाती है, यद्यपि इस काम में उसे बड़ी कठिनता और थकावट मालूम होती है।

तजुर्बा करते हुये यह भी पता लगा कि जिस समय किसी भी कारण से साधारण देखने की शक्ति उत्तेजित हो जाती है यह साधारण दृष्टि दूर हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यह असाधारण शक्ति बड़े परिश्रम से प्राप्त हुई हो और किंचित मात्र भी अवसर मिलने पर साधारण दृष्टि में लोप हो जाती है।

इस नवीन घटना को हम किस प्रकार निरूपण कर सक्ते हैं? रोमेन्ज़ के विचार में यह असाधारण शक्ति आरम्भ में प्रत्येक मनुष्य में थी और वह आज कल भी थोड़ी बहुत परिमित सीमा में प्रत्येक में विद्यमान है। जो बहुत छोटे २ प्राणी हैं, उनकी आंख नहीं होती परन्तु "देखने" की शक्ति सारे शरीर में फैली हुई जान पड़ती है। यह तो हम जब बड़े बड़े अधिक सुव्यवस्थित प्राणियों में आते हैं तो हमें देखने के लिये एक स्थान विशेष अथवा आंखें दिखलाई देती हैं। जब आंखें इस समस्त शरीर की देखने की शक्ति पर अधिकार जमा लेती हैं तो यह शरीर में से नष्ट हो जाती है, परन्तु रोमेन्ज़ा का मत है कि यह सर्वथा कभी नष्ट नहीं होती और यथा योग्य तज़रबों द्वारा इसको पुनः उत्तेजित किया जा सक्ता है।

परन्तु इसका तो यह अभिप्राय हुआ कि अब भी शरीर में सैंकड़ों और हज़ारों बहुत नन्ही और प्रारम्भिक "आंखें" विद्यमान हैं जोकि प्रकाश से उत्तेजित हो सक्ती हैं। क्या वास्तव में यह बात है? अपने अनु

सन्धान का फल स्वरूप रोमेन्ज का यह विश्वास है कि उसने यह सिद्ध कर दिया है कि इस प्रकार की आंख वास्तविक रूप में हमारे शरीर में विद्यमान हैं। सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र द्वारा देख कर उसने इनकी बनावट और आकृति का भी न किया है। किंचित यह हमारे पाठकों के लिये कुछ मनोरञ्जक न हो अतः हम : से यहां पर नहीं देते। यह शारीरिक-रचना-शास्त्र के अनुसार एक प्रारम्भिक आंख है जोकि बहुत ही नन्हीं परन्तु सर्वथा पूर्ण हैं। उसके वह तीनों भाग विद्यमान हैं जो कि हमारी बड़ी आंखों में रहते हैं। साधारणरूप से यह काम नहीं करती, परन्तु प्रति दिन की लगातार आदत डालने से इन नन्ही आंखों को देखने के लिये उत्तेजित किया जा सका है। रोमेन्ज़ अपनी पुस्तक चक्षु-रहित-दृष्टि में इसी परिणाम पर पहुंचा है।

कई ऐसी घटनायें होती हैं जिन पर विज्ञान को विश्वास नहीं आता परन्तु श्रद्धालु रहस्यवादी उन्हें सत्य मानता है। उपरोक्त वर्णन से सर बिलयम जेम्ज़ के साहित्यिक कथन को कितनी पुष्टि मिलती है "जब जब वैज्ञानिक और रहस्यवादी में भेद होता है, रहस्यवादी घटनाओं के वर्णन में और वैज्ञानिक उनके कारण बतलाने में प्रायः सदैव सत्य रहे हैं।"

रोमेन्ज़ हमें इस बात का विश्वास दिलाने के लिये उत्साहित करता है कि प्रत्येक मनुष्य सफलता पूर्वक इन तजरुबों को स्वयं कर सका है। आंखों को बड़ी सावधानी से बान्धना चाहिये और देखने वाली वस्तु को प्रकाश में सामने की ओर रखना चाहिये, परन्तु तजरुबा करने वाले व्यक्ति को यह पता नहीं होना चाहिये कि यह क्या है? उसके बाद उस वस्तु का रंग और आकृति "देखने" का यत्न करना चाहिये। सम्भव है कुछ दिन आरम्भ में सफलता न हो परन्तु लगातार अभ्यास विफल नहीं जायगा। अभ्यास इतनी देर तक न करना चाहिये कि थकावट हो जाय।

कुसुमोद्यान।

१. विलायत के लोग किस प्रकार जीविकोपार्जन करते हैं।

विलायत में तीन वर्ष हुये मनुष्य गणना हुई थी, उसका परिणाम अब तालिका के रूप में आया है। जो नई पुस्तक तैय्यार हुई है उस में मनुष्यों के रोज़गारों की नई सूची है।

सब से बड़ी संख्या 'मनुष्य सेवा' नामक विभाग की है जिसमें संस्थायें, क्लब, होटल इत्यादि सभी शामिल हैं। इनमें २० लाख से ऊपर मनुष्य लगे हुये हैं जिनमें १० लाख के करीब घरों में नौकरी करते हैं और इन में से ६०,००० स्त्रियां हैं।

उसके बाद धातु के काम करने वालों की संख्या १, ६५०००० है; व्यवसाय, सम्पति-विभाग तथा बीमा कम्पनियों में १५६०,००० हैं; विदेश से वस्तुयें लाने भेजने, तथा उनसे आने जाने के सम्बन्ध में १४८०,००० और खेतीबाड़ी में १२५०,००० मनुष्य लगे हुये हैं।

एक दूसरी सूची द्वारा यह पता चलता है कि किस २ आयु में क्या २ काम करते हैं। सब से अधिक काम करने की ऊमर २५ से ३४ वर्ष की है। ७० वर्ष से ऊपर

तो कोई ५० में से एक होगा। खेतीके काम में २० में से एक सत्तर से ऊपर होगा, कान खोदने में २५० में से एक, और पादरी बनने के लिये १२ में से एक।

यद्यपि लंडन में किसानों की बहुत संख्या की आशा कोई नहीं करता तथापि मुख्य लंडन में ही ४३,००० किसान हैं। और सारे लंकाशायर में इस से डेउढ़े किसान हैं। खेती के काम में लगी हुई स्त्रियों की संख्या ८३००० है, १९९ मछुये हैं और ९ हवाई जहाज़ चलाने वाले।

२. चलती हुई प्रयोग शाला।

अमरीका के ओहियो नगर में सर्कार की तरफ से एक बड़ा आश्चर्य करने वाली चलती हुई प्रयोगशाला या रस—क्रिया—भवन है जोकि सारे देश में घूम २ कर किसानों को मिट्टी के गुण दोष बताने में बड़ी सहायता देती है। सैंकड़ों तरह की खराब हुई और उपजाऊ शक्ति रहित मिट्टी की जांच करके उनका विश्लेषण किया जाता है और किस प्रकार का बीज तथा किस प्रकार की फसल उगानी चाहिये इस सम्बन्ध में सलाह दी जाती है। इस प्रकार की शिक्षा का दान इस देश के लिये बहुत ही लाभ कारी है।

३. असन्तुष्ट व स्पर्धाकरनेवाली पत्नियों को आदेश।

पत्नी और माता बनना स्त्रियों का स्वभावसिद्ध कार्य्यक्षेत्र है। हर एक स्त्री यही बनना चाहती है। इस दशा में यह बड़े अचम्भे की बात मालूम होती है कि अपने आप चुने हुये कार्य्य में स्त्रियों को इतना कम आनन्द और गर्व होता है कि इन कामों के करने के लिये उनमें कोई उत्साह ही नहीं दीखता और जो भी श्रम, तथा त्याग करना पड़े उसे वह खिज कर करती हैं। गृहस्थी ही एक ऐसा क्षेत्र है जिस में कार्य्यकर्त्ता सुस्त पुरुषार्थ हीन और उत्तेजना रहित होकर अपनी किस्मत का रोना रोते रहते हैं। स्त्रियों के विषय में तो यह बिल्कुल ठीक है कि अगर किसी गृहस्थी स्त्री के सामने कोई भी ऐसी स्त्री पड़े जिसने किसी व्यवसाय, व्यापार या पेशे में कुछ थोड़ी बहुत भी सफलता प्राप्त की हो तो वह झट ललचा जाती हैं। और उसे बड़े भाग्य वाली समझ उस जैसी दशा में होने की चाह से पूर्ण हो जाती हैं। उससे वह कहेगी कि "अहा! किसी करने योग्य काम की करने वाली बनना कैसा अच्छा है। तुम्हारा काम कैसा मनोरंजक होगा? तुम्हारा जीवन कैसा हर्ष युक्त है! तुम्हें अपनी सफलता का बड़ा गर्व होगा! बहिन! तुमने तो अपने जीवन में कुछ काम किया है परन्तु मेरा तो योंही व्यर्थ गृहस्थ के धंधो में नष्ट होगया। पत्नी और माता बनकर मैंने क्या किया? मैंने तो घर के वही रोज के चूल्हा, चक्की, दाल, नोन, लकड़ी और बच्चों के पेशाब पखाना उठाने में तथा बीमारी मांदगी में समय नष्ट किया और इसी तरह वर्षें गुज़र गईं। बहिन विश्वास रक्खो यह जीवन बड़े दुःख और नरक भोग का है।"

हमारे देश में लाखों मातायें और पत्नियां ऐसी हैं जो अपने जीवन पर करुणा पूर्ण दृष्टि डालती हुई उपरोक्त वाक्य कहती रहती हैं। इस लिये उनके भले के लिये आज यह कहना है कि उन्हें ऐसी बातें बताई जाती हैं जिनसे वह अपने भाग्य की सराहना करने लगें और यह देखने लग पड़ें कि उनका जीवन व्यवसायी और काम करने वाली

स्त्रियों की अपेक्षा सुगम है तथा उनका काम संसार के सभी कार्यों से श्रेष्ठ है और उनकी सफलता महान है।

गृहस्थी स्त्रियों की शिकायत होती है कि उनका काम एक सा चक्की पीसने की तरह है। परन्तु उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि आजीविकार्थ जो भी कार्य किये जाते हैं उन का भी यही हाल है। प्रत्येक कार्य को हज़ारों बार कर करके ही हम उस में विचक्षण होते हैं। क्या कोई यह मान सकता है कि थियेटरों में जो नट और नटी रोज़ बरोज़ वही शब्द और वाक्य उच्चारण करते रहते हैं और वही दृश्य दिखाते रहते हैं उसमें उन्हें कोई नवीनता मालूम होती है या नया आल्हाद होता है? या तस्वीर बनाने वालों को रोज २ रंग भरने में कोई विशेष आनन्द रह जाता है? या टाइप करनेवालोंको बार २ उन्हीं अक्षरों को टाइप करने और बार शुद्ध करने में कोई आनन्द होता है? उनके दिलों से पूंछो तो उन्हें यह काम भार रूप ही लगते हैं, परन्तु आजीविकार्थ करने पड़ते हैं।

दूसरी बात यह है कि स्त्रियों को यह शिकायत होती है कि उनके पति बड़े तेज़ मिज़ाज हैं, उनके साथ ज़िन्दगी बरबाद है। उन्हें हमारे सारे दोष ही दिखाई देते हैं गुण तो कोई दिखाई ही नहीं देते। प्रायः करके वह अत्याचार करते हैं और असहिष्णु होते हैं। परन्तु स्त्रियो! याद रक्खो कि जिन स्त्रियों को जीवकोपार्जन करना पड़ता है उन्हें भी पुरुष जाति की सभी त्रुटियों का अनुभव होता है। उनको नौकर रखने वाले पुरुष जब आंखें भौं चढ़ाते हैं या रूक्ष व्यवहार करते हैं; या अन्याय करते या नुक़्स निकालते हैं तब उनके दिल में क्या बीतती है यह वही जानती हैं। उन्हें उसके बदले में जो कुछ बोलने की इच्छा होती है तो जिस कठिनता से गुस्से को दबा कर ज़ुबान दाबना पड़ता है उस का अनुभव उनके सिवा कौन कर सकता है?

तीसरी जो गृहस्थी स्त्रियों की शिकायत है वह यह है कि वह आज़ादी से जो इच्छा हो वह नहीं कर सकती और उन्हें अपने पति और पुत्रों के लिये लगातार त्याग का ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है। परन्तु यह याद रहे कि अगर हमने किसी भी कार्य क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी है तो उसकी वेदी पर बलिदान तो चढ़ाना ही होगा। सफलता देवी कठिन बलि चाहती ही हैं। मशहूर नटी भी अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने के हेतु अपने आनन्द को त्याग कर सारी शक्ति को बचा रखती है। वही स्त्रियां जो कि अपने आपको नियम में बांध कर रखती हैं वही कुछ कर्तव्य कार्य कर दिखलाती हैं।

गृहस्थी स्त्रियों का यह बड़ा सौभाग्य है कि उन को ससार की आपत्तियों से रक्षा करने वाला एक पुरुष हमेशा उनकी सेवा में रहता है। उन्हें उन स्त्रियों की तरह भयभीत नहीं रहना पड़ता जिन्हें अपने आप दुनियां से ठोकर लगानी पड़ती है। जो विचारी यह सोचती रहती हैं कि अगर उनकी नौकरी छुट जाय तो क्या करेंगी। इससे भी बढ़कर यह बात है कि व्यापार या अन्य पेशे में लगी हुई स्त्री को धन उपार्जन कर के वैसा साधारण भी घर बनाने में बड़ी देर लगती है जिसको कि एक गृहस्थी स्त्री घृणा की दृष्टि से देखती है। हमें अपने कार्य से वैसा ही लाभ होता है जैसा कि हम उस पर व्यय करते हैं। यदि गृहस्थी देवियां केवल अपने गृहस्थ जीवन के कार्य को बड़ा उच्च और पवित्र कार्य समझने लग पड़ें और जाति के लिये उसकी बहुमूल्यता को अनुभव करलें तो फिर हमें संसारमें असंतुष्ट पत्नियां और माताएं दीख ही नहीं पड़ेंगीं।

बनिता विनोद

स्त्री जगत्।

बेगम साहिबा भूपाल ने अलीगढ़ के मुस्लिम कन्या कालिज को बीस हजार रुपये का दान दिया है।

———

लाहौर में एक चार जाति खत्री विधवा सहायक सभा है। आज कल वह ३६ विधवाओं की सहायता कर रही है। महाराजा वर्दवान ने प्रत्येक बिधवा की सहायतार्थ एक २ गरम चादर दान दी है और प्रति वर्ष इसी प्रकार गरम चादरें देने को प्रतिज्ञा की है। उन्होंने १५०) चार जाती सभा को इन की सहायतार्थ और भी दिया है।

———

मिस्टर दास पटना हाईकोर्ट के जज की सुपुत्री श्रीमती एस० बी० दास पूना में आनरैरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं। इनकी एक बहिन श्रीमती एस० बी० हजारी पटना हाईकोर्ट में कुछ ही समय बीता सब से पहली स्त्री-वकील बनी थीं।

———

गुजरात प्रांत के सोजिजा ग्राम में गत मास स्त्रियों की एक परिषद् हुई थी जिस में कोई १० हजार स्त्रियां जमा हुई थीं। इस के विषय में म० गांधी जी लिखते हैं कि "बड़े २ शहरों में भ मैंने शायद ही इतनी बड़ी स्त्रियों की सभा देखी और सुनी हो। स्त्रियों ने भाषणों को बड़े ध्यान से बिना शोरोगुल के सुना। मैंने अक्सर देखा है कि स्त्रियों की सभा में शांति रखना बड़ा कठिन होता है। सो इस सभा का हाल देखकर सब को -सभा के व्यवस्थापकों को भी बड़ा आनन्द और ताज्जुब हुआ।"

देहली में जो इस मास सब राजनैतिक दलों की एकता कांफ्रेंस हुई उस में भाषण करती हुई श्रीमती ऐनी बीसेन्टने बड़े ज़ोरसे स्वराज्य की आवश्यकता पर बल दिया। आपने कहा कि यह ठीक है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिये हिंदू मुस्लिम एकता आवश्यक है परन्तु विदेशी राज्य में एकता की सम्भावना बहुत कम है क्योंकि विदेशी शासक कोई न कोई ऐसा कार्य सदा कर सकते हैं जिससे हिंदू मुसलमान सदा आपस में लड़ते रहें। अतः भारत की सारी समस्याओं का एकमात्र हल स्वराज्य है।

———

गत मास भारत के बड़े २ नगरों में शिशु सप्ताह मनाया गया जहांपर कि नन्हें नन्हें बच्चों की प्रदर्शनी हुई तथा बच्चों के लालन पालन सम्बन्धी अनेक प्रकार की चर्चा हुई। इस सब कार्य का उद्देश्य यही है कि माताओं को अपनी सन्तान को सुदृढ़ स्वस्थ बनाने के लिये उपाय बतलाये जावें।

——

आजकल जर्मनी के विश्वविद्यालयों में कितनी ही स्त्रियां बड़ी योग्यता पूर्वक प्रोफैसर पद पर सुशोभित हैं। यह प्रायः प्रत्येक विषय में जैसा कि डाक्टरी, प्राणिविद्या, पुरातत्वविद्या, अर्थ शास्त्र, अंग्रेज़ी, संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषायें, गणित, समाजशास्त्र, शिक्षा, इतिहास तथा भाषा विज्ञान इत्यादि की शिक्षा देती हैं।

—*—

जापान में ट्राम गाड़ियां चलाने के लिये वहाँ की कम्पनी पुरुषों के स्थान में स्त्री

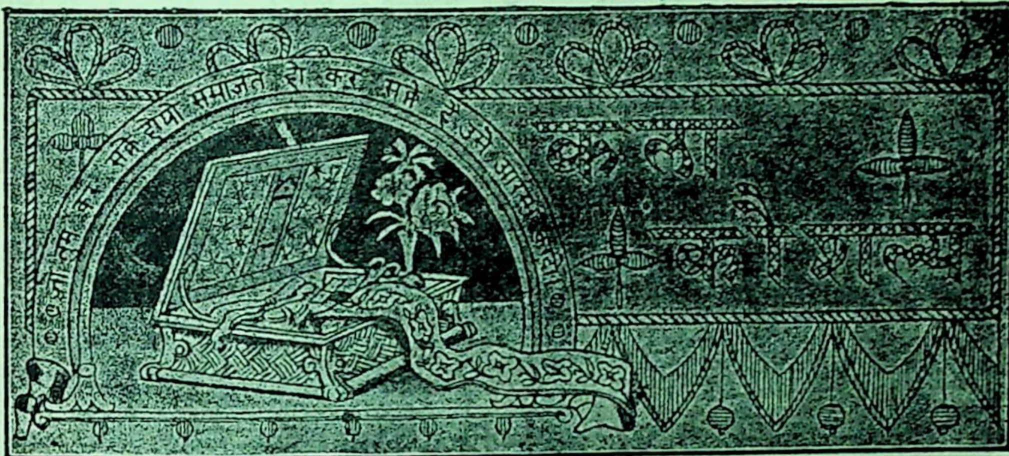
वाहिकायें नियत करने लगी है क्योंकि वह मुसाफिरों के साथ पुरुषों की अपेक्षा अधिक मृदु व्यवहार करेंगी यह आशा की जाती है; तथा इससे खर्च में कमी करना भी अभीष्ट है।

—*—

क्रिश्चियाना (नारवे) में पारलियामैन्ट के लिये राय देने का २३००० स्त्रियों को हक प्राप्त है परन्तु गत चुनाव में एक भी स्त्री नहीं चुनी गई। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि वहां की स्त्रियां राजनैतिक कार्यों का स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों द्वारा किया जाना ही उचित समझती हैं।

स्वीडन की स्त्रियों ने अभी २ एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा की स्थापना की है जिसका उद्देश्य संसार के सब देशों की स्त्रियों को एक स्थान पर एकत्र हो स्त्री जाति के हितसाधन के उपाय सोचना है। स्टाकहोम में पुलीस की ६ गारदें निरी स्त्रियों की हैं, और वहाँ के पुलीस विभाग का मुखया अफसर स्त्रियों और बच्चों में तथा जासूसी के कार्य में इनकी बड़ी प्रशंसा करता है।

—*—



दिलबहार लैस

ले०—श्रीमती ओ३म्वतीजी

गताङ्क से आगे

१४ पंक्ति:— लैाटो, ५ चेन, ३१ ते; ३ चे; ३ ते; पहिले छेद में, २ चे; ३ ते; अगले में ६ ते; * ३ चे, १ ते; ३ चे; १ ते; एक छेद में इस * निशान से २ दफ़ा और बनाओ।

१५ पंक्ति— लैाटो, ५ चे, १ ते पहिले छेद में, ३ चे; १ ते; उसी छेद में, ३ चे; १ ते. अगले में, ३ चे. १ ते. उसी में, ३ चे. १ ते अगले में, ३ चे. १ ते. उसी में, ३ चे; ३ ते; छोड़ो, ६ ते; ३ ते; अगले में, २ चे; ३ ते; ३ चे; ३ ते, अब अगले छेद में।

१६ पंक्ति:— लैाटो ५ चे; ३ ते; ३ चे; ३ ते; सब अगले छेद में, २ चे; ३ ते. अगले में, २ चे; ३ ते. छोडो, ६ ते; ३ ते. अगले में, ३ चे; १ ते अगले म, ३ चे;

१ ते उसी छेद में ३ चे., १ ते अगले मे., ३ चे, १ ते उसी में ।

१७ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., १ ते. पहिले छेद में, ३ चे १ ते उसी छेद में २ चे, ३ ते अगले में. ६ ते.; २ चे., ३ ते, अगले में २ चे. ३ ते अगले छेद में ।

१८ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३ ते.अगले में २ चे., ३ ते अगले में, २ चे; ३ ते; छोड़ो, ६ ते., ३ ते अगले में, ३ चे. १ ते अगले, ३ चे., १ ते. उसी छेद में ।

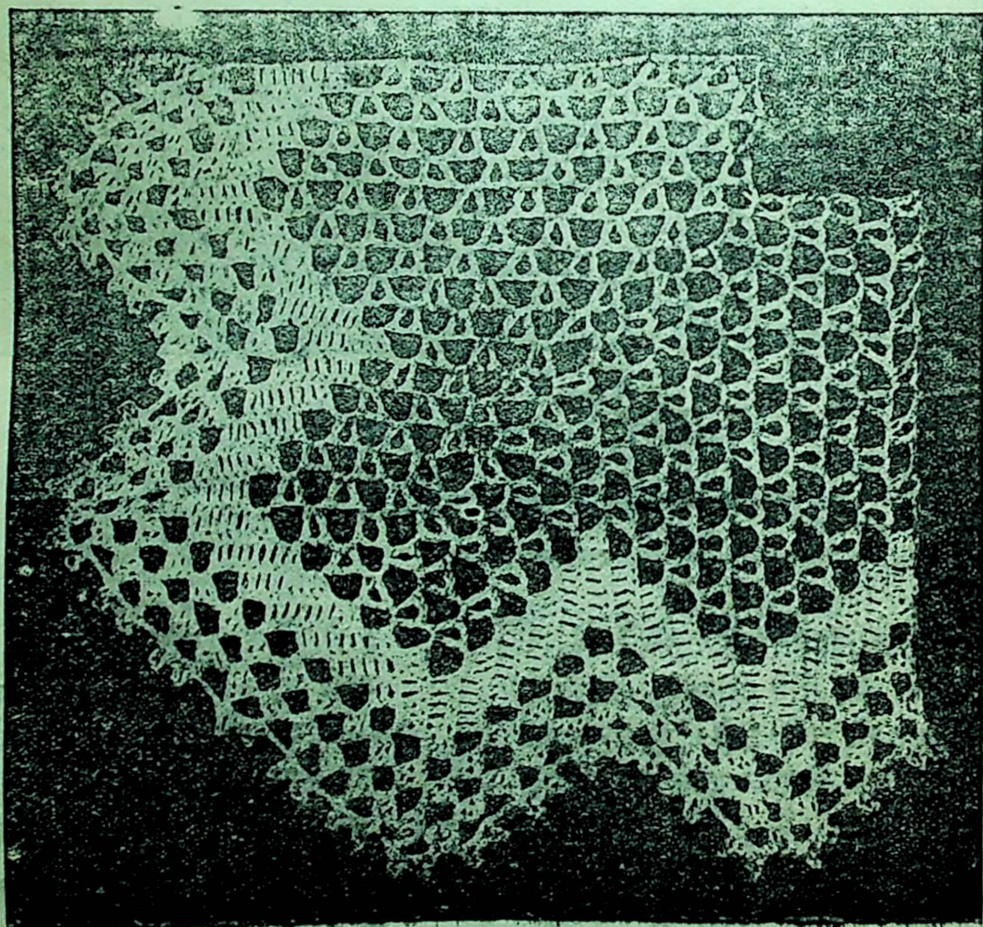
१९ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३ ते पहिले में ६ ते, २ चे., ३ ते. अगले में २ चे., ३ ते अगले छेद में ।

२० पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३ ते, पहिले छेद में; २ चे. ३ ते अगले छेद में । २ चे, ३ ते छोड़ो, ६ ते, ३ ते; अगले छेद में ।

२१ पंक्तिः—लौटो, ३ चे, तेहरे के लिये, १ ते अगले प्रत्येक ६ तेहरों में, २ चे., ३ ते. अगले में, २ चे., ३ ते., अगले में ।

२२ पंक्तिः—लौटो, ४ चे., ३ ते. पहिले छेद में, २ चे., ३ ते, अगले में, २ चे., ३ ते., छोड़ो, ३ ते. ।

२३ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३ ते. पहिले छेद में, २ चे, ३ ते. अगले छेद में ।



२४ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३ ते अगले छेद में २ चे. ३ ते. अगले छेद में।

२५ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३ ते. अगले छेद में।

२६ क्तिः—लौटो, ४ चे., ३ ते अगले छेद में।

इस प्रकार आधा कोना बन गया। बिना धागा तोड़े के बाकी बचे आधे कोने की पहली पंक्ति बिनना आरम्भ करोः—६ चे., १ ते. क्रोशिये से ७ वीं चे. में, १ ते प्रत्येक अगले २ चे. में, २ चे., ३ ते. कोने के अगले छेद में, २ चे., ३ ते. अगले छेद में, ६ ते., कोने के तेहरे में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते. सब अगले में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते सब अगले में' १ ते, कोने वाले अगले छेद में, ३ चे., १ ते. ३चे, १ ते. सब अगले छेद में, १ ते. कोने वाले अगले छेद में, ३ चे., १ ते. उसी छेद में।

२ पंक्तिः—लौटो, ३ चे., १ ते., ३ चे.; १ ते. सब पहिले छेद में, ३ चे., १ ते. ३ चे., १ ते. दूसरे छेद में, ३ चे., ३ ते. छोड़ो. ६ चे., ३ ते/ अगले छेद में, २ चे., ३ ते., पिछले छेद में।

३ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३ ते., पहिले छेद में, २ चे. ३ ते. अगले में, २ चे., ३ ते. छोड़ो, ६ ते, ३ ते. अगले में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते सब अगले छेद में, ३चे., १ ते., ३ चे, १ ते, अगले छेद में, ३ चे., १ ते., ३ चे, १ ते. अगले छेद में, १ ते कोने वाले अगले छेद में ३ चे, १ ते. उसी छेद में।

४ पंक्तिः—लौटो, ३ चे., १ ते., ३ चे, १ ते. सब पहिले छेद में, ३ चे, १ ते, ३ चे., १ ते. अगले छेद में, ३ चे. ३ ते., अगले में, ६ ते., २ चे., ३ ते. अगले छेद में, २ चे, ३ ते अगले में।

५ पंक्तिः—लौटो, ५ चे, ३ ते. पहिले छेद में, २ चे, ३ ते., अगले छेद में, २ चे, ३ ते. छोड़ो, ६ ते., ३ ते. अगले छेद में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते. सब अगले में, ३ चे., १ ते, ३ चे., १ ते अगले में, ३ चे, १ ते, ३ चे., १ ते, उसी छेदमें जिसमें कि पिछली पंक्ति के अन्तिम २ तेहरे डाले हैं १ ते० कोने वाले अगले छेद में ३ चे, १ ते, उसी छेद में।

(शेष फिर)

गृह प्रबन्ध

फलाहार

हमारे पेट में गैस्ट्रिक जूस नाम का एक पदार्थ है जो जल में घुला रहता है। हमारा खाया भोजन और विशेष कर मलाई, बादाम इत्यादि पदार्थ जिनमें कि प्रोटीन अधिक होते हैं इसी की सहायता से पचते हैं। यदि पेटमें थोड़ा सा तेज़ाब रहे तो गैस्ट्रिक जूस को अपनी पाचन क्रिया में बड़ी सहायता मिलती है। यदि इस जूस या तेज़ाब में से कोई एक अथवा दोनों की मात्रा कम हो जाय तो बदहज़मी अथवा मन्दाग्नि का रोग हो जाता है। इस रोग का सब से अच्छा इलाज फलाहार है और विशेष कर खट्टे फल जैसे कि सन्तरा, माल्टा, अंगूर, अनार

इत्यादि। इन में जो तेजाब रहता है यही तेजाब इन के खट्टेपन का कारण है—यही पेट में गैस्ट्रिक जूस अधिक मात्रा में उत्पन्न करता है और दूसरे यह कुछ २ पेट के उस प्राकृतिक तेज़ाब का भी स्थान लेता है। इस प्रकार इन फलों का खाना मन्दाग्नि में बड़ा उपयोगी है।

जन साधारण के मन में यह भाव बैठा हुआ है कि फलों की खटास गठिया अथवा जोड़ों के दर्द में हानिकारक है। यह भाव सर्वथा अशुद्ध है। यह रोग जोड़ों में यूरिक एसिड नाम के तेज़ाब के जम जाने से उत्पन्न होते हैं और वैज्ञानिकों का मत यह है कि फलों में पोटाश, सोडा आदि क्षार पदार्थ रहते हैं जो कि यूरिक एसिड का प्रतिरोध करने में बड़े सहायक हैं। अतः फलाहार जोड़ों के दर्द में हानिकारक होने के स्थान में लाभदायक हैं।

रसभरी, स्ट्राबैरी, अनानास इत्यादि फलों में जो तेजाब और मिठास रहती है वह पेट की अंतड़ियों में किसी प्रकार की हानि कारक उकसाहट पैदा न करके उन में अपना कार्य करनेकी उत्तेजना पैदा करती है; अतः कब्जी की अवस्था में औषधि खाने की अपेक्षा इन फलों का खाना कहीं अच्छा है।

रोग नाशक और पाचन शक्ति को बढ़ाने वाले अवयवों के अतिरिक्त फलों में पुष्टि-कारक पदार्थ भी रहते हैं और यह ऐसे रूप में रहते हैं कि शीघ्र हजम होसक यही कारण है कि फलाहार ग्लानि उत्पन्न नहीं करता।

क्या फलों के बीज खाना हानिकारक है?

कई बार प्रश्न किया जाता है कि क्या फलों के बीज जैसे अंगूर, रसभरी इत्यादि निगलना कोई हानि पहुंचाता है। जब बीज छोटे और नन्हे २ हों तो इनको निगल जाने से कोई हानि नहीं होती वरन लाभ ही होता है। बड़े २ बीज जैसे कि अंगूर के यदि अधिक मात्रा में निगल जायें तो पेट में बोझ करते हैं अतः इस कारण से त्याज्य समझना चाहिये और न ही इन में तथा ऊपर के छिलके में कोई पुष्टिकारक पदार्थ है।

फलों को साफ सुथरा होना चाहिये

फलाहार बड़ा उत्तम आहार है अतः मक्खियां कीड़े तथा छोटे २ कीटाणु भी इसे पसन्द करते हैं। इनके द्वारा बहुधा फलों में रोग—कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं अतः खाने से पहिले फलों को भली प्रकार साफ कर लेना चाहिये।

अच्छा तो यह है कि इनको ऐसे पानी से धोया जाय जिस में २० भाग में १ भाग हाड्रोजन पर आक्साईड मिला हो, यदि यह न होसके तो इन्हें शुद्ध साफ ताज़े पानी से भली प्रकार धो लेना बड़ा आवश्यक है।

इसी विषय में डाक्टर मैनकल The Oriental वाचमैन नामक पत्रिका में लिखते हैं:—

यदि कभी २ एक आध दिन का निराहार व्रत रखा जाय तो कई व्यक्तियों को बड़ा लाभ हो। उस दिन जल खूब पीना चाहिये। पूरे अनशन व्रत की अपेक्षा फल खा कर आधे व्रत से इसके सब लाभ प्राप्त हो जाते हैं और मनुष्य हानि से बचा रहता है। यह इस प्रकार हो सकता है कि एक या इस से अधिक दिनों के लिये केवल फलहार ही किया जावे। इस प्रकार शरीर के उन सब अंगों को जो कि पचाने, पुष्ट करने अथवा गन्द को बाहर निकालने का काम करते हैं पूरा आराम मिल जाता है और इस

आराम के पीछे वह अधिक स्फुर्ती से काम करते हैं।

यह बात अब सब को पता लगती जा रही है कि फलों का तेज़ाब अन्तड़ियों में जा कर रोग कीटाणुओं को मारने में बड़ा सहायक है, इसके अतिरिक्त यह रक्त शोधक भी है। शरीर को क्षार की भी आवश्यकता है और यह सदा एक पर्य्याप्त मात्रा में शरीर में रहना चाहिये। फलों द्वारा यह भी सिद्ध होता है। इन में शीघ्र हजम होने वाले पुष्टि कारक पदार्थ भी होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि कभी २ एक या अधिक दिन के लिये केवल फलाहार बड़ा लाभ कारी है। दूसरे भोजन को छोड़ देने से मानसिक और आत्मिक बल की वृद्धि होती है।

हमारी मातायें और बहिने जोकि एकादशी, पड़वा इत्यादि का व्रत रखती हैं वह भी उस दिन साधारण रोज प्रतिदिन खाने का भोजन छोड़ देती हैं और सायंकाल को जो कुछ खाती हैं उसे भी 'फलाहार' ही कहती हैं। यद्यपि यह बहुधा कूट्टू का आटा, सिंघाड़े की गिरी, चौलाई, पोस्त का दाना इत्यादि का पकाया हुआ ही भोजन होता है। यह 'फलाहार' शब्द ही हमारे व्रतों की फिलासफी को प्रगट करता है। जब यह व्रत रखने की विधि प्रचलित की गयी होगी तो इस का आशय यही रहा होगा कि उस दिन सिवाय फलों के और कुछ न खाया जाय, तभी तो उस दिन के भोजन का नाम 'फलाहार' रखा गया है। परन्तु आज कल हम व्रतों के शारीरक लाभ को तो भूल गये हैं और केवल न खाने अथवा कम खाने से जो मानसिक लाभ है उसी की ओर ध्यान रखते हैं। परन्तु यह याद रहे कि कूट्टू का आटा और सिंघाड़े की गिरी इत्यादि पदार्थ हमारे साधारण दैनिक भोजन से कहीं अधिक गरिष्ट हैं अतः यह जहां शारीरिक लाभ नहीं पहुंचा सके वहां मानसिक लाभ का भी साधन नहीं बन सकते।

---

१. यदि किसी को बहुत छींके आती हों तो तीन या चार चमचे भर दूध को बहुत आहिस्ता २ पीने से यह बन्द हो जाती हैं

२. यदि पित्त अधिक पड़ते हों तो आधे नीबू का रस, और आधा चमचा (छोटा) सोडा कार्बोनेट को दो बड़े चमचे भर गरम पानी में मिला कर पीने से तुरंत लाभ होता है।

३. थोड़ा सा नमक घुले हुये गरम पानी से नहाने से थकावट दूर होती है। यह जुकाम को दूर करने या कम से कम उसका ज़ोर कम करने के लिये बहुत ही उपयोगी है

४. पागल कुत्ते के काटे का सब से सरल इलाज ज़खम को गरम पानी से तुरन्त खूब धो डालना है। गरम पानी ज़हर को झट पट रसायनिक विश्लेषण द्वारा नाश कर देता। धोने के पीछे जखम पर कास्टिक पोटाश को बुरश से लगा कर ऊपर से पारे का मरहम (मरकरी आयन्टमैन्ट) लगा देना चाहिये।

५. सरदियों में प्रायः हाथ पैर फट जाते हैं। इनका सरल इलाज खांड के शरबत से धोना है, अथवा प्रातः और रात्रि को अलसी के तेल से मलना चाहिये।

६. सरदी लगने से होंठ भी फट जाते हैं इस के लिये शहद में थोड़ा सा गुलाब जल खूब मिला कर होंठो पर दिन में कई बार लगाने से लाभ होता है।

७ कई बार स्त्रियों के स्तन कड़े पड़ जाते हैं जिस से बड़ा कष्ट होता है । यदि शलज़म को उबाल कर और उस में थोड़ा सा इतर गुलाब का डाल कर खूब मींज कर, छातियों पर दिन में दो बार बाँधा जाये तो शीघ्र ही लाभ होता है ।

प्रार्थना

(ले०-श्रीरामदास रङ्क)

भगवन्! विरह तुम्हारा निशि दिन सता रहा है ।
वेकल है हृदय हमारा जी मुंह को आरहा है ॥
क्यों रुष्ट सर्वदा हो यह भी कोई अदा है ?
विरहाग्नि में हमें क्यों हरदम जला रहा है ॥ ?
चित ले चुके हो प्रियवर तन शेष है अकेला ।
इसके सिवा हमारे अब पास क्या रहा है ॥
हे निर्दयी तनिक भी तुझको दया न आती ।
मरते के चार लातें हंस हंस लगा रहा है ॥
अज्ञान हैं सदा के फिर कोप क्यों है करता ।
क्यों व्यर्थ में हमें तू दर दर फिरा रहा है ॥
यह तो सभी हैं जाने, मनमानी तेरी होगी ।
फिर किस लिये अकारण देरी लगा रहा है ॥
संसार स्वार्थ का है कोई नहीं किसी का ।
अतएव कष्ट लाखों ही "रङ्क" पा रहा है ॥

आरोग्यता

ले०-श्री० बालकराम शास्त्री हिंदी भूषण



हम नित्य पाठ करते हैं कि "पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतमित्यादि"। पर बहुत कम ध्यान रखते हैं कि सौ वर्ष तक जीने के उपाय कौन से हैं। आहार विहार और विचार यह तीनों मिलकर शरीर को बनाते हैं। आज हम इनमें से प्रथम साधन अर्थात् आहार के विषय में कुछ वर्णन करेंगे।

चिकित्सा के ग्रन्थों में शरीर का तीन प्रकार से लिखा है। प्रथम रजोवीर्य से, द्वितीय माताके आहार से, और तृतीय अन्न-प्राशन संस्कार के अनन्तर स्वभक्षित आहार से। रज और वीर्य भी आहार से ही बनता है। इस लिए एक शब्द में यह कह सकते हैं कि उस शरीर का, जिस को हम सौ वर्ष तक जीवित रखने की प्रार्थना करते हैं मुख्य कारण एक आहार ही है।

यदि भक्ष्यद्रव्य प्रकृति के अनुकूल होगा तो शरीर को लाभ पहुंचाएगा अन्यथा नहीं। परन्तु अनुकूल द्रव्य भी विधिपूर्वक और स्वच्छता से न बनने पर अधिक गुणकारी नहीं होता इस लिए खाद्य-पदार्थों की विधि और स्वच्छता की ओर ही हम आप का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

भोजन की शुद्धता में पांच बातों की आवश्यकता है। पहले भक्ष्य पदार्थों की शुद्धता, दूसरे भोजनों की शुद्धता, तीसरे स्थान की शुद्धता, चौथे पाचक की शुद्धता और पांचवें खानेवाले की शुद्धता।

पदार्थों की शुद्धता लीजिये, हम बाज़ार से आटा ले आते हैं और जल्दी २ गूंध कर रोटी सेक लेते हैं। हमें पता नहीं कि गेहूं कैसे थे। नौकर बाज़ार जाता है और भाजी लाकर बना लेता है। हम नहीं जानते कि भाजी किस स्थान की पैदा हुई है और कितने दिनों की रक्खी हुई है।

प्रायः देखा गया है कि दुकानदार बिना साफ़ कराये ही मैशीन में अनाज पिसवा लेते हैं, मिट्टी और कङ्कड़ इत्यादि भी साथ ही पिस जाते हैं। पेट में गई हुई मिट्टी क्या हानि पहुंचाती है, इसको वैद्य लोग ही अच्छी तरह बतला सकते हैं। हम तो केवल आप बीती बता सकते हैं कि जब कभी नौकर की कृपा से बोर्डिङ्ग हाउस में मिट्टी रूप देशी शक्कर मिली रोटी मिल जाती तो कृतज्ञता में मुख से यही कह देते थे कि 'परमात्मा तेरा भला करे।'

हमारे नेता जब स्वराज्य मन्दिरों से (जेलों से) बाहर आये तो कोई ज्वर का प्रसाद साथ लाया और कोई क्षयी रोग में ग्रस्त पाया। हमारी समझ में और बातों के साथ २ भोजन का स्वच्छ, संस्कृत न होना भी रोग का एक प्रधान कारण है।

पात्रों (बर्तनों) की अशुद्धता जितनी पञ्जाब के हिंदुओं में है इतनी कदाचित ही और कहीं हो। सम्भव है यह दुर्गुण उन में मुसलमानों के संग की अधिकता के कारण हो, क्योंकि मुसलमान स्वछता के विषय में बहुत पीछे हैं। पंजाब के अमीर घराने भी खाते समय अवश्य स्वच्छ मेज़ पर रख कर खाते हैं

परन्तु रसोई घर, बर्तन और रसोइया उनका भी मैला ही होता है। वे प्रायः बर्तनों को धो लेना ही पर्य्याप्त समझते हैं, मांजते नहीं। यथार्थ में धोने वालों को धोना और मांजने वालों को अवश्य मांजना चाहिए। क्योंकि कई बर्तन ऐसे होते हैं जिनसे कठिनता से जूठ छुटती है और कई वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनके मिलने से अन्य वस्तु बिगड़ जाती हैं। बोर्डिंग हाऊस में कभी २ मिश्र पतीले में पानी भर कर रख लेता था और पंजाबी लड़के उसको पी लेते थे परन्तु मैंने देखा कि वह दुर्गन्धयुक्त होता था। परन्तु भूमी की भांति घण्टों तक बर्तन रगड़ते रहना भी बुद्धिमत्ता नहीं है, जैसा कि पूर्बिए करते हैं। मैं अभी पूर्व की ओर गया था। वहां पर एक दिन प्रातः मैं नगर से आध मील बाहर शौच हो आया, स्नान कर लिया और सन्ध्या वन्दन से भी निवृत हो गया परन्तु इस घण्टे या डेढ़ घण्टे के समय में एक पूर्बीया सात बर्तनों को न मांज सका। यह समय को नष्ट करना और वहम न था तो क्या था !!

तीसरे स्थान की शुद्धता-यह स्थान एकान्त होना चाहिए। वहां पर भोजन सामग्री के अतिरिक्त कोई पदार्थ न हो और भोजन बनाने तथा खाने के सिवा और किसी काम में न लाया जाय। नित्य चूल्हे की राख उठा कर पोत देना चाहिए। यदि फर्श पक्का है तो उसको धो लेना ही पर्याप्त होगा। साधारण पंजाबी ऐसा नहीं करते, पर यदि वे आठ दिन ऐसा करते रहें तो आशा है कि फिर कभी न छोड़ें।

चौके के विषय में एक प्रश्न और विकट है। प्रायः हिंदू यह समझते हैं कि यदि कच्ची रोटी एक क़दम भी चौके से दूर चली जाय तो किसी काम की नहीं और तनिक भी कान्य कुब्ज़ा की कच्ची रोटी गौड़ की धोती से छू जाय तो भ्रष्ट हो जाय। परन्तु पक्की, रोटी अर्थात घी में पकी हुई पूरी आदि कूड़ी (रूड़ी) पर भी बैठ कर खाने में दोष नहीं। इस कच्ची पक्की के रोग में यू० पी० वाले बहुत फंसे हुए हैं। हमें कार्य्यवश चार पांच दिन घर से बाहर रहना पड़ा। इस अवसर में दोनों समय पूरी ही खानी पड़ीं।

हम यह मानते हैं कि पक्की रोटी कच्ची की अपेक्षा अधिक समय तक रह सकती है और बिगड़ती नहीं। परन्तु यह समझ में नहीं आता कि कच्ची रोटी का चौके से बाहर निकलते ही क्षण भर में क्या बिगड़ जाता है। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि भोजन करने का स्थान नियत और शुद्ध होना चाहिए पर चूल्हे के सामने बैठ कर धूएं से आंखें घोटने की फ़िलासफ़ी समझने के अयोग्य हैं और न उन बाबुओं की बुद्धि का पार पा सकते हैं जो घर में जूतियों में ही बैठ कर खाना पसन्द करते हैं।

चौथे भोजन बनाने वाले की शुद्धता है। इस समय हिन्दुओं में यह रीति है कि यदि ब्राह्मण मलीन भी हो तो भी उसके हाथ की रोटी पवित्र समझी जाती है और यदि शूद्र स्वच्छ हो फिर भी उसके हाथ का बना भोजन अपवित्र है।

यथार्थ में प्राचीन काल में ब्राह्मण के घर अधिकतर ब्राह्मण ही उत्पन्न होता था। इस लिए यह ज्ञात करने की आवश्यकता न थी कि क या ख नाम का पण्डित शुद्ध और पवित्र भी है या नहीं। केवल ब्राह्मण होनाही उसकी पवित्रता का प्रमाण होता था। परन्तु अब यह आवश्यक नहीं कि ब्राह्मण के घर शुद्ध और पवित्र ब्राह्मण ही उत्पन्न हो किन्तु देखा जाता है कि ब्राह्मण नाम धारियों में शूद्र और चाण्डाल भी विद्यमान हैं। ऐसी

अवस्था में यही नियम ठीक है कि पाचक स्नान करने वाला और वस्त्र शुद्ध रखने वाला हो, चाहे वह अपने को ब्राह्मण कहने वाला हो या शूद्र ।

पंजाब में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा भ्रमी लोग कम हैं, परन्तु शुद्धता का वे भी बहुत कम विचार रखते हैं। पञ्जाब का सब से बड़ा नगर लाहौर है और लाहौर में सब से बड़ा बाज़ार अनार कली है । केसरी और भल्ले की प्रसिद्ध दूकानें इसी बाज़ार में हैं। परन्तु शोक है कि इसके बीचों बीच तन्दूर की दूकानें चन्द्रमा में कालिमा के समान अनारकली के मस्तक पर कलङ्क हैं । इन गन्दी दूकानों और अति मैले धीवरों को देख कर यदि किसी काशी निवासी ब्राह्मण या बनिये को उद्वमन हो जाता हो तो आश्चर्य नहीं ।

दूसरी ओर पूर्बिए इस विषय में सीमा उलंघ गए हैं । कई कान्यकुब्ज अपने सगे भाई के हाथ का भोजन भी नहीं खाते । इस लिए जनप्रवाद है कि '८ कन्यौजिया ९ चूल्हे'

प्रायः मुसलमान आक्रमण कारियों ने हिन्दुओं की इस निर्बलता से लाभ उठाया है और राजपूतों को भूखों मर कर हार माननी पड़ी है।

स्वामी जी कहते हैं कि भोजन बनाना शूद्र का काम है। परन्तु उसको अपने घर बुला कर बनवाना चाहिए और बनाते समय वह कपड़े से अपना मुंह बन्द किए रक्खे। मांसाहारी के हाथ का भोजन खाने का स्वामी जी निषेध करते हैं।

अब हम अन्तिम बात अर्थात् खाने वाले की शुद्धता लेते हैं । सन्ध्या वन्दन करने वाले तो प्रातःकाल ही स्नान कर लेते हैं परन्तु दूसरों को भी रोटी खाने से पहले अवश्य नहा लेना चाहिए । ऐसा करने से चित्त प्रसन्न होता है और भोजन खाने में आनन्द आता है । प्रसन्नता और आनन्द से ही खाया हुआ भोजन गुण कारी होता है अन्यथा नहीं।

कई नवयुवक शीघ्र २ और गर्म २ भोजन कर लेना ही उत्तम समझते हैं और ऐसा करने में वे अपनी फुर्तीकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु गर्म भोजन मनि को पिघला देता है तथा जोश पैदा करता है गर्म भोजन करने वालों के दांत जल्दी हिलने लगते हैं। शीघ्र भोजन करने से दांतों का काम अन्तड़ियों को करना पड़ता है जो कि हानिकारक होता है। यदि धीरे २ चबा कर खाया जाय तो थोड़ा ही भोजन पर्याप्त होता है। इसकी इस प्रकार परीक्षा कर सकते हैं कि जब आप को प्यास लगी हो तो एक सांस ही पी जाने के स्थान में एक घूंट करके पीएं । ऐसा करने से थोड़े से पानी में प्यास बुझ जायगी ।

यदि उपर्युक्त पाँचों बातों का ध्यान रक्खा जाय तो चित्त प्रसन्न रहे, भोजन में आनन्द आये और वह खाया हुआ गुणकारी सिद्ध हो और हम सौ वर्ष की आयु को प्राप्त हों।

देवियों की विवशता

लेखिका—श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी



अभी हाल ही गत मास में बरेली नगर एक पौराणिक महाशय ने अपनी एक सुकमारी १५ वर्ष की कन्या की शादी ४० वर्ष की अवस्था वाले वर के साथ की।

अभी विवाह को ४ मास ही बीते थे जब वह कन्या पति गृह में दुबारा आई। वह बर देवता अपनी नव विवाहिता पत्नी के स्वागत के लिये मदिरा देवी की ३ बोतलें लेकर अपने कमरे में घुसे। विचारी कन्या मदिरा महाराणी के दुरागमन को देखकर कांपने लगी। प्रथम तो देवता जी ने स्वयं ही मदिरा देवी का स्वागत किया। फिर उस देवी को भी पिलानी चाही। वह विचारी उसको ग्रहण करना नहीं चाहती थी। आखिर को जब सुरादेवी ने उनपर अपना पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया और देवता जी को अपने तन की सुधि भी न रही तब उस देवी को बहुत तंङ्ग किया। और दुर्दशा करनी चाही। उससे जब उनकी इच्छा पूर्ण न हुई तब उसको चाकुओं से भोंकना शुरू किया। और उस देवी का सारा शरीर लहू लुहान कर दिया जब उस के मत्थे में चाकू लगा और रक्त की धारा बह निकली तब वह देवी बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

उसके गिरने के साथ ही महाशय जी के देवता कूंच कर गये। सोचने लगे कि यह तो मर ही गई लेकिन हमको इतना बड़ा आदमी होकर फांसी पर जाना पड़ेगा। बहुत सोच विचार कर हाथ में हीरे की अंगूठी थी। बस! कनी को मूंह में डालकर सो गये और प्राण खो दिये।

जब प्रातः शोर मचा तब देवी को सिसकता पाया गया। अस्पताल भेजा गया। देवी की दोनों आंखें चाकुओं की चोट से फूट गई। सारे शरीर पर २२ जख्म थे। यह है विवाह! क्या कन्याओं का व्यभिचारार्थ देने ही का नाम विवाह है? क्या कन्यादान इसी को कहते हैं?

अब उन महाशयों से जिन्होंने विवाह का निश्चय किया था पूंछना चाहिये। कि वह विचारी नेत्र हीना कन्या अपने जीवन को किस प्रकार व्यतीत करेगी। बस भारत के पतन का भारत में वेश्या वृद्धि का यही मुख्य कारण है। ऐसी ही विचारी कन्यायें बज़ार में बैठकर कलङ्कित करती हैं। क्या इन दशाओं को देख सुनकर भी हमारे आर्य भाई इसी प्रकार चुप रहेंगे?

एक आर्य देवी जिसको मैं भली प्रकार जानती हूं कुमार अवस्था में बड़े दृढ़ विचार वाली थी। उसके संबन्धी भी बड़े दृढ़ विचारों वाले प्रतीत होते थे। विवाह विषय में मेरी उनसे भली प्रकार बातचीत हो चुकी थी। पर जब समय आया तब केवल अमीर कुल तथा बिरादरी के उत्साह में मग्न होकर—उस उच्च विचार शीलादेवी को पथ से गिराया गया। उस देवी का आयु पर्यन्त कुमारी रह कर स्त्री जाति की सेवार्थ जीवन व्यतीत करना ही उद्देश्य था और वास्तव में उसके तप में कोई कमी न थी। पर बसंन्धी

लोभ में डालते हैं। उन को विवाहिता नहीं अपितु व्यभिचारिणी बनाते हैं। ६ बच्चों के पिता की साथिन उस देवी को बनाते हैं, और खुश होकर मुझे बधाई देते हैं कि तपस्विनी को हमने राजस्विनी बनाया, लेकिन आप तो विवाह में शामिल भी नहीं हुईं। मैंने उसकी इस अवस्था को सुना कि जब विवाह के समय देवी को हीरे जवाहरात के आभूषणों से लादा गया तब उस के आंखों से जल बरसने लगा। वास्तव में वह अपनी विवशता के आंसू बहा रही थी। समझ में नहीं आता किस प्रकार देवियों के आगे संतोष रक्खें।

इसी प्रकार एक देवी जो अपनी आयु को एक आदर्श जीवन में बिताकर श्रेष्ठार्य्य देवी कहलाने का दावा रखती थी, तथा आजकल के आर्य संस्कारों की प्रथा को मखौल समझती थी, और सम्पूर्ण संस्कारों की नींव बनना चाहती थी अधिक परिश्रम करने पर जब वर महाशय के दर्शन होते हैं और एक दूसरे के सब विचार सम्मिलित होकर विवाह होता है तब यह रोग वहां भी उपस्थित हो जाता है। देवी जो यौवनावस्था का खिलौना हो हैं। कहां है संस्कारों का आदर्श! कौन नहीं जानता कि देवियों को खिलौना बनाकर व्यभिचार की बुनियाद नहीं तो क्या है? या तो ऋषि लिखित सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठों को फाड़ देना चाहिये या यही मखौल चलता रहे।

समझ में नहीं आता लोग एक ओर कहते हैं कि गुरुकुलों की कमी है। जाति के बालक बालिकाओं में ब्रह्मचर्य्य का बल होना चाहिये, गृहस्थी भी ब्रह्मचारी रहें। दूसरी ओर यदि देवियों के अन्दर कुछ जीवन आता है तो यह प्रश्न उठता है कि गर्भाधान संस्कार को यदि पुनर्जीवित करना है तो यह देवियां ही कर सकती हैं। पर यह कब? जब पुरुष ऊंचे उठें! मैंने कई कुमारियों को यह प्रतिज्ञा करते सुना है पर विवाह होते ही उनको उसी लम्पटता की लहर में पाया। जहां देखा कि देवियों में कुछ जीवन है, वहां उनको कष्टों का समूह पाया। आर्य समाज इस समय इस अपने कर्त्तव्य से कोसों दूर ही नहीं बल्कि बिलकुल भ्रम में है। क्या गुरुकुलों में कुमार और कुमारियों को यह शिक्षा दी जायगी कि इससे बाहर होकर विषय भोग की शिकार बनों? कदापि नहीं। महानुभावों को चेतना चाहिये। कन्या गुरुकुल में कुमारियों को यह शिक्षा न मिलेगी कि डाट डपट कर, मार तोड़ कर खिलौना बनें। और गर्भाधान संस्कार को भूल बैठें। परमेश्वर बल दे प्राण जाय पर प्रण न जाय। व्यभिचार हटे। आचार बढ़े। और हम आदर्श आर्य कहलाने के योग्य बनें।

कन्यागुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य

इस मास भी ब्रह्मचारिणियों का स्वास्थ्य बड़ा उत्तम रहा है। रोगीशाला शून्य ही रही और इस विभाग की देख रेख करने वाली को सारा मास सुबीता रहा। वह अपना समय अपनी उन्नति तथा अन्य कार्य में लगा सकी, परमात्मा करें यह अवस्था स्थायी बने।

अध्यापिका वर्ग

श्रीमती राजकुमारी जी अवकाश समाप्ति पर अपने पद पर आगई हैं और श्रेणियों में वस्तुपाठ इत्यादि विषय पढ़ाये जाने लग पड़े हैं। ड्रिल और खेलें भी शुरू होगई हैं। एक देवी आश्रम के कार्य में सहायतार्थ भी आई हैं।

दयानन्द मास

गतवर्ष की भांति इस वर्ष भी दयानन्द मास बड़े उत्साह से मनाया जा रहा है प्रति रात्रि को भोजनोपरान्त ब्रह्मचारिणियां और अध्यापिकायें एकत्र होती हैं और ऋषि की कृतज्ञता सूचक भजनों को गातीं तथा उनकी जीवनी की कथा करती हैं। कुछ दिन कुमारी चन्द्रवती जी ने कथा की, फिर कुमारी सीता देवी जी ने की उस के बाद आचार्या जी ने और अब श्रीमती अधिष्ठात्री जी कथा कर रही हैं। इन कथाओं का प्रभाव ऊंची श्रेणी की कन्याओं पर बड़ा उत्तम पड़ रहा है।

मथुरा यात्रा

मथुरा जाने के लिये ब्रह्मचारिणियों तथा कार्यकर्तृयों में बड़ा उत्साह है। प्रति दिन छुट्टी के समय यात्रा के सम्बन्ध में तैयारी होती रहती है।

सभा की आज्ञा है कि जिन ब्रह्मचारिणियों के संरक्षक यात्रा व्यय भेज दें या अनुमति भेजें वही कन्यायें आवें। परन्तु अभी तक कुछ संरक्षकों ने इधर ध्यान नहीं दिया है उन्हें पत्रों द्वारा याद भी दिलाई गई है। चूंकि यह शताब्दि महोत्सव ऋषि की पवित्र स्मृति के उपलक्ष्य में मनाया जा रहा है, और इन लड़कियों में से शायद कोई भाग्यशाली के ही भाग्य में दुबारा देखना नसीब हो क्योंकि आज कल १०० वर्ष की आयु कितनों की होती। दूसरे पीछे रह जाने वाली लड़कियां बहुत उदास और दुःखी होंगी और मार्ग व्यय बहुत थोड़ा है ३) रु० या ५) रु० इसलिये आचार्य्या जी ने निश्चय किया है कि सभी ब्रह्मचारिणी चली जावें उनके संरक्षक इतना द्रव्य मासिक शुल्क के साथ भेज ही देंगे।

आशा है कि वह सब महाशय जो अब तक चुप हैं इधर ध्यान देंगे।

शताब्दि पर कन्याओं का प्रवेश

बहुतेरे पत्र कन्यागुरुकुल कार्य्यालय में इस विषय के आरहे हैं कि उस अवसर पर कन्याओं को जो महाशय ले आवें उन्हें गुरुकुल में प्रविष्ट होने की आज्ञा दे दी जाय। इस सम्बन्ध में केवल यह वक्तव्य है कि आठ वर्ष तक की कन्याओं के अतिरिक्त विशेष अवस्था में अन्तरंग सभा तथा जनरल सभा की अनुज्ञा से ही कन्यायें ली जा सकेंगी।

विचार प्रवाह

दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव

जिस समय ज्योति का यह अंक पाठकों के हाथ में पहुंचेगा उस समय समस्त आर्य-जगत मथुरा में इस युगके महान् आत्मा प्रभु दयानन्द का जन्म शताब्दि महोत्सव मनाने में

लीन होगा। मथुरा नाम के साथ हमारे हृदय के कितने भाव संगठित हैं ? यह वही मथुरा है जो कि पांच सहस्र वर्ष पहिले भगवान कृष्ण की जन्म भूमि और क्रीड़ा क्षेत्र रही थी। यहीं पर श्रीकृष्ण ने दीन हीन प्रजा के पाशविक बलके शारीरिक बन्धनोंको तोड़ा था और यहीं पर पांच सहस्र वर्ष पीछे भगवान दयानन्द ने भारत के मस्तक को मोहपाश से मुक्त कर धार्मिक स्वतन्त्रता की दुंदुभी बजायी थी। आज इस नगरमें चालीस पचास सहस्र या अधिक नर नारियोंका एकत्र होना-जैसा कि आशा की जाती है भारत के इतिहास में अपूर्व घटना है !

यह सत्य है कि हरिद्वार, प्रयागराज इत्यादि तीर्थ स्थानों पर इस से कहीं अधिक जन संख्या कुम्भ, अर्धकुम्भी अथवा सूर्य ग्रहण इत्यादि के अवसरों पर एकत्र होती हैं, परन्तु मथुरा के इस जमाव में एक विशेषता है । उपरोक्त तीर्थ स्थानों पर जहां जनता का हृदय उसे वहां तक खींच कर लाता है, मथुरा में हृदय और मस्तिष्क दोनों खिच रहे हैं। मथुरा का मेला जहां धार्मिक है वहां यह ज्ञानोत्सव भी है । जहां उन दूसरे मेलों में एकत्रित व्यक्तियों के हृदय में यही भाव रहता है कि उन्होंने एक वैयक्तिक फल की आशा से एक धर्म कार्य में सम्मिलित होना है. वहां मथुरा के इस मेले में जनता को सम्मिलित होने का प्रेरकभाव है पितृऋणसे उऋण होना और परोपकार तथा मनुष्य सेवा के सद्भावों का संग्रह। अथवा जहाँ अन्य मेलों का महात्म्य मेलों की समाप्ति के साथ ही समाप्त होजाता है वहां इस मेले का महात्म्य एक प्रकार से इसके पीछे आरम्भ होगा। जहां अन्य मेले एक भूत काल की स्मृति मात्र हैं, वहां यह भविष्य की सुन्दर आशा का द्योतक है। निस्सन्देह इस महोत्सव की सफलता की जांच इसी बात से होगी कि यह आर्य सन्तान के हृदय में वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को उच्च, सुन्दर और मृदुल बनाने में कितना उत्साह, श्रद्धा और प्रेमका संचार करता है। जगदीश्वर हमें बल दें कि हम दयानन्द के जन्मोत्सव में सम्मिलित हो अपने को उनके पद चिन्हों पर चलने के योग्य बनायें और उनके सच्चे अनुयायी बन सकें।

पंजाब में कांग्रेस के प्रभाव का ह्रास

आज कल देश की राजनैतिक अवस्था जितनी बिगड़ी हुई है किंचित ही कभी इस से पहिले इतनी खराब रही हो। आज बिना रोक टोक के नौकरशाही जो चाहे कर सक्ती है। जनता में उसको रोकने का बल नहीं, अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने की शक्ति नहीं।

इसका सब से बड़ा कारण हिंदू मुसलमानों की फूट है और जैसा कि हम कई बार लिख चुके हैं इस फूट का केन्द्र है पंजाब। देश की अवस्था सुधर नहीं सकती जब तक कि पंजाब की अवस्था ठीक न हो । यहां उत्पन्न हुआ विष शनैः शनैः भारत के सब प्रान्तों में फैल रहा है। बंगाल में भी व्याधि ने वही भयंकर रूप धारण कर लिया है जो कि पंजाब में। आज कांग्रेसमें इतनी शक्ति नहीं कि इसका इलाज कर सके। गांधी युग के दिनों की बात को छोड़कर काँग्रेस मुख्यतया एक हिंदू संस्था रही है। परन्तु आज हिंदू हृदय पर भी इसका वह आधिपत्य नहीं जो कि इसे सदा प्राप्त रहा है। इसका क्या कारण है ? इस कारण का ठीक २ निदान और उसका उपाय ही भारत की वर्तमान राजनैतिक निद्रा को दूर कर सकता है ।

कुशल वैद्य किसी भी रोग का इलाज करने से पहिले उस रोग की पूर्ण गति और कारणों का पूरा २ ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक जानता है। हम कह आये हैं कि यह रोग पंजाब से फैला। अतः रोग को दूर करने से पहिले यह परमावश्यक है कि पता लगे की पंजाब में किन कारणों से कांग्रेस की प्रभुता का ह्रास हुआ। कानपुर के प्रताप में पंजाब के एक विशेष कार्य कर्त्ता की एकचिट्ठी छपी है, जिसमें इस रोग की उत्पत्ति के कारणों पर बड़ी योग्यता से विचार किया गया है। इन कारणों को ऐसी सरलता और उत्तमता से वर्णन किया गया है कि हम इस पत्रमें से कुछ उद्धरण ज्योति के पाठकों के सन्मुख रखने के लालच को दबा न सके। हमारे पाठक देखेंगे कि इन विचारों में और उन विचारों मे जो कि समय २ पर ज्योति में प्रकाशित होते रहे हैं कितना सामांजस्य है।

"हिंदुओं की दृष्टि में, कांग्रेस उन्हें 'तबाह' करने का कारण हुई है। इस समय हिंदुओं का सब से पहिला कर्त्तव्य "हिन्दू कौम का संगठन" करना है। बहुत हद्द तक उनका संगठन बिना कारण के नहीं है। मुलतान की दुर्घटना में हिंदू बुरी तरह पिटे, उनका माल लूटा गया, स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया गया। उनकी दृष्टि में सब दोष कांग्रेस का था। यदि कांग्रेस ने उन्हें अहिंसापरायण न बनाया होता, मुसलमानों को भाई समझने का आदेश न दिया होता, तो वे भी अपना रास्ता देख लेते। यह बात ठीक हो न हो, इसमें संदेह नहीं कि मुलतान के मामले में कांग्रेस की नीति कुछ बहुत प्रशंसनीय नहीं रही। कोई मुसलिम नेता वहां जाकर धरना दे बैठते, यह बात तो दूर रही, किसी ने खुली ज़बान से उन दुर्घटनाओं की निन्दा तक न की। कांग्रेस के नेताओं ने समझा, कड़वी सचाई को छिपा लेने से एकता बनी रहेगी। "सत्यं ब्रूयात्" की अपेक्षा "न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" का सिद्धान्त उन्होंने अधिक पसन्द किया। पं० सन्तानम और मलिकलाल खां का जो कमीशन दुर्घटना की जांच करने गया उस पर अनेक सचाइयां दबाने का दोष दिया जाता है। लाला लाजपतराय के पत्र 'बन्देमातरम्' के पास जो रिपोर्टें पहुंचतीं उन्हें छापने के बदले छिपाया जाता। घास फूस से आग दबाने का यह प्रयत्न बहुत देर तक सफल न हो सकता था। जो मुसलमान कभी असहयोगी न बने थे, जिन्हों ने कभी कांग्रेस को अपनाया नहीं था, उन्होंने लूटमार कर ली, यह बात शायद हिंदुओं को इतना विक्षुब्ध न करती। लेकिन जब उन्हों ने देखा कि वे मुसलमान जो कट्टर असहयोगी बनते थे, कांग्रेस के नाम पर, कांग्रेस के पैसे पर, जीते थे, वे भी इन घटनाओं पर चश्म-पोशी करते, अप्रत्यक्ष रूप से इन्हें पसन्द करते दीखते हैं, और फिर कांग्रेस के हिंदू 'नेता' इस तरह इन मुसलिम 'नेताओं' की ठकुरसुहाती करते हैं, मानो उनके बिना देश की नैया आगे चल ही नहीं सकती, तब उनका कांग्रेस से रूठना स्वाभाविक था। कांग्रेस को अपनी इज्ज़त बचाने का बड़ा अवसर था, पर अवसर के इस विस्तार ने ही उनकी अकर्मण्यता और अशक्तता पर दिनबदिन अधिक प्रकाश डाला। हम लोग असहाय होकर 'नेताओं' का मुंह देखा ही करते हैं, हिन्दू नेता मुसलिम नेताओं से अपीलें करते कि वे मुलतान चल कर बायकाट रोकें, फजल ए-हुसेन के कार्य की निन्दा करें, सिक्ख नेता दर्द-भरे दिल से प्यार से आपको तजरबा बताते कि जो फिरक़ा सरकार का

हाथ अपनी पीठ पर फिरवायेगा वह अपना ही नाश करेगा, पर गाड़ी आगे कैसे चले? अब कांग्रेस का काम इस तरह कुछ लोगों पर निर्भर था तो उसका डूबना आवश्यक ही था। हमारे 'नेताओं' में आजकल एक बड़ी मनोरञ्जक आदत दिखाई देती है। जिनसे पूछिए अमुक काम क्यों बिगड़ा, कहेंगे,—वहां तक तो सब ठीक चल रहा था, उसके बाद मेरा प्रस्ताव माना नहीं गया मैं जेल चला गया, और बस………….। जनता अब भी जेल के द्वारों पर टिकटिकी लगाये नेताओं की बाट जोहती थी। समझती थी, वह नेता आकर काम ठीक करेगा, वह नहीं, तो वह जरूर करेगा। धीरे धीरे उस ने सभी को परख लिया। महात्मा गान्धी तक कुछ न कर सके। दुर्घटना के बाद दुर्घटना होती गई। इस अवस्था का परिमाण दो तरह का हुआ—

युवकों का नेताओं पर से विश्वास उठ गया, और जनता का कांग्रेस पर से। पहली बात को अभी छोड़ता हूँ। दूसरी का फल यह हुआ कि जहां मुसलमानों में कांग्रेस के लिए पहले ही बहुत मोह नहीं था वहां हिन्दू भी कांग्रेस को गालियां देने लगे। हिन्दू संगठन इस वातावरण की स्वाभाविक उपज थी।"

यह है हिंदुओं की, विशेष कर पंजाब के हिन्दुओं की-कांग्रेस से उपरामता के कारणों का मनोविज्ञानिक विश्लेषण। परन्तु शोक से देखा जाता है कि कांग्रेस की नीति अब भी प्रायः वही है। मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने की मनोकामना से प्रेरित होकर हिंदुओं को-कभी उनको कमज़ोरी के नाम पर और कभी उन के उच्च आध्यात्मिक आदर्शों के नाम पर अपील करके दबाना और मुसलमानों के वास्तविक दोषों को प्रगट करने से कतराना। परन्तु अब यह नीति अधिक देर नहीं चल सकती। जितनी जल्दी हमारे नेता इस सत्य को कार्य में लायेंगे -समझते तो वह अब भी हैं-उतना ही शीघ्र देश का कल्याण होगा।

साहूकारा बिल

पंजाब कान्सिल के एक मुसलमान सदस्य ने कौन्सिल में साहूकारा बिल नाम का एक बिल पेश किया है जिसका आशय है उन लोगों पर --जो इस प्रकार का लेन देन करते हैं अधिक कड़ा शासन। प्रस्तावक महाशय का कथन है कि पंजाब कृषि-प्रधान प्रांत है यहाँ के किसान बड़े भोले भाले हैं, अतः बेईमान धन लोलुप महाजन उनको कर्ज़ पर धन देकर इस प्रकार से तंग करते हैं कि वह ऋण से कभी मुक्त ही नहीं हो सके। हम प्रस्तावक महाशय के प्रत्येक विचार से सहमत न होते हुये भी यह मानने को तैयार हैं कि भूत काल में महाजन लोग अपने असामियों को बड़ा तंग करते थे और किंचित अब भी करते हों। परन्तु जितनी कड़ी धाराएं उन्होंने अपने बिल में रखी हैं उनका क्या फल होगा? किसानों को समय २ पर धन की आवश्यकता रहती है, सरकार ने उनको कर्ज़ा देने के लिये कोआप्रेटिव सोसाइटियां बनायी हैं, परन्तु तो भी साहूकारों की आवश्यकता बनी ही रही। इस से यह स्पष्ट है कि प्रान्त की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये साहूकारों का अस्तित्व एक आवश्यकता है। कौंसिल के हिंदू और सिक्ख सदस्यों के विचार में इस बिल के इसी रूप में पास हो जाने का फल यह होगा कि किसानों को समय पर रुपया न मिल सकेगा, और जहां साहूकारों

को हानि होगी वहां किसान भी इससे बच न सकेंगे। और क्योंकि यह बिल केवल किसानों के ही लिये लागू न होगा अतः नगरों के बणिज व्यापार को भी हानि पहुँचेगी। कोई बणिज बिना रुपये के लेन देन के नहीं चल सकता; अतः इस लेन देन को जितना कठिन बनाया जायगा उतनी ही अधिक हानि पहुंचेगी। कौंसिल के बाहर भी हिन्दू और सिक्ख इस बिल का विरोध कर रहे हैं। हिन्दुओं के विचार में इस प्रस्ताव के पेश करने का वास्तविक उद्देश्य उतना किसानों को लाभ पहुँचाने का विचार नहीं जितना कि हिन्दू साहूकारों के नाश की आशा है। अन्यथा समझ में नहीं आता कि पञ्जाब के हिन्दू और सिक्ख किसान स्वयम् तो इसका विरोध करें और प्रस्तावक महाशय और उनके विचारों वाले अन्य नगरों में रहने वाले मुसलमान समर्थन क्या हिंदू किसानों का लाभ एक बात में है और मुसलमानों किसानों का दूसरी में। हम तो अब तक यही समझते आये थे कि—

जात पात पूछत ना कोई।
हर को भजे सो हर का होई॥

वाली सचाई न केवल धार्मिक क्षेत्र में ही ठीक है परन्तु वणिज व्यापार में भी। परन्तु आज पता लगा कि वणिज व्यापार की देवी की दृष्टि में भी जात पात और मतभेद विद्यमान है।

अस्तु। इस समय हमारा विचार साहूकारा बिल पर कुछ लिखने का न था केवल प्रसंगवश ही इतना लिखना पड़ा। हम दिखलाना चाहते थे इस सम्बन्ध में जो आज कल पञ्जाब में हलचल हो रही है उसका एक दृश्य। थोड़े ही दिन हुए कि लाहौर में मुसलमानों का एक जलसा हुआ जिसमें कि उनके बड़े २ नेता इस बिल को समर्थन करने के लिये एकत्र हुये। इन नेताओं में शामिल थे सहयोगी और असहयोगी, मुसलिम लीग वाले और कांग्रेस वाले, एक ओर चौधरी शहाबदीन थे सोलह आने सहयोगी और सरकार भक्त, तो दूसरी ओर थे मौलाना ज़फरअली और डाक्टर किचलू अपने को पक्का कांग्रेस भक्त और असहयोगी कहने वाले। डाक्टर किचलू ने तो यहां तक कह डाला कि हमारे इस जलसे में सम्मिलित होने का आशय ही यह है कि मुसलमान सब एक हैं और भिन्न विचार रखते हुये भी हम एक प्लेट फार्म पर एकत्र हो सकते हैं। यह है मुसलमानों की मानसिक अवस्था। बिलका विषय है एक आर्थिक प्रश्न परन्तु रंगत दी जाती है उसको धर्मकी।

कांग्रेस की कमेटी यह पास कर सकती है कि हिंदुओं का शुद्धि के कार्य में सम्मिलित होना बर्जित है परन्तु उसमें यह क्षमता नहीं कि वह अपने मुसमान सदस्यों को एक आर्थिक प्रश्न को मज़हबी रंगत देकर आपस में बढ़ने वाले वैमनस्य और भेदभाव को और अधिक बढ़ाने से रोक सके। ऐसा करने से कहीं मुसलमान रूठ तो न जांयगे, उनके रूठने से एकता के आडम्बर मन्दिर को तो ठेस न लगेगी, स्वराज्य प्राप्ति में तो कहीं बाधा न पड़ेगी? यह भाव हैं जो कि हिंदू कांग्रेस वालों के मन को अशान्त किये रहते हैं। अतः हम समझ नहीं सकते कि इस सहयोगी के समय में, स्वराज्य पार्टी के शासनकाल में इस बिल के गुण दोष दिखलाने के लिये प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी अथवा उसके सदस्यों ने कोई भाग क्यों नहीं लिया? इन कांग्रेसी हिंदुओं को भय है कि कहीं ऐसा करनेसे उनपर अपने स्वजातीय हिंदू साहूकारों का पक्ष लेने का दोष तो नहीं लगेगा यही

तो मानसिक कायरता है जो कि पञ्जाब में कांग्रेस का नाश कर रही है।

क्या हिंदुओं में शक्ति का बल है

महात्मा गांधी से थोड़े दिन हुये एक अंग्रेज़ सज्जन ने भेंट की। उन्होंने महात्मा जी से प्रश्न किया कि वह हिंदू मुस्लिम समस्या को किस तरह हल करना चाहते हैं। महात्मा जी ने इसका निम्न प्रकार से उत्तर दियाः—

"दोनों जातियों पर लगातार इस बात का जोर देकर कि आपस में आदरभाव और विश्वास पैदा करो, और हिंदुओं को इस बात का आग्रह करके कि वे हर दुनियावी बात में मुसलमानों को अपनी शक्ति के बल पर सब कुछ दे दें, और यह दिखला कर कि जो लोग अपने को देशहितैषी कहलवाते हैं और जिनकी तादाद बहुत भारी है वे धारा सभाओं या सरकारी पदों की भद्दी प्रतिस्पर्धा में योग न दें। मैं यह दिखला कर के भी इस उद्देश्य को सिद्ध करना चाहता हूं कि सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों के द्वारा सत्ता छीन लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों के द्वारा उसके प्रतिकार करने की क्षमता को प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करा के प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उनमें है।"

महात्मा जी के इस उत्तर में जिस सत्य का प्रकाश किया गया है उससे किसी को भी इन्कार नहीं हो सकता। बिना विश्वास के कोई भी सहयोग, मेल और एकता नहीं हो सकती, हिंदुओं से महात्मा जी का यह आग्रह करना कि वह अपनी शक्ति के बल हर दुनियावी बात में मुसलमानों को सब कुछ देदें, भी सर्वथा ठीक है। परन्तु उसी अवस्था में जब कि हिंदू अपनी दुर्बलता से नहीं, वरन् अपनी शक्ति के बल ऐसा करें। प्रश्न केवल इतना ही रह जाता है कि क्या आज कल हिंदुओं में ऐसी शक्ति है कि वह यह दान कर सकें? क्या यह वास्तविक में दान है अथवा बलात्कार, नोच खसोट, गुरुजनोंकी आज्ञा के मोहजाल में फंस अनजान में अपनी निर्बलता को शक्ति का नाम देना? हिंदुओ! अपने हृदय को टटोलो और देखो कि क्या तुम्हारे में यह शक्ति है? इस की जांच की एक ही कसौटी है और वह इस प्रश्न का उत्तर कि जो तुम आज मुसमानों को देने लगे हो यदि उसका कल को दुरुपयोग होने लगे तो क्या तुम्हारे में वापिस ले लेने की शक्ति है? यदि उत्तर "हां" में मिले तो तुम अवश्य शक्तिशाली हो और दानवीर बनने के योग्य हो अन्यथा 'दान' का उपहास न करो। वरन् योग्यता प्राप्त करने में पुरुषार्थवान् हो।

भारत में सरकारी दमन

गत मास भी बंगाल सरकार की दमन नीति की चर्चा ही राजनैतिक क्षेत्र की मुख्य घटना रही। अपनी दमन नीति को न्याय का रूप देने के लिए बंगाल सरकार ने जो कौंसिल में बिल पेश किया था वह कौंसिल ने अस्वीकार कर दिया। इस बिल के विपक्ष में न केवल कौंसिल के चुने हुये मेम्बर— हिन्दू तथा पर्याप्त संख्या में मुसलमान ही थे—वरन् सरकार द्वारा नियुक्त और सरकारी सदस्य भी थे। यह इस बात का बड़ा बलिष्ट प्रमाण था कि प्रजा सरकार के साथ सहमत नहीं और इसकी नीति से उसे घोर विरोध है। परन्तु लार्ड लिटन महोदय ने निजी शक्ति द्वारा प्रजा कौंसिल द्वारा अस्वीकृत इस बिल को पास कर एक बार पुनः दिखला दिया कि यह कौंसिलें केवल आड-

म्बर मात्र हैं और इनकी आड़ में नौकरशाही की निरंकुशता पूर्ववत् वरन् उससे भी बढ़ कर विद्यमान है। इसका दूसरा प्रमाण लार्ड रीडिंग ने दिया जब कि उन्होंने पण्डित मोतीलालजी के लार्ड लिटन द्वारा पास किये हुए दमन बिल को रद करने के प्रस्ताव को कौंसिल में पेश होने की आज्ञा नहीं दी। यदि यह पेश होकर पास भी होजाता तब भी क्या था? होना वही था जो विधाता को भाता और भारत की राजनैतिक विधाता है नौकरशाही।

क्या अब भी स्वराज्यपार्टी के नेता यह नहीं समझते कि उनका कौंसिलों में जाकर सरकार का विरोध कौड़ी काम का नहीं जब तक कि उनकी पीठ पर कौंसिलों से बाहर देश की शक्ति न हो। कौंसिलों में तभी काम हो सकता है जब कि देश में घोर आन्दोलन हो जो कि सरकार को भयभीत कर सके। इस बाहर के आन्दोलन से डरकर ही नौकरशाही इस डर को न मानने और अपनी शान (Prestige) का ढोंग स्थिर रखने के बहाने ही कौंसिलों द्वारा पास किये हुये प्रस्तावों पर ध्यान दे सकती है। अन्यथा वह "क़ागज़ का एक पर्चा" ही रहेंगे जिनका उचित स्थान रद्दी की टोकरी ही है।

यह ठीक है कि इससे कौंसिलों की असारता स्पष्ट हो जाती है, सुधारों का मोहजाल कट जाता है। परन्तु इससे देश को लाभ? क्या इससे स्वराज्य प्राप्ति के लिये कोई सहायता मिलती है? स्वराज्य कौंसिलों अथवा उनमें बैठे हुए इने गिने नेताओं की पूजी नहीं। वह जनता की वस्तु है और जनतामें ही कार्य करके प्राप्त हो सकता है। जनता में एक बार पुनः आन्दोलन करो, उनके हृदय में उथल पुथल मचाओ और फिर से कूड़ा करकट को उठा लेजाने वाली गन्द भी को नाश करने वाली देशव्यापी आन्धी को उत्पन्न करो तभी कुछ बन सकेगा अन्यथा जो काम आप लोग कौंसिलों में कर रहे हैं उसका इस बाद बिवाद से बढकर कोई मूल्य नहीं जोकि हिंदू विश्वविद्यालय तथा अन्य कोलिज के क्षात्र अपने कालिज़ गृहों में रचते हैं।

भारत सर्वदल एकता कान्फ्रैंस।

भारत के सर्व दलों की ओर से जो एकता स्थापनार्थ कान्फ्रैंस नियुक्त की गई थी उसकी तीसरी बैठक इस मास देहली में हुई। कान्फ्रैंस ने कोई ५० सदस्यों की एक छोटी कमेटी नियुक्त करदी। जोकि हिंदू मुसलिम एकता तथा स्वराज्य व्यवस्था पर विचार कर २० फरवरी तक अपनी रिपोर्ट पेश करेगी। हिंदुओं के विचार श्री सत्य मूर्ति ने ठीक २ वर्णन किये जबकि उन्होंने कहा कि "यदि स्वराज्य प्राप्ति के लिए कोई सामान्य कार्यक्रम निश्चित हो जायगा तो सब दलों में समझौता हो जायगा। हिंदू इस मार्ग के बाधक बनना नहीं चाहते। वे जातिगत प्रतिनिधित्व के लिए भी उतने लालायित नहीं; किन्तु जब और लोग उनके लिए लड़ रहे हैं तब हिंदू उस की उपेक्षा भी नहीं कर सकते।"

मुसलमानों में से मिस्टर जिन्नाह की वक्तृता सब को आश्चर्य में डालने वाली थी। एक उच्च कोटि का राजनैतिक लीडर किस प्रकार अपने मत के रंग में रंगा जाकर न्याय और इतिहास पर पानी फेर सकता है यह उसका ज्वलन्त उदाहरण था। किसी भी मुसलमान देश भक्त नेताने यह न बतलाया कि यदि हिंदू मुसलमानों द्वारा पेश की गयी शर्तों को न मानेंगे तो फिर वह स्वराज्य

(शेष मैटर फा०नं० ३ पृष्ठ ५२४ पर देखिये)

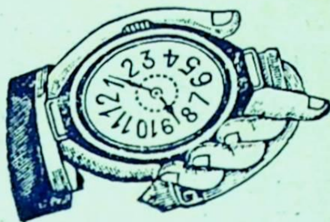
The World's Record Timekeeper

To the intending purchasers of a sound, strong and elegant timekeeper, we would strongly recommend our well known

No. 1001.

ELECTRO GOLD PLATE WRISTLET WATCHES.

This is the very newest style wristlet watch. These watches are artistically finished of the best workmanship, and are guaranteed for



3 years. Their average daily variation, when used with proper care, is 1 to 2 second, a result which has never been surpassed by watches of much higsher prices.

Price, Rs. 7-8-0, with Strap or Bracelet for Radium Dial, Re. 1 8-0 Extra.

N.B.—*Purchaser of 3 Watches at a time. will get one German-made 4-in. dial alarm Timepiece free.*

The Most Fascinating Perfume

LILY OF THE VALLEY

Free from Alcohol or Spirits, and hence can be used by all without any restriction. It possesses the most fragrant smell of the different kinds of fine flowers. Notice minutely the delightful-rike freshly plucked flowers-smell every now and then. In lasting qualities, it is unsurpassed. ask for,



LILY OF THE VALLEY

1 oz. Bottle Re.1-8-0

1 Dram Bottle 0-12-0

Dram Bottle 0-8-0

Sample Bottles, Doz. Re. 1-4-0

" " Each 0-2-0

Hurry up to

PETER WATCH CO.,

P. B. 27, MADRAS

भारत सरकारसे रजिस्ट्री किया हुआ

७००० एजेन्टों द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से अच्छा प्रमाण है



(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिस सेवन करने से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, सग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द बालकों के हरे पीले दस्त इन्फ्लूएँजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है मूल्य ॥) डा० ख० १ से २ तक ।≋)



दाद की दवा

बिना जलन और तकलीफ के दाद के २४ घण्टे में आराम करने वाली सिर्फ यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।) डा० ख० १ से २ तक ≋) १२ लेने से २) में घर बैठे देंगे।



दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों मोटा ताजा और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मँगाकर पिलाइये, बच्चे इस खुशी से पीते हैं। दाम फी शीशी ॥।) डा० ख० ≋)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता—सुखसञ्चारक कम्पनी मथुरा।

अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दिल्ली में छपा। और बाबू त्रिभुवननाथ ... कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया

Regd. No. L. 1240.

वर्ष ५] फाल्गुन १९८१—मार्च १९२५ [खण्ड ५, संख्या ११]



वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

विषय		पृष्ठ

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंगरेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।

पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता हैं।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

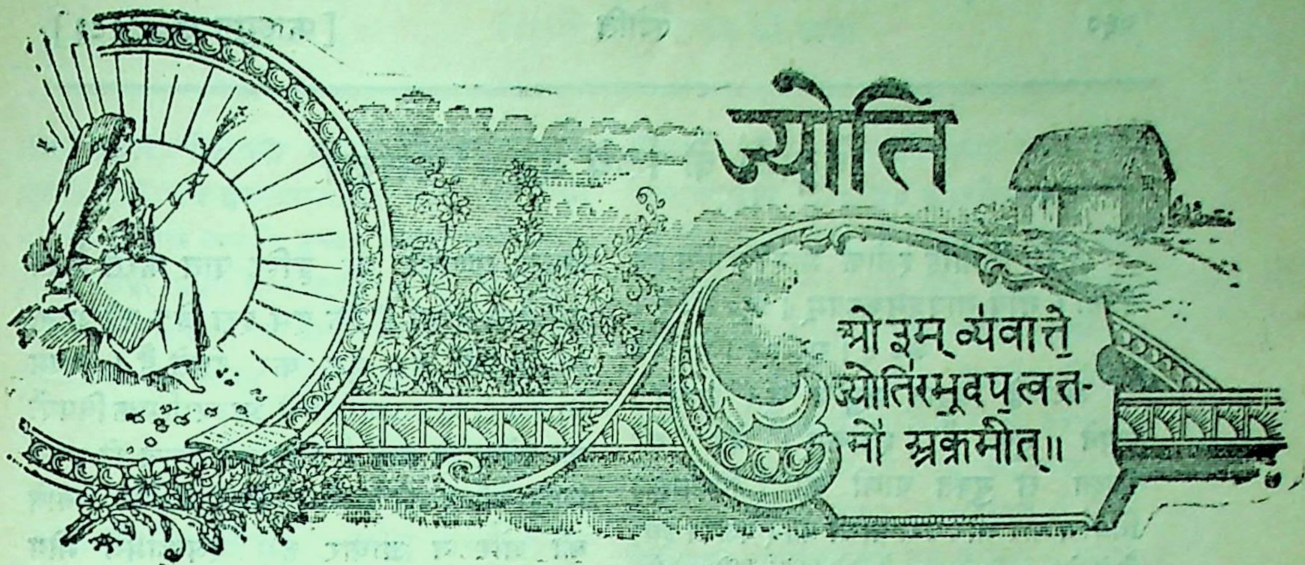
(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति विना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहिये



वर्ष ५ | फाल्गुन १९८१ मार्च १९२५ ई० | संख्या ११

मूलशंकर की ज्योति।

ले०—श्री विद्या भूषण 'विभु'

* 'उपक्रम' *

इसी पुण्य शिवरात्रि को हुए आज शतवर्ष
दयानन्द गुण गान कर, दिखलावें हिय हर्ष॥

कवित्त

ममता की यामिनी में भक्त हैं अचेत सब,
माया अंधियारी और मोह घटा छाई है।
चन्द्रमा का चिन्ह कहीं ढूंढे से भी पाते नहीं,
तारे हुए अस्त 'विभु' बुद्धि चकराई है॥
विकराल आखु काल चुप चाप काटता है,
जीवन के साधनों की वस्तु बिखराई है।
दीपशिखा शम्भु की ज्यों विषम नयनज्वाला,
मानो मूलशंकर ने ज्योति चमकाई है॥

उपसंहार।

उसकी करुणा कोर से, फैला यह आनन्द।
प्यासे पुरुषों के लिये, हुआ स्वांति प्रद कंद॥

विद्वानों के लिये वेद की आज्ञा

ओ३म् मिमीहि श्लोक मास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुकथ्यम्॥ ऋ० मं० १। अ० ८। सू० ३८। मं० १७

अर्थ--हे विद्वान् मनुष्य तू (आस्ये) अपने मुख में (श्लोकम्) वेद की शिक्षा से युक्त वाणी को (मिमीहि) निर्माण कर और उस वाणी को (पर्जन्य इव) जैसे मेघ वृष्टि करता है वैसे (ततनः) फैला और (उक्थ्यम्) कहने योग्य (गायत्रम्) गायत्री छन्द वाले स्तोत्ररूप वैदिक सूक्तों को (गाय) पढ़ तथा पढ़ा।

इस मंत्र में परमात्मा हम मनुष्य लोगों को उपदेश देते हैं कि हमारा प्रथम कर्तव्य यह है कि हम में से प्रत्येक अपने जीवन के प्रथम भाग को ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण करके वेद विद्या सीखने में व्यतीत करें। परन्तु हमारे कर्तव्य की समाप्ति यहीं पर नहीं हो जाती वरन् शिक्षा प्राप्त कर लेने पर हमारा उत्तर दायित्व आगे से भी अधिक बढ़ जाता है। हमें आज्ञा दी गई है कि शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद हम लोग जैसे वर्षाकाल में मेघ उमड़ २ कर सर्वत्र एक रस जल बर्साते हैं और यह विचार नहीं करते कि यहां ठौर है या कुठौर, गन्दे दुर्गन्ध युक्त स्थल हैं। अथवा शुद्ध देवस्थान, कोई जल का भिखारी है या नहीं-इसी प्रकार प्राप्त किये अपने वेद ज्ञान को मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ फैलावें और न केवल दूसरे के हितार्थ फैलावें ही वरन् स्वयं भी नित्य प्रति स्वाध्याय द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करते रहें ताकि हमारी विद्या दिन प्रति दिन बढ़ती रहे और हम लोग कूप मंडूक ही न बने रहें।

आजकल हम जब अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर दृष्टि पात करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि हम इस वेद की आज्ञा से कितनी दूर हट कर रहते हैं। प्रथम तो हमारी पाठ प्रणाली में आध्यात्मिक विषयों का प्रवेश ही नहीं है। हमारी उच्च से उच्च शिक्षा भी हमारे जीवन को धार्मिक बनाने की ओर न जाकर हमें स्वार्थमय भोग प्राप्तिकी ओर लेजाने वाली ही होती है जहां राग द्वेष, स्पर्धा, हिंसा प्रतिहिंसा लोभ और मोह राज्य करते हैं। हमारे हृदय में यह विशालता नहीं होती कि हम सदैव दूसरों के गुणों को ही देखें और उनका गान करें, वरन् हम दूसरों के छिद्रों की ही खोज करते हुये अपने मुख को दूसरों की निन्दा से ही गन्दा करते रहते हैं और यदि हम में से कुछ थोड़ों को परमार्थ सम्बन्धी न सही लौकिक उत्तमोत्तम बातों का यथार्थ ज्ञान हो भी तो वर्षा की तरह उसका प्रचार करने वाले बहुत दुर्लभ हैं। कई शिक्षाप्राप्त जन इतने दुरभिमानी बन जाते हैं कि वह विचार ही नहीं करते कि दूसरों को लाभ पहुंचाना भी उनका कर्तव्य है। उल्टे उनके भाव यह होते हैं कि अगर दूसरों को भी यह ज्ञान प्राप्त हो गया तो हमारी महिमा ही घट जायगी। वह मूर्ख यह नहीं सोचते कि

"अपूर्वः कोपि कोषोयं विद्यते तव भारती।
व्ययतो वृद्धि माप्नोति क्षयमायाति संचयात्॥"

अथात् हे सरस्वती, यह तुम्हारा एक एक अपूर्व ही कोश है जोकि खर्चा करने से बढ़ता है और संचय करने से घटता है।

अतः हमारे हृदयों में विश्वप्रेम के संचार होने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

जब हमारे विशाल हृदय विश्व प्रेम से पूरित होंगे तब हम आत्मवत् सब जीवों के को देखते हुये अपनी उत्तम शिक्षा द्वारा स्वयं उन्नत होके अपने ज्ञान रूपी सूर्य्य से दूसरों के अज्ञानान्धकार का छेदन करते हुये वैदिक सिद्धान्तों का मनन और प्रचार कर सकेंगे।

आजकल हम देखते हैं कि बहुधा कई अयोग्य उपदेशक धर्म की वेदी पर से दिन रात प्रचार तो करते हैं परन्तु उनमें स्वयं उत्तम ज्ञान न होने के कारण उससे लाभ नहीं होता। दूसरे वह अपने रोजी कमाने की दृष्टि से कार्य्य करते रहते हैं इस लिये वेद की तीसरी आज्ञा कि उत्तम वैदिक सिद्धान्तों को पढ़ और पढ़ा—उनका लक्ष्य नहीं होती। यही कारण है कि हमारे आर्य्य-जगत् में यद्यपि नित्य प्रति उपदेश होते रहते हैं परन्तु उनका वह प्रभाव नहीं हो रहा है जोकि होना चाहिये क्योंकि उपदेशक और शिक्षक लोग उपरोक्त तीन वैदिक आज्ञाओं पर उचित रीति से ध्यान नहीं देते। पुरुष लोग तो फिर भी कुछ न कुछ स्वाध्याय और मनन करते रहते हैं परन्तु बड़े खेद की बात है कि प्रथम तो स्त्रियों में उपरोक्त प्रकार की शिक्षा का अभाव सा ही है और उपदेशिकायें भी नहींकी तरह ही हैं। परन्तु जो दो चार दश हैं उनमें भी स्वाध्याय और मनन की प्रकृति नहीं। एक वार परीक्षा पास करली फिर उन्हें पुस्तकें खोलने और समाचार पत्र, मासिक पत्र द्वारा ज्ञान वृद्धि करने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। अतः उनका ज्ञान गढ्ढेमें इकट्ठा हुवे पानी की तरह ज्यों का त्यों रह जाता है बल्कि यह कहना चाहिये कि उसका ह्रास भी हो जाता है जिस से न वह अपनी उन्नति कर सक्ती हैं न दूसरों को लाभ पहुंचा सकती हैं। स्त्री समाजों की यही दशा है। कन्या पाठशालाओं में भी यही देखा जाता है कि अध्यापिकायें प्रायः उन पुस्तकों को कन्याओं को पढ़ा देती हैं जिनको वह स्वयं समझती भी नहीं। एक वार पाठ पढ़ाकर अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेती हैं। परन्तु यह दुर्दशा हमारे भारतीय शिक्षण में ही है। हमें अमरीकन देवियों से पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो हमने यह देखा कि बड़ी २ डिग्री प्राप्त अध्यापिकायें और क्रिश्चियन उपदेशिकायें जब क्लास में पढ़ाने आतीं या लड़कियों को बाइबिल पढ़ातीं या उपदेश देतीं तो उन पाठों को अपने अवकाश के समय तैय्यार करके उन पर टीका टिप्पणी लिख कर लातीं तब पढ़ाती या उपदेश देतीं थी। उनको उस तैय्यारी में पढाने के घंटे से कहीं अधिक समय देना पड़ता था। परन्तु जिस दिन वह तैय्यारी करके न आतीं तो नया पाठ नहीं पढ़ाती थीं। उन विद्या सम्पन्न देशों में यद्यपि वेद का सीधा प्रचार नहीं रहा परन्तु वैदिक सिद्धान्तों में से बहुतों का क्रियात्मक रूप से प्रचार है, यही कारण है कि वह उन्नत हैं। हमारी भारतीय देवियां कितनी होंगी जोकि अपने ज्ञान को इतना कम समझती हों कि दूसरों को देने से पूर्व उसे पर्य्याप्त रूप से ठीक करने की आवश्यकता अनुभव करती हों? प्रायः सभी अपने को इतनी विज्ञ समझती होंगी कि पढ़ाने या उपदेश देने से पूर्व स्वाध्याय और मनन करलेने की बात को वह अपनी हतक ही समझती होंगी। यही कारण है कि हमारी नारी जाति में ज्ञान की वृद्धि नही हो रही है। जितनी कितनी विद्या किसी को आगई वह आगई उसके रक्षण करने, बढ़ाने तथा उपयोग में लाने के नये २ ढंगों को बर्तने से वह सर्वथा विमुख रहती हैं।

अतः हम शिक्षित वर्गों का ध्यान इस वेदमंत्र की ओर खींचते हैं कि वह अपने ज्ञान की वृद्धि करते हुए दूसरों को देव और स्वयं भी निरन्तर स्वाध्याय और मनन करते रहें ताकि ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रहे।

गुलाब के प्रति

ले०—'मुकुन्द'

हो गुलाब ! सुमनों के भूप।
एक तुम्हीं गुरुतर निकले जो फटका उपवन रूपी-रूप।
हो गुलाब ! सुमनों के भूप॥

खुलम खुल्ला रूप लुटाते। रसिक-हृदय, निज-कर में लाते।
हो सुगन्ध से अलि को भाते। मधुमक्षी को सुरस पिलाते॥
तुम पहचाने जाते तब भी पीले-लाल, श्वेत बहुरूप।
हो गुलाब ! सुमनों के भूप॥ १॥

कली रूप से प्रातःकाली। बजाई चुटकी बढ़ी खुस्याली।
'ली चुटकी' निज दशा सम्भाली-सुमनोंने, यों मुंह की खाली॥
बुरा मान तोड़े माली या चुने देव—हित देख अनूप।
हो गुलाब ! सुमनों के भूप॥ २॥

नायिका चरण में, कहते हैं—'तेरे कोमल-दल गड़ते हैं।'
नहीं देख जब दल पड़ते हैं। चरण नहा दृग में गड़ते हैं॥
भावुक प्रेमी क्यों तोड़े हैं ? संभल सके न देख तव-रूप।
हो गुलाब ! सुमनों के भूप॥ ३॥

कांटों से तुम घिरे हुए हो। खिला-रूप-निज, धरे हुए हो।
मानों शिक्षा करे हुए हो। 'अजी" दुःख से मरे हुए हो—
तो भी धैर्यवान हो सह लो, फूल चलो मेरे अनुरूप।"
हो गुलाब ! सुमनों के भूप॥ ४॥

स्त्रीशिक्षा का आवश्यक अङ्ग

लेखक—श्री राजेन्द्र विद्यालङ्कार



आज स्यात् ही कोई ऐसा साधारण सी बुद्धि रखने वाला भी व्यक्ति हो जिसे कि स्त्री शिक्षा के विषय में सन्देह रह गया हो। समय की प्रगति ने यह स्पष्टतया दर्शा दिया है कि विना स्त्री जाति को शिक्षित किए एक क्षण के लिये भी हमारा निर्वाह नहा हो सकता। वह शिक्षा कैसी हो इस विषय में नाना प्रकार के मत भेद हो सकते हैं किंतु शिक्षा की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। शास्त्रों में भी पर्याप्त रूप से इस विषय के प्रमाण मिलते हैं कि स्त्रियों ने न केवल साधारण ही अपितु पूर्ण विदुषी होकर किस प्रकार से जातियों के रुख बदल दिए। इतिहास इस विषय की साक्षी देता हुआ पूर्ण रूप से प्रमाणों की पुष्टि करता है।

यह सब कुछ होते हुए भी मुझे एक बात पर बल देना है और वह शारीरिक शिक्षा के विषय में है। उच्च मस्तिष्कों में से जिन किन्हीं ने भी शिक्षा का लक्षण किया है उसमें शारीरिक उन्नति का भी अच्छी प्रकार से समावेश है। प्राचीन ऋषि शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीन विकाश बतलाते हुए लिखते हैं—

मनो वाग्देह सामर्थ्यप्रदा सद्गुण सन्ततिः।
सैव शास्त्रे सताविद्याऽविद्याऽपरा प्रकीर्तिता॥

अर्थात् सच्ची शिक्षा वही है जो मन वाणी शरीर की आन्तरिक शक्तियों का विकास करे। इसी प्रकार से प्लेटो, अरस्तू आदि-पाश्चात्य विद्वानों ने भी सर्वांगीन उन्नति को ही शिक्षा के नाम से पुकारा है। इस युग के आचार्य ऋषिवर दयानन्द ने भी चातुर्दिक उन्नति को ही सच्ची शिक्षा के नाम से पुकारा है।

परन्तु शोक यही है कि हम सब बातों को सुनते और समझते हुए भी उन पर मनन और निदिध्यासन करने का यत्न नहीं करते। शिक्षा पूर्ण रूप से शिक्षा नहीं कही जा सकती जब तक कि उसमें शरीर मन और आत्मा तीनों के समान रूप से विकाश करने की सामग्री उपस्थित नहीं है। आज देश में पर्याप्त संख्या में कन्याओं के लिये पाठशालाएं तथा स्कूल आदि खुले हुए हैं किंतु क्या कारण है कि देश की अवस्था में कुछ विशेष परिवर्तन आता दिखाई नहीं देता। इसका कारण यदि संक्षेप में कहा जाय तो मेरी सम्मति में शारीरिक शिक्षा का अभाव ही है। आत्मिक और मानसिक शिक्षा बिलकुल व्यर्थ है जबतक कि शरीर सब प्रकार से हृष्ट पुष्ट और विकसित नहीं है। यही कारण है कि अब मनुष्यों की शिक्षा की भांति लोग स्त्री शिक्षा मात्र से ही घृणा करने लग गए हैं। और वस्तुतः बात भी सच्ची है कि यदि स्त्री शिक्षा की इतनी संस्थायें होते हुए भी देश में वही हाहाकार मचा हुआ है तो उन सब की कोई आवश्यकता ही नहीं। अपना प्राचीन और विशेषतः मध्यकालीन इतिहास हमें इस बात की साक्षी देता है कि उस समयकी सर्वसाधारण देवियां चाहें किताबी विद्या से उतना परिचित न थीं किंतु उनके शरीर बड़े दृढ़ तथा शक्ति पूर्ण

थे। राजपूताने का सारा इतिहास ऐसे अनेक दृष्टान्तों से भरा पड़ा है जिनके यहां देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। देवियों के ऐसे हृष्ट पुष्टांग होने के कारण ही उनकी सन्तान भी सब तरह सुदृढ़ 'शालप्रांशुर्महाभुज' युक्त हुआ करती थीं। उस समय का जैसा वर्णन कवि लोग करते हैं उसकी तुलना आज कल के पुरुषों के शरीर से नहीं की जा सकती। इसीलिये आर्य-वर्तीय प्राचीन संस्कृति से अनभिज्ञ पुरुष कभी २ उसे गप्प या असम्भव बात भी कह देते हैं। अस्तु,

हमारा इससे यह अभिप्राय किसी अवस्था में नहीं कि कन्याओं को शिक्षा नहीं देनी चाहिये किंतु हमारे कहने का प्रयोजन यह हैं कि कन्याओं को शिक्षा देते देते समय उनकी शारीरिक शिक्षा का सब से प्रथम ध्यान रखना चाहिये। बहुत काल से हमने उन्हें 'अबला' नाम देकर सचमुच ही अबला बना दिया है। यह एक सर्वतन्त्र सिद्धांत है कि किसी जाति की उन्नति का आधार उस की माताओं पर ही है। यदि माताएं ही अशिक्षित दुर्बल हैं तो उनसे वैदिक आज्ञानुकूल वीर पुत्र उत्पन्न करनेकी आशा केवल दुराशा मात्र ही है। कहावत भी है।" मां पर पूत पिता पर घोड़ा बहुत नहीं तो थोड़ा २"। जब माताएं ही 'अबला' हैं तो पूत 'सबल' कैसे हो सकते हैं? पंजाब प्रान्त में तो अबतक बहिनें अपने भाइयों को 'वीर' नाम से याद करती हैं। इस गिरे हुए जमाने में भी वह वैदिक भाव किसी न किसी रूप में प्रचलित दृष्टिगोचर होते ही हैं। 'वीर'—आहा! क्याही सुन्दर प्रेम गर्भित वीरतापूर्ण शब्द है! जब देश में वस्तुतः 'वीर' होते होंगे तो क्या ही अनुपम समय होगा। अपनी बहिन के मुख से निकले हुए 'वीर' शब्द में क्या माधुर्य भरा है इसे वे ही भाई जानते हैं जिन्हें कभी इसके सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह प्रचलित 'वीर' शब्द वैदिक भावों की ठीक नकल है यदि यह कह दिया जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। वेद में विवाह प्रकरण में व अन्यत्र जहां कहीं भी स्त्री के लिये आशीर्वाद रूप किसी शब्द का प्रयोग किया है वहां यही 'वीर' शब्द समान रूप से प्रचलित पाया जाता है। शोक कि स्थानाभाव से हम उन सब मन्त्र-भागों का उल्लेख नहीं कर सकते तथापि कुछ बातों का उल्लेख किये बिना हम रह भी नहीं सकते—

ऋग्वेद मं० १० सू० ८५ में आया है—"............ ...वीरसूर्देवृकामा शन्नोभव द्विपदे शं चतुष्पदे" अर्थात् हे पत्नी! तू वीरों को उत्पन्न करने वाली हो। इसी प्रकार से 'अस्य यजमानस्य वीरो जायताम्' इत्यादि मंत्र में राष्ट्ररूपी यजमान के लिये वीर सन्तान उत्पन्न करने की प्रार्थना की गई है। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी एक मंत्र आया है—" वीरसूर्देवृकामा संत्वयैधिषी महि सुमनस्य माना" अन्यच्च—"......... वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥"

इन मंत्र भागों में स्पष्ट ही गृहस्थ में प्रवेश करती हुई कन्या के लिये उपदेश है कि वह वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली हो। कहीं २ उसे 'सूर्यामिव' परिधत्तां प्रजया 'सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम्' 'सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवेह" इत्यादि मंत्र भागों से सूर्य के

समान देदीप्यमान और अपनी शक्ति से वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली की उपमा दी गई है।

विवाह प्रकरण में कन्या के निकटस्थ सम्बन्धी (भाई) के द्वारा उसका पग पत्थर की शिला पर रखे जाने के पीछे वर (कन्या को) कहता है—' आरोहेयमश्मानमश्मेव त्वꣲ स्थिराभव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽववाधश्च पृतनायतः" अर्थात् हे मेरी धर्मपत्नी ! शत्रुओं पर विजय पाने के लिये इस पत्थर के समान होती हुई इस शिला पर आरोहण कर। भगवान कृष्ण गीता में स्पष्ट ही उपदेश देते हैं—"अधार्यो दुर्बलेंद्रियैः" अर्थात गृहस्थ का भार निर्बल इन्द्रियों वाले व्यक्ति नहीं उठा सकते।

इस प्रकरण में जब कन्या गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती हैं उसके कंधों पर बड़ा भारी बोझ आ पड़ता है इस बोझ को वह कभी उठा नहीं सकती यदि उसमें पूर्व सञ्चित ब्रह्मचर्य विद्यमान न हो। इसी लिये संस्कार छोटी आयु में कन्या के विवाह का निषेध करते हैं। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती हुई कन्या को वेद उपदेश करता है—"………। गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनीत्वं विदथमा वदासि ॥" एवं—"यथा सिंधुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा। एवा त्वं साम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य।"—"सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां……………………………",
"गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु"।

अर्थात् हे कन्ये ! तू गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर। किस लिये ? घर की रक्षा करने के लिये, और सब को वश में करती हुई सत्य वेदवाणी को बोलने वाली हो। तू साम्राज्ञी है और तू घरों (वन्शो) को तारने वाली है। फिर अंत में कहा है "तू घरों की रक्षा करने वाली है इस लिये तू घरों (गृहस्थ) में प्रवेश कर परमात्मा तेरी आयु की वृद्धि करें। इन मंत्रों में स्पष्ट ही कन्या के लिये जिन वीरता भरे शब्दों का प्रयोग किया गया है किसी से छिपा नही है।

परन्तु प्रश्न यह है कि यह सब हो कैसे? क्या विवाह समय में यह मंत्र बोलने मात्र से कन्या में वीरता के भाव जागृत हो जाते हैं अथवा इसका कोई और साधन है ? वेद कहता है "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्" अर्थात् ब्रह्मचर्य ही इन वैदिक भावों की पूर्ति का एक मात्र साधन है। बिना ब्रह्मचर्य के किसी अन्य कृत्रिम रीति से ये भाव किसी जाति की बालिकाओं में प्रविष्ट नहीं हो सकते।

उस ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये मुख्य उपाय नैत्यिक व्यायाम अर्थात् शारीरिक अभ्यास है। वे शारीरिक अभ्यास व व्यायाम किसी ढंग के हों किंतु किसी न किसी रूप में उनका होना अत्यावश्यक है।

सम्भवतः आजकल के कई नवशिक्षित व्यक्ति कन्याओं के लिये व्यायाम विशेषों का निर्देश करने से कुछ आश्चर्य में पड़ जांय, किन्तु प्राचीन समय में इनका विधान पाया जाता है। यहां तक कि मध्य कालीन समय में भी कन्याएं बाणादि अस्त्र संचालन में बड़ी प्रवीण हुआ करती थीं। राजपूताने का इतिहास तो ऐसे कितने ही उदाहरणों से भरा पड़ा है। इस पतित समय में भी देहरादून की उन चमारियों की घटना पाठक भूले न होंगे जिन्हों ने एक मौलवी साहब को उस की उद्दण्डता के लिये पर्याप्त दंड देकर उस के मुंह से 'अम्मा' कहलवा कर छोड़ा था।

ऐसी कई घटनाएं पाई जाती हैं किन्तु बहुत कम। इस सब का एक मात्र कारण हमारा अपना ही दोष है। हमने कन्याओं

को सब प्रकार की आत्मिक और मानसिक शिक्षा दी किन्तु उनकी शारीरिक शिक्षा की ओर से किनारा कर लिया।

परिणाम क्या हुआ ? दिन प्रति दिन हमारी माताओं और भगनियों पर अत्याचार होते हैं किन्तु वे उनसे अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं।

प्राचीन स्पार्टा की माताएं अपने नव-जात पुत्र को एक ऊंचे टीले पर से नीचे फेंक दिया करती थीं। यदि वह जीने के योग्य होता था तो जीता रहता था और यदि नहीं तो परलोक सिधार जाता था। वे अपुत्रा रहना पसन्द करती थीं किन्तु निबल, जाति को अपमानित करने वाली सन्तान को उत्पन्न करना वे पसन्द न करती थीं। क्या उन्हें अपने पुत्रों से प्रेम नहीं था ? नहीं २ कभी नहीं। उन्हें प्रेम था और अवश्य प्रेम था किन्तु वह प्रेम सच्चे अर्थों में था। इसी लिये वे जातिको कलङ्कित करने वाले पुत्रों को उत्पन्न करने की अपेक्षा अपुत्रा कहलाने में ही सौभाग्य समझती थीं। परन्तु यह सब किसी आधार पर, किसी विश्वास पर— उन्हें अपने वीर पुत्र उत्पन्न करने का गर्व था। उन्हें अपने ब्रह्मचर्य काल में पूर्ण रूप से विश्वास था। उनके यहां गुड्डे गुड़ियों के विवाह न होते थे। उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन में पुरुषों के समानही सब प्रकार की शारीरिक विद्याओं से अवगत कराया जाता था।

अमेरिका के भूतपूर्व प्रसिडैन्ट उडरो विल-सन अपनी पुस्तक "History and Practical Polities" के पृष्ट ६२ पर लिखते हैं—

This discipline included the women only during their youth; girls had to 'take' gymnastics as the boys did; but they did not go into the discipline of the men, The product was a fine soldiery and capital soldiers mates, shapely, corse sterdy women.

अर्थात् पुरुषों के समान स्त्रियों को भी जमनास्टिक आदि (उनकी जवानी की अवस्था में) अभ्यास कराया जाता था, जिस का परिणाम उनमें शूरवीरता तथा कठोरता के सुदृढ़ जीवन का समावेश था।

इस से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय पुरुषों के समान स्त्रियों के लिये शारीरिक व्यायाम का होना भी अत्यावश्यक था।

आजकल भी जापान, अमेरिका आदि उन्नत देशों में कन्याओं को इन सब प्रकार के नियन्त्रणों में से गुज़रना पड़ता है ताकि उनके शरीर सुदृढ़ होते हुए भावी में उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर सकें।

वर्तमान समय में प्रायः देखा जाता है कि जहां कहीं भी कन्याओं के लिये पाठशालाएं तथा स्कूल आदि विद्यमान हैं वहां अधिकतर उनकी आत्मिक और मानसिक उन्नति की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है शारीरिक उन्नति की ओर नहीं। कारण पूंछने पर कह दिया जाता है कि 'हमने उन्हें कोई सिपाही, व लड़ाई में भेजने के लिये तो तय्यार नहीं करना'। परन्तु संस्थाओं के चलाने वालों को यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि उन्हें अपनी छात्राओं को जिस किसी भी कार्य के लिये योग्य बनाना हो किन्तु वहां शारीरिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इस की उन्नति के बिना आत्मिक और मानसिक उन्नति की चेष्टा करना सर्वथा निरर्थक और देश तथा जाति के लिये हानि कारक है।

पाठकगण ! यदि आप स्त्री जाति को अवनति के गढ़े से निकाल कर सच्चे अर्थों में देश की उन्नति करना चाहते हैं तो सब से प्रथम आप को स्त्री शिक्षा के आवश्यक अंग उनकी शारीरिक उन्नति की ओर बहुत शीघ्र ध्यान देना चाहिये।



मासावतरण।

फाल्गुन-

ले०—आयुर्वेदाचार्य पं० सन्तलाल दाधिमथ वैद्यराज।

पक्व-सा नव-धान्य सब है हो रहा
'होलकोत्सव, लीजिए सब ही मना †''--
'बभ्रुवाहन' ने करी यों पूर्व थी--
फाल्गुनिक में 'होलिका'[1] की घोषणा !

* * * *

थी हिमानी[2] से दबी जो भानु-भा-
हो पराजित आप संकुचाने लगी;
सो स्वयं स्वातन्त्र्य से वह सूर-श्री[3]--
ओः ! शनैः हिम पर विजय पाने लगी !

* * * *

उन ह्रदों के, ह्रदिनी[4] के तीर पर,
क्यों द्विजों[5] का नाद औ, अनुनाद है ?
क्या वन-श्री झांक कर वे कर रहे--
प्रिय वसन्त शुभागमन-संवाद है ?

* * * *

---

† पुरातन इतिहास में बभ्रुवाहन भूप की यह घोषणा हुई, मिलती है कि—
"नव शस्य पक कर तयार है, होलकोत्सव मनाओ।" वही पुरानीः—
१—'होलिका (नव-शस्येष्टि) ' आती है   २ -हिमानी-महाहिम;
३—सूर – सूर्य'   ४—ह्रादिनी-सरिता;   ५—द्विज पक्षी;

स्त्रियां आचार धर्म की रक्षिकायें।

लें०-आर्य महिला,

"स्त्रियां सदाचार के अभ्यासिक रूप का पता लगाती हैं पुरुष उसको नियम बद्ध करते हैं, स्त्रियों में Intuition प्रतिभा शक्ति अधिक होती है पुरुषों में तर्कना शक्ति। इन दोनों के योग से ही मनुष्य समाज को विज्ञान का प्रकाश और ज्ञान मिलता है, अथवा यों कहिये कि अपनेतथा दूसरों के रूप का ज्ञान जो मनुष्य को मिला है वह इसी का परिणाम है।"

रूसो के इन शब्दों से जीवित सचाई टपकती है, इसी को सभी विद्वानों ने प्रगट किया है। स्त्रियों की सभी क्षेत्रों में जो शक्ति है और विशेषतया सदाचार के विभाग में-वह उत्पादिनी प्रतिभा शक्ति से सम्बन्ध नहीं रखती। सदाचार के उन्नत करने में जो सहायता वह देती हैं वह आदर्श के सम्बन्ध में जो उनकी Intuition प्रतिभा शक्ति है उसी का परिणाम है। अनुभव के क्षेत्र में वह झट वस्तु का मूल्य लगा लेती हैं, उनकी आंखें धर्म के विविध रंगों को पहिचानने के लिये तीव्र होती हैं चाहे वह धर्म के सूक्ष्म तन्तु न उधेड़ सकें—व्यक्तिगत भेदों को वह जल्द पहिचान लेती हैं चाहें धर्म के सिद्धान्तों का समर्थन न कर सकें।

स्त्रियों ने धर्म की प्रवर्तिका बन कर तो सदाचार धर्म की सेवा नहीं की और नाहीं उन्हों ने कोई धर्मशास्त्र का निर्माण किया है और नाहीं यदि उन्हें न्यायाधीश बनने का अवसर दिया जाता तो वह कोई बड़े भारी न्यायशास्त्र की ही रचना कर देतीं परन्तु इतना अवश्य है कि यदि विद्यमान नियमों तथा सदाचार का जीवन में संघटन करने का अवसर आवे तो स्त्रियोंने चूंकि वह खुशीसे ग्रहण कर लेती हैं और उसे बढ़ा लेती हैं तथा अपने स्वभाव को उसके अनुकूल बना लेती हैं और फिर उस पर दृढ़ता से स्थिर रहती हैं इसलिये ऐसा प्रभाव डाला है जिसका मूल्य गिना नहीं जा सकता न नाही इसका इतिहास वर्णन किया जा सकता है क्यों कि ऐसा करने पर पोथों के पोथे तैयार हो जांय। आदि सृष्टि से अब तक माता अपने बच्चे के उत्तम काम करने पर हर्षित होकर जिस प्रकार अपनी खुशी प्रगट करती है अर्थात् बच्चेके बालों को सूंघती तथा मुख चुम्बन करती है अथवा अपने प्रेमयुक्त मधुर शब्दों में उसे यह समझाती है कि तुममें क्या क्या उत्तम शक्तियां हैं जिन्हें तुम व्यर्थ गवां रहे हो—उसका जो प्रभाव सन्तान पर पड़ता है वह अवर्णनीय है।

इतिहास में कितनी ही पत्नियां होंगी जिन्हों ने अपने पति को स्वार्थ और परार्थ के युद्ध में ऐसी मति दी है कि वह स्वार्थ के लोभ का त्याग करके आत्मा की आवाज सुनने पर बाधित हुये। इस से भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि संसार के इतिहास में ऐसी देवियां हो चुकी हैं और हैं जिन्हों ने अकेले हाथ युद्ध करके बिजली की चमक में जैसे अंधकार में लीन वस्तु अकस्मात् प्रगट हो जाती है उसी प्रकार अपने समय की नीच प्रवृतियों और पक्षपात भरी नीति का उद्घाटन किया है। तथा सामूहिक रूप से पुरूषों के साथ सहयोग करके देश प्रेम, धर्म, न्यायपरता और स्वाधीनता पर

हर्ष पूर्वक अपने ज़ीवन की आहुती दी है। उदाहरण रूप में भारत के सामने दस हजार वीर वालाओं को भस्म करने वाली चित्तौड़ की चिता आज भी भारत वासियों के सन्मुख धांय धांय करके दहक रही है। बहुत दूर जाने की ज़रूरत नहीं है। युद्ध यज्ञ की आहुतियां पद्मिनी, जवाहिर, तारा, लक्ष्मीवाई, और दुर्गावती आदि आज भी भारत में सच्ची देवियां करके पूजी जा रही हैं। और भी, इन्हीं दिनों में पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियां, पहिले तो एक एक करके ही फिर अब संगठित होकर पुरुषों से अपने अधिकार छीनने के युद्ध में लगी हुई हैं और जिन पापों तथा कष्टों में समाज आज एक दम डूबी हुई है उनके विरुद्ध आन्दोलन करती हुई अपने अधिकारों पर स्थित हो कर युद्ध कर रही हैं।

सदाचार की उन्नति में स्त्रियों ने जो प्रत्यक्ष सहायता दी है उसके अतिरिक्त अव्यक्त रूप से भी उनका प्रभाव कम नहीं है। प्रत्यक्ष रूप से तो अपने निज कार्यों द्वारा परन्तु अव्यक्त रूप से अपने उत्साह से तथा पुरुषों के घरेलू तथा बाहरी जीवन में अनाचार को मान कर अपना प्रभाव फैलाया है जिस का परिणाम यह हुआ कि आचार शास्त्र के विकास को कभी तो अवरुद्ध कर दिया कभी उत्पथ पर ले जाया गया। हम इस समय केवल एक उदाहरण द्वारा पाठकों को यह याद दिलाना चाहते हैं कि बर्फ से ढके हुये जंगली देशों में जो गाथायें मशहूर हैं वह इस प्रभाव की प्रत्यक्ष साक्षी हैं। उस जंगली समय में भी जबकि घरेलू झगड़ों के हो जाने पर यदि कोई किसी की हत्या कर देता तो पुरुष तो उसके बदले में जुर्माना लेना ही पर्याप्त समझते थे परन्तु स्त्रियां आंखें भर कर भौंहें तरेड़ कर उन्हें जान के बदले जान लेने पर ही बाधित करती रही हैं। अथवा हमारे ज़माने में भी बोअर युद्ध के समय बहुत सी अंग्रेज स्त्रियों ने अपने देश के दोषों को प्रगट किया। यदि निष्पक्षपात भाव से सदाचार की वृद्धि पर विचार किया जाय तो पता लगेगा कि जहां हमारे सामने ऐसा समय है कि स्त्री और पुरुष एक साथ उठे हैं वहां दूसरी तरफ हम ऐसे भी समय पाते हैं जब कि दोनों जातियां एक साथ डूबी हैं। इस से पता लगेगा कि संसार में ऐसी स्त्रियां हुई हैं जिन्होंने केवल उन सब गुणों को ही प्रगट नहीं किया जिन्हें हम वास्तव में स्त्रियोचित गुण समझते हैं वरन् उनका भी उपयोग किया जिन्हें यथार्थ में पुरुषोचित गुण कहते हैं। इसी प्रकार यह भी ज्ञात होगा कि स्त्रियों ने पुरुषोचित बुराइयां भी की हैं और साथ में स्त्रियोचित दुर्गुण भी रखे।

किसी विशेष समय या देश में स्त्रियों के सदाचार सम्बन्ध में समष्टिरूप से कुछ कहना भ्रमोत्पादक होगा जबतक कि उसके बहुत से अपवाद ध्यान में न रक्खे जावें, उदाहरण के तौर पर देखिये लोकोक्ति है कि पुरुष तो न्याय शास्त्र निर्माण करते हैं और स्त्रियां व्यवहार सम्बन्धी शास्त्र अर्थात् वह बेलिखित नियम जोकि लिखित नियम से कहीं अधिक बाधित करने वाले होते हैं। पाश्चात्य सभ्यता में इस सम्बन्ध में हमें उन 'मान्य ऋणों' "Debts of honour" को नहीं भूल जाना चाहिये जिनको पुरुष लोग बड़े आवश्यक समझते हैं। उदाहरणार्थ जुवे का ऋण जोकि किसी स्त्री के सतीत्व भ्रष्ट करने के ऋण से कहीं बढ़कर मान्य है। अथवा द्वन्द्व युद्ध का आह्वाहन होने पर जिस प्रकार पुरुष झटपट उसके लिये तैय्यार हो जाते हैं उस प्रकार विवाह सम्बन्ध से बाहर उत्पन्न हुये अपने बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य पर कटिबद्ध नहीं होते। क्षात्र धर्म,

सैनिक धर्म, व्यापार धर्म, इत्यादि बतलाते हैं कि पुरुष लोग अपने क्षेत्र में स्त्रियों के अपने क्षेत्र में से कहीं बढ़ कर अलखित नियमों का प्रयोग करते रहते हैं। चाहे वह न्यायानुकूल हो अथवा नहीं।

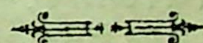
केवल घर और सामाजिक क्षेत्र में ही स्त्रियां रीति चलाती हैं। यहां पर स्त्रियों की अनुमति अथवा विरोध इच्छायें और आवश्यकतायें ऐसी ही रचनात्मक और परिशोधक होती हैं जैसी कि समुद्र की लहरें किनारे की ज़मीन पर। दोनें बाता में अर्थात् हमें क्या २ करना चाहिये तथा किन २ बातों से दूर हटना चाहिये तथा भोजन काल के नियमों से लेकर प्रेम अथवा द्वेष के सूचक व्यवहारों तक, ऊपरी तड़क भड़क से लेकर उदार हृदय सरलता तक घर में स्त्रियां ही नेता पद को ग्रहण करती रही हैं। इस लिये उस हद तक जहां तक कि बाहरी व्यवहार आत्मिक जीवन पर प्रभाव डालता है स्त्रियों ने ही हमारे सत्यासत्य के भावों के बनाया है। किसी विचार या कार्य पर झट पट बलपूर्वक अपनी सहानुभूति अथवा घृणा दर्शा कर निरन्तर किंतु नम्र दबाव डालकर उन्हों ने धीरे २ हमारे सदाचार के भावों के पर्तों को उधेड़ कर पुनः बैठाला है। स्त्रियों की निरन्तर असम्मति बूंद बूंद करके हमारे बड़े दृढ़ सिद्धान्तों में छेद कर देती है, उनकी अनवरत भावों की लहरें पुरुषों की तीखी सदाचार सम्बन्धी आज्ञाओं के किनारों को रगड़ कर गोल कर देती हैं।

अस्तु, इस लिये बहुत अंश में स्त्रियों ने सदाचार शास्त्र को यद्यपि कुछ बदल दिया है तथापि अपनी उग्र दृढ़ता, कोमलता, स्वामि भक्ति तथा शुद्धता द्वारा उसकी रक्षा भी की है। इस प्रकार जहां स्त्री जाति के गुणों में मानसिक शक्ति की निर्बलता पाई जाती है वहां यह अनुदारता अवगुण के स्थान में बड़ा भारी गुण है।

आचार में स्त्रियों की अनुदारता बड़ी आवश्यक सिद्ध हुई है। एक तो इस से स्वभाव को ट्रेनिंग मिलता है जिस से वह जो कुछ सत्य है उसी की ओर अन्तमें झुकता रहता है, दूसरी ओर परिवर्तन काल के समय सदाचार सम्बन्धी नियमों को जमा करके जो कि इसके बिना विकास की तीव्र धारा में बह गये होते—उनको पुनः शोध कर उन में से अत्यन्त बहुमूल्य रत्नो को सुरक्षित करके उन्हें जीवन के नये दार्शनिक नियमों के मध्य में लुप्त हो जाने से बचाया गया है।

जब हम भारत के परिवर्त्तनशील ज़मानें की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें इस बात के ज्वलन्त प्रमाण मिलते हैं कि स्त्रियां ही आचार धर्म की रक्षिकायें हैं। और अगर यह रक्षिकायें न रहेंगी तो तबाही आजावेगी। यह लोकोक्ति कि "पुरुष फावड़ेसे घर खोदे तो नहीं खुदता, स्त्री सुई से खोदना शुरू करे तो झट पट हो जाता है" इस बात की पुष्टि करती है कि पुरुषों के जीवन पलटा खा जावें तो उतनी हानि नहीं होती अथवा दूसरी तरफ उतना लाभ भी नहीं होता जितना कि स्त्रियों के जीवन में पलटा हो जाने से होता है। उदाहरणार्थ उन घरों की ओर दृष्टिपात कीजिये जहां आजकल पाश्चात्य सभ्यता राज कर रही है। एक घर जहां पर पति देव विलायत पास करके आये हैं और पूरे साहबी तरीके से रहते हैं, उनका खान पान रहन सहन सब उसी ढंग का है परन्तु घर में देवी जी कट्टर हिंदू हैं, उनका चैाका चूल्हा अलग है, रहन सहन

का ढंग पृथक है। ऐसे घर में पाश्चात्य रीति रिवाज़ जड़ नहीं पकड़ते और अन्त में पति देव भी अपने दिमाग़ को ठीक करने पर बाधित हो जाते हैं। परन्तु दूसरी ओर एक और घर देखिये जहां चाहें पति पत्नी दोनों ही पाश्चात्य आदर्शवाले हैं। अथवा पत्नी युरोपियन या अमरीकन है। उसका रंग ढंग सभी उसी प्रकार हो जाता है। सन्तान वही ढंग पकड़ती है जो माता का होता है। यही तो कारण है कि मुसलमानी बादशाहत के समय जोधाबाई आदि कई देवियां यद्यपि मुसलमान बादशाहों की पत्नियां बनी भी तथापि अपने तरीके हिंदू रक्खे तो उनके पुत्र भी हिंदू भावों से पूरित हुये। परन्तु आज हमारी देवियां अंग्रेज महिलायें बनने चली हैं तो उनकी सन्तान भी उसी रंग ढंग में बह चली है। जिन घरों में देवियां मांसाहारी हैं उन हिंदू घरों को देखिये तो मुसलमानों के घरों को मात करते हैं और जहां केवल पति देव को ही यह रोग है वहां घर के अन्दर कोई विशेष परिवर्त्तन दृष्टिगोचर न होगा और यदि गृहिणी देवी को अधिक घृणा होगी तो पति देव को भी अपनी यह प्रवृत्ति दूर करनी पड़ती है और बच्चों तक उसका प्रभाव नहीं पड़ता। यह तो है दुर्गणों का दृश्य। अब और लीजिये शुभ गुणों का दृश्य। हम नित्य प्रति सुनते हैं कि हमारे आर्य समाजी गृहों में आर्यधर्म नहीं फैला है। व्यक्ति रूप से पुरुष आर्य समाजी हैं परन्तु परिवार नहीं कारण यह कि उन घरों की देवियों के दिलों में आर्यधर्म की लगन पैदा नहीं की गई अतः उनकी सन्तान भी उन्हीं के समान रही। पिता का धर्म पुत्र पर प्रभावशाली नहीं होता जितना कि माताका, तभी तो सभी महा पुरुषों ने अपनी माता की गुण गरिमा का गान किया। अतः इस बातसे इन्कार नहीं हो सकता कि स्त्रियां ही आचार धर्म की रक्षिकाएं हैं। यदि इनके भाव उन्नत होंगे, इनका ज्ञान विस्तृत होगा, इनका हृदय विशाल होगा और इनका चित्त उदार होगा तो यह आचार धर्म बडा उन्नत, विशाल और उदार बन कर लोगों का कल्याण करने वाला होगा इसके विपरीत यही नीच, संकुचित, अनुदार होकर संसार का नाश करने वाला बन जायगा। अतः आचार धर्म की रक्षिकाओं को उन्नत बनने और बनाने का ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।



परिवर्तन

(बंगाल की एकाल से काल के आधार पर)

लें०— श्रीकृष्ण पांडे

(गताङ्क से आगे)

सारी रात और सारा दिन हृदय के साथ गहरी लड़ाई करके निर्मल यदि एक पांव आगे बढ़ता था तो साथही पांच पांव पीछे हटता था। घटना स्रोत उसे कभी तो ठीक अभीष्ट स्थान के पास पहुंचा देता था तो कभी उसे कोशों दूर ले जाकर खड़ा कर देता था। जिस तरह हो शोभा का त्याग करना ही उचित है यही

बात बार २ उसके हृदय में आघात कर रही थी साथ ही मोह भी बड़ी ही निपुणता से त्याज्य वस्तु को हृदय की देवी बनाकर पुनः हृदय मन्दिर में स्थापित करने की अपील करता था। कल मोटर वाली घटना के बाद वह अभी तक पूरी नींद नहीं सो सका। शोभा की कातर प्रार्थना की उपेक्षा करके जो कष्ट शोभा के हृदय को पहुंचाया है वही कष्ट इस समय व्याकुल कर रहा है। सारी रात जागने के कारण उसकी आखें जल रही थीं, पेट में चूहे कूद रहे थे, फिर भी उससे खाया नहीं जाता, शरीर अवसन्न हो गया है। इतनी देर एक बन्द मकान में बैठे रहना उसे अच्छा नहीं लगता किन्तु बाहर निकल कर एक कदम घूमने की हिम्मत भी उसमें नहीं है। नीलिमा के मकान की ओर दृष्टि पड़ते ही उसने बड़े कष्ट से अपने मन को रोका, आज जिस तरह शोभा के लिये भीषणताप सहना पड़ता है कौन जाने दो दिन बाद ब्राह्म कन्या नीलिमा के लिये भी इसी तरह तरसना पड़े।

सूर्य देवता पूर्व से पश्चिम की ओर प्रस्थान कर रहे थे धूप ढल चुकी थी, संध्या देवी का साम्राज्य होनेमें अब ज्यादा देर नहीं है। निर्मल ने घड़ी देखते २ मन में कहा—और एक घन्टा बाद सब कोई पहुंच जायेंगे, लेकिन मुझे न देखकर ········· न किसी तरह नहीं रुक सकता, जिस तरह से हो मन को बांधकर रखना ही होगा, न, यह कैसे होगा? ····· ··· जिस तरह से हो,—कितना बड़ा ही युद्ध क्यों न हो उसे विजय करना ही होगा।

इतनी देर की चिंता के बाद उसने यही निश्चित किया।—और नीलिमा? उसकी आशा भी त्यागनी पड़ेगी—अगर घर में मन लगे तो ठीक है नहीं तो देश छाड़कर चला जायगा।—तो जाऊं उसके साथ अंतिम भेंट कर आऊं। वह जैसे ही कोट पहन कर बाहर निकलने के लिये तैय्यार हुआ—ऐसे समय भूत को देखने से मनुष्य जिस तरह भयभीत होता है, ठीक इसी तरह निर्मल भी भय से बेहोश होगया।

थोड़ी देर बाद होश आने पर कोमल स्पर्श से निर्मल को रोमांच हो आया, भय से वह आंख नहीं खोल सका, धीरे २ बोला —"तुम—तुम यहां क्यों?"

कोई उत्तर नहीं मिला, पर एक बूंद गरमगर आंसू उसके ललाट पर आकर गिरा। वह पागल की तरह उठ बैठा और गम्भीर स्वर में बोला—"तुम रोती हो शोभा? तुम्हारी आंख में भी जल"

"हां मेरी आंख में भी जल! "········· ···लेकिन पाषाण हृदय की बात?—जिस के साथ मेरी एक दिन के लिये भी भेंट हुई वह भी कभी ऐसा नहीं सोच सकता?···· लेकिन यह किसके लिये!"

दो २ बार यही बात सुनकर निर्मल अपने को अपराधी समझ रहा था, और इसी लिये उसे भय होता था। वह गर्विता शोभा एकाएक ऐसी हो गई है, क्या सचमुच उस के लिये? शोभा ने मुंह उठाकर नहीं देखा। धीरे क्लान्त स्वर में कहा- "आज मेरा वह गर्व नहीं है, क्योंकि आज मैंने ठीक २ समझ लिया है कि सच ही एक पुरुष के अभाव में स्त्री हृदय पृथ्वी के समस्त सुख से बंचित हो जाता है।"

निर्मल का स्थिर संकल्प डांवाडोल जैसे होने लगा। शोभा ने अंचल से आंसू पोंछा, निर्मल ने देखा कि आज शोभा के पहिनाव में कुछ आडम्बर नहीं है शिर में कंघी नहीं है, पाव में जूता नहीं है, कपड़े भी

ठीक तरह से नहीं पहिने हुए है। अतः निर्मल का मन डावांडोल हो रहा था, तथापि उसने संयम रक्षा करने की चेष्टा से और भी गम्भीर होकर कहा—"शोभा! जितना अभाव तुम आज अनुभव कर रही हो, उससे कहीं ज्यादा भविष्यत् के लिये अनुभव करना होगा, यही सोचकर मैंने अपने हृदय को पाषाण बना लिया है।" निर्मल का स्वर भारी होगया।

शोभा को यह समझने में कुछ देर नहीं लगी कि निर्मल बड़े ही कष्ट से अपने आंसुओं को रोक रहा है। शोभा उठ कर खड़ी होगई, एक प्रकार की नीरव आत्मगरिमा अनुभव करके बोली--"भविष्य की बात पीछे देखी जायगी। जिन्दगी बची रहने से मनुष्य सुख शान्ति की आशा कर सकता है किंतु मेरा प्राण तो निकला जाता है।"

"ऐसी बात मत कहो शोभा! मन को समझाओ आप ही स्थिर होगा।"

"समझाने में कुछ कसर नहीं रक्खी। कुछ दिनों से मैं जो चुपचाप बैठी हुई थी, यह क्यों? समझते हो—जो नहीं हो सकता उसके लिये हज़ारों चेष्टा करने पर भी मनुष्य नहीं बच सकता। मेरा जीवन तुम्हारे हाथ में है। अगर रक्षा करना चाहते हो तो करो नहीं तो यह छुरी लो, मैंने छाती सामने करदी, इस ज्वाला से छुटकारा देदो मैं अब और नहीं सह सकती।"

यह कहकर अपने आंचल के भीतर से एक चमचमाती छुरी निर्मल के सामने रखकर शोभा रोने लगी। थोड़ी देर तक रोने के बाद उसने फिर कातर स्वर में कहा—"वही गर्विता शोभा आज तुम से भिक्षा मांगती है, इच्छा हो तो प्राण रक्षा करो नहीं तो आत्महत्या कर इस वेदना से छुटकारा पाऊंगी। यह मैं बिलकुल सच कह रही हूँ—इसमें ज़रा भी झूंठ मत समझना, बोलो निर्मल! इस भिखारिनी की यह प्रार्थना पूर्ण करोगे या नहीं? यह तुम जानते हो कि जीवन में मैंने कभी धर्म को नहीं माना और आज भी उस पर विश्वास करना नहीं चाहती। जो इच्छा होती—वह चिरकाल से पूरी होती आ रही है, लेकिन आज—आज मैं अपने मन को न समझा सकने के कारण तुम्हारे पावों पड़कर प्रार्थना कर रही हूं।"

निर्मल कांप रहा था। चिर प्रार्थित, चिर वांछित, देह और मनके आराध्य देवता को हाथ में पाकर छोड़ दे लोभ सम्वरण करने की इतनी शक्ति उसमें कहां? जीवन को दुःखसागर में डाल कर कर्त्तव्य रक्षा करने जाने से उसका जन्मभर का सुख चला जायगा। नहीं, नहीं, सामने आया हुआ ऐसा सुख सौभाग्य क्या इस तरह छोड़ सकता है?

निर्मल का विचलित मन नरम होता जाता था, शोभा ने धीरे २ आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ कर कहा—

'बोलो मुझे बचाओगे कि नहीं? चलो इसी समय हम लोग इस देश को छोड़कर चल दें, हम लोगों को कोई खोज नहीं सकता। मैंने इतने दिनों में आज ठीक २ समझ लिया है कि—तुम्हारे साथ जंगल में भी मैं सुखपूर्वक रहूंगी।"

इसके आगे शोभा बोल नहीं सकी, उसका गला रूंधने लगा, वह निर्मल को छाती से लगाना चाहती थी, निर्मल के होंठ फड़क रहे थे, वह आगे बढ़ना चाहता

था—इतने में ही सहसा गंभीर स्वर में किसी ने पुकारा—"बेटी"

निर्मल शोभा का हाथ छोड़ कर किनारे खड़ा होगया। शोभा ने कांपते हुए पीछे की तरफ देखा—और देखते ही वहीं ज़मीन पर धप से बैठ गई।

पुलिन बिहारी ने स्थानान्तर से सभी बातें सुन ली थीं—अतः सहसा उपस्थित होकर, शोभा के माथे पर हाथ रखकर गम्भीर स्वर में बोले—

"पाप पथ में सुख नहीं है बेटी, उसमें और भी ज़्यादा भयंकर यन्त्रणा है।"

\+ + + +

पुलिन बिहारी के इस प्रेम पूर्ण सम्बोधन से शोभा के हृदय में मानो अमृत वर्षा हुई हो। उसकी आंखों से झर २ आंसू पड़ रहे थे। निर्मल भी एक बड़े भारी अपराधी की भांति नीचा माथा किये खड़ा था अपने निज के चरित्र की बात को सोच कर आत्मग्लानि से मरा जा रहा था। जो भी हो, एक भले घर के लड़के के लिये यह लम्पटपना कितना जघन्य, कितना अमाननीय अपराध है, यह समझने में उसे विलम्ब नहीं लगा। ये पुलिन बिहारी। यह भी तो मनुष्य हैं, इनमें और उसमें कितना फ़रक है। यह धर्म रक्षा करने, समाज बन्धन को अटूट रखने, शोभा के इतना बड़ा अपराध करने पर भी उसकी रक्षा के लिये ही व्यग्र हैं। इसमें तो इनका कुछ भी स्वार्थ नहीं है, वरन बड़े भारी त्याग का ही परिचय मिलता है और निर्मल, अपनी निरापराधिनी स्त्री को परित्याग करके—जिसकी इज्जत रक्षा के लिये पुलिन बिहारी इतना व्याकुल है—उन्हीं की इज्जत नष्ट करने के लिए, घर द्वार छोड़ माता को रुलाकर, निराश्रया पत्नी को छोड़ यहां पड़ा हुआ है।

मनुष्य जीवन में ऐसा समय बहुत ही कम आता है जिस दिन विवेक के आघात से उसके पूर्व अपराध ज्ञान चक्षुओं के सामने आजांय। उस समय मनुष्य और कुछ न सोच सकने के कारण, हृदय के भीतर एक नवीन अनुभूति से संसार की सब चीजें त्याग कर हृदय के उसी सौन्दर्य्य की रक्षा करने के उपाय खोजने में व्यग्र रहता है। निर्मल को भी आज वही शुभ दिन मिल गया, इसी लिये वह इतनी देर तक दीन दृष्टि से पुलिन बिहारी से क्षमा भिक्षा चाहता था। ठीक उसी समय शोभा के माथे पर हाथ रख पुलिन बिहारी बोले—"देखो निर्मल तुम मेरे घर के लड़के की तरह हो, मेरा हित करना जैसे तुम्हारा कर्त्तव्य है वैसे ही तुम्हारी कल्याण कामना भी मेरा फ़र्ज़ है। किन्तु जो करने आया हूं वह सब अपने ही मतलब से, फिर भी तुम से अनुरोध कर सकता ...... "

पुलिन बिहारी चुप होगये—निर्मल के पीले पड़े हुए चेहरे को देख कर आगे कहने की उनकी हिम्मत नहीं रही। थोड़ी देर सुस्ता कर वे फिर बोले—"यह, मैं ज़ोर देकर भी तुमसे अनुरोध कर सकता हूँ कि इस तरह मेरी इज्जत नष्ट मत करो। मेरे घर की बहू विपथ में गई है यह मैं मुंह खोल के किसी से नहीं कह सकूंगा—प्रसंगवश यदि कोई यह बात बोल भी दे तो मेरे जीने का कोई उपाय नहीं है।"

निर्मल चुप चाप सोच रहा था। पुलिन बिहारी के इस स्वार्थ के भीतर कितना बड़ा त्याग छिपा हुआ था, हो सकता है दूसरे दिन उसकी समझ में नहीं आता, किंतु आज उसके समझने में बिलकुल देर नहीं

लगी। उसने फिर कातर दृष्टि से उनकी ओर देखकर वेदना पूर्ण स्वर में कहा—

"सचमुच मैं बड़ा अभागा हूं। पिता जी के रहते उनकी बातों पर क्षण भर के लिए भी ध्यान नहीं दिया, किन्तु आज उनके अभाव में समझ पड़ता है कि आप ने ठीक उनका स्थान अधिकार कर लिया है। मैं मन को समझाने की चेष्टा करूंगा, परन्तु आप क्या मेरा इतना बड़ा अपराध माफ़ करेंगे?"

पुलिन बिहारी ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया,—"क्षमा न कर घर के लड़के को विपथ में जाने दूंगा, उसमें बड़ा नुकसान है।" थोड़ी देर सांस लेने के बाद शोभा का हाथ पकड़ कर पुलिन बिहारी ने फिर कहा-"बेटी! किस अपराध से इस वृद्ध को त्याग रही हो? चलो,...... निर्मल यह सब भूल जाओ, अभी थोड़े दिन तक किसी अन्य चिन्ता में मन को व्यस्त रखने की चेष्टा करो, उस चिन्ता के हाथ से जिस दिन छुटकारा पाओगे, उस दिन देखोगे तुम नई पृथ्वी पर आगये हो, वहां शोभा भी नहीं और नीलिमा भी नहीं, समस्त सौन्दर्य लेकर विमला तुम्हारे हृदय में खड़ी है।" इतना कह और क्षण मात्र भी विलम्ब न कर शोभा को साथ लेकर वे चले गये।

पुलिन बिहारी के पीछे २ शोभा मन्त्र मुग्ध पुतली की तरह चुप चाप आकर गाड़ी पर बैठ गई, उसके साथ ही पुलिन बिहारी बैठ गये। रास्ते भर कोई किसी से कुछ नहीं बोला। शोभा आज की घटना पर मन ही मन आलोचना कर रही थी। नाना प्रकार की चिन्ताओं ने उसको चारों ओर से घेर लिया था। एक घंटे से भी अधिक गाड़ी में बैठी २ शोभा ऊब गई थी। निर्मल के मकान से उसके घर का ज़्यादा से ज़्यादा २०-२५ मिनिट का रास्ता था। उसने खिड़की से रास्ते की ओर देखा। रास्ता भी उसे नवीन मालूम पड़ा लेकिन पुलिन बिहारी से पूछने का साहस उसको नहीं था। वह चुप चाप बैठी रही और चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिये मन ही मन तर्क वितर्क करने लगी। अंतमें पुलिन बिहारीने शोभा की इस निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा-"क्या सोचती हो बेटी? उच्छृंखलता में सुख नहीं है, वह केवल आशा को बढ़ा देती है। मनको जितना ढीला छोड़ेगी वह उतना ही क्षुधित होगा जितना भोग करोगी, वासना उतनी ही बढ़ेगी। मनुष्य कल्याण के लिये ही संयम की रचना हुई है, गृहस्थ को भोग निषिद्ध नहीं है पर उसकी भी सीमा है, उसी सीमा के भीतर ही चलना होगा।

जीवन में जो कभी नहीं सुना, श्रद्धा तो दूर जो बात उपहास करके उड़ा दी जाती थी, ठीक वही बातें आज शोभा कठपुतली की तरह सुन रही थी। प्रतिवाद करने की दुष्प्रवृति आज उसकी नहीं थी। अस्तु इच्छा से हो वा अनइच्छा से शोभा चुप चाप बैठी सुन रही थी। देखते २ गाड़ी एक आलीशान मकान के बड़े दरवाज़े पर आकर खड़ी होगई। पुलिन बिहारी के आदेश से शोभा गाड़ी से उतर तो गई परन्तु उत्सुकता निवारण करने के लिये उसने पुलिन बिहारी से डरते २ पूंछा "यहां?"

"हां यही मकान तुम्हारे लिये ठीक किया गया है। तुम्हारा अब नया जन्म होगा इसी लिये मैंने नया मकान ठीक किया है।" इतना कह शोभा का हाथ पकड़ ऊपर एक सु-

सज्जित कमरे में आगये, इन्हें देखते ही पाँच सात नौकर, दाई इनके सामने आकर खड़े हो गये। शोभा को लक्ष्य करके पुलिन बिहारी उनसे बोले "यही तुम लोगों की मालकिन हैं, इन्हीं के लिये तुम लोग रक्खी गई हो, सब लोग इनकी आज्ञा से काम करना इन्हें कोई कष्ट न होने पावे।" इतना कह पुलिन बिहारी शोभा को एक सजे सजाये कमरे में छोड़ कर चले गये।

पुलिन बिहारी निर्मल को जिस अवस्था में छोड़ गये थे उससे निर्मल की चिंता दिन प्रति दिन बढ़ती जाती थी। कई दिन से वह घर से बाहर नहीं निकला। घर में पड़े २ अपनी बीती हुई जीवनी पर विचार करना ही उसका दिन भर का काम था। उसके मन में रह २ के कोई उपहास करके कहता था कि "इतने दिन से तुम क्या करते आरहे हो? पराये धन पर नवाबी करने की जिनकी इच्छाहोती है उनको कोई पथ भी सुगम नहीं। वह केवल लोगों का उपहास और अपनी आत्मा की अधोगति ही लाभ करते हैं।"

इस पर सतीश ने इस समस्या को और भी गहन बना दिया। एकदिन निर्मल अगाड़ी बारन्दे में आराम कुर्सी पर बैठा २ संध्या की ठंढी हवा सेवन कर रहा था, ऐसे समय सतीश उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसको देखते ही निर्मल का मुंह सूख गया, बात करना तो दूर रहा उसने मुंह तक फिरा लिया। लेकिन सतीश कब पिंड छोड़ने वाला था। उसने पूंछा "कैसी तबीयत है निर्मल बाबू?"

निर्मल जवाब देने के बदले जल्दी से उठकर कमरे में चला गया। और बत्ती बन्द कर चुपचाप सो गया।

परन्तु सतीश ने इसकी कुछ भी परवाह न कर पुकारते २ बिछौने के पास जाकर मृदु स्वर में कहा—"संध्या समय ही सो रहे हैं?"

विरक्ति और विस्मय ने निर्मल के चित्त ने उथल पुथल मचा रक्खी थी, उसने सतीश के प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। निर्मल को निरुत्तर देख सतीश ने और भी गम्भीर भाव धारण किया। निर्मल का हाथ पकड़ कर अभिन्न हृदयी बन्धु की भांति स्नेह से कहा—"निर्मल बाबू, ऐसा क्या अपराध किया है जो मित्र कह के नहीं तो कम से कम परिचयी बोल कर भी बात करने में नाराज होते हैं?"

निर्मल उठ बैठा, उसका सिर घूम रहा था, आखें जल रही थीं बड़े कष्ट से उसने कहा—"मैं बड़ा ही पापी हूँ। आपको मित्र कहूँगा इतना साहस मुझ में नहीं है, और उतना बेवकूफ भी नहीं हूँ"। सतीश रह २ कर निर्मल की ओर देख रहा था और उसकी अवस्था पर विचार कर रहा था। निर्मल ने फिर कहा; "मुझे आप लोगों ने उपहास का पात्र समझ लिया है, किन्तु—"

सतीश ने बीच ही में बात काट कर कहा-"निर्मल बाबू जरा विचारिये तो आज तक मैंने कभी भी आप से उपहास किया है, या नहीं?"

अवाक् होकर निर्मल सतीश की मुंह की तरफ देखने लगा। सचमुच सतीश के स्वर, मुंह, आंख में सहानुभूति का आभास मिल रहा था। विशेष कर सतीश की पूर्व बातों पर विचार करने से उसे आज की बात सच जान पड़ी। उसकी आंखों में पानी भर आया, और वह सतीश की ओर करुणापूर्ण नजरों से देखने लगा।

सतीश और भी पास सटकर बैठ गया और बोला:—"आपके बिना देश गये अब काम नहीं चल सकता। रणधीर ने मुझे लिखा है कि आपकी मां शोचनीय अवस्था में हैं।" निर्मल ने घड़ी देखी, गाड़ी का समय निकल गया था सतीश ने कहा—"कल सवेरे की गाड़ी से चले जाइयेगा। और देखिये·····" "आज और ज़्यादा उपदेश मुझे मत दीजिये मैं और सह नहीं सकूंगा।" कहते २ निर्मल की आंखों से आंसू बहने लगा। सतीश समझ गया कि दवा का रुख पलट गया है इसलिये इस समय और कुछ न कह वह धीरे २ घर के बाहर चला गया।

सवेरे निर्मल बिछौने से उठ नहीं सका। उसके तमाम बदन में दर्द होने लगा, थर्मामीटर लगा कर देखा खूब जोर से बुखार हुवा है। इस समय वह बिलकुल निराश हो गया। पिता को तो देख नहीं सका, मां को देखने की आशा भी उसको नहीं थी। उसने मन ही मन कहा—"यह पाप का प्रायश्चित है इसमें सोचने की कौन बात है।"

उसने सबेरे ही अपने जमादार को सतीश को बुलाने भेजा था, जमादार लौट आया उसके साथ सतीश नहीं आया उसके साथ नीलिमा का नौकर था। उसे देखते ही निर्मल ने उत्तेजित कंठ से पूंछा-

"सतीश बाबू कहां हैं?"

"वह घर पर नहीं हैं।"

"और ये?"

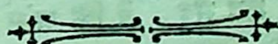
"यहीं आया था।"

नीलिमा के नौकर ने सलाम कर एक लिफाफा निर्मल के हाथ में दिया। नीलिमा की चिट्ठी जान निर्मल को स्पर्श करते भी भय हुआ। लेकिन उत्तर न देने से अन्याय होगा सोचकर कहा-

"ठहरो जवाब लिख देता हूँ।"

"जवाब की कोई जरूरत नहीं" कह के नौकर सलाम करके चला गया।" लाल फीते से बंधा हुआ लाल लिफाफा किसी शुभ सम्वाद की सूचना दे रहा था।

पत्र पढ़ते २ निर्मल के चहरे पर खुशी दिखाई दी लेकिन कई लाइन पढ़ने के बाद "नीलिमा का शुभ विवाह" पढ़ते ही उसका चेहरा लाल हो गया। वह और आगे नहीं पढ़ सका पत्र उसके हाथों से गिर पड़ा। उसने काँपते स्वर में कहा-"इन लोगों का काम ही भले मनुष्यों को फंसाना है नहीं तो·········" इसके आगे निर्मल कुछ न बोल सका, कमजोरी के कारण बिछौने पर अचेत हो कर सो गया।



नारी-कर्तव्य

ले०—श्री० पंडित उदित मिश्र जी

प्रकृति और पुरुष दोनों का नाम संसार है, संसार बनता है दोनों से। दो में से एक की त्रुटि से संसार में संकट होता है, विपत्ति आती है, दुःख और दारिद्रय की वृद्धि होती है। इस बात से भारतवासी अनभिज्ञ हैं यह नहीं कहा जाता। वे जानते हैं और अनुभव भी करते हैं लेकिन अबतक दो में से किसी की पूर्णता नहीं हुई इसका

यही कारण है कि एक को छोड़ कर दूसरा अलग अलग घूमता फिरता है, पुरुष विद्वान् हैं, नीतिवान् है, धनवान् है, और ज्ञानवान् है और स्त्री इनमें से कुछ भी नहीं, परिणाम यह होता है कि पुरुष के सब गुण व्यर्थ जाते हैं जिस से घर स्वर्ग भूमि बनने के स्थान में नर्क कुण्ड बन जाता है और घरमें दिन रात कोलाहल, कलह और परस्पर मनो मालिन्य बना रहता है।

जब कोई बोझा दो के कन्धे पर ले जाना है तब एक कन्धा मज़बूत होकर ही क्या करेगा ? दोनों कन्धों का मज़बूत होना परम आवश्यक है। गृहस्थी रूपी बोझ के ढोने वाले पुरुष और स्त्री दोनों हैं। एक मिनिट के लिये मान भी लिया जाय कि पुरुष सब गुण सम्पन्न है—यद्यपि भारतवर्ष में ऐसा नहीं है—पर यह तो तै है कि भारतीय स्त्रियां शिक्षा में बहुत पीछे हैं। यह बात समझ में नहीं आती कि जब स्त्री जाति पर इतना भारी बोझ हो तब भी वह शिक्षा से अलग रक्खी जाय, शिक्षा से वंचित रहे।

विचार भेद।

यह शुभ लक्षण है कि अब स्त्री-शिक्षा के विषय में किसी को उज़् नहीं, सब मान गए कि स्त्री-शिक्षा होनी चाहिए, मत भेद केवल इस विषय में है कि अब स्त्री समाज की शिक्षा कैसी होनी चाहिए ? ईश्वर की दया हुई तो यह प्रश्न भी हल हो जायगा। यह बात तो करीब करीब तै होगई कि अंग्रेजी शिक्षा भारतवासियों के लिए बहुत उपयोगी नहीं है। स्त्रियों के लिये तो बिलकुल बेकाम सिद्ध होती है। भारतवर्ष को यूरूप नहीं बनाना है, भारतवर्ष को भारतवर्ष ही रहने देना चाहिए। देखा गया है कि अंग्रेजी शिक्षा के कारण पति पत्नी का स्नेह बिलकुल बनावटी प्रतीत होता है क्यों कि उस शिक्षा में धर्म का आधार बिल्कुल नहीं रहता और जब भारतीय स्त्रियां धर्म से वंचित कर दी जाँयगी तो रही सही जो कुछ भी भारतीय सभ्यता है उसका भी लोप हो जायगा और "पतिव्रता" शब्द कोष में पढ़ा रह जायगा। कुछ लोग इस विचार के अवश्य हैं कि स्त्रियों को अंग्रेजी की उच्च से उच्च शिक्षा दी जाय। मेरी समझ में यह बड़ी भारी भूल होगी। यदि स्त्रियां हिंदी और संस्कृत से वंचित कर दी जांयगी तो वर्तमान युग के चमक दमक में पड़ कर अंग्रेजी के पीछे दौड़ती फिरेंगी। अब रही और विषयों की चर्चा--यह तो मानी हुई बात है, और इसमें सन्देह भी नहीं है कि संतान का सारा भार माता पर है। सुसंतान माता ही बना सकती हैं। और कुपूत माता ही के अज्ञान से पैदा हो सकते हैं।

शिक्षा कैसी होनी चाहिये।

यह शिक्षा का मूल मंत्र है कि शिक्षा से मनुष्य की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक तीनों की उन्नति होती है। अब देखना यह है कि अंग्रेज़ी के उच्च साहित्य से यह बात प्राप्त हो सकती है या नहीं ? संस्कृत साहित्य से अनुभव में तो यही बात आई है कि अंग्रेज़ी दां जो संस्कृत और हिंदी नहीं जानते अपने भाव तक को भी मातृ भाषा में प्रगट नहीं कर सकते। जब स्त्री जाति की यह दशा हो जायगी तो वह सिवाय अपनी सन्तान के प्रति पालन के लिए "आया" का आश्रय ले सके और क्या कर सकती है ? एक महापुरुष का

कथन है कि जो बच्चा लड़कपन में अपनी माता के दूध से वंचित किया गया है वह युवावस्था में क्या कर सकता है? यह बात भी ठीक है। जिसने अपनी माता पिता के प्यार को नहीं देखा है, वह मातृ भक्ति और पितृ भक्ति को क्या समझेगा? वह तो बड़ा होकर इन बातों की हंसी ही उड़ायेगा, जैसा यज्ञोपवीत और शिखा की हंसी उड़ाने वालों की वृद्धि होती जाती है। किसी किसी का विचार है कि वायु मंडल विशुद्ध करके उसमें संतान को छोड़ना चाहिए पर वे ये नहीं जानते कि लड़के का संस्कार अच्छा नहीं होगा तो वायु मंडल शुद्ध होकर क्या करेगा? और अगर सन्तान अच्छे संस्कार वाली, शुद्ध विचार, विमल आचार, ज्ञान की भंडार बना दी जायगी तो वाह्य जगत को चीरती हुई वह युगान्तर पैदा करेदेगी। इस जगह एक दो का नाम लेलेना ही पर्याप्त होगा। अगर शंकर के लिये वायु-मंडल विशुद्ध होता तो शंकर के अद्वैत-वाद की ज्योति जगत में कैसे चमकती? शंकर ने अपने विचारों से वाह्य परिस्थितियों को टकराया, हराया और विजय प्राप्त की। इसी तरह ऋषि दयानन्द को लेलीजिए कि उनकोवायुमडल बनाने में कितना कष्ट उठाना पड़ा यह तो बिल्कुल सत्य है कि:—

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग॥

पर यह सब बातें निर्भर हैं माता के विचार और उसके शुद्ध संस्कार पर। वही चाहे तो शंकर और वही चाहे तो दयानन्द पैदा हो सकते हैं। अब हम इस लेख को अधिक न बढ़ा कर स्त्रियों को उनके कर्तव्य का ध्यान दिलाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि देवियो! उठो, अपने उज्वल कर्तव्य का ध्यान करो, तुम्हारे सामने बड़ा काम है। समय मत खोओ, लड़ो झगड़ो मत। भारत की लाज रक्खो संतान वीर, सुधीर, और रणधीर बनाओ। संकट से संकट समय में भी सन्तान का पग धर्म और सत्यसे न हटे ऐसी निर्मल शिक्षा दो। तुम सावित्री हो, दुर्गा हो, सीता हो, अनुसूया हो, मदालसा हो पर कब? जब अपने को कर्तव्य पथ पर चलाओ, देखो। ध्यान रक्खो एक बार प्रेम से फिर पढ़ोः—

"नारी कर्तव्य"

आधुनिक युग का आदर्श पुरुष
ऋषि दयानन्द

लेखिका--कुमारी चन्द्रवती जी अध्यापिका कन्या गुरुकुल



ज उस चिरकाल की प्रतीक्षा का परिणाम स्वरूप श्री मद्दयानन्द जन्म शताब्दी ने विदाई ली, जिसकी प्रतीक्षा के प्राबल्य से एक २ दिवस एक २ वर्ष का रूप धारण कर रहा था, जिसके केवल चिन्तन मात्र से ही हृदय सागर में आनन्द तथा मोद की उत्तुंग तरंगे इतने बल पूर्वक ऊपर उठती थीं मानो मथुरा के शताब्दी मण्डप में भगवान दयानन्द के साक्षात दर्शन प्राप्त होने हों। क्या वास्तव में किसी महान् आत्मा का स्वरूप उसके पंच भौतिक

शरीर की आकृति ही है ? क्यों यह कल्पना वैदिक धर्मियों तथा दयानन्दियों के सिद्धान्त विरुद्ध नहीं है ? हां अवश्य विरुद्ध है । आर्यों से यह आशा करना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है । दयानन्दी इसलिये नहीं उमड़ रहे थे कि उन्हें निज गुरू मूर्ति रूप में दर्शन देंगे। किन्तु प्रतीक्षा उस अवसर की थी जब कि ऋषि दयानन्द का वह परम पवित्र आचार तथा गुण, कर्म, स्वभाव रूपी वास्तविक स्वरूप प्रतिपक्षियों पर भी प्रकाशित हो कर उन्हें प्रभावित तथा चलायमान कर देगा। यह कामना हृदय सागर को क्षोभित कर रही थी ।

वह कामना पूर्णतया सफल हुई । प्रभु की कृपा कटाक्ष से उस कामना ने कृत कार्य्यता का वह रूप धारण किया कि जिसकी धाक ने–विदेशियों के हृदयोंको चुम्बन करती हुई कट्टर से भी कट्टर विरोधियों के दिल तथा दिमागों को हिलाती हुई–उन्हें ऋषि के गुण गानार्थ बाधित किया। महर्षि का यशो गान क्यों न होता ? और असफलताका कारण ही ऐसा कौन सा था ? जन्म शताब्दी किसी सर्व साधारण व्यक्ति की नहीं थी । हम उस निर्भय, वर्तमान युग के देवता की शताब्दी मनाने चले थे जिसका प्रतिक्षण देश तथा जाति के लालों के लिये न्योछावर हुआ करता था ।

मुझे आश्चर्य्य है कि ऋषि की आत्मा में ऐसी कौनसी दिव्य ज्योति थी कि जिसने उसे जीवन काल से भी अधिकतर मृत्युके पश्चात् प्रकाशित किया ! उस ज्योति का मूल स्तम्भ क्या था ? और किन कारणों से वह एक अलौकिक व्यक्ति सिद्ध हुए ? विशेष कर ऐसे अन्धकारमय काल में जब कि ऋषियों का प्रादुर्भाव तो कहां महात्माओं के दर्शन भी दुर्लभ हो रहे थे ! देश की अवस्था यह थी कि उच्च से उच्च ब्राह्मणादि जातियां पर्वत से ऊंचे पद से अधः पतित होकर पृथिवी पर ही नहीं प्रत्युत गढ़े में पहुंच चुकी थीं । महाभारत का महा भयङ्कर काल स्वरूप संग्राम ऋषि, मुनि शिल्पी, राजा, महाराजा, ब्राह्मण इत्यादि भारत माता के सभी सुपुत्रों को हड़प कर चुका था । आर्य राजाओं के अभाव से इस परम पवित्र आर्यवर्त के शासक दस्यु हो रहे थे। हा शोक ! आदि सृष्टि में सौंपे हुए परम पवित्र ईश्वरीय प्रसाद वेद भगवान का लोप हो चुका था, बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह की सन्तान इन्द्रियाराम होने के कारण ब्रह्मचर्य्य रक्षणार्थ महान् आपत्ति अनुभव करती हुई वीर्य्य नाश करने में विवश थी। विधवाओं के करुणा क्रन्दन से भारत माता अत्यन्त पीड़ित थी और आर्य्य जाति का सौभाग्य सूर्य अस्ताचल को प्रस्थान कर चुका था। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" इत्यादि दुर्वाक्यों से वेदों और आर्ष ग्रन्थों को दूषित करते हुए यज्ञ में पशुवध किया जाता था गौ माता अत्याचारों से पीड़ित थी । भूगोल के विविध मत सिंह की भांति मुंह फाड़े हुए भारत सन्तान का गला दबोच रहे थे। असंख्य अनाथ बालक दुराशीः देते हुए रो रहे थे। सकल मनुष्य समाज की जननी स्त्री जाति घोर अपमान से अपमानित की जा रही थी । "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" मन घड़न्त वेद वाक्यों से स्त्री शिक्षा के प्रवाह को रोका जारहा था। अस्पृश्य जातियां भी भारत को कलङ्कित करने में बस न थीं। अर्थात् जब भारत भूमि इस पाप और अधर्म रूपी भार के नीचे दब कर रसातल को चली जा रही थी, भारत का वर्तमान तथा भविष्य नितान्त तमावृत था, जिस कारण भारतमाता बिल-

बिछा रही थी ऐसे दुष्काल में आनन्दकन्द भगवान दयानन्द का प्रादुर्भाव भारत के सुवर्णमय प्राचीन कालरूपी पूर्व जन्म का फल अथवा जगदीश की ही विशेष कृपा का फल था।

महानात्माओं का मस्तिष्क वह सोचता है जो कि साधारण मनुष्यों की कल्पना में भी नहीं आ सकता। क्या वास्तव में ऋषि के बोध का कारण शिव मूर्ति ही थी? अगर यही ही कारण था तो दयानन्द के पिता को स्वयं बोध क्यों न हुआ? और उनके ज्ञान चक्षु क्यों न खुल गये? मृत्यु किसके गृह में प्रवेश नहीं करती? इससे केवल दयानन्द ने ही मुक्ति के साधन क्यों प्राप्त किये? मुरदे, कोढ़ी रोगी, और वृद्ध किसकी दृष्टिगोचर नहीं होते? इससे केवल बुद्ध को ही वैराग्य भाव ने क्योंआ कर घेरा और उसे पुत्रकलत्र त्याग देने पर मजबूर किया? वृक्षों से फल पतित होते हुए कौन नहीं देखता, इससे केवल सर ऐज़क न्यूटन को ही आकर्षण शक्ति का सिद्धान्त क्यों ज्ञात हुआ? घर में वाष्प उठते हुए और रकाबी उछलते हुए कौन अवलोकन नहीं करता परन्तु इंजन के आदि आविष्कारक को ही यह इंजन रचने का सौभाग्य प्राप्त क्यों हुआ? इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बोध का कारण कोई द्रव्य विशेष नहीं हुआ करता किंतु प्रतिभाशाली प्रज्ञा ही होती है।

ऋषि दयानन्द भी इस प्रतिभाशाली बुद्धि के ही धनी थे, उनमें बाल्यकाल से ज्ञान प्राप्ति की धुन थी। शिवपूजा काल में यद्यपि वह आयु में बालक और नाम से मूलशङ्कर थे तथापि ऋषि श्रेणी की आत्मा और स्वामी दयानन्द भी अवश्य थे। वह स्थिर विचार शील थे। यही कारण था कि जिस तत्व को उन्होंने बाल्य काल में देखा था उसे जीवन में पूर्णतया सत्य सिद्ध किया। महान् पुरुष तथा साधारण मनुष्यों में यही बड़ा भारी भेद हुआ करता है। महान पुरुष जब किसी दिव्य तत्व को कल्पना चक्षुओं द्वारा एक बार दर्शन कर लेते हैं फिर उसे अपनी विचार दृष्टि से ओझल नहीं होने देते। वे उसे सोचते हैं, विचारते हैं, और मनन करते हैं। यावत उसको प्राप्त नहीं कर लेते तावत जीवन को उसकी छान बीन में लगा देते हैं। किंतु साधारण लोग कुछ उन विचारों का आनन्द तो उठा लेते हैं परन्तु उसे अपने जीवन में घटाने का प्रयत्न नहीं करते।

ऋषि दयानन्द ने जिस तत्व को देखा था उसी के अनुसार ही अपने जीवन को ढाला और एक उच्चकोटि को प्राप्त किया। यद्यपि इसकी प्राप्ति में उन्हें विविध कष्ट प्राप्त होते हैं, माता पिता विवाह की कठिन रस्सियां गले में डालना चाहते हैं और नाना प्रकार के प्रलोभन देकर फंसाना चाहते हैं तथा अन्य पाखण्डी जन ऋषि को विमोहित करने तथा उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य को खण्डित करने के लिये वेश्यायें भेजते हैं, मठ महन्त गुरु-गद्दियां भेंट करते हैं, राजे तथा महाराजे - राज गद्दियां पेश करते हैं मगर निर्मोह और निर्लोभ अखण्ड ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द इन सब प्रबलता के साथ आक्रमण करने वाले विषयों तथा भोगों पर विजय प्राप्त करते हैं।

ऋषि जीवन में किसी प्रकार के संसारिक विषय की मात्रा नहीं थी। उनमें काम नहीं था। आजीवन बालब्रह्मचारी रह कर वेदाध्यन करना इसका प्रबल प्रमाण है। क्रोध नहीं था। धर्म प्रचार करते हुए विरोधी तथा विधर्मी लोग ईंट, रोड़े, पत्थर और

अनुचित गालियां प्रदान करते हैं ? नहीं २ प्रत्युत शस्त्र प्रहार करने के लिए तत्पर हैं मगर ऋषि आत्मा में तनिक भी क्रोधाग्नि प्रज्वलित नहीं। जैसे गीली घास में आग की चिंगारी आकर बुझ जाती है वैसे ही क्रोधावतार मूर्तियां ऋषि के सन्मुख आकर शान्त हो जाती थीं। निर्लोभ की मूर्ति में भला लोभ कैसे समा सकता था? बाल्य काल में ही सर्व पैतृक सम्पत्ति को लात मार कर जंगल की राह ली और विष्ठा के तुल्य राज गद्दियों को तिलाञ्जली दी। उस में मोह भी नहीं था। अत्यल्प आयु में माता पिता का संग छोड़ना, मंगलेच्छु बन्धु बांधवों से मुख मोड़ना, जननी तथा जन्म भूमि से नाता तोड़ना क्या यह मोह त्याग का केवल प्रमाण नहीं है ? उनमें अहंकार भी नहीं था। अहंकारीजन कभी सत्योपदेश नहीं हो सकता। एक अवसर पर ऋषि मुख से एक अशुद्ध वाक्य निकल गया जिसकारण उन्होंने एक छोटे से बच्चे के कहने पर निज भूल स्वीकार कर ली। ऋषि जीवन में एक घटना और दृष्टिगोचर होती है कि एक अवसर पर उन्होंने यह भी कहा था कि मुझे लोग ऋषि कह कर पुकारते हैं अगर मैं गौतम, कणाद और कपिलादि ऋषियों के युग में होता तो मेरी गिनती विद्वानों में भी न होती। इत्यादि से ऋषि में अहंकार का भी अभाव पाया जाता है। वास्तव में ऐसे निर्लेप और निर्द्वन्द व्यक्ति पर ही पूर्वोक्त पांच शत्रु आक्रमण नहीं कर सकते।

इसी प्रकार ऋषि दयानन्द योगी और तपस्वी भी विशेष थे। इसी योग और विद्या रूपी पर्वत पर चढ़कर ही उन्होंने देश की दुरवस्था को हृदय चक्षुओं द्वारा अवलोकन किया। दया और आनन्द के अतिरिक्त और किस की शक्ति थी जो कि भारत माता के दुखों को अपहरण करता ?

प्रायः लोग कहते हैं कि ऋषि में तर्क ही तर्क अर्थात् मस्तिष्कीय शक्ति थी। इतना हृदय नहीं था। किंतु जरा भी दयानन्द की जीवनी से परिचित जन यह कहने का साहस नहीं करेंगे कि दयानन्द में दिल नहीं था। ऋषि जीवन के अध्ययन से विदित होता है कि जब ऋषि दयानन्द को एक व्यक्ति ने विष दिया और पुलिस के आदमियों ने उसे पकड़ना चाहा तो उदार चित्त ऋषि कहता है कि:—महाशयो ! सुनो जिन देश भाइयों का शुभ चिन्तन करते २ मेरा क्षण २ व्यतीत होता है भला मैं उनके कष्ट को देख सकता हूँ !" दूसरे स्थल पर आता है कि एक बार ऋषि से एक भक्त ने आकर कहा-' महाराज आप शान्त तो हैं !" ऋषि कहते हैं कि"मेरे जैसेको शांति कहां ? देखो इस देश के ब्राह्मणादि वर्णाश्रमी अपने २ कर्त्तव्यों से विमुख हैं। यहां के लोग अपनी कन्याओं तक को पण्डों को दे रहे हैं, इससे बढ़कर और क्या अशान्ति तथा दुःख हो सकता है !" इत्यादि। क्या विना हृदय के कोई जन किसी का उपकार कर सकता है ?

आर्यावर्त के सौभाग्य का विषय ऋषि का हृदय ही तो था। अन्यथा क्या ऋषि दयानन्द से पूर्व बड़े २ मस्तिष्क धारी विद्वान पंडित इस भारत में रमण नहीं करते थे? परन्तु विद्या के साथ उनका हृदय नहीं था; जिसके कारण भारतवर्ष गढ़े में गिरता गया किन्तु कोई भी अपनी चक्षुओं से स्वार्थ रूपी पट्टी को न उतार सका और नहीं देश का अपकर्ष से उत्कर्ष हुआ।

यदि कोई किसी न किसी भाव को लेकर उठा तो प्रथम तो उनमें स्वयं ही यथार्थ ज्ञान नहीं था यदि कुछ था तो भाव इतने संकुचित थे कि अपने सम्प्रदाय रूपी चार दिवारी से बाहर नहीं निकले जिससे अपने मत को सार्वभौमिक धर्म का रूप दे सकें। अतः अयथार्थ मतों और धर्मों के प्रचलित हो जाने के कारण उस आदि मूल भूत धर्म को जानने में कोई भी समर्थ न हुआ कि जिस धर्म का उपदेश ईश्वरने स्वयं आदि सृष्टि में चार ऋषियों द्वारा मनुष्य समाज को दिया था। अर्थात् स पवित्र वैदिक धर्म रूपी अमृत की अप्राप्ति से अनेक मतों के चंगुल में फंस कर जैसे अन्धे के पीछे अन्धा चले उसी प्रकार से अनुसरण करने लगे जैसा कि कठोपनिषद् में कहा है कि—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढ़ाः
अन्धे नैव नीयमाना यथाऽन्धाः॥

ठीक यही दुर्दशा पीछे चलने वालों की थी। इस दशाको अवलोकन करते हुए दण्डी स्वामी गुरु विरजानन्द जी ने शिक्षा समाप्ति के समय ऋषि दयानन्द से किसी धनादि द्रव्य की याचना नहीं की अगर कुछ लिया तो यही कि—"बेटा दयानन्द सरस्वती! जाओ जो कुछ मैंने तुम्हें आज तक दिया है उसे संसार भर में वितरण कर दो। जाति की झोलियां उस शिक्षा से भर दो जिससे तेरी झोली मैंने भरी थी।" ऋषि ने इस आदेश को सिर माथे पर धर कर इसे तन मन धन से पालन किया।

वह पूर्ण कर्मयोगी था। वह संसार क्षेत्र में इसलिए उतरा कि यथार्थ प्रकाशक था, आदर्श और यथार्थ वक्ता था, निश्पक्ष था। संसार ने उसकी पवित्रता के सन्मुख शिर झुकाया, और उसे विजय प्राप्त हुई। अन्त में गुरु आदेश पालन में विष खाकर इस असार संसार को नमस्कार करके प्रस्थान कर गया। अगर मरना हो तो ऐसा हो कि कर्त्तव्य पालन ही में प्राण निकलें, यदि जीना हो तो ऐसा कि रुधिर का प्रति कण जाति हित में व्यय हो। वाहरे दयानन्द धन्य है तेरी आत्मा! धन्य है तेरा साहस और दृढ़ इच्छा शक्ति! जहां तूने सच्चे शिव की प्राप्ति और मृत्यु पर विजय के लिए आकाश और पाताल, वन और पर्वत एक किये वहां गुरु आज्ञा पालन में भी कोई कसर नहीं छोड़ी! धन्य ऐसा चिरस्थायी गुरु और शिष्य का सम्बन्ध! ऐसे गुरु और शिष्य को कर जोड़ कर मेरा नमस्कार हो।

ऐ आर्य नर नारियो! क्या हम ऐसे आदर्श गुरू के शिष्य कहलाने योग्य हैं? हमारे गुरु दयानन्द भी हम से ऐसी दक्षिणा चाहते थे कि हम उनके उद्देश्य वेद प्रचार में तन मन धन लगादें जैसा कि उसने स्वयं अपना सर्वस्व गुरु आज्ञा पर न्योछावर करके पालन किया।

हमारे गुरू को जन्म लिये शतवर्ष हो गये और उसकी जन्म शताब्दी भी जनता को अपना अद्भुत स्वरूप दिखा चकाचौंध कर के चली गई। किंतु हमने अपने गुरु की आज्ञा पालनार्थ कितना त्याग किया सो हमने अपने गुरु की शताब्दी में ही अपने त्यागभाव का परिचय दे दिया। जहां हमारा गुरू अपने गुरू की उद्देश्य पूर्ति अर्थ विष तक को भी अमृत समझ कर गुरू आज्ञा से विमुख नहीं हुआ था, वहां तन तो कहां और मन भी कहां, केवल हमारे गुरू की उद्देश्य पूर्ति अर्थ हमसे तुच्छ धन के लिये याचना की गई सो भी उसे हम पूर्ण नहीं कर

सके। क्या हमारे इस प्रकार के आचरण से हमारे गुरू हमारे साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना चाहेंगे ? कदापि नहीं। वह केवल हमारे कोरे जय २ के नादों से सन्तुष्ट नहीं होंगे। हमें भी कुछ कर्म रूप में समर्पण करना चाहिये ताकि हमारा गुरू शिष्य सम्बन्ध भी चिरस्थायी बना रहे।

भानुभुवन या मोहनमाया

अनु-कुमारी सुमित्रादेवी जलविद्

द्वितीय अंक

(गतांक से आगे)

स्थान-नरोत्तमदास की प्रयोगशाला

(उद्यान मार्ग से मायावती का प्रवेश)

मायावती--(सस्मित वदन) क्यों मुझ से क्या पूछना है ?

पुष्पा—कविराज स्वयं ही समझावेंगे। आप का ख्याल होगा कि नरोत्तम भाई के यहां न होने से इन्हें कुछ नीरवता प्रतीत होगी अतः आप को ही इनके पास आना होगा (मोहन की ओर शिर झुकाकर हंसती हुई पुष्पा का भोजनालय में गमन)

मोहनरवीन्द्र-(स्वगत) बेटा ! मोहन सावधान! (भारतभूमि के कविराज को फबने वाले स्वर में) मैं आप की भ्रातृ पुत्री से कहता था कि सौन्दर्य का राज्य सर्वत्र है। केवल उसकी परीक्षा का ज्ञान होना चाहिये।

मायावती--तब भी स्थूल और सूक्ष्म सौंदर्य में तथा शारीरिक और आत्मिक सौंद[र्य] में अन्तर रखना ही पड़ता है।

नरोत्तम--(भोजनालय में से आते ही उनकी बातों में भाग लेते हैं) क्यों भला ? (मोहन को) आप का कथन सत्य हुआ, पुष्पा के इस कार्य में मैं क्या समझूं। मैं तो उसे दो एक बातें जो मुझे रुचती थीं वे बताकर यहां लौट आया। (माया से) परन्तु फूफी जी ! स्थूल और सूक्ष्म सौंदर्य में भेद किस लिये होना चाहिये ?

मायावती—(नरोत्तम मोहन के साथ इस प्रकार मिल जायेगा, नरोत्तम के इस वाक्य को सुन उत्तर देने में असमर्थ सी प्रतीत होती है, परन्तु येन केन प्रकारेण बोलती है) सो तो स्वयं दिखाई पड़ता है।

नरोत्तम—मुझे तो कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। (द्वार के समीप जाकर, हाथ में मशाल पकड़ कर खड़ी हुई एक पुतली को दिखाकर) देखो यह काले पत्थर की पुतली कितनी चातुरी से गढ़ी गई है ? मानो साक्षात् मशालधारी द्वारपाल ही हो ? और

स्वामी की सेवा में तत्काल ही आ कर खड़ी हो गई हो इस प्रकार कैसी सुन्दर लग रही है। केवल इसमें बोलने की शक्ति नहीं है नहीं तो सब प्रकार से पौराणिक समय में हमारे राजालोग यवन दासियों को रखते थे वैसी ही प्रतीत हो रही है।

माया—परन्तु इसका वास्तविक सौंदर्य तुम्हारी दृष्टि में इसके शरीर की गठन में ही आगया है ?

नरोत्तम—इसके अतिरिक्त इस पुतली में है ही क्या ?

(वस्त्राभरणालंकृत वेश में भोजनालय की ओर से मधुरी का प्रवेश)

माया—क्या तुम्हें इसकी मुखाकृति में सौंदर्य्य की छटा दीख नहीं पड़ती ? (मधुरी मूकवत् इनके सम्वाद को सुनती है और कभी २ मोहन के मुख की ओर निहार लेती है, मोहन इस सजीव पुतली की मूकाकृति देख तनिक खिसियाता है।)

नरोत्तम—मुखाकृति भी तो शरीर का हीभाग है। कपोल छवि, हाथ पांव की गठन, ओष्ठों की कमान, नाक की लकीर यह सब भी स्थूल सौंदर्य्य के ही अंश नहीं हैं क्या ?

मायावती—(तनिक खिसिया कर) मैं तो इन प्रोफैसर से हार गई, कविराज ! आप ही कुछ उत्तर दीजियेगा ?

मोहन रवीन्द्र—इसका उत्तर तो नरोत्तम सेठ ने स्वयं ही देदिया है, शरीर रचना में अंगावयव की गठन में ही निश्चय सौंदर्य्य रहता है। इसके अतिरिक्त अंगोपांग को अलग २ रचकर एकत्र करो तो क्या उसमें ऐसी खूबी आ सकती है ? इसमें सौंदर्य्य है, अवश्य है। मैं इसके लिए कुछ आपत्ति नहीं करता, परन्तु सारी पुतली का एकत्र ख्याल करो तो इसके अवयवों की बनावट के अतिरिक्त तमाम शरीर में सौन्दर्य्य का समावेश है और वह इस के रचियता के रखे हुए भाव में भी है। इस के चेहरे पर चमचमाते तेज में, और आंखों की जगमगाती ज्योति में भी है।

नरोत्तम—(मोहन की ओर से तार को बिगड़ता देख, कुछ बेसुरे से बनते हैं) बनाने वाले ने तो उसे निर्जीव दासी बनाया है और दास जन में भाव कैसे और तेज कैसा ?

मधुरी—(मूक वृत्ति त्यागती है) यही तुम्हारी पुरानी भूल है। सहृदयता में दासत्व भी हो सकता है। और सेवा धर्म भाव तथा प्रेम से ही हो सकता है, और जहां प्रेम से धर्म सेवन होता है वहां अवश्य सौन्दर्य्य रहता है।

मोहन रवीन्द्र—(अपने पार्ट को भूल कर बातों के जोश में बह जाता है) सत्य है। प्रेम ही सौन्दर्य का मूल है। इस संसार में प्रेम की न्यूनता है। क्योंकि संसार में प्रेम को स्थान ही नहीं मिलता। सर्वत्र स्वार्थ को ही प्रधान पद मिलता है।

नरोत्तम—सचमुच ?

मायावती—(बिना समझे ही)। निःसन्देह प्रेम ही सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही प्रेम है।

नरोत्तम—"जहां नहीं पहुंच सकता रवि, वहां पहुंच जाता कवि" यह उक्ति आज प्रत्यक्ष सिद्ध हो गई। परन्तु इसमें मेरा कुछ औचित्य नहीं है। हम

लोग विषयान्तर में प्रविष्ट हो गए हैं अस्तु। सौन्दर्य यह द्रष्टा की दृष्टि का गुण हो अथवा द्रष्टव्य वस्तु का बाह्य गुण हो लेकिन आंतरिक खूबी नहीं है। Beauty is external not intrinsic कविराज भले कुछ कहें, (उन्हें सावधान करने के लिए दृष्टि से इशारा करता है) परन्तु मैं तो यही मानता हूँ कि प्रेम आंतरिक है। सौन्दर्य्य का प्रेम के साथ सम्बन्ध हो ही नहीं सकता।

मधुरी—क्योंकि तुम प्रेम अहंभाव में देखते हो इसलिए उसे आत्मगत कहते हो

मोहन रवीन्द्र-(सावधान होकर) मधुभगिनी! इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि प्रेम स्वार्थी ही है।

मधुरी—शारीरिक-स्थूल प्रेम स्वार्थी होता है परन्तु..................

नरोत्तम—परन्तु, परन्तु कुछ भी नहीं है।

मधुरी—प्रेम के अनेक स्वरूप होते हैं।

मोहन रवीन्द्र—वे सब माया जाल हैं। शुद्ध प्रेम एक ही है जिसे अक्षय, और अविभक्त समझना चाहिये। और निदान वह भी आन्तरिक-आत्मगत स्वार्थी ही है।

माया—तब हम लोग जो परायों पर प्रेम करते हैं वह भी स्वार्थी है क्या?

नरोत्तम—हम परायों से प्रेम करते हैं, आमरण परस्पर साथ रहने का वचन देते हैं, वह सब अकेले रह जाने के डर से। समस्त समाज झूठा जान पड़ता है क्योंकि उस की तमाम रचनाएं ऐसे असत्य वचनों पर और अधूरे अनुभव पर रची गई हैं।

मधुरी—परन्तु यह तो क्षुद्र, क्षणिक स्थूल स्नेह की व्याख्या है। इसमें क्या हमारे प्राचीन पूर्वज ऋषि मुनियों की प्रभु-भक्ति का भी समावेश होता है?

नरोत्तम—क्यों नहीं। नौकर साहूकार की नौकरी करता है तो वह पेट भरने के लिए, और कुछ नहीं अन्त में स्वयं साहूकार बनने के लिए। प्रभु-भक्ति में तल्लीन हो गए। इस पर तो अनेक भोग दिये गये वे सब केवल मानी हुई आत्मशुद्धि के लिये, आत्मोन्नति के लिये, क्यों ठीक है न कविराज!

मोहन—(एक तो विषय गम्भीर तिस पर एक दम तीनपार्ट खेलने थे अतः कुछ घबराता है। परन्तु हिम्मत नहीं त्याग, ता) जब तक हम लोग पुरुष प्रकृति की तफावत नहीं तोड़ सकते हैं, जब तक कर्ता कृति में भिन्नता नहीं भूल सकते तबतक प्रेम स्वार्थी है, यह माने बिना चलेगा ही नहीं शुद्ध, निस्वार्थ प्रेम असम्भव नहीं है तो भी असाधारण तो अवश्य है, और वह सम्भव भी तब होता है जब कि प्रेम कर्ता और प्रेम के बीच में अन्तर, पृथकता तनिक भी न हो।

नरोत्तम—इसके लिए मैं कहता हूँ कि प्रेम के साथ आँतरिक वृत्ति, स्वभाव के साथ सौन्दर्य्य सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। सौन्दर्य्य तो रंगमें, रूप में, रचना में आरूढ़ है, प्रेम प्रकृति है।

मधुरी—(नरोत्तम को पहिले कभी ऐसे विषय में चर्चा करते न देखकर, आज उसका नया परिचय पाकर) आप के मन्तव्यानुसार किसी भी भावहीन निश्चेष्ट पदार्थ में सुन्दरता मिल सकती है?

नरोत्तम—मैं तो कब से यही कहता हूँ। यह लो दूसरा दृष्टान्त देता हूँ पाकशास्त्र और भोजन विधि को देखो, इसकी यथा योग्य रचना में भी यदि दृष्टि हो तो अपूर्व सौन्दर्य दृष्टि गोचर होता है।

माया—(इन बातों से अलग रहने में अपनी हीनता मानकर) पाकशास्त्र और भोजन विधि (हंसती है) मनुष्य की पशु के साथ सम्बन्ध-सूचक शृंका? और उसमें भी सौन्दर्य?

नरोत्तम—निर्जीव पदार्थ में सौंदर्य विद्यमान है तो फिर पशुवृत्ति में क्यों नहीं?

मोहन—नरोत्तम का यह विषय सर्वथा अशुद्ध नहीं है। माया भगिनि! पशु तो केवल पेट भरते हैं। मनुष्य ही भोजन करते हैं। मनुष्य पशु का संबन्ध पैदा करने वाले को शृङ्का नहीं परन्तु मनुष्य पशु को भिन्न करने वाला मर्यादा में रहने वाला उदधि समझो।

नरोत्तम—अरे मैं तो यह कहता हूं कि पशु पेट भरते हैं, ज़ंगली प्राणी खाते हैं और उन्नति क्रम में निश्चित रूप हो शिक्षक मनुष्य ही भोजन करते हैं।

(बांई ओर से स्वदेशी रेशम की अचकन और स्वदेशी रेशम की टोपी पहिने सेठ अम्बालाल का प्रवेश)

अम्बालाल—(नरोत्तम का अंतिम वाक्य सुन पादपूर्ति करता है) मैं इस अवस्था में अवश्य शिक्षितों में समा सकूंगा

(भोजनालय की ओर से पुष्पा का प्रवेश)
(वह वहीं बैठ जाती है)

मोहन रवीन्द्र—मैंने बहुत से देशों में भोजन क्रिया का अभ्यास किया है, यूरोपियन्स में, टर्कियों में, चीनियों में, जापानियों में, अमेरिका के दुर्विदम्य वर्ण शङ्करों में, अफ्रीका के रानी लोक में और पुराण काल के बहुत से लोगों की बातें पढ़ी हैं। सर्वत्र भोजन विधि और उस दर्मियान के रीति रिवाज वाह्य सुधार के प्रमाण स्वरूप अवश्य प्रतीत होते हैं।

माया—सो किस प्रकार?

पुष्पा—सो फूफी! यदि वे टेबल पर विराजने के पश्चात् बतलायें तब क्या हो?

अम्बालाल—हां यह बहुत ठीक है। (मोहन से) पधारिये कविराज! (मधुरी को) मधु कविराज को मार्ग बताओ। (पाश्चात्य रीत्यानुसार मधु उसका हाथ पकड़ कर भोजनालय में ले जाती है अन्य सब भी इसी का अनुकरण करते हैं)

माया—(पुनः प्रसंग प्रारम्भ करती है) कविराज यह कहते थे कि भोजन विधि सुधार का वाह्य प्रमाण है सो कैसे?

मोहन रवीन्द्र—मनुष्यकी भोजन क्रिया में उस की शरीर रचना का अभ्यास उसी प्रकार कुदरत पर प्राप्त किये अधिकार का जितने अंश में समावेश होता है उतने अंश में मैं उसमें सुधार के चिन्ह देखता हूँ।

पुष्पा - उदाहरण?

मोहन रवीन्द्र—उदाहरण यही कि शिक्षित मनुष्य तरह २ से पका कर उबाल कर भोजन खाते हैं कि जिससे उन की जठराग्नि तृप्त हो जाय और पाचन-शक्ति को अतिश्रम न करना पड़े।

अम्बालाल—यह तो अति साधारण सुधार है।

नरोत्तम—परन्तु जब तक मनुष्य ने अग्नि की शोध न की हो और फिर उनको काबू में रखना न आया हो तब तक वे कैसे हो सकते हैं।

मोहन—सो भी ठीक है। इसके अतिरिक्त भांति २ के अन्नों का परस्पर सम्बन्ध जानना, और उन संबन्धों के अनुसार उन्हें क्रमशः रखना इसमें क्या विज्ञान की आवश्यकता नहीं दीखती? जठराग्नि को जगाने के लिये पहिले आवे तरियान्न फिर उसको उत्तेजना देने के लिए बलिदान रूप भुंजियान्न, पश्चात् उसे तृप्त करने के लिये पक्वान्न और पुनः अन्त में आहुति रूप बलिदान रूप मिष्टान्न और शान्त हुए, सहम गये अग्निदेव को शान्त करने के लिये शांतिरूप शीतोपचारक। मुझे तो यह विधि बहुत ही द्रष्टव्य और चिन्तितव्य लगती है।

मधुरी—परन्तु इन सब का स्थिर, निश्चित दृष्टि से निराकरण किया हो ऐसा नहीं जान पड़ता? ये तो केवल शारीरिक लाभ ही याद किये हैं।

नरोत्तम—भोजन विधि में और कौन से उपचार करने पड़ते हैं?

मोहन—बहुत होते हैं। यदि केवल शारीरिक गुण और अन्न प्रकृति का ही विचार करना हो तो जिस प्रकार मिसिस नरोत्तम कहती हैं उस प्रकार की दृष्टि ही प्रधान हो।

(मधुरी से) परन्तु बहिन! शिक्षित समाज में अहार क्रिया एकान्त में सामान्यतः नहीं की जाती, यह तो तुम जानती ही हो क्यों? (मधुरी शिर हिलाकर हां में उत्तर देती है) अर्थात् आहार क्रिया के बीच में उपयुक्त होने वाली विधि में अतितर सूक्ष्म बुद्धि दीखेगी।

माया—सो किस प्रकार?

मोहन—क्योंकि ऐसी विधि से आन्तरिक भाव उत्तेजित होते हैं, आत्मा प्रसन्न होता है, शरीर पुष्ट होता है। अवसर पाकर समयानुकूल शृङ्गार और रचना, वेश भूषा वार्तालाप को शिक्षित समाज आह्लाद के लिये सर्वांश में स्थापित करने का प्रयत्न करता है। (हाथ में बिलोरीकांच के गिलास में शरबत लिये हुए पुष्पा का प्रवेश) सर्वोत्तम भोजन में तो इस पान पदार्थ के रंग का आस्वादन कर भोजन से मिली हुई मंडली में से एक भी व्यक्ति, एक भी विचार, एक भी वस्तु स्थान भ्रष्ट न होनी चाहिए। (शरबत का एक घूंट भर कर गिलास रख देता है)

राग रंग में, गान तान में, हाव भाव में अंशमात्र भी न्यूनता न होनी चाहिये।

(भोजन समाप्त होता है, सब दिवानखाने में जाते हैं और ताम्बूलादि सेवन करते हैं। पुनः अन्य विषय में चर्चा प्रारम्भ करते हैं)

(अपूर्ण)

वैज्ञानिक संसार

प्रोफेसर हारटले का अनुभव है कि छोटे दानों की मकई के भुट्टों पर के माप पर दिन के माप का बड़ा प्रभाव पड़ता है। अप्रैल में जून की अपेक्षा दिन छोटे होते हैं। यदि इस मकई को बिलकुल पास २ अप्रैल और जून में बोया जाय तो अप्रैल में बोये हुए बीज से उत्पन्न भुट्टे जून वालों की अपेक्षा छोटे होंगे। एक और वैज्ञानिक का अनुभव है कि अक्टूबर में बोने पर भुट्टे और भी छोटे होते हैं। क्या इसी प्रकार का प्रभाव जीवों के शरीर पर भी पड़ता है? हमारे पुराने शास्त्रकार मनुष्य के सम्बन्ध में गर्भाधान के लिये वर्ष में विशेष २ समय को त्याज्य और अन्य विशेष समय को उत्तम बतलाते हैं। क्या इसका भी कुछ ऐसा ही अभिप्राय तो नहीं?

२. मनुष्य देह में धातु।

डाक्टर चार्ल्स मेयो ने अनुमान किया है कि एक साधारण मनुष्य की देह में इतना तैल्य है कि उससे एक दर्जनसे अधिक साबुन की टिकिया बन सकें, इतना लोहा है कि उस से एक मामूली कील बन सके, एक छोटी डिबिया भर खांड, एक छोटे कमरे में सफैदी करने लायक चूना, इतना फासफोरस कि उससे २२०० दियासलाई बन सकें, इतना मैगनेसियम कि जिससे एकबार जुलाब लेने लायक मेगनीसिया बन सके, एक छोटी सी बच्चों की बन्दूक चलाने लायक पौटैसियम और एक कुत्ते के शरीर से कीड़ों को मारने लायक गन्धक। इन सबका मूल्य ३॥) के लगभग अथवा वह मनुष्य देह जिसपर प्राणि को इतना अभिमान है मृत्यु पर्यन्त ३॥) से अधिक मूल्य नहीं रखती।

३. संसार की सब से बड़ी घड़ी

न्युयार्क नगर के लिये अभी २ एक घड़ी बनी है जोकि संसार की सब से बड़ी घड़ी है। इस घड़ी के डायल का व्यास (चौड़ाई) ५० फुट है, मिनट वाली सुई ३७ फुट ३ इंच लम्बी है अथवा एक साधारण बाजार की चौड़ाई के बराबर है। इस सुईकी औसत चौड़ाई ३॥ फुट है। इस सुई के किनारों पर रात्रि को समय बतलाने के लिये १२० छोटे २ बिजली के लैम्प जड़े हैं।

घन्टे वाली सुई २७ फुट लम्बी है, परन्तु बड़ी सुई से चौड़ाई में कहीं अधिक है। इस पर १०० लैम्प लगे हैं।

दोनों सुइयां लकड़ी की बनी हैं जिनको लोहे के ढांचे का सहारा दिया गया है।

इन पर काला रंग फिरा हुआ है जिस से कि सफैद डायल पर यह भली प्रकार दिखलाई दे सकें।

सारी घड़ीका वज़न ११२ मन के लगभग है।

४. जीवों के लिये मरु भूमि में जल

पैलस्टाईन के रेतीले जंगलों में कहीं २ इतनी गरमी पड़ती है कि तापमापक यन्त्र में पारा १४० दर्जे तक चढ़ जाता है। इस ताप में भी कुछ कीड़े मकौड़े इधर उधर घूमते और अपना कार्य्य करते रहते हैं। उन के शरीर का ताप अनुमान से कम पाया जाता है। किंचित इस का कारण शरीर से

जल का भाप के रूप में उड़ना हो। यदि यह ठीक है तो यह स्पष्ट है कि इन कीड़ोंको जितना समझा जाता है उस से कहीं अधिक जल की आवश्यकता है। मरुभूमि में दिन रात के ताप और वायु में जल वाष्प की मात्रा में बड़ाभारी अन्तर रहता है। रात्रि के समय वायु में बड़ी भारी मात्रा में नमी रहती है परन्तु दिन में यह वायु सर्वथा खुश्क हो जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन जंगलों में होने वाले पौदों के सूखे हुए टुकड़ों में जल सोखने की शक्ति बड़ी भारी मात्रा में रहती है अर्थात् वह रात्रि के समय जलमय वायु में से जल की बड़ी भारी मात्रा खींच कर अपने में सोख लेते हैं और यह जल सूर्य्य निकलने के पीछे भी कई घन्टे तक इन टुकड़ों में विद्यमान रहता है। विचार किया जाता है कि सूखे घास और बनस्पति का यह गुण इन जंगलों में गरमियों में जीवन को स्थिर रखने का आधार है। यह टुकड़े जो कि सारी रात जल सोखते रहे हैं कितने ही कीड़े मकौड़ों का आहार बनते हैं और इस प्रकार न केवल यह पक्षियों छिपकली, कीड़े इत्यादि को खाने के लिये ही सामग्री प्रदान करते हैं वरन पीने के लिये जल भी। इसी लिये तो मनुष्य को आश्वासन देने के लिये कवि ने कहा है:—

जब दांत न थे तब दूधदियो,
जब दांत दिये तो क्या अन्न न दै हैं।
जो जल में, थल में, पक्षी पशु की,
सुध लेत सो तेरी भी सुध लै हैं॥

५. कम्बल और रज़ाई किस प्रकार सर्दी को रोकते हैं

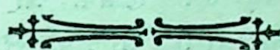
मनुष्य अति प्राचीन समय से सर्दी में ओढ़ने के लिये कम्बलों को काम में लाता है। बहुत से व्यक्ति तो यह समझते हैं कि मोटा कस कर बुना हुआ कम्बल खूब गरम रहता है और इस के विपरीत पतला और ढीला २ बुना हुआ कम्बल सरदी को भली प्रकार नहीं रोक सकता। इस अनुमान में सचाई है परन्तु एक सीमा तक ही। इसको समझने के लिये हमें पहले यह जान लेना चाहिये कि कम्बल सर्दी को किस प्रकार रोकता है? कम्बल के ताने बाने से बुने हुए घरों के बीच जो छिद्र रह जाते हैं उन में वायु भरा रहता है और यह वायु ही है जो हमें सर्दी से बचाता है। हमारे शरीर के ताप को यह वायु कंबल से बाहर नहीं निकलने देता।

वायु का यह गुण है कि वह ताप को अपने में से नहीं निकलने देता अतः यदि इस वायुकी मात्रा कम हो जाय--जैसा कि कम्बल को कस कर बुनने से होना आवश्यक है तो कम्बल की ऊन हमारे शरीर में से निकलने वाले ताप को नीचे की ओर से खैंचेगी और ऊपर अथवा बाहर की ओर से वायु में पहुंचाती जायगी। यदि कम्बल बहुत ही छिद्रा बुना हो तो बाहर की वायु भीतर और भीतर की वायु बाहर सुगमता से जा सकेगी और हमारे शरीर को घड़ी २ बाहर से आये हुए ठंढे वायु को गरम करना पड़ेगा अतः हम कभी भी गरम न रह सकेंगे। अतः किसी भी कम्बल की उपयोगिता उस के भारी होने अथवा कस कर बने जाने पर निर्भर नहीं वरन उस के वायु छिद्रों के ठीक २ प्रमाण पर निर्भर है। यदि यह वायु छिद्र बहुत बड़े २ हों तो भी और बहुत छोटे २ हों तो भी दोनों अवस्था में कम्बल काम का नहीं रहता।

यही बात रज़ाई अथवा लिहाफ के विषय में भी समझनी चाहिये। यदि रुई बहुत अच्छी पिंजी हुई हो तो उस रुई के रेशे पतले पड़ते जायंगे और अधिक २ वरन छोटे २ वायु छिद्र बनाते जायेंगे। यदि रुई अच्छी पिजी हुई नहीं

ते उसी के रेशे पास २ रहेंगे अतः कम वायु छिद्रों को घेरेंगी। इस अवस्था में वह कस के बुने हुये कम्बल की भांति हमारे शरीर के ताप का भीतर से बाहर पहुंचाने का काम करेंगे।

प्रश्न हो सकता है कि सूती कम्बल क्या उतने ही उपयोगी न होंगे जितने कि ऊनी? अवश्य होंगे। कम्बल अथवा रज़ाई का गुण शरीर के ऊपर एक न हिलने वाला वायु का गिलाफ बना देना है चाहे यह ऊन के तन्तुओं से बने चाहे सूत के। यही कारण है कि पंजाब के कई स्थानों पर सूती "खेस" ओढ़ने का रिवाज है। कहते हैं कि यह खेस इतने ही गरम होते हैं जितने कि कम्बल। परन्तु सूती कम्बलों में एक कमी रहती है। जिस वायु में अधिक नमी हो वहां यह काम नहीं दे सकते। जहां ऊन नमी को परे हटाती है वहां रुई इसको सोखती है। यही कारण है कि पहिले पहल रुई का कम्बल ओढ़ने में ठंढ़ा लगता है।



हमारी मञ्जूषा

१ मुक्तधारा-लेखक श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर वादक श्री रमाचरण, प्रकाशक प्रकाश पुस्तकालय कानपुर, पृष्ठ संख्या ११४ मूल्य१)

यह नाटक कविसम्राट श्रीरवीन्द्रनाथ की कृति है जोकि पहिले पहल प्रवासी के अप्रैल १६२२ के अंक में छपी थी। और हमने उसी वर्ष इसका अंग्रेजी रुपान्तर माडर्न रिव्यु में पढ़ा था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि नाटक कितना उच्च कोटि का है। इसका आधार इतिहास नहीं अतः इसमें साधारण पाठकों के लिये इतना मनोरञ्जन का सामान नहीं। परन्तु यह आधुनिक जगत की समस्याओं का प्रतिरूपक है जो कि पाठकों को मनन और विचार करने के लिये विवश करता है। एक शब्द में मुक्तधारा का संदेश है आत्मा की असीम, स्वच्छन्द स्वाधीनता। इसमें स्वार्थमयी पाश्चात्य सभ्यता के विरुद्ध आवाज़ है जिसके मद में मस्त हो एक जाति अपने हित के लिये दूसरी को पीड़ा देती और पद दलित करती है, जोकि मनुष्यत्व को मशीन और कला की वेदी पर बलिदान करती है, विज्ञान को पाशविकता की जंजीरों से बांधती है और इसी प्रकार के अनेक अत्याचार और दुराचार करवाती है।

इस नाटक में भारत की वर्तमान परिस्थिति पर भी बड़ा उत्तम प्रकाश डाला गया है। इसको पढ़ने से भास होता है कि मानो हमारी वर्तमान अवस्था को ही लक्ष्य करके यह लिखा गया हो।

इस पठनीय और विचारणीय नाटक का हिंदी भाषा में अनुवाद होना सर्वथा उचित था अनुवाद में कहीं २ अस्पष्टता है और अंग्रेजींपन की झलक दिखाई देती है। मूल्य कुछ अधिक है।

२. भाषाभूषण-सम्पादक श्री बृज रत्नदास मन्त्री काशीनागरी प्रचारणी सभा, प्रकाशक श्री रामचन्द्र पाठक व्यवस्थापक पाठक एण्ड सन्स, राजा-दरवाजा-काशी। पृष्ठ १०० मूल्य ॥)

जोधपुर नरेश महाराजा यशवंत सिंह कृत भाषाभूषण हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक आवश्यकीय पाठ्य पुस्तक है। इस पुस्तक का सम्बन्ध शृंगार रस से है और उसका विषय है अलंकार। अपने विषय का यह प्रसिद्ध तथा उपयोगी ग्रन्थ है। कवि ने एक ही दोहे में अलंकारों के लक्षण तथा उनके उदहारण देकर ग्रन्थ को बड़ा रुचिकर बना दिया है। इस उपयोगी ग्रन्थ का संपादन कर श्री बृज रत्नदास जी ने विद्यार्थियों का बड़ा उपकार किया है। अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरणों के अर्थ स्पष्ट करने के लिये संपादक द्वारा ग्रन्थ पर लिखी टिप्पणी बड़े काम की चीज़ है। अनुक्रमणिका में ग्रन्थ में आये शब्दों के परिभाषिक अंग्रेजी शब्दों का दिया जाना इस संस्करण की विशेषता है जो कि ग्रन्थ को समझाने में बड़ी सहायता देगा। संस्करण सर्वथा उपयोगी और विद्यार्थियों के लिये बड़ा लाभदायक है।

३. महा कवि अकबर और उनका उर्दू काव्य—लेखक उमरावसिंह कारुणिक प्रकाशक चौधरी, शिवनाथ सिंह शण्डिल्य ज्ञान प्रकाश मन्दिर पोस्ट माछरा जिला मेरठ। पृष्ठ संख्या १७७ मूल्य १)। इलाहाबाद निवासी कवि अकबर उर्दू भाषा के मर्मभेदी कवि हुये हैं। आपकी कविता मोहिनी और निराली है। आपने बड़े गम्भीर और विचारणीय विषयों को भी ऐसी सरलता और योग्यता से पेश किया है कि आपके शैर दिल को चीरते जाते हैं। उनके शब्दों में एक विशेष आकर्षण है। एक लय है और एक मर्म है। ऐसे कवि की कविता को हिंदी पाठकों के लिये सुलभ कर प्रकाशक ने भाषा पर बड़ा उपकार किया है। यह पुस्तक का दूसरा संस्करण है। पुस्तक के आरम्भ में कवि का ५० पृष्ठ का जीवन, चरित्र पुस्तक को और भी रोचक बनाता है।

४. स्त्री कर्तव्य शिक्षा—लेखक श्रीयुत छविनाथ पाण्डेय, प्रकाशक। हिन्दी-साहित्य कार्यालय ५१, ५२ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता, पृष्ठ ४०८। मोटा टाइप, सजिल्द मूल्य २)

इस पुस्तक में हिंदी भाषा के प्रसिद्ध लेखक श्री छविनाथ पाण्डेय जी ने बोल चाल की सरल भाषा में स्त्रियों के लाभदायक सभी विषयों पर प्रकाश डालने का यत्न किया है जैसा कि विषय सूची से पता चलता है। इस में २० अध्याय हैं जिनके विषय हैं गृहिणी गृह की शोभा, स्त्री शिक्षा, कुटुम्ब या परिवार गृहिणी कर्तव्य, घर की सफाई, बड़े बूढ़ों के साथ व्यवहार, विनय और लज्जा, नौकर चाकरों के प्रति व्यवहार, गहना या आभूषण, पति पत्नी सम्बन्ध, गर्भाधान सोरी घर, बालकों की रक्षा, बाल चिकित्सा, उनकी शिक्षा, स्त्री रोग चिकित्सा, व्यंजन विधान, रंगाई, गृह शिल्प बागवानी। यह कहना न होगा कि इन सब विषयों का ज्ञान हमारी बहिनों के लिये कितना उपयोगी है। अतः यह पुस्तक अवश्य उनके लिये हितकर होगी। लेखन शैली इतनी सरल है कि थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त बहिने भी इसे बड़ी सुगमता से पढ़ सकती हैं। स्त्री शिक्षा सम्बन्धी लेखक के बहुत से विचारों से हम सहमत हैं। आजकल के रौ में न बहकर लेखक ने आधुनिक शिक्षा प्रणाली के कई अहित कर और आवश्यकीय अंगों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है—जैसा कि अंग्रेजी की शिक्षा कुछ तीक्ष्ण उपन्यासों का बढ़ता हुआ प्रचार यह संतोष की बात है।

व्यञ्जन विधान शीर्षक अध्याय में लेखक ने भिन्न २ प्रकार की खाने पीने की चीज़ें बनाने की विधि बतलाई है। हमें सन्देह है कि कोई अनजान स्त्री इनको पढ़ कर वह सब चीजें बना सके जो इस में दी गयी हैं। अच्छा हो यदि कोई निपुण गृहिणी स्वयं इस विषय पर पुस्तक लिखे। पुरुषों द्वारा इस विषय पर लेख स्वभाविकतया ही अधूरे होंगे क्योंकि यह उनका क्षेत्र नहीं, वह जो कुछ लिखेंगे सुना सुनाया होगा। इसका आधार अनुभव नहीं होगा। एक बात और बागवानी वाले अध्याय में जो क्रियात्मक शिक्षा है वह भी अधूरी है। इतने ज्ञान से सब्जी भाजी का उत्पन्न करलेना कठिन ही प्रतीत होता है।

पुस्तक स्त्रियों के बडे काम की है और उनके अपनाने योग्य है।

५. ऋषिदयानन्द के मन्तव्यों पर तुलनात्मक विचार तथा उनका शास्त्रीय समर्थन लेखक श्रीधर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार। पृष्ठ संख्या ११५। मूल्य ॥) प्रकाशक म० राजपाल, आर्य पुस्तकालय अनारकली लाहौर।

भारत के दक्षिण में श्री० मध्वाचार्य एक बड़े प्रसिद्ध विद्वान तथा धार्मिक नेता हुए हैं। आपके द्वैतवाद और वैष्णव सम्प्रदाय का उधर् काफी प्रचार है। जब लोग "अहं ब्रह्मास्मि" 'शिवोहम्' इत्यादि वाक्यों के समुचित अर्थों को न समझते हुए अपने आपको ब्रह्म मानते हुए भयानक कुकर्मों में लिप्त हो रहे थे तब श्री० मध्वाचार्य का ही काम था कि उन्होंने द्वैतवाद का प्रचार कर भटकते हुओं को असली मार्ग दिखाने का यत्न किया। आपने उस समय की परिस्थिति को ही बदल दिया।

उनके सिद्धान्तों की ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों से तुलना की जाय तो परस्पर आश्चर्यजनक समता प्रतीत होती है। ईश्वर जीव, प्रकृति, सृष्टिउत्पत्ति कारण, वर्ण व्यवस्था, मुर्तिपूजा, तीर्थस्थान, कर्मयोग, अवतार, वेदपाठाधिकारी इत्यादि अनेक विषयों पर दोनों आचार्यों के विचार लगभग एक से ही हैं। पुस्तक लेखक ने दोनों की शैली के अनुसार स्वयं भी इन सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये इसी पुस्तक के उत्तर भाग में वेदों के बहुत से प्रमाण दिये हैं। जिससे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है।

लेखक को इस परिश्रम के लिये धन्यवाद देना चाहिये। आपने ऐसा करके बड़ी समाज सेवा की है। इसका अनुवाद कर्नाटकी भाषा में हो जाय तो शायद और भी अच्छा हो।

पुस्तक की लिखाई, छपाई और कागज भी सुन्दर है।

६. पारस—लेखक म० सुदर्शन जी। प्रकाशक म० राजपाल, प्रबन्ध कर्ता सरस्वती आश्रम, अनारकली, लाहौर। पृष्ठ संख्या ११२। मूल्य ॥=)

म० सुदर्शन से हिन्दी भाषाभाषी भली भांति परिचित हैं। आप एक उच्च कोटि के साहित्य सेवी हैं। आपने इस पुस्तक में बच्चों के लिये छोटी २ मनोरञ्जक और शिक्षादायक कहानियां लिखकर और साथ ही सुन्दर चित्र भी देकर बच्चों पर बड़ा उपकार किया है। यह पुस्तक पाठशालाओं की छोटी श्रेणियों के लिये बड़ी उपयोगी है।

लिखाई, छपाई, कागज आदि सभी उत्तम हैं।

७. माण्डूक्योपनिषद् का स्वरूप—लेखक और प्रकाशक म० प्रियरत्न विद्यार्थी आर्ष विद्या सदन (लक्खी चबूतरा) काशी। पृष्ठ संख्या १०६। मूल्य ॥ॾ)

माण्डूक्योपनिषद् एक बहुत पुरानी उपनिषद् है। इसका विषय भी अत्यन्त गूढ़ है। विद्यार्थी जी ने बड़ी ही सरलता पूर्वक आशय को समझाने का यत्न किया है। भाष्य में स्थान २ पर मौलिकता पाई जाती है। परमात्मा के नामों में ओ३म् को सब से प्रधानता है। इस 'ओ३म्' का विस्तार पूर्वक वर्णन तथा इसकी उपासना की बिधि बड़ी उत्तम रीति से प्रतिपादित है। जप, प्रार्थना उपासना किस प्रकार होने चाहियें इस विषय पर भी बहुत सा प्रकाश डाला गया है। पंडित जी संस्कृत तथा वैदिक धर्म के अच्छे विद्वान् प्रतीत होते हैं। कागज छपाई आदि सुन्दर हैं। साहित्य प्रेमियों को पंडित जी की उत्साह वृद्धि करनी चाहिये।

८. कठोपनिषद् का स्वरूप—लेखक व प्रकाशक म० प्रियरत्न विद्यार्थी, आर्ष विद्या सदन, काशी। पृष्ठ संख्या ३४। मूल्य ॾ)।

विद्यार्थी जी की यह पुस्तक भी मौलिकता पूर्ण है। उपनिषदों के अनेक भाष्य मिलते हैं। भाष्यकारों ने स्वमत्यनुसार अनेक प्रकार के अर्थ किये हैं। विद्यार्थी जी के भाष्य में यह विशेषता है कि आपने 'तोड़ मरोड़' से बहुत कम काम लिया है।

आप निश्चित होकर वैदिक साहित्य सेवा कर सकें तो यह आर्य्य जाति का सौभाग्य हो।

९. बलिवैश्वदेव यज्ञ की वैदिक व्याख्या—लेखक श्री. हरिशरण श्रीवास्तव 'मराल' बी. ए. एल. एल. बी.। प्रकाशक आर्यसंघ मेरठ सदर। पृष्ठ संख्या १०१। मूल्य ॥≈)।

हमारे अत्यन्त प्राचीन साहित्य और वेदों में यज्ञों की बड़ी महिमा गाई गई है। उन में जितनी महिमा गाई गई है हम में यज्ञों की ओर से बेपरवाही भी उतनी ही पाई जाती है। इसका एक कारण शायद ऐसे साहित्य का अभाव हो, जो इनके वास्तविक स्वरूप का निरूपण करे। मराल जी ने निस्सन्देह इसे तैयार करने में बड़ा यत्न किया है और एतद्विषयक प्राचीन संस्कृत साहित्य का सार एकत्र कर रख दिया है। आम लोग इस यज्ञ की उपयोगिता से सर्वथा अपरिचित हैं। मराल जी का हमें अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिये। कागज लिखाई छपाई आदि उत्तम है।

१०. प्रेमसागर—लेखक श्री० लल्लूजी लाल। प्रकाशक श्री० बैजनाथ केडिया, मालिक हिन्दी पुस्तक एजन्सी १२६ हरिसन रोड कलकत्ता पृष्ठ संख्या ३४४। मूल्य केवल ॥।≈)

इस पुस्तक में लेखक ने श्री कृष्ण जी के जीवन की प्रत्येक घटना को बड़े सरल तरीके से लिखा है। सारी पुस्तक भक्तिरस से परिपूर्ण है। जो सज्जन रामायण और भागवत आदि संस्कृत ग्रन्थ नहीं पढ़ सकते उन्हें इस पुस्तक के पाठ से लाभ उठाना चाहिये। प्रकाशक का इतनी बड़ी पुस्तक का इतना अल्प मूल्य रखना प्रशंसनीय है। पाठकों को इस से अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

११. श्री मद्भगवद्गीता (भाषा टीका समेत)—प्रकाशक, हिन्दी पुस्तक एजन्सी १२६ हरिसन रोड कलकत्ता।

इस गुटके में अच्छे मोटे अक्षरों में गीता के १८ अध्याय और प्रत्येक श्लोक के साथ उसका भाषार्थ भी दिया है। प्रकाशक ने इतना अल्प मूल्य--नहीं २ नाम मात्र मूल्य रख कर सभी हिन्दी प्रेमियों के लिये इसे सुप्राप्य कर दिया है। जनता को इससे लाभ उठा कर प्रकाशक का उत्साह बढ़ाना चाहिये।

कुसुमोद्यान।

एक अष्ट वर्षीय बालक की विचित्र बुद्धि।

गत २८ फरवरी को भारत मित्र के प्रतिनिधि की दिल्ली में एक आठ वर्ष के बालक रमेश के साथ जो मनोरंजक बात चीत हुई है वह हम ज्योति के पाठकों के विनोदार्थ नीचे देते हैं। इस बालक की प्रतिभा शक्ति आश्चर्य में डालने वाली है अतः इस से शिक्षा भी मिलती है। वह बात चीत इस प्रकार है:-

मैं—तुम्हारा क्या नाम है ?

रमेश-- (निर्भयता से) रमेश जी,

मैं – तुम्हारी क्या उम्र होगी ?।

रमेश—नवां साल चल रहा है।

मैं—तुम्हारा क्या वर्ण ?

रमेश—वर्ण, क्या होता है ?

मैं--अजी ज़ात क्या है ?

रमेश --हिंदू -ब्राह्मण।

मैं—रमेश, तुमको अगर कोई मुसलमान अपने साथ ले जाय तो चले जाओगे ?

रमेश—जी नहीं। अपने माता पिता की इजाज़त के बिना बाहर नहीं जा सकता।

मैं—और अगर हिंदू हो तो तब ?

रमेश--तब भी हुक्म लेंगे मगर उससे बात करने में या उसके साथ कुछ दूर जाने में हरज न मानेंगे।

मैं—ऐसा क्यों ?

रमेश—बात यह है कि हिन्दू रुपये पैसे छीन कर छोड़ देगा, कोट कपड़ा लेलेगा, जियादा से जियादा मार डालेगा पर मुसलमान तो धर्म लेगा।

मैं--(मेरा कलेजा दहल उठा) मैंने सोचा क्या मुसलमानी धर्म ऐसा है ? एक महात्मा ने भी एक प्रसंग पर यही वाक्य कहे थे।

मैंने पूछा –

क्यों भाई अगर वह जबर्दस्ती पकड़ ले जाय तब ?

रमेश--चिल्लाऊंगा, शोर मचाऊंगा पिता जी के दोस्त लोग सुनकर उसको पकड़ लेजायेंगे। पिता जी उसको सजा देंगे। मजा आयेगा। (रमेश के पिता एक जगह डिप्टी कलक्टर हैं)

मैं–तुम्हारे मुंह में कपड़ा ठूंस कर उठा ले जाय तब ?

रमेश—बे काबू करके ले जायगा तो क्या करगे जिस रास्ते से वह ले जायेगा उस रास्ते को अच्छी तरह देखलेंगे, फिर जब वह कहीं बाहर चला जायगा तब हम फिर वापस चले आयेंगे।

मैं—वाह भाई-ऐसा वह क्यों करेगा? अगर वह कहे कि अपनी चोटी कटा दो तुम्हें खूब आराम से रखेंगे तब?

रमेश-चोटी नहीं कटने दूंगा। चोटी को हाथ से पकड़ लूंगा।

मैं--अगर हाथ काट डाले?

रमेश--दूसरे हाथ से पकड़ लूंगा।

मैं--उसको भी काट डाले तब?

रमेश--फिर काटूंगा, लातों से मारूंगा उसको मार डालूंगा (इस वक्त रमेश की मूर्त्ति दर्शनीय थी)

मैं- अगर वह मार डाले तो?

रमेश—कोई परवाह नहीं धर्म के लिये मर गये। पिता जी सुनेंगे खुश होंगे। धर्म तो नहीं छोड़ा?

मैं—महात्मा गांधी जी को जानते हो?

रमेश—हां जी। महात्मा जी भी तो कहते हैं कि धर्म मत छोड़ो चाहे मर जाओ!

मैं- तुम किसी से नहीं डरते?

रमेश--नहीं जी,

मैं- किसी से नहीं?

रमेश--हसते हुए ईश्वर से डरता हूँ।

मैं-ईश्वर के साथ क्या तोप तलवार बन्दूक है?

रमेश--ईश्वर तो जरासे इशारे से नाश कर सकता है

मैं—ईश्वर को कैसे जानते हो?

रमेश—ईश्वर ने हमको पैदा किया, वही खाना देता है उसीके हिलाने से हाथ हिलता है।

मैं—और हंसाता कौन है?

रमेश—ईश्वर।

मैं—वाह भाई तुम तो हर बात में ईश्वर का नाम लेते हो।

रमेश—हां जी हर बात में तो ईश्वर हुई है। (खूब हंसते रहे)

बीच में अपने आप रमेश बोल उठा "महात्मा जी भी तो ईश्वर से डरते हैं"

मैं—महात्मा जी की क्या बात तुम्हें पसन्द है?

रमेश—खद्दर पहरना, चरखा चलाना, अपने धर्म पर डटे रहना।

मैं—तो तुम भी खद्दर पहनो।

रमेश घर जाऊंगा, स्कूल की छुट्टी होगी नानी से चरखा सीखूंगा (इसी वक्त यह कह कर कि चरखा घूं घूं करेगा हंसने लगा)

रमेश—पंडित जी! महात्मा गांधी जी अपने आप चरखा कातते हैं।

मैं—हां हां वे तो चर्खा चलाना धर्म समझते हैं।

रमेश—धर्म की तरह साथ रखते हैं।

मैं-हां हां

मैं—अच्छा रमेश एक बात बतलाओ तुम पढ़ते भी हो कि दिन भर खेला ही करते हो?

रमेश—पढ़ता हूँ जी, उर्दू की दूसरी किताब।

मैं-तुम हिन्दी भी जानते हो?

रमेश—पंडित जी मुझे हिंदी पसन्द है पर पिता जी कहते हैं चार साल और उर्दू पढ़ो। मैंने उनसे कई मर्तबा कहा कि हिन्दी पढ़ूंगा।

मैं-हिंदी क्यों पसन्द है ?

रमेश—वह हिंदुओं की ज़बान है। मैं हिंदू हूँ। हमको ज़रूर पढ़नी चाहिये। मेरे मन में आता है कि हिन्दी पढ़ कर डिप्टी साहब को चिट्ठी लिखूं तो उनकी शामत आ जाय यह कह कर हसने लगा।

(भारतमित्र)

ब्रज-बाल।

सतत सुहावैं री ब्रजबाल
एक लालका श्यामल श्री ने,
बेसुध किए गवाल ॥ १ ॥
वंशी बजै गोपियां नाचैं,
अंग अंग में ताल ॥ २ ॥
एक तान छाई बन बन में,
कहां सखे! गोपाल ॥ ३ ॥
पात पात बन रहा नर्तकी,
गिरी डाल पर डाल ॥ ४ ॥
× ×
लांछन था लीला का शिशु पर,
हा! कलुषित कलिकाल ॥ ५ ॥
मर्यादी बन दयानन्द ने,
ली ब्रजलाज संभाल ॥ ६ ॥
योगीश्वर ने मुसक मुसक कर,
लौटाया शिशु काल ॥ ७ ॥
मां कहता भोली बनिता को,
सखि! चूमो शशि भाल ॥ ८ ॥

"चमूपति"

यह कविता मथुरा शताब्दी के समय शताब्दि-कवितासम्मेलन में पढ़ी गई थी। सभापति श्री पं० नाथूरामजी शंकर थे-सरस कवियों ने इस कविता को बहुत सराहा था।

बनिता विनोद

स्त्री जगत्।

१ अमरीका की महिलाएं।

अमरीका की नैशनल महिला पार्टी ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हिस्सा लेने का प्रोग्राम बनाया है। अमरीका की राजनीतिमें स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करने के लिये उन्होंने अमेरिका की शासन प्रणाली में निम्न लिखित आशय का संशोधन पेश करने का निश्चय किया है—

'अमेरिका की सब नर नारियां अमेरिका के कानून की दृष्टि में बराबर हैं।'

\+ \+ \+ \+

अमेरिका के कोलम्बस जंकशन में ४०० की आबादी है। इस स्थान की म्युनिसि-

पेलिटी के प्रधान कोषाध्यक्ष, तथा कार्य कारिणी की मैम्बर सब महिलाएं ही हैं। यह महिलाएं दो साल तक प्रबन्ध का काम करेंगी—

\+ \+ \+ \+

श्रीमती जेन एडम्स के नेतृत्व में अमेरिका में (वुमन्स इन्टरनेशनल लीग फौर पीस एण्ड फ्रीडम) महिला-अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा स्वाधीनता सङ्घ बनाया गया है। इस की २४ शाखाएं स्थापित हो चुकी हैं। आने वाले मई मास में वाशिंगटन में इस सङ्घ का अधिवेशन होगा—

\+ \+ \+ \+

इस से भी अधिक महत्व पूर्ण काम न्यूयार्क का पश्चिमीय पूर्वार्ध का महिला शान्ति सङ्घ कर रहा है। यह सङ्घ अमेरिका की शासन प्रणाली में निम्नलिखित भाव का संशोधन करने के लिये आन्दोलन कर रहा है—

किसी भी उद्देश्य से प्रेरित होकर, युद्ध का करना या युद्ध में सहयोग देना-- अमेरिका की शासन व्यवस्था के अनुसार गैर कानूनी है।

अमरीका तथा अन्य किसी रियासत को शस्त्र तथा युद्ध सामग्री आदि बनाने का हक नहीं है, और ना ही किसी दूसरे को इन चीज़ों के बनाने में सहायता देनी चाहिये। इस सङ्घ में काम करने वाली स्त्रियों को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह किसी भी प्रकार के युद्ध में-चाहे वह आत्म रक्षा के लिये किया गया हो चाहे दूसरे को जीतने की इच्छासे··· ·····साथ नहीं देगी।

जहां एक ओर स्त्रियां इस प्रकार युद्ध के विरुद्ध आन्दोलन कर रही हैं वहां अनेक महिलाएं, बहिनों को बालचार शिक्षा तथा सैनिक शिक्षा के लिये, मनुष्यों के बराबर मौका देने के लिये आन्दोलन कर रही हैं। अमेरिका की महिलाएं अन्तर्राष्ट्रीय महिला कांग्रेस बनाने की कोशिश में हैं जिससे वह मिल कर स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा कर सकें।

२ रूस की मुसलमान महिलाएं

रूस की उच्च घराने की स्त्रियों ने स्थान स्थान पर अपनी कमेटियां बनाकर आम जनता को हिसाब, लिखना तथा पढ़ना सिखाने का आन्दोलन जारी किया है। क्योंकि उन्होंने इस बात को समझ लिया है कि जब तक किसी देश व समाज की साधारण जनता शिक्षित नहीं होगी तबतक वहां कोई भी आन्दोलन नहीं फल सकता। इस कमेटी ने स्थान २ पर लिखने तथा पढ़ाने के लिये सैकड़ों की संख्या में स्कूल खोले हैं। १९२२ ई० में इस कमेटी ने रूस की महिलाओं की एक कान्फ्रेन्स बुलाई थी। इस कान्फ्रेन्स में मुसलमान महिलाओं की संख्या अधिक थी। इस कान्फ्रेन्स में यह प्रस्ताव स्वीकार किये गये थेः—

१ बहु पत्नी विवाह बन्द किया जाय।

२. बालविवाह बन्द किया जाय।

\+ \+ \+ \+.

३. जर्मनी की महिलाओं के काम।

बर्लिन युनिवर्सिटी में श्रीमती डा० रोडा आर्डमैन चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा देती हैं। श्रीमती लिसा मेटनर इसी युनिवर्सिटी में विज्ञान (फ़िजिक्स) की प्रोफेसरा हैं। श्रीमती डाक्टर गर्टरड फ्रैकफोर्ट युनिवर्सिटी में अंगरेज़ी की शिक्षा देती हैं।

इसी प्रकार जर्मनी की अनेक युनिवर्सिटियों में स्त्रियां संस्कृत तथा दर्शन की प्रोफेसर हैं। कौलोन की नई युनिवर्सिटी में आधुनिक इतिहास की प्रोफेसर एक महिला ही हैं। जिस देश में माताएं जाति शिक्षा में भाग लेती हों वहां समृद्धि तथा आशा का जीवन क्यों न हो?

३ मिश्र की वीर माताएं

इंगलैन्ड का मिश्र सरकार के साथ जो झगड़ा हुआ है उस समय मिश्र की वीर माताओं ने संसार के सभ्यराष्ट्रों के नाम यह अपील प्रकाशित की थी:—

"संसार के इतिहास में यह एक अनोखी सचाई है कि जब कभी देश व जाति पर आपत्ति आती है तब वहां की महिलाएं ही सहायता के लिये आगे बढ़ती हैं। मिश्र की महिलाएं इसी पद्धति का अनुसरण कर आगे बढ़ रही हैं, और दुनियां के न्यायालय में अंगरेज जाति पर मिश्रवासियों पर अत्याचार करने का अपराध लगाती हैं। अंगरेज मिश्र सरकार पर अनुचित दबाब डाल कर उस के जन्म सिद्ध अधिकारों को छीनना चाहते हैं।"

———



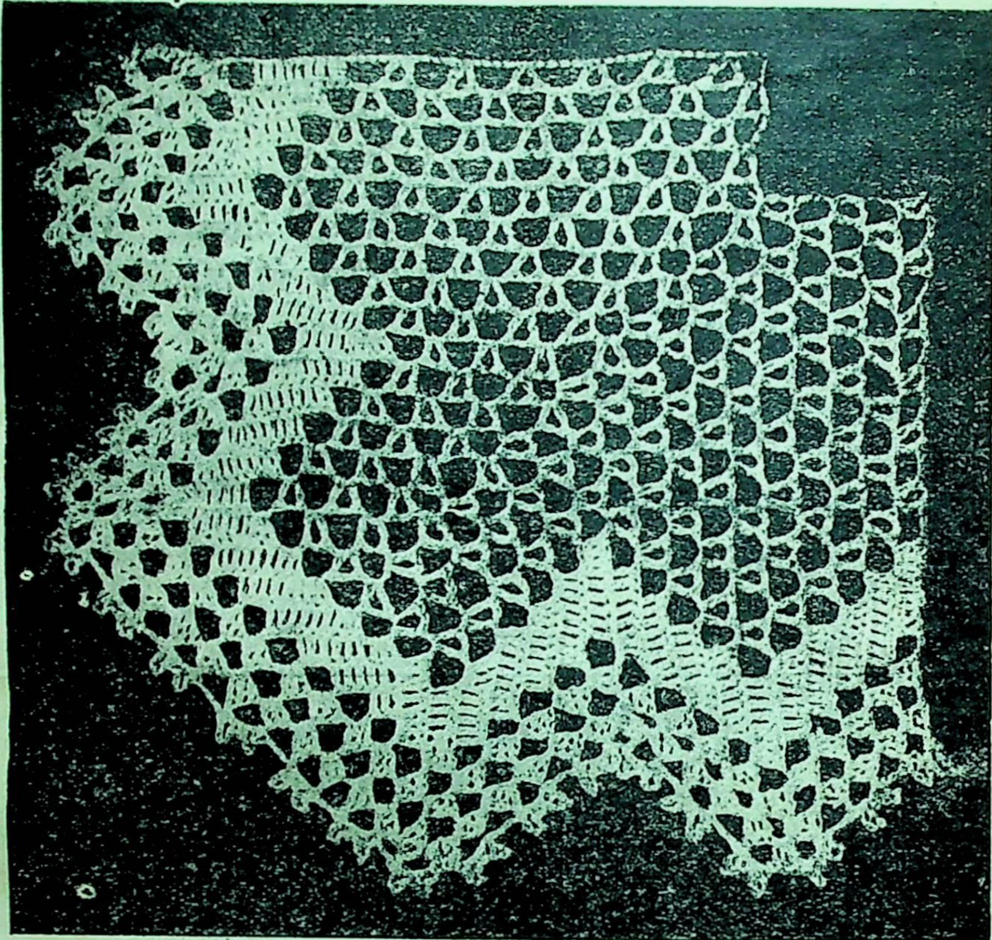
दिल बहार लेस।

ले०—श्री ओ३मूवती देवी।

(गतांक से आगे)

६ पंक्तिः—लौटो, ३ चे., १ते., ३चे., १ते.,पछेद में, ३ चे, १ ते., ३ चे., १ ते., अगले छेद में, ३ चे, ३ते, अगले छेद में, ६ ते., २ चे., ३ ते अगले छेद में २ चे., ३ ते अगले छेद में।

७ पंक्तिः—लौटो, ५ चे., ३. ते पहिले छेद में, २ चे., ३ ते. अगले छेद में, २ चे., ३ ते. छोड़ो., ६ ते, ३ ते., अगले छेद



में, ३ चे ,१ ते., ३ चे , १ ते. अगले छेद में, ३ चे., १ ते., ३ चे १ ते अगले छेद में ३ चे , १ ते , ३ चे., १ ते उसी छेद में जिसमें पिछली पंक्ति के अन्तिम दो तेहरे डाले थे, १ ते, कोने वाले अगले छेद में, ३ चे , १ ते उसी छेद में।

८ पंक्तिः—लौटो, ३ चे , १ ते., ३ चे , १ ते पहिले छेद में, ३ चे., १ ते., ३ चे , १ ते., अगले छेद में, ३ चे , १ ते , ३ चे., १ ते., अगले छेद में, ३ चे , ३ ते छोड़ो, ६ चे., ३ ते, अगले छेद में, २ चे , ३ ते., अगले छेद में, ३ चे, ३ ते, उसी छेद में।

६ पंक्तिः—लौटो, ५ चे , ३ ते., ३ चे , ३ ते सब पहिले छेद में, २ चे., ३ ते, अगले में, ६ ते., ३ चे, १ ते., ३ चे., १ ते. अगले में, ३ चे., १ ते., ३ चे १ ते., अगले छेद में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते., अगले में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते अगले छेद में, ३ चे , १ ते., ३ चे, १ ते. अगले में, १ ते. कोने वाले अगले छेद में, ३ चे., १ ते., उसी छेद में।

१० पंक्तिः—लौटो, ३ चे , १ ते , ३ चे., १ ते. पहिले छेद में, ३ चे , १ ते.,

३ चे, १ ते अगले छेद में, ३ चे. १ ते., ३ चे., १ ते अगले छेद में, ३ चे, १ ते., ३ चे, १ ते अगले में, ३ चे, १ ते., ३ चे, १ ते., अगले में, ३ चे., ३ ते छोड़ो, ६ चे ३ ते अगले छेद में, २ चे, ३ ते., ३ चे., ३ ते अगले छेद में।

११ पंक्तिः – लौटो, ५ चे, ३ ते, ३ चे, ३ ते पहिले छेद में, २ चे, ३ ते. अगले में, ६ ते, ३ चे, १ ते., ३ चे, १ ते सब अगले छेद में, ३ चे, १ ते, ३ चे. १ ते, अगले मे., ३ चे., १ ते, ३ चे, १ ते, अगले में ३ चे., १ ते., ३ चे, १ ते अगले में, ३ चे, १ ते, ३ चे, १ ते., अगले छेद में, ३ चे., १ ते., ३ चे., १ ते अगले में, ३ चे, १ ते, ३ चे, १ ते, अगले में, १ ते कोने वाले अन्तिम छेद में, ३ चे., १ ते., उसी छेद में।

१२ पंक्तिः—लौटो, ३ चे., १ ते. पहिले छेद में, ३. चे १ ते. उसी छेद में, * ३ चे, १ ते. अगले में, ३ चे., १ ते. उसी छेद में इस * चिन्ह से ५ बार बनाओ, ३ चे., ३ ते., छोड़ो, ६ च., ३ ते. अगले छेद में, २ चे., ३ते., ३चे., ३ ते., अन्तिम छेद में।

यह कोना समाप्त होगया। जब सारी लेस पूरी होजाये तो उसके सब ओर इस प्रकार किनारा बनाओ :—

किनारा :—४ दो. ४चे. के पहिले छेद में, ३ चे., १ दो. ४ चे. के अगले छेद में, ४ चे., २ दो. उसी छेद में, ४ चे., २ दो. उसी छेद में, ३ चे., १ दो. ४ चे. के अगले छेद में, ४ चे, २ दो. उसी छेद में, ४ चे., २ दो. उसी छेद में २ दो. सिरे पर के अगले छेद में, ४ चे., २ दो., ४चे., २ दो. सब उसी छेद में, ३ चे., २ दो अगले में, ४ चे., २ दो., ४ चे., २ दो. उसी छेद में; इसी प्रकार सब लेस पर बीनो। (समाप्त)

तीन भक्त स्त्रियां

[ले०—श्री 'ग्रामीण']

स्त्रियों में जितनी श्रद्धा और भक्ति है उतनी पुरुषों में नहीं, इसका एकमात्र कारण यह है कि भक्ति और श्रद्धा की मूर्ति सन्तान के पालन पोषण का जितना सम्बन्ध स्त्रियों से है उतना पुरुषों से नहीं। बच्चों के हृदय की ध्वनि को जितनी जल्दी स्त्रियां पहिचान लेती हैं उतनी जल्दी संसार के बड़े से बड़े मनोविज्ञान शास्त्रवेत्ता को भी उनके मनोभाव का पता नहीं लगता। यह दशा तो है ऐसी स्त्रियों की जिनको अक्षर-हीना और ज्ञान-विज्ञान विहीना कह सकते हैं। यदि कोई स्त्री विदुषी होकर वैद्यक और मनोविज्ञान शास्त्र का अध्ययन करना चाहे तो उसके लिये बच्चे से बढ़कर कोई-पदार्थ-

पाठ दुनियां में नहीं हो सकता। वह बच्चे के रोने, उठने, हँसने, चलने और तोतली जबान से अनेक अनिर्बचनीय भाव निकाल सकती है। और तब उसके समझ में गणेश और पार्बती का सम्बन्ध आ सकता है। यही एक शक्ति है जो प्रेम का अंकुर पैदा करती है और नारी जाति को जगत्माता की पदवी देती है। आज हम यहाँ वीरांगनाओं की चर्चा न करके भक्त शिरोमणि तीन स्त्रियों का कुछ संक्षेप वृत्तान्त ज्योति की पाठिकाओं के सामने रखते हैं। उनका नाम मीराबाई, दयाबाई और सहजोबाई है।

मीराबाई

इनका जन्म जोधपुर में राठौर क्षत्रिय कुल में हुआ था, यह साढ़े चार सौ साल की बात है। इनका विवाह उदयपुर के सीसौदिया वंश में हुआ। इनमें भक्ति का संस्कार बाल काल ही से था, विवाह के दश वर्ष पश्चात् इनके पति का इन से बिछोह हो गया और यह विधवा हो गईं। जहां भक्ति का प्रसङ्ग हो वहां तर्क को हार माननी पड़ती है। इन बातों को सम्प्रदायिकता या सिद्धांत की कसौटी पर कसने से कुछ भी पता नहीं लग सकता, यह तो अनुभव सिद्ध बातें हैं। यह जानते हुए कि यह पत्रिका ऐसे हाथों में जायगी जहां सहसा इनबातों पर विश्वास करना कठिन हो जाता है पर मैं बल पूर्वक कहता हूँ कि जिनके हृदय है और जो मनुष्य हृदयके मूल को जानते हैं वे समझेंगे कि मीरा का आसन नारी जाति में कितना ऊँचा है।

विधवा होने के पश्चात्

जहाँ आजकल विधवा विवाह के लिए सिर तोड़ कोशिश हो रही है—हालांकि स्वामी दयानन्द ऐसे प्रबल सुधारक ने भी इस बात को स्वीकार नहीं किया—वहां मीरा की चर्चा सुनकर शायद कुछ लोगों को बुद्धि के साथ युद्ध करना पड़े पर फिर भी हम उन्हीं बातों को दुहराते हैं कि मनुष्य की शक्तियां उसके मस्तिष्क में छिपी रहती हैं और अवसर पाकर जब बाहर निकलती हैं तो एक अलौकिक आनन्द का कारण बन जाती हैं। इनको विधवा होने का कुछ भी शोक नहीं हुआ। पद बनातीं गातीं और गिरधर गोपाल के गुण गान में समय बिताती थीं। साधु, सन्त, अतिथि, अभ्यागत इत्यादि की सेवामें इनका समय अधिक लगता था। एक राज वंश की बधू इस प्रकार से बेधड़क साधु सन्तों से बात चीत करे यह उसके श्वसुर-कुल वालों को कैसे सह्य हो सकता था साथ ही ऐसी स्त्री जो विधवा हो। उदयपुर के राणा ने—जो उस समय गद्दी पर थे जिनका नाम विक्रमाजीत था,—मीरा बाई को बहुत ऊंचा नीचा सुझाया, संसार की कष्ट कथा सुनाई, पर मीरा प्रेम का प्याला पी चुकी थीं।

प्रीतम छबि नैनन बसी,
पर छबि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि,
आप पथिक फिर जाय॥

राणा ने अपनी बुद्धि अनुसार मीरा बाई की अक़ल ठिकाने करने के लिए दो दासियां भी उनके पास रख छोड़ीं। किन्तु कुछ दिनों के बाद चम्पा और चमेली नाम की दासियों पर भी भक्ति का रंग चढ़ गया परन्तु राणा ने अपना उद्योग जारी रक्खा और अपनी बहन 'ऊदा" को मीरा बाई के विचार पलटने के लिए भेजा पर यहां तो प्रेम का शीशमहल था जो आता था वह अपने को भक्ति-रस

में डूबा पाता था 'ऊदा" भी मीराबाई की शिष्या हो गई। अब राणा की उदासी का ठिकाना न रहा और यह सोच कि अब इस को जान से मार डालना ही अच्छा है, यह सोचकर, अच्छी तरह समझ ज्ञान-चक्षु हीन राणा ने मीरा के लिए विष के प्याले भिजवाए। कहते हैं कि मीरा ने उन प्यालों को प्रेम पूर्वक पी लिया, पर उसका प्रभाव कुछ भी न पड़ा। मीरा ने सोचा कि अब राणा के बन्धन से मुक्त होना ही अच्छा। बिना पूर्ण मुक्त हुए आनन्द कहां! मीरा ने एक पत्र बाबा तुलसीदास को लिखा जिसमें नीचे लिखे भजन का उत्तर तुलसीदास से माँगा।

श्री तुलसी सुख निधान दुख हरन गुसाईं।
बारहिंबार प्रनाम करूँ अब हरो शोक समुदाई॥

घरके स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई

बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन वरियाई

मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबेहै सो लिखियो समुझाई

इस भजनका उत्तर तुलसीदास ने यह लिखा
जाके प्रिय न राम वैदेही।

तजिये ताहिकोटि बैरीसम यद्यपि परमसनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषणबंधु, भरत महतारी
बलिगुरुतज्यो, कन्त ब्रजबनिता, भये मुदमंगलकारी
नातो नेह रामसो मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँलौ
अंजन कहा आंखि जौ फूटै बहुतक कहौं कहाँलौं
'तुलसी' सो सबभांति परमहितपूज्य प्रान ते प्यारो
जासों होय सनेह रामपद येही मतो हमारो॥

कहाजाता है कि यह उत्तर पाने पर मीराबाई उसी रातको चित्तौड़ छोड़ कर "मेड़ता" चली आई और वहां से बृन्दावन होते द्वारका चली गई जहां उनका देहान्त होगया।

उनके अनेक पद बड़े प्रसिद्ध हैं सब यहां न दिए जाते हैं, न देने के लिए इतना समय है लेकिन 'ज्योति" की पाठिकाओं को चाहिए कि मीरा के भजनों को एक बार ज़रूर पढ़ें, उनमें से एक सुनिए:—

पायो जी, मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सत गुरु किरपा करि अपनायो। जनम जनम की पूंजी पाई जगमें सभी खुवायो।

पायो जी ...

खरचै नहिं कोई चोर ने लेवै दिन २ बढ़त सवायो। सतकी नाव खेवटिया सत गुरु भवसागर तर आयो। "मीरा"के प्रभु गिरिधर नागर हरखि हरखि जस गायो॥ पायो जी...

सहजो बाई

सहजो बाई भी एक भक्त कवि थीं; यह राजपूताने की एक प्रतिष्ठित स्त्री थीं, इनकी कविता बड़ी मधुर और मार्मिक है। उनके कुछ दोहे सुनिए:—

ना सुख दाता सुत महल ना सुत भूप भये।
साधु सुखी सहजो कहै तृष्णा रोग गये॥

साधु वृक्ष वानी कली चर्चा फूले फूल।
सहजो संगत बाग में नाना फल रहे झूल॥

सहजो बाई थीं धनाढ्य कुल की स्त्री, पर उन्होंने गरीबी को सब से बढ़कर समझा था वे लिखती हैं कि:—

भली गरीबी नवनता सके न कोई मार।
सहजो रुई कपास की काटै न तरवार॥

दयाबाई

यह भी सहजो बाई की गुरुबहिन थी।

इन का शरीर भक्ति रस का पान करते हुए दिल्ली में ही समाप्त हुआ। जिनको इनकी कविता का आनन्द लेना हो वे इन के दया-बोध नामक ग्रन्थ को देखें, उस में कवित्त भी हैं।

दया कुंवरि या जगत में नहीं रह्यो थिरकोय।
जैसे वास सराय को तैसो यह जग होय॥
जो पग धरत सो दृढ़ धरत पग पाछे नहि देत।
अहंकार कूं मार कर राम रूप जस लेत॥

इन स्त्रियों का वृत्तान्त देने की यहां क्या आवश्यकता थी? मैं समझता हूँ कि विशुद्ध स्नेह भगवान के अतिरिक्त किसी से नहीं हो सकता। प्रभु से प्रीति लगाना हमारा ध्येय होना चाहिये, यहां अन्य भक्तों की चर्चा नहीं की गई केवल तीन प्रसिद्ध स्त्रियों की चर्चा की गई है, इन को पढ़ कर अगर पाठिकाओं में से किसी का ध्यान भी इन स्त्रियों के यशोगान की तरफ लगा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

कन्या गुरुकुल समाचार

मथुरा की यात्रा

कन्या गुरुकुल की सभी छात्रायें और अध्यापिकायें शताब्दि महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये मथुरा पधारी थीं, और वहां पर महाशय बिहारी लाल जी असिस्टैन्ट इन्जीनियर के घर पर ठहरी थीं। उक्त महाशय जी ने ही उनके भोजन आदि का सारा प्रबन्ध अपने पास से एक सप्ताह तक बड़े प्रेम से किया था जिसके लिये कुल वासी उनके बड़े कृतज्ञ हैं।

स्वास्थ्य

मथुरा से वापस आते समय कुछ कन्यायें तथा अध्यापिकायें ज्वर ग्रस्त होगईं थी किंतु परमात्मा की दया से सभी निरोग हो गईं। केवल अध्यापिका राजकुमारी जी अभी तक पूर्णतया स्वस्थ नहीं हुई हैं, तथापि उनका स्वास्थ दिन प्रति दिन उन्नत हो रहा है। अधिष्ठात्री श्रीमती राधारानी जी भी अभी तक अस्वस्थ हैं। आप जब से देहरादून गई थीं तभी से प्रायः रुग्ण रहने लगी हैं। गत सप्ताह उन्हें फिर ज्वर हो गयाथा, अब वह स्वस्थ हैं।

शताब्दिमहोत्सव पर कन्याओं का प्रवेश

कुछ महाशयों ने शताब्दि महोत्सव पर कन्याओं को प्रविष्ट कराने की आज्ञा प्राप्त करली थी, और कुछ प्रार्थना पत्र सभा के विचाराधीन थे जिनका निर्णय उन्हीं दिनों हुआ था। उन में से बहुत सी कन्यायें आ गई हैं परन्तु कई संरक्षकों ने अभी भी कन्यायें नहीं भेजी हैं। यदि उन्हों नें सभा की स्वीकृति से लाभ उठाना है तो इस मास के अन्त तक कन्यायें ले आवें, वरना उसके वाद कोई कन्या प्रविष्ट न हो सकेगी।

आवश्यक्ता

कन्या गुरुकुल विद्यालय के लिये ऐसी आर्य देवियों की आवश्यक्ता है जो कि

कार्य्य में निपुण, देशानुरागनी और परिश्रमी हों तथा जो दत्तचित्त होकर केवल इसी कार्य्य में लग सकें, दो देवियां सीनियर ट्रेन्ड हो जिनको आर्य्य भाषा का ज्ञान बहुत उत्तम हों। एक संस्कृत अध्यापिका की आवश्यकता है जोकि व्याकरण और साहित्य में कम से कम मध्यमा उत्तीर्ण अवश्य हो। शास्त्री या आचार्य्य पास हो तो अधिक उत्तम है। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। पत्र व्यवहार सार्टिफिकेट सहित शीघ्र करना चाहिये।

" यशका "

लेखक— श्री निरंजन नाथ जी

कष्टमय शैशव रूस देश में मास्को से लगभग २०० मील उत्तर की ओर की "नवग्रोद" प्रान्त में एक ग्राम "निकालस्को" है वहां १८८९ में एक ऐसे घराने में तीसरी बालिका ने जन्म लिया जो अन्न वस्त्रादिके लिये तरसा करते थे! सूर्य्य देव के उदय से अस्त तक काम करने पर भी सारा परिवार पेट नहीं भर सकता था। तिस पर भी गृहपति को मदिरा पान की लत लग गई और प्रायः अपनी स्त्री को पीटा करता। यह लड़की जब ८॥ वर्ष की हुई तो एक छोटे बालक की सेविका बनाई गई। मगर इस जीवन से यह इतनी दुखित हुई कि एक बार डूब मरने को तय्यार होगई। ११ वर्ष की आयु होने पर यह एक अन्नादि बेचने वाली यहूदिन के पास काम करने लगी। इस दुकान पर चीनी के पैकट आया करते थे। एक दिन एक पैकट में से एक डली फालतू निकली। जिसे लड़की घर में लेगई। मगर दूसरे दिन जब तक अपना अपराध अपनी स्वामिनी से स्वयंम् नहीं कह दिया तब तक इस का मन अशान्त और कलेजा धक धक करता रहा। निरन्तर कर्याधिक्य से इसके मन में यह उमंग उठा करती कि कोई दिन ऐसा भी मेरे भाग्य में होगा। जब मैं निश्चिन्त रूप से लम्बी तान कर सो सकूंगी। कुछ भी हो इससे वह सब कामों में दक्ष तो होगई।

विवाह—१५॥ वर्षकी आयु होगई। दिन भर अत्यन्त परिश्रम करने पर जो प्राप्त होता वह दरिद्र माता पिता और उन के परिवार के काम आता। एक दिन शराबी बाप ने इसे भी मार मार कर मृतप्राय कर दिया। जब इस को अपनी विवाहिता बहिन के पास जाने का अवसर मिला तो इसने अपना विवाह कर लिया। पति का नाम अफांन्सी बोचकरवि था। था वह एक गंवार और पहलवान सा। मगर यह भी एक गंवार लड़की थी। इस को अपने संकटों और झंझटों का यही एक इलाज सूझा। मगर वह निकला नित्य मदिरा पान करता और अपनी स्त्री को भी पीने के वास्ते बाध्य करता। यह इंकार करती और वह बोतल लेकर छाती पर सवार हो जाता। हर घड़ी कलह और क्लेश रहता। इसकी बहिन "वारनौल," चली गई थी। वहाँ "पास" के बिना जाने की आज्ञा नहीं थी। यह माता का "पास" लेकर भाग गई।

मार्ग में पकड़ी गई। सीधी गंवार लड़की अधिकारी के पीछे २ होली । उस मान मर्यादा के रक्षक ने इसके सतीत्व को···आखिर बेचारी बहिन के पास पहुंच जहाज पर मजूरी करने लगी। एक दिन धूर्त अफान्सी पता लगाने वहाँ आ निकला। उसी से पिंड छुड़ा कर भागी थी, अब क्या करे ? समुद्र में कूद पड़ी ! जल से निकाल हस्पताल में लाई गई। कुछ दिनों पीछे स्वस्थ होगई और अफान्सी अपने अपराधों को स्वीकार कर क्षमा मांग उसे साथ लेगया।

मगर चिरस्थाई स्वभाव अमिट होजाता है, फिरवही मारपीट होने लगी। वह बेचारी जो कमाती वह शराब की भेंट कर देता और क्रूरता भी करता। जब २ यह भागने का यत्न करती अफान्सी को पता चल जाता वह उसकी खूब गत बनाता। वर्ष भर पेट, पर पत्थर बांध कर कुछ रुपया इसने जमा किया, अफान्सी को पता चल गया। निकाल कर शराब में उड़ा दिया। इस पर इसे इतना क्रोध आया कि कुल्हाड़ी ले उसे मार डालने को तैयार होगई। मगर योगसे इस का पिता आगया, बात कोतवाल तक पहुंची । वह भला आदमी था उसने इसका नगर छोड़ने की सलाह दी। इसकी बहिन "इसकूटस्क" चली गई थी। उसके पास जाने के वास्ते गाड़ी में बैठ गई। टिकट पास नहीं था। एक गार्ड ने देख लिया। वह अपनी शर्त पर क्षमा करना चाहता था। मगर वह टिकट के बदले अपने आप को बेचना नहीं चाहती थी गाड़ी से उतर गई। अन्त में एक वृद्ध गार्ड की सहायता से "इसकूटस्क में" पहुंच गई। सुख की मात्रा--मेरिया वोचकरीवा बहिन के पास तो पहुंच गई मगर वह दम्पति वृत्ति हीन थे, आतिथ्य उनके वास्ते सुखद नहीं था। इस वास्ते दूसरे ही दिन काम ढूंढ निकाला। कठिन परिश्रम करके उसने काम में श्रमजीवी मर्दों को भी मात कर दिया। मगर शरीर ने साथ न दिया। रुग्ण होगई। दो सप्ताह पीछे रोग हटा तो काम भी बन्द हो गया। दूसरे काम की तलाश में उसे एक ऐसी स्वामिनी से वास्ता पड़ा जोकि निर्लज्ज स्त्रियों द्वारा पापी पेट की पूजा करती थी । उसके वास्ते यह दृश्य अनोखा था और भयानकभी। आंखों के आगे अंधेरा छा गया। अंगारे की न्याई लाल हो गई। कपड़े फाड़ डाले। इधर उधर पड़ी चीजों को उलट पलट कर मारा, मुख में जो आया बक दिया और चीखती चाखती एक मोटी चादर ओढ़ निकल भागी। पुलिस की शरण ली। वहां भी कुछ न बना भटकती भूखों मरती। नदी किनारे प्रभु से प्रार्थना करने लगी अन्त को उसी स्त्री के पास जाकर यूं कहने लगी-"ईश्वर के वास्ते गुरु गरीब को परिचारिका रखलो।" मगर वह पूर्ववत पुचकारने लगी। अब इसने एक कमरे में घुस कर किवाड़ बन्द कर लिये । और अपने साथ बिष की बोतल ले गई थी वह खाने लगी कि चारों ओर शोर मच गया और उसको बाहिर निकाला गया। एक आदमी जो उसकी सरलता और सादगी की प्रशंसा करता था उसको घर ले गया। इस घराने के सब नर नारी उस से हित करने लगे और उसने कुछ दिन सुख से व्यतीत किये। देश काल की व्यवस्थानुसार उसने उस पुरुष से चादर डाल ली अर्थात् विवाह कर लिया।

यशः था तो भले घर का लड़का। पिता धनाढ्य था । मगर संसार की गति ! धन भी खो बैठा और कुसंगति में भी पड़ गया । उसका नाम विद्रोही सूची में लिखा जा चुका था। प्रायः अपराधी

उसके पास आते और यह उनकी शक्त्यानुसार अवश्य सहायता करता। इस बेचारी ने अभी थोड़े दिन सुख से काटे थे कि यशः को एक अपराधी की सहायता के निमित्त उसका साथ देना पड़ा। इसके चले जाने पर बोच करीवा की जान के लाले पड़ गये। बड़ी कठिनता और वीरता से उसने अपनी जान छुड़ाई। अब उसको पता लगा कि उसका पति जेल में भेजा गया है। स्थान २ पर भटकने और नाना प्रकार के कष्ट झेलने के पश्चात उसने पता लगाया और १०२२ में जाकर उसे मिली। पति को देश निकाला होना था। इसने भी स्वेच्छा से अपराधियों में नाम लिखा कर देश निकाले के वास्ते आज्ञा प्राप्त करली ताकि पति के साथ साथ रह सके। स्वेच्छा से जेल में चली तो गई मगर अन्य साथिन अपराधिनों ने जो दुर्गति की वह वही जानती थी! दो मास उसको दो वर्ष हो गये।

देश निकाला का मार्ग—अपराधियों को चीना के श्रोत के निकट कचागु में ११३ मील की यात्रा करके जाना था। मार्ग बड़ा विकट। शरदी का प्रकोप, वर्षा की बौछाड़, कीचड़ का बाहुल्य, विश्राम स्थानों का अभाव, सभी उनको झेलना पड़ा। याकुटस्क में पहुंच कर यशा का वहां से ७ मील की दूरी पर भेजने की आज्ञा हुई। यह स्थान हिम से ढंपा रहता था। इस आपत्ति से बचने के वास्ते यशा के कहने सुनने पर बो चकरीवा वहां के अध्यक्ष के पास प्रार्थना करने गई कि अगर मेरे पति का यहां रहने की आज्ञा दी जावे और कुछ सरकारी रुपया दिया जावे तो हम लोग एक अच्छी कसाई की दुकान खोल सकते हैं जिससे प्रजा और सरकार दोनों को सुख रहेगा। अध्यक्ष ने कुछ सहारा तो दिया मगर उसकी चित्तवृति में दुष्टता का अनुमान कर यह वापिस आ गई। और यशः से कह दिया कि वह नहीं मानता। वह जानता था अध्यक्ष दयावान है और स्त्रियों का कहना अवश्य मान जाया करता है। यशा ने बलात्कार उसे फिर वहां भेजा। अध्यक्ष ने उसका स्वागत किया। उसको सहायता का आश्वासन दिया और बड़े आग्रह, हठ और बल से उसे मदिरा पिला दी और इतनी पिलाई कि वह अशक हो गई। प्रातः जब उसकी आंख खुली तो अध्यक्ष की दुष्टता का भान हुआ। वहां से भाग निकली और घर जाने से पूर्व विष लेती गई। विष पान कर लिया। मगर प्राण पखेरुओं ने उस के पिंजड़े को न छोड़ा। जब आँख खुली तो स्वर्ग के स्थान में हस्पताल और देवताओं के स्थान में यशा और एक धाया दृष्टिगोचर हुवे। स्वस्थ हो गई किसी को कुछ पता न चला। यशा को सरकारी पैसा मिल गया, दुकान खुल गई और खूब चलने लगी। एक दिन दयावान अध्यक्ष भी दुकान देखने आया। यशा ने उसका खूब आदर किया मगर बोचकरीवा ने उसकी ओर दृष्टिपात न किया। यशा को बुरा लगा कि जिस अध्यक्ष ने आपत्ति से बचाया और इतनी सहायता दी उस का इतना अनादर! बोचकरीवा नहीं बताना चाहती थी कि यह सौदा उनको कितना महंगा पड़ा। अन्त में जब उसे अत्यन्त बाध्य किया गया तो भांडा फोड़ना पड़ा। मगर बस फिर क्या था। यशा का रुधिर उबलने लगा वह अध्यक्ष को गोली मारने के वास्ते निकल पड़ा। मगर पकडा गया और उसे याकुटस्क में १३० मील पर उमगा में भेजने की आज्ञा हुई। १९१४ की ईस्टर में २४ घंटों के अन्दर २ दुकान बन्द करदी।

विचार प्रवाह

हिन्दू मुसलिम ऐक्य ।

यह सभी स्वीकार करते हैं कि हिंदू मुसलिम ऐक्य के बिना स्वराज्य प्राप्ति असम्भव है। इन्हीं कारणों से मुम्बई में सर्व दलों की जो कांफ्रेंस हुई थी उसमें भी यह प्रश्न उठाया गया था। जिस कमेटीने इस प्रश्न का निर्णय करना था उसका अधिवेशन देहली में बुलाया गया किन्तु बहुत थोड़े सभ्य उपस्थित हुए और निर्णय कोई न हो सका। यह मानना पड़ेगा कि इस समय न तो हिंदू ही ऐक्य के लिये उत्सुक हैं न मुसलमान। हिंदुओं का तो यह कहना है कि प्रजातन्त्र राज्य का मूलतन्त्र बहुपक्ष का राज्य है किंतु भारतवर्ष में ऐक्य का मूल्य यह माना जाता है कि बहुपक्ष के बल को घटाया जावे।

लखनऊ का सन्धि पत्र क्या था? मुम्बई के प्रांत में मुसलमानों की आबादी १९.७४ प्रति शतक थी किंतु कौंसिलों में उन को ३३ प्रति शतक स्थान मिल गये, मध्य प्रदेश में ४.०५ प्रतिशतक जन संख्या होते हुए उन को १५ प्रति शतक स्थान मिले, ब्रह्मा में १० प्र० श० जनसंख्या है किन्तु स्थान २.२ प्र० श० मिले। संयुक्त प्रान्त में १४.२८ प्र० श० जन संख्या है किंतु स्थान २५ प्र० श० मिले, मद्रास में जन संख्या ६.७१ प्र० श० है किंतु स्थान १५ प्र० श० मिले इसके बदले पंजाब में गैर मुसलिम प्रजा को ४५ प्र० श० जन संख्या के होते हुये ५० प्रति शतक स्थान प्राप्त हुए और बंगाल में ४८ प्रति शतक जन संख्या के होते हुए ६० प्र० श० स्थान मिले। उस समय भी हिन्दू नेता समझते थे कि हिंदुओं के साथ अन्याय हुआ और निष्पक्ष नेताओं की सम्मति थी कि राजनीति के क्षेत्र में मत का प्रवेश हानिकारक होगा। उन की समझ में न आता था कि एक नियम बनाने में हिंदूपन और इसलाम का क्या सम्बन्ध है। नाही उनको कोई यह बतला सकता था कि मुसलमानों का हिंदुओं से अतिरिक्त कोई नया पोलिटिकल प्रोग्राम बन सकता है। जितने भी पोलिटिकल दल इस समय दीखते हैं उनमें हिंदू भी हैं, और मुसलमान भी हैं। मुसलिम लीग यह तो प्रस्ताव पास कर देती है कि मुसलमानों को विशेष अधिकार दिये जावें किंतु उसके किन्हीं प्रस्तावों से यह नहीं टपकता कि उन विशेष अधिकारों को प्राप्त करके वह देश का क्या विशेष उपकार करेंगे।

सारे देश में मुसलमान $\frac{1}{3}$ के लगभग हैं और ग़ैर मुसलिम $\frac{2}{3}$। बंगाल और पंजाब में मुसलिम ग़ैर मुसलिमों से कुछ अधिक हैं किंतु उनका थोड़ा सा आधिक्य शेष प्रान्तों में उनकी बहुत ही अधिक न्यूनता को पूरा नहीं कर सकता। जब तक तलवार से दबा न दिये जावें ग़ैर मुसलिम यह कभी स्वीकार न करेंगे कि जहां मुसलमान बहुत थोड़े हैं वहां उनको अधिकार जन संख्या के अनुमान की अपेक्षा बहुत अधिक दे दिये जावें और जहां जनसंख्या में उनका थोड़ा सा भी आधिक्य है वहां उसको स्वीकार कर लिया जावे। इसलिये हिंदू निराश हैं और ऐक्य के लिये उत्सुक नहीं हैं।

जब लखनऊ की सन्धि होने वाली थी तो मिस्टर जिनाह और मिस्टर मज़हरउलहक़ हिंदुओं को अपना बड़ा भाई कहते थे और

उनकी उदारता को अपील करते थे। किंतु अब नकशा बदल गया है। मिस्टर जिन्नाह ही लखनऊ सन्धि के विरुद्ध हो गये हैं और दूसरे मुसलमान नेता हिंदुओं को अत्याचारी बतलाते हैं और स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कोहाट उत्पात में हिंदुओं के साथ जो अमानुषीय और पाशविक व्यवहार हुआ है वह निरन्तर होता रहेगा जब तक कि मुसलमानों को जो कुछ वह मांगते हैं वह सब कुछ दे न दिया जावे। कोई आत्म-सन्मान रखने वाली जाति धमकी से अपने अधिकार और न्याय संगत अधिकार नहीं छोड़ सकती। यह भी एक कारण है कि हिंदू ऐक्य के लिये बात चीत निरर्थक समझते हैं।

लखनऊ सन्धि के पीछे कुछ नये विवादास्पद प्रश्न भी उपस्थित हुए हैं। हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान अधिक संघटित हैं। अपने संगठन को देश के हित के लिये तो उन्होंने कभी भी प्रयुक्त नहीं किया किंतु उस संगठन के कारण हिंदुओं को कई बार कष्ट उठाना पड़ा है। चाहिये तो यह था कि ७ करोड़ का संगठन भारत को स्वराज्य दिलाने में सहायक होता किंतु है यह कि उस संगठन का सारा बल केवल असंगठित हिंदुओं के धन और उनकी देवियों के सतीत्व को हरने में लगा। यद्यपि हम यह नहीं कहते कि शरीफ़ मुसलमान चाहते हैं कि ऐसा हो किंतु यह अवश्य है कि उस संगठन की बागडोर कहीं गुण्डों के हाथ में है और कहीं मतवादी जनूनियों के हाथ में। शरीफ़ मुसलमान अपने आप को असमर्थ पाते हैं और इतना असीम बल उनके अन्दर नहीं कि गुण्डों और मतवादी ज़नूनियों का निर्भीकता से विरोध कर सकें। इन अवस्थाओं को देखकर हिंदुओं ने आत्मरक्षा के लिये अपने संगठन का कार्य आरम्भ कर दिया है। मुसलमान इसको पसन्द नहीं करते, निरपेक्ष नेता भी समझते हैं कि ऐक्य की आशा अब बहुत देर के लिये नहीं क्योंकि संगठित हिंदू संगठित मुसलमानों से दबेंगे बिलकुल नहीं, इसलिये झगड़ोंके निर्णय होने में अब आगे से भी अधिक देरी होगी। किंतु इसका कोई इलाज नहीं।

इसका इलाज तभी हो सकता है जब मुसलिम संगठन और हिन्दू संगठन दोनों का ख़ातमा कर दिया जावे और उनके स्थान में भारतीय संगठन की बुनियाद रखी जावे। किंतु ऐसा होना असम्भव है जबतक कि मुसलमानी मत में इसलाम की बिरादरी पर जो जोर दिया जाता है उसको कम किया जावे और मुसलमानों की समझ में यह आजावे कि ग़ैर मुसलिम भी खुदा के बन्दे और उनके भाई हैं। अब तो वह यह समझते हैं कि ग़ैर मुसलिम क़ाफ़िर हैं और यदि खुदा के साथ उनका कोई सम्बन्ध मानना ही पड़े तो वह अधिक से अधिक सौतेले बेटों का सम्बन्ध है।

एक और परिवर्तन भी देश में हुआ है। लखनऊ की सन्धि के समय में मुसलमान खुलमखुला हिंदुओं को अपने मत में लाते थे और साधारण हिंदू उन अपने भाइयों को प्रायश्चित करने पर भी न लौटाते थे। केवल आर्यसमाज इस काम को करता था किंतु उस समय के आर्य समाजी भी जात पात के बन्धनों में इतने जकड़े हुए थे कि शुद्धि मुसलमानों के लिए कोई ख़तरा न थी। अब हिंदुओं के होश ठिकाने आने लगे हैं और उन्होंने सहस्रों मलकानों को— जो कई शताब्दियों से मुसलमान थे बिरादरियों में मिला लिया है। यद्यपि हिंदुओं ने यह काम पूरे दिल से नहीं किया और इस कार्य में भी मुख्य भाग आर्य समा-

जियों का है तथापि धर्म जनूनी मुसलमान समझते हैं कि आगे के लिये हिन्दुओं को निरन्तर और बे खटके मुसलिम बनाने का कार्य निर्विघ्न रूप से न होगा।

अब कतिपय मुसलिम नेता न केवल शुद्धि का विरोध ही करते हैं, किन्तु यह भी सुनाते हैं कि इसलाम की शरियत में मुरतिद अर्थात् उस मुसलमान के लिये जो इसलाम को त्याग दे केवल एकही दंड है और वह यह कि उस को कतल कर दिया जावे। इस कतल की धमकी को सुन कर हिन्दू लोग और भड़कते हैं और ऐक्य उनको असम्भव दीखता है। हिन्दुओं के त्रास को मिटाने के स्थान में कई मुसलमान नेता उसको बढ़ाने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। सुना है कि एक बड़े मुसलिम नेता ने जिसको बड़ा निर्पक्ष समझा जाता है प्राइवेट बातचीत में कहा कि स्वराज्य मिल जाने पर तो अटक के पार का राज्य मुसलमानों को देना होगा एक और मुसलिम नेता ने कहा कि मुसलमानों के साथ हिन्दुओं की सन्धि तब रह सकती है जब जिस प्रांत में मुसलमानोंकी जन संख्या ४'०५ प्रति शतक है वहां भी उनको ३५ प्रति शतक स्थान दिये जावें और जहां उनकी जन संख्या ५५'३३ प्रति शतक है वहां वह ६५ प्रति शतक स्थान प्राप्त कर लें।

मुसलमान समझते हैं कि हिन्दू इन शर्तों पर सन्धि तीन काल में न करेंगे। वह यह भी जानते हैं कि फिसाद और दंगे से भी हिन्दू अब इतना नहीं डरते जितना पहिले डरते थे। वह यह भी जानते हैं कि असहयोग के आन्दोलन ने नौकर शाही के स्वार्थों को बड़ा धक्का पहुंचाया है। नौकर शाही बहुत तंग है और येन केन प्रकारेण अपने अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहती है। इस लिये बहुत से मुसलमानों का झुकाव अपनी अन्याय युक्त शर्तोंको नौकर शाही से सौदा करके मनवाने की ओर है। देश की स्वतन्त्रता चाहे पीछे पड़ जावे किन्तु मुसलमानों को कुछ नौकरियां अधिक अवश्य मिल जावें।

इन अवस्थाओं में ऐक्य का होना असम्भव देखकर ऐक्य कमेटी ने भी आशा छोड़ दी है और महात्मा गांधी भी सोच में पड़ गये हैं। शायद अपने जीवन में पहली बार उन को भी सन्देह हुआ है कि मुसलमान खिलाफत की प्राप्ति के समय चाहे उनकी कितनी ही खुशामद करते थे किंतु वह उन को अपना नेता केवल इसी शर्त पर मानने को तैयार हैं कि नामधारी नेता तो वह रहें किन्तु नेतृत्व का वास्तविक कार्य मौलाना लोग करें।

दयानन्द जन्म शताब्दी।

दयानन्द जन्म शताब्दी का महोत्सव मथुरा में अपूर्व समारोह से समाप्त हुआ। डेढ़ लाख के लगभग नर नारी इकठे हुये ब्रिटिश राज्य के इतिहास में यह पहिला ही अवसर है जब कि शिक्षित लोग एक स्थान में इतने इकठे हुये हों। जनता का धार्मिक उत्साह दर्शनीय था। शताब्दी महोत्सव ने बतला दिया कि आर्य्य प्रजा में भगवान दयानन्द के लिये भक्ति का भाव कितना गहरा और कितना विस्तृत है!

इस ऐतिहासिक अवसर पर देश के सभी हिंदू नेताओं ने दयानन्द के चरणों पर श्रद्धा और भक्ति के पुष्प चढ़ाये—श्रीयुत अरविंद घोष, श्रीयुत केलकर, श्रीयुत सावरकर, श्रीयुत सर्वाधिकारी, श्रीयुत रङ्गा आयर, श्रीयुत पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास श्रीयुत नातरञ्जन, श्रीयुत रामानन्द चटरजी सभी कुछ न कुछ बोले। किन्तु इस ऐति-

हासिक घटना को केवल दो महा पुरुषों ने उपेक्षा की दृष्टि से देखा—एक तो भारत के नेता महात्मा गांधी ने और दूसरे हिंदू संगठन के देवता पं० मालवीय ने। इस उपेक्षा के कारण क्या ? कई कम समझ लोग कहते हैं कि मालवीय जी काशी के पण्डितों से घबराते थे और गांधीजी मौलानों से। अस्तु कारण कुछ ही हों किन्तु इन दोनों महानुभावों की इस चूक ने आर्य जनता के हृदयों को ठेस लगाई है।

विदेश-प्रचार-निधि

परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद है कि जिस कार्य को भगवान दयानन्द अपने जीवन काल में करना चाहते थे और न कर सके उसको करने के खयाल उनके अनुयायियों को उनके निर्वाण के ५० वर्ष पीछे आतो गया। भगवान ने परोपकारिणी सभा की स्थापना इसलिये की थी कि देश देशान्तर और द्वीप दीपान्तर में अनादि वेद का पवित्र संदेश पहुंचाया जावे। महर्षि ने स्वयं भी इंगलिश पढने का अभ्यास आरम्भ किया था किन्तु शीघ्र ही विधाता उनको संसार से उठाकर ले गया। इसलिए दिल की दिल में रही। शताब्दी महोत्सव पर विदेश प्रचार और साहित्य मण्डल के लिये अपील की गई एक लाख के ऊपर चन्दा लिखा गया जिस में से ६०,००० के करीब नकद प्राप्त हो गया है। हम आशा करते हैं कि श्रीमती सार्वदेशिक सभा शीघ्र ही विदेश प्रचार के कार्य को आरम्भ करेगी।

आर्य्यपरिषद्

शताब्दी महोत्सव के उत्सव केसाथ शताब्दी कमेटीने आर्य्यपरिषद् का होना भी निश्चय किया था, इस महोत्सव के मौके पर आर्यपरिषद् ने भी वही कार्य करना था जो कि बौद्ध कौंसिलों ने किया था; उन कौंसिलों ने बौद्ध धर्म के अनिश्चित सिद्धान्तोंको पूर्णरूप से निश्चित किया; भिक्षुकों के सङ्गठन को भली भांति मज़बूत किया था। और भी बौद्ध का धर्म प्रचार कैसे किया जाय इस पर विचार किया था। अब आप शायद इस उत्सुकता में होंगे कि जिस आर्यपरिषद् के फ़ैसलों की आर्यजनता तृषित नेत्रों से प्रतीक्षा कर रही थी उसने क्या किया ? पहिले तो किसी को यह भी ज्ञात नहीं था कि आर्य परिषद् में किन लोगों ने जाना है. कुछ लोग तो वहां वह ऐसे उपस्थित थे जो कि विद्वान् थे, और कुछ वह लोग जो समाज में काम करने वाले थे। और शेष व्यक्ति जो थे वह कौन थे, यह तो न प्रधान महाशय को ही ज्ञात था और न स्वयं उन सज्जनोंको ही कि हम कौन हैं ? परन्तु वह थे अवश्य।

हमें इसबात का हार्दिक शोक है कि हम आर्य परिषद् से जो २ आशाएं लेकर बैठे हुए थे, वह एक दम निराशा के रूप में परिणत होगई। पूर्व तो जो प्रधान महाशय की वक्तृता थी जिस ने लोगों के दिलों के विचार बदलने थे; उसने ही उलटा कांटे बो दिये। वक्तृता में दो चार शब्द ऐसे भी थे जो कि बिलकुल ही अनुचित थे। आर्यपरिषद् भी इस मौके पर एक ऐतिहासिक ही घटना थी। जो हमारी संततियां आगे इस वक्तृता को पढ़ेंगी उनके दिल पर क्या प्रभाव बैठेगा ? परिषद में जो भी प्रस्ताव पास हुए वह बिलकुल ही साधारण थे। जो एक प्रस्ताव आयपरिषद् पेश करता था वह कुछ लोगों ने होने ही नहीं दिया; वह था "सदाचार का लक्षण"। यदि केवल वह इतना ही निश्चय कर लेते कि जो मांसाहारी हो वह आर्यसमाज का सभासद न हो तो भी

बहुत लाभ होता; परन्तु बड़ा खेद है कि आर्य परिषद ने कुछ भी न किया और आर्य जनता की आशाओं को एक दम दुराशा के रूप में परिणत कर उस पर पानी फेर दिया।

आर्य सम्मेलन

शताब्दी महोत्सव पर एक आर्य्यसम्मेलन भी हुआ, जिसमें कतिपय प्रस्ताव पास हुए। स्वामी जी ने जो प्रजात्मक राज्य स्थापित किया था उसकी साक्षात साक्षी आर्य्य जनता स्वयं दे रही थी, और स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश इत्यादि ग्रन्थ आर्य्य भाषा में लिख कर जो बुद्धिमत्ता की थी कि प्रत्येक आर्य्य नर नारी उस को पढ़ कर आर्य्य सिद्धान्तों को भली भांति समझ सके। उसका साक्षात प्रमाण आर्य जनता का उमड़ा हुआ उत्साह ही दे रहा था। आर्य्यजनता के उमड़े हुए उत्साह को और चेहरों की रौनक देख कर हृदय फूला नहीं समाता था, ऐसा ज्ञात होता था कि महर्षि दयानन्द की आत्मा वहां साक्षात उपस्थित है और लोगों को वैदिक सन्देश सुना रही है। आर्यसमाज के भले के लिये कई प्रस्ताव पेश किये गये, जो लोग प्लेटफार्म पर बैठे हुए थे, उन में से कुछ जो कि अपने आप को विद्वान् भी समझते थे, विरोध भी करते थे, परन्तु आर्य जनता एक साथ नवीन उमड़े हुए उत्साह से उन को पास कराने का यत्न करती थी। एक "स्वयम्वर" को ही लीजिये; कई एक सज्जन विरोध में भी बोले; परन्तु आर्यजनता के उत्साह ने आगे नहीं बढ़ने दिया। चाहे कुछ भी हो आर्यप्रजा का उत्साह प्रशंसनीय था, एक वार उस की प्रशंसा किये विना हम नहीं रह सकते, जिसने एक वार अपनी आंखों से वह दृश्य देखा बस उसीने ही समझा कि क्या था। आर्य्यसमाज का सङ्गठन ऋषि ने ऐसा बनाया है कि आर्यसमाज की जनता सुगमता से पण्डों और पुरोहितों पर अन्ध विश्वास नहीं कर सकते और न ही कोई मनुष्य जनता को ऋषि के बतलाये हुए अटल सिद्धान्तों से विचलित कर सकता है।

जलूस

शताब्दी की यात्रा समाप्त हुई, शताब्दी महोत्सव में उपदेश हुए, व्याख्यान हुए, सब कुछ हुआ परन्तु जिसने १७ ता० वाला जुलूस नहीं देखा मानों उसकी शताब्दी की यात्रा सफल ही नहीं हुई, । १७ ता० को दोपहर के दो बजे यह दो लाख आदमियों का जुलूस मुख्य पण्डाल से निकल कर मथुरा शहर में श्री गुरू विरजानन्द जी की कुटी के आगे से दयानन्द का नाम गूंजाता हुआ, उन गलियों में वैदिक सन्देश सुनाता हुआ गुज़रा। ओ हो! लेखनी में तो इतनी शक्ति नहीं जो उस आनन्द का और उत्साह का वर्णन कर सके! जिस ने देखा, वस उसका ही दिल जाने। लेखनीमें क्या, जिह्वा में भी इतनी शक्ति नहीं। हमने आज तक भी इतना भारी जुलूस नहीं देखा। सब से आगे संन्यासियों की मण्डलियां अपना भगवावेष धारण किये हुए ऋषि का गुण गान करती हुई जा रही थीं; दीक्षा वेष में गुरुकुल के स्नातक, पीले वस्त्रों में गुरुकुलों के ब्रह्मचारी और कन्या गुरुकुल, कन्या महाविद्यालय की ब्रह्मचारिणियां, बीच २ में भजन मण्डलियां और पीछे देवियां जिन के दोनों ओर स्वयं सेवकों ने अपने अपने बाहुओं को लम्बाकर सीमा बना दी थी--ऋषि की जयकार और जयध्वनि से मथुरावासियों को स्वामी दयानन्द का सन्देश सुना रही थीं। कई एक आदमियों ने एक स्थान पर खड़े होकर घड़ी द्वारा अन्दाजा लगाया कि जुलूस को एक स्थान से गुज़रने में लगभग १॥ घण्टा लगा, जुलूस करीब ५ मील लम्बा था। उस दिन

तो ऐसा ज्ञात होता था कि बस स्वामी दयानन्द जी स्वयम् ही आर्य्यजनता के सामने सन्देश सुना रहे हैं। जुलूस जब मथुरा नगरी में पहुंचा तो स्त्रियां और पुरुष अपनी २ अट्टालिकाओं पर सहस्रों की संख्या में बैठे हुए जयघोष का नाद कर कर रहे थे और कई एकों ने खीलों और पुष्पों की वर्षा भी की थी।

अनुमान से ही ज्ञात हो सकता है कि दो लाख से ऊपर आदमियों की भीड़ का दृश्य कैसा होगा, जिसने देखा उसने ही परमानन्द का अनुभव किया। गुरुकुलों के स्नातकों का उत्साह विशेष ही था, उस नवीन उमड़े हुए उत्साह से आर्य्य जनता को पता चल गया कि आर्य्यसमाज ने गुरुकुल में कैसे ऋषिभक्त उत्पन्न किये हैं? जिधर देखो उधर ही जयध्वनि स्वामी की जय २ कारोंसे आकाश गूंज रहा था, मथुरा नगरी के लोगों की जबान पर तो क्या लोगों की आत्मा से ही जयध्वनि की गूंज निकल रही थी। रजिस्टरों में समाजियों के चाहे कितने ही नाम दर्ज हों पर उस सङ्गठन से ज्ञात हो गया कि ऋषि का सन्देश पहुंचाने वाले कितने मनुष्य हैं। हमें विश्वास न था कि इतना बड़ा जुलूस निर्विघ्नता से समाप्त हो जायगा, पर लाखों आदमियों का जुलूस बिलकुल ही निर्विघ्नता से स्वामी जी की जयध्वनि से आकाश को गुंजाता हुआ उसी पण्डाल में आकर समाप्त हुआ।

श्री नारायण स्वामी जी

शताब्दी महोत्सव बड़ी निर्विघ्नता से समाप्त हुआ; इसका कारण क्या था? एक कारण तो था ही नहीं जो कहा जा सके असली कारण था ऋषिभक्ति- ऋषि का उपदेश, आर्य जनता का नवीन उत्साह सब संस्थाओं ने अपने २ आदमी भी भेजे। स्वयं सेवकों ने और प्रबन्धकों ने भी बड़ा कार्य किया। किसी एक का नाम भी नहीं लिया जा सकता, यदि लेना ही हो तो सब लोग एक स्वर से श्री नारायण स्वामी जी का ही नाम लेंगे।

श्री स्वामी नारायण स्वामी जी ने दो साल अनथक दिन रात परिश्रम करके शताब्दी को सफल बनाया, दिन रात एक करके निःस्वार्थ सेवा की, बड़े प्रेम से सब को निमन्त्रण दिया और सारा इतने बड़े महोत्सव का प्रबन्ध इनके कंधों पर ही था। इस का श्रेय श्री नारायण स्वामी जी को ही है यदि सारी आर्य जाति कृतज्ञता का प्रकाश न करती तो उनको अभिनन्दन पत्र (जोकि आर्य जनता की ओर से दिया गया है) देना उचित ही था। सारी आर्य जाति उनकी कृतज्ञ है।

एक दुर्घटना

सूर्य में भी कलङ्क होता है, चन्द्रमा में भी ग्रहण लगता है; गुलाब में भी कांटा होता है, इस कारण इतने बड़े महोत्सव का बिल्कुल निर्विघ्नता से समाप्त होना ज़रा कठिन ही था। महर्षि दयानन्द का जीवन तो बिल्कुल निष्कलङ्क ही था, उनकी जन्म शताब्दी मनाने में तो कोई गड़बड़ होनी ठीक न थी, परन्तु ऋषि का जन्म दिन मनाने वाले तो मनुष्य थे ही, उनसे कुछ थोड़ी सी गलती होना कोई हैरानी नहीं? महोत्सव के अंतिम दिन कुछ नवयुवकों की मूर्खता और पण्डों की असहिष्णुता से कुछ वैमनस्य होगया। सब लोग जानते हैं कि नवयुवकों का उत्तरदायित्व तो होता ही नहीं, और पण्डों में सहिष्णुता कम होती है। अतः केवल युवकों की मूर्खता और पण्डों की असहिष्णुता ही ने वैमनस्य फैला दिया इस बात से सारी आर्य जनता और आर्यसमाज के नेताओं को हार्दिक दुःख है और सब ने दुःख प्रकाशित कर भी दिया है। पं० मदनमोहन मालवीय जी ने भी लिख दिया है, इस झगड़े को आ-

र्य समाजियों और सनातनियों का झगड़ा न समझना चाहिये। हम मथुरा नगर के तथा सनातन भाइयों के बड़े कृतज्ञ हैं, अखबारों में बड़ी अत्युक्ति होती है। उसपर विश्वास नहीं होसक्ता। सब लोगों को अपनी स्मृति से इस कलङ्क को धो डालना चाहिये और उसी आनन्दमय दृश्य का ध्यान रखना चाहिये जो कि लाखों ने मथुरा में देखा था।

आवश्यक सूचना

एक मास और शेष है फिर ज्योति का पांचवां वर्ष समाप्त होजायगा और नये छठे वर्षका प्रारम्भ होगा। इन पांच वर्षों में ज्योति ने जो कुछ भी आर्य जनता की थोड़ी बहुत सेवा की है वह किसो से छिपी नहीं। ज्योति अपने मुख से अपना गुण गान कर अहंमानी नहीं बनना चाहती, किन्तु सत्य का प्रकाश होना ही चाहिये। वर्त्तमान समय के प्रायः सभी मासिक पत्रिकाओं और साप्ताहिक पत्रों के आज से पाँच वर्ष पूर्व के अंकों को पढ़िये और अब के अंकों से तुलना कीजिये पता लगेगा कि क्या भेद है? स्त्री संबंधी बातों के कालम तथा विज्ञान सम्बन्धी बातों के कालम अथवा कला कौशल संबन्धी लेख इत्यादि जो भिन्न २ नामों से आज प्रत्येक पत्र पत्रिकाओं में दीख पड़ते हैं यह विचार किसने दिया? पंजाब जैसे आर्यभाषा विहीन देश में गत ५ वर्ष से मृत प्रायः आर्य भाषा को जीवित करने में तथा वहां पर जो आज कई आर्यभाषा के उत्तमोत्तम मासिक व साप्ताहिक पत्र उत्पन्न हो गये हैं उनके लिये क्षेत्र किसने तैयार किया?

पंजाब के आर्य-भाषा साहित्य में यह पहिली ही उच्चकोटि की पत्रिका है जिसने अनेकों संकटों को सहन करते हुए, निरन्तर विघ्न बाधाओं को पराजित करके लगातार ५ वर्ष की सेवा की है। इस दशा में ज्योति के अविर्भाव होने का फल जो होना था वह हो गया। अब यह रहे या न रहे इसने पंजाब में आर्यभाषा की एक स्थायी स्थिति बना दी है।

परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। अभी तो इसके और कई उद्देश्य थे जो धनाभाव के कारण पूर्ण नहीं हो सके। ज्योति का यह बड़ा दुर्भाग्य है कि पहिले तो उसे लाहौर के प्रेसों से युद्ध करके अपने कलेवर को उपयुक्त रूप देने में परिश्रम करना पड़ा और जब वहां के प्रेस में उस की आकृति रूप रंग बनाने का ढरा निकल गया तो उसे दिल्ली में आना पड़ा जहां प्रेस की कठिनाइयां लाहौर से कहीं बढ़ कर हैं, और सुगमतायें कुछ भी नहीं। यहां पर ब्लाक भी उत्तम छपने का प्रबन्ध नहीं है। गत जून मास में कन्या गुरुकुल अंक के चित्रों के ब्लाक बड़ी मेहनत और व्यय से तैय्यार कराये गये किन्तु यहां पर छपने में गड़ बड़ रही अतः उनकी उपयोगिता ही नष्ट हो गई।

दूसरी बात यह है कि यहां दिल्ली की जनता में साहित्यिक रुचि भी बहुत कम है। प्रतीत होता है यहां के लोगों को धन कमाने की स्पर्धा ही लगी रहती है, विद्याभिरूचि बहुत कम है अतः यहां पर न तो ज्योति के कलेवर सुन्दर बनने में वृद्धि हुई है न ग्राहकों में।

इन असुविधाओं के रहते हुये भी ज्योति कन्या गुरुकुल की मुख्य पत्रिका बन कर अब सेवा कर रही है। यदि कन्या गुरुकुल के प्रेमी इसके ग्राहक बने और संरक्षक लोग नियम पूर्वक प्रतिमास गुरुकुल का हाल जानने के लिये उसके खरीदार बने और लोगों में इसका प्रचार करें तो शीघ्र

ही इसका घाटा दूर हो सकता है और फिर यह अपने अन्य उद्देश्यों की पूर्ति की तरफ झुक कर आर्य जनता के आगे और नये नये और उपयोगी ढांचे उपस्थित करके नवीनता की झलक दिखायेगी।

क्या हम आशा करें कि हमारे पुराने ग्राहकों में से प्रत्येक एक २ नया ग्राहक बना कर भेजेगा और हर एक संरक्षक जो इसके ग्राहक नहीं हैं उसे इस वर्षसे अवश्य मंगायेंगे। कलाकौमुदी छप रही है ज्योतिके पांच ग्राहक बनाकर चन्दा समेत उनके पते भेजने वाले सज्जन और देवियों को यह मुफ़्त में दी जावेगी। उनके नाम रजिस्टर में दर्ज रहेंगे पुस्तक तैयार होने पर भेजी जावेगी।

इस वर्ष ज्योति में कुछ उन्नति भी की जायगी जिसकी सूचना अगले अङ्क में दी जायगी। आशा है सब आर्य सज्जन और देवियां बहु संख्या में ग्राहक बनकर इसकी सहायता करके इसे अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल बनावेंगे।

———

अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय दिल्ली में छपा।
और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया

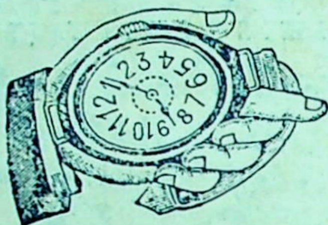
The World's Record Timekeeper

To the intending purchasers of a sound, strong and elegant timekeeper, we would strongly recommend our well known

No. 1001.

ELECTRO GOLD PLATE WRISTLET WATCHES.

This is the very newest style wristlet watch These watches are artistically finished of the best workmanship, and are guaranteed for



3 years. Their average daily variation, when used with proper care, is 1 to 2 second, a result which has never been surpassed by watches of much higsher prices.

Price, Rs. 7-8-0, with Strap or Bracelet for Radium Dial, Re. 1 8-0 Extra.

N.B.—*Purchaser of 3 Watches at a time. will get one German-made 4-in. dial alarm Timepiece free.*

The Most Fascinating Perfume

LILY OF THE VALLEY

Free from Alcohol or Spirits, and hence can be used by all without any restriction. It possesses the most fragrant smell of the different kinds of fine flowers. Notice minutely the delightful-rike freshly plucked flowers-smell every now and then. In lasting qualities, it is unsurpassed. ask for,



LILY OF THE VALLEY

1 oz. Bottle Re.1-8-0
1 Dram Bottle 0-12-0
Dram Bottle 0-8-0

Sample Bottles, Doz. Re. 1-4-0
" " Each 0-2-0

Hurry up to

PETER WATCH CO.,
P. B. 27, MADRAS

भारत सरकारसे रजिस्ट्री किया हुआ

७००० एजेन्टों द्वारा बिकना दवा की सफलता का सब से अच्छा प्रमाण है



(बिना अनुपान की दवा)

यह एक स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिस सेवन करने से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, सग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द बालकों के हरे पीले दस्त इन्फ्लूएँजा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है मूल्य ॥) डा० ख० १ से २ तक ।≋)



दाद की दवा

बिना जलन और तकलीफ के दाद के २४ घण्टे में आराम करने वाली सिर्फ यही एक दवा है। मूल्य फी शीशी ।) डा० ख० १ से २ तक ≋) १२ लेने से २) में घर बैठे देंगे।



दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताजा और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मँगाकर पिलाइये, बच्चे इसे खुशी से पीते हैं। दाम फी शीशी ॥।) डा० ख० ≋)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगा कर देखिये मुफ्त मिलेगा।

पता— सुखसञ्चारक कम्पनी मथुरा।

Regd. No. L. 1240.
वर्ष ५]　　चैत्र १९८१— अप्रैल १९२५　　[खण्ड ५, संख्या १२]



वार्षिक मूल्य ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादिका—विद्यावती सेठ बी०ए०

स्त्रियों और विद्यार्थियों से ४)
विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

ग्राहकों के लिये:—

(१) ज्योति प्रति अंग्रेज़ी मास की १५ को ग्राहकों को मिला करेगी

(२) भारत के लिये डा० व्य० सहित इस का वा० मूल्य—

१ वर्ष के लिये	४॥) है।
६ मास के लिये	२॥) है।

विदेश के लिये इसका डा० व्य० सहित वार्षिक मूल्य ६) है।

स्त्रियों और विद्यार्थियों से केवल ४) प्रति वर्ष है।

(३) एक प्रति का मूल्य ॥) है।
पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं, जो मिलती हैं उनका मूल्य ॥) से कम नहीं होता। नमूना मुफ्त नहीं मिलता आठ आने के टिकट आने पर भेजा जाता हैं।

(४) ज्योति का वर्ष मई से अप्रेल तक और नवम्बर से अक्टूबर तक होता है। बीच में ग्राहक होने वाले को पूरे वर्ष की प्रतियाँ दी जाती हैं।

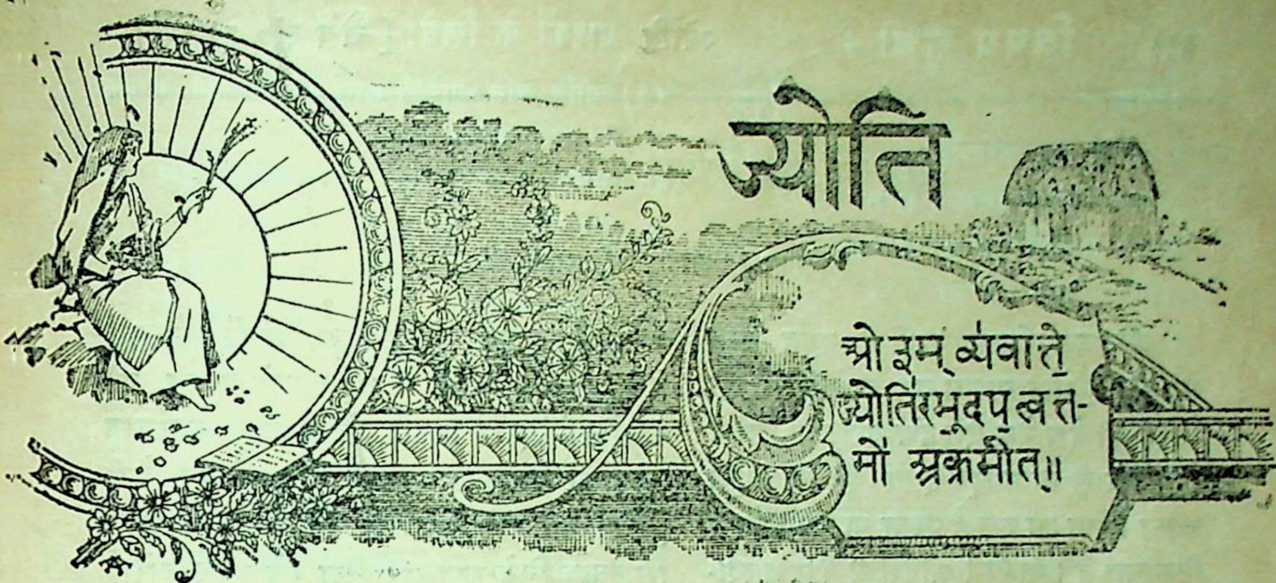
(५) पत्र व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता स्पष्ट और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये। जिन पत्रों पर **ग्राहक नं०** न होगा वह निरुत्तर रहेंगे। पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या दो पैसे का टिकट होना चाहिये।

(६) भावी ग्राहकों को चाहिये कि रुपये मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी० पी० भेजने से ग्राहक को और हमें-दोनों को कष्ट पहुंचता है। पैसे अधिक लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है। आशा है भावी-ग्राहक-गण-हमारी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देंगे।

(७) पते के परिवर्तन की सूचना पत्र निकलने से १५ दिन पहिले मैनेजर के पास आनी चाहिये।

(८) यदि कोई संख्या किसी ग्राहक को न पहुंचे तो पहिले अपने डाक घर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्त्ता के पास भेज देना चाहिये। परन्तु यह सूचना अगले अंक के निकलने से १५ दिन पूर्व तक मिलनी चाहिये अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य नहीं दी जायगी।

मूल्य तथा प्रबंध सम्बन्धी पत्र मैनेजर, 'ज्योति' कोठी नं० ४ दरियागंज, देहली के पते पर आने चाहियें



वर्ष ५ | चैत्र १९८२—अप्रैल १९२५ ई० | संख्या १२

आंखों में

(ले०—श्री नयनचन्द्र सन्त)

क्या जानें, क्या क्या छिपा हुआ, सरकार ! तुम्हारी आँखों में !
सब दृश्य उपस्थित दर्शनीय, उन प्यारी प्यारी आँखों में !
दिन सम है सहज ज्योति जग में, निर्मलता स्वतः प्रकाशित है,—
निशि सम काली साड़ी वाली, अंधियाली न्यारी आँखों में !
है शान्ति-सरोवर भी उनमें, है प्रेम-पयोनिधि भी उनमें,—
श्रमरहित, निरन्तर करुणा का, सोता भी जारी आँखों में !
सब लोग पतंग समान बने, है ऐसी मोह-मूर्ति उनमें,—
निर्मोही काल समान, अहा, चल रही कटारी आँखों में !
वैराग्य, भरा दुनियां भर का, अनुराग, भरा दुनियाँ भर का,—
विपरीत कार्य भी होते हैं, माया भी भारी आँखों में !
हम एक दिवस रो पड़े बिलख, तुम आगे आकर प्रकट हुये,—
अब, मीठे-मीठे लगते हैं, आँसू थे खारी आँखों में !
यह जाल बनाया है कैसे, बतलादो ! आप कहां रहते,—
हम रहें आपकी आंखों में, या आप हमारी आंखों में ?

वेद में स्त्री शिक्षा का आदर्श

लेखिका—' आर्य्य महिला '

आजकल शिक्षाप्रणाली में बहुत बड़ा मत भेद है और बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा की देख रेख ऐसे ढंग पर चल रही है कि ऊपर से तो मालूम होता है कि बहुत प्रयत्न किया जा रहा है परन्तु परिणाम कोरा निकलता है। बालकों की शिक्षा में पाश्चात्यादर्श ने बहुत कुछ आडम्बर बना कर एक बालू की भीति खड़ी की है जोकि छूते ही गिरजाती है। हमारे नव-शिक्षित युवक इसी शिक्षा के प्रभाव से जीवन की रणभूमि में पैर रखते ही परास्त होकर नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं। फिर शिक्षिता देवियों की गणना ही कहां! कहा जाता है कि स्त्रियों को घर की चारदीवारी के अन्दर ही रखकर चूलहा, चक्की, चर्खा इत्यादि में लगा रखना ठीक नहीं, उनको भी पुरुषों की तरह समान अधिकार है, उन्हें भी सभा सोसाइटी में आना जाना, व्याख्यान झाड़ना, वोटों के लिये स्पर्धा करना, दफ्तरों और मिलों में काम करना, बैंकर बनना तथा स्वच्छन्दता से बाहरी सारे वही काम करना चाहियें जो पुरुष करते हैं। इस स्वाधीन युग में पुरुष और स्त्री दो भिन्न २ व्यक्ति हैं जो स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने के अधिकारी हैं। पति का कोई अधिकार नहीं कि वह स्त्री को घरेलू कामों के लिये रखे और आप स्वाधीनता का जीवन व्यतीत करे। पति को भी घर के धन्धे करने चाहियें।

इसी भाव के अनुकूल हमारे देश के कई शिक्षणालय स्त्रियों को शिक्षा देकर उन्हें ऐसे अजीब व्यक्ति बना रहे हैं कि वह न घर की रहती न घाट की। कुछ देर हुई हमने कई मासिक पत्रों के भिन्न २ अंकों में कई ऐसे व्यंग चित्र देखे थे जो हमारे कथन को सर्वांग में पुष्टि करते थे। एक वर्तमान काल की शिक्षिता स्त्री आप कुर्सी पर बैठी पुस्तक पढ़ रही है, पास ही पति महाशय सिलवट्टा लिये मसाला पीस रहे और रसोई बना रहे हैं। एक और शिक्षिता स्त्री आप तो शैय्या पर लेटी आराम कर रही है पति, महाशय बच्चे को खड़े २ हिला रहे हैं। एक पति महाशय अपनी शिक्षिता स्त्री के लिये सोने से उठने पर जल देकर मुंह धुला रहे और चाय की प्याली लारहे हैं,इत्यादि। भाव यह कि आधुनिक युग में पुरुष के लिये घरेलू कार्य्य और स्त्री की टहल रहे और स्त्रियों के लिये या तो देशसेवा के नाम पर लीडरों को खिलौना बनने तथा जिनके भाग्य में यह न हो उनके लिये पुरुषों के साथ सैल सपाटा, थियेटर, सिनेमा इत्यादि देखना, पार्टियें देनी, और बहु प्रकार के आमोद प्रमोद में जीवन के लाभ प्राप्त करना है। केवल उच्च शिक्षा प्राप्त देवियां ही नहीं वरन बहुतेरी अशिक्षिता देवियां भी इन्हीं भावों से पूरित हैं। प्रातः उठ कर स्नान संध्या तो कहां उनसे कोई पूंछे कि सूर्य्योदय कैसा होता है तो वह कभी नहीं बतला सकतीं क्योंकि वह तो धूप चढ़े उठती हैं। गृहस्थ में जाकर उनके कर्तव्य क्या होंगे वह यह कभी नहीं सोचती। किन्तु उनके दिलों में यह भाव रहते हैं कि एक हज़ार दो हज़ार कमाने वाला पति हो, उसके मोटर या फिटने हों, नौकर चाकर हों, भोग विलास के साधन हों। नित्य नये वस्त्र आ-

भूषण पहिरने को हों, बस जीवन का लक्ष्य सिद्ध होगया। बच्चों का उत्पन्न होना उनके लिये शोकप्रद होता है उनके पालन पोषण से घबड़ाती रहती हैं परन्तु यदि परमात्मा की दया से बच्चे होही जावें तो वह नौकर पर पलते हैं। यह हैं आधुनिक युग की नारीं।

परन्तु हम पूछते हैं क्या ये नारी हमारे कल्याण की प्राप्ति की हेतु हो सकती है। क्या इतने झूठे सुखों की अभिलाषा से जो हृदय भरा हुआ हो वह कभी तृप्त और शान्त हो सकता है? क्या जो स्वयं अशान्त है वह दूसरे को शान्ति दे सकती है? कदापि नहीं। शास्त्र में कहा कहा है कि—

"न जातु कामः कामाना मुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥"

भोगों को निरन्तर भोगते रहने पर भी भोगेच्छा शान्त नहीं होती किन्तु जिस प्रकार अग्नि में घृत डालो तो खूब लपटें उठती हैं इसीप्रकार भोग लिप्सा बढ़ती है। यही कारण है कि सर्वत्र संसार में भोग लिप्सा और स्पर्धा का राज्य हो रहा है, कहीं भी शान्ति नहीं है, भोगैश्वर्य की लालसा में लगे हुये माता पिता की सन्तान और भी बढ़ कर कामी और दुराचारी होती है। अतः उत्तरोतर बुराई की ही उत्पति होती है। हम यह दावे के साथ कह सकते हैं कि हमारे भारत में पाश्चात्य भावों के प्रचार के पूर्व भारतीय स्त्रियों में इस प्रकार की और इतनी भोग लिप्सा नहीं थी चाहे वह अशिक्षिता गँवार भले ही थीं। उस समय न तो क्षयी रोग ही इतना बढ़ा हुआ था और न हिस्टीरिया ही। साधारणतया स्त्री पुरुषों के शरीर सुगठित, आयु दीर्घ और स्वभाव संयमयुक्त होते थे। उनके जीवन का उद्देश्य एकमात्र भोग तृप्ति न थी। कारण यह था कि उस ज़माने की देवियों के भाव प्रायः गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों से भरे हुए अधिक रहते थे और स्वार्थ प्रधान कम रहते थे। अधिकांश समय घरेलू कार्य्य और पदार्थ में लगने से कामक्रीडा के लिये समय कम रहता था। हर एक वस्तु के गुण और दोष दोनों ही होते हैं अतः हम यह अवश्य मानते हैं उस युग में बाल्य विवाहादि कई अक्षन्तव्य कुरीतियां प्रचलित थीं जिनका परिणाम कम हानिकारक था किंतु अधिकांश भारत की स्त्री जाति में वह महत्वपूर्ण भाव परम्परागत घरेलू जीवन की क्रियात्मक शिक्षा द्वारा होते थे, जिनका वर्णन हमारी अपनी श्रुतियों में तो सदैव वर्तमान रहा परन्तु अब से पहिले स्त्री शिक्षा के प्रश्न को हल करते समय किसी क्रियात्मकरूप से अपनाया नहीं और यह कहने से भी इन्कार न करना चाहिये कि बहुतों का ध्यान इधर गया ही नहीं।

आज हम आप के सन्मुख केवल दो चार मंत्र भाग ही रखकर यह दिखलायेंगे कि जिन घरेलू कामों को हम तुच्छ दृष्टि से देखते हैं और जिनके करने से हमारी देवियाँ और वर्तमान युग की शिक्षिता कहलाने वाली कन्यायें कतराती हैं तथा उन्हें करने में अपने समय को व्यर्थ नष्ट करना समझती हैं, उनके करने की और भली भांति करने की स्पष्ट आज्ञा स्त्री जाति को वेद भगवान्‌की ओर से है। देखो ऋग्वेद १। १६१। २४ स्त्रियाँ कुंए से जल भर लावें

तास्ते विषं विजभ्रिर उदकं कुम्भनीरिव।

अर्थः—जल भरकर घड़ा उठाये हुए स्त्री जैसे शोभित होती है। इसमें स्पष्ट आज्ञा है कि जल के घड़े लाना भी स्त्रियों का कार्य है। इतना ही नहीं चांवल पछोरना, दही मथना, चर्खा कातना, बेल बूटे निकालना, रंगना, कपड़े धोना, कपड़े बुनना, रसोई बनाना,

ऊखल मूसल से कूटना, पीसना, इत्यादि जितने घरेलू कार्य आज हम नफरत की निगाह से देखते हैं सभी के करने का विधान है और उन्हें करने का बड़ा महत्व दिया गया है। देखो कूटना, पीसना, मथना इत्यादि का विधान ऋग्वेद मं० १। सू० २८। मं० ३, ४—

ओ३म् यत्र नार्य्य पच्यवमुपच्यवं च शिक्षते। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्रजल्गुलः॥ ३॥ यत्र मन्थां विबध्न तेरश्मीन्यमितवा इव……।

इतना ही नहीं बल्कि इन बातों की शिक्षा भी देनी चाहिये। यतः इनके अर्थ से स्पष्ट है कि हे (इन्द्र) इन्द्रियों के स्वामी जीव तू (यत्र) जिस कर्म में घर के बीच (नारी) स्त्रियां काम करने वाली अपनी संगी स्त्रियों के लिये (उलूखल सुतानां) उक्त उलूखलों से सिद्ध की हुई विद्या को (अपच्यवम्) (उपच्यवम्) (च) अर्थात् जैसे डालना निकालना आदि क्रिया करनी होती है, वैसे उस विद्या को (शिक्षते) शिक्षा ग्रहण करती कराती हैं। उसको (३) अनेक तर्कों के साथ (जल्गुलः) सुनो और इस विद्या का उपदेश करो। इसी प्रकार मथने की विद्या का विधान समझो।

और देखो कातने तथा कपड़े बुनने का विधान ऋग्वेद मं० २। सू० ३ मं० ६—

ओं………वय्येव रण्विते। तन्तुं त संवयन्ती समीची………

इतना ही नहीं चक्की पीसने, औषधि आदि देने का कार्य भी सीखे इसका भी वधान है यथा ऋग्वेद मं० ६। सू० ११२ मं० ३:—

ओं कारूरहं ततोभिवगुपल प्रक्षिणी नना। नानाधियो वसूयवोऽनुगाइव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

प्राचीन भारत में इन उपरोक्त वेदाज्ञाओं का अक्षरशः पालन होता था। उस समय की राज कन्यायें भी इन घरेलू धन्धों का उपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में अपना महत्व मसझती थीं महाभारतमें द्रौपदी कहती हैं कि "मैं हमेशः अपने घर को और उसकी सारी वस्तुओं तथा खाने योग्य भोजन को स्वच्छ तथा बड़ी उत्तम रीति से संभाल कर रखती हूँ। चावलों को बड़ी सावधानी से पकाती और समय पर भोजन खिलाती हूं…… "

वेद में स्त्री शिक्षा का आदर्श उनको सर्वांग पूर्ण बनाना है जिससे वह उत्तम माता, उत्तम पत्नी उत्तम देश सेविका बन कर जाति की उन्नति करती हुई कल्याणदायिनी हों। हमारे इन उपरोक्त उद्धरणों के देने से यह कभी नहीं समझना चाहिये कि केवल यही दो चार उपरोक्त कार्य्य स्त्री के लिये विहित हैं नहीं नहीं। जो, अभिप्रायः है वह वह यह है कि उच्च शिक्षा के साथ २ कन्याओं को यह उपरोक्त गुण भी अवश्य आने चाहिये और उनका महत्व जीवन के दैनिक कार्यों में कम नहीं है। इन उपरोक्त बातों के अतिरिक्त स्त्री के लिये कहा है कि:-
ओं देवाना मदितेरनीकं यज्ञस्यकेतुर्बृहती

विभाहि। प्रशस्तिकृत् ब्रह्मणे नो व्युच्छाने जने जनय विश्ववारे॥

ऋ० मं० १। सू० ५६। मं० १६।

अर्थ—हे (विश्ववारे) समस्त कल्याण को स्वीकार करनेहारी कुमारी (यज्ञस्य) गृहाश्रम व्यवहार में विद्वानों के सत्कार आदि की (केतुः) जनाने हारी पताका के समान प्रसिद्ध (अदितेः) उत्पन्न हुये सन्तान की रक्षा के हेतु (अनीकम्) सेना के समान (प्रशस्तकृद्) प्रशंसा करने और (बृहती) अत्यन्त सुख का बढ़ानेहारी

(देवानां) विद्वानों की (माता) जननी हुई (ब्रह्मणे) वेद विद्या वा परमेश्वर के ज्ञान के लिये प्रभातवेला के समान (विभाहि) विशेष प्रकाशित हो (नः) हमारे (जने) कुटुम्बी जनों में प्रीति को (आ जनय) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो और (नः) हमको सुख में (व्युच्छ) स्थिर करो।

इस मन्त्र में स्पष्टरूप से यह बतला दिया गया है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराने में स्त्री का कितना हाथ है। जहाँ घरेलू धन्धे उसके सुपुर्द हैं, वहां बच्चों का पालन रक्षण, देवताओं की सेवा सत्कार, वेद और परमात्मा के ज्ञान का फैलाना और कुटुम्बियों को सुखी बनाना भी उसका परम कर्त्तव्य है। अतः प्रत्येक स्त्री शिक्षा के प्रेमी और प्रचारक को उपरोक्त बातों का [illegible] क्षा प्रणाली बनानी चाहिये ताकि देश में देवियां इस वैदिक आदर्श के विपरीत पुरुषों की खिलौना और तितलियां न बनकर आदर्श गृहणी बनें और संसार में कल्याण की मात्रा बढ़े।

निराला नगाड़ा

(ले०—पण्डित जगन्नारायणदेव शर्मा कवि पुष्कर)

दोहा

जो महिलाओं का हरें, हठ कर मान-महत्व।
उन नर-पशुओं कहां, मानवत्व-पुंसत्व ॥ १ ॥
वे होंगे उन्नत नहीं, भोगेंगे परिताप।
मिट जायेंगे शीघ्र ही, करके गुरुतर पाप ॥ २ ॥

घनाक्षरी

भारत-वसुन्धरा में आर्य्य-देवियों पै हन्त!
अत्याचार अमित अनार्य्य करने लगे।
वीर-मतिधीर में अधीरता समाई अति,
पोच प्रतिकार से अपार डरने लगे ॥

'पतित पराये कामधेनु अपनाय रहे,
जाति में विकार-अविचार भरने लगे।
ऐहो ! कवि पुष्कर हमारी ढिलवाई देख,
आततायी अकथ स्वकाज सरने लगे ॥

सोरठा

होता है अपमान, माता-भगिनी पुत्रिका।
अब तक हमें न ध्यान, अधपःतन का भाइयो ॥
नाम मात्र का धर्म, दीह नकीलों का रहा।
बड़ा कठिन है कर्म, प्रेम-एकता-वृद्धि का ॥

रामेश्वर-यात्रा।

लेखक—श्रीयुत प्रो० लक्ष्मणस्वरूप एम० ए० डि० फिल (आक्सन)

हिन्दू शास्त्रों में यात्रा का बड़ा माहात्म्य लिखा है। तीर्थस्थानों पर स्नान करने की बहुत महिमा गाई गई है। मरने से पहिले चार धामों अर्थात् बद्रीनारायण अथवा अमपनाथ, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और द्वारका की यात्रा करने की प्रत्येक हिन्दू के हृदय में प्रबल इच्छा होती है। इस यात्रा से क्या पुण्य होता है। कौन से फल की प्राप्ति होती है। स्वर्गलोक, चन्द्रलोक, वैकुण्ठलोक, गोलोक कौनसा धाम मिलता है, अथवा यात्री कौन सी योनि में जन्म लेता है यह इस लेख के विषय से बाहर है। किन्तु इतना अवश्य ही कहूंगा कि चारों धामों की यात्रा से प्राणी के मन और हृदय पर गहरा असर पड़ता है। उस की दृष्टि सङ्कुचित नहीं रहती। उस के हृदय में विशालता आ जाती है। चार धामों के यात्री को भारत की भिन्न भिन्न जातिओं और उनकी सभ्यता का ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान परस्पर समागम तथा स्वयम् निरीक्षण का परिणाम होता है। अतएव यह वह शुष्क अस्थायी निष्फल ज्ञान नहीं होता जो पुस्तक पढ़ने से मिलता है। अपने घर में बैठे हुए प्राणी के विचार कूप मण्डूक के समान क्षुद्र होते हैं। भिन्न २ प्रान्तों के लोगों का सम्पर्क उन की सभ्यता, उन का व्यवहार, आचार, विचार शिक्षाप्रद होता है। इसी लिये योरुप देश में देशान्तरों का भ्रमण' शिक्षा का एक आवश्यक भाग समझा जाता है। किसी नवयुवक की शिक्षा सम्पूर्ण नहीं समझी जाती जब तक उस ने विदेश में पर्य्यटन न किया हो। इस विचार से महाशय हरदयाल ने एक बार लिखा था कि हरद्वार, प्रयाग के स्थान में आक्सफोर्ड, पैरिस तथा बरलिन को अब तीर्थस्थान

बनाना चाहिए, क्योंकि वहां हमें अधिक शिक्षा मिल सकती है। मेरे विचार में योरप की यात्रा बहुत अच्छी है किन्तु उस से पूर्व कुछ अपने देश का भी तो ज्ञान होना चाहिए। चारों धामों की यात्रा करने से भारत देश का भले प्रकार ज्ञान हो जाता है। केवल बद्रीनाथ के स्थान में अमरनाथ को रख दिया जाय।

एक ओर तो मनुष्य जाति का ज्ञान होता है। उनके कला कौशल का पता लगता है दूसरी ओर परमात्मा की सृष्टि के अद्भुत विस्मयोत्पादक दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। अमरनाथ जाने से हिमालय के उच्च शिखरों का नज़ारा देखने में आता है। कार्तिक की चांदनी के समान सफैद अथवा सती साध्वी स्त्री के आचरण की तरह बेदाग बरफ से ढके हुए यह शिखर आकाश को स्पर्श करते हैं। इन शिखरों के दृश्य में अकथनीय Grandem और Solemnity है इन शिखरों में निवास करने से मनुष्य के आत्मा में Crandem और Solemnity का अंश आ जाता है। ऊंची २ चोटियों के प्रभावसे मनुष्य के भाव उच्च होते हैं। सफैद बर्फ के दृश्य से उनके हृदय उज्वल हो जाते हैं। प्रकृति देवी की मनोहरता तथा विकटता से उनके आत्मा में सौन्दर्य्य और कोमलता पैदा होती है। इस लिये मोक्ष के अभिलाषिनी आत्मा की उन्नति के जिज्ञासु हिमालय की हिम से आच्छादित उत्तंग शिखरों का सेवन करते थे।

गरमी की छुट्टिओं में मैंने अमरनाथ की यात्रा की थी। हिमालय के पर्वतों में विशेष आकर्षणशक्ति है, उन रमणीक मनोहर स्थानों के सौन्दर्य से मेरे हृदय को बहुत शान्ति और संतोष प्राप्त हुए थे। मैंने सोचा कि अब रामेश्वर भी चलना चाहिए। श्रीरामचन्द्रजी की पवित्र यादगार है वहां जाना भी आवश्यक है।

१७ दिसम्बर को मैंने कलकत्ता मेल में अपना स्थान नियत करा लिया और यात्रा आरम्भ कर दी। रेलगाड़ी में से जब मैं संयुक्त प्रान्तमें से गुज़र रहा था तो दोनों तरफ विशाल विस्तृत हरे भरे मैदान दिखाई देते थे। लाहौर से लेकर कलकत्ते तक हरयावल तथा खेत दिशाओं के अन्त तक फैले हुए हैं। इनके ऊपर नीले आकाश का शानदार शामिआना तना हुआ है। ऐसे मैदानों की परिस्थिति से अवश्यमेव ही विचार दूराधिरोही हो जाते हैं। योरुप के उत्तर भाग में प्रायः धुन्ध छाई रहती है। नीला आकाश कभी कभी बहुत चिरकाल के पश्चात् दिखाई देता है और चांद तारों का तो महीनों दर्शन नहीं होता। मेरा विचार है कि नीला आकाश विस्तृत मैदान, हरियावल और रात्रि को चमकते हुए चांद और तारों का सदैव दर्शन मनुष्य को एक विशेष ढांचे में ढाल देता है। भारतीय दर्शनशास्त्र जिस गहराई तक पहुंचा है, अथवा कविओं की कल्पना जितनी ऊंची उड़ी है वह योरुप के दर्शन शास्त्र और काव्य में दृष्टिगोचर नहीं होता।

१८ दिसम्बर को प्रातःकाल बर्दवान के स्टेशन से हम महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्वविद्यालय को देखने के लिए शान्तिनिकेतन की ओर चल दिए। शान्तिनिकेतन के स्टेशन पर अपना अस्बाब रख मैं पैदल चल पड़ा। लगभग दो मील पर विश्वविद्यालय है। विद्यालय का विभाग भी साथ ही सटा हुआ है। विद्यालय में बालक और बालिकाएं साथ साथ शिक्षा पाती हैं।

इस प्रणाली के विद्यालयों को Conducational institutions कहा जाता है। अमेरिका में इनका बहुत प्रचार है। भारतीय गुरुकुल से इसकी शैली विपरीत है। शान्तिनिकेतन का वर्णन करने के लिए एक स्वतन्त्र लेख की आवश्यक्ता है इस लिए हम उसे छोड़ते हैं।

१६ दिसम्बर को सांयकाल हम कलकत्ते से मद्रास मेल में सवार हुए रेल की लाइन महासागर के तट के समीप ही बनाई गई है। इस प्रान्त का दृश्य संयुक्त प्रान्त के दृश्य से बहुत भिन्न है। यहां छोटी छोटी पहाड़ियाँ दोनों तरफ खड़ी हैं। थोड़ी थोड़ी दूर पर दृश्य बदलता रहता है। यहां के दृश्य में तरो ताज़गी अधिक प्रतीत होती है गरमी भी अधिक है। खजूर और ताल के वृक्ष जहां तहां हैं और रेल की खिड़की से बहुत मनोहर लगते हैं। ताल वृक्षों के झुण्डों में दूर से कोई २ झोंपड़ी दिखाई पड़ती थी। इन झोंपड़िओं की छत खुली नहीं होती बल्कि ढलवान होती है। वृष्टि के अधिक होने के कारण खुली छत नहीं रखी जा सकती। यह ढलवान छतें लाल २ टाइलज़ (Tyles)की बनी होती हैं। हरी हरी हवा में लहराती वृक्ष शाखाओं के आभ्यन्तर लाल २ ढलवान छतें बहुत ही सुन्दर लगती हैं। इस देश में गरमी अधिक होने से स्त्री पुरुषों का वर्ण श्यामहै। उनकी चेहरे की बनावट भी भिन्न है।होंठ प्रायः बहुत मोटे होते हैं। बाल ऊन का अनुकरण करते हैं। नेत्र छोटे और ठोड़ी चिपकी सी होती है। यहां का वेश भी विचित्र है। प्रायः केवल एक धोती ही पहनी जाती हैं। ग्रामीण तथा हाथों से काम करने वालीस्त्रियां तो केवल एक ही धोती पहनती हैं। धोती साढ़ी के ढंगे पर बांधी जाती है। खुले पल्ले को स्तनावरण बना कर कंधे पर डाल दिया जाता है। ऐसा करने से पीठ और शिर खुले रहते हैं। यहां की केवल विधवा स्त्रिएं शिर को ढकती हैं। सौभाग्यवती स्त्रिएं शिर खुला रखती हैं और केश के जूड़े में प्रायः फूल गूंधती हैं। वालटेर के स्टेशन से पहले ही तेलगु भाषा का आरम्भ हो जाता है। स्टेशन पर फल मिठाई बेचने वाले जोर जोर से चिल्लाते हैं पर बहुत तेज़ बोलते हैं, कोई भी शब्द पूर्णतया स्पष्ट नहीं सुन पाता। इन की भाषा में मूर्धन्य (Cereleral) अक्षरों की प्रचुरता है।

२१ दिसम्बर को प्रातःकाल मद्रास पहुँचे करनल गणपतराय आई० एम० एस० की कोठी पर ठहरे। सायंकाल मद्रास की प्रसिद्ध क्लब कासमोपोलिटन में गए, वहां मद्रास हाईकोर्ट के धर्माधिकारिओं तथा अन्य सज्जनों से भेंट हुई। इन सज्जनों की अधिक संख्या धोती और कुरते को पहने हुए थी। बहुत से तो नंगे पाँव थे पंजाब से यह दृश्य बहुत भिन्न था मद्रास में स्त्री शिक्षा का बहुत प्रचार है। परदे के न होने के कारण स्त्रियों का स्कूल, कालिजतथा पाठशालाओं में जाकर पढ़ने में कुछ विशेष कष्ट नहीं होता। बी०ए०एम०ए० स्त्रियों की संख्या सहस्रों तक पहुंच चुकी है। मुझे देख कर बहुत आश्चर्य हुआ कि बी० ए०, एम० ए० स्त्रियां भी High-heeled बूट नहीं पहिनतीं। अधिकतर नंगे पांव अथवा सलीपर पहनतीं हैं। वह हिन्दू वेश का आदर की दृष्टि से देखती हैं। उच्च से उच्च शिक्षित ।शक्षित स्त्रियों में भी कभी अङ्गरेजी टोपी, Blouse अथवा Skirt देखने में नहीं आया। हिंदूधर्म तथा हिन्दू सभ्यता से उन का बहुत प्रेम है वह मन्दिरों में जाती हैं एकादशी इत्यादि व्रत रखती हैं उनके रहने सहने का ढंग वही पुराना है। अपने घरों में वह पृथिवी पर चटाई इत्यादि पर बैठती हैं।

धनाढ्य होने पर भी वह काऊच इत्यादि अपने घरों में नहीं रखतीं। उनकी सादगी और हिंदूधर्म तथा सभ्यता के अनुराग को देख कर मेरे दिल में बार बार यह प्रश्न उठता था कि पञ्जाब में जो वर्तमान अंगरेजी शिक्षा का प्रभाव है वह यहां क्यों नहीं है। पंजाब में तो जो लड़की मिडल भी पास कर लेती है वह High heeled shoes के बिना बात नहीं करती और हिंदू सभ्यता को योरुप की सभ्यता के मुकाबले में तुच्छ समझने लग जाती है। मुझे अभी तक इस भेद का पता नहीं लगा। मैं जानता हूँ कि आर्य्य-पाठशालाओं की यह दशा नहीं है। किन्तु मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मद्रास में आर्य पाठशालएं तो हैं नहीं, वहां तो अंगरेज़ी तथा ईसाई विद्यालय ही हैं। इन विद्यालयों में आधुनिक अंग्रेज़ी की उच्च कक्षाओं में पढ़कर भी हिंदू कन्याओं पर वह प्रभाव नहीं पड़ता जो पंजाब की छोटी २ श्रेणियों की कन्याओं पर पड़ता है।

२४ दिसम्बर को सायंकाल मदरास से प्रस्थान कर २५ को मध्याह्न समय रामेश्वर पहुंचे। हम ने रामेश्वर उतरना उचित न समझा सीधे धनुषकोटी चले गए। बस यहां से आगे रेल नहीं जाती। धनुषकोटी में रत्नाकर महोदधि (Arbian Sea) और महासागर (Bay of Bengal) का संगम होता है। अपूर्व दृश्य है। एक ओर से एक समुद्र की लहरें उठती हैं दूसरी ओर से दूसरे समुद्र की लहरें उठती हैं और दोनों परस्पर टकराकर कणशः बिखर जाती हैं। केवल उनकी श्वेत झाग हिलोरे लेती हुई त्रिशंकु के समान अंतराल में डुबकी लगाती रहती हैं। पृथिवी के अन्तिम भाग पर हम खड़े हैं। चारों तरफ सागर का नीला जल फैला हुआ है। ऊपर नीला आकाश है। दिशाओं के मिलाप (horizon) में नीला आकाश सागर के नीले जल से जा मिलता है और भ्रम होता है कि यह जल है अथवा आकाश। वायु बहुत तेज चल रही है। वस्त्र उड़े जाते हैं। रेत के कण उड़ उड़ कर नेत्रों में पड़ते हैं। सागरों की लहरें दूर से दीवार की तरह उठती हैं, उमड़ी हुई चली आती हैं और परस्पर टकरा कर गरजती हुई गिर जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि घोर युद्ध हो रहा है। लहरोंरूपी सैनिक पदातिओं की कतारें दोनों ओर से धावा करती हैं और तोपों की गरज में टुकड़े २ हो गिर जाती हैं। यह प्राकृतिक संग्राम सदैव जारी रहता है। घन्टों तक देखिए जी नहीं भरता।

हमने दोनों सागरों के संगम में स्नान किया। सनातनी लोग यहां श्री रामचन्द्र जी के धनुष बाण की पूजा करते हैं। रेत में धनुष बाण का खाका खींच लिया जाता है, अथवा कच्चे आटे से पूर पूरा जाता है। यहां पण्डे लोग विद्यमान हैं, वह पूजा करवाते हैं और दक्षिणा लेते हैं। राम की यह अटल यादगार है, आर्यसभ्यता के विजय की यह पताका है। मैंने यद्यपि धनुष की पूजा नहीं की तो भी पण्डों को दक्षिणा ज़रूर दी, क्यों कि वे आर्यसभ्यता के गौरव को तामिल, तैलगू इत्यादि जातियों के हृदयों पर अङ्कित करने में साधन हैं। वह श्रीराम और उनके धनुष की पूजा करवाते हैं, इस से उत्तरीय भारत के बल पराक्रम का डङ्का बजाते हैं। यह पण्डे मूर्ख न थे बहुत से संस्कृत जानते थे। दो पण्डे देर तक मेरे साथ संस्कृत में वार्तालाप करते रहे। मैंने उनको वेदाध्ययन करने का उपदेश दिया। पहले तो बड़े ध्यान से सुनते रहे, फिर उन्होंने मेरा गोत्र इत्यादि पूछा-तो मैंने बतलाया कि मैं जन्म से ब्राह्मण नहीं हूं। तो वह सब रुष्ट हो गए, क्योंकि क्षत्री या वैश्य के साथ संस्कृत बोलने तथा उन से

उपदेश ग्रहण करने में वह अपनी मानहानि समझते हैं। बहुत से यात्री यहां आकर स्नान करते हैं। यह दक्षिण का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां से लङ्का को जहाज जाता है, केवल दो घंटे का रास्ता है। सामुद्रिक यात्रा के लिए एक जहाज सन्नद्ध खड़ा था। मेरी भी लङ्का देखने की प्रबल इच्छा हो उठी, केवल दो घंटे और हम लङ्का द्वीप में पहुंच जायेंगे। किंतु अवकाश न होने से बहुत कठिनता से चञ्चलमन को रोका और रामेश्वर की तरफ वापिस लौटा।

रामेश्वर का मन्दिर बहुत दूर से दिखाई देता है। नगर क्या ग्राम है, केवल यात्रियों पर इन लोगों की आजीवका निर्भर है। यहां कुछ पैदा नहीं होता, केवल रेत ही रेत है। जल भी खारी है। पीने का पानी, शाकपात तथा अन्य जीवन सामग्री दूर से आती है। रामेश्वर भी भारतभूमि पर नहीं है यह एक द्वीप है और अंगरेज़ सागर के एक टुकड़े पर पुल बांधकर रेल ले गए हैं। पीने के पानी का बड़ा नल भी इसी पुल पर से होकर आता है। रामेश्वर से लगभग एक मील एक छोटी सी पहाड़ी है। इसकी चोटी पर शिव का मन्दिर बना है, इस स्थान का नाम है-राम झरोका। यहां के पण्डे कहते हैं कि इस मन्दिर की स्थापना श्रीराम जी ने स्वयं अपने पवित्र हाथों से की थी। यह भी कहा जाता है कि उस समय सागर इस मन्दिर के साथ सटा हुआ था, अब सागर मन्दिर से लग भग १ मील दूर है।

रामेश्वर का मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दिर क्या नगर का नगर है। प्रवेश करते समय ड्योढ़ी को खूब सजाया गया है। ड्योढ़ी को गोपुर कहते हैं। मन्दिर की बाहरी परिक्रमा बहुत चौड़ी और लम्बी है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि यह परिक्रमा संसार भर के मन्दिरों, गिरजाघरों से बड़ी है। गिरजाघर में तो परिक्रमा होती नहीं, केवल वहां Aisle होता है, तो उन सब से यह परिक्रमा लम्बी है। चारों तरफ बहुत ही शोभायमान स्तम्भ हैं। एक आभ्यन्तरी परिक्रमा भी है जो इससे छोटी है। इस मन्दिर के अन्दर १० से अधिक तालाब हैं। बहुत से छोटे छोटे मन्दिर हैं परन्तु शिव का मन्दिर सब से बड़ा है। श्रद्धालु लोग गंगोत्तरी का जल यहां शिवलिंग पर चढ़ाते हैं। गंगोत्तरी का जल यहां बिकता भी है, जो शिवलिंग पर चढ़ाया जा सकता है। इस मन्दिर की सालाना आमदनी तीन लाख से अधिक है। बीस से अधिक पुजारी शिव की पूजा करते हैं।

शुक्रवार की रात्रि विशेष उत्सव होता है दैवयोग से मैं शुक्रवार को ही रामेश्वर पहुंचा था। मन्दिर में जनसंख्या बहुत थी। जय जय की ध्वनि गूंज रही थी, शंख बज रहे थे, खड़ताल खड़क रही थी, घड़ियाल धनाधन कर रहा था। सुगन्धित धूप इत्यादि पदार्थ जल रहे थे और एक ओर मन्दिर का अपना बैण्ड बाजा बज रहा था। स्त्री पुरुषों की भीड़ लगी थी। कोई आता था, कोई जाता था, कोई पत्थर के फर्श पर अपना माथा रगड़ रहा था। कोई शिवस्तोत्र पढ़ रहा था। कोई दर्शन के लिये आतुर था। कोई धक्कमधक्का आगे जाने का प्रयत्न कर रहा था, कोई गंगोत्तरी का जल पुष्प, फल इत्यादि चढ़ावा लाये थे, कोई केवल अपनी श्रद्धा और भक्ति की नम्रतापूर्वक भेंट कर रहे थे। मन्दिर के बड़े द्वार पर बिजली के छोटे २ दीपों से जगमगाहट हो रही थी। विचित्र समय था। आज देवता की सवारी निकलनी थी सो दूर २ से लोग आए हुए थे। दस बजे रात्रि को सवारी निकली। रत्न, मोती,

हीरे की मालाओं से प्रतिमा लदी हुई थी। एक विमान पर प्रतिमा को रेशमी तकियों के सहारे बिठलाया गया मंदिर के पुजारी ब्राह्मणों ने मूर्ति को अपने कंधों पर उठाया। मूर्ति के आगे पीछे गैस के बहुत से लैम्प थे। उनके प्रकाश में मूर्ति के रत्नों की प्रभा का कौन वर्णन कर सकता है ? मूर्ति की प्रत्येक चौराहे पर पूजा की जाती थी। मूर्ति के सम्मुख मंदिर की ६ देव-दासियां नृत्य कर रही थीं। मूर्ति को बाहर की परिक्रमा में फिराया गया। २॥ बजे रात्रि को परिक्रमा समाप्त हुई। समाप्त होने से पूर्व रात्रि को विश्राम करने के लिये देवता की मूर्ति को देवी के मंदिर में रक्खा गया। जिस मूर्ति को जुलूस में निकाला जाता है और रात्रि को देवी के मन्दिर में रक्खा जाता है उसे भोगमूर्ति कहते हैं।

देव-दासियों का भी परिचय देना चाहिये। इतना कहना पर्याप्त होगा कि माता पिता अपनी कन्याओं को देवता पर चढ़ा देते हैं। यह कन्याएं देवदासी कहलाती हैं। इन का विवाह नहीं होता। इनके खाने पीने का प्रबंध मंदिर से होता है। देवता के सम्मुख नृत्य करना ही इनका मुख्य कार्य है। यह प्रथा उत्तरीय भारत के मंदिरों में विद्यमान नहीं है, दक्षिण की यह विलक्षणता है।

ध्येय

लेखक—श्री सन्तलाल दधिमथ वैद्यराज

विश्वम्भर ! विश्वाधार तुम्हीं
करुणामय ! करुणागार तुम्हीं
हो सार तुम्हीं
अविकार तुम्हीं
निधनी के धन-भाण्डार तुम्हीं

❁ ❁ ❁

जीवन-तन्त्री के तार तुम्हीं
शुचि वेदों के उद्गार तुम्हीं
व्यापार तुम्हीं
व्यवहार तुम्हीं
हीनों के प्रिय-परिवार तुम्हीं

❁ ❁ ❁

हर ! हरि, श्री, शक्ति, सुरेन्द्र तुम्हीं
महिमामय ! मान्य, महेन्द्र तुम्हीं

देवेन्द्र तुम्हीं
भूपेन्द्र तुम्हीं
लीलामय ! लीला-केन्द्र तुम्हीं



गीता कहती—"हो गेय तुम्हीं !"
बिन प्रीति, परेश ! अजेय तुम्हीं
श्रद्धेय तुम्हीं
विज्ञेय तुम्हीं
ध्याता हम हैं, हो "ध्येय" तुम्हीं



महात्मा तुलसीदास जी का एक भजन ।

ले०—श्रीयुत कृष्णानन्द जी

इस में कोई सन्देह नहीं कि गोस्वामी तुलसीदास जी विद्वान् थे, प्रतिभाशाली कवि थे, छल कपट और आडम्बर को जरा भी पसन्द नहीं करते थे, इत्यादि हेतुओं से वे सच्चे महात्मा* थे-उनके साम्प्रदायिक विचार चाहे सर्वमान्य न होसकें परन्तु उनकी विद्वत्ता प्रतिभा और परोपकारिणी वृत्ति से कोई भी सहृदय पुरुष इन्कार नहीं कर सकता। रामचरितमानस और विनयपत्रिका पढ़ने से उन की विद्वत्ता और प्रतिभा का पता लगता है। ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टि से उक्त दोनों ग्रन्थ चाहे जिस प्रकार के समझे जायें पर

* जिनके विचार और कार्य महान् हों, वे ही महात्मा हैं। महात्माओं में आत्म संयम, आत्म-बल और देशोपकार या विषय प्रेम का भाव भरा रहता है। विद्वानों (बी० ए० एम० ए० या शास्त्री काव्यतीर्थ परीक्षोत्तीर्ण या मौलवी फ़ाज़िल उपाधिधारी) में बहुत से दोष हो सकते हैं पर महात्माओं में बहुत ही कम दोष हो सकते हैं। स्वामी शङ्कराचार्य, बुद्धदेव. ईसामसीह, सुकरालूथर, शेखसादी आदि के साम्प्रदायिक विचार चाहे जैसे रहे पर इनके उच्च और उदार विचारों तथा महत्व-पूर्ण कार्यों को देखने से ये लोग सच्चे महात्मा ही कहलावेंगे। इसी प्रकार नानक, कबीर, सूरदास, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहनराय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द स्वामी रामतीर्थ, टाल्स्टाय, लेनिन, लोकमान्य तिलक श्री गोखले आदि के साम्प्रदायिक विचार चाहे जैसे रहे हों पर ये लोग महात्मा ही कहलायेंगे। वर्तमान समय में कर्मवीर गांधी, देश-भक्त लाजपतराय, का. हंसराज, भाई परमानन्द, पण्डित मदनमोहन मालवीय, स्वामी सत्यदेव, रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी श्रद्धानन्द आदि के साम्प्रदायिक विचारों या विश्वासों में चाहे जितनी भिन्नता हो पर ये लोग महात्मा ही कहलायेंगे।

हिन्दी कविता की दृष्टि से उत्तम और परम प्रशंसनीय समझे जायंगे। श्री गोस्वामी जी ने उक्त दोनों ग्रंथों में धर्म सम्बन्धी बहुत अच्छे २ उपदेश दिये हैं, लेकिन उन्होंने विनय-पत्रिका में एक जगह लिखा है—

"जाके प्रिय न राम वैदेही।

तजिये ताहि कोटि वैरी सम,
यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद,
विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत वृजवनितन भईं जग
मंगलकारी॥
...."

यद्यपि रामचरितमानस में भी श्रीयुत गोस्वामी जी ने कई जगह अयुक्त बात लिखी है, जैसे—पूजिय विप्र सकल गुन हीना। शूद्र न गुनगन ज्ञान प्रवीना। इसमें महात्माजी ने बड़ा ही पक्षपात किया है। वेदादि सच्छास्त्रों में गुणकर्म को प्रधान मान कर व्यक्ति को पूज्य समझा है। गीता में स्पष्ट ही दैवी सम्पत् की प्रशंसा और आसुरी सम्पत् की निन्दा है परन्तु श्रीगोस्वामी जी ने यहां पर वेद, मनुस्मृति, महाभारत और गीता के विरुद्ध उपदेश दिया है। स्त्रियों के सम्बन्ध में भी दो एक जगह अनुचित लिखा है। परन्तु इस समय उन सब बातों को छोड़ कर केवल उपर्युक्त भजन पर ही विचार करना चाहता हूँ।

सीताराम को प्रिय समझने के दो अर्थ हो सकते हैं। (१) यह कि सीताराम को उपास्यदेव समझ कर भजना और पूजना (२) यह कि अपना उपास्यदेव भिन्न होने पर भी सीताराम को धर्मात्मा समझ कर विरोध न करना। यहां यदि दूसरा अर्थ हो तब तो मुझे कुछ नहीं कहना है। परन्तु चूंकि तुलसीदास जी श्रीरामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे तथा उन्होंने उदाहरणों से अपने भाव को स्पष्ट कर दिया है। अतः यहां पर पहला ही अर्थ उनके अभिप्राय के अनुकूल है।

विचारणीय बात यह है कि उनका यह उपदेश इस समय जब कि सैंकड़ों सम्प्रदाय भारतवर्ष में फैले हुए हैं मानने योग्य अर्थात् कार्यरूप में परिणत करने योग्य है या नहीं?

मैं पूछता हूं कि यदि कोई मनुष्य सीता राम को न भजकर शिव को या शक्ति को, ईसा को या मूसा को, हजरत मुहम्द या राधास्वामी को, बुद्धदेव या तीर्थंकर को भजै तो क्या केवल इतने ही से उसे शत्रु समझना चाहिए?

यदि इसका उत्तर 'हाँ' दिया जाय तब तो मैं कहूँगा कि जिस प्रकार वैष्णवों को यह अधिकार है कि अपने से भिन्न देव की उपासना करने वालों को शत्रु समझें उसी तरह ईसाइयों को भी अधिकार है कि जो लोग ईसामसीह को न भजें उन सब को शत्रुतुल्य समझें। इसी न्याय से बौद्धों को, जैनियों को, सिक्खों को, यहूदियों को, मुसलमानों को अर्थात् प्रत्येक सम्प्रदायवाले को हक हासिल है कि अपने से भिन्न देवोपासकों को शत्रु समझें। न्यायशील सज्जनों! जरा सोचिए तो सही कि इस प्रकार सब मतवादियों का परस्पर एक दूसरे को शत्रु तुल्य समझना क्या सुखप्रद और शान्तिप्रद हो सकता है? कदापि नहीं। इसलिए अपने से भिन्न देवोपासना मात्र के कारण किसी को शत्रु समझना कदापि ठीक नहीं।

सीताराम न भजने वाले को महात्मा तुलसीदास जी सिर्फ शत्रु ही नहीं समझते, बलिक यह भी कहते हैं कि यदि वह परम स्नेह रक्खे तो भी उसे त्याग दीजिए (उस से सरोकार मत रखिये) यह बड़ा ही अनुचित उपदेश है। मैं कहता हूँ कि यदि कोई ईसा को, बुद्ध को या तीर्थंकर को भजे, शिव को या दुर्गा को या राधास्वामी को या किसी देवता को भजे, पूजे, यदि वह हम से प्रेम रखता है तो हमें भी उससे प्रेम करना सर्वथा उचित है। हां उसी दशा में वह शत्रु तुल्य त्याज्य है जब वह झूठा और बेईमान हो, अन्याय और अत्याचार में तत्पर हो। अतएव **भिन्न देव की उपासना करने मात्र के कारण किसी व्यक्ति को शत्रुतुल्य और त्याज्य समझना भारी भूल है, अज्ञान और अन्याय पर निर्भर है।**

अस्तु—मैं तो यही निवेदन करूंगा कि वैष्णवों को, सीताराम के भक्तों को, महात्मा तुलसीदास जी का यह उपदेश कभी नहीं मानना चाहिये।

सब के मानने योग्य सिद्धांत यही है कि चाहे कोई ईसा का भक्त हो या मूसा का, मुहम्मद को भजें या राधास्वामी को, कोई बुद्ध को पूजे या तीर्थंकर को, शिव को भजे या दुर्गा को, ब्रह्म की मूर्ति माने या अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करे, यदि वह सत्यवादी न्यायकारी और परोपकारी हो तो उसे शत्रु या त्याज्य नहीं समझना चाहिए। और किसी मत (मज़हब) का कोई व्यक्ति यदि कुटिल और कृतघ्न हो, अन्यायकारी हो तो, यदि वह हमसे प्रेम भी प्रकट करे तब भी वह शत्रुतुल्य और त्याज्य है।

महात्मा तुलसीदास जी की तरह महात्मा शेख़ सादी ने भी गुलिस्ताँ या बोस्ताँ में एक जगह बड़ी ग़लती की है। उन्होंने लिखा है—"ज़ुन्नार कुफ्र की अलामत है" अर्थात् जनेऊ नास्तिकता का चिन्ह है। श्रीयुत शेख़जी ने ज़रा भी नहीं विचार किया कि क्या जनेऊ न पहिनने वाले सबके सब धर्मात्मा और ईश्वरभक्त होते हैं और जनेऊधारियों में क्या ईश्वरभक्त या धर्मात्मा नहीं हैं? असल में काफ़िर तो वही है जो ईश्वर को न माने और अन्याय व अत्याचार में लगा रहे। अस्तु शेख़ जी ने बिना विचारे, साम्प्रदायिक पक्षपात के अधीन होकर एक अनुचित और बाहियात बात लिख दी, जिससे मुसलमानों को एक बुरी शिक्षा मिलती है। मैं पूछता हूँ कि संसार में जितने लोग जनेऊ नहीं पहने हैं क्या वे सब के सब कुरान के मुताबिक खुदा के मानने वाले और धर्मात्मा हैं? यदि सब ऐसे नहीं हैं तो जनेऊधारियों को नास्तिक (अधर्मी) बतलाना अज्ञान और अदूरदर्शिता नहीं तो क्या है? मनुष्य साम्प्रदायिक पक्षपात के वश बिलकुल अनुचित और असंगत बात कह बैठता है। देखिए महात्मा तुलसीदास जी और शेख़सादी ऐसे बड़े विद्वान् भी साम्प्रदायिक पक्षपात के वशीभूत होकर अन्याययुक्त वचन लिखने लग जाते हैं। अतः हम लोगों का परम कर्त्तव्य है कि साम्प्रदायिक पक्षपात को त्यागकर भिन्न मतवादियों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करें इसी में हित और सुख है।

परिवर्त्तन ।

[बंगाल की "एकाल सेकाल" के आधार पर]

लेखक—श्रीकृष्ण पांडे

[गताङ्क से आगे]



शोभा को नये मकान में आये कई दिन होगये। इतने दिनों में उसमें अनेक परिवर्तन हो गये। आज कल वह पहले की तरह बाहर घूमने फिरने नहीं जाती; मकान के सामने बग़ीचे में घूमा फिरा करती, जिन धर्म पुस्तकों को देखते उसे घृणा होती थी, आजकल अपनी इच्छा से हो वा पुलिन बिहारी के कहने से हो वह महाभारत रामायण आदि पढ़ने में अपना समय व्यतीत किया करती। एक दिन शोभा अपने कमरे में बैठी रामायण पढ़ रही थी, इतने में पुलिन बिहारी वहाँ आगये। और सस्नेह बोले—"रामायण पढ़ रही हो बेटी-अच्छा सुन्दरकाण्ड का वर्णन पढ़ो तो।"

शोभा पढ़ने लगी। पुलिन बिहारी की तन्मयता देखकर थकने पर भी वह पढ़ना बन्द नहीं करती। जिस समय पुलिन बिहारी की आंखोंमें प्रेमसे आंसूभर आते तब वह पुस्तक बन्द कर सोचने लगती। पुलिन बिहारी उस समय आँसू पोंछ कर कहते—थक गई हो—अच्छा आज यहीं तक सही।

कभी २ सतीश आकर उसे रसोई बनाने के लिये कहता, एक दिन सतीश के बहुत कहने से शोभा ने रसोई बनाई।

लेकिन अनुभवहीन होने के कारण रसोई ठीक नहीं बनी, सतीश का पित्त गरम हो गया. नन्दकिशोर ने भी कुछ कड़ी बातें कह दीं। लेकिन पुलिन बिहारी के समझाने बुझाने से सब शान्त होगये।

उपरोक्त घटना से शोभा के हृदय में कड़ी चोट लगी। उसने आजतक सतीश के मुंह से कभी कोई कड़ी बात नहीं सुनी, लेकिन उस दिन भाई के मुंह से फटकार सुनकर उसके दुःख की मात्रा और भी बढ़ गई।

दो तीन दिन बाद आज उसने सबेरे अपने हाथ फिर रसोई बनाई यद्यपि उस में बहुत सी भूल रह गई थी तब भी, वृद्ध श्वसुर और सासु की प्रशंसा ने उसको निराशा के गड्ढे से निकाल दिया, सतीश ने भी प्रशंसा की, नन्दकिशोर ने भी विशेष टीका टिप्पणी नहीं की। अतः आज वह ज़रा प्रसन्न थी। शाम को वह अपने बग़ीचे में एक चेयर पर बैठी हुई संध्या की लावण्य छटा का आनन्द ले रही थी, इतने में ही उसकी नज़र फाटक की तरफ़ गई। उसने पुलिन बिहारी के साथ एक पालकी मकानमें जाते देखी। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ, अपने विस्मय को निवारण करने के लिये वह जल्दी २ कदम बढ़ाकर ऊपर कमरे पहुंची। कमरे में जाकर उसने जो देखा उस से वह कांप गई। पलंग पर बेहोशी की हालत में निर्मल पड़ा था, बगल में ही लाल साड़ी पहिने एक स्त्री घूंघुट निकाल बैठी थी, पुलिन बिहारी ने उसे धीरज देते हुए कहा—कोई डर नहीं बेटी, तुम्हारे पुण्य से निर्मल

शीघ्र ही निरोग हो जायगा। यहाँ इसकी चिकित्सा में कोई त्रुटि न होगी और न सेवा सुश्रूषा में ही कमी रहेगी। तुम जाकर हाथ मुंह धो आओ जब से आई हो एक मिनट के लिये भी नहीं उठी ऐसा करने से तो तुम्हारा शरीर भी ख़राब हो जायगा।"

शोभा का शरीर कांप गया उसने मुंह फेर लिया। निर्मल की ओर देखेगी ऐसी हिम्मत उसमें नहीं थी। इतने में उस को लक्ष्य कर पुलिन बिहारी बोले—

"पराया कभी अपना नहीं होता बेटी इतने नौकर चाकर के रहते भी निर्मल की यह दशा, किसी ने खोज तक नहीं की। मुझे खबर तक न दे सका। देखती हो, लड़के की क्या अवस्था हो गई इसको तुम नहीं जानती हो बहू यह निर्मल की स्त्री विमला है। इसकी तरह स्त्री इस समय नहीं है। जाओ बेटी, इसको साथ ले जाओ, लड़की ने दो दिन से अभी तक मुंह में जल तक नहीं दिया। खबर पाते ही पागल की तरह दौड़ी चली आई, आये बाद जो पति के पास बैठी, फिर तो उठी ही नहीं।"

श्री शोभा ने विमला को देखकर एक बार अपने ऊपर दृष्टि फेरी विमला के रूप के आगे उसका रूप गौरव पराभूत हो गया। विमला के पहनाव आदि में कुछ विशेषता नहीं थी, साधारण साड़ी कुरती ही पहने हुए थी। लेकिन फिर भी बड़ी ही सुन्दर मालूम पड़ती थी। उसके सादे पहनाव और रूप को देखकर उर्दू शायर की यह शेर याद आ जाती है:—

"नहीं मोहताज जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी
फलक पर खुशनुमा लगता है कैसा चांद बिन गहने॥

ठीक है, जिसे विधि ने ही अपूर्व सौंदर्य दिया है उसको सौन्दर्य बढ़ाने के लिये गहने कपड़े की क्या ज़रूरत है, वह तो उसके सोने जैसे अङ्ग पर जंग सा मालूम पड़ता है अहा महाकवि बिहारी ने क्या ही ठीक कहा है:—

"पहिरत भूषण कनक के कहि आवत इहि हेत।
दीपक के से मोरचे देह दिखाई देत॥"

विमला को देखकर शोभा का हृदय आप से आप उसकी ओर खिंचा चला जाता था लेकिन जिस से इतनी शत्रुता की, जिसके सुख को उसने चौपट कर दिया, उससे किस मुंह से परिचय करेगी। यह सोचकर शोभा का मस्तक लज्जा से नत होगया। शोभा को इस तरह चुपचाप खड़ी देखकर पुलिन बिहारी फिर बोले "तुम खड़ी क्यों हो जाओ न! तुम इस समय घर की मालकिन हो किसी के आने पर उसके आतिथ्य सत्कार का प्रबन्ध तुम्हें ही करना पड़ेगा। और निर्मल की यह अवस्था है इसके लिये भी तो कुछ कम परिश्रम नहीं करना होगा" इतना कहकर एवं शोभाके ऊपर समस्त भार देकर पुलिन बिहारी चुपचाप घर के बाहर चले गये।

अब वाध्य होकर शोभा को विमला से बातें करनी पड़ीं। उसने रूंधे हुए कण्ठ से कहा—"आप चलिये"

विमला ने ज़रा सा घूंघट उठा, बड़ी सावधानी से शोभा के और पास जाकर खड़े होकर बोली, "उन्हें अकेले छोड़कर मैं कैसे जाऊंगी बहिन!"

वीणा की झंकार की तरह विमला के कण्ठ से निकले हुए शब्दों ने शोभा को और भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया-उसने

मुग्ध नेत्रों से विमला को देख कर कहा—दो दिन से आपने कुछ खाया नहीं है......

"दो दिन! दो वर्ष तक नहीं खाने से भी कोई दुःख नहीं है। बहिन! तुम यदि..." इस के आगे विमला और कुछ न बोल सकी उस की बड़ी २ आंखों से आंसुओं की धारा निकल कर उस के वक्षस्थल को भिगोने लगी।

इतनी कातरता का कारण न समझ कर शोभा ने कहा—"मैं दाई को बुला लेती हूं वह यहां बैठी रहेगी।"

रूंधे गले से विमला ने उत्तर दिया—"नहीं, नहीं, दाई नौकरों के भरोसे छोड़कर क्या शान्ति मिल सकती है। बहिन! मैं अभी नहीं आऊंगी। सच कहती हूँ मुझे ज़रा भी भूख नहीं है।"

इस नई घटना ने शोभा के मन के ऊपर बड़ा भारी प्रभाव डाला निर्मल बीमार है, उस के लिये उसका मन भीतर ही भीतर रो रहा था, लेकिन निर्मल उस का कौन है? उस दिन वृद्ध बुआ ने शोभा को पतिसेवा करने के लिये आदेश दिया था, वह बात उसको याद आगई, तिस पर अत्याचार-पीड़िता रमणी निर्मल का व्यवहार भी वह अपनी आंखों से देख रही थी, किन्तु स्वामी के लिये तो उस के मन में एक दिन भी ज़रा भी कष्ट नहीं हुआ। उस ने कहा—किन्तु जिसने तुम्हारे ऊपर इतना अन्याय—इतना अत्याचार किया है—उसके लिये तुम......विमला ने बाधा देकर कहा—छीः छीः बहिन ऐसी बातें मत कहो। तुम्हारा भी तो विवाह हुआ है, तुमने भी तो गृहस्थी सम्भाली है, तुम्हारे मुंह से ऐसी बात? क्या हम लोग पुरुषों के गुण दोष का विचार कर सकती हैं?

शोभा के हृदय का भार बढ़ता ही गया वह जवाब नहीं दे सकी। इतने में डाक्टर को लेकर सतीश ने कमरे में प्रवेश किया। विमला जल्दी से किवाड़ की आड़ में खड़ी होगई, शोभा भी उस के साथ ही बाहर चली गई।

तीन दिन तीन रात तक निर्मल को बिल्कुल होश नहीं था। पुलिन विहारी का गृह-संसार भी एक प्रकार अशान्तिमय होगया शोभा भी न मालूम कैसी २ हो गई थी, विमला की निरन्तर सुश्रूषा देखते २ वह एक एक बार विस्मित हो जाती। ऐसी सेवा ऐसा प्राणपण परिश्रम, उसने जीवन में यही प्रथम बार देखा था। नीरव सहिष्णुता और एकान्तिक यत्न से विमला देवी की तरह नई रोशनी लेकर शोभा के सौष्ठव को उपहास कर रही थी। कितनी स्थिरता कितनी गम्भीरता डाक्टर जो कहता उसका अक्षरशः प्रतिपालित न होता, ज़रा भी ग्लानि नहीं, अनिच्छा किसे कहते हैं वह जानती भी नहीं, मानो आशा उसके उत्साह को बढ़ाकर विमला को परिचालित कर रही थी।

पुलिन बिहारी के बार २ कहने पर विमला खूब सवेरे नहा धो आती और जल्दी से थोड़ा सा खाकर लौट आती और भी पांच सात दिन बीत गये, रोग दिन दिन बढ़ रहा था, साधारण ज्वर ने टाइफेट का रूप धारण कर लिया था अवस्था बड़ी बिकट हो रही थी, विमला को आशा नहीं रही। एक दिन साहस करके विमला ने पुलिन विहारी को बुलाकर कहा—"मैंने श्वसुर जी को देखा था, बीमारी में चिकित्सा के आगे कुछ धर्म कार्य कराते।"

पुलिन विहारी इशारा समझ गये। "न च दैवात् परम् बलम्" इस सत्य वाक्य

पर विश्वास होने पर भी नाना झंझटों में फंसे रहने के कारण वे इसका कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सके, इसके लिये वे लज्जित हो एवं आशा देकर व्यवस्था करने के लिये कमरे के बाहर चले गये, उस समय शोभा भी वहीं पर थी, उसने कहा—"यह तुम लोगों की कितनी मिथ्या धारणा है, जिस को देख नहीं सकते, उसके पीछे क्यों पड़ती हो ?',

तर्क करने की इच्छा न रहते भी विमला ने कहा-"देख पाना न पाना जिनके ज्ञान के ऊपर निर्भर करता है, बहिन ! हम लोग इस विषय में बिलकुल अंधे हैं। डाक्टर जो दवा देता है उसकी क्रिया का पता भी हम लोग उसके फल द्वारा ही लगाते हैं, इस लिये भगवान् से प्रार्थना करने का फल भी अप्रत्यक्ष नहीं रहता। जब कोई उपाय नहीं रहता अपने हाथ की बात नहीं रहती, तब निरूपाय हो हम भगवान् को ही पुकारते हैं। इसे अंध विश्वास कहो या जो मन में आवे वही कहो। हिंदू घर से जिस दिन यह लोप हो जायगा उस दिन और कुछ नहीं रहेगा। मैंने देखा है कि गोद के लड़के को विदेश भेजते समय माँ कहती है "जो करेंगे भगवान् करेंगे" इतने में पुलिन बिहारी ने आकर कहा "मैंने सब बन्दोबस्त कर दिया है कल से तुम्हारे कहे अनुसार ही काम होगा।"

आज दिन रात निर्मल की अवस्था बड़ी भयंकर रही, सबके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, सभी लोग चिन्तित थे। दूसरे दिन शाम को पुलिन बिहारी ने विमला से कहा—

"मेरी एक बात तुम्हें माननी होगी बेटी ! आज रात को तुम और नहीं जागने पाओगी।"

रात हो रही थी। इस बात से विमला बड़ी विपत्ति में पड़ी। उसके समझने में कुछ बाकी नहीं रहा, आज चौदहवां दिन है, आज की रात बड़ी भयानक है, हो सकता है आज ही विमला का सौभाग्यसूर्य अस्त होजाय। संसार में उसका और कौन है ? यद्यपि उसने एक दिन के लिये भी पतिप्रेम नहीं पाया, यद्यपि निर्मल दुश्चरित्र की भाँति अनेक दुष्कार्य कर रहा था, तथापि वही उसका सर्वस्व है। निर्मल उसको प्राण से भी ज्यादा प्यारा है, देवता से भी अधिक भक्ति का पात्र है। उसके आँसू नहीं रुके वह मुंह नीचा करके रोने लगी। पुलिन बिहारी ने फिर स्नेह भरे स्वर में पूछा "मेरी बात नहीं मानोगी, बेटी ! विमला ने मन दृढ़ करके रूंधे गले से कहा--"मैं बड़ी अभागिनी हूँ, आप मेरे पिता तुल्य हैं, तकदीर में जो लिखा है उसको तो कोई मेट नहीं सकता, तब क्यों मुझे इस सुयोग से वंचित् करते हैं।"

वृद्ध का स्नेहपूर्ण हृदय कांप उठा। वे ज़ोर देकर बोले "नहीं बेटी मैंने ही भूल की थी, तुम देख सकोगी यमराज की क्या ताक़त है, जो तुम्हारे रहते निर्मल का बाल तक छू सके।" विमला पुलिन बिहारी के पैरों पर गिर कर रोती २ बोली-"आप आशीर्वाद कीजिये- पिता, जिस से मेरे हाथ चूड़ी बनी रहे। मैं तो और कुछ नहीं चाहती।"

विमला की बातें सुनकर केवल शोभा ही विस्मित न हुई बल्कि पुलिन बिहारी को भी रोमाञ्च होगया। क्या सचमुच ही सावित्री आकर इस अभागे के लिये यमराजसे जीवनदान लेने के लिये कृतसंकल्प खड़ी है। पुलिन बिहारी ने गद्‌गदकण्ठ से कहा-"आशीर्वाद देता हूं, बेटी ! तुम्हारा पुण्य निर्मल को अक्षय करके उठावे।"

सारी रात यमराज के दूतों से युद्ध करने के बाद भोर को निर्मल ने आंख खोली, सुलक्षण देख डाक्टर भी आश्वासन देकर बिदा हुए। विमला का हृदय नाचने लगा, इतने बड़े आनन्द को सहना उसके लिये असह्य हो गया, वह आनन्द से रो पड़ी।

पुलिन बिहारी रात भर वहीं बैठे थे, सुवह जाते समय उन्होंने कहा—"तुम्हारे पुण्य को छोड़ कर यम के हाथ से निर्मल की रक्षा करने की शक्ति किसी में नहीं थी। जिस दिन घर में तुम्हारी तरह रमणी जन्म लेंगी उसी दिन पृथ्वी से शोक, ताप और अशान्ति का राज्य उठ जायगा।"

पुलिन बिहारी चले गये। निर्मल के होठ खुले, उसने स्पष्ट स्वर में कहा—ओह! बड़ा कष्ट है।

विमला थर २ कांप रही थी, किस तरह वह कष्ट मिटेगा, इसी चिन्ताने उसे बेचैन कर दिया। हाथ में अनार के रसकी कटोरी लिये वह थमककर खड़ी होगई, उसमें इतना साहस नहीं था कि वह निर्मल से अनार का रस पीने के लिये पूछे। क्या मालूम निर्मल उस का कण्ठस्वर सुन कर विरक्त हो जाय।

वह खड़ी २ यही सोच रही थी कि निर्मल ने फिर आंख खोल कर कहा—बड़े ही कष्ट से कहा—"जल"

विमला ने रुलाई को रोक शंकित हृदय से आगे बढ़ कर कहा—"थोड़ा अनार का रस पीलो।"

सोये २ ही उस ने रस पी लिया। उसके पीले मुख पर प्रसन्नता छागई। धीमे स्वर में कहा—"तुम कौन हो देवी ?"

विमला का हृदय फटा जारहा था, उसने रुंधे गले से कहा—"मैं, मैं तुम्हारी दासी ......" इस के आगे वह कुछ न कह सकी, अवसन्न हो कर वहीं जमीन पर बैठ गई। निर्मल ने भी आंख बन्द करलीं।

(१६)

कितने दिनों के बाद आज शोभा के साथ विमला अच्छी तरह बातें कर रही है। स्वामी के जीवन का कोई भय नहीं है, इस सुसम्वाद ने उस का भय दूर कर दिया। आज एकान्त में शोभा को पाकर उसने सहसा पूछा—"तुम स्वामी की सेवा क्यों नहीं करती हो बहिन!"

इस का क्या उत्तर है? यह शोभा की समझ में नहीं आया। यद्यपि विमला के आचरण से उसके मन में नई धारणा ने जन्म ले लिया, तौ भी उसने मुस्करा कर कहा—"तुम लोग इतनी बेवकूफी क्यों करते हो?"

विमला ने मन ही मन कहा—"मूर्ख! बेवकूफ बोल के ही मेरी यह दशा है?" शोभा से उसने कहा— "तुम मुझे पढ़ना लिखना भी सिखा सकती हो?"

"हां, सिखा सकती हूं—लेकिन पढ़ने लिखने के बाद तुम्हारी यह मति नहीं रहेगी" विमला उदास होकर शोभा का मुंह देखने लगी। शोभा ने फिर कहा "तुम जो इतना परिश्रम कर रही हो, क्या तुम दाई हो?"

विमला ने उत्तेजित स्वर में कहा—"ना ना, जिससे स्त्री स्वामि सेवा से विमुख हो जाय ऐसी शिक्षा मुझे नहीं चाहिये।"

ठीक इसी समय पुलिन बिहारी ने जाकर कहा "अच्छा २ तुम इसी के साथ दो दिन रहो, यदि इसकी तरह हो सको तब तो सुख की सीमा नहीं है।" शोभा का मन विचलित हो गया, पुलिन बिहारी ने फिर कहा "सेवा करने में जो सुख है वह तो और किसी काम में नहीं है।"

शोभा ने खड़े होकर गम्भीर स्वर में कहा—"क्या इसी को आप लोग ठीक रास्ता कहते हैं? मेरी समझ में नहीं आता।"

केवल मैं नहीं कहता हूं बहू, यह सनातन काल से चला आया है, इसको स्वीकार करे इतनी शक्ति किस में है? कह कर धीरे २ चले गये। शोभा गाढ़ चिंता में पड़ गई।

"तुम पढ़ी लिखी हो, तुमको कोई बात कहते डर लगता है, किंतु फिर भी यदि तुम एक बार भी स्वामी का सौभाग्य पा सकतीं"

शोभा का ध्यान इस समय दूसरी ओर था। कुछ दिनसे रमा और रणधीर भी आगये थे. खाने पीने के बाद दोपहर को नीरवता के समय एक प्रकार आनन्द की सृष्टि कर दी थी। उसको देख कर शोभा के सुख की इच्छा ने व्याकुल कर दिया। उसने सोचा, यदि विमला की बात ठीक है, सच ही इस में कुछ सुख है तो वह क्यों मारी मारी फिरती है। इतने दिनों से जो करती आरही है, इस समय ज़रा घर की ओर मन देकर ही देखे, किन्तु उसके स्वामी तो उसकी बात तक नहीं पूंछते। निर्मल और शोभा के उस दिन की आचरण की बात सुन कर, नन्दकिशोर उसी दिन से शोभा से दूर दूर रहते थे। अपने आचरण पर विचार कर शोभा कांप गई। पति के प्रति उसने जो अत्याचार किया है, उसको सोचने मात्र से चक्कर आ जाता है, फिर उनका क्या अपराध है।

विमला ने इस चिन्ता में बाधा देकर कहा—"बहिन! मैंने भैया से सब सुन लिया है। तुमने मुझे बहिन कहा है, उसी से ज़ोर देकर कहती हूँ भ्रम-पथ में मत जाओ। हो सकता है, मूख कहकर तुम मेरी बात की हंसी उड़ाओगी। पर एक बार परीक्षा कर के देखो, स्वामिसेवा में जो सुख, जो अमृत मिलता है वह पृथ्वी में और कहीं नहीं है।" इतना कहकर विमला उठ गई। शोभा ने हाथ पकड़ा किंतु उसने हाथ छुड़ाकर कहा—अब तो और नहीं बैठ सकती, बहिन! दवा देने का समय हो गया है।"

"और दो मिनट बैठो"

"नहीं बहिन! और अब देर नहीं कर सकती," कह कर वह शीघ्रता से चली गई। शोभा आकाश पाताल सोचते २ बगल के घर का आनन्द देख रही थी, उसके हृदयके भीतर एक प्रकार की वेदना होने लगी।

"निर्मल?"

"क्यों भाई?"

"अब क्या करना निश्चय किया है?"

निर्मल उठ कर बैठ गया। एक दीर्घ स्वास त्याग कर उस ने कहा—क्या करूंगा करने में तो कोई कसर नहीं रक्खी जो अब भी कर्तव्य निश्चित करना पड़ेगा।

रणधीर डर गया। क्या मालूम अभी तक निर्मल का मन नहीं पसीजा हो। निर्मल गम्भीर स्वर में बोला—"मा को देखने की बड़ी इच्छा है, वह क्या मेरा अपराध

भूल कर मुझे अपनी गोदी में स्थान देंगी?"

रणधीर को आशा हुई। उसने दृढ़ता से कहा—"तुम्हारे लिये वह वहां बैठी हाय हाय कर रही हैं। उनको वहाँ छोड़ कर आसकता था, कितना झूठ सच समझा कर आया हूँ। शोकाकुल वृद्धा तुम्हारी यह अवस्था देख कर बच नहीं सकतीं थीं?"

रणधीर—अब एक बार देश चलो भाई।

"अच्छा चलो किन्तु ...."

किन्तु क्या भाई—जो हो साफ कहो, जीवन देकर भी तुम लोगों को सुखी कर सकूं............"

"विमला"?

उस के लिये चिन्ता नहीं, वह देवी है, इतना अपराध करने वाले को इस तरह जो आत्मसमर्पण कोई कर सकता है।

"उस के लिये कुछ असाध्य नहीं है, वह मेरा अपराध क्षमा कर देगी।"

रणधीर जवाब देरहा था निर्मल ने बाधा देकर कहा—'क्या कहूं भाई, जिस समय वह आई, उस समय मुझे चेत था, आते ही रोने लगी, और पांवों के पास बैठकर न मालूम क्या २ किया, यहां आया नहीं तो बचता भी नहीं, उसके यह दो महीने में उस को क्षण भर भी आलस्य में नहीं देखा। खाना, सोना, सब भूल जीवन की माया त्याग, एक जगह बैठकर जैसे देव आराधना कर रही हो। विमला न होती तो मैं बच नहीं सकता।'

रमा बगल ही में बैठी थी यों तो वह सलेज लगती है, लेकिन विवाह के पहले से ही निर्मल उसे भाभी ही कहता था। उसका लक्ष्य कर निर्मल ने कहा—सच कहता हूं भाभी! विमला में एक बारगी "परिवर्तन" हो गया। लज्जा, भय, मान, अपमान कुछ नहीं, जैसे त्याग की मूर्ति; सब तरह से वह केवल-वह मुझे-मुझ पापी को ही चाहती है। ऐसी एकान्तिकता मैंने पृथ्वी में और कहीं नहीं देखी।"

* * *

देखते २ रात के नौ बजगये। सुसज्जित कमरे में बैठा २ निर्मल विमला की प्रतीक्षा कर रहा था। इन दो महीने में वह विमला का होगया। कहां शोभा और कहां नीलिमा। विमला के सामने सब तुच्छ दिखाई पड़ती हैं। इतनी घटनाओं में इस दो महीने की बीमारी के लिये वह विधाता के सामने कृतज्ञ है। यदि ज्वर न आता तो उसके लिये विमला को पहिचानना कठिन था।

खुली हुई खिड़कियों से ठंडी २ हवा आरही थी, जूही फूल की खुशबू से घर मतवाला होरहा है, बिजली की रोशनी से कमरा जगमगा रहा है। घूंघुट निकाले, विमला को बिछौने के पास आकर खड़े होते ही निर्मल ने पुकारा—"विमल!"

विमला जल्दी से कमरे की खिड़कियां बंद कर पलंग पर निर्मल के बगल में बैठ कर बोली—'क्या?"

घूंघट कम कर वह पति के बगल में और भी सट कर बैठ गई। निर्मल ने कातर-कंठ से कहा—

"बोलो विमल! साफ़ २ कहो, तुमने मेरा अपराध क्षमा किया?"

यही एक बात बार २ सुन विमला तंग

होगई थी, इस लिये आज उसने साहस कर के कहा—"बार बार यह बात कहकर मुझे वृथा कष्ट क्यों देते हो ?"

"नहीं विमल सच कहता हूं" मेरे जैसा पापी और दूसरा कोई नहीं है।

विमला और सुन नहीं सकी, उसने बाधा देकर कहा—"न हो न सही, तुम्हारे पाप पुण्य का विचार करने के पहले मेरी मृत्यु हो जाय। मैं पाप पुण्य नहीं जानती, मैं तुम्हें—एकमात्र तुम्हें जानती हूं, तुमने मेरा अपराध क्षमा कर मुझे अपने चरणों में स्थान दिया है, इससे अधिक पुण्य के फल की मैंने कभी आशा नहीं की।"

विस्मय और हर्ष से निर्मल उछल पड़ा, उसने जोर से विमला को छाती से लगाकर कहा—"ओह ! मैं कितना मूर्ख हूँ—रत्न को न पहचान कर कांच लेकर मस्त था।"

विमला के तप्त हृदय में आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। मुख खोलकर कुछ कहेगी ऐसी शक्ति उसमें नहीं थी, उसने मन ही मन परमात्मा से प्रार्थना की—"भगवन् ! इस बंधन से अब और मुझे अलग न करना।"

चारों ओर आग में पड़े हुए सोने की तरह, पवित्र तीर्थ किये हुए पापी की तरह, और आराधनारत साधक की तरह, देवमूर्ति पुलिन बिहारी और उनकी स्त्री, रामधीर और हास्यप्रिय रमा, निर्मल और देवी विमला के बीच में रहते २ शोभा दिन २ अपने हृदय की कालिमा धोनेकी चेष्टा करतीथी। मिलित दम्पतियों का आनन्द विलास, अन्यान्य आकर्षण सुख, शांति ने उसको लालायित कर दिया। पूर्व कार्य का स्मरण करते ही उसे रोमाञ्च हो उठता।

कितने ही दिनों से शोभा पुलिन बिहारी को भी नहीं देखती उसका सारा दिन विमला से बात करते ही बीतता था। विमला उसे शान्त्वना देती, पति के प्रति स्त्री का क्या कर्तव्य है ? यह समझाती, सतपथ पर चलने से सुख अनिवार्य्य है, यह समझा कर उसे मन स्थिर करने के लिये कहती।

और भी एक मास बीत गया, निर्मल अब पूर्णरूप से नीरोग हो गया, उसका मन देश जाने के लिये छटपटा रहा है। लेकिन पुलिन बिहारी की इच्छा के विरुद्ध वह कुछ नहीं कर सकता। पुलिन बिहारी ने निश्चय कर लिया था कि अगर विमला के संसर्ग से भी शोभा नहीं सुधरी तो फिर उसका सुधारना असम्भव है।

चांदनी रात है छत पर बैठी हुई शोभा विमला और रमा की सुख की बात सोचकर छटपटा रही है।

ऐसे समय सतीश ने आकर कठोर स्वर से पुकारा—"शोभा।"

शोभा जवाब नहीं देसकी, उसकी आँखों से पानी बरसने लगा, सतीश ने फिर कहा—"शोभा इन लोगों के संसर्ग से भी तेरा मन शुद्ध नहीं हुआ। हा अदृष्ट !"

सतीश की इस वेदनापूर्ण वाणी ने शोभा को और भी विचलित करदिया, वह स्वयं तो सुखी नहीं हो सकी, लेकिन उसके लिये प्राण से भी अधिक प्रिय भाई सतीश भी दुःखी हो रहा है। उसने संक्षेप में पूछा—

"क्या करने को कहते हो ?"

"और क्या कहूँगा, हिंदू स्त्रियां जो करती हैं ?"

"मैं कुछ नहीं जानती, भाई तुम मुझे सिखा दो।"

शोभा का करुणा स्वर और रोता हुआ मुख देखकर सतीश के हृदय में बहुत ही दुःख हुआ। उसने आज तक कभी शोभा को कुछ नहीं कहा था, आज इस तरह कठोर बर्ताव करते उसके मन में ज़रूर दुःख हुआ था, लेकिन क्या करे, अपनी एकमात्र प्राण-प्रिय बहिन के भविष्यको सोचकर वह घबरा गया, उसी के लिये वह इतना कठोर हुआ। उसने उसी भाव से शोभा के प्रश्न का उत्तर दिया—

"जो अपराध किया है, उसका तो कोई प्रायश्चित नहीं तब भी जा, स्वामी के पैर पकड़ कर क्षमा प्रार्थना कर।"

स्वामी को कहां पावेगी वह यही सोच रही थी। इतने में ही पीछे से आकर विमला ने उसका हाथ पकड़ कर कहा "आओ बहिन! नीचे चलो" नीचे आकर उसने एक कमरे की ओर इशारा करके कहा "इसी घर में"। इतना कह कर वह चली गई

शोभा के पैर कांप रहे थे। एक पांव आगे बढ़ कर दो पांव पीछे हट गई। नन्दकिशोर की रूक्षदृष्टि ने उसको और भी घबड़ा दिया। दूरसे पुलिन बिहारी ने कहा—"जाओ बेटी, पैर धर कर क्षमा मांगो, उसके बिना तो तुम्हारी कोई गति नहीं है।"

शोभा आगे बढ़ी, कांपते हुए पांवों से वह नन्दकिशोर के पास जा नीचा मस्तक कर खड़ी हो गई। नन्दकिशोर ने मुख घुमाकर एक उपहास की हंसी हंसी, शोभा के हृदय से एक चीत्कार निकलना चाहता था, लेकिन गला रूंधा रहनेसे वह रो नहीं सकी। पुलिन बिहारी ने अभय देते हुए बाहर से ही कहा—बोले, "मुझे क्षमा करो, गंगा सब पापियों को अपनी गोद में स्थान देती है, तुम जो मेरे लिये उसी तरह पवित्र हो, मेरे शरीर में कितना पाप क्यों न हो, तुम सब को धो कर पवित्र कर दोगे।"

देववाणी की तरह पुलिन बिहारी की बात शोभाके कानों में गई। उसने बड़े कष्टसे कही? "क्षमा" इसके आगे उसके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकल सका।

कुर्सी पर बैठे हुए नन्दकिशोर घबरा गये। यह क्या भीषण परीक्षा। शोभा के पाप कर्म की बात तो उससे छिपी नहीं थी, वह बड़ी ही समस्या में पड़ा—बाहर से पुलिन बिहारी ने चिल्ला कर कहा "पैरों पड़ कर क्षमा मांगो बेटी, तुम्हारा पाप कम नहीं है।" शोभा के मुंहसे बात नहीं निकली, वह नन्दकिशोर के पैरों पर गिर कर "क्षमा क्षमा" कर रोनेलगी-नन्दकिशोर क्या करे कुछ तय नहीं कर पाया इतने में ही पुलिन बिहारी ने कहा—"क्षमा करो बेटा! मैं कहता हूं उसका समस्त पाप धुल गया, बहू को त्याग मत करो, वह तुम्हारी धर्मपत्नी है, मैं जिस को घर में लाया हूँ उस का एक दिन का अपराध भी तुम भूल जाओ" बोल कर वे चले गये।

एक तो पिता का आदेश, दूसरे शोभा की इस समय की हालत को देख कर नन्दकिशोरने शोभाको अपने हाथोंसे खड़ा किया खड़े होते ही शोभा शिथिल देह से पति की छाती पर गिर पड़ी उसकी आंखों से सावन भादों की तरह वर्षा की झड़ी लग गई। नन्दकिशोर ने अपने हाथ से उस के आंसु पोंछ कर उसे कलेजे से लगा लिया।

* समाप्त *

प्रोत्साहन

[ले०—'तुक्कड़']

उठो अब आलस को त्यागो ।
निद्रा, तन्द्रा छोड़ो भाई भोर भया जागो ॥

कलह कपट की चाल भुलाओ ।
भाव, उदार हृदय में लाओ ॥
धर्म करो शुभनाम कमाओ ।
अपयशसे भागो ॥ १ ॥

मेल जोल में विघ्न न डालो ।
सब को अपना मित्र बनालो ॥
प्रेम—नेम की ध्वजा उठालो ।
दिल को मत दागो ॥ २ ॥

मंगल मय जीवन हो स्वामी ।
सत्पथ के होवें अनुगामी ॥
तजें विकार न करें गुलामी ।
प्रभु से यह माँगो ॥ ३ ॥

प्रबल इच्छा ।

(ले० " ग्रामीण ")

गनेश और महेश दोनों भाई थे। पर दोनों के विचारों में बड़ा अन्तर था, गनेश को अपने विचारों की विशुद्धता के कारण जिन बातों में ज़रा भी कठिनाई नहीं मालूम होती थी, उन्हीं बातों के कारण महेश को रात भर नींद नहीं आती थी। महेश और गनेश का यह विचार-वैषम्य, देखनेवाले बड़े आश्चर्य में पड़ते थे। अभी अखबार में निकला कि "बम्बई के एक सैादागर ने एक व्यवसाय प्रारम्भ किया था, उसके व्यवसाय में पंद्रह हज़ार का घाटा हुआ। घाटे के दुःख को वह सहन न कर सका, परिणाम यह हुआ कि कल रात के नो बजे उसने आत्म-हत्या करली"।

यही समाचार था—यही खबर थी—गनेश और महेश दोनोँ ने इस को पढ़ा, महेश तो व्याकुल हो गया, पर गनेश मानव-निर्बलता का ध्यान करके हंस पड़ा। गनेश से महेश ने पूछा भाई तुम हंस क्यों पड़े, क्या कारण है। गनेश ने कहा तुम इतनी चिन्ता में क्यों पड़ गये—पहले इसको बतला दो, तब मैं अपने हंसने का कारण तुम्हें बतलाऊं। महेश ने अपना विचार कहना प्रारम्भ किया।

महेश—मैं तो पछताने लगा कि राम! राम!! पंद्रह हज़ार का घाटा—विचारा मर गया। उसके बच्चों का क्या हाल होगा। इत्यादि। और साथ ही मेरा यह भी विचार हुआ कि यदि इस अवस्था में मैं होता तो शायद मेरा भी यही हाल होता।

गनेश—बस-फिर तुम भी अपने को मर्द कहोगे, जो आदमी १५ हज़ार रुपये के लिए अपनी जान दे देता है क्या वह मनुष्य है—जानते हो उसने ऐसा क्यों किया—इस लिये कि उसका मन रुपये में रहता था ऊपर से सफेद कपड़ा पहिनने, मीठी बातें करने और भला आदमी कहलाने का उद्योग तो वह ज़रूर करता था, पर हृदय में उसके निर्बलता थी, मन उसका रुपये में था। इसी प्रकार जो लोग व्याख्यान तो सच बोलने का देते हैं, पर हृदय में सच की महिमा नहीं समझते वे गिरते हैं, झूठ भी बोलते हैं, पाप भी करते हैं।

महेश—बात तो ठीक है, और सुनाइये-

गनेश—देखो मूर्तिपूजा और संध्या पर व्याख्यान खूब सुनो पर उन व्याख्याताओं को कभी मन्दिरमें जाकर संध्या करते देखा है? उनके सामने जब भी सांसारिक दुःख आ पहुंचेगा, वे ढल जायंगे, वे पतित हो जायेंगे। और जो हृदय प्रभु की भक्ति करेगा, वह बाहरी आक्रमणों से कभी न घबड़ायेगा। मनुष्य को अपने हृदय के बनाने की ज़रूरत है। हृदय निर्मल और विचार यदि पुष्ट रहेंगे तो सब काम बन जायगा और कठिनाइयां दूर भाग जायंगी।

देखिये-जेल में चोर भी जाते हैंऔर देशभक्त भी, पर दोनोँ के विचारों में अन्तर

रहता है, इसी लिए चोर रोता है और देशभक्त हंसता है। कष्ट वही, सब बातें वही, पर विचारों में अन्तर है। बड़े बड़े महापुरुष जो इस समय या कभी भी और कहीं भी हुए हैं विचारों की प्रबलता के कारण प्रसिद्ध और प्रकट हैं।

भाई महेश! निर्बल प्राणी जिन बातों का उद्योग करते हैं, सबल उनको ठुकराता है। देखो न एक संन्यासी स्वामी दयानन्द ने भारत में नये विचारों का प्रसार कर दिया, बड़े बड़े प्रलोभन उनके सामने आये मगर किसी की भी परवाह नहीं की साथ ही उचित बात के कहने में कभी नहीं हिचकते थे, चाहे प्राण ही क्यों न चला जाय। यही कारण है है कि इस समय वे अमर हो गये। ईसामसीह का जीवन भी ऐसी ही शिक्षाओं से पूर्ण है। महापुरुषों का जीवन विचारों की विमलता से भरा पड़ा है। महात्मा गांधी जी वर्त्तमान काल के महापुरुषों में एक हैं जिनके विचारों के कारण सफलता सामने हाथ बांधे खड़ी रहती है।

तुम्हारा हृदय इतना कमज़ोर है कि यदि तुम्हारे सामने ज़रा भी कठिनाई आवे तो तुम घबराने लगते हो। कठिनाइयों के जीतने के लिये ही तो मनुष्य का जन्म हुआ हैं। कठिनाइयों के चक्कर में पड़कर अगर हम पिस जायं तो किस तरह हमारा उद्धार हो सकता है।

महेश—भाई 'गनेश' बात तो यह ठीक है, पर सांसारिक धंधे ऐसे हैं कि इनका प्रभाव बिना पड़े नहीं रहता, इनके प्रभाव से बचना सब का काम नहीं है। बड़े २ महात्मा संत, महन्त, महापुरुष इसके भुलावें में आ जाते हैं, क्या यह ठीक नहीं है। इस बात के एक दो नहीं अनेक उदाहरण हैं। हमारी गिनती किस में है? हम तो निर्बल प्राणी हैं ही हमारे सामने तो हमेशा कठिनाइयों का पहाड़ खड़ा रहता है। कठिनाइयों को आह्वान करना क्या मेरे ऐसे लोगों का काम है। भगवान् की जब दया होती है तभी सब काम बनता है।

गनेश—ठीक है, भगवान् की दया तो मुख्य है। पर अपने कर्म की ओर भी ध्यान तो देना चाहिये। क्यों भाई ऊपर मैंने आप से कहा था वह बात समझ में नहीं आई। आप कहते हैं-बड़े २ संत, महन्त इसके चपेटे में आ गये—यह कहना आपका गलत है। सन्त, आप किस को कहते हैं? महात्मा किस को कहते हैं? ऊपर के वेश को देख कर भुलावे में आने वालों के लिए वे सन्त महंत और महात्मा हैं। यदि वे सन्त होते तो क्या उनका पतन हो सकता? कदापि नहीं। संत का हृदय साधारण हृदय नहीं होता। उसके हृदय से जो झरना झरता है वह अनेकों के हृदय को पवित्र और मन के ताप को शांत कर देता है। हृदय में सन्तता है—हृदय में महात्मापन है और हृदय ही में सभी गुण भरा पड़ा है। जो बाहर से जगत् को ठगने में लगा रहता है और हृदय में अपने को ठगता रहता है, उसकी जीवन-नौका हमेशा डगमगाया करती है और जब भी ज़रा सा झोंका लगा कि डूब जाती है, यही कारण है कि जिनकी तुम चर्चा करते हो वे नालायक हो जाते हैं। जिनको अपने हृदय को उच्च करने की शिक्षा मिली है भला उनका पतन हो यह सम्भव नहीं। तुम अपने चेहरे को शीशे में

देखो। कितना सुन्दर कितना भव्य सब कुछ है, मगर तुम ने अपने हृदय को भी शीशे में देखा है ? वहां भी ऐसी ही सुन्दरता है, वहां भी करुणा, दया, प्रेम, परोपकार है ? यदि नहीं है तो तुम्हारा यह बाहर का रूप व्यर्थ है और तुम्हारे सामने जब भी ऐसे प्रश्न आयेंगे जिनमें तुमको सफल होना चाहिये तो तुम गिर जाओगे, उदाहरण के तौर पर सुनो-

तुम सौदा ख़रीदने बाज़ार जाते हो पैसे धेले चुरा लेते हो, मगर बाहर से ईमानदार हो क्योंकि मालिक को यह पता नहीं कि पैसे धेले के लिये यह क्या चोरी करेगा, तुम्हारे सामने जब सौ, दो सौ का मौक़ा आयेगा तो तुम ले भागोगे। इसी प्रकार और विकारों की भी अवस्था है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सभी विकारों को मन में स्थान देकर ऊपर भगत बना रहने वाला आदमी धोखा खाता है और भारी धोखा खाता है। यही कारण है कि तुम्हारे सामने उन्हीं लोगों की मूर्ति है जो देखने में भले हैं पर हैं बुरे। ऐसे विचारों को मारो, भगाओ, अच्छे विचारों का अभ्यास करो, वही काम देंगे, उनसे सब कुछ कर लोगे। दूसरों को दिखाने के लिए जो दयावान् बनता है और हृदय में क्रूर है वह दयावान् कैसे हो सकता है ?

मैं समझता हूँ तुम्हारे समझ में बात आ गई होगी।

महेश—बहुत कुछ आ गई। मगर भाई साहब संस्कार भी तो कोई चीज़ है ! मेरा संस्कार मुझे दबा रहा है। सुनता हूँ, समझता हूँ पर संस्कार के कारण फिर उसी डाल पर जा बैठता हूँ।

गनेश—यह तो ठीक है, संस्कार तो एक दिन में नहीं बनता। संस्कार तो बनाने से बनता है। चित्त को प्रपञ्च से खींच कर अच्छे कामों में लगाने से संस्कार बनता है। अब जब कि तुम्हें सच्चा मार्ग सामने दिखलाई दे रहा है, तो क्यों नहीं इस रास्ते पर चलते, छोड़ो प्रपञ्च। झूठी बड़ाई के पीछे पड़ने से क्या ? सच्ची बड़ाई प्राप्त करो, तभी प्रसन्नता होगी। और सच्ची बड़ाई अगर मिल सकती है तो हृदय सच्चा रखने से। भगवान् के सामने बड़ा बनने का-

उद्योग करो।

अपने को मत भूलो—

तुम मनुष्य हो भगवान् ने जन्म दिया है कुछ करने के लिए—देखो इस भजन को पढ़ो-याद करो—

आप को आप नहीं बिसरो।
जैसे स्वान कांचके मन्दिर,
भूमि भूमि भूंकि मरो।
ज्यों केहरि प्रतिमा के देखत,
बरबस कूप परो।
मरकट मूठि छाँड़ि नहीं दीनी,
घर घर द्वार फिरो।
सूरदास नलिनी के सुवना,
कह कौन पकरो॥
आप को आप नहीं बिसरो।

घबड़ाने की आवश्यकता नहीं धीरज धरिये आप आर्य सन्तान हैं—भाई साहब बहुत सोच समझकर काम करने की ज़रूरत है हमारे पुरुषाओं (बड़ों) ने राज छोड़ा शरीर छोड़ा, अनेक कष्ट सहनकिये मगर अपने हृदय को नहीं गिराया, हमारे सामने तो भरत का उदाहरण है, जिन्होंने सारे वैभव को लात मारी और अपने भाई के दर्शन, आज्ञा को सब कुछ समझा—हमारे सामने-क्रूर-

कुकर्मी, कपटी औरंगजेब का उदाहरण नहीं है, हम आर्य हैं—अपने माता-पिता भाई बंधुओं की सेवा करते हुए, जीवन समाप्त करें यही ख़ास बात है । चलिए--अभ्यास कीजिए, मन को तुच्छ बातों में मत लगाइये अच्छी बातों में लगाइये, मनको, इच्छा को, संकल्प को, प्रबल बनाइये देखिए क्या क्या आनन्द नहीं मिलते, जीवन का सुख इसी में है ।

कबीरदास ने मन को वश में करने के विषय में कई दोहे कहे हैं, यहां दो दोहे सुनाता हूँ, सुनिये—

मन के हारे हार है,
मन के जीते जीत ।
कह कबीर प्यो पाइये ।
मन ही के परतीत ॥
माला फेरत युग गया,
गया न मनका फेर ।
करका मनका छांड़िके,
मन का मन का फेर ॥

महेश—भाई साहब थोड़ा और सुनाइये इसी विषय पर कुछ और चर्चा चलाइये अभी भोजन का समय नहीं हुआ, थोड़ी देर के बाद भोजन करने चलेंगे तबतक कुछ और सुनाइये ।

गनेश—अच्छी बात है सुनिये, 'प्रबल इच्छा'—के साधनों पर ज़रा विचार करिये तब आगे बढ़ा जायगा ।

विमल-विचार

विचार में अशुद्धि, गंदगी न रखना चाहिए, इस बातका ध्यान निरन्तर रक्खाजाय । जैसे ज़ब हम किसी स्त्री को बहन—माता या कन्या कहदें तो आजन्म हम यह बात ध्यानमें रक्खें और उसके साथ ऐसे ही बर्ताव करें-जिस समय—एक क्षण के लिए भी विचारों में मलीनता आ जायगी—इच्छा की लड़ी ढीली पड़ जायगी, इच्छा की लड़ी को मज़बूत रखने के लिए विचारों को बहुत ही निर्मल रखना चाहिए—विचार जब निर्मल रहेंगे तो वस्तुओं में दोषों का दर्शन कम होगा—गुण अधिक दिखलाई देंगे । जब विचार निर्मल रहेंगे तब-सूर्य चन्द्रमा—पृथ्वी, तारे इनके सार को समझेंगे इनके साथ, उनके गुणों के साथ अपने को चलायेंगे । पर जब हमारे हृदय में मलीनता होगी तो ये उज्वल, निर्मल, निर्दोष पदार्थ भी अच्छे नहीं प्रतीत होंगे । वृक्षों की उपकार वृत्ति का आनन्द स्वार्थी को कब मिल सकता है । नदी, पहाड़ के निर्मल हृदय को कपटी कब देख सकता है ।

दृढ़ निश्चय ।

जो कहो, करो, जो सोचो पूरा करो, डावां-डोल मत बनाओ निश्चय को पक्का रक्खो मत हटो, निश्चय से एक अंगुल मतहटो डटे रहो, देखो-इच्छा में कितना बल आता है । डरपोक भीरु, युद्ध को देखकर भाग जाने वाले पग पग पर फिसलकर गिरने वाला क्या करसकता है, मत खिसको फिसलने को मृत्यु समझो चढ़ो, आगे बढ़ो मनुष्य बनो बस यही प्रथम और अन्तिम बात है । तन मन, धन सब इसी से मिलेंगे ।

इतने ही में, नौकर आया कहा भोजन तयार है, दोनों भाई भोजन करने चले गये पर भोजनके समय भी यह चर्चा चलती रही , उस चर्चा का हाल फिर कभी पाठकों को सुनाया जायगा, इस समय बस ।

प्रसन्नता ।

[ले० 'प्रसन्न']

दुनिया का काम बंद नहीं होगा । कहीं रंज और कहीं ख़ुशी ये बातें होती ही रहेंगी । किसी पेड़ में पत्ते और फूलों के गुच्छे दिखलाई देंगे और कोई सूखा सुनसान जंगल में पड़ा रह जायगा । मरना—जीना—हंसना—खेलना ये सभी काम जारी रहेंगे । अगर कोई चाहे कि एक मिनट के लिए भी संसार के व्यवहार बंद होजायं तो यह असम्भवं है । चिड़ियों का चहचहाना—बच्चों का तुतलाना, प्रातःकाल की शीतल मंद सुगंध वायु चलेगी और हमेशा संसार निवासियों के लिए सुख का कारण बनेगी । सभी सामग्रियों को प्रभु ने लोगों के सुख ही के लिए बनाया है पर मनुष्य की अपनी बुद्धि और अपने विचार की करामात है वह चाहे उन वस्तुओं को सुख प्राप्त करने में प्रयोग करे चाहे अन्य प्रकार से नष्ट कर दे । जो लोग सुख प्राप्त करने में अपना समय अपनी बुद्धि और अपने ज्ञान का प्रयोग नहीं करते वे अपने जीवन को तो नष्ट कर ही देते हैं, पास पड़ोस और अपने देश को भी रसातल को भेज देते हैं । भगवान् ने गीता में कहा है—

प्रसादे सर्व दुःखानां, हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसोह्याशुः बुद्धिपर्यवतिष्ठते ॥

मतलब संसार के जितने कष्ट जितने संकट जितनी चिंतायें हैं सब प्रसन्नता के समक्ष पानी भरती हैं । जो प्रसन्न चित्त रहने वाला पुरुष है उसकी बुद्धि और उसके विचार भी निर्मल रहते हैं । पर प्रश्न तो यह है कि प्रसन्नता मिले कैसे ?

समय का सदुपयोग ।

प्रातः उठने के बाद चेहरे पर उदासी, मनमें मलीनता, विचारों में विकार दिखलाई दें तो प्रसन्नता कैसे प्राप्त होगी—हां प्रातःकाल उठते ही—जिस तरह कलियां खिलकर पुष्प होजाती हैं, जिस तरह सूर्य भगवान् अपने बालप्रकाश से संसार की शोभा अनोखी कर देते हैं, आसमान में सुख के झरने झरते हैं, उसी तरह से हमारे शरीर मन में प्रकाश हो—प्रसन्नता के झरने झरें तो ठीक—मगर जिसको रात में नींद नहीं आई जो रात जागकर बिता चुका है, जिस के सामने कोई उद्देश्य नहीं है वह कैसे प्रसन्न रह सकता है इसी प्रकार संध्या की बात है । शामको सोते समय अपने दिनभर के कामों का स्मरण करके जो आदमी करवटें बदलता रहेगा—जिसके तोशक और तकिये—जिसकी कोमल शय्या कांटे की तरह उसके हृदय में उसके कुकृत्यों के कारण चुभेगी वह भला किस प्रकार आनन्द से निद्रा ले सकता है । नतीजा यह निकला कि दिनरात अच्छा काम न करने वाला अर्थात् अपने अमूल्य समय को खोने वाला कभी प्रसन्न नहीं हो सकता इसी लिए कहा है किः—

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मनः ।
किंनु मे पशुभिस्तुल्यं, किंनु सत्पुरुषैरपि ॥

मनुष्य को अपने जीवन का हिसाब रखना चाहिए—देखना चाहिए कि मैंने कितने मिनट व्यर्थ खोये हैं, यदि जीवन-घड़ियां व्यर्थ गईं तो प्रसन्नता दूर चली जायगी । अपने उद्देश्य की सिद्धि करने के लिए जीवन घड़ियों का सदुपयोग आवश्यक है । एक मिनट भी व्यर्थ खोने से घंटों की हानि होती है जो आदमी महीने में दो दिन

भी व्यर्थ खो देता है उसको यह समझना चाहिए कि हमारा महीना व्यर्थ गया—अपनी ड्यूटी का ध्यान जो सेवक न करके उसको आलस में खो देता है भला वह प्रसन्न कैसे रह सकता है। प्रसन्नता के लिए यह सोचना कि वह कहीं से हमारे पास आजायगी मूर्खता है। प्रसन्नता हमारे कर्मों से ही प्राप्त होती है। उसको बनाने वाले हम स्वयं हैं। हम रोते रहें, नानी के नाम अपने को कोसते रहें। मुहर्रमी सूरत बनाये रहें तो प्रसन्नता तो हमसे कोसों दूर भागेगी, प्रसन्नचेता क्रोधी नहीं होता-दुराचारी भी नहीं होता-कामी और लोभी नहीं होता—असत्यवादी नहीं होता—क्यों इस लिए कि उसको प्रसन्न रहना है। प्रसन्न रहने के लिए सदाचार आवश्यक है, कार्यपटु होना आवश्यक है। जो लोग सुकर्म न करके प्रसन्न रहते हैं उनको बेहया-निर्लज्ज समझना चाहिए। भगवान् पर विश्वास करके अपने समय को व्यर्थ मत खोइये, बस यही, प्रसन्नता की कुंजी है, इस कुंजी को अपने पास रखने से प्रसन्नता का दरवाज़ा खुल जायगा।

—————

हमारी मंजूषा

समालोचना

अमर जीवन

आयु वृद्धि के अनेक रहस्य

कुछ वर्ष व्यतीत हुए कि काशी नगरी से एक सुप्रसिद्ध सचित्र मासिक पत्र सुनाम विख्यात "नवजीवन" निकला करता था। उसके सम्पादक श्री० डाक्टर केशव देव शास्त्री थे। शास्त्री जी भारतवर्ष के प्रतिनिधि बन अमेरिका में निमन्त्रित किये गये थे। निरन्तर छः वर्ष के निवास के पश्चात् आप भारतवर्ष में वापिस आये। आप ही की लेखनी से अब हिन्दी साहित्य में एक अपूर्व ग्रन्थ 'अमर जीवन" नामी प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में अनेक वैज्ञानिक अनुभव दिये गये हैं। आप लिखते हैं—

स्मरण रहे कि हमारा बाह्य स्वास्थ्य, हमारी बाह्य आकृति और हमारे बाह्य आचार व्यवहार हमारे आभ्यन्तरीय जीवन के प्रतिबिम्ब हैं, जब कि आभ्यन्तरीय जीवन हमारे संकल्पों और विचारों का ही परिणाम है, हमारे माता पिता के संस्कारों ने हमें शरीर प्रदान किया है। गुरु, आचार्य्य और सम्बन्धियों ने हमें मानसिक रचना में सहायता दी है, संस्कारों द्वारा हम अपने संकल्पों को अन्तरमनरूपी प्लेट पर डालते और तदनुकूल ही शरीर और मनको ढालते हैं। हम अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हैं इत्यादि। आप ने संस्कार फिलासफी और योग शास्त्र की शिक्षा अनुसार प्राचीन आर्य्यों के स्वाधीन विकासवाद (Conscious evolution) के मत की अनुपम व्याख्या की है, और सिद्ध किया है कि सात्विक आहार, व्यायाम, प्राणायाम, ब्रह्मचर्य और आत्मिक संकल्पों द्वारा हमें ऐसे

वेदोक्त साधनों को अपने जीवन का लक्ष बनावे कि जिनके प्रयोग से हम निरन्तर स्वास्थ्य और सौंदर्य्यपूर्ण अखण्डित यौवन उपलब्ध कर सकते हैं। आपने एकसौ ही वर्ष नहीं वरन चार सौ वर्ष पर्य्यन्त आयु वृद्धि स्वास्थ्य और आनन्दमय जीवन के अनेक रहस्यों का इस अमर जीवन ग्रन्थ में वर्णन किया है। ग्रन्थ की छपाई अति सुन्दर है १५ परिच्छेद और २४० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। स्थान २ पर शास्त्रों और वेदों के प्रमाण दिये हैं। साथ ही पाश्चात्य वैज्ञानिकों के विचारों को बतलाया है। मूल्य १॥) सजिल्द के २) रुपये मिलने का स्थान प्रबन्धकर्ता सैनीटेरियम देहली।

हिन्दी पढ़ो।

[ले० "हिन्दू"]

यह बात बिलकुल ठीक है कि कहना जितना सहल है उतना करना नहीं। हम लोगों में यह एक बड़ा भारी दूषण है, जबतक हम इस दोष से मुक्ति नहीं पा जायेंगे तब तक हमारा उद्धार होना कठिन है। आज मैं जिस विषय की ओर लोगों का ध्यान खींचना चाहता हूँ वह है हिन्दी भाषा। हिन्दी के विषय में कहने वालों की कमी नहीं। बड़े २ महात्मा, संत, महाराज सब लोग कहते क्या करते चले आ रहे हैं। दादू, कबीर, तुलसी, सूर सभी लोगों ने हिन्दी को अपनाया हिंदी में ही सब उपदेश आदेश दिया। स्वामी दयानन्द ने तो आर्यों का धर्म ही हिंदी पढ़ना बतलाया। स्वामी जी के जितने ग्रन्थ अब तक देखे गये हैं, सभी हिंदी में हैं यहां तक कि स्वामी जी ने वेदभाष्य भी हिन्दी में किया वेद के मानने वाले, वेद के हामी, वेद पर कटने मरने वालों को जब हम देखते हैं कि वे हिन्दी नहीं जानते तो बड़ा दुःख होता है। भला बिला हिन्दी जाने वे हिन्दू-शास्त्रों का स्वाद कैसे ले सकते हैं क्या उर्दू तर्जुमा से उनको वह स्वाद—वह सुख मिल सकता है जो मूल ग्रन्थों के पढ़ने से। माना कि सत्यार्थ-प्रकाश उर्दू में भी छपा है। मगर आर्यों को स्वामी दयानन्द के मानने वालों को सोचना चाहिए कि सत्यार्थ-प्रकाश का उर्दू, अंगरेज़ी और अन्य भाषाओं में छापने का यह मतलब नहीं है कि उससे हम लाभ उठावें। वह तो है अन्य धर्मावलम्बियों को समझाने के लिये उनके हृदय में सत्यार्थ-प्रकाश का बड़प्पन बैठाने के लिये, हम जो हिंदू हैं, आर्य हैं हमारे लिये तो यह डूब मरने की बात है कि हम सत्यार्थ-प्रकाश के मूल लेख को न पढ़ सकें। इसी प्रकार के और भी ग्रन्थ जो स्वा० जी ने हिंदी में लिखे हैं उनका असली आनंद हम नहीं उठा सकते। उर्दू तर्जुमा के पढ़ने वाले आर्यों के मुंह से वेद-मंत्र, श्लोक और हिन्दी शब्दों का अशुद्ध उच्चारण सुनकर बड़ा खेद होता है। सुना जाता है कि वेद-मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण करने वाला पाप का भागी होता है। क्या जो लोग हिन्दी में न पढ़कर, संस्कृत में न पढ़कर उर्दू में वेद मन्त्रों को पढ़ने या लिखने का प्रयास करते हैं, वे इस पातक से बच सकते हैं, कदापि नहीं बच सकते। उन्हें चाहिए कि वे अपने शरीर के आराम के लिए

धर्म को न बिगाड़ें। स्वामी दयानन्द की दी हुई रोशनी से लाभ उठायें। आर्यसमाज की कार्यवाही बहुत जगह उर्दू में लिखी जाती है। उर्दू में नोटिस भेजा जाता है, उर्दू का बहिष्कार करने को हम नहीं कहरहे हैं, हम कहरहे हैं अपनी सम्पत्ति को अपनाने के लिये वह इधर उधर बिखरी पड़ी है। शुद्ध २ हिंदी में न लिख सकना न पढ़ सकना, क्या शर्म और लज्जा की बात नहीं है। हिन्दी के पत्र आर्य समाजियों की कृपा से पंजाब में फूलते फलते भी नहीं। एक पत्रिका 'ज्योति' मासिक है कितने लोग इसको पढ़ते हैं, और समझते हैं, क्या यह विचारने की बात नहीं है? हम अपने कर्त्तव्य से इतना विमुख हो गये हैं कि इतनी बात को भी नहीं समझ सकते? यह रोज का अनुभव है, कि पंजाब या दिल्ली के रहने वाले अपने लड़कों को उर्दू पढ़ाने में अपनी शेख़ी समझते हैं, कुछ लोग तो यह समझते हैं कि विना उर्दू पढ़े पेटपालन नहीं हो सकता उनके प्रति हमें यह कहना है कि तब तो आप अपना नाम भी जयराम की जगह हबीबुल्ला ही रख लेते तो अच्छा होता, क्योंकि ऐसा करने से पेट पालन मजे में होता—हिंदू जाति की यह कमजोरी उसे रोज़ २ रसातल में लेती चली जाती है। हमको अब आंख खोल कर अपने आस पास देखना चाहिए और अपने घर कितना रत्न पड़ा हुआ है, उसका पता लगाना चाहिये।

निज भाषा उन्नति करो, यह है सुखको मूल।
बिन निजभाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल॥

पहले हिंदी पढ़ो, यह मातृ-भाषा है, यह राष्ट्र-भाषा है, और यही धर्म भाषा है, फिर और भाषायें ग्रहण करो जो बड़े लोग हिंदी नहीं जानते उनसे भी उसके पढ़ने की नम्रता के साथ प्रार्थना करनी चाहिये। बिना इसके अब हिंदू या आर्य कहलाना भी अपमान की बात है एक बात तनिक ध्यान देकर सुनिए आप बड़े जोर के साथ कहते हैं—

कि "वेद पढ़ने का सब को अधिकार है" पर क्या अपने हृदय पर हाथ रख कर आप बतला सकते हैं कि सचमुच वेदों का ज्ञान कितने लोगों को हुआ। हिंदी भाषा तो आती ही नहीं वेद पढ़ने के लिये झगड़ा, लड़ाई, आफ़त मचाना यह क्या बुद्धिमानी है? सभी बातें एक दम मत कीजिये। उठिये पहिले हिंदी में लग जाइये। पढ़िये, पढ़ाइये नौकरों को हिन्दी का ज्ञान कराइये। जब जनता हिंदी खूब जान लेगी तब गवर्नमेन्ट अपने आप हिंदी को कचहरी की भाषा कर देगी। इसमें सन्देह न मानिये बड़ी २ रियासतों—बीकानेर, भरतपुर इत्यादि में आज भी कचहरी की भाषा हिन्दी है। यू० पी० में कोई रोक टोक नहीं। बात यह है कि वहां की जनता ने जोर लगाया हिन्दी पढ़ी मजबूर होकर सरकार को हिन्दी अपनानी पड़ी। विशेष न लिखकर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि यदि चाहते हैं कि हम हिन्दू आर्य बने रहें और हमारा नाम सार्थक हो तो हिंदी पढ़िये। इस जगह जो लोग हिन्दी पढ़ने की ओर दत्तचित्त हैं, उनको धन्यवाद है। जो जो संस्थाएं हिन्दी के लिये उद्योग कर रही हैं वे भी धन्यवाद के योग्य हैं—

हिन्दी से कर प्रेम नेम हिन्दी अपनाओ।
हिंदी ही के गीत मीत निशिदिन तुम गाओ॥

अब तो आओ मोहन प्यारे ।

ले०—श्री पंडित नेतराम शर्म्मा

दया करो करुणामय अब तो आओ मोहन प्यारे ॥
टेरत टेरत थक बैठे हैं रूँधे कण्ठ हमारे ॥ १ ॥
मोर रोर नहिं कोकिल कूजत तुम्हरे विरह दुखारे ॥
कुञ्ज करील कदम्ब अम्ब सब लता—वियोग पजारे ॥ २ ॥
कल कल मिस से यमुना सिसके रो न सके भय मारे ॥
ऋद्धि सिद्धि सब दूर परानी—चमके अकाल कारे ॥ ३ ॥
वन में मृग—पक्षी नहिं दीखें गाय हीन घर द्वारे ॥
यमुना मीन—हीन विधवासी भूषण—वसन विसारे ॥ ४ ॥
मरी पूतना नित्य नाशती बालक—सखा तुम्हारे ॥
गो गोपी गोपाल लाड़ले फिरते मारे मारे ॥ ५ ॥
तुम्हरे अब उपमान न मिलते ढूंढ़ थके थल सारे ॥
वन उपवन सर मूल फूल फल खिल विकसे न विचारे ॥ ६ ॥
नहिं वेदध्वनि देत सुनाई साम—गान नहिं होता ॥
करे कौन? चौबे मण्डल तो भंग छान कर सोता ॥ ७ ॥
दुखी—भिखारी को लख वेदन वज्र हृदय को होता ॥
धूलि बन चला है गोवर्धन इससे रोता रोता ॥ ८ ॥
लहराती हरियाली, चटका करतीं थीं जहं कलियां ॥
निर कंकालाकुल हैं तुम्हरी अब हा व कुञ्ज गलियां ॥ ६ ॥
तुम्हरी नगरी की छाती पर अरबी ऊंट अड़ाते ॥
भारी भयकारी कटुकीलें गड़ी खड़ी हैं पाते ॥ १० ॥
बंशी वट यमुना—तट पर बैठे चोर और बट मारे ॥
नन्द गांव बरसाना उजड़े तव क्रीड़ा थल सारे ॥ ११ ॥
गो विधवा की शोक बह्नि ने ब्रज—वृन्दावन जारे ॥
तुम्हरी केलि—थली को कलुषित करते हैं हत्यारे ॥ १२ ॥
अब भूरे बानर मथुरा में डटे छावनी डारे ॥
जिनके भय से ब्रज-वनिताएं विवश रहें मन मारे ॥ १३ ॥
लाखों नग्न नारियां होतीं दुःशासन के मारे ॥
अर्ध नग्न हो लाखों दुखिया भटके द्वारे द्वारे ॥ १४ ॥
देश भक्त थे कई सुदामा आन—मान प्रण वारे ॥

तेरे प्यारे भारत के हित पड़े बेड़ियां द्वारे ॥ १५ ॥
भारतीय पाण्डव अति पीड़ित पराधीनता मारे ॥
हिन्दी सैरन्ध्री वन रोती, तुम बिन कौन उबारे ॥ १६ ॥
क्या जग वायु तुम्हें भी लागी प्यारे गीता वारे ॥
अथवा तुम भी बना चाहते लाल टायटिल धारे ॥ १७ ॥
अपनी भाषा—विमुख भ्रष्ट हम गिट पिट रटते हारे ॥
रूठ गये क्या अब न लखोगे हमरे मुखड़े कारे ॥ १८ ॥
काले तिरस्कार पाते हैं, क्या यह भय हिय धारे ॥
वा घृणा वश तुम भी हम से रहा चाहते न्यारे ? ॥ १९ ॥
अथवा भारत छोड़ श्याम ! तुम भी यूरोप पधारे ?
जो नहिं सुनते दुखित जनों का क्रन्दन हाहा कारे ॥ २० ॥
आ, मुरली—ध्वनि सरसरास से सूखे हिय सरसारे ॥
पिला पिला गीतामृत हमको सम्भावित बनवारे ॥ २१ ॥
क्षुद्र हृदय दुर्बलता तज कर उठे क्लीवता त्यागे ॥
सावधान हो, सिंह नाद कर आर्य्यजाति फिर जागे ॥ २२ ॥
शोक—ओक छतियां भर आईं अब नहिं सकैं पुकारे ॥
दया करो करुणामय, अब तो आओ मोहन प्यारे ॥ २३ ॥

हम दीर्घायु कैसे हो सकते हैं ?

(पाश्चात्य डाक्टरों की सम्मति)

डाकृर डैनियल पच. केस एम. डो. ओरियन्टल वाचमैन एण्ड हेरल्ड आफ़ हेल्थ नामक पत्र में इस प्रकार लिखते हैं:—

"हेनरी फोर्ड का कथन है कि मनुष्य लोग सवा सौ १२५ वर्ष की आयु तक जीवित रह सकते हैं किन्तु उन्हें चाय काफी तम्बाकू और शराब अवश्य छोड़ना होगा।" न्यूयार्क टाइम्स के अगस्त १२ के विशेषांक में यह शीर्षक निकला था। हेनरी फोर्ड जब एक बार अपने 'वेसाइड-इन' नामक स्थान पर मिस्टर हार्डसन् और मिस्टर फ़ाइरेस्ट की संगति में छुट्टियां मना रहे थे तब उन्होंने कहा था कि मनुष्य के लिये सवा सौ वर्ष जीवित रहना सम्भव है अगर उसको शरीर कला के काम करने वाले अंगों को क़ार्बन से रहित रखा जा सके। उन्होंने कहा कि जैसे मैं स्वयं चलने वाले इञ्जिन की रक्षा करता हूँ वैसे ही अपने शरीर की रक्खूं तो मैं शायद उस आयु को प्राप्त होऊं। जब

उनसे यह प्रश्न किया गया कि—'अगर कार्बन पहले से ही विद्यमान होता तब आप उसे कैसे निकालेंगे? उन्होंने उत्तर दिया कि—

"चबा २ कर खाने से। तुम जानते हो कि जब तुम भोजन को चबा २ कर खाते हो तो जल्दी तुम सन्तुष्ट हो जाते हो और बहुत भोजन की आवश्यकता नहीं रहती। केवल उत्तम भोजन करो। अस्पताल में तजुर्बा किया गया तो पता लगा कि सफेद चूहे बगैर भोजन के तीन दिन तक दूसरे चूहों की अपेक्षा जिन्हें सफेद रोटियां ही खिलाई गई थीं, अधिक ज़िंदा रहे। अपने घर में हम लोग सफेद रोटी नहीं खाते हैं।

काफी, चाय, तम्बाकू और शराब यह जीवन की वृद्धि के लिये मि० फोर्ड की सम्मति में बिलकुल त्याज्य वस्तु हैं। उन का कथन है कि भावी मनुष्यों की खाने की वस्तुओं में उन्हें स्थान न मिलेगा और ऐसा भविष्य दूर नहीं है।

इडिसन का परदादा म० कारनेरो के सादे जीवन से इतना प्रभावित हुआ था कि उसने भी वही ढंग स्वीकार कर लिया और १०२ वर्ष तक जीवित रहा। उस पुत्र अर्थात् इडिसन का दादा उसी प्रकार पला और १०५ वर्ष की आयु को प्राप्त हुआ। उसके सात पुत्र हुये थे जिनमें से इडिसन का पिता एक था। वे सब ८० वर्ष से ऊपर जीवित रहे, तीन तो शतायु के लगभग पहुंचे इडिसन कहता है कि मेरी उन्नत स्वास्थ्य और कार्य्य करने की शक्ति मुख्यतः मेरे परदादा के सादे जीवन का परिणाम है जिसका मैं भी अनुकरण कर रहा हूं।

ल्यूथर बरबैंक की स्वास्थ्य चर्चा।

मिस्टर बरबैंक—वह अद्भुत वनस्पति शास्त्रवेत्ता जिसने वनस्पति-जीवन में संसार भर में सब से अधिक आविष्कार किये हैं—भी ऐसा मनुष्य है जो कि बहुत संयम का जीवन व्यतीत कर रहा है और तम्बाकू चाय और काफी के बहुत ही विरुद्ध है। अपने क्षेत्र में मिस्टर बरबैंक वैसा ही अद्भुत व्यक्ति है जैसे कि इडिसन और फोर्ड अपने २ क्षेत्र में हैं।

यद्यपि सारे प्राणी १२५ वर्ष या १०० वर्ष की आयु को नहीं पहुंच सकते हैं तथापि अगर समय रहे तो हर एक मनुष्य जितनी उमर अब भोगता है उस से बढ़कर भोग सकता है और उस से कहीं बढ़कर काम कर सकता है अगर वह फोर्ड, इडिसन, बरबैंक अथवा इन्हीं के समान अन्य सादे जीवन व्यतीत करने वाले वर्तमान समय के उन महानुभावों के जीवन का अनुकरण करें जो कि इस वृद्धावस्था में बड़े अद्भुत कार्य्य कर रहे हैं।

वृद्ध टामस पार—जो कि इंगलैंड की वेस्ट मिस्टर ऐबी दफ़न किया गया है—१४६ वर्ष की आयु में मरा था। अपनी मृत्यु से कुछ देर पहले जब राज-वैद्य उसे देखने आया तो उसने उसे बड़े उत्तम स्वास्थ्य में पाया। उसकी अंतड़िया अब भी कोमल और काम करने वाली थीं। डाक्टर ने कहा कि कोई कारण नहीं कि यह और दस या बीस वर्ष क्यों न जीवित रहे। किन्तु अभाग्य से वह राज-दरबार में ले लिया गया। एक वर्ष का यह जीवन उसके जीवन को समाप्त करने के लिये पर्याप्त था। उसको सारी ज़िंदगी सादे जीवन की रही थी न वह शराब पीता था न तम्बाकू खाता था न सिगरेट पीता था और वह निरामिश भोजी था अतः राजगृह भोजन ने उसे मृत्यु का ग्रास बनाया।

हमारे मांस, मद्य, चाय, काफ़ी, तम्बाकू आदि सेवन करने वाले भारतीय नव-

युवक और नवयुवतियों को जो कि बगैर चाय और मीट (मांस) के ग्रास नहीं उठा सकते उपरोक्त वर्णन से सबक सीखना चाहिये।

अमरीका से हम क्या सीख सकते हैं ?

स्वामी बोधानन्द के उपरोक्त विषयक एक व्याख्यान के कुछ उद्धरण मार्डन रिव्यू में निकले हैं जिनका भाव हम ज्योति के पाठकों के हितार्थ यहां भी उद्धृत करते हैं। उनका कथन है कि:—

"श्रमी दो प्रकार के होते हैं—एक प्रवीण दूसरे अप्रवीण। प्रवीण श्रमी वह कहलाते हैं जैसे कि बढ़ई या कारीगर वह अमरीकामें प्रति दिन१५$ उपार्जन करतेहैं अर्थात्४६) रुपये हर रोज़! और तुम्हारे बढ़ई क्या पाते हैं ? शायद १४ आना प्रति दिन से अधिक नहीं पाते। फिर देखिये, अप्रवीण श्रमी जैसे कि भंगी आदि प्रति दिन ५$=१५) रुपये अमरीका में पाते हैं। अमरीका की बहुत भारी दौलत बराबर लोगों में बंटी हुई नहीं है पांच प्रतिशतक मनुष्य ऐसे होंगे जिनके पास सारी-सम्पत्ति का ९५ प्रति शतक भाग होगा तथापि वहां गरीबी नहीं है। भारतवर्ष की तरह जी दहलाने वाली गरीबी नहीं है, अमरीका में अगर आदमी काम करने को तैयार है, अगर वह आलसी नहीं है तो वह सुगमता से १५) या न्यूनाधिक प्रति दिन कमा सकता है। इसलिए चूंकि अमरीका स्वाधीन देश है उसको यह लाभ प्राप्त है। यह सब उसकी स्वाधीनता का ही परिणाम है। सिद्धान्त रूप से मेरा विश्वास है कि जब तक कोई जाति बिलकुल स्वतन्त्र और स्वाधीन नहीं है वह अपने भाग्य का निर्माण नहीं कर सकती, वह समृद्धिशाली नहीं बन सकती।

मैं सम्पत्तिशास्त्र में रुचि रखता हूँ। मैं अपने लोगों को भली भांति-पुष्ट, उत्तम वस्त्राभूषित, अपने पैरों पर खड़े हुए समृद्ध देखना चाहता हूँ। स्वामी विवेकानन्द जी कहते थे कि अगर कुछ भोग न हो तो योग हो नहीं सकता।

अमरीका की तीन वस्तुओं ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला है। पहिली तो अमरीका की शिक्षाप्रणाली है। अमरीका में प्रत्येक बच्चा चाहे लड़का हो या लड़की १५ वर्ष की आयु तक अवश्य विद्यालय जाया करता है। यह राज्यका कानून बना हुआ है। गरीब घरानों के बच्चों को पुस्तकें, कलम, पेंसिल कागज़ आदि शिक्षा की आवश्यक वस्तुयें राज्य की ओर से मुफ़्त मिलती हैं। शिक्षा बिलकुल निःशुल्क है, पढ़ाई की फीस कहीं पर नहीं लगती। सच्ची शिक्षा से मेरा मतलब और है मैं जानता हूं तुम्हारा सबका मतलब धार्मिक शिक्षा से है किंतु अमरीका की जिस शिक्षा का मैं वर्णन कर रहा हूँ वह दुनियावी शिक्षा है तथापि यह दुनियावी शिक्षा यह अक्षरों का ज्ञान जाति के उत्थान के लिए आवश्यक है और हमें भी बड़ी आवश्यकता है।

दूसरी बात जो अमरीका की मुझे अच्छी लगी वह उसका स्वास्थ्य रक्षा विभाग है। यदि कोई महामारी फैल जावे तो सैकड़ों आदमी स्वयं सेवक बन जावेंगे और राज्य की ओर से ऐसी संस्थाओं के बनाने के लिए रुपया मिलेगा जो कि उसके कारण प्रकृति का अनुसंधान करके उसके दूर हटाने का उपाय करें। यदि राज्य के पास पर्याप्त धन न होगा तो वह धनी लोगों के ऊपर विशेष कर लगावेगा। जाति के आपत्तिकाल में राज्य लखपतियों से धन इकट्ठा करके जनता के लाभार्थ व्यय करती है उदा-

हरण के लिये बाढ़, अग्नि, या महामारी के समय यदि धन की आवश्यकता है और अगर कोई दे नहीं रहा है तो राज्य को अधिकार है कि एक फेलर या उनके सदृश लोगों के धन पर विशेष कर लगा देवे, अतः प्रजातन्त्र राज्य का यह बड़ा भारी लाभ है। यद्यपि अमरीका में जातीय धन समासम बंटा हुआ नहीं है तथापि वह देश में ही रहता है और जातीय आवश्यकता पड़ने पर काम में लाया जा सकता है। धन प्रजा का धन है और जैसा कि मैंने कहा शासन प्रजातन्त्र है, प्रजा के लिये है और प्रजा द्वारा है। शासन हमेशः प्रजा के लाभार्थ ही है और उच्च पदाधिकारी राज्य कर्मचारी बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि "हम प्रजा के सेवक हैं।" मैंने अमरीका के तीन प्रधानों को जनता के सामने यह वाक्य कहते सुना है।

फिर स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सब अमरीका के बच्चे राज्यवैद्यों द्वारा एक बार अवश्य परीक्षा किये जाते हैं। अमरीका के लोगों ने एक बड़ी भारी मनोवैज्ञानिक सचाई का पता लगाया है। उनका विश्वास है कि अगर बच्चों के शरीर रुग्ण हों या अंगहीन हों तो उनमें आवारा गर्दी, जालसाजी, झूठ बोलने, चोरी आदि की आदतें बढ़ जाती हैं बड़े २ वैज्ञानिकों ने यह निकाला है। अतः वहाँ की जनता अपने बच्चों के स्वास्थ्य के लिये इतना ध्यान देती है।

तीसरी बात जो अमरीका की मुझे प्रभावित करती है वह वहाँ की साधारण समृद्धि है। जिसकी बाबत मैंने अभी बताया है जिसके दुहराने की आवश्यकता नहीं।

हमें भारत में भी अपनी ज़ातीय रक्षा के लिये इन तीनों चीज़ों की बड़ी भारी आवश्यकता है अर्थात् पहिली शिक्षा, दूसरी स्वास्थ्य, तीसरी सम्पत्ति। जाति के प्रत्येक व्यक्ति को उसके प्राप्त करने का अधिकार है।

बनिता विनोद

स्त्रीजगत्

जापान की आज कल की देवियां

जापान मैगज़ीन में एक लेख निकला है जिस से पता लगता है कि जापान के शहरों में प्रायः साधारण स्कूल की कन्यायें ज्यादःतर विदेशी वस्त्र पहिनती हैं, परन्तु गावों में इस प्रकार—पाश्चात्य सभ्यता का रंग नहीं फैला है और वहां साधारणतया सब स्कूल की लड़कियां स्यालू रंग के या बैगनी रंग के लहँगे पहिनती हैं।

१८ या १६ वर्ष की आयु में लड़कियां विद्यालय विभाग की अधिकारी परीक्षा पास कर लेती हैं। यह आयु विवाह की आयु समझी जाती थी, परन्तु अब तो २२, २३ वर्ष तक कुमारी रहती हैं यद्यपि गावों में वही पुरानी चाल अब भी है।

अमरीका में युद्ध के कारण और हटने के उपाय पता लगाने के सम्बन्ध में अभी एक बड़ा भारी सम्मेलन हुआ। युद्ध के कारण

जो उस सभा ने वादविवाद करके निश्चय किये उसे एक कमेटी ने संकलन किये हैं जो कि मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, नैतिक, सामाजिक और मिश्र विभागों में बंटने से कई प्रकार के हैं। इसके इलाज भी बहुत प्रकार के हैं उनमें से प्रधान इलाज यह बताया कि एक सारे भूमंडल का न्यायालय स्थापित किया जावे।

राजनैतिक क्षेत्र में अमरीका की स्त्रियां

अमरीका के संयुक्त प्रांत में जो प्रधान का चुनाव हुआ था, उस अवसर पर दो स्त्रियां दो प्रांतों की गवर्नर बनाई गईं। ८८ देवियां राज्य के प्रबन्धक कमेटियों में ली गईं और एक अमरीका की व्यवस्थापक सभा की प्रतिनिधि बनी और एक न्यूयार्क राज्य की सचिव चुनी गई। १० वर्ष पहिले स्त्रियों को वोट अधिकार ही न थे, किंतु शत वर्ष के चुपचाप, अहिंसात्मक और क्रियात्मक कार्यों द्वारा उन्होंने यह परिस्थिति प्राप्त की है।

कोचीन व्यवस्थापक सभा में स्त्री सदस्य

कोचीनकी सरकारने श्रीमती टी० माधवी अम्मा नामक एक देवी को अपनी नई व्यवस्थापक सभा की सदस्य बनाया है। यह पहिला ही अवसर है जब कि भारत में कोई देवी अपने अधिकार से इतने उच्च पद के लिये चुनी गई है। ट्रावनकोर राज्य में पहले पहिल स्त्री शामिल की गई थी किंतु वह देवी जिसका नाम डा० लूकोज़ यूनेन था। दरबार के एक पुरुष डाक्टर की स्थानापन्न बनकर कौंसिल में गई थीं। परन्तु श्रीमती माधवी अम्मा अपने निज अधिकार से चुनी गई हैं। कोचीन राज्य हमेशा स्त्री-उन्नति में अग्रणी रहा है। वहां राज्य माता ही राज्य करती हैं, यहां पर पठित स्त्रियों की संख्या भारत के अन्य देशों की अपेक्षा अत्यधिक है और यहां के महाराजा की धर्मपत्नी का राज्यकार्य्य में बड़ा प्रभाव है।

बड़ी व्यवस्थापक सभा में लड़कियों की विवाहित अथवा अविवाहित दशा में समागम की आयु १६ वर्ष की कर देने के विषय में जो कानून का प्रस्ताव था वह भारतियों के बड़े घोर विरोध और बहस के बाद रद्द होगया।

और देशों में १६ वर्ष की अवधि द्वारा कानून देवियों की रक्षा करता है किंतु भारत के बड़े २ नेता भी १४ वर्ष की आयु से ऊपर नहीं उठाना चाहते, यह भारत को अन्य देशों की नज़रों से गिराना नहीं तो और क्या है?



जालीदार ज़नाना मोज़ा

ले०—श्रीमती ओम्‌वती जी

आवश्यक वस्तुएं ५ १/२ औंस बीनने वाला सुन्दर रेशम, १७ व १८ नं. की ४ सलाइयां।

१३३ फन्दे चढ़ाओ—४५ फ़न्दे पहिली सलाई पर और ४४ फ़न्दे दूसरी और तीसरी पर। पहिले फन्दे को सारे कहीं सिलाई व निशान वाला फ़न्दा मान कर प्रति दूसरे घेरे में उसे उल्टा बीन देना।

१ सा घेरा:-२ सीधे, २उल्टे। इस प्रकार २ इञ्च तक बीनो फिर १० इञ्च तक (निशान वाला फ़न्दा रखते हुवे) सीधा बीन जाओ फिर घटाई शुरु करो। निशान के फ़न्दे से पहिले दो फ़न्दे इकट्ठा बीनो, १ सादा, १ सीधा, सादे को सीधे पर से नघा दो, फिर सीधे बीनते जाओ, जब तक ४ फ़न्दे अन्त में रह जायं २ इकट्ठा बीनो २ सीधे बीनो ६ घेरे बिना घटाये बीनो।

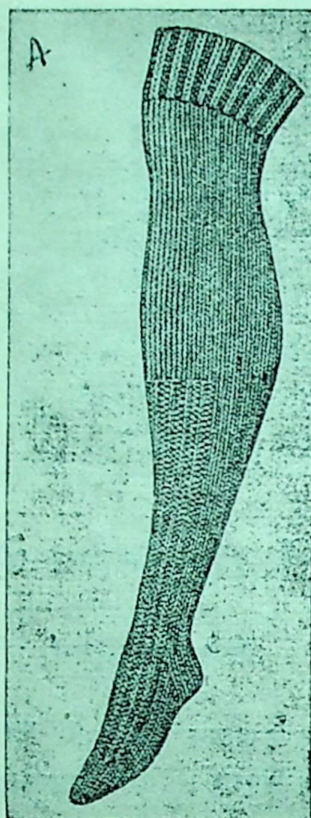
फिर पहिले की तरह ६ साधे घेरे के पीछे एक घटाया हुवा घेरा बीनते जाओ जब तक कि १०६ फ़न्दे न रह जायं।

जाली—१ घेरा-निशान वाला फ़न्दा, २ सीधे पहिले की तरह घटाओ, १० सीधे * १ सादा, १ सीधा, सादे को सीधे पर से नंघा दो, १ बनाओ (रेशम को सामने लाकर) २ सीधे, *चिह्न से बार २ बीनो जब तक १४ फन्दे अन्त में न रह जायं १० सीधे २ इकट्ठा २ सीधे।

२ घेरा–निशानवाला फंदा, १३ सीधे, * २ सीधे, १ बनाओ, २ इकट्ठा बीनो *चिह्न से बार २ अंत में १३ फंदे सीधे।

इन दो जाली की पंक्तियों को बिना घटाये ६ घेरे बीनो निशानवाला फंदा और इधर उधर १३ सीधे फंदे बराबर रखना।

फिर ६ वीं, १६ वीं, और २३ वीं घेरे में घटाना बीच के घेरे में नहीं घड़ाना नमू-



ना पहिले की तरह बनाते जाना पिछले घटाव के बाद निशान वाले फन्दे के दोनों तरफ दस २ फंदे रह जायेंगे और सारे सलाइयों पर के फंदों की गिनती १०१ होगी। फिर दोनों जाली के घेरों को बीनते जाओ बिना घटाये जब तक सारी ६ इञ्च जाली न बनजाय, जब तुमने इतना बना लिया सारा मोज़ा ३१ इञ्च लम्बा होगया तब एड़ी शुरू होगी।

एड़ी के लिए—निशान वाले फंदे के पहिले २६ फंदे बीनो लौटो और उन्हीं २६ को उलट कर बीनो! सिलाईवाला फंदा बीनो और आगे के २६ फन्दे उलटे बीनो सलाई पर अब एड़ी के लिये ५३ फंदे होंगे। एक पंक्ति सीधी १ उलटी सादी बिनावट के लिये ४४ पंक्तियां बीनो प्रति पंक्ति का पहिला फ़ंदा सादा उतारना चाहिये इससे फंदे उठाने के लिये मज़बूत किनारा बन जाता है।

एड़ी लौटालना—निशान के फंदे के आगे से सीधा बीना ३ फंदे तक, २ इकट्ठा, १ सीधा लौटो। ६ उलटे, २ इकट्ठा उलटे, १ उलटा, लौटो। १० सीधे, २ इकट्ठा, १ सीधा, लौटो। ११ उलटे, २ इकट्ठा उलटे, १ उलटा लौटो। इस प्रकार हर बार लौटने पर १ फंदा बढ़ाते हुए बीनते जाओ, जब तक २८ फंदे न रह जायं। यथा १४ फंदे प्रति सलाई पर।

अब एड़ीके पहिले किनारे की तरफसे २२ फंदे उठाओ फिर जाली का नमूना पहिले की तरह ४८ फन्दें पर बनाओ एड़ी के दूसरी तरफ़ के २२ फंदे चढ़ाओ अब पिछली प्रत्येक दोनों सलाइयों पर ३६ फंदे होंगे सारे पञ्जे के तले के लिये ७२ फन्दे हो गये।

अब ३ घेरे बिना घटाये बीनो। फिर हर दूसरे में पहिली सलाई के अन्त में और ३ सलाई के शुरू में एक २ फन्दा घटाओ जब तक कि तले के फन्दे ५२ रह जायं, और सारे ३ सलाइयों पर १६० फन्दे हों । फिर ३ इञ्च तक बिना घटाये बीनो।

पंजे के लिये (जो सारा सादा बीना जाता है)—१२ सीधे घेरे बीनो फिर सामने की सलाई पर के दोनों सिरों पर से ७ फन्दे उतार कर पीछे की सलाइयों पर डालदो; अब ३४ फन्दे सामने की सलाई पर और प्रत्येक पीछे की पर ३३ फन्दे होंगे । इस प्रकार प्रति सलाई पर बीनोः—१ सीधा, २ इकट्ठा अन्त तक सीधा जब तीन फन्दे रह जायं तब २ इकट्ठा, १ सीधा, इस प्रकार प्रति घेरे में ६ फन्दे घटाओ ६ सीधे घेरे बीनो। फिर एक घेरा घटाओ और पांच घेरे सादे सीधे बीनो, फिर घटाओ और ४ घेरे बिना घटाये बीनो। इसी तरह एक २ करके प्रत्येक दूसरे घेरे में घटाना शुरू करदो जब तक कि १० फन्दे सामने पर और ६ फन्दे हर एक पिछली सलाइयों पर रह जायं २८ फन्दे कुल इन को सींकर समाप्त करदो।



न भूलो दयानन्द को

(ले०—अम्बादेवी विदुषी विशारदा)

भुजङ्गी

सदा फोड़ना कुम्भ पाखण्ड को। मिटाना अविद्या भरे मुण्ड को॥
तभी पा सकोगे सुखानन्द को। कभी जो "न भूलो दयानन्द को" ॥१॥
दिखाया हमें बोध के भानु को। सभी ने सुना ईश्वरी ज्ञान को॥
खना नाशकारी प्रथा कन्द को। विचारो "न भूलो दयानन्द को" ॥२॥
गिरा देव को था भुला ही दिया। मनो प्यार गौरी गिरा पै किया॥
सुधा शुद्ध हिन्दी पिला हिन्द को। जिलाया "न भूलो दयानन्द को" ॥३॥
सुता-मान भी दृष्टि आने लगा। अशिक्षा-नशा नाश पाने लगा॥
पुकारा सभी देश निर्द्वन्द हो। कभी भी "न भूलो दयानन्द को" ॥४॥
उसी की शताब्दी मनाओ सभी। न भूलो महारात कोई कभी॥
सुझाया हमें शङ्करानन्द को। कभी भी "न भूलो दयानन्द को" ॥५॥



" यशका "

(लेखक—श्री निरंजननाथजी)

गतांक से आगे

प्रवास से भागना—बोच करीवा और यशा उमगा पहुंच गये। वहां कुछ बहिष्कृत पहले ही रहते थे। मगर उनकी अवस्था बड़ी खराब थी। बोचकरीवा ने सेवा का व्रत धारण किया और सब के सुखों का साधन बन गई। इसी सेवा के कारण वहां के नर नारी मातावत् उसका मान करते थे। मगर यशा कुसंगति में फंस गया। हार के आना और बोच करीवा से टंटा करता। उसकी प्रशंसा कांटों की तरह चुभने लगी। वह आये दिन उस पर दोषारोपण करता। एक दिन तो उसने उसके गले में रस्सी बांध कर लटका दिया। जब वह बेसुध हो कर गिर पड़ी तो उसके सिर से भूत उतर गया और निर्दोषा को देख कर फूट कर रोने लगा। लोगों को पता लगा दौड़े आये। सब उसके वास्ते सौगन्ध खाने लगे और उसे निर्दोषा कहते। उपाय किया गया वह बच गई। उस समय तो बच गई मगर वह दुष्ट किसी न किसी बहाने उसे पीटा करता अन्त को डाक्टर ने कहा इस का मस्तिष्क बिगड़ चुका है यह किसी समय अपनी पत्नी को जान से मार डालेगा इस वास्ते बोच करीवा को चाहिये कि इसे त्याग देवे। इसे यह बुरा लगा। मगर अपने सामने कोई दूसरा मार्ग भी दृष्टिगोचर न हुआ। १९१४ का अगस्त आगया। रूस के महायुद्ध में प्रवेश होने की किम्वदन्ति सुनने में आई। इसके मन में लालसा हुई कि क्यों न देशहित प्राण लगाये जावें। इस गन्दे जीवन से क्या लाभ। अब इस के अन्दर देवासुर संग्राम होने लगा। कभी यशा की दुष्टता को भूल कर उस की सेवा में रहना चाहती, कभी इस की क्रूरता को स्मरण कर देश सेवा में लगना चाहती। आखिर देश सेवा का विचार स्थिर रहा। सम्भव है देश सेवा में नाम पाकर यशा को भी मुक्त कर सके।

जार के विशेष अनुग्रह से भरती होगई—बोच करीबा को घर में पहुंचते दो मास लग गये। माता पिता इष्ट मित्र सब देख कर बड़े प्रसन्न हुए, मगर उसके युद्ध में सम्मिलित होने के विचार का विरोध करने लगे। समझाते बुझाते और भांति २ के दोष प्रकट करते। अन्त में जार की विशेष आज्ञा से वह भरती भी होगई सिपाहियों के वास्ते यह अचम्भा था। जितने मुंह उतनी बातें होने लगीं। भले बुरे सब प्रकार के विचारों और कटाक्षों की बुछाड़ पड़ने लगी। मरदों में स्त्री का भरती होना कष्टों का क्या ठिकाना था। पग २ निरुत्साह मगर वह अपने संकल्प म स्थिर रही, इस का फल यह हुआ कि कोई बात इस को चलायमान न कर सकी और किसी भी प्रलोभन ने उस को आंच नहीं लगने दी। धीरे २ सब शांति होगई और वह एक साधारण सिपाही सी रहने लगी और कोई सिपाही किसी प्रकार की कुचेष्टा का साहस और विचार न कर सकता था। अब उस को सिपाहियों के सब नियम सिखाये गये

और वह शीघ्र ही सब बातों में सिद्धहस्त होगई, एक दिन नगर के नारी-स्नानागार में स्नान करने गई तो नारीगण सिपाही जान इस को पीटने लगीं मगर इस ने स्त्री हूँ, स्त्री हूँ, चिल्लाकर जान छुड़ाई। एक दिन सिपाही बहकाकर निन्दित गृह में ले गये। वहां एक निर्लज्जतासे इसके साथ हाव भाव करने लगी इतने में औफिसर आ गया सिपाही भाग गये यह पकड़ी गई। बारक में जाकर इसे दण्ड मिलने लगा तब इसने कहा कि मैं स्त्री हूँ, मैं तो यह देखने गई थी कि हमारे धूर्त सिपाही किस प्रकार अपना समय निन्दित कर्मों में नष्ट करते हैं।

रणक्षेत्र का पहला अनुभव — बोचकरीवा के कहने पर ही सिपाही उस को यशकी के नाम से पुकारने लगे। यशका वाली पलटन युद्ध के वास्ते रणभूमि को भेजी गई। इस पलटन को पहले धावा में असफलता हुई। २५० सिपाहियों में केवल ७० शेष बचे। मगर यशका की वीरता में कोई न्यूनता नहीं थी।

शत्रु की ओर से गोलियों की वर्षा हो रही है। यशका की जान पहिचान के सिपाही रण-भूमि में घायल पड़े सिसक रहे हैं। इस से न रहा गया, अंधेरी रात में मोरचा से निकली। भूमि पर सर्पकी तरह रींगने लगी, जो घायल हाथ लगता उसे मोरचे में ले आती। रात भर यह कार्य किया जब गिनती हुई तो उसके हाथों ५० सिपाही बचे। इस वीरता के कारण चतुर्थ श्रेणी के आर्डर की सिफारिश हुई। दूसरे धावे में यह घायल होकर १९१५ के ईस्टर में हस्पताल में रही। एक दिन अपने एक घायल को बचाते इस के बाजू पर गोली लगी मगर उसने बाजू को बाँध सिपाही को बचा ही लिया। रात भर इसी प्रकार काम करने पर उसे सेन्ट-जार्ज का क्रास मिलने की सिफारिश हुई। जब कभी भी अधिकारियों को रात के समय शत्रु की छल बल ताड़ने की आवश्यकता होती और अधिक वीरों की सेवा की मांगनी होती तो यशका स्वयम् अपनी सेवा की भेंट करती। वह संकट में पड़ने से कभी न डरती न घबराती। इस वीरता और सिपाहियों की जान बचाने के कारण उसका बड़ा मान होने लगा। कई दिनों से उसने स्नान नहीं किया था। मच्छर मक्खी से उसका शरीर दुखने लगा। स्नानागार केवल एक ही था। वह मर्दों के वास्ते था। उस के वास्ते सब मर्दों को रोका नहीं जा सकता था। कमान्डर ने कहा सब लोग तुम्हारा मान करते हैं तुम जाकर वहां ही स्नान करो यह झिझक झिझक कर वहां गई। अपने मन को दृढ़ कर लिया। स्नानागार में प्रविष्ट हुई, मर्दों को कह कहा कर परे हटा दिया। एक कोने में जा खड़ी हुई झटपट कपड़े उतारे फुरती से स्नान किया और आन की आन में बाहिर निकल आई, सब लोग देखते के देखते रह गये। किसी को साहस नहीं हुआ और यशका की दृढ़ता से यह एक साधारण बात हो गई।

गृह प्रबन्ध

१. अजीर्ण के लिये प्रातःकाल ही एक गर्म जल का गिलास पी लेने से लाभकारी होता है।

२. स्पिरिट पैरों के तलुओं पर मलने से उनको कठोर बना देती है और गलने से बचाती है।

३. हरी तरकारियों को जितना हो सके उतना कम पानी में पकाना चाहिये।

४. तीन हिस्सा पानी में एक हिस्सा मिट्टी का तेल मिलाकर एक बहुत ही अच्छी सफाई करने तथा चमकाने वाला घोल तैयार हो जाता है। यह घोल लकड़ी के सामान, टाइलों और चिकने तलों को चमकाने के लिये उपयोगी है।

५. अलमारियों और भोजनागार से कीड़े निकालने के लिये थोड़ी व्यनज़ाइन तख़्तों पर छिड़क दो। इससे कीड़े अण्डे सहित नाश हो जायंगे।

६. थोड़े से चाँवल निमक के अमृतबान में डाल देने से नमी को खींच लेंगे और नमक को डले बंधने से बचा लेंगे।

७. काला रेशम जहां २ मैला हो वहां पर आलू उबालने के बाद जो पानी रहता है उसे स्पन्ज से भिगो २ कर पोंछने से साफ़ हो जाता है।

८. उन पतीलियों और देगचियों में जिनमें कि प्याज उबालने अथवा पकाने के कारण प्याज़ की बदबू आगई हो, यदि चाय के पत्ते और सोडा डालकर पानी उबाला जाय तो बदबू दूर हो जाती है।

९. चांदी बिलकुल नई की तरह चमकने लगेगी यदि उसे खट्टे दूध से ढक दो आध घन्टे तक पड़ा रहने दो, और फिर धोकर पोंछ दो।

१०. किसी काँच की रक़ाबी में कोई गरम चीज रखने से पहिले ठंडे भीगे कपड़े पर रखदो इससे चिटकने का कोई डर नहीं रहेगा।

११. मुंह देखने वाले शीशों को साफ़ करने के लिये स्पिरिट ही सब से उपयोगी है क्योंकि यह बहुत जल्दी उड़ जाती है और पीछे नहीं पहुंचती। एक मुलायम कपड़े से लगाओ और दूसरे से पोंछ डालो।

१२. जिस लोहे में जंग लग गया हो उसे प्याज काट कर उससे साफ़ करो और एक दिन पड़ा रहने दो। इसके बाद, चमकाने के लिये चाहे रेत का रगड़ने वाला पाउडर और पैराफ़ीन वा सुर्खी के तारपीन के तेल में घोल कर लगा दो।

१३. जब लैम्पों को तेल से भरने लगो तो तेल के बर्तन में एक टुकड़ा कपूर का रख दो। इससे रोशनी बढ़ेगी और जोत साफ़ और चमकदार होगी। यदि कपूर न हो तो कभी २ सिरके की कुछ बूंद मिला दिया करो।

वैज्ञानिक संसार

१. वस्तुओं के हट जाने पर भी परछाईं का बना रहना।

सूर्य्य के, चांद के अथवा लैम्प के सामने यदि कोई जीवित या निर्जीव वस्तु आजाय तो उसकी परछाईं पड़ती है और जिस समय वह वस्तु हट जाती है परछाईं भी तुरन्त हट जाती है। आज हम पाठकों को ऐसी परछाईं का वर्णन सुनाते हैं जो कि वस्तु के हट जाने पर भी बनी रहती है। प्रकाश को रोकने से यह परछाईं भूमि पर और जल पर—ठोस और तरल-एकसां पड़ती है। अमरीका के कैलीफोरनिया प्रान्त में बिना शुद्ध किये मट्टी के तेल के कितने ही प्राकृतिक ताल हैं। यदि इस तेल पर किसी वस्तु की परछाईं डाली जाय और बहुत समय तक डाली जाय तब उस वस्तु के हट जाने पर भी तेल की सतह पर परछाईं बनी रहती है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि सूर्य्य की गरम किरणों के तेल पर पड़ने से लखूखा छोटे २ बुलबुले बन जाते हैं। जहां पर यह बुलबुले नहीं होते वहां तेल की रंगत भिन्न प्रकार की होती है किसी वस्तु के सूर्य्य की ओट में आजाने के कारण जहाँ उसका साया तेल पर पड़ता है वहां उस स्थान पर सूर्य की गरम किरणें भी नहीं पहुंचतीं और वह बुलबुले भी नहीं बनते इसी कारण से वस्तु के आकार की तेल की सतह बुलबुले न होने से परछाईं की भांति दीखती है।

२. खांड़ से मीठा

पैरागौय के जंगलों में एक पौदा मिलता है जिसमें कि एक ऐसा पदार्थ है जो कि खाँड़ से दो सौ गुणा मीठा होता है। वैज्ञानिक यह देखने के लिए तजरुबे कर रहे हैं कि यह अपने गुणों के कारण खाने के काम में आ सकता है कि नहीं। पौदा उसी श्रेणी का है जिसमें कि सूर्यमुखी आता है। इसमें मिठास किसी खांड़ के कारण नहीं जो कि इसमें हो, वरन् एक रासायनिक द्रव्य के कारण है जिसको कि ग्लूकोसाईड कहते हैं।

इसके पत्ते सुखा कर पीस लिये जाते हैं। इसकी एक चुटकी एक गिलास को मीठा करने के लिये बड़ी काफ़ी है। अथवा पानी में भिगोकर इसका मिठास निकाल लिया जाता है। इस शरबत का बड़ा उपयोगी गुण यह है कि यह सड़ता नहीं।

इस पौदे से जिन लाभों की सम्भावना है वह न्यूनाधिक स्पष्ट हैं। बहुमूत्र रोग से पीड़ित रोगियों के लिये जिन्हें कि खांड का खाना वर्जित है यह बड़ा काम आ सकता है।

यह कहने से पहिले की इसके प्रयोग से स्वास्थ्य पर किसी प्रकार की हानि नहीं होती बहुत से तज़रुबे करने पड़ेंगे। इसकी जड़ें कभी नहीं सूखतीं, अतः इसको ऊपर से काटने से नष्ट नहीं होता।

३. जल और वनस्पति रहित बहुमूल्य प्रदेश

दक्षिण अमरीका के चिली नामक प्रान्त में हज़ारों वर्ग मील ऐसी भूमि है जिसमें कि खेती बाड़ी हो सकती है, परन्तु इस प्रान्त की सब से मूल्यवान सम्पत्ति वह मरुस्थल है जहां कि वर्ष भर में आधी इंच से अधिक वर्षा नहीं होती। यहां कोई पेड़ अथवा पौदा नहीं होता—यहां तक कि घास का एक

तिनका भी पैदा नहीं होता, सिवाय उस स्थान के जहां पर कि अन्य प्रान्तों की मिट्टी लाकर बिछाई गई है। यह शोरे का देश है जहां पर कि ५०,००० मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से काम करते हैं और २५०,००० मनुष्य इसकी तिजारत में किसी न किसी प्रकार भाग लेते हैं। इस कार्य में साठ करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है।

१७० से अधिक कारखाने यहां चल के और प्रत्येक के चारों ओर एक बड़ा अच्छा नगर सा बस गया है। परन्तु तो भी यहां पर न तो तनिक भी भोजन मिलता है न वस्त्र। भोजन का प्रत्येक तोला, वस्त्र का प्रत्येक गज़, मशीनरी की प्रत्येक कील और पोने के लिये एक गिलास पानी भी मीलों दूर से लाना पड़ता है। इस प्रान्त के गिर्द मीलों तक सिवाय शौरे के और कुछ भी नहीं होता।

यह परमात्मा की सृष्टि की विचित्र घटना है कि संसारकी सब अधिक उपयोगी खाद उस स्थान से आती है जहां कि कुछ भी पैदा नहीं हो सक्ता; पर यहां पर न भूमि है और न वर्षा, सिवाय खाद के कुछ भी नहीं। पहिले समय में पानी की इतनी कमी थी कि कहावत बनी हुई थी कि पानी के गिलास से शराब की बोतल सस्ती है। परन्तु अब दो सौ मील से नलों द्वारा पानी लाया जाता है।

४. एक नवीन कांच।

कांच हमारे कितने काम की चीज़ है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, शीशियां, बोतलों गिलास, बर्तन इत्यादि से लेकर दूरबीन, सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र इत्यादि प्रायः सभी छोटी बड़ी वस्तुओं में यह काम आता है। आधुनिक सभ्यता का कांच पर कितना आधार है यह सब ही जानते हैं। रसायन शास्त्र में एक नवीन खोज हुई है जिसके द्वारा कांच अब केवल ऐन्द्रिक पदार्थों द्वारा ही बनाया जा सकेगा। यह गुणों में भी अधिक लुभायमान होगा क्यों कि यह कांच की अपेक्षा अधिक नरम होगा। अतः इसको काटने और तराशने में अधिक सुविधा होगी। इसको इच्छानुसार भिन्न २ रंग दिये जा सकेंगे। इसके विषय में सब से उपयोगी बात यह है कि यह दूरबीन इत्यादि प्रकाश सम्बन्धी यंत्रों में बड़े काम आ सकेगा। इससे ऐनक बड़ी अच्छी बन सकेंगीं। यह बनता किन चीज़ों से है यह जान कर बहुत से लोगों को आश्चर्य है। प्राणियों के मूत्र में एक रासायनिक द्रव्य होता है जिसे यूरिया कहते हैं। अब तो यह कृत्रिम रूप से रसक्रिया भवन में भी बनाया जाता है। बस इसको एक अन्य रासायनिक द्रव्य फार्मेल्डिहाईड से मिलाकर ही कांच बनाया जाता है।

पतिव्रता पत्नी †

[ले०-पं० जगन्नारायणदेव शर्मा, कविपुष्कर]

[१]

पतिव्रता पत्नी बहुत ही न्यून हैं,
सूर्य सी है ज्योति जिनकी देह में।
वे पुरुष भी धन्य! हैं इस लोक में,
देवियाँ श्री तुल्य जिन के गेह में॥

[२]

बोल कर जो नित सुधा वर्षा करें,
सद्विचारों से सुखों को दें बढ़ा।
कार्य से सब के हृदय में स्थान पा,
पाठ दें कर्त्तव्य-शिक्षा का पढ़ा॥

---

†कविकृत 'पद्यपयोधि' या 'चौदह रत्न' नामक हस्तलिखित बृहत्संग्रह से उद्धृत।

[३]

जो शिवासी शान्ति-रक्षा में हमें,
औ शची सी चारु शोभा धारिणी।
अन्नपूर्णा सी उदारा जो रहें—
गान-वाद्यों में गिरा मुदकारिणी॥

[४]

जो पिता के दान को सम्मान दें,
काम-गो होकर श्वसुर-कुल को रखें।
पूज्य पति के प्रेम और विश्वास का,
पात्र हों, चारों फलों को जो चखें॥

[५]

धर्म पालन जो करें सानन्द हो,
जो गृहस्थी की चतुर गृहिणी बनें।
साधिका हों लोक और परलोक की,
जो जगत-हित पुत्र-रत्नों को जनें॥

कन्या-गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य

(१) गतांक के पाठकों को भली भांति स्मरण होगा कि मथुरा की यात्रा के पश्चात् कई ब्रह्मचारिणियें तथा अध्यापिकाएं रोग ग्रसित हो गई थीं सो ईश्वर की कृपा से सर्व छात्राएं तथा पाठिकाए सर्वथा स्वस्थ हैं और निज पठन पाठन में भी दत्तचित्त हैं। परन्तु अध्यापिका श्रीमती राजकुमारी जी ने ही केवल अभीतक निःशेषतया स्वास्थ्य लाभ नहीं किया अतः विश्रामार्थ पुनः एक मास का अवकाश लेकर घर चली गई थीं आशा है कि श्रीमती जी शीघ्र अपने काम पर आ जायेंगी श्रीमती राधारानी जी मुख्याधिष्ठात्री जी जो कि देहरादून की यात्रा के अनन्तर प्रायः रुग्ण रहती थीं, अधुना पूर्णतया स्वस्थ हैं।

गुरुकुल जहां ब्रह्मचारिणियों को सर्वाङ्ग पूर्ण शिक्षा प्रदान करता है वहां उनके शारीरिक स्वास्थ्य की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। क्योंकि मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के साथ २ शारीरिक उन्नति की वृद्धि करना भी गुरुकुल का उद्देश्य है। जहां विद्यालय में उनके अध्ययनार्थ अध्यापिकाएं और उनके रहन सहन के लिये आश्रम में अधिष्ठात्रियों का प्रबन्ध है, वहां रोगीशाला अथवा औषधालय में भी डाक्टर के अतिरिक्त दो ऐसी देवियां हैं जिनमें से एक औषधि आदि द्वारा उपचार करती हैं और दूसरी प्रत्येक रोगिणी छात्रा के अनुकूल भोजनादि का विशेष प्रबन्ध करती हैं।

गुरुकुल और भी कई ऐसी देवियों को आकर्षित करने का प्रयत्न कर रहा है कि जिससे ब्रह्मचारिणियों के स्वास्थ्य की ओर इससे भी अधिक ध्यान दिया जा सके।

रहन सहन।

(२) कालचक्र के परिवर्तन के साथ २ क्रमशः ऋतु ने भी अपना स्वरूप परिवर्तित किया है। ग्रीष्म ऋतु ने निज आगमन से सूचित किया है, अतः ब्रह्मचारिणियों के शयन तल्प भीतर से बाहर बरांडे में कर दिये जाते हैं। सम्प्रति विद्यालय भी हवन संध्यादि नित्य-कर्मों के अनन्तर प्रातःकाल ६ बजे से ही

लगना आरम्भ हो जाता है। बरेली से एक और देवी श्रीमती दीपावती भी अध्ययनार्थ आ गई हैं।

दिन में भगवान् भास्कर की संतप्त तथा अति तीक्ष्ण रश्मियों के प्रकोपवशात् ब्रह्मचारिणियें प्रायः कमरों के अंदर ही निजाधिष्ठात्रियों की देख रेख में रहती हैं। अतः सायंकाल रात्रि के समय भोजन प्राप्ति के अनन्तर अपनी कई एक अधिष्ठात्रियों के साथ व्यायाम तथा मनोरञ्जनार्थ कोठी के एक विशाल क्रीड़ा स्थल में क्रीड़ार्थ ८ से ६ तक मन बहलाती हैं। तत्पश्चात् सब एकत्रित हो कर शयनकाल के वेदमंत्रोच्चारण करके सो जाती हैं। और ऐसे ही प्रातः चार बजे जागने के मन्त्र बोल कर दंतधावनादि क्रिया करती हैं।

गुरुकुल का उद्यान।

(३) सम्प्रति गुरुकुलोद्यान की शोभा भी पूर्व से निराली है। यद्यपि पहिले भी नाना प्रकार के बेल बूटे लगाने का प्रबन्ध किया गया था और कुछ बेलों पर कुसुम आ भी गये थे। तथापि योग्य तथा स्थायी रूप में काम करने वाले मालियों के न होने से उद्यान निज छटा को प्रगट न कर सका। वर्तमान में दो ऐसे योग्य माली हैं जो कि इस विषय में पूर्ण ज्ञान रखते और पुरुषार्थी हैं। अतः प्रथम इसके जो कोठी में केवल नीम ही नीम के पेड़ दिखाई देते थे, अब सौभाग्यवशात् उद्यान कई प्रकार के पुष्पों से अलंकृत और कई एक वृक्षों पर अनार के फल भी लगे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। आशा है कि मालियों के निरन्तर पुरुषार्थ से कुछ दिन पीछे उद्यान रमणीय हो जायगा।

श्रीमती आचार्या जी कन्या गुरुकुल।

(४) आर्य्यसमाज के हितैषी तथा गुरुकुल के प्रेमी सज्जनों और देवियों को यह पढ़ कर अति खेद होगा कि गत सप्ताह ६ एप्रिल प्रातःकाल आप ईश्वर पूजार्थ आसन पर विराजमान थीं कि इतने में पूर्वतः एक उन्मत्त तथा पागल कुत्ते ने आकर आप के पैर पर सहसा आक्रमण किया। अतः आप इस समय दो सप्ताह के लिये डाक्टर की सम्मति अनुसार कसौली गई हुई हैं. आप का क्षण क्षण गुरुकुल सेवार्थ व्यतीत होता है, आपका एक पल भी गुरुकुल से पृथक् होना गुरुकुल के लिए अति हानिकर है। पुनः आप के दो सप्ताह पर्य्यन्त गुरुकुल से अलग रहने के कारण गुरुकुल को कितनी क्षति पहुंचेगी, यह पाठक स्वयम् विचार सकते हैं।

इस समय आप की स्थानापन्न कुमारी चन्द्रवती जी अध्यापिका ही गुरुकुल का निरीक्षण कर रही हैं। आशा है कि आप २० अप्रेल तक गुरुकुल पधारेंगी। ईश्वर से सविनय प्रार्थना है कि वह आपको शीघ्रातिशीघ्र स्वास्थ्य प्रदान करें।

आवश्यकता।

(५) गुरुकुल विद्यालय के लिये ऐसी आर्य देवियों की आवश्यकता है जो कि कार्य्य में निपुण देशानुरागिनी और परिश्रमी हों, तथा जो दत्तचित्त होकर केवल इसी कार्य्य में लग सकें। दो देवियां सीनियर ट्रेन्ड हों जिनको आर्य्य भाषा का ज्ञान बहुत उत्तम हो एक संस्कृत अध्यापिका की आवश्यकता है जो कि व्याकरण और साहित्य में कम से कम मध्यमा उत्तीर्ण अवश्य हो।

शास्त्री या आचार्य्य परीक्षा पास हो तो अधिक उत्तम है। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। पत्र-व्यवहार सार्टीफिकेट सहित शीघ्र करना चाहिये।

हमारी मंजूषा

भारतीय शासन–लेखक श्रीयुत भगवान दास केला, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला बृन्दावन पृष्ठ १६२ मूल्य ।।।=)

यह पुस्तक का चौथा संस्करण है और पुस्तक की उपयोगिता तथा लोक-प्रियता का प्रमाण है। लेखक ने इस पुस्तक में भारत की वर्तमान शासन पद्धति का संक्षिप्त परन्तु सुलभ और सरल रीति से वर्णन किया है। प्रत्येक भारतीय और विशेष कर नव युवक के हृदय में देश को स्वाधीन बनाने की प्रबल इच्छा है। परन्तु इस इच्छा की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि हमें पहिले इस बात का ठीक २ ज्ञान हो कि हमारे देश का वर्तमान शासन किस ढंग पर हो रहा है, तभी तो हम उसको संशोधन कर सकेंगे। श्रीयुत केला जी की इस पुस्तक से यह भली भांति पता लग जाता है कि हमारे ग्रामों, नगरों और जिलों की, कौन्सिलों और असैम्बली की शासन कला किस प्रकार चलती है, तहसीलदार, मेजिस्ट्रेट पुलिस, गवरनर तथा गवर्नर– जनरल प्रभृति व्यक्तियों को कितने २ अधिकार प्राप्त हैं इन की अन्य देशीय कर्मचारियों से क्या तुलना है, इत्यादि।

ब्रिटिश साम्राज्य का शासन, भारतीय सचिव तथा उसकी कौन्सिल, भारतसरकार तथा भारतीय व्यवस्थापक सभायें, प्रान्तिक संस्थायें, देशी रियासतें, सेना, न्याय और जेल इत्यादि सभी विषयों का वर्णन है।

पुस्तक विद्यार्थियों के बड़े काम की है और यह हर्ष की बात है कि कितने ही प्रान्तों में यह शिक्षणालयों में कोर्स के रूप में पढ़ाई जाती है। लेखक की इस पुस्तक में भारतीय शासन के सब अंगों पर उचित प्रकाश डाला गया है।

गोस्वामी तुलसीदासजी के दार्शनिक विचार।

लेखक श्री राय कृष्ण जी, काशी

यह लेख बड़े साईज़ के ४८ पृष्ठ पर समाप्त हुआ है नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ४ संख्या ३ का उद्धरण है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी ग्रन्थावली में पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी का उपरोक्त विषय पर एक लेख निकला था जिस में चतुर्वेदी जी ने यह निश्चय किया था कि दार्शनिक सिद्धान्तों में श्री गोस्वामी जी श्री शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुगामी हैं" श्रीरामकृष्ण जी का यह लेख चतुर्वेदी जी के इसी निश्चय के खण्डन में प्रकाशित हुआ है। आप का कथन है कि रामायण ऐसे महाकाव्य से एक पंक्ति यहां से और एक वहां से लेकर सभी मत सिद्ध किये जा सकते हैं। अतः व्यापक दृष्टि से अनेक स्थलों पर कहे वाक्यों की परस्पर संगति का विचार किये बिना कोई परिणाम निकालना उचित न होगा इन्हीं पंक्तियों से श्री रायकृष्ण जी की विचारशैली का पता लग जाता है। यही किसी विषय के वास्तविक निरुपण के लिये यही वैज्ञानिक शैली हो सकती है लेखक ने इस शैली का आश्रय लेकर

चतुर्वेदीजी के मतका खण्डन करने में सफल हुआ है यह मानना पड़ता है। अंत में वह इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि गोस्वामी जी "शंकर अद्वैत विशिष्टद्वैत आदि अद्वैत के भेदों और द्वैत मतों से पूरा परिचय रखते थे, परन्तु यह सिद्ध करने का साहस करना बहुत कठिन है कि गोस्वामी जी किस मत के अनुयायी थे। हमारी सम्मति में लेखक का यह निश्चय असंगत नहीं, जिन्हों ने भी गोस्वामी जी की रचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ा है वह इसी निश्चय पर पहुंचेंगे। इन में प्रायः प्रत्येक दार्शनिक सिद्धान्त और मत के अनुयायी के अनुकूल वाक्य मिलते हैं। इस का कारण यह हो सकता है कि गोस्वामी जी स्वयं किसी एक मत के अनुयायी न थे।

लेख सारगर्भित, विचारपूर्ण और तुलनात्मक हैं। यह हर्ष का विषय है कि हमारी मातृभाषा में इस प्रकार के वैज्ञानिक लेख निकलने लगे हैं।

स्वाधीनता के पुजारी-लेखक श्री भूदेव विद्यालङ्कार प्रकाशक प्रताप कार्यालय कानपुर, पृष्ठ संख्या २२६ मूल्य १।)

संसार में किंचित् ही कोई ऐसा देश हो जिसकी प्रजा को शासकों के रोमांचकारी नारकीय क्रूर अत्याचारों की आंधी को इस प्रबलता से सहना पड़ा हो जितना कि रूस की प्रजा को और फिर दस बीस अथवा पचास वर्ष नहीं परन्तु लगातार ३०० वर्ष पर्यन्त। रूस की जारशाही ने अपने स्वार्थमय स्वत्वों की रक्षा के लिये, अपने भोग विलास की धारा को निरन्तर प्रवाहित रखने तथा दीन हीन प्रजा को अज्ञान और मौत की बेड़ियों में जकड़े रखने के लिये कितने कितने पाशविक और आसुरी व्यवहार किये यह प्रायः सभी शिक्षित समाज सुनता आया है परन्तु यदि उनकी वास्तविक भयंकरता को उसके नग्न रूप में देखना चाहें तो एक बार इस पुस्तक को पढ़ जाइये। इस पुस्तक में रूस के १० स्त्री पुरुषों की गाथा है जिन्हों ने अगम्य साहस श्रद्धा और भक्ति पूर्वक स्वतंत्रता की वेदी पर अपने जीवन को प्रफुल्ल मन और सहर्ष बलिदान किया। इन वीरों के चित्रों के पाठ से कठोर से कठोर हृदय भी पिघल जाता है। पुस्तक में एक मर्म भेदी रोचकता है जो कि इस को उपन्यास से भी अधिक आनन्द देने वाली बना देती है। पुस्तक शिक्षाप्रद है। यह कहने की आवश्यकता नहीं लेखक शैली चित्ताकर्षक है और १७ हाफटोन चित्रों ने पुस्तक को और भी उपयोगी बना दिया है।

शुद्धि—लेखक कुंवर चांदकरण शारदा अजमेर प्रकाशक वैदिक यन्त्रालय अजमेर पृष्ठ संख्या ७० मूल्य ।)

यह छोटी सी पुस्तिका शताब्दी के सुअवसर पर छपी थी। यतो नामस्ततो गुणाः इसमें वर्तमान युग के सब से क्रान्तिकारी, सजीव एवं आवश्यक विषय शुद्धि के सब पहलुओं को अच्छी प्रकार दर्शाया है। प्राचीनता तथा उपयोगिता पर खोज कर पुराने समयों के सिक्कों शिलालेखों तथा पुस्तकों से प्रबल प्रमाण और उदाहरण इकट्ठा कर दिये हैं। इसे पढ़कर शुद्धि का कट्टर से कट्टर विरोधी भी दिल ही दिल उसकी आवश्यकता पर निसार हो जाता है। सचमुच यदि हम आर्य्य सभ्यता को पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं

यदि हृदय में भारतको गुलामीसे छुड़ाने की पिपासा है तो आर्य्यों उठो और एक दम वैदिक धर्म को प्रत्येक बच्चे बच्चे की नस में भरने और उनको सच्चे भारतीय बनाने का प्राणपन से उद्योग कर नगर २ में गांव २ में मैले गन्दे रोगी दीन, दुःखी सभी को प्रेम से यथासाध्य दुःख हटा २ कर आर्य्य बनाओ तभी कल्याण होगा व्याख्यान बाजी का समय अब व्यतीत हो गया यही लेखक का ओजस्विनी भाषा में इस पुस्तक में दिया सन्देश है। इसमें ऋषि का एक तिरंगा चित्र भी है।

दलितोद्धार—लेखक उपरोक्त शारदा जी मंत्री राजपूताना मध्य भारत सभा शारदा भवन अजमेर तथा जयदेव ब्रादर्स करेली बाग बड़ौदा से प्राप्त पृष्ठ संख्या ६० मूल्य ।)

यह भाषण भी शताब्दी महोत्सव पर दलितों और अछूतों के सम्बन्ध में छापा था हिन्दू जाति मरी जा रही है उल्टे तरह छुआ छूत करके उसके अंग भंग हो रहे हैं वास्तविक मलीनता से उसे घृणा नहीं किंतु बनावटी जन्म से जात पात को मान कर उसके जटिल बन्ध से जकड़े हुए हैं। महर्षि गुण कर्मानुसार जाति निश्चित करने का का प्राचीन सत्य मार्ग दर्शाकर सन्मुख रख दिया है किंतु फिर भी सदियों के दासत्व और झूंठे संस्कारों से आच्छादित मानसों में अब तक स्वच्छ प्रतिबिम्ब पड़ा नहीं अतः पुरानी खींचातानी ही में पड़े हुवे हैं पुस्तिका में तमाम सबल प्रमाणों को इकट्ठा कर २ के इसको आवश्यक और प्राचीन बताया है सभी को इसे पढ़ कर यथा शक्ति हिन्दू जाति को मृत्यु मुख में से बचाने के लिये शीघ्र ही अपने भाईयों को उठा कर मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये ऊ ५ क्या वह झूंठी ढकोसले बाजी तुरन्त छोड़ देना चाहिये।

आदर्श भ्राता—लेखक श्री सुन्दरदास मौद्गल्य शास्त्री, मिलने का पता पं० सुन्दरदास शास्त्री, मोगा, (पञ्जाब) पृष्ठ संख्या १३२ मूल्य)

भाई भरतके नामसे भारतका बच्चा २ तक परिचित है उन्हीं महापुरुष का यह जीवन वृत्तान्त सरलभाषा में लिखा गया है। इसको प्रत्येक भाषा जानने वाला बालक तथा वृद्ध या युवा पढ़कर अपने पुरुषाओं के अतीत गौरवकी स्मृति में तल्लीन होकर उन्हीं के पद चिन्हों में चलने का प्रयत्न कर अपने जीवन को सफल कर सकता है।

भारतीय निबन्धमाला—श्रीयुत भगवान दास जी केला प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दाबन ने हिंदी भाषा में एक नया सीरीज निकालना आरम्भ किया है जिसका नाम उन्होंने भारतीय निबन्ध-माला रखा है। यह छोटे २ ट्रेक्ट हैं जिनमें से प्रत्येक का मूल्य एक आना। अब तक ३ ट्रेक्ट निकल चुके हैं हिंदी भाषा में अर्थ शास्त्र (२) हिन्दी भाषा में राजनीति और (३) हमारा प्राचीन गौरव। पहिले दो ट्रेक्टों के संक्षेप से यह बतलाया गया है कि हमारी भाषा में अर्थ शास्त्र तथा राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने तथा फैलाने के क्या २ साधन है इन विषयों की अब तक कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, कौन २ से पत्र पत्रिकायें संस्थायें और परिषदें प्रचार करती है इत्यादि। तीसरे ट्रेक्ट में बार्तालाप के रूप में यह सिद्ध किया गया है कि प्राचीन भारत एक महत्वपूर्ण गौरवशाली देश था और उन्हीं पुराने आदर्शों का

आश्रय लेकर हम पुनः यथेष्ठ सुख और शान्ति को पा सकें।

सस्ते और छोटे २ ट्रेक्टों द्वारा आवश्यक विषयों पर आवश्यक ज्ञान को सुलभ बनाने की यह विधि सर्वथा प्रशंसनीय और उपयोगी है।

भ्रमर-मासिक पत्रिका, सम्पादक श्रीयुत सतीश कुमार बी० ए० प्रकाशक श्री राधेश्याम प्रेस बरेली पृष्ठ ५० मूल्य ३)।

यह पत्र गत २½ साल से प्रकाशित हो रहा है। इसमें साहित्य विषय अनेक लेख और कविता रहती हैं जो कि सुपाठ्य और शिक्षाप्रद होते हैं। पत्र को सर्व प्रकार से चित्ताकर्षक और उपयोगी बनाने का यत्न किया जाता है। ज्योति से चिर परिचित कवि नयन जी के इसके सम्पादन में भाग लेने से इस में एक नवीन छटा आगई है। हमें पूर्ण आशा है कि हिंदी भाषा भाषी इस पत्र को अवश्य अपनायेंगे।

विचार प्रवाह

गुरुकुल हरिद्वार।

गत ६ अप्रैल से १२ अप्रैल तक गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार का वार्षिकोत्सव बड़ी सफलता और समारोह से मनाया गया। यह उत्सव दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के इतना निकट था कि संचालकों को संदेह और भय था कि यह सफल भी होगा कि नहीं। शताब्दी महोत्सव के कारण शारीरिक थकावट, आर्थिक व्यय और समयाभाव को ध्यान में रखते हुये भय था कि आर्य सज्जन इस उत्सव में बहुत कम भाग ले सकेंगे। गुरुकुल के वार्षिक उत्सव की सफलता एक प्रकार से गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की उपादेयता और लोकप्रियता की सूचक बन गई है और यह तब तक ऐसा ही रहेगा भी जब तक कि यह प्रणाली विस्तृत और दृढ़ रूप से हमारे शिक्षणालियों का भाग नहीं बन जाती। गुरुकुल उत्सव की असफलता बाह्य सज्जनों, अर्धविश्वासी अनुयायियों और शुभचिंतक विपक्षियों को कहीं यही कहने का अवसर न दे दे कि जनता ने गुरुकुल शिक्षा पणाली को देख लिया और जांच करने पर इसे अधूरा पाया, अतः वह अब इससे उदासीन हो गई है, यह भय था जो कि संचालकों को अशांत बनाये हुये था, परन्तु धन्य है परमात्मा को और फिर आर्य जनता के दृढ़ विश्वास को जिसने कि इस संदेह और भय को अपने उत्साह, श्रद्धा और प्रेम से एक दम कृतकार्यता और सफलता का रूप दे दिया इस उत्सव ने यह स्पष्ट कर दिया कि आर्य जनता को इस शिक्षा में इतना दृढ़ विश्वास है कि किन्हीं भी ऊपरी कारणों से वह यह भ्रममूलक विचार उत्पन्न नहीं होने देना चाहती कि उन के गुरु की बतलाई और प्राचीन ऋषि मुनियों की जांची और परखी हुई शिक्षा प्रणाली समय की आवश्यकताओं अनुसार उचित

परिवर्तन किये जाने पर हमारी आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकी यह एक बड़ी भारी शिक्षा है जो कि हमें गत गुरुकुल उत्सव की सफलता से मिलती है। आर्य जनता का हृदय कितने गहरे विश्वास का केन्द्र है यह स्पष्ट है। इस असीम विश्वास और श्रद्धा से आर्यसमाज क्या कुछ नहीं कर सका। यदि आवश्यकता है तो केवल इस बात की कि आर्यसमाज के नेता अपने कर्तव्य को समझते हुये इस विश्वास को समुचित रूप में डालने और संगठित करने का प्रयत्न करें।

अस्तु उत्सव बड़े समारोह और सफलता से समाप्त हुआ। यह ठीक है कि जनता उतनी बड़ी संख्या में सम्मिलित नहीं हो सकी जितनी कि गत वर्षों में हुआ करती थी। परन्तु इस एक बात को छोड़ कर शेष किसी बात में किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई। व्याख्यानों की संख्या और विद्वत्ता यदि भिन्न २ परिषदों का उच्च प्रमाण, यात्रियों का प्रेम भाव, एकत्रित धन की राशि यदि गत वर्षों से बढ़कर नहीं थी तो कम भी न थी। धन तो इतना किंचित ही कभी आया हो। यह गुरुकुल के इतिहास में पहला अवसर है कि दो लाख के लगभग धन एकत्रित हुआ हो।

एक विशेष बात जो मन को प्रभावित किये बिना न रहती थी वह देवियों का उतनी ही संख्या में सम्मिलित होना या जितना कि प्रायः गत वर्षों में हुआ करती थीं। जिस संस्था से हमारी पूज्य सति साधवी माताओं और बहिनों का इतना प्रेम हो वह सफल क्यों न हो।

गुरुकुल उत्सव की यह सफलता स्नातकों कार्यकर्त्ताओं और सञ्चालकों के कन्धों पर कितना उत्तरदायित्व डालती है। क्या वह जनता के इस श्रद्धा और विश्वास के वास्तविक संरक्षक है क्या वह संस्था की त्रुटियों को दूर कर इस विश्वास का समुचित उत्तर देंगे।

जैसी करनी वैसी भरनी।

हिंदूमहासभा के सङ्गठन और उत्पत्ति में पूज्यवर श्री पण्डित मदनमोहन मालवी और पण्डित दीनदयाल जी का बड़ा भारी हाथ है। परन्तु कर्म की गति न्यारी है। आज महासभा के 'जन्म दाता' पण्डित दीनदयाल जी स्वयं अकालपीड़ित बुभुक्षिता माता की तरह इसको खाने को तैयार हैं। कलकत्ते में एक सभा में महासभा का उत्सव मनाया जा रहा है और पूज्य मालवी जी इसे सफल बनाने में तन और मन एक कर रहे हैं और उधर नगर के दूसरे भाग में व्याख्यान वाचस्पति, सनातनधर्म के अगुवा पं० दीनदयाल जी की अध्यक्षता में इसका विरोध हो रहा है। अभी कल की बात है कि व्यवस्थापक महासभा में डाक्टर गौर ने बिल पेश किया कि कोई भी हिंदू अपनी भार्या को १४ वर्ष की आयु से पूर्व पतिव्रत धर्म पालन के लिये विवश न कर सके। मालवी जी उन सज्जनों में से एक जिन्हों ने इसका विरोध किया और १२ वर्ष की आयु ही माता बनने के लिये पर्याप्त समझी। पूज्य पं० जी यदि आगे बढ़ना है तो पूरे बल से आगे बढ़िये, यह नहीं हो सकता कि एक पग आगे और एक पग पीछे नहीं तो पण्डित दीन दयाल जैसे प्राचीन धर्म के स्वकृत पहरेदार आप के पिछले पग को सदा ही पीछे खेंचते रहेंगे। क्या आप हृदय से मानते हैं कि हम भारतियों को अभी और भी कुछ समय तक बच्चों की ही सन्तान रहना चाहिये। पूज्यवर बालकों की सन्तान बालक ही होगी, मरद नहीं।

हमारी कन्यायें और अङ्ग्रेज़ी शिक्षा

हमारे यहां एक लोकल कन्या पाठशाला है जिस का प्रबन्ध आर्य समाज के हाथ में है। इस पाठशाला में प्रायः अन्य सब पाठ-शालाओं की अपेक्षा अधिक लड़कियां पढ़ती हैं। कुछ दिन हुये एक सज्जन ने मुख्य अध्यापिका को पत्र लिखा कि मेरी कन्याको सार्टीफिकेट देदिया जाय क्योंकि वह अंग्रेज़ी पढ़ना चाहतीहै और आपके यहाँ इसका कोई प्रबन्ध नहीं। उनसे बात चीत करने पर पता लगा कि अपनी कन्या को एक और कारण से भी वह ईसाई सुशिक्षित मुख्याध्यापिका द्वारा संचालित सरकारी पाठशाला में भरती करना चाहते हैं। इस पाठशाला में वह manners सीख जायगी जोकि उसे पुरानी पाठशाला में कदापि न आयेंगे। हम समझते हैं कि इस प्रकार की समस्या कन्या शिक्षणालयों के सन्मुख भारत के प्रत्येक प्रांत में आती होगी।

हमारी समझ में उपरोक्त विचारों में कुछ भ्रम है। यदि कन्याओं को अंग्रेज़ी पढ़ाना ही हमारे भाईयों को अभीष्ट है तो इस प्रकार के सरकारी अर्धसरकारी और ईसाई स्कूलों में यह सम्भव नहीं। मेट्रिक्यूलेशन में पास विद्यार्थी को जितनी अंग्रेज़ी आती है इस से अधिक इन पाठशालाओं में हमारी कन्यायें कदापि नहीं सीख सकती। और हमारे विचार में यह अंग्रेजी किसी विशेष काम की नहीं। हमारे लड़कों और पुरुषों को अन्य देशीय सरकार की गुलामी के कारण अपनी जीविका के निमित्त अंग्रेजी पढ़नी पड़ती है। परन्तु हमारी कन्याओं को यह कारण विवश नहीं करता फिर हम क्यों उन कोमलांगी बालिकाओं के शरीर और मस्तक पर इस अनावश्यक बोझ को डालें। अंग्रेज़ी पढ़ना बुरा नहीं यदि उसके लिये पर्याप्त कारण और उचित ध्येय हो। सही अंग्रेज़ी साहित्य में अनेक रत्न भरे पड़े हैं। उनकी खोज और उनसे आनन्द प्राप्ति एक बड़ा शुद्ध ध्येय है। क्या हमारी बालकाओं को इस निमित्त अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती है। कदापि नहीं। नोकरी उन्हों ने नहीं करनी अंग्रेज़ी साहित्य के मानने की योग्यता उनमें आनहीं सकती। फिर उन्हें अंग्रेज़ी पढ़ाने का इतना शौक क्यों। वास्तव में इस का कारण दूसरा है जोकि उपरोक्त सज्जन ने बतलाया। वह समझते हैं कि हमारी कन्याओं को हिन्दी और संस्कृत पढ़कर manners नहीं आते। अंग्रेज़ी पढ़ी चाहे वह दोचार अक्षर ही क्यों नहो—और झट उन्हें manners आगये। हम नहीं समझते कि manners से उनका क्या अभिप्राय है। किंचित मेज़ कुरसी पर बैठना, बिस्कुट काटना और टोस्ठ बनाना, चाय पीना पिलाना और केक का सेवन करना जूते पहन कर रसोई बनाना, पर पुरुषों से निःसंकोच भाव से मिलना और वार्तालाप करना, समय २ वार्तालाप में अंग्रेज़ी के दोचार शब्दों का प्रयोग करना और आव-श्यक्तानुसार 'my darling, "you silly mother' "Take tow stupid you are" इत्यादि वाक्यों को काम में लाना ही ma-nners हैं। शोक कि हमारा भी कितना मानसिक पतन है। न हमें अपनी भाषा से प्यार और न अपनी सभ्यता और शिष्टाचार के नियमों से प्रेम। उपरोक्त सज्जन अपने को महात्मा गान्धी का भक्त कहते हैं, खद्दर पहनते हैं और काँग्रेस कमेटी के प्रधान हैं। क्या खद्दर इन्हीं विचारों और भावों का सूचक होना चाहिये। खद्दर से शरीर की शुद्धताई और आर्थिक स्वतन्त्रता चाहते हो पर मन तो वैसा ही गुलाम है। जब तक मन स्वाधीन नहो शरीर स्वाधीन हो नहीं सकता

यह केवल गुलामों का ही काम है कि वह अपने मन और मस्तिष्क को विदेशियों के अर्पण करने में ही अपना गौरव समझते हैं।

कोहाट में हिंदुओं को शिक्षा,

महात्मा गांधी तथा मौलाना शौकत-अली का कोहाट सम्बन्धी वक्तव्य प्रकाशित हो गया है। दोनों में मतभेद है और यह पहला ही अवसर है कि उन उच्च कोटि के नेताओं ने जनता में खुल्लम खुल्ला अपना मतभेद प्रगट किया हैं। महात्मा जी ने जो कुछ परिणाम निकाला है उसके लिये उसके कारण रूप घटनाओं का पूरा २ उल्लेख किया मौलाना साहब ने अपने निश्चय की पुष्टी में किसी घटना का अथवा दलील देने की आवश्यक्ता नहीं समझी। इसी कारण जहां महात्मा जी के वक्तव्य अधिक विस्तृत और एक प्रकार की Judicial pronounment (कानूनी वक्तव्य) का रूप धारण किये हैं यह मौलाना नेएक साधारण व्यक्ति Layman विचारों को ही प्रकट किया है। इसी कारण दोनों में भेद भी है महात्माजी के वक्तव्य को पढ़ जाने से एक निर्पक्ष व्यक्ति के मन पर यह प्रभाव पड़े बिना नहीं रहसकता कि हिन्दुओं ने प्रत्येक रीति से जो उनके वश में थी मुसलमानों को शान्त करने का यत्न किया परन्तु मुसलमान किसी प्रकार भी शान्त न हुये मुसलमानों की मानसिक अवस्था से उनकी इच्छाओं का सरकारी अफसरों को सदा पता रहा है परन्तु सरकार ने उनको रोकने का किंचित भी यत्न नहीं किया' मुसलमानों के हौसले बहुत बढ़े हुये थे और वह आरम्भ से ही कानून को अपने हाथों लेने को तय्यार थे। मौलाना ने अपने वक्तव्य में महात्मा जी के निश्चयों के प्रतिरोध का यत्न नहीं किया केवल उन्हों ने किसी घटना का आश्रय न लेकर केवल सूत्र रूप से अपनी सम्मति देदेना ही पर्याप्त समझा, वास्तविक घटनाओं की अपेक्षा कल्पना से अधिक काम लिया है। अपने वक्तव्य में उन्हों ने केवल एक ही बात पर बल दिया है कि अगर मुसलमान दोषी हैं तो हिंदु उनसे किसी अंश में कम दोषी नहीं हैं। अपनी इस सम्मति के लिये उन्हों ने कोई कारण नहीं बतला दिया, इतना अवश्य लिखा है कि महात्मा गांधी तथा उनके सामने जो घटनायें रखी गयीं उन से पता चलता है कि हिन्दुओं का पक्ष पूरण तय्यार किया गया है। कोहाट में कितने ही पढ़े लिखे हिन्दू हैं जिन में वकील और वैरिस्टर हैं। उनके अतिरिक्त उन्हें बाहर के बड़े२ आदमियों से भी सहायता मिलती रही है। परन्तु मुसलमानों का पूरा २ पक्ष हमारे सन्मुख नहीं मौलाना के मत में मुसलमानों ने लूट मार का फैसला और प्रबन्ध पहिले ही से नहीं किया हुआ था। यदि ऐसा है तो एक प्रश्न है जो कि प्रत्येक हिंदू के हृदय में उठता है कि मुसलमानों के झगड़े में सब से मुख्य बात यह देखने में आती है कि वह पहिले मंदिरों, मूर्तियों और गुरुद्वारों पर हमला करते हैं और स्त्री जाति पर हाथ उठाते हैं। प्रत्येक फ़िसाद पर यह ऐसा क्यों होता है। क्या इस से यह स्पष्ट नहीं कि यह प्रत्येक मुसलमान पहिले से ही फैसला किये हुये हैं कि फ़िसाद के अवसर पर मंदिरों पर इस प्रकार आक्रमण अवश्य होंगे। यदि यह जान बूझ कर ऐसा नहीं होता तो यह मानना पड़ेगा कि मुसलमानों की मानसिक प्रवृत्तियां ही ऐसी हैं कि जिनके वश वह अज्ञान रूप से ऐसे अत्याचार करने पर विवश होते हैं। यह अज्ञानता और जहालत की सीमा है जिस ने कि मुसलिम मन पर पूरा २ आधिपत्य जमाया हुआ है। और उसी अज्ञानता को दूर

करने के लिये जो कोई प्रयत्न नहीं करता वरन उल्टा इस का समर्थन करता है वह वास्तविक दोषी है।

हिन्दू महासभा का अधिवेशन

अखिल भारतीय हिंदू महासभा का अष्टम अधिवेशन ११, १२ और १३ अप्रैल को कलकत्ते में हुआ। ७००० मनुष्यों के बैठने लायक बृहत् पण्डाल तीनों दिन खचाखच भरा हुआ था। पं० मदन मोहन मालवीय, बाबू भगवान दास, पं० दीन दयालु शर्मा, भाई परमानन्द जी, बा० पुरुषोत्तम दास टंडन, स्वामी सत्यदेव, पं नेकी राम शर्मा, श्री० अंगारिका धर्मपाल, कुंवर चांद करण शारदा पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, श्रीमान विपिन चन्द्रपाल, पं० श्याम सुन्दर चक्रबर्ती आदि नेता भी उपस्थित थे। पहिले दिन मंगलाचरण और संगीतादि के पश्चात् स्वागत समिति के अध्यक्ष सर प्रफुलचन्द्रराय ने प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए अपना भाषण जो अंग्रेजी में था पढ़ सुनाया। भाषण की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:—

स्वागताध्यक्ष का भाषण

हिंदू महा सभा पर कुछ लोग अराष्ट्रीय और अहिन्दू होने का दोष लगा रहे हैं। इन आक्षेपों को मैं उचित नहीं मानता। प्रत्येक व्यक्ति का जो, राष्ट्रीय जीवन के ऐक्य के उच्च आदर्श को अपने सामने रखता है, कर्तव्य है कि वह अपने सम्प्रदाय को उदार तथा प्रगति शील बनावे और उसे सुसंगठित बनाने का प्रयत्न करे। सुधार के उद्देश्य से किया गया साम्प्रदायिक संगठन राष्ट्रीयता के लिए हानिकारक नहीं है बल्कि उस से राष्ट्रीय भाव जागृत करने में सहायता मिलती है। कट्टर श्रेणी के लोगों के विरोध से हिंदू महासभा को घबड़ाना नहीं चाहिए क्योंकि यह बात स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू समाज किसी सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं है इसमें आर्य्य सिथियन मंगोलियन और उनकी भिन्न २ सम्मिलित श्रेणी के लोग शामिल हैं। हिंदू समाज में कितनी ही बुराई घुस आई हैं। जब तक यह बुराइयां नष्ट नहीं की जायेंगी तब तक हिंदू वर्तमान द्वन्द में डटे नहीं रह सकते। महात्मा गांधी के प्रयत्न से सारे देश में अस्पृश्यता के प्रश्न पर जागृति होगई है। परन्तु मेरी राय में वाल्मीकि रायण और बुद्ध की जन्म भूमि में इतना ही सुधार पर्याप्त नहीं है। मैं आपसे उन अभिमानी स्त्रियों को समाज में वापस लेने के लिए ज़ोर दूंगा जिन पर अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं और जिनमें उनका दोष कुछ भी नहीं है। बंगाल के लिए इस समय यह सब से बड़ी समस्या है।

हिंदुस्तान के आर्थिक मोक्ष के लिए खद्दर का जो महत्व है हिंदू भारत के उद्धार के लिये अस्पृश्योद्धार का वही महत्व है, आपस में लड़ने वाला परिवार ठहर नहीं सकता? हिंदू धर्म अर्थ हीन देशाचार और लोकाचार के कारण गति हीन और पत्थर की तरह जड़ हो गया है।

इन वक्तव्यों से यह स्पष्ट है कि हिन्दू मुसलिम एकता अब हमारे नेताओं के हाथ में नहीं। मुसलमान नेता मुसलिम जनता के विचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस नहीं रखते और हिन्दू नेता मुसलमान नेताओं की सहायता के बिना कुछ कर नहीं सकते। अतः अब केवल उपाय यही है कि जनता स्वयं सोचे कि किस प्रकार इस समस्या को सुलझाया जासकता है। इसका एकमात्र उपाय यही है कि न हिंदू कमज़ोर रहें और न मुसलमान। यह कमज़ोरी

ही है जो कि अत्याचारी को अत्याचार करने के लिये निमन्त्रण देती हैं। हम ने आज तक यह नहीं सुना कि मुसलमानों ने हिन्दुओं से मार खाई हो अतः हिन्दुओं की निजी कमज़ोरी ही इस झगड़े का एक मात्र कारण है यदि हिंदू स्वयं आपस में संगठित हों, मिलजुल कर रहना सीखें, एककी पीड़ा दूसरे के लिये कष्ट-प्रद हो, ऊंचे नीचे का झूठा अभिमान दूर हो तो इन पर कोई आंख उठा कर भी नहीं देख सकता। मुसलमानों से आशा रखने और न्हें बुरा भला कहने से कुछ न बनेगा जब तक हम अपनी सुध आप न लेवें। मुसलमान संगठित हैं वह हमारे दुश्मन नहीं। हम स्वयं अपने दुश्मन हैं जो उनको अपने ऊपर अत्याचार और आक्रमण करने का प्रलोभन देते हैं। हमारे विचार में इस सारी समस्या का हल केवल मात्र हिन्दू और हिन्दू जनता के हाथमें हैं।



सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय दिल्ली में छपा।
अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से
और बाबू त्रिभुवननाथ प्रिंटर व पबलिशर ने ज्योति कार्यालय दिल्ली से प्रकाशित किया

~~495~~

459-61

110476

